वक्तव्य

प्रस्तुत ग्रंथ 'रंगनाथ रामायण' को पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हुए हमें बड़ा हर्ष हो रहा है। परिषद् का मूल उद्देश्य जहाँ अधिकारी विद्वानों द्वारा मौलिक ग्रंथों का प्रणयन कराकर प्रकाशित करना रहा है, वहाँ देश और विदेश की समृद्ध भाषाओं के उत्कृष्ट ग्रंथों का हिन्दी-अनुवाद कराकर उनके प्रकाशनों से हिन्दी-साहित्य की समृद्धि में योगदान भी रहा है। इस प्रकार, परिषद् ने अबतक जर्मन भाषा से रिचर्ड पिशल-लिखित 'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण' तथा फ्रेंच भाषा से मारिस मेटर-लिंक-रचित नाटक 'नीलपंछी' के अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। इन दोनों के अतिरिक्त संस्कृत-साहित्य से 'काव्यमीमांसा' तथा 'कथासरित्सागर' (प्रथम खण्ड) के अनुवाद मूल संस्कृत के साथ भी परिषद्-द्वारा प्रकाशित हुए हैं। 'कथासरित्सागर' का दूसरा खण्ड इसी साल प्रकाशित होनेवाला है और उसके अन्तिम खण्ड का अनुवाद-कार्य सम्पन्न हो रहा है। पाश्चात्य भाषाओं के साहित्य के अलावा परिषद् ने संविधान द्वारा स्वीकृत चौदह भाषाओं और उनके साहित्य पर परिचयात्मक निबन्ध उन-उन भाषाओं के अधि-कारी विद्वानों से लिखवाकर, उनके संग्रह के रूप में 'चतुर्दश भाषा-निबन्धावली' प्रकाशित की है। तदुपरान्त भारत की प्रमुख लोकभाषाओं में से पन्द्रह लोकभाषाओं और उनके साहित्य पर निबन्ध लिखवाकर 'पंचदश लोकभाषा-निबन्धावली' नाम का संग्रह प्रकाशित किया है। उपर्युक्त पुस्तकों का हिन्दी-संसार में अच्छा स्वागत हुआ—यह हमारे लिए प्रसन्नता की बात है।

किन्तु, भारतीय भाषाओं के साहित्य से अनुवाद द्वारा हिन्दी-भाण्डार को भरने की दिशा में परिषद् ने संकल्प किया था कि सर्वप्रथम दक्षिण भारत की चार—तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम—भाषाओं के साहित्य से एक-एक ग्रंथ चुनकर अनूदित कराया जाय। तदनुसार ही तमिल और तेलुगु के एक-एक ग्रंथ और उसके अनुवादक का चुनाव किया गया और अनुवाद के काम सौंपे गये। इस योजना में हमें तेलुगु की 'रंग-नाथ रामायण' के अनुवाद की पाण्डुलिपि सबसे पहले प्राप्त हुई और आज हम उसी रामायण को आपके सामने उपस्थित करने में समर्थ हो सके हैं। हमें प्रसन्नता है कि इसके बाद ही हम तमिल का 'कंब रामायण' का हिन्दी-अनुवाद भी यथाशीघ्र प्रकाशित कर हिन्दी-संसार के सामने रख सकेंगे।

मूल 'रंगनाथ रामायण' के सौष्ठव के सम्बन्ध में मद्रास-विश्वविद्यालय के विद्वान् रीडर तथा तेलुगु-विभाग के अध्यक्ष श्रीनिडदवोलु वेंकट राव ने अपने परिचय में जो उद्गार प्रकट किये हैं, वे इसी ग्रंथ में अन्यत्र देखने को मिलेंगे। फिर, इस ग्रंथ के अनुवादक श्री ए० सी० कामाक्षि राव ने भी, अपनी भूमिका में, तेलुगु-साहित्य का विवेचन करते हुए इस ग्रंथ की महत्ता पर जो कुछ प्रकाश डाला है, वह अलम् है। उसके बाद इस

सम्बन्ध में और कुछ लिखना पिष्टपेषण ही होगा। हम तो कवल इतना ही कहग कि दक्षिण भारत के प्राचीन एव मूर्धन्य साहित्य की गरिमा एव आभा से हिन्दी-साहित्य के भाण्डार के भरने की दिशा में हमारा यह विनम्र अनुष्ठान नगण्य न समझा जायगा।

इस अवसर पर हम सबसे पहले श्री म० सत्यनारायण को साधुवाद दिये विना नही रह सकते कि उन्होने परिषद् को इस दिशा में अपने विचार और सुझाव दकर अत्यधिक उत्साहित किया है। प्रारभ में हमें उनका सहयोग न प्राप्त होता, तो शायद हम इस ग्रथ को तना शीघ्र प्रकाश में न ला सकते। साथ ही हम दक्षिण भारत के गाँव-गाँव में हिन्दी की धूनी रमानेवाले श्रीअवधनन्दनजी के कृपापूर्ण सहयोग और साहाय्य को शब्दो में बाँधना नही चाहते। इसम रचमात्र भी अत्युक्ति नही कि उनके प्रयत्न का ही यह परिणाम है कि हम इस अनुवाद को हिन्दी-जगत् के सामने ला सके है। उन्होने अनुवादक से सारी पाण्डुलिपि प्राप्त कर पढ जाने की कृपा की, साथ ही सम्पादन भी यथासाध्य किया। निसकोच रूप से हम यह कह सकते है कि इस कार्य में साहित्य के प्रति उनका अदम्य उत्साह और परम पवित्र निष्ठा गौरव एव ईर्ष्या की वस्तु है। हम श्रीनिडदवोलु वेंकट राव के प्रति अतिशय कृतज्ञ है कि उनका 'परिचय' हमें इस ग्रथ के लिए उपलब्ध हो सका। अनुवादक और सम्पादक के साथ-साथ हम उनका भी आभार स्वीकार करते है, जिनका साहाय्य हमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्राप्त हो सका है।

आशा है, सुधी पाठको को रगनाथ रामायण के अनुशीलन से प्रसन्नता होगी और वे देख सकेंगे कि वाल्मीकि रामायण एव तुलसीदास के रामचरितमानस से यह किन-किन बातो में एक और किन-किन बातो में भिन्न है, और यह अनुभव करेंगे कि भाषा और वेश-भूषा की भिन्नता होते हुए भी हमारे सम्पूर्ण देश की मूल सस्कृति किस प्रकार सर्वथा एक, अभिन्न ए अखण्ड है।

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
सचालक

७-२-६१

परिचय

तेलुगु-साहित्य में राम-कथा को अग्रस्थान प्राप्त हुआ है और आज तेलुगु में रामकथा से संबंधित रचनाओं की संख्या लगभग तीन-चार सौ तक है। पुराण, प्रबंध, द्विपद, शतक, वचन, यक्षगान, दंडक, पद, गीत एवं संकीर्त्तन—मतलब यह कि आज तेलुगु में महाकाव्य जैसे शास्त्रीय रूप से अपढ़ ग्रामीण जनता के द्वारा गाये जानेवाले लोकगीतों तक में रामकथा उपलब्ध है। साहित्य-रचना के रूप में रामकथा-साहित्य का प्रारंभ तेरहवीं सदी में हुआ और उस समय से उस साहित्य की उत्तरोत्तर उन्नति होती गई। इस साहित्य की प्रेरणा देनेवालों में भद्राचलम् में विराजमान श्रीरामचन्द्र के अनन्यभक्त रामदास तथा अमरगायक भक्त त्यागय्या सर्वश्रेष्ठ हैं।

तेलुगु-साहित्य के सभी युगों में रामकथा विशेष आकर्षण की वस्तु रही है। आज भी जब तेलुगु-साहित्य में भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियाँ जन्म ले चुकी हैं और जन्म ले रही हैं, तेलुगु-भाषा के कई प्रसिद्ध आधुनिक कवियों ने रामकथा को शास्त्रीय पद्धति पर लिखा है और आज भी कुछ कवि इस कथा को लिखने में लगे हैं। यह इस बात को प्रमाणित करता है कि राम-भक्ति तेलुगु-जनता के हृदय को ही नहीं, बल्कि उनकी प्रतिभा पर भी अपनी अमिट छाप छोड़ चुकी है। प्राच्य तथा प्रतीच्य विद्वान् रामायण का अध्ययन आधुनिक ढंग से करने लगे हैं। अतएव आधुनिक विचार एवं सांस्कृतिक परिपार्श्व की दृष्टि से इस महाकाव्य की व्याख्या करना आवश्यक है। चूंकि दक्षिण की भाषाओं में भी संस्कृत-रामायण की कथा अनुवादों के रूप में अथवा मौलिक रचना के रूप में आ गई है, हमें विचार करना होगा कि आर्य एवं आर्येतर संस्कृतियों का समन्वय करने में रामायण का क्या स्थान है और रामायण भारत की सामासिक संस्कृति का प्रतीक कैसे बनी हुई है आदि।

'रंगनाथ रामायण' एक द्विपद-काव्य है, जो तेलुगु की रामकथा-संबंधी कृतियों में अत्यंत लोकप्रिय है। उसकी सरल, शुद्ध तथा प्रवाहमयी देशी शैली ने पंडित एवं पामर दोनों को समान रूप से आकृष्ट किया है। इस कथा के कुछ भाग 'तोलुबोम्म लाटा' (एक विशेष प्रकार की पुतलियों का नृत्य) जैसी लोक-कला के कार्यक्रमों में भी गाये जाते हैं और यह इस बात को स्पष्ट करता है कि कवि राम की अमर-कथा को तेलुगु-हृदय तक पहुँचाने में किस प्रकार सफल हुए हैं।

चूंकि इस कृति का नाम 'रंगनाथ रामायण' है, सहज ही यह भ्रम हो जाता है कि इसका कवि 'रंगनाथ' नामक कोई व्यक्ति रहा होगा। किन्तु, इस विषय पर

जो शोध-कार्य हुआ है, उससे यह प्रमाणित हो गया है कि तेरहवीं सदी में बूदपुर (ऐतिहासिक बोधान नगर) के आसपास राज करनेवाले सूर्यवंशी राजा विट्ठलराजु के आदेशानुसार उनके पुत्र गोनबुद्ध राजा ने इसकी रचना की है। इसका उल्लेख कवि स्वयं काव्य के प्रारंभ में कर चुके हैं। प्रकाशित एवं अप्रकाशित शिलालेखो के आधार पर यह प्रमाणित हो चुका है कि इस काव्य की रचना लगभग १३८० ई० में हुई थी।

'रंगनाथ रामायण' की विशेषता यह है कि उसकी रचना उस समय तक जनता में प्रचलित राम-कथा के आधार पर हुई है, जो संस्कृत-रामायण से कई स्थानो में भिन्न है। यद्यपि, रामायण आर्यावर्त्त या उत्तराण्य के राजा राम की कथा है, तथापि वह परंपरागत लोक-कथाओ के रूप में सारे दक्षिण में अति प्राचीन काल से व्याप्त थी।

अब यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है कि दक्षिण की भाषाएँ, तमिल, तलुगु, कन्नड़ और मलयालम--जो संस्कृत भाषा-परिवार से सर्वथा भिन्न परिवार की है--अपनी प्रारंभिक अवस्था में संस्कृत से किसी प्रकार का संबंध नहीं रखती थीं। ऐसी दशा में यह आशा नहीं की जा सकती कि इन भाषाओ के बोलनेवाले वाल्मीकि रामायण की मूलकथा का ज्ञान प्राप्त करे। उन्होंने स्थूल रूप में कथा को ग्रहण किया होगा और भिन्न-भिन्न व्यक्तियो ने भिन्न-भिन्न युगो में उस कथा का अपने ढग से मोड़-तोड़कर प्रचार किया होगा। यह कोई आश्चर्य नहीं, यदि घर-घर में इस कथा का प्रचार हो गया हो और उत्सुक बालक-बालिकाओ के मनोरजन के लिए तथा उनमें राम तथा उनकी पत्नी सीता के आदर्श जीवन में प्रतिबिंबित आर्य-धर्म को प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से घर के बडे-बूढे, रामायण के इतिवृत्त का छोटी-छोटी कहानियो के रूप में प्रसार किया हो। हमारे यहाँ ऐसी प्रथा रही भी है। महाकवि कालिदास अपने मेघदूत में कहते है कि कौशांबी नगर में ग्रामवृद्ध अपने पोते-पोतियो को उदयन की कथा सनाते थे। स्वयं कालिदास-कृत रघुवंश में वर्णित राम-कथा कुछ स्थानो में मूलकथा से भिन्नता रखती है।

राम की कथा त्रेतायुग की होने के कारण उदयन की कथा से भी अधिक प्राचीन है और कदाचित् उसने द्राविडो के हृदय एव प्रतिभा पर अमिट प्रभाव डाला होगा। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि रामायण के दो प्रधान पात्रो में रावण दक्षिण का था। लंका का राज्य, राम के विजय प्राप्त करने के पश्चात् भी बना रहा और विभीषण उसका पालन करता रहा। आधुनिक युग की भाँति यदि राम भी लका को जीतने के पश्चात् अपने किसी भाई को अपनी तरफ से लका का राज्य चलाने के लिए नियुक्त करते, तो कदाचित् दक्षिणापथ का इतिहास कुछ बातो में भिन्न होता।

तेलुगु-भाषा तमिल के मुकाबले में प्राचीन न होने पर भी कुछ हद तक प्राचीन ही कही जा सकती है; उस भाषा के बोलनेवालो में बहुत समय तक वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा लोक-कथाओ के द्वारा प्रचलित राम-कथा का ही आदर होता रहा। क्रमशः तेलुगु-भाषाभाषी संस्कृत के प्रति आकृष्ट हुए और उस भाषा के प्रकांड पंडित बन गये। 'रंगनाथ रामायण' और 'भास्कर रामायण' के कवि संस्कृत के महान् पंडित थे और

उन्होंने अपनी कृतियों में स्पष्ट कहा भी है कि उनकी कृतियाँ वाल्मीकि रामायण को आधार मानकर चलती हैं। फिर भी, वे जनता के बीच प्रचलित रामकथा की सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सके।

कहा जाता है कि सन् १३१० ई० में 'कवित्रय'[1] के प्रसिद्ध कवि एर्रना ने मूल संस्कृत-रामायण का सही अनुवाद तेलुगु-पद्य में लिखा था। खेद है कि वह रचना आज हमें अप्राप्त है—केवल उसके कुछ एक पद्य तेलुगु के एक लक्षण-ग्रन्थ में हमें मिलते हैं। एर्रना के पश्चात् सन् १८६० ई० तक किसी और कवि ने वाल्मीकि रामायण का सही-सही अनुवाद तेलुगु में प्रस्तुत नहीं किया। सन् १८६० ई० में गोपीनाथ वेंकट कवि ने संस्कृत-रामायण का सही अनुवाद तेलुगु-पद्य में प्रस्तुत किया। उसके पश्चात् कितने ही कवियों ने अपनी प्रतिभा के अनुसार संस्कृत-रामायण का अनुवाद किया। कहने का तात्पर्य यह है कि १८६० ई० तक राम की कथा पर जो काव्य लिखे गये, उनपर लोक-कथाओं का ही अत्यधिक प्रभाव रहा।

आज के शुभ समय में, जबकि भारत की विभिन्न संस्कृतियों में आदान-प्रदान का कार्य प्रारंभ हो गया है, यह अत्यंत हर्ष की बात है कि दक्षिण के एक सुयोग्य तथा हिन्दी-तेलुगु-भाषाओं के निपुण विद्वान् श्री ए० सी० कामाक्षि राव ने, तेलुगु की अत्यंत लोकप्रिय द्विपद रामायण का अनुवाद राष्ट्रभाषा हिन्दी के गद्य में किया है, जिससे वह भारत के सभी साहित्यों तक पहुँच सके।

तेलुगु की 'रंगनाथ रामायण' अपने इतिवृत्त, भाव, कला एवं शैली के कारण तीन करोड़ तेलुगु-भाषाभाषियों के हृदय में राम-भक्ति को जागरित करने में सफलता प्राप्त कर चुकी है। यदि उसका हिन्दी-अनुवाद आसेतुहिमाचल व्याप्त चालीस करोड़ भारतवासियों के हृदयों में राम-भक्ति जागरित करनेवाली प्रबल शक्ति का स्रोत बन सके, तो आश्चर्य नहीं करना चाहिए। जयहिन्द।[2]

ता० ८, शाके १८८२
चैत्र, सोमवार
२८-३-६० ई०

विद्यारत्न निडदवोलु वेंकट राव, एम्० ए०
रीडर तथा तेलुगु-विभाग के अध्यक्ष
मद्रास-विश्वविद्यालय

---

१. 'आन्ध्र महाभारत' के तीन प्रसिद्ध कवि नन्नया, तिक्कना और एर्रना 'कवित्रय' के नाम से विख्यात हैं।

२. [illegible]

प्रस्तावना

[१]

तेलुगु-भाषा-विदेशी पंडितो के द्वारा 'इटालियन ऑफ् दि ईस्ट' (Italian of the East) कही जानवाली तेलुगु-भाषा, द्राविड-भाषा-परिवार की समृद्ध एवं साहित्य-संपन्न भाषा है। वैसे तो इसके तीन नाम हैं---तेलुगु, तेनुगु, आध्रमु; किन्तु 'तेलुगु' शब्द का ही अधिकाधिक प्रयोग होता है। 'आध्र' शब्द पहले जाति-परक था, किन्तु बाद को वह देश-परक हुआ और निदान आध्र देश की भाषा 'आध्रमु' कहलाई। तेलुगु अजत भाषा है---प्रायः इसके सभी शब्द स्वरात और विशेष रूप से उकारात होते हैं। (उदा०-सतोषमु, साहसमु, नीनु, नेनु आदि)। अतः, यह भाषा अधिक सगीतमय होने की क्षमता रखती है। कदाचित् इसी कारण से विदेशी विद्वानो ने इसे 'पूर्व की इटालियन भाषा' कहा होगा।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि किसी समय आंध्र-साम्राज्य उत्तर में पाटलिपुत्र से कावेरी नदी के दक्षिण तक फैला हुआ था। किन्तु, समय-समय पर इस साम्राज्य पर बहुत-से आक्रमण हुए और इसका बहुत-सा भाग दूसरो के अधीन हो गया। विजयनगर के प्रसिद्ध सम्राट् कृष्णदेवराय के समय में तेलुगु-प्रदेश उत्तर में कटक से प्रारम्भ कर दक्षिण में मदुरै तक फैला हुआ था। आज भाषावार प्रान्तो के विभाजन के बाद तेलुगु-प्रदेश की सीमाएँ बहुत हद तक निश्चित-सी हो गई हैं। आज इसकी उत्तरी सीमा उत्तर-पूर्व में बरहमपुर से प्रारंभकर उत्तर में गोदावरी नदी के किनारे होते हुए निजामाबाद के कुछ उत्तर तक चली गई है। इसकी दक्षिणी सीमा मद्रास के उत्तर में लगभग तीस मील से प्रारंभ कर कोलार तक है और पूर्व में समुद्र-तट तक यह प्रदेश फैला हुआ है। इन सीमाओ के भीतर-स्थित विशाल भू-भाग में तथा भारत के अन्यान्य प्रान्तो में बसे हुए तेलुगु-भाषाभाषियो की संख्या १९५१ ई० की जन-गणना के अनुसार तीन करोड़ तीस लाख है। भारत में हिन्दी-भाषाभाषियो के बाद तेलुगु-भाषाभाषियो की संख्या ही अधिक है।

तेलुगु-भाषा के दो रूप हमें देखने को मिलते है---साहित्यिक भाषा का रूप और बोलचाल की भाषा का रूप। साहित्यिक भाषा का रूप प्रदेश-भर में एक ही है, किन्तु बोलचाल की भाषा के रूप में कहीं-कही थोडा-सा अन्तर दिखाई देता है। सन् १८७५ तक साहित्य-रचना के लिए केवल साहित्यिक भाषा का ही प्रयोग होता रहा, किन्तु उसके बाद बोलचाल की भाषा को भी साहित्य में स्थान देने के लिए आंदोलन

शुरू हुआ। यह आंदोलन आज तक चल रहा है। आज स्थिति ऐसी है कि तेलुगु के पचहत्तर फी सदी लेखक अपनी साहित्य-साधना बोलचाल की भाषा के माध्यम से करते हैं। साहित्यिक भाषा (ग्रांथिक भाषा) और बोलचाल की भाषा (व्यावहारिक भाषा) में जो अन्तर है, वह विशेषतया क्रियाओ तथा कुछ शब्दो के रूपो तथा सधि के नियम-पालन के ऊपर निर्भर करता है। एक उदाहरण से यह अन्तर स्पष्ट करेंगे।

साहित्यिक-भाषा--श्री राम चरित्रमु परम पावन मैनदि। अंदुवलनने तेलुगुलो ननेकुलु रामायण-मुनिदिवरलो रचियिंचिरि। इप्पटिकिनि रचिंचुचु तम जन्ममुनु चरितार्थमु गाविंचु कोनु चुन्नारु।

व्यावहारिक भाषा--

श्रीराम चरित्र परम पावन मैंदि। अंदुवल्लने तेलुगुलो अनेकुलु रामायणान्नि यिदि वरलो व्रासारु। इप्पटिकी व्रास्तू तम जन्मान्नि चरितार्थमु चेसुकुटुन्नारु।

(श्रीराम की कहानी परम पावन है। इसलिए, कई लोगो ने अबतक रामायण की रचना की। आज भी कुछ लोग इसकी रचना करते हुए अपने जीवन को चरितार्थ कर रहे हैं।)

जैसा हम पहले निवेदन कर चुके हैं, तेलुगु द्राविड़-भाषा-परिवार की एक मुख्य भाषा है। किसी समय तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम मूल द्राविड-भाषा की बोलियाँ मात्र थीं। किन्तु, बाद को भिन्न-भिन्न वातावरण में पनपने के कारण आज ये एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होती हैं। तेलुगु-प्रदेश पर कई राजवशो ने राज्य किया। सातवीं शताब्दी तक सातवाहन, इक्ष्वाकु, बृहत्फलायन, शालकायन, पल्लव, विष्णुकुडिन तथा पूर्व चालुक्य राजाओ ने तेलुगु-प्रदेश पर राज्य किया था। इन राजाओ की राज-भाषा या तो संस्कृत थी या प्राकृत। जो शिलालेख अबतक उपलब्ध हैं, उनमें बहुतो की भाषा प्राकृत है। इन राजाओ में कुछ तो वैदिक धर्मावलबी थे और कुछ बुद्ध के अनुयायी थे। इस तरह तेलुगु-प्रदेश में राजभाषा तथा धर्म की भाषा की हैसियत से सस्कृत तथा प्राकृत का अत्यधिक प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में देशभाषा पर पड़ता रहा। परिणाम यह हुआ कि आज तेलुगु में पचहत्तर फी सदी शब्द सस्कृत या प्राकृत भाषाओ के तत्सम या तद्भव रूप हैं। तेलुगु-प्रदेश के पडितो का सस्कृत के प्रति इतना अधिक आग्रह रहा कि तेलुगु का सब से प्रथम व्याकरण संस्कृत-भाषा में लिखा गया।

तेलुगु की साहित्यिक भाषा के भी दो रूप मिलते हैं। एक रूप वह है, जो सस्कृत शब्दो तथा समस्त पदो से भरा हुआ होता है और दूसरा वह, जिसमें ठेठ तेलुगु शब्दो का ही बाहुल्य है। ठेठ तेलुगु को 'जानु तेनुगु' कहते हैं। इन दोनो रूपो में सस्कृत-बहुल भाषा का ही अधिक आदर होता रहा और धीरे-धीरे ठेठ तेलुगु के प्राचीन काव्यो के बहुत-से शब्दो का प्रचलन कम होता गया। इसलिए, ठेठ तेलुगु के प्राचीन काव्यो को समझना बहुत-से तेलुगु-भाषाभाषियो के लिए भी आज कठिन-सा हो गया है। ठेठ तेलुगु तथा संस्कृतबहुल तेलुगु के उदाहरणो को देखने से इन दोनो में अतर स्पष्ट हो जायगा--

ठेठ तेलुगु--

चेप्पु लोनिरायि चेविलोनि जोरीग,
कंटिलोनि नलुसु, कालिमुल्लु,
इंटिलोनि पोरु इतित कादया ।।

(जूतो में पड़ा हुआ कंकड़, कान में पहुँचा हुआ कीड़ा, आँख की किरकिरी, पैरों में काँटा और घर में झगड़ा--इनकी पीड़ा असहनीय होती है।)

संस्कृतबहुल तेलुगु--

अधरमु गदली गदलक
मधुरमु लगु भाष लुडिगि
मौन व्रतुडौ अधिकार रोग पूरित
बधिरांधक शवमु जूड पापम् सुमनी ।।

[अधरो को बिना हिलाये, मधुर भाषा से रहित हो, मौन व्रत धारण करनेवाला अधिकार-रोग से भरा व्यक्ति बहरे तथा अंधे शव के बराबर है। उसे देखना भी पाप है। (रेखांकित शब्द संस्कृत के है।)]

इन दोनो शैलियो का सामंजस्य भाषा के जिस रूप में पाया जाय, जिनमें तेलुगु का मुहावरा भी और संस्कृत का मधुर एवं गंभीर शब्द-समूह भी हो, वही तेलुगु अधिक लोकप्रिय है और वही सुंदर समझी जाती है। रंगनाथ रामायण की भाषा में ऐसी ही सुंदरता पाई जाती है। इसकी चर्चा यथास्थान आगे की जायगी।

तेलुगु-साहित्य--महाकवि नन्नया का आंध्र-महाभारत तेलुगु-साहित्य के उपलब्ध काव्य-ग्रन्थों में सबसे प्राचीन है। इसकी रचना ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में हुई थी। इस काव्य की प्रौढ भाषा एवं उत्कृष्ट कला-कौशल को देखकर विद्वान् यह अनुमान करते है कि यही महाभारत तेलुगु-साहित्य का आदिकाव्य नहीं हो सकता। उनका विचार है कि किसी भी भाषा के प्रथम साहित्य का रूप इतना विकसित एवं प्रौढ नहीं हो सकता; शताब्दियो की साहित्य-साधना के परिणाम-स्वरूप ही ऐसी प्रौढ रचना का प्रणयन संभव है। यह विचार कल्पना-मात्र कहा नहीं जा सकता। सातवीं तथा आठवीं शताब्दी के जो शिलालेख एवं तांबे के दानपत्र अबतक उपलब्ध हुए, उनमें उत्कृष्ट काव्य-स्वरूप के नमूने मिलते है। अतः, यह कहना सत्य से दूर नहीं होगा कि तेलुगु में साहित्य-रचना का प्रारंभ ईसा की सातवीं शताब्दी में ही हुआ होगा, किन्तु सातवीं से दसवीं शताब्दी तक का साहित्य हमें आज उपलब्ध नही हो सका।

सन् १०५० ई० से आजतक के तेलुगु-साहित्य के इतिहास को पाँच युगो में विभाजित किया जा सकता है--

१. पुराण-युग (१०५०--१३५० ई०)
२. श्रीनाथ-युग (१३५०--१५०० ई०)
३ प्रबंध-युग (१५००--१६०० ई०)
४. दक्षिणाध्र-युग (१६००--१८७५ ई०)
५. आधुनिक-युग (१८७५ ई० से)

प्रत्येक युग का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है--

पुराण-युग--वैदिक धर्म तथा उसके समर्थक पुराणो के प्रचारार्थ इस युग में साहित्य-साधना का प्रारंभ हुआ। महाकवि नन्नया ने 'महाभारत' की रचना प्रारंभ की और अरण्य-पर्व का अर्द्ध भाग लिख भी न पाये कि उनका स्वर्गवास हो गया। उसके दो सौ वर्ष के पश्चात् तिक्कना सोमयाजी ने विराट् पर्व से प्रारंभ कर शेष पंद्रह पर्वों की रचना की। उसके पश्चात् एर्रना प्रगडा ने अरण्य-पर्व का अधूरा अंश पूरा किया। इस तरह महाभारत की रचना तीन कवियो के द्वारा लगभग तीन सौ वर्षों में पूरी हुई। इन तीन महाकवियों को 'कवित्रय' कहते हैं। आध्र-महाभारत तेलुगु-भाषाभाषियो के लिए एक साथ, धर्मशास्त्र, नीति-ग्रन्थ, पुराण तथा महाकाव्य है। उसका प्रभाव तेलुगु-जन-जीवन पर अक्षुण्ण हैं।

इसी युग में रामायण की रचना भी हुई। गोनबुद्धराजु ने देशज छन्द 'द्विपदा' में रामायण की रचना की, जो साधारण जनता के बीच अत्यंत प्रिय हुई, जिसका हिन्दी-अनुवाद उपस्थित है। 'भास्कर रामायण' की रचना भी इसी युग में हुई, किन्तु वह केवल पंडितो के बीच समादृत हुई। महाभारत तथा रामायण के अलावा इस युग में शैव काव्यो की रचना अत्यधिक मात्रा में हुई। नन्नेचोड़ कवि कृत 'कुमारसम्भव', पालकुरिकि सोमनाथ-कृत 'बसवपुराणमु' तथा 'पंडिताराध्यचरित्र' इस युग की श्रेष्ठतम शैवभक्तिपरक रचनाएँ हैं, जो तेलुगु-साहित्य के उज्ज्वल आभूषणो की भाँति शोभायमान हैं। इस युग के एक और प्रसिद्ध कवि नाचन सोम हैं, जिनका 'उत्तर-हरिवंश' एक बडी ही सुंदर कृति हैं।

श्रीनाथ-युग--इस युग के प्रसिद्ध कवियो में श्रीनाथ तथा पोतना अग्रगण्य हैं। श्रीनाथ राजदरबार के महाकवि तथा महापंडित थे। उन्होने कविता-शैली में क्रांतिकारी परिवर्त्तन किया। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं--'काशीखंडमु', 'शृंगारनैषधमु' तथा 'पलनाटि चरित्रमु'। इनमें 'काशीखंडमु' और 'शृंगारनैषधमु' संस्कृत के काव्यो के अनुवाद हैं और 'पलनाटिचरित्रमु' ऐतिहासिक वीर-काव्य हैं। श्रीनाथ के अनुवाद की शैली भी निराली है। मूल ग्रन्थ को आधार मानते हुए, उसके समस्त काव्य-सौंदर्य को तेलुगु की मुहावरेदार भाषा में मूर्तिमान् करने की उनकी क्षमता अद्भुत है। उनके समकालीन कवि पोतना, तेलुगु-भाषाभाषियो के हृदय-पीठ पर सर्वदा विराजमान रहेंगे। उनकी उत्कृष्ट रचना 'आध्र-महाभागवत' है, जिसका प्रचार गरीब की झोपड़ी से अमीरो के महलो तक में है। पोतना राम के भक्त थे, किन्तु उन्होंने कृष्ण-प्रधान काव्य की रचना की। उनकी भक्ति विलक्षण थी। राम-कृष्ण, शिव-केशव में उन्होने कोई भेद नहीं किया। उनकी भागवत के कुछ भाग, जैसे प्रह्लाद-चरित्र, गजेन्द्रमोक्ष तथा कृष्ण-लीलाएँ आदि तेलुगु-प्रदेश में इतने प्रसिद्ध हैं कि लोग उन्हें जबानी याद करके समय-समय पर भक्ति-भाव से गाते रहते हैं।

प्रबन्ध-युग --यह युग तेलुगु-साहित्य का स्वर्ण-युग माना जाता है। विजयनगर-साम्राज्य के विख्यात राजा श्रीकृष्णदेवराय का प्राश्रय पाकर तेलुगु-साहित्य ने अभूतपूर्व

उन्नति की। श्रीकृष्णदेवराय स्वयं भी कवि थे और उन्होंने 'आमुक्तमाल्यदा' नामक एक प्रौढ़ काव्य की रचना की थी। उनके दरबार में आठ महाकवि थे, जो 'अष्टदिग्गज' के नाम से प्रख्यात थे। इस युग में कई प्रबंध-काव्यों की रचना हुई। तेलुगु में प्रबंध-काव्य की एक विलक्षण परिभाषा प्रचलित है। किसी पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक प्रेमाख्यान को आश्रित कर आवश्यकता तथा औचित्य की दृष्टि से उसे घटा-बढ़ाकर अपनी प्रतिभा एवं कला-कौशल के अनुसार तेलुगु की मुहावरेदार भाषा में, तेलुगु-जन-जीवन को प्रतिबिंबित करते हुए जिस कला-कृति का निर्माण कवि करता है, उसे प्रबंध-काव्य कहते हैं। ऐसे प्रबंध-काव्यों में अल्लसानि पेद्दना का 'मनुचरित्र', तिम्मना का 'पारिजातापहरण' तथा रामराजभूषण का 'वसुचरित्र' अत्यंत प्रसिद्ध है। धूर्जटि कवि का 'कालहस्तीश्वरशतक' और तेनालि रामकृष्ण का 'पांडुरंगमाहात्म्यमु' इस युग के भक्ति-परक महाकाव्य हैं। इस युग के उत्तरार्द्ध में पिंगलि सूरना ने 'कलापूर्णोदयमु' नामक एक मौलिक प्रबंधकाव्य की रचना की, जो वस्तु, भाव एवं कला की दृष्टि से बेजोड़ है। उन्होंने 'राघवपांडवीयमु' नामक एक द्व्यर्थी काव्य लिखा, जो अपने ढंग का प्रथम काव्य है। इसको अपना आदर्श मानकर आगे कई कवियों ने तीन-तीन, चार-चार अर्थवाले काव्योंकी रचना की।

दक्षिणांध्र-युग—विजयनगर-साम्राज्य के पतन के पश्चात् आंध्र-साम्राज्य दक्षिण में तंजाऊर और मदुरै में प्रस्फुटित हुआ। वहाँ के प्रायः राजा स्वयं विद्वान् होने थे और विद्वानों तथा कवियों का बहुत आदर करते थे। उनका आश्रय प्राप्त करके कई तेलुगु-कवि तेलुगु-साहित्य-मंदिर को अपनी सरस कृतियों से सजाने लगे। इस युग की कविता भी प्रबंध-शैली को ही अपनाकर चली, किन्तु समय के साथ-साथ उसकी भाव-प्रवणता में शिथिलता आती गई। भाव-सौंदर्य की अपेक्षा पांडित्य-प्रदर्शन एवं आश्रयदाता की अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा को ही कवि अधिक महत्त्व देने लगे। फिर भी, इस युग में कई सुंदर काव्यों की रचना हुई, जिनमें कंकंटि पापराजु-कृत 'उत्तर-रामायण', चेमकूरि वेंकट कवि-कृत 'विजयविलासमु', कवयित्री मोल्ला द्वारा विरचित 'रामायण' तथा कवयित्री मुद्दु पलनी कृत 'राधिका स्वांतनमु' आदि अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

आधुनिक काल के साहित्य का परिचय देने के पहले तेलुगु-साहित्य की एक और प्रवृत्ति का उल्लेख कर देना आवश्यक है। तेलुगु की प्रबंध-काव्य-धारा के साथ ही मुक्तक-काव्य-धारा का भी विकास समानांतर में होता रहा। मुक्तक-साहित्य के अंतर्गत शतक, गीत, संकीर्त्तन तथा यक्षगान आदि आते हैं। तेलुगु में लगभग एक हजार शतक हैं, जिनमें बहुत-से प्रकाशित हो चुके हैं। तेलुगु-साहित्य में इन शतकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें बहुत-से शतक भक्तिपरक हैं, कुछ नीति-बोधक हैं और कुछ शृङ्गार-रस से भरे हैं। इनकी कविता उच्चकोटि की है। इसके अलावा समय-समय पर भक्तों के द्वारा रचे हुए पद तथा संकीर्त्तन साहित्य तथा संगीत की दृष्टि से अद्वितीय हैं। अन्नमय्या, त्यागय्या और क्षेत्रय्या, ये तेलुगु के तीन भक्त-कवि हैं, जिन्होंने भक्ति के उन्मेष में

कितने ही मधुर गीतों का गान किया है। त्यागय्या (त्यागराज) तमिलनाट के तिरुवाडी नामक स्थान में हुए थे। उनके कीर्त्तन सारे दक्षिण में गाये जाते हैं।

आधुनिक युग--आधुनिक युग में तेलुगु-गद्य की अच्छी उन्नति हुई। गद्य की विभिन्न प्रवृत्तियों को प्रारंभ करके गद्य का विकास करने का श्रेय स्व० श्रीवीरेशलिंगम् पंतुलु को है। उन्होंने स्वयं कितने ही निबंध, नाटक, प्रहसन तथा उपन्यास आदि लिखे और दूसरे लेखकों को लिखने की प्रेरणा दी। आधुनिक तेलुगु-साहित्य में उनका वही स्थान है, जो हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का है। इस युग के प्रारंभ में कई ऐसी संस्थाओं की स्थापना हुई, जो गद्य-साहित्य के निर्माताओं को प्रोत्साहन देती थी। चिलकमर्त्ति लक्ष्मीनरसिंहम्, पानुगंटि नरसिंहराव, गुरजाड अप्पाराव उन प्रारंभिक लेखकों में से हैं, जिन्होंने गद्य-साहित्य के निर्माण में अथक परिश्रम किया था। इसी समय व्यावहारिक भाषा को साहित्य-रचना के लिए प्रयोग करने के प्रश्न पर जबरदस्त आंदोलन शुरू हुआ। कई युवा-लेखकों तथा पत्र-पत्रिकाओं ने इस आंदोलन का समर्थन किया। इस आंदोलन के फलस्वरूप बहुत बड़ी संख्या में गद्य-लेखक निकल आये, जो आजतक गद्य-साहित्य की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए प्रयास कर रहे हैं।

कविता के क्षेत्र में भी तेलुगु-साहित्य भारत की अन्यान्य भाषाओं की साहित्यिक प्रगति के साथ कदम-ब-कदम आगे बढ़ रहा है। अँगरेजी साहित्य का अध्ययन, स्वतंत्रता-आंदोलन, वर्त्तमान जीवन का संघर्ष और व्यक्ति-स्वातंत्र्यवाद ने इस युग के कवियों को एक नई दृष्टि प्रदान की तथा उसका प्रभाव उनकी कविताओं में लक्षित होने लगा। छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की जैसी कविताएँ हिन्दी-साहित्य में पाई जाती हैं, वैसी रचनाएँ तेलुगु में भी हैं। भेद इतना ही है कि तेलुगु में उनके नाम भिन्न-भिन्न हैं--जैसे भाव-कविता, अतिवास्तविक कविता, अभ्युदय-कविता आदि। वर्त्तमान समाज में पाई जानेवाली आर्थिक असमानता, संघर्षमय जीवन, प्राचीन रूढ़ियों तथा परंपराओं के प्रति विद्रोह तथा समस्त मानव-जाति के कल्याण का आग्रह आज की कविताओं में दिखाई पड़ते हैं।

[२]

रामायण, महाभारत एवं भागवतपुराण भारत की सांस्कृतिक एकता को सुरक्षित रखनेवाले महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। राम और कृष्ण भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं। वस्तुतः, आसेतुहिमाचल इन अलौकिक महापुरुषों की पूजा होती है और प्रत्येक भारतीय भाषा के कवि इनके जीवन-वृत्तों का गान करने में ही अपने कवि-कर्म की सफलता मानते आये हैं।

रामायण की कथा नित्य नवीन है। हम अपनी बाल्यावस्था से ही न जाने कितनी बार और कितने लोगों के द्वारा इस कथा को सुनते तथा स्वयं पढ़ते रहे हैं, फिर भी जब-जब इसे सुनने या पढ़ने का अवसर मिलता है, तब-तब हम में नवोत्साह जागरित हो उठता है। यही इस कथा की महत्ता है। वाल्मीकि-रामायण में चतुरानन के मुँह से निकले हुए निम्नलिखित शब्द अक्षरशः सत्य प्रमाणित होते हैं--

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावत् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

तेलुगु भाषा में रामकथा-संबंधी कितने ही काव्य हैं। ये काव्य प्रायः दो रूपों में मिलते हैं--प्रबंध-काव्य तथा मुक्तक-गीत। प्रबंध के रूप में प्राप्त होनेवाले काव्यों में अधिकतर काव्य वाल्मीकि-रामायण के सरल अनुवाद-मात्र हैं। 'रंगनाथ रामायण' तथा 'मोल्ल रामायण' ही दो ऐसे प्रबंध-काव्य हैं, जो स्वतंत्र रचना कहे जा सकते हैं इन दोनो की कथा यद्यपि प्रधानतया वाल्मीकि-रामायण को आधार मानकर चली है, तथापि काव्य-रचना के लक्ष्य में, कथा-वस्तु के विधान में वर्णनों में, तथा चरित्र-चित्रण में नवीनता है। इन दोनो में 'मोल्ल रामायण' आकार में छोटी है। 'रंगनाथ रामायण' ही आंध्र-देश में अधिक लोकप्रिय है। इसके रचना-काल तक जनता में प्रचलित रामकथा-संबंधी कई ऐसे प्रसंग इस रामायण में मिलते हैं, जो वाल्मीकि-रामायण में नहीं मिलते। अबतक रामकथा-संबंधी जितने प्रबंध-काव्य उपलब्ध हुए, उनमें यही सब से प्राचीन काव्य है।

'रंगनाथ रामायण' संबंधी चर्चा प्रारंभ करने के पहले हम एक विषय स्पष्ट कर देना आवश्यक समझते हैं। जिस प्रकार तुलसी-रामायण उत्तर-भारत के लोक-जीवन के पोर-पोर में व्याप्त होकर, उसके पारिवारिक सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित कर सकी, उसी प्रकार और उसी मात्रा में तेलुगु-भाषाभाषियों के जीवन को तेलुगु-रामायण प्रभावित नही कर सकी। आंध्र-जनता के बीच यह कार्य आंध्र-महाभारत तथा आंध्र-महाभागवत ने किया। इन दोनों ग्रंथों ने तेलुगु-प्रदेश में लोक-जीवन को प्रभावित ही नहीं, बल्कि अनुप्राणित भी किया है। तुलसी-रामायण हिन्दी-भाषाभाषियों के लिए एक साथ धर्म-ग्रन्थ, पुराण, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र तथा लोक-जीवन का पथ-प्रदर्शक है। तेलुगु-प्रदेश में वह स्थान तेलुगु-रामायण को नहीं बल्कि तेलुगु-भागवत को प्राप्त है। तेलुगु-भाषाभाषियों के लिए 'आंध्र-महाभारत' एक साथ धर्मशास्त्र, वेदान्त-ग्रन्थ, नीति-ग्रन्थ, महाकाव्य और इतिहास हैं।

परन्तु, फिर भी राम की कथा, जो परंपरा से जनता के बीच लोक-कथाओं तथा लोक-गीतो के रूप में प्रचलित थी, अपना अक्षुण्ण प्रभाव लोगो के जीवन पर डालती रही। आंध्र-देश में समय-समय पर कई ऐसे भक्त हुए, जिन्होंने अपने भक्ति-रस पूर्ण गीतों एवं भजनों के द्वारा राम-भक्ति का ऐसा प्रचार लोगों में किया कि श्रीराम आंध्रो के इष्टदेव-से हो गये। आंध्र-प्रदेश में विरला ही ऐसा कोई गाँव होगा, जहाँ श्रीराम का मंदिर न मिलता हो। तेलुगु-भाषाभाषियों में रामय्या, रामन्ना, रामराव, रामचन्द्र राव, सीतय्या, लक्ष्मन्ना आदि नामो की तो गिनती ही नहीं है।

किन्तु, प्रश्न यह है कि तुलसी-रामायण के समान सर्वव्यापक तथा प्रभावशाली राम-काव्य तेलुगु में क्यो नहीं लिखा जा सका? ऐसी बात नहीं कि तेलुगु-प्रदेश में इसके लिए आवश्यक प्रतिभा का अभाव था। यदि ऐसी बात होती, तो महाभारत एवं भाग वत जैसे प्रौढ एवं सरस महाकाव्यो की रचना ही तेलुगु में नहीं होती। अतः इसका कारण जानने के लिए हमें इतिहास का आश्रय लेना पड़ेगा।

यह सर्वविदित है कि भगवान् बुद्ध की धार्मिक क्रान्ति से वैदिक धर्म को बड़ा भारी धक्का लगा। बौद्धधर्म कई शताब्दियो तक उत्तर-भारत के राजाओ के द्वार

समादृत रहा। उत्तर-भारत के कुछ राजाओ ने जैनधर्म को भी अपनाया था। धीरे-धीरे इन दोनो धर्मो ने अपनी विजय-यात्रा सदूर दक्षिण तक बढ़ाई। दक्षिणापथ के कई राजाओ ने इस धर्म के आगे अपने घुटने टेक दिये। आंध्र-राजाओ में सबसे प्रथम शातवाहन थे, जिन्होंने वैदिक धर्म के अनुयायी होते हुए भी बौद्ध तथा जैन धर्मों का आदर किया। इन्हीं शातवाहनो के सामंत इक्ष्वाकु-वंश के राजा (ई० पू० २००) बौद्धधर्म के अनुयायी बने। इन्होने बौद्ध तथा जैन धर्मों को बहुत आदर दिया और वैदिक[1] धर्म के प्रभाव को नष्ट करने का भी यथाशक्ति प्रयत्न किया। इस प्रकार, दक्षिण भारत में वैदिक, बौद्ध एवं जैन धर्मों के बीच कई शताब्दियो तक संघर्ष चलता रहा। बीच-बीच में ऐसे आंध्र-राजा भी हुए, जिन्होने वैदिक धर्म को प्रोत्साहन दिया और बौद्ध तथा जैन धर्मों को समूल नष्ट करने का प्रयत्न किया।

सन् ८२५ ई० में शंकराचार्य का आविर्भाव हुआ। उन्होने बौद्धधर्म के प्रचार को रोकने तथा वैदिक धर्म को पुनः प्रतिष्ठापित करने का जो प्रयत्न किया, उससे आंध्र-प्रदेश के वैदिक धर्मावलंबियो को आंध्र-देश से बौद्धधर्म को समूल उखाड़ फेंकने की प्रेरणा मिली। उन्होने कई मोर्चों पर बौद्धधर्म का विरोध किया। बौद्धधर्मावलंबियो को तरह-तरह की यातनाएँ दी गई और कई ऐसे ग्रन्थो के निर्माण का प्रयत्न हुआ, जिनके द्वारा वैदिक धर्म तथा उनके समर्थक पुराणो की प्रतिष्ठा बढ़ी। वातावरण भी इसके लिए अनुकूल था। उसी समय तमिल-देश में अनेक वैष्णव तथा शैव संतो का आविर्भाव हुआ, जिन्होने अपनी सरस एवं सबल रचनाओ से बौद्ध तथा जैन धर्मो का विरोध आरंभ किया। उसी युग में आंध्र में राजराज नरेन्द्र नामक एक विख्यात राजा हुए जो वैदिक धर्म के अनन्य अनुयायी थे। इन महापुरुषो का प्रोत्साहन पाकर तेलुगु-साहित्य में पुराण-युग प्रारंभ हुआ, जिसमें प्रधानतया पुराणो और इतिहासो का अनुवाद-कार्य हुआ। इन ग्रन्थो की रचना करने में कवियो का उद्देश्य यही था कि उनके द्वारा भगवान् के उस लोकरंजनकारी रूप की अभिव्यक्ति की जाय, जिसको आलंबन मानकर मानव-हृदय वैदिक धर्म के कल्याण-मार्ग की ओर अपने आप आकृष्ट हो सके। लगभग सन् १०२५ ई० में कवि नन्नया ने महाभारत का अनुवाद प्रारंभ किया, किन्तु वे महाभारत के केवल ढाई पर्व-मात्र की रचना कर पाये थे कि उनका स्वर्गवास हो गया। इसके पश्चात् तेलगु-रामायण (रंगनाथ रामायण) की रचना हुई।

तेलुगु में रामायण की रचना को प्रेरणा देनेवाली परिस्थितियाँ तुलसी-रामायण की रचना के लिए प्रेरणा देनेवाली परिस्थितियो से भिन्न थीं। रंगनाथ रामायण का उद्देश्य वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा को बढ़ाना तथा रामचन्द्र जैसे अलौकिक शक्तिशाली एवं सौंदर्य-संपन्न व्यक्ति तथा अवतार-पुरुष के भव्य चरित्र को प्रस्तुत करना था, जिसकी अनुभूति-मात्र से मानव-हृदय गद्‌गद हो उठे। या यों कह सकते हैं कि रंगनाथ रामायण उस व्यापक पृष्ठभूमि को तैयार करने में सफल हुई, जो पीछे चलकर राम के प्रति भक्ति-भावना को जन्म देने के लिए आवश्यक थी। भक्ति का प्रादुर्भाव अचानक नहीं होता। अनंत सौंदर्य, शक्ति और शील से संपन्न चरित्र के प्रत्यक्षीकरण से व्यक्ति का हृदय पहले

आश्चर्य से भर जाता है और धीरे-धीरे वह उस शक्ति-संपन्न व्यक्ति के महत्त्व की अनुभूति करने लगता है। उसके उपरांत उसकी प्रशंसा करने की इच्छा सहज ही उसके मन में जागरित होती है। महान् व्यक्ति की प्रशंसा करने की यह इच्छा ही भक्ति की पहली सीढ़ी है। रंगनाथ रामायण के प्रतिभावान् रचयिता ने अपनी रचना के द्वारा यही कार्य संपन्न किया।

रंगनाथ रामायण वाल्मीकिरामायण का मात्र अनुवाद नहीं है। स्थूल रूप से वाल्मीकिरामायण की कथा इसमें आ तो गई है, किन्तु उसके कवि ने बीच-बीच में ऐसे प्रसंग भी जोड़े हैं, जो कदाचित् उस समय तक जनता के बीच लोक-कथाओं के रूप में प्रचलित हो चुके थे। हम नीचे ऐसे कुछ प्रसंगों का उल्लेख करेंगे, जो वाल्मीकि-रामायण में नहीं मिलते, यद्यपि उनमें से कुछ प्रसंग जैनग्रन्थों में मिलते हैं। कदाचित् कवि ने वहीं से इन प्रसंगों को लेकर अपनी रामायण में सम्मिलित कर दिया हो:

१. जंबुमाली का वृत्तांत, २. रावण से तिरस्कृत हो विभीषण का अपनी माता के पास जाना, ३ कैकेसी (रावण की माता) का रावण को हितोपदेश, ४. रावण का राम की धनुर्विद्या-कुशलता की प्रशंसा करना, ५. गिलहरी की भक्ति, ६. नागपाश में बद्ध होकर राम-लक्ष्मण के पास नारदजी का आना, ७. रावण के आगे मंदोदरी का राम की महिमा एवं शौर्य की प्रशंसा करना, ८. दूसरी बार संजीवनी लाते समय हनुमान् तथा माल्यवान् का युद्ध, ९. कालनेमि का वृत्तांत, १०. सुलोचना का वृत्तांत, ११. शुक्राचार्य के आगे रावण का दुखड़ा रोना, १२. रावण का पाताल-होम, १३. अंगद का रावण के समक्ष मंदोदरी को बुला लाना, १४. रावण की नाभि में स्थित अमृत-कलश को सोखने के निमित्त आग्नेयास्त्र का प्रयोग करने की विभीषण की सलाह, १५ लक्ष्मण की हँसी।

उक्त प्रसंगों में जंबुमाली का वृत्तांत, कालनेमि का वृत्तांत, रावण के समक्ष अंगद का मंदोदरी को घसीटकर लाना, आग्नेयास्त्र का प्रयोग करने की विभीषण की सलाह आदि ऐसे हैं, जो मूलकथा की घटनाओं को अधिक तर्क-संगत सिद्ध करने के निमित्त जोड़े हुए प्रतीत होते हैं। रावण से तिरस्कृत होकर विभीषण का अपनी माता के पास जाना, कैकेसी का हितोपदेश और सुलोचना का वृत्तांत आदि रावण के परिवार के लोगों के चरित्र पर प्रकाश डालने के साथ ही साथ इस ओर भी इंगित करते हैं कि रावण भूत-प्रेतों का वंशज एवं भूत-प्रेतों का राजा नहीं था, किन्तु एक विलक्षण परिवार में उत्पन्न हुआ विशिष्ट व्यक्ति था। रावण का, राम की धनुर्विद्या की कुशलता की प्रशंसा करना, मंदोदरी का रावण के समक्ष श्रीराम की महिमा एवं पराक्रम की प्रशंसा करना, गिलहरी का वृत्तांत आदि प्रसंग राम के उस लोकोत्तर व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हैं, जो शत्रुओं की भी प्रशंसा प्राप्त करने की क्षमता रखता था। साथ ही साथ, वे रावण तथा मंदोदरी के चरित्र पर भी प्रकाश डालते हैं। उक्त प्रसंगों के अलावा इस रामायण में यत्र-तत्र ऐसे वर्णन भी मिलते हैं, जो वाल्मीकिरामायण में नहीं मिलते, किन्तु जिन्हें कवि ने वैदिक धर्म में लोगों की निष्ठा बढ़ाने के निमित्त जोड़ा है।

पात्रों का चित्रण-पात्र-चित्रण की दृष्टि से रंगनाथ रामायण विशेष महत्त्व रखती है। जैसा हमने पहले ही निवेदन किया है, रंगनाथ रामायण में श्रीराम के महिमा-समन्वित शक्ति, शील तथा सौंदर्य से परिपूर्ण चरित्र को प्रस्तुत करने का अधिक प्रयत्न हुआ है। इस रामायण के नायक राम जहाँ एक धीरोदात्त वीर तथा सर्वगुणसंपन्न व्यक्ति थे, वहाँ इस काव्य का खलनायक रावण भी उदार, वीर, साहसी, असमान पराक्रमी, राजनीतिकुशल, स्वाभिमानी एवं शिवजी का अनन्य भक्त भी था। किन्तु, उसके दोष भी उसके गुणोंसे कम नहीं थे। वह कामुक, अभिमानी तथा उद्धत था। इसलिए, इस रामायण के कवि ने रावण के चरित्र का चित्रण करने में अपनी अद्वितीय प्रतिभा एवं सहृदयता का परिचय दिया है। उन्होंने एक कलाकार तथा इतिहास-लेखक—इन दोनों के उत्तरदायित्व को सफलतापूर्वक निभाया है। जहाँ उन्होंने रावण के कृष्ण पक्ष की निंदा की है वहाँ उसके उज्ज्वल पक्ष को प्रकट करने की उदारता भी दिखाई है। उनकी दृष्टि में रावण एक विलक्षण वीर था, जिसमें जड़-चेतन तथा गुण-दोषों का अद्भुत सम्मिश्रण था। उसका पतन इसलिए हुआ था कि जड़ ने चैतन्य पर पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया था। कदाचित् यह रामायण के प्रति द्राविड़ दृष्टि का प्रमाण भी हो। द्राविड़ लोग रावण को उसी दृष्टि से नहीं देखते, जिस दृष्टि से आर्यों ने उसे देखा और राक्षस, निशाचर आदि नामों से संबोधित किया। द्रविड़ दृष्टि में रावण भी एक वीर, विद्वान्, पराक्रमी मनुष्य ही था, किन्तु उसके गुणों पर दुर्गुणों ने विजय प्राप्त कर ली थी और यही उसके सर्वनाश का कारण हुआ। इसके अतिरिक्त, कला की दृष्टि से देखा जाय, तो हमें यह मानना पड़ेगा कि रामचन्द्रजी का प्रतिद्वन्द्वी केवल एक लंपट तथा नीच व्यक्ति नहीं हो सकता था। रावण को अपने बल-पौरुष का जहाँ अभिमान है, वहाँ उसके हृदय में अपने शत्रु के गुणों के प्रति आदर भी है। वह राम के बल-विक्रम पर आश्चर्य ही प्रकट नहीं करता, बल्कि उनकी प्रशंसा भी करने लगता है। श्रीराम की धनुर्विद्या की निपुणता देखकर रावण कहता है—

> नल्लवो रघुराम नयनाभिराम, विल्लविद्या गुरुव, वीरावतार।
> ब.पुरे, राम भूपाल, लोकमुल नीपाटि विलुकाडु नेर्चुने कलुग ?

(हे नीलमेघश्याम, नयनाभिराम, धनुर्विद्या-निपुण, वीरावतार, रघुराम,
हे राजा राम, इस संसार में तुम्हारे समान धनुर्धर और कोई हो सकता है?)

रावण की इस प्रशंसापूर्ण शब्दों को सुनकर रावण के मंत्री रावण से कहते हैं कि आपका इस प्रकार शत्रु की प्रशंसा करना आपको शोभा नहीं देता। तब रावण कहता है—

> विल्लुविद्या पेंपुनु, विक्रम क्रममु, गलितनवुनु, बाहुगर्व राजसमु,
> लादियौ गुणमुल नधिकुडैनहि, कोदंडदीक्षा गुरुनितो राज
> वरुनितो, रामभूवरुनितो नोरुलु पंकिंचि चूड नेंपद्दुन नैन,
> साटिये इम्मूडु जगमुलयंदु? मेटि शूरुल पेंपु पेच्चग वलदे?

(धनुर्विद्या-नैपुण्य, पराक्रम, शौर्य, बाहुबल आदि गुणों में श्रेष्ठ राजा राम की समता करनेवाला तीनों लोकों में कौन है? क्या महान् पराक्रमी व्यक्तियों की महानता की प्रशंसा नहीं करनी चाहिए?

रावण के इन शब्दों से कवि दो उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहते हैं। रावण के ये वचन जहां एक ओर उसकी उदारता प्रकट करते हैं वहां वे शत्रु के द्वारा भी प्रशंसा प्राप्त करनेवाले श्रीराम के असाधारण एवं अलौकिक व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डालते हैं।

यही नहीं, रावण अच्छी तरह जानता था कि श्रीराम विष्णु के अवतार हैं और उनके हाथों मरने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए, वह सोचता है कि युद्ध के लिए ललकारनेवाले शत्रु के सामने घुटने टेककर मैं अपनी दीनता क्यों प्रकट करूँ और अपनी वीरता को क्यों कलंकित करूँ। जब मंदोदरी राम की महिमा का वर्णन करके रावण को युद्ध करने से रोकने का प्रयत्न करती है, तो रावण कहता है—

> ये नेल्लभंगुल निक राघवुल चोनीक चंपुदु; भूमिज नीय
> वारुठ वलुडनं, यटु गाक येनु श्रीरामु शरमुलचे जत्तुनेनि
> नाकवासुलु मेच्च ना कोरचुन्न वैकुठ मेदुरागवच्चु निच्चटिकि
> ललन नीवेटिकि? लंक येमिटिकि? दलकोन्न मुक्ति सत्पथमु गैकोदु।

(अब मैं किसी भी प्रकार राघवों का वध करूँगा ही; मैं सीता को नहीं दूंगा। यदि इसके विपरीत मैं श्रीराम के शरों से ही मारा जाऊँगा, तो मेरा चिर अभिलषित स्वर्ग मेरे पास स्वयं आ जायगा और स्वर्ग के निवासी मेरी प्रशंसा करेंगे। जब मैं मुक्तिपथ को प्राप्त करने जा रहा हूँ, तब हे सुन्दरी! मुझे न तुम्हारी आवश्यकता है न लंका की।)

वाल्मीकिरामायण में सुलोचना का वृत्तांत नहीं मिलता है। तुलसी-रामायण की कुछ प्रतियों में इस कथा का बड़ा सरस वर्णन मिलता है। किन्तु पंडितों का विचार है कि तुलसी-रामायण का यह अंश प्रक्षिप्त है। रंगनाथ रामायण में इस महान् साध्वी के चरित्र का अत्युत्तम चित्रण मिलता है। बँगला-कवि माइकेल मधुसूदन ने अपनी रचना 'मेघनाद-वध' में सुलोचना के चरित्र को विशेष प्रधानता दी है और उस वीर एवं सती-साध्वी स्त्री का एक भव्य चरित्र उपस्थित किया है। इन्द्रजीत की मृत्यु के उपरांत उसकी वीर पत्नी सुलोचना अपने पति के मृत शरीर के साथ सती होना चाहती है। अतः, वह अपने ससुर रावण से इन्द्रजीत के मृत शरीर को मँगा देने की प्रार्थना करती है। किन्तु, रावण अपनी असमर्थता प्रकट करता है; क्योंकि इन्द्रजीत का शव शत्रुओं के अधीन में था। तब सुलोचना अपने पति का मृत शरीर प्राप्त करने के हेतु स्वयं साहस के साथ शत्रु-शिविर में चली जाती है। वहाँ पहुँचकर वह पहले रामचन्द्रजी से पति-भिक्षा देने की प्रार्थना करती है। उसके साहस पति-भक्ति एवं निर्मल चरित्र से प्रभावित होकर रामचन्द्र उसकी प्रार्थना स्वीकार करने को प्रस्तुत-से होते दीखते हैं। तब हनुमान् उन्हें,

समझाते हैं कि ब्रह्मा का लेख झूठा नहीं होने देना चाहिए। इस पर रामचन्द्र सुलोचना को आश्वासन देते हैं कि अगले जन्म में तुम अपने पति के साथ चिरकाल तक सुखमय जीवन व्यतीत करने के उपरात वैकुंठ-धाम प्राप्त करोगी। इसके पश्चात् सुलोचना राम से अपने पति का शरीर मांगती हैं। तब सुग्रीव उसे ताना देते हुए कहता है—'यदि तुम पतिव्रता हो, तो अपने मृत पति से वार्त्तालाप करो।' सुलोचना इस चुनौती को स्वीकार करती हैं और युद्ध-भूमि में पड़े हुए अपने पति के शव के पास जाकर बड़े ओजपूर्ण शब्दो में कहती हैं—'यदि मैं मन, वचन, कर्म से अपने पति की सच्ची भक्ति करती हूँ, तो मेरे पति सजीव होकर मुझसे वार्त्तालाप करें।' तब मेघनाद का शव आँखें खोलकर कहता है—'हे प्रिये! मेरे पिता ने ही मुझे मारा है। नहीं तो और किसको ऐसी शक्ति थी कि मुझे मार सके, काल की गति प्रबल है। इसलिए चिन्ता मत करो।' इतना कहकर इन्द्रजीत की आँखें सदा के लिए बंद हो जाती हैं। इसके पश्चात् सती सुलोचना अपने पति के शव को साथ लेकर जाती है और उसके साथ सती होकर देवलोक में पहुँच जाती हैं।

कला-पक्ष—कला की दृष्टि से भी रगनाथ रामायण उच्च कोटि का महाकाव्य है। कला के उत्कृष्ट चमत्कार इसके प्रत्येक पृष्ठ में दृष्टिगोचर होते हैं। कवि संस्कृत के काव्य-शास्त्र के निष्णात विद्वान् होने के कारण उक्ति-वैचित्र्य एव अर्थगौरव, इन दोनो का उचित अनुपात बनाये रखने में सर्वथा सफल हुए हैं। उनकी कला-साधना में पग-पग पर उनका हाथ बँटानेवाले अनुप्रास एव यमक अलकारो की छटा कवि के अगाध पांडित्य एवं भाषा पर उनके विलक्षण अधिकार का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। भावो की मार्मिक अभिव्यंजना के लिए प्रयुक्त अर्थालंकार इतने स्वाभाविक हैं कि हम कवि की औचित्य-प्रियता पर मुग्ध हो जाते हैं। रगनाथ रामायण की भाषा विलक्षण माधुर्य एव गंभीरता से परिपूर्ण है। तेलुगु की साहित्यिक भाषा के जिन दो रूपो की चर्चा पहले की गई है, उन दोनो रूपो का सुन्दर सम्मेलन इस काव्य में हो गया हैं। कवि का तेलुगु एवं संस्कृत दोनो भाषाओ पर पूरा-पूरा अधिकार था और दोनो भाषाओ के शब्द-भांडार उनके आदेश का पालन के लिए सर्वथा प्रस्तुत रहते दिखाई देते हैं। कवि ने तेलुगु की सजीव एवं मधुर मुहावरेदार भाषा के साथ संस्कृत-शब्दो का ऐसा सुन्दर मेल कराया है कि भाषा में मणि-कांचन-योग की-सी शोभा आ गई हैं। इसकी भाषा का एक नमूना नीचे दिया जाता है—

राज-तिलक चेतोविनिर्मलशिष्टु विशिष्ठु, गौतम जाबालि कश्यप कण्व वामदेवादुलौ वरमुनीश्वरुल सामादि बहुवेद चतुर बोधकुल भरतुडु रप्पिचि भय भुवतु लोप्प, परम सम्मद घचोभंगुलु, मेरय 'श्री रामुनकु पट्टाभिषेकवु सेयुडारुढ नियतितो' ननि पलुक वारु पुनि मंगल तूर्यमुलु मोयुचुंड, जानकी रामुल चदुरोप्प तेच्चि रमणीयतरमैन रत्नपीठमुन, कोमरोप्प निरवुर कूर्चुंड बनि चि मानित वेदोक्त मंत्र पूर्वक्मुग अभिषेकंबु कर मर्थिचेय ना रामुनौदल ना पूर्णवारि धार डगरुनप्पुडु तग चूडनोप्पे गीर्वाणि मुख्युलु कीर्तनल सेय पार्वती सहितुडै प्रणुतिपनोप्पु अंगजहरु मौलि नमल मैं तोरगु गगा नदियु बोले कमनीय मगुचु ना तीर्थधारलु

अंघ्रुल कोलिकि भूतलंबुन निडि पोलुपारे जूट हरिपाद मुन चुट्टि अय्यादि गंग धरणि पै वरगुविधवच्चु पटग वरिकिप राम भूपालकुंडपुडु हरुडुविष्णुयु, दानयनु माड्किनुडे ।

(भरत ने निर्मलचेता एवं सदाचार-संपन्न वसिष्ठ, गौतम, जाबालि, कश्यप, कण्व, वामदेव आदि मुनीश्वरों को तथा चतुर्वेद-पारंगत विबुधो को बुलाकर विनय एवं भक्ति के साथ उनसे कहा—'आप कृपया विधिवत् श्रीराम का राजतिलक कीजिए।' तब मंगल-वाद्यो की ध्वनि के साथ वे जानकी तथा राम को बुला लाये और रमणीय रत्नपीठ पर उन दोनो को आसीन कराया और वेदमंत्र-पूर्वक पुण्य सलिल से उनका अभिषेक किया। राम के मस्तक पर से गिरनेवाली वह पुण्य जलधारा देखने में बहुत ही रमणीय प्रतीत होती थी। देवताओ की स्तुतियो को प्राप्त करते हुए पार्वती के साथ विलसित होनेवाले परमशिव की जटा से झरनेवाली गंगा नदी की भांति वह जलधारा अत्यंत कमनीय दीख रही थी। वह (जलधारा) क्रमशः उनके चरणो से होकर पृथ्वी पर ऐसे गिरने लगी, मानो विष्णु के चरणो में जन्म लेकर पवित्र गंगा पृथ्वी पर उतर रही हो। इस प्रकार, उस समय रामचन्द्र स्वयं विष्णु तथा शिव की भांति शोभायमान हुए।)

मुहावरो का सम्यक् प्रयोग, भावो के अनुकूल भाषा, स्वाभाविक अनुप्रासो की छटा, उक्ति-सौंदर्य तथा ओज, प्रसाद एवं माधुर्य गुणो से युक्त शैली, ये सभी कवि के विलक्षण पांडित्य तथा कवित्व-शक्ति का परिचय देते हैं।

वैसे तो अनुवाद का कार्य ही कुछ कठिन है; क्योंकि कितना भी प्रयत्न किया जाय, मूल की सुन्दरता अनुवाद में नहीं आ सकती। एक भाषा की श्रेष्ठ कलाकृति का दूसरी भाषा के गद्य में सरस अनुवाद प्रस्तुत करना स्वभावतः कठिन कार्य है। तेलुगु और हिन्दी दो भिन्न भाषा-परिवार की भाषाएं हैं और उनके अपने-अपने मुहावरे हैं। मुहावरो का अनुवाद तो हो नहीं सकता। हां, यह प्रयत्न अवश्य हो सकता है कि तेलुगु मुहावरे का मिलता-जुलता हिन्दी-मुहावरा का उपयोग किया जाय। फिर भी, अनुवाद अनुवाद ही है। अनुप्रास, यमक आदि अलंकारो का सौंदर्य एवं उक्ति-वैचित्र्य आदि अनुवाद में लाना कठिन है। उदाहरण के लिए—

> तोगलु वेट्टितुमु दुष्टारि सतुल, तोगलु जानकि इंक तोल गंग
> तोगलार! इकभीव तोग येट्टि दनुचु, तोगतेल्ल चिदिभि वैतु र पेच्चु पेरिगि।

'तोग' के कई अर्थ हैं—दुःख, कष्ट, कमल। यहां कवि ने यमक अलंकार के द्वारा 'तोग' शब्द के प्रयोग से भिन्न-भिन्न अर्थों की अभिव्यंजना की है; किन्तु यह सुन्दरता अनुवाद में लाना असंभव है।

फिर भी, अनुवादक ने मूल के प्रति निष्ठा बरतते हुए यथासंभव मूल रचना की सुंदरता को अनुवाद में लाने की भरपूर चेष्टा की है। उसे कहांतक सफलता मिली है, इसका मूल्यांकन करना सहृदय पाठको का काम है।

मैं अंत में दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा के भूतपूर्व संयुक्त मंत्री परम आदरणीय पंडित अवधनन्दनजी के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जो इस ग्रन्थ के संपादन का कार्य बड़ी दक्षता के साथ संपन्न करते हुए लगातार मेरी सहायता करते रहे। मैं बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् का भी आभार मानता हूँ, जिसने मुझे इस कार्य के लिए योग्य समझकर मेरे द्वारा यह अनुवाद कराया। यदि यह ग्रन्थ हिन्दी-भाषा-भाषियों को तेलुगु की विपुल साहित्य-संपत्ति का किंचित् भी आभास करा सकेगा, तो मैं अपने परिश्रम को सफल मानूँगा।

श्रीरामनवमी
ता० १६, शके १८८२
५-४-१९६० ई०

ए० सी० कामाक्षि राव

विषयानुक्रमणी

अरण्यकांड

किष्किन्धाकांड

सुन्दरकांड

युद्धकांड

रंगनाथ रामायण

श्रीरंगनाथ रामायण

(बालकांड)

१. देव-स्तुति

चरित रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तर ।
एकैकमक्षर प्रोक्त महापातकनाशनम् ॥
रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे,
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नम. ॥

श्रीलक्ष्मीनाथ, दैत्य-विजयी, लोक-रक्षक, नित्य, सदानद, मोक्षदायक, कर्म-रहित, सृष्टि के स्वयभूत आधार, हृदय-कमल में स्थित भक्ति-रूपी आनन्द को व्यक्त करने के साधन-क्रम में तत्पर भ्रमर-रूपी भगवान्, गजराज को मोक्ष प्रदान करनेवाले, अपने आश्रित-लोक के बधु, ससार के बधनो से मुक्ति देनेवाले, बलि को बाँधने का दृढ सकल्प करनेवाले, प्रणव-रूप, गोपिकाओ के हृदय में विहार करनेवाले, अबोध-गम्य आकारवाले, निराकार, योगियो के हृदय में ओंकार-रूप में वर्त्तमान, योगिसदर्शित, मोक्ष-प्रचारक, श्रुतियो के शिरोमणि, विशुद्ध-चैतन्य स्वरूप, अतिलोकवासी, समस्त लोको का आश्रय, ब्रह्माण्डरूपी मुक्ता का आयतन, नित्याधार, अखिल तत्त्वातीत, आदि-अत-रहित, पवित्रात्मा, अविनाशी, वेद-रूपी कमल के लिए सूर्य, अक्षीण कल्याणो का आधार, निश्शक मन से सद्भक्ति तथा सेवा करनेवाले भक्तो के लिए दया-सिधु, करुणा-सिधु, बोधक, बोध्य तथा बोध—इन तीनो में व्यक्त होनेवाले पूर्ण-रूप,

आदितत्त्व, 'तत्त्वमसि' आदि कथनानुसार भेदातीत, अभेद, प्रतापी परमेश्वर का (भक्ति-युक्त ध्यान करने के निमित्त) मैंने अत्यत धैर्य के साथ नियमो का पालन किया, कर्म के बधनो को ठुकराया, एकात में रहते हुए इन्द्रिय-व्यापारो को भुला दिया, सुस्थिर होकर सुलभ-साध्य तथा परिचित आसन (सुखासन) पर उपविष्ट हुआ, मन को भक्ति-रस-परिपूर्ण बनाया, (शरीर के भीतर रहनेवाली) बहत्तर नाडियो का विचार करके उनका परिमार्जन किया, एकचित्त तथा निर्मल मन से नाडियो में अत्यत सूक्ष्म रूप से व्याप्त पवन को रोका, मन को निश्चल बनाकर निरुद्ध प्राण-वायु को मूलाधार-चक्र में प्रविष्ट कराया और उसे क्रमश छह कमलो को पार कराते हुए चदमडल में पहुँचाया । वहाँ योगीन्द्रो के हृदय का भेद परखने के लिए परम-व्योम के रूप में स्थित अनादि ब्रह्म-स्वरूपा, अत्यत सूक्ष्म तथा निर्मल नाडी को यूप, अविचल मन को यज्ञ-पशु, निष्ठानुरक्ति को वेदी, समस्त इन्द्रियो को काष्ठ, ज्ञान को अखड अग्नि तथा आनद-योग को यज्ञ-फल के रूप में मानते हुए इच्छित-आनद-प्राप्ति के हेतु, कर्म के द्वारा प्राप्त होनेवाले मोक्ष रूपी परमेश्वर, अगोचर, कर्म-रहित, हमारे देव, कमलनेत्रवाले, हमारे पालनहार, आदि नारायण तथा अखिल लोकाधीश की भक्ति, स्तुति, प्रार्थना एव वदना की । अपने मन की इच्छा पूर्ण करने के निमित्त हार, कर्पूर, नीहार, गोक्षीर तथा तारको के सदृश उज्ज्वल शारदा देवी की उपासना की, चारु रामायण-रूपी चद्र के जन्म-स्थान के रूप में विलसित होनेवाले वाल्मीकि का स्मरण किया, भारत-रूपी मजरी के पारिजात, तत्त्ववेत्ता पराशर-पुत्र का स्मरण किया और उनके पुत्र शुकदेव की बडी भक्ति से स्तुति करने के पश्चात् मैं अपने मन में एक ऐसे ग्रन्थ की रचना करने का विचार करने लगा, जिसकी कथा के कथन से सभी सज्जन मेरा कीर्त्ति-गान करेंगे, जिसकी कथा का वर्णन करने से मेरे इह-लोक और पर-लोक दोनो सफल होंगे और जिस कथा के कथन से ईप्सितार्थ सिद्ध होंगे और साथ-ही-साथ पुण्य की प्राप्ति होगी ।

२. ग्रन्थ-रचना का कारण

सृष्टि के समस्त प्राणी, जिस पुण्यात्मा की प्रशसा बडे आदर से करते है, जो सदाचार के पुण्य-फलस्वरूप सूर्य के समान उदित होकर कलिकाल का अधकार दूर करते थे, जो श्रेष्ठ धर्म-पथ का महत्त्व जानते थे, जिनके पवित्र तेज के समान शत्रु-रूपी नक्षत्रो के प्रकाश मद पड जाते थे, जिन्होने अपने खड्ग की दीप्ति-रूपी गगा-प्रवाह में अन्य राजाओ के ललाट में लगे गर्व-पक को धो दिया था, *असमान बलशाली*, *सत्यनिष्ठ*, *शरणार्थी* राजा-रूपी भ्रमरो के लिए (जिनका कर-कमल) आधार था, ऐसे कोनकाट भूपति के वश की कीर्त्ति बढाते हुए नय, विनय, दया के आगार महाराजा के पुत्र गोनरुद्र नरेन्द्र महान प्रतापी तथा पवित्रात्मा थे । उनके पौत्र बुद्ध भूपाल अभग, अप्रतिम विक्रमी, कुल-गोत्र के सवर्द्धक, देवेन्द्र के समान वैभवशाली, धीर और विख्यात थे । उनके पुत्र अक्षीण दाक्षिण्य-धनी (अर्थात् अक्षीण कृपावाले), धन-धान्य में कुबेर, मर्म में धर्मराज (युधिष्ठिर) के समान कीर्ति-पुण्य सौजन्य-शील, शत्रुओ के लिए अति शौर्यवान् वामदेव कार्त्तिकेय, शुभजन्मा, कामिनियो के लिए कामदेव, अखड विक्रमी और रण-विशारद थे । वे चदन, मदार-चद्रिका-हार, कदली, कुद, इदु सम उज्ज्वल कीर्तिमान्, गोनवश-रूपी पारिजात के फल-स्वरूप

दीखनेवाले, गोतवंश-रूपी उदयाद्रि पर भानु-सम दीप्त होनेवाले, गोतवंश-रूपी क्षीरसागर के (उत्पन्न) चंद्र सम सुशोभित, अपनी कीर्त्ति को दिग्-दिगंतों में व्याप्त करनेवाले, अपने दान-धर्म के द्वारा सबकी प्रशंसा प्राप्त करनेवाले, अपने असमान पौरुष से बड़ी आसानी से शत्रुओं का नाश करनेवाले, महा बलशाली एवं प्रतापी राजाओं के लिए वज्रपाणि सम दीखनेवाले, (शत्रु) नृप-वन के लिए साक्षात् अग्निदेव, सत्यनिष्ठ, महाबलशाली शत्रु-सेनाओं को मथने में मंथर पर्वत की भाँति प्रचंड रूप धारण करनेवाले, अपने खड्ग-रूपी सूर्य-बिम्ब की प्रभा से प्रतापी राजा-रूपी अंधकार का नाश करके अमर-वधुओं के मुख-कमलों को वीर-भ्रमरों से अलंकृत करनेवाले, शत्रुओं के प्राण-रूपी अनिल का सेवन करनेवाले श्रेष्ठ भुज-भुजगों (सर्प-रूपी भुजाओं) पर राज्य-भार वहन करनेवाले थे, वे कुरु, केरल, अवनी, कुंतल, द्रविड, मरु, मत्स्य, करूष, मगध, पुलिंद, मरुन, पाण्ड्य, कोसल और बर्बर की राज-सभाओं में प्रशंसा प्राप्त करनेवाले, साम-दाम-भेद आदि नीतियों में निपुण, प्राचीन राजाओं के समान समस्त वैभवों से युक्त तथा नय, विनय आदि उपायों से सुस्थिर विजय प्राप्त किये हुए, यशस्वी विट्ठलनरेश, राजाओं में सर्वज्ञ, नरेशों से पूजित, सकल जगद्धित-चातुर्य-धुरी, एक दिन अपनी राज-सभा में बैठे हुए थे। उस समय पुराणवेत्ता, शास्त्रज्ञ, काव्य-नाटक-शिरोमणि, मित्र, मंत्री, पुरोहित, आश्रित, पुत्र सामंत राजा और बहुश्रुत उनकी सेवा में उपस्थित थे। राजा भूलोक के देवेन्द्र के समान बड़े उत्साह से रसिकजनों द्वारा भारत, रामायण आदि का पाठ सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।

तत्पश्चात् वे रसिक-शेखर (राजा) राम-कथा-सुधा में अनुरक्त हो, सभा में यों बोले—'तेलुगु में रामायण को सुंदर ढंग से कहने की कविता-शक्ति रखनेवाले कवि इस संसार में कौन है?' तब पंडितों ने उस उदात्त, यशस्वी विट्ठलनरेश से कहा—

(महाराज) आपके सुपुत्र, निपुण, पापरहित, नीति-निष्ठ, सर्वज्ञ, अनघ, शिष्ट-संपन्न, सर्वपुराणवेत्ता, सुंदर कलाओं के मर्मज्ञ, सज्जनों को आश्रय देने में ही सुख का अनुभव करनेवाले, कविसार्वभौम, कवि-कल्पतरु, कवि-कुल-भोज, कवीन्द्र, शत्रु-राजाओं के लिए वज्र-पाणि, शत्रु राजा-रूपी वन के लिए प्रचण्ड पावक के समान दीखनेवाले, जिनके भयंकर खड्ग में स्वर्गलोक तक प्रतिबिंबित है, त्रिलोक-दुर्दम, श्रेष्ठ-साधु-जन-रूपी कमलों के लिए सूर्य, पुरुषश्रेष्ठ, आपके परम भक्त, निखिल शब्द, अर्थ, गुण आदि के ज्ञाता, महापंडित, रामायण के मर्मज्ञ बुद्ध-नरेश (रामायण की कथा तेलुगु में कहने की) कविता-शक्ति रखते हैं। (काव्य रचने के लिए) आप उन्हें आदेश दें।"

यह सुनकर उदात्त चरित्रवाले मेरे जनक ने मुझे बड़े स्नेह से बुलाकर यह आदेश दिया—'रामायण की कथा पुराणों के ढंग पर तेलुगु भाषा में मेरे नाम पर लिखो कि संसार के कवि और पंडित उसकी प्रशंसा करें।' उनके मृदु वचनों से अत्यंत हर्षित होकर उनकी आज्ञा का पालन करने के हेतु शत्रुओं के लिए भयंकर मूर्त्ति, महान्, ललितसद्गुणा-लंकारवाले, निश्चल दयालु, धन्यात्मा तथा पुण्यात्मा मेरे पिता विट्ठलनरेश के नाम पर श्रीरामचन्द्र का चरित्र, इस ढंग से लिखूँगा कि राजा, पंडित, रसिक, सुकवि श्रेष्ठ, गोष्ठियों में (उसे सुनकर) हर्षित होकर उसकी प्रशंसा करेंगे और जिसमें, शब्द, अर्थ, भाव,

गति, पद, शय्या, अर्थ-गौरव, यति, रस, कल्पना, प्रास, असमान रीतियाँ आदि होंगे और आदि कवि वाल्मीकि की कृपा से सभी सज्जन मेरी प्रशसा करेंगे । कथा का प्रारभ यो है—

३. कथा का प्रारंभ

एक दिन श्रेष्ठ तपस्स्वाध्याय-निरत, महान् शीलवान् मुनिश्रेष्ठ नारद से अनघ, तपोनिधि वाल्मीकि ने हाथ जोडकर प्रश्न किया—"हे मुने, आप कृपया बतलाइए कि इस ससार में, श्रीमान्, क्षमाशील, पुण्यात्मा, उन्नत, नीतिज्ञ, प्राज्ञ, दुर्दम, उत्तम, जितकाय, अजेय, ईर्ष्याहीन, सपन्न, सुव्रती, उदार और चरित्रवान् कौन है ? किसके क्रोध से इद्रादि देवता डरते रहते है ? ऐसा व्यक्ति क्या, कभी हुआ है या आगे चलकर इस पृथ्वी पर जन्म लेनेवाला है ?"

यह सुनकर लोकज्ञाता नारद मुनि ने अपने मन में बहुत देर तक सोच-विचार कर कहा—"इस पृथ्वी पर श्रीविष्णु, महाराज दशरथ के यहाँ जन्मे है । वे नियतात्मा, अति-शौर्यनिधि, कृपानिधि, जयी और स्वजनो की रक्षा में विचक्षण है। वे कबु-कधर, सुदराकार, बिंवारुण ओष्ठ, पीन वक्ष, विशाल-नेत्र, विशाल अवनस और आजानुबाहु है । वे नियतात्मा, वेदवेदाग-कोविद, वेदविद्, विवेकभूषण, सूर्य के समान तेजस्वी, समुद्र के समान गभीर, अमराद्रि के समान धीर और पृथ्वी के समान क्षमाशील है । उनकी मूर्त्ति (लोगो को) अपनी ओर आकृष्ट करती है । वे कौसल्या के आनद-दाता, श्रीकर, दीप्तिमान्, त्रिलोक-पावन मूर्त्ति, राम के नाम से अवतरित हुए है ।

राजर्षि (विश्वामित्र) के (रामचन्द्र को) माँगने तथा राजा के भेजने पर वे मुनि के साथ गये । (उन्होंने) यज्ञ की रक्षा की, दानवी का नाश किया, राक्षसो का सहार किया, शिला को स्त्री बनाया, शिव-धनुष को तोडा और सीताजी से विवाह करके बडी ख्याति पाई । सीताजी के साथ अयोध्या जाते समय बडे क्रोध से विप्र (परशुराम) ने आकर उन्हें रोका, तो वे उनसे जूझ पडे और उनका धनुष छीनकर उसे तोड डाला । उसके बाद सब लोगो के हृदयो को आनद से भरते हुए वे अयोध्या पहुँचे ।

जब पिता '(राम को) युवराज बनाऊँगा'—ऐसा कहकर अयोध्या का राज देने को उद्यत हुए, तब ढीठ मथरा ने कैकेयी के कान भरे । कैकेयी पहले ही युद्ध में दो वर प्राप्त कर चुकी थी । (राजा ने) राघव को कानन में भेज दिया । पिता के वचन से बँधकर, वे सीता और लक्ष्मण के साथ वन में गये, जहाँ उन्होने बडे उत्साह से वनो में तपस्या करनेवाले सयमी मुनियो की रक्षा की, खर-दूषणादि राक्षसो के सर शरो से काट डाले, ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव से मित्रता की, एक ही बाण से वालि का सहार किया, (सीता को पुन प्राप्त करने का) दृढ निश्चय करके सेतु को बाँधा तथा पापी दशकठ के दसो सिर काट डाले ।

उसके पश्चात् आश्रितो के कल्पवृक्ष रामचद्र, सीता के साथ, वनचर-समूह तथा इन्द्रादि देवताओ द्वारा स्तुति किये जाते हुए और सेवा प्राप्त करते हुए, (अयोध्या) आये और अपनी पूज्य साम्राज्य-लक्ष्मी का पालन करते हुए तथा प्रजा को सुख पहुँचाते हुए कृत-कृत्य हुए है ।"

इस प्रकार श्रीराम का चरित्र अथ से इति तक कहकर नारद मुनि ब्रह्मलोक को चले गये । मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि अत्यन्त हर्ष से अपने शिष्य भरद्वाज के साथ सज्जनता की मूर्त्ति, अकलुष जीवन-मुक्त, तमसा नदी के तट पर गये और उस नदी के जल में अपने अनुष्ठान का पालन करते रहे । उस नदी के किनारे (पेड़ पर) क्रौंच पक्षियों का एक जोडा बडे प्रेम से मिलकर बैठा था । एक व्याध ने जब उनमें से एक को मार गिराया, तब क्रौंची शोक से विलाप करने लगी । यह देखकर न्याय और धर्म का विचार करके मुनि उस व्याध पर क्रोध करते हुए बोले—"हे निषाद, हे पापी, इन्होंने तुम्हारा क्या बिगाडा था ? जब ये क्रौंच बडे प्रेम से मिले, तब तुमने इस प्रकार एक को क्यों मार गिराया ? इस पाप के कारण तुम बहुत दुःख प्राप्त करते हुए अनेक वर्षों तक भटकते रहोगे ।"

इस प्रकार व्याध को शाप देकर वाल्मीकि ने अपने शिष्य भरद्वाज से छन्दोबद्ध शब्दों में कहा—"मेरे द्वारा कहे हुए वचनों पर बार-बार विचार करने पर मालूम होता है कि इन चार समवर्ण पंक्तियों में छन्दोबद्धता है । यह बडे आश्चर्य की बात है कि ये शाप के वाक्य अपने आप एक पद्य के रूप में प्रकट हुए हैं ।' तब भरद्वाज आदि शिष्य बडी भक्ति से उस पद्य को (दुहराते) पढने लगे । अनघ वाल्मीकि अपने आश्रम को लौट आये ।

एक दिन ब्रह्मा उनके आश्रम में आये । वाल्मीकि ने उनकी अगवानी की, चरणों पर झुककर नमस्कार किया, कुशासन पर बिठाकर उनकी पूजा की और हाथ जोडकर अपने मुँह से निकले छन्दोबद्ध शाप-वचन उन्हें सुनाया । तब ब्रह्मा ने मुस्कुराकर कहा—"हे अनघ, यह वाणी पद्य के रूप में आपके मुख से व्यक्त हुई है । नारद ने सारा राम-चरित मुझे सक्षेप में कह सुनाया है । आप उसको विस्तार के साथ सुनाइए । अपने आप वह चरित्र आपको सूझ जायेगा ।" यों कहकर ब्रह्मा चले गये ।

इस प्रकार बडी कृपापूर्वक कमलासन के वर देकर चले जाने के पश्चात् मुनि ने निर्मल मति से ध्यान लगाकर सोचा और रघुचरित, दशरथ की कथा, रघुराम का जन्म, राम का आचरण, ताडका-वध, उद्दण्ड राक्षसो का गर्व-भग, यज्ञ-रक्षा, गगा का महत्त्व, गौतम की स्त्री का शाप-मोचन, धनुर्भंग, सीता-विवाह, अयोध्या जाते समय परशुराम का क्रोध, राम के युवराज्याभिषेक की तैयारी, दुष्ट स्त्री कैकेयी के कटुवचन, अभिषेक में विघ्न, राम-वन-गमन, राजा का शोक, दशरथ की मृत्यु, दाशरथि से गुह की भेंट, गगा पार करना, तपोनिधि भरद्वाज से (राम की) भेंट, चित्रकूट पर्वत पर पहुँचना, भरत और राम की भेंट और उनका पादुका प्राप्त करके लौट जाना, दडकवन-गमन, प्रचड विराध का वध, पुण्यात्मा शरभग के दर्शन, मुनियो को वचन देना, अगस्त्याश्रम में पहुँचना दिव्य अस्त्रो की प्राप्ति, मुनि के आदेशानुसार पर्ण-कुटी बनाकर निवास करना, (राम पर) मुग्ध होकर राक्षसी (शूर्पणखा) का आना, उसके साथ वार्त्तालाप, रामानुज के द्वारा उसका नाश, उधर रावण का बुद्धि-भ्रष्ट होना, कुटिल मारीच की मृत्यु, राक्षसराज (रावण) के द्वारा सीता-पहरण, राम का विलाप, जटायु की मृत्यु, कबध से भेंट, पपासरोवर को गमन, ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव से भेंट, उससे मित्रता, वालि-सुग्रीव के वैर का कारण जानना, श्रीराम का एक साथ

सातो ताड़ के पेडों को काट देना, वालि का वध, तारा का विलाप, रविपुत्र (अंगद) का राज्याभिषेक, माल्यवत में उस पुरुषोत्तम का वर्षा-काल बिताना, काकुत्स्थ (राम) का कोप, कपियो का आना, अगूठी देकर (उन्हें) भेजना, वानरो के द्वारा सीता का अथक अन्वेषण, बिल का दर्शन, महेन्द्रगिरि का आरोहण, सपाती से भेंट, समुद्र को लाँघते समय बीच में मैनाक के दर्शन, सिंहिका की वायुपुत्र से मुठभेड और उसकी मृत्यु, लका राक्षसी को तग करना, उस स्त्री से लका का मार्ग जानकर लका में प्रवेश करना, अत पुर में सीता की खोज, अशोकवन का अवलोकन, वहाँ सीताजी का सदर्शन, विश्वास दिलाने के लिए अगूठी देकर उन्हें सान्त्वना देना, अशोकवन को उजाडना, उस समय हनुमान् का अक्षयकुमार को मार डालना, पवनसुत का बधन में पडना, लका नगर को जलाना, मानिनी सीता का चूडा-मणि देकर श्रीराम तथा हनुमान को उत्साहित करना, सूर्यकुलाधिप (श्रीराम) का लका पर आक्रमण करना, समुद्र-तट पर पहुँचना, समुद्र का मार्ग देने से इनकार करना, श्रीराम का क्रोध, विभीषण का आगमन, विभीषण के दुख से राम का दुःखी होना, सेतु-बधन, जलधि को पार करना, सेना को (उचित स्थानो पर) नियुक्त करना, पराक्रम के साथ कुभकर्ण आदि उग्र वीरो को मार डालना, रावण का वध करना, दया से विभीषण को लकाधिपति बनाना, अनुपम शुद्धि (सीता का अग्नि-प्रवेश), ब्रह्मादि देवताओ द्वारा प्रशसित होते समय सीताजी की रामचद्रजी से भेंट, पुष्पक विमान में बडे कुतूहल के साथ समुद्र पार करना, सेतु पर श्रीकठ को प्रतिष्ठित करना, अयोध्या को लौट आना, भरत-मिलन, अद्वितीय ढग से रघुराम का सिंहासनारूढ होना, कपि सेनापति, सुग्रीव, विभीषण आदि को विपुल सपत्ति देकर विदा करना, बडे प्रेम से सब प्रकार से प्रजा की रक्षा करते हुए उनका पालन करना, आदि सब बातें अच्छी तरह जानकर चौबीस हजार श्लोको और पाँच सौ सर्गों में तथा छह काडो में रामायण की रचना की ।

बाद की कथा उत्तर-काण्ड में लिखकर वाल्मीकि मुनि सोचने लगे कि कौन इस कथा का पाठ करने में समर्थ होगे और पृथ्वी में यह कथा कैसे फैलेगी ? उसी समय, शुद्धात्मा, मनसिजाकारवाले, मजुभाषी, सगीत-साहित्य-वेत्ता, मुनिवेषधारी कुश और लव उनके पास आये और हाथ जोडकर बोले—'हे अनघ, हम बड़े उत्साह से रामायण पढने आये है, हमें पढाइए ।' (यह सुनकर) हर्षित होकर मुनि ने सोचा, मेरा मनोरथ पूरा हो गया । उन्होने राम का चरित्र, जो गेय, पठनीय तथा पुण्यदायक है, तत्री-लयान्वित रीति से उन्हें पढाया । उन्होने भी शृगारादि रस, वृत्ति-भेद, सधि, समास, शब्द और अर्थ जानते हुए उसका अध्ययन किया और स्थान-स्थान में, मुनि-समाजो में उसका गान करते हुए उनकी प्रशसा पाते रहे । काकुत्स्थवल्लभ (राम) ने भी अपने भाइयो के साथ बडे कुतूहल से उन्हें सभा में बुला भेजा । उनके रूप, उनकी स्थिरता, उनकी वाणी आदि (श्रीराम को) बहुत प्रिय लगे । श्रीराम कथा सुनने लगे । वह कथा इस प्रकार है—

४. कुश-लव का रामायण-गान

कोसल-देश में सरयू नदी के किनारे, पृथ्वी के उरु-भाग के समान अयोध्या नगर सुशोभित था। वह बारह योजन लंबा, पाँच योजन चौड़ा था और शिल्प-निपुण मय द्वारा निर्मित था। वह शत्रु-राजाओं की आँखों में खटकनेवाला नगर सूर्यवंशी राजाओं की राजधानी था। वह रत्नमय गोपुर, मणिमय तोरण, मणिमय कुट्टिम (फर्श), गवाक्ष, क्रीडा-गृह, कनक शैल (बनावटी पर्वत), पटह-नाद (नगाड़े की आवाज), विशालकाय हाथी, उत्तम घोड़े, नाना प्रकार के रथ-समूह, सेना, स्वच्छ सौध, बाजार, कमनीय उपवन, सरोवर, तालाब, बावड़ी ऊख के खेत, धान के खेत, गहरी खाईं तथा महलों से सजा हुआ संसार-भर में विख्यात था। उस नगर में दशरथ नामक राजा राज्य करते थे, जो धनुर्विद्या में निपुण, साम, दाम, भेद आदि चार उपायों के ज्ञाता, (भगवान् के ऐश्वर्य आदि) षड्गुणों के आगार, (इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया) शक्तित्रय-सधानकर्त्ता, धर्मनिरत क्रतुध्वर (जिसने यज्ञ किया है), श्रीसपन्न, धर्मशास्त्र, पुराणादि के ज्ञाता, अजनंदन, बाल्यावस्था से नियमानुकूल प्रजा का पालन करते रहनेवाले परमपवित्र व्यक्ति, इन्द्र के निमित्त शंबरासुर का गर्व भंग कर इंद्र से मंदार-पुष्पों को प्राप्त करनेवाले, इन्दुमती के पुत्र और सूर्यवंश में श्रेष्ठ राजा थे।

वे तेज, कांति, त्याग, चातुर्य, उदारता, साहस, आदि सद्गुणों के आगार थे। वे उदित होते हुए सूर्य की भाँति अपने उग्र तेज से सप्त द्वीपों को दीप्त करते हुए शासन करते थे। उस नरनाथ के तीन सौ पचास रानियाँ थीं, जिनमें विशेष कर अचल शील-वाली कौसल्या, कुचकुंभ-निर्जित परिधानवाली कैकेयी, पुण्यशीला सुमित्रा त्रयी विद्याओं के समान थीं। इस पृथ्वी पर उनके हितैषी पुरोहित वसिष्ठ आदि पुण्य तपसी थे। पुण्यात्मा धृष्टि, विजय, सिद्धार्थ, अर्थसाधक, जयंत, नीतिवेत्ता अशोक, धीमान् मंत्री सुमंत्र आदि उनके आठ सचिव थे। सभी सचिव परस्पर मित्र और स्वामिकार्य में विचक्षण और चतुर थे। वे परम मर्मों के उद्घाटन में निपुण थे और विचार-पूर्वक प्रजा की रक्षा करते थे। समस्त कार्यों को सँभालनेवाले ऐसे आठ मंत्रियों से युक्त राजा दशरथ अष्टाक्षर और अष्ट-भुजाओं से समन्वित नारायण की तरह सुशोभित थे। उनके राज्य में निर्बल, चुगलखोर, रोगी, दरिद्र, व्यभिचारी, अनाचारी, पापी, क्रूर, नीच, जड़, मूर्ख, मद, एक भी व्यक्ति नहीं था। सारी प्रजा मणि-कुंडल आदि से अलंकृत, धर्मपरायण, कुलाचार-निरत, सकलशास्त्र-पारगत तथा विष्णु-भक्त थी। इस प्रकार बड़ी कुशलता से राज्य का पालन करते और राज्य-सुख भोगते हुए राजा दशरथ एक दिन अपने मन-ही-मन इस प्रकार सोचने लगे।

५. पुत्रकामेष्टि यज्ञ करने के लिए दशरथ का मंत्रियों से परामर्श

राजा दशरथ अपनी निस्संतान अवस्था का तथा अपनी ढलती आयु का विचार करते हुए बहुत दुखी हुए। उन्होंने अपने सभी श्रेष्ठ मंत्रियों को बुला भेजा और उन्हें उचित आसन पर बैठने का आदेश देकर स्वयं भी आसन पर बैठ गये। और, उनसे इस प्रकार कहने लगे—"मैंने बहुत दान दिये, अनेक धर्म-कार्य किये, कई यज्ञ किये और बहुत

सालो से जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। मैने बडी कीर्त्ति पाई है। तुम्हारे जैसे स्नेही मन्त्रियों के रहते हुए मुझे किसी बात का अभाव नही है। पुत्र-हीन होने का एकमात्र दुःख ही मुझे है। कुल का उद्धार करनेवाले पुत्रो के बिना कोई भी व्यक्ति पुण्य और स्वर्गलोक की प्राप्ति नही कर सकता। इसलिए मेरे भी पुत्र उत्पन्न होने चाहिए। समस्त ससार मेरी प्रशसा करे, एतदर्थ मै अश्वमेध यज्ञ करूँगा और उसके बाद पुत्र-कामेष्टि यज्ञ करूँगा। इन यज्ञो के कारण मेरा हित होगा और मै जरूर पुत्र प्राप्त करूँगा। राजा के यो कहने पर वे सब बडे सभ्रमचित्त होकर मन में हर्षित हुए। उन्हें प्रसन्न देखकर राजा मन में विचारकर बोले—

मै अनुपम रीति से, बडे विनय के साथ अश्वमेध यज्ञ करूँगा, जिसकी प्रशसा देवता भी करेंगे और पुत्रो के लिए पुत्रकामेष्टि-यज्ञ नेत्र-पर्व रीति (दर्शको की आँखो को तृप्ति देनेवाली रीति) से करूँगा। ऐसा कहकर उन्होने आवश्यक प्रबन्ध करने के लिए सब लोगो को भेजा। उसी समय अनघ वसिष्ठ आदि मुनि वहाँ आये। (राजा ने) दण्डवत की और बडी श्रद्धा से उन्हें लिवा लाये और उनसे बोले—हे महान् सयमी तथा पुण्यवान् वसिष्ठ! यथाशीघ्र आप मुझसे श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ करवाइए, जिससे मुझे एक पुत्र की प्राप्ति हो।' इस पर (मुनि बोले)—'तुम्हारे द्वारा सपन्न होनेवाले अश्वमेध यज्ञ का निर्वाह हम करेंगे। उस श्रेष्ठ यज्ञ की महिमा का वर्णन करना क्या सहज है? इसके अतिरिक्त पुत्र-कामेष्टि करने से तुम धन्यात्मा पुत्रो को प्राप्त करोगे।' यह सुनकर राजा को बडा हर्ष हुआ। उन्होने सबको विदा किया और रनवास में पहुँचकर सभी रानियो को यह शुभ सवाद सुनाया। तब से वे प्रसन्नचित्त रहने लगे। एक दिन अनघ सूत (सुमत्र) राजा के पास आकर एकान्त में यो कहने लगे—

६. ऋष्यशृंग का वृत्तांत

सुमत्र ने कहा—"हे महाराज, इसके पहले आपको सतान-प्राप्ति कैसे होगी, इस सम्बन्ध में मैंने एक कथा सुनी थी। आप उसे सुनें। अगराज के पुत्र गुणवान् रोमपाद के राज्य में न जाने उनके किस अपराध से वर्षा नही हुई। अपने राज्य में कही भी वर्षा न होते देख राजा बहुत दुखी हुए। उन्होने श्रेष्ठ मुनियो से वर्षा के निमित्त बहुत हवन करवाये, फिर भी वर्षा नही हुई। तब राजा को अत्यत दुख से पीडित देखकर मुनियो ने कहा—"हे महीपाल! हे राजचन्द्र! इस पृथ्वी पर वर्षा होने के लिए हम शुद्ध मन से आपको एक उपाय बतायेंगे। हे पर्वत के समान धीर! परहितनिरत विभाडक के पुत्र पुण्यनिधि ऋष्यशृग जन्म से नगर-ग्राम के सम्बन्ध में कोई ज्ञान न रखने के कारण स्त्रियो के नाम तक से अनभिज्ञ हैं। वे तपस्वी की वृत्ति में जगलो में रहते है। हे वसुधेश! उनके यहाँ आते ही अनावृष्टि-दोष तुरन्त दूर हो जायगा। इसपर राजा अपने मन में सोचने लगे कि उस मुनिश्रेष्ठ को नगर में कैसे ले आ सकूँगा। उन्होने बुद्धिमान् मत्रियो तथा मुनियो को बुलाकर बडे प्रसन्न चित्त से पूछा। मुनियो तथा मत्रियो ने भी बडी प्रसन्नता से उपाय बताये, तो राजा मन ही मन बहुत हर्षित हुए। मुनियो ने कहा—"महाराज, अभी आप कई (प्रकार के) मिष्टान्न तथा सुन्दर वस्तुएँ देकर वेश्याओ को वन में भेजिए।

वे प्रौढ कामिनियाँ सीधे वहाँ जाकर, अच्छी तरह उस मुनि के दर्शन करेंगी, उनकी महिमा देखेंगी, उन्हें मिष्टान्न देंगी और बडे प्रेम से उनके मन को विचलित करेंगी। वे कामिनियाँ अपनी विलास-चेष्टाओ से उनेके मन को रसार्द्र बना देंगी और अपने मोहक रूप की माया का प्रभाव डालकर यहाँ वापस आयेंगी। तब वे भी उनके पीछे-पीछे यहाँ आयेंगे।

यो कहकर सभी मुनि चले गये। उस दिन रात्रि को राजा बहुत प्रसन्नचित्त रहे। सवेरे उठते ही राजा ने मुनियो का स्मरण करते हुए बडी अनुरक्ति के साथ अनुपम यौवन-रूप-संपन्न, कामदेव के मोहन मंत्र के सदृश सुन्दर तथा चतुर वेश्याओ को वन में भेजा। वे युवतियाँ उस मुनि के वन में गई और उनके आश्रम के पास जा पहुँची। उन्होंने अपनी नाट्य-कला तथा संगीत-कला का परिचय मुनि को दिया। ये पुण्यनिधि यह न जान सके कि वे स्त्रियाँ है, और संगीत आदि का रसास्वादन न कर सकने के कारण सोचने लगे कि ये इस वन में रहनेवाली मदगामिनी कोई अनोखी मृगी है। एक दिन वे रमणियाँ उनके पास पहुँच गई। उन्होंने कामिनियो को अच्छी तरह देखा, उनके कुचो का नाम पूछा, कुचो पर डोलनेवाले हारो का उद्देश्य पूछा और कहने लगे—"मेरे सिर पर तो एक ही शृंग है, लेकिन आपके उर पर दो शृंग निकल आये है। आपके ये वल्कल वस्त्र बडे ही कोमल है। ये अनुपम वल्कल किस पेड से प्राप्त होते है ? आपके जटाजूट मेरी जटाओ के समान नही है, वे चमक रहे है। आपके शरीर पर मली हुई गन्ध सुगंध दे रही है। आपके ये वेद-नाद श्रुतिमधुर है। मैंने इस वन में ऐसा दृश्य अबतक नही देखा है, न सुना है। कही मुनियो की भी ऐसी वेष-भूषा होती है ? आप कहाँ के मुनि है ?"

उस महान् व्यक्ति को अपने जाल में फँसते देख उन स्त्रियो ने हँसते हुए कहा—"हे मुनि, कर्ण-मधुर साम-गान करते हुए, उसके अनुसार शुद्ध रीति से पदन्यास करके दिखाना हम जानती है। इस पृथ्वी पर हमारा कौशल जानना आपके लिए कहाँ संभव है ?" इस तरह अपनी वचन-चातुरी से उस मुनिनाथ को भुलावा देकर उन सुंदरियो ने पूछा—'आप कौन है ? किनके पुत्र है ? क्यो इस वन में रहते है, बताइए।' तब उन्होंने कहा—"मैं शुद्ध कीर्त्तिमान्, पुण्यात्मा विभाडक का पुत्र हूँ। मेरा नाम ऋष्यशृंग है। तप में महान् निष्ठा रखते हुए तपस्या करने के लिए ही मैं यहाँ रहता हूँ। मेरे पिताजी भागीरथी में स्नान करने की इच्छा से योगिपुंगवो के साथ गये हुए है। वे अन्य देशो में न जाकर बडी तपस्याएँ करते हुए अमल तथा भक्तियुक्त चित्त से यही पर रहते है। आप लोगो के यहाँ आने से मै पापरहित हुआ, कृतार्थ हुआ। अपने पिताजी की कृपा से बहुत अधिक तपश्चर्या में लीन मै भी यही रहता हूँ। इन वनो में आप जैसे नागर लोगो को देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। क्या अब हम सब आश्रम में चलें ?"

यो कहकर उन मुनियो को (उन वार-वनिताओ को) अपने आश्रम में ले जाकर ऋष्यशृंग ने उनका आदर-सत्कार किया। उन युवतियो ने प्रसन्नता से उन मुनि का आतिथ्य ग्रहण करने के बाद कहा—'हे मुनिवर, यह लीजिए, हम अपने वन से श्रेष्ठ फल लाये है।' यो कहकर उन्होंने स्वादिष्ठ एवं मनोहर लड्डू, पूडी और तरह-तरह के स्वादिष्ट मिष्टान्न उन्हें दिये। मुनि उन्हें खाते जाते थे और बीच-बीच में उनके स्वाद की प्रशंसा

करते जाते थे । उन युवतियो की ओर देकर बार-बार मिठाई माँगते, परवश-से होकर हाथ फैलाते और कहते—'हे मुनिवर, मै ने अब तक ऐसे फल कही नही देखे । आपका ही तप श्रेष्ठ तप है ।'

यह सुनकर उन युवतियो ने मुस्कुराते हुए अपनी तनुलताओ को उनके शरीर से छुलाकर, अपने सौरभमय उच्छ्वासो से उनके धैर्य को डिगाते हुए हौले-हौले अपने मुख-कमलो को उनके मुख से सटाया और मीठे वचन, हाव भाव, मधुर सगीत तथा मादक दृष्टियो से उन्हें मोहित कर उनके हृदय को रसार्द्र करते हुए, अपने कुचो से कसकर आलिंगन पाश में उन्हें परवश बनाया और फिर कहने लगी—'हे अनघ, अब हमें आज्ञा दें कि अपने आश्रम को वापस जायँ ।' यो कहते हुए विभाडक के आगमन के भय से पीडित वे वहाँ से रवाना हो गई और उस वन के निकट ही रहने लगी । उन कमल-लोचन रमणियो के जाने के पश्चात्, ऋष्यश्रुग ने यह सोचते हुए कि न जाने वे फिर कब लौट आयेंगी, सारी रात जागकर ही व्यतीत कर दी और दूसरे दिन वे उस जगह पर जा पहुँचे, जहाँ पहले दिन उन्होने उन रमणियो को देखा था ।

७. वेश्याओं के साथ ऋष्यशृंग का रोमपाद के घर आना

पायलो का झंकार करती हुई, राजहसो की गति से वे युवतियाँ मुनि के पास आईं और प्रफुल्ल वदन हो चारो ओर से उन्हें घेरकर कहने लगी—'हे मुनिवर, आप हमारे वन में पधारें ।' जब उन्होने स्वीकार कर लिया, तब वे उस श्रेष्ठ मुनि के चित्त कोद्रवित करनेवाली बातें करते हुए, अपने उपायो तथा हाव-भावो से उनको मोह-मुग्ध कर लिया और उन्हें अग-देश में इस प्रकार ले आई, जैसे शिकारी पक्षी किसी नये शिकार को पकड-कर ले जाते समय विस्तृत पथ के भय से उसे बचाने के लिए अपने हस्तपल्लव-रूपी पालकी में (चगुल में) ले जाता है । उस ऋष्यश्रुग के आते ही अग-राज्य में घोर वर्षा होने लगी और शस्य बढने लगे । राजा सकल सौभाग्य से युक्त हो सतुष्ट हुए । उन्होने बडी भक्ति से उस मुनि की पूजा की और अपनी पुत्री शान्ता का विवाह उनके साथ कर दिया । वे मुनि उसी राजा के यहाँ रहते है । यदि दशरथ उस मुनि को अपने यहाँ ले आकर उनसे पुत्र-कामेष्टि यज्ञ करायें, तो वे (दशरथ) चार बहुश्रुत तथा महान् पुत्र तथा समृद्धि प्राप्त करेंगे । इस प्रकार मुझसे पहले सनत्कुमार ने कहा था । इसलिए आप उस ऋष्यश्रुग से भक्तियुक्त प्रार्थना कर उन्हें यहाँ ले आयें ।"

इस प्रकार कहकर सूत चले गये । उनके जाने के बाद मन में हर्ष तथा भक्ति का अनुभव करते हुए चतुर दशरथ उस राजा रोमपाद के यहाँ गये और मुनिश्रेष्ठ ऋष्यश्रुग को प्रणाम करके कहा—'हे पवित्र आत्मा मुनिराज, आप मेरी विनती सुनें । मै अपने मन में पुत्र प्राप्ति की इच्छा लेकर आपके यहाँ आया हूँ । आप मुझे अपनाइए ।' राजा ने उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए इस प्रकार उनकी स्तुति की और उनसे यज्ञ का ऋत्विक् बनने की प्रार्थना की । फिर अनुपम पालकी में उन्हें बिठाकर अयोध्या के लिए रवाना हुए । उन्होने दूतो के द्वारा अपने नगरनिवासियो को यह आदेश भेज दिया कि नगर इन्द्रपुरी के समान सुन्दर सजाकर रखा जाय । दूतो ने नगरनिवासियो को यह आदेश

सुमन्त्र बड़ी प्रसन्नता से गया और बड़ी श्रद्धा से उन सबको लिवा लाया। (राजा ने) उन्हें अर्घ्य, पाद्य आदि देकर (उनका स्वागत-सत्कार किया)। वे अपने निर्मल व्रत की निष्ठा के अनुकूल धर्मसम्मत तथा उचित वचन यों बोले—"हे मुनिश्रेष्ठ, पुत्रहीन होने से अत्यन्त दुखी हूँ, पुत्र-प्राप्ति की इच्छा बलवती होने के कारण मित्रों के परामर्श से अश्वमेध यज्ञ, तथा पुत्र-प्राप्ति के लिए पुत्र-कामेष्टि यज्ञ करने के लिए उन महानुभावों को आमन्त्रित किया है। (अब) आपके अनुग्रह का प्रार्थी हूँ।"

राजा की बातो से प्रसन्न होकर वसिष्ठ आदि तपोधन मुनियों ने कहा—"हे रवि-कुलोत्तम, लोकहितार्थ पुत्रो को प्राप्त करने की आपकी इच्छा सर्वथा सगत है। अब अश्व को छोडिए। इस अश्वमेध से आपके विश्वरक्षक एवं उज्ज्वल पराक्रमी चार पुत्र होंगे।'

इससे बहुत सतुष्ट होकर राजा ने यज्ञ के लिए योग्य जवनाश्व (तेज जानेवाला घोडा) को चुनकर, भुवनपावन मूर्त्ति की पूजा करके, उस घोड़े के ललाट पर अपना नामांकित एक पट्ट बाँधकर, एक साल तक उसे अपनी इच्छा से घूमने के लिए छोड दिया। उस अश्व की रक्षा के लिए पराक्रमी सेना तथा सामत नरेश भी भेजे। उसके बाद वसिष्ठ आदि मुनियों की अनुमति से अनुपम शिल्पकारो को बुलाकर सरयू नदी की उत्तर दिशा में वेद-विधि के अनुसार एक यज्ञ-शाला का निर्माण करने के लिए भेजा और सभी देश के राजाओ तथा उन देशों में निवास करनेवाले विप्र, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रो को भी आमन्त्रित किया।

इतने में एक वर्ष पूरा हुआ और मधुमास आया। तब राजा ने चिर तपोनिधि ऋष्यश्रृंग की अनुमति तथा गुरु की आज्ञा लेकर एक अच्छे मुहूर्त्त में बड़े उत्साह से शान्ता तथा ऋष्यश्रृंग के साथ, यज्ञोपकरणों तथा हवन-कुंड से युक्त, इक्कीस सुन्दर यूपों से शोभायमान, श्रौतधर्म-क्रियाचार-विहित, मायाप्रवीण, राक्षसों से रहित तथा समस्त पाप-रहित यज्ञ-शाला में प्रवेश किया।

८. दशरथ का यज्ञ-दीक्षा लेना

यज्ञाश्व के आते ही, यज्ञ-दीक्षा ग्रहण कर, यतिशुद्धि प्राप्त करके, वसिष्ठ आदि श्रेष्ठ मुनिजनों को ऋत्विकों के रूप में वरण कर, अपनी इच्छा से सवनत्रय को पूरा करके, विमल यूपकाष्ठों से बँधे हुए जलचर, वनचर, विहग, उरग आदि तीन सौ पशुओं तथा प्रख्यात यज्ञाश्व का वध करके श्रुतियों में जिन-जिन मंत्रों के साथ, जिन-जिन आहुतियों को देने की विधि बताई गई है, उन मंत्रों के साथ ऋत्विकों ने उन आहुतियों का हवन किया। अग्निदेव सप्त-जिह्वाओं से प्रज्वलित हुए। देवता उन आहुतियों से तृप्त हुए। उस यज्ञ के दिनों में न कोई भूखा रहा, न कोई संतप्त रह गया। सभी मिष्टान्न, वस्त्र स्वर्ण, मणिभूषण आदि से संतृप्त किये गये।

जब किसी भी विघ्न के बिना यज्ञ समाप्त हुआ, तब ज्योतिष्टोम, विश्वजित् आदि महान् यज्ञ-क्रियाओं को सांग रूप से पूरा किया और यज्ञ-दक्षिणा के रूप में अध्वर्यु (यज्ञ-करानेवाले चार ऋत्विकों में से एक) को (अपने राज्य का) दक्षिण का भाग, होता को पश्चिम का भाग तथा उद्‌गाता को उत्तर का भाग दिया। अयोध्या को छोड़ बाकी सभी देशों को (दान में) दे दिया, जिससे ऋत्विक् प्रसन्न होकर कहने लगे—"कब हम आपके दिये हुए राज्य का शासन करें और कब अपने अनुष्ठान का पालन करें। हम कहाँ और देश का शासन कहाँ ? हे राजन्, आप हमें इस राज्य का मूल्य दे दें।" तब राजा ने दस करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ, सोने की चौगुनी चाँदी और एक लाख गायें उन्हें दी। ऋष्यश्रृंग आदि ऋत्विक् उस धन को आपस में बाँटकर संतुष्ट हुए। उस विमल यज्ञ-कर्म में प्रवृत्त परिचारकों को राजा ने एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ दी। माँगनेवालों को श्रेष्ठ आभूषण दिये। जिसने जो कुछ माँगा, राजा ने प्रेम से उसे वह दे दिया। उन्होंने सभी ब्राह्मणों को भक्ति से प्रणाम किया और क्रमशः उनके आशीर्वाद पाते हुए उन्हें दिव्य वस्त्राभरण देकर अकलंक चित्त से यज्ञांत स्नान किया। (उधर) ऋष्यश्रृंग के द्वारा कराये गये पुत्र-कामेष्टि यज्ञ में आकर क्रमशः अपने-अपने यज्ञ-भाग प्राप्त करनेवाले देवता रावण के सम्बन्ध में अपने मन में विचार करने लगे।

९. रावण के अत्याचारों के बारे में ब्रह्मा से देवताओं की शिकायत

ब्रह्मा के पास पहुँचकर (देवताओं ने) उनको प्रणाम किया और यों विनती की—"हे प्रभो! आपके वर की शक्ति से दशकंधर, पुण्यात्मा आचार्यों ब्रह्मर्षियों, देवताओं तथा मुनियों को दुःख दे रहा है। हे कमलासन! हमारा खयाल है कि आपके वर की प्रचण्ड शक्ति के कारण ही हम उसको जीत नहीं सकते। वह देवताओं के साथ इन्द्र को भी पकड़कर उनका अपमान करता है और उन्हें दुःख देता रहता है। (अपने) भुजबल के दर्प से

वह गन्धर्व, यक्ष और देवगण, ऋषियों तथा ब्राह्मणों को बराबर कष्ट दे रहा है। सभी कुल-पर्वत उसके त्रास से डरते हैं। सूर्य भी ताप फैलाने से डरता है। वह जिस नगर में रहता है, वहाँ पवन भी अपनी पूरी शक्ति के साथ बहने से डरता है। उसके अतिशय प्रताप से डरकर समुद्र अपनी लहरें चंचल नहीं कर पाता है। दीख पड़ने पर हमें भी दुख देता है। ऐसे भारी दशानन का नाश करने का उपाय आपको सोचना चाहिए।"

तब ब्रह्मा ने उन सारी बातों को सुनकर सब देवताओं से कहा—"(रावण) अमरों के हाथ नहीं मरेगा, राक्षसों से नष्ट नहीं होगा, गन्धर्वों से छिदेगा नहीं, रजनीचरों से समाप्त नहीं होगा, भुजगों से मारा नहीं जाएगा, यक्षों से हत नहीं होगा, पक्षिसमूह से पराजित नहीं होगा। मेरे वर देते समय उसने नरों का नाम नहीं लिया था, इसलिए वह नरों से ही मरेगा। स्मरण करो, हिरण्यकशिपु जब सारे संसार को दुख देता था, तब नारायण ने स्वयं नरसिंह का रूप धारण कर उसे चीर डाला था। उन्हीं ने अब [illegible] के यहाँ जन्म लिया है। इसलिए नारायण ही उस रावण का नाश करेंगे। अब हमें उस विष्णु से अभयदान के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।'

ब्रह्मा के इस प्रकार कहने पर सभी लोग तुरन्त क्षीर समुद्र के निकट गये और अच्युत को देखकर पवित्र हृदय से उनकी स्तुति की। हाथ जोड़कर बड़ी भक्ति से प्रणाम किया और विष्णु से इस प्रकार विनती की।

१०. देवताओं का विष्णु की स्तुति करना

हे त्रिलोकीनाथ, कमलालय-वक्ष, धर्मसंरक्षक वनजाक्ष, आपके अतिरिक्त हमारा कोई (सहायक) नहीं, यह सत्य है। हे गोविन्द, परिपूर्णगुण चिदानन्द, हे देव, जगन्मय देवाधिदेव, देवों के रक्षक, दिव्यावतार, अमृतसागर में परम आपकी शरण में आये हुए हमें (आपने) अपना अभयदान दिया था। हे दानवदलन, आपके भुजबल-विक्रम से ही समस्त लोकों की रक्षा होती है। हे भक्तवत्सल, भक्तियोग को छोड़ अन्य उपायों से आपको पहचानना असभव है। हे मधुसूदन, मन में आपका ध्यान करनेवालों को क्या कभी कोई विपदा सता सकती है? जगत् की सृष्टि, स्थिति, लय आदि आपकी लीलामात्र है। समस्त लोक आपकी माया का आधार लेकर ही आपका महनीय तनु धारण करते हैं। हे शेषशायी, आपका वैभव तथा आपकी महिमा अवाङ्मानसगोचर है। हे शरणागत रक्षक, हे लोकेश, हम आपकी शरण में आये हैं। हम शरणार्थियों की रक्षा आपको करनी ही चाहिए। आप त्रिलोक-कटक रावण का वध करके हमारी रक्षा कीजिए। हे लोकैक-स्तुत्य, विना विलब हमारा कार्य सपन्न कीजिए और यश पाइए। निर्मलचित्त, निश्चलव्रती, धर्मात्मा, उत्तमगुण-समन्वित, राजा दशरथ अश्वमेध यज्ञ पूरा करके पवित्र मन से युक्त हुए हैं। उस काकुत्स्थ-वंशी (राजा दशरथ) की स्त्रियों का विचार करें, तो कोई भी स्त्री उनकी बराबरी नहीं कर सकती। हे कमलगर्भ, आप अपने चारों अंशों के साथ नर के रूप में जन्म लीजिए। वर के प्रताप से जो देवताओं के लिए अवध्य है, जो लोकत्रासक है जिस पापी ने गधर्व एव किन्नरों का वध किया है, हे पुण्डरीक, ऐसे दशकधर का वध करके यज्ञ-सपादन कराइए और सयम-धनी पुरुषों की तथा ससार की रक्षा कीजिए।"

इस प्रकार विनती करनेवाले देवताओ को देखकर वनजाक्ष (विष्णु) ने घन-गर्जन के समान गभीर ध्वनि में कहा—"हे देवताओ, तुम लोग सुखी होओ । मै मर्त्यलोक में अवतार लूँगा और उसके पश्चात् दशकधर का वधु, मित्र, अमात्य, पौत्र तथा बधुओ के साथ नाश करके, ग्यारह हजार वर्ष तक नियमानुकूल इस पृथ्वी का पालन करूँगा । ब्रह्मा के वर से ही राक्षसेन्द्र इस अवनीतल पर जीवित है ।" यो कहते हुए असुरारि (विष्णु) ब्रह्मा तथा देवताओ को विदा करके चले गये ।

११. दशरथ को यज्ञ-पुरुष का पायस देना

उधर विमल हवनाग्नि से नीले अगवाले, अरुणाबरधारी, सूर्य के समान तेजस्वी, महान् विक्रमी तथा पुण्यात्मा एक दिव्य मूर्ति अपने हाथ में पायस (खीर) से भरे एक स्वर्ण-पात्र को लिये बाहर आये । उन्हें देख राजा अद्भुत आश्चर्य में पड गये और विनय के साथ उठकर खडे हो गये । राजा को देखकर (यज्ञ-पुरुष ने) कहा—"राजन् मै यज्ञ-पुरुष हूँ। तुम्हें पुत्र-दान देने की इच्छा से आया हूँ । इस पायस को ग्रहण कर भक्ति के के साथ अपनी रानियो को दो ।" इसपर राजा ने वडी भक्ति के साथ उनकी पूजा की और पायस यों ग्रहण किया, जैसे शचीपति ने सुधा-कलश ग्रहण किया था । अग्निदेव के अन्तर्द्धान होने के बाद राजा अन्त पुर में गये, तो रानियो ने बडे आनन्द से उनका स्वागत किया । (राजा ने) देवताओ से बनाये गये उस पायस का आधा भाग कौसल्या को दिया, शेष आधे का आधा सुमित्रा को दिया, बचे हुए भाग का आधा कैकेयी को और शष पुन प्रसन्नता से सुमित्रा को दिया ।

उस पायस को भक्ति से ग्रहण करने के बाद रानियाँ गर्भवती हुई । उन्हें देखकर राजा आनन्द-मग्न दिखाई देने लगे। निदान, राजा ने ऋष्यशृग आदि मुनियो तथा अन्य राजाओ को वडे आदर-सत्कार के साथ विदा किया और रानियो के साथ परम अनुरागयुक्त हो नगर में लौट आये ।

१२. देवताओं को वानरों के रूप में जन्म लेने के लिए ब्रह्मा की सलाह

अपना-अपना यज्ञ-भाग लेकर जव देवता अपने लोक को जाने लगे, तव ब्रह्मा ने इन्द्रादि देवताओ को देखकर कहा—"लोकरक्षणार्थं विष्णु इस पृथ्वी पर अवतार ले रहे हैं । इसलिए तुम्हें भी उनकी सहायता के लिए तैयार हो जाना चाहिए । इसलिए तुम लोग लोकहितार्थी, शक्तिमान्, पराक्रमी, वल तथा पराक्रम में अपने समान शक्तिमान् कई वानरो को, किन्नर, गधर्व, खेचर, यक्ष, पन्नग, अमर, तथा सिद्ध स्त्रियो (के गर्भ) मे उत्पन्न करो । मै अत्यन्त वलनिधि जाम्ववान् को पहले ही जन्म दे चुका हूँ । मेरे जँभाई लेते समय उसने जन्म लिया है । वह चिरजीवी है ।"

इस तरह ब्रह्मा का आदेश पाकर देवता लोग प्रसन्न हुए । इन्द्र ने वालि को, अग्नि ने नील को, सूर्य ने सुग्रीव को, वृहस्पति ने तार को, वरुण ने सुषेण को, कुवेर ने गधमादन को, विश्वकर्मा ने नल को, अश्विनीकुमारो ने द्विविद-मैंद को, पर्जन्य ने शरभ को और वायुदेव ने हनुमान् को इस पृथ्वी पर जन्म दिया । अन्य देवताओ ने भी अपने-अपने तेज मे अमित पराक्रमी तथा श्रेष्ठ वानरो को जन्म दिया । वे (सभी) वानर जगत् के

आप्त बंधु, दावाग्नि-तुल्य विक्रमी, आकार तथा शक्ति में पर्वत की समानता करनेवाले, बड़े साहसी, कामरूपी, समुद्रों को भी पार करनेवाले, पहाड़ों को भी उखाड़ फेंकनेवाले, नख और दांतों में अमित शक्ति रखनेवाले, अलौकिक शक्तिवाली तथा पृथ्वी को भी चीर डालनेवाली क्षमता रखनेवाले थे। ऐसे होने पर भी, आश्चर्य ! उनमें कुछ लोग सुग्रीव की, कुछ हनुमान् की, कुछ नील की, और कुछ मैंदकुमुद की सेवा करते थे। वे सर्वत्र सिद्ध होते हुए अपना शौर्य प्रकट करते हुए, मलय, दर्दुर, गंधमादन, तथा विंध्य पर्वत एवं काननों और बहुत-से जल-नद-नदी प्रान्तों में बड़े आनन्द से साथ विचरण करते थे।

उस महिमायुक्त पायस के प्रभाव से राजा की कुलवधुओं ने गर्भ धारण किया। गर्भधारण के समय से (उनकी) क्षीण कटियां पुष्ट होने लगीं। अमृतमय भोजन की रुचि लगातार कम होने लगी। सुन्दर देह की कान्ति पाण्डु रंग धारण करने लगी, मानो वे सभी रावण की साम्राज्य-लक्ष्मी की नाक में कालिख लगानेवाले चिह्न हों। उनके कुचाग्र (इस प्रकार) काले होने लगे, मानो जनपल्यता-दोष (शरीर से) बाहर निकल रहा हो। कपोल पतले हो गये। दोहद (मचली आदि) दीखने लगे। नाभियां उभरने लगीं, त्रिवलियों की रेखाएँ मिट गईं और (अनेक प्रकार की चीजों को पाने की) इच्छाएँ उत्पन्न होने लगीं। धीरे-धीरे नौ महीने पूरे हुए।

१३. श्रीराम आदि का जन्म

प्रशंसनीय मधुमास के श्रेष्ठ शुक्ल पक्ष में, पूर्ण नवमी तिथि, बुधवार, पुनर्वसु नक्षत्र में मध्याह्न के समय ग्रह-चक्रों के उच्च स्थिति में रहते समय, गुरु और चन्द्र का योग रहते हुए, ललित कर्क लग्न में, सर्वलोकाधार, जगदेकवीर, इन्द्रादि देवताओं से स्तुत्य, दिव्य लक्षणों से देदीप्यमान, अव्यय, असमान, आर्त्त-त्राण-परायण, भव्य, चिदानन्द, परम कल्याण-मूर्त्ति, देवताओं के रक्षक, दीनार्त्तिहरण, गुणों से अलंकृत, महान् कीर्त्तिवान्, शेषशायी, श्रीपति, हृषीकेश, उस कमल-गर्भ (विष्णु) के अर्द्धांश के रूप में, काकुत्स्थवंशी श्रीराम कौसल्या के गर्भ से उत्पन्न हुए। जिस प्रकार अदिति ने इन्द्र को और प्राच्य-सती ने चन्द्र को जन्म दिया था, वैसे ही पुण्य-नक्षत्र युक्त मीन लग्न में कैकेयी ने भरत को जन्म दिया। स्तुत्य आश्लेषा नक्षत्र-युक्त कर्क लग्न में कमलदललोचनी सुमित्रा ने समान-चरित्रवाले लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न को जन्म दिया। देव-दुंदुभियों से सारा आकाश गूँजने लगा, देवस्त्रियाँ नृत्य करने लगीं, पुष्पों की अत्यधिक वृष्टि होने लगी, ब्रह्मादि देवता परितुष्ट हुए, अयोध्या में छोटे-बड़े सभी निवासी उत्सव मनाने लगे।

तब दशरथ ने पुण्यात्मा वसिष्ठ को बुलाकर (बालकों का) जातकर्म आदि करवाया। फिर, पुत्र-जन्मोत्सव ऐसा मनाया कि देवताओं तथा पुरजनों का नेत्रोत्सव हो गया। जात-शौच समाप्त होने के पश्चात् एक पुण्य दिन को राजा ने उन वंशोद्धारक पुत्रों का नाम-करण-संस्कार करने की प्रार्थना वसिष्ठ से की। उन्होंने अपने मन में विचार करके कहा कि 'रम्', अर्थात् 'क्रीडा' नामक धातु से 'रमयति' अर्थ देनेवाला 'राम' नाम से कौसल्या-सुत अभिहित होगा। कैकेयी का पुत्र महान् बलशाली, सुकुमार शरीरवाला तथा सुकीर्त्ति-वान् है, इसलिए वह भरत के नाम से विख्यात होगा। विचार करके देखने से सुमित्रा के

पुत्र सुन्दर तथा श्रेष्ठ गुणो से युक्त है, इसलिए उनके लिए लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न नाम उचित होगे । (राजा ने) उन लक्ष्मी-समन्वित (राजकुमारो को) राम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न जैसे सुन्दर नाम देकर नामकरण-सस्कार सम्पन्न किया और अपरिमित धन दान में दिया ।

१४. श्रीरामादि का बचपन

वे (बालक) माताओ तथा धाइयो के स्नेह तथा ममता-युक्त पालन-पोषण में (फलस्वरूप) बढने लगे । (वे) भोली-भाली हँसी के साथ आँखें खोलने लगे । धीरे-धीरे अटपटाकर चलते हुए अपनी तोतली बोली से सबको आनन्द पहुँचाने लगे । उनकी लटो में (पिरोई गई) मोती तथा मणियो की लडियाँ कपोलो तक फैली थी । उनके भाल (रूपी) इन्दु पर अशोक के पत्ते के समान एक मँगटीका डोल रहा था । मणिखचित बहुत सुन्दर बघनखा की श्रेष्ठ कान्ति उनके हृदय पर विराज रही थी । शरीर पर जहाँ-तहाँ मरकत मणियो के आभरण शोभा दे रहे थे, कटि को करधनी से घूँघरू के शब्द हो रहे थे तथा घुँघरूदार नूपुर पैरो में ध्वनि कर रहे थे। वे राजा के सामने हँसते हुए अपनी बालक्रीडाएँ करते और उन्हें अपनी मोहनाकृति से मुग्ध कर देते थे । वे चारो (कुमार) धीरे-धीरे बढने लगे और समान रूप से उनका मानसिक विकास होने लगा ।

वे दशरथात्मज आपस में जोडियाँ बना लेते । रमणीय आकृतिवाले राम और लक्ष्मण की एक जोडी बनती और भरत-शत्रुघ्न की दूसरी जोडी बनती । उनके चूडाकरण तथा यज्ञोपवीत-सस्कार कराये गये और वे सुन्दर (राजकुमार) तरह-तरह के खेलो में मग्न रहने लगे ।

एक बार रघुराम अपने मित्रो के साथ बडे प्रेम से (अपने-अपने) गुइयाँ चुनकर, गेंद तथा डडा लिये फुर्ती से खेल रहे थे । उसी समय कैकेयी की दासी मथरा वेग से वहाँ आई और कौतुक से गेंद को रोक लिया । इस पर राम ने बडे क्रोध से डडे से उसपर प्रहार किया, जिससे तुरन्त उसकी टाँग टूट गई । (इसके पश्चात् भी) श्रीराम को अधिक उत्साह से खेलते हुए देखकर उनपर क्रुद्ध हो, लँगडी टाँग से वह कैकेयी के महल में गई और सारा वृत्तान्त कह सुनाया । कैकेयी ने तुरन्त यह समाचार दशरथ को सुनाया । सारी बातें जानकर राजा ने वसिष्ठजी को अयोध्या में बुलवाकर उन्हें भक्ति से प्रणाम किया और कहा—'हे श्रेष्ठ मुनिचन्द्र, आप इन बालकों को वेदादि समस्त विद्याएँ सिखायें ।' यह कहकर राजा ने बालको को वसिष्ठ को सौप दिया । उस मुनीश्वर ने भी वैसा ही किया । राजकुमारो ने उस सयमी मुनि की कृपा से हाथी-घोडे की सवारी, रथ-सचालन आदि की क्रियाएँ सीख ली । समस्त वेदो, शास्त्रो और शस्त्रास्त्रो के प्रयोग भी सीख लिये । उनमें श्रीराम तो विष्णुदेव ही थे । इसलिए अपार शौर्य, विवेक तथा सद्-गुणो में सबसे श्रेष्ठ थे ।

१५. विश्वामित्र का आगमन

(राजा) अपने पुत्रो के विवाह की बात सोच रहे थे कि (एक दिन) विश्वामित्र मुनि आ पहुँचे । द्वारपाल ने आकर महाराज दशरथ से निवेदन किया—'देव, विश्वामित्र

मुनि द्वार पर आये है ।' तव दशरथ अपने बंधु-वर्ग तथा वसिष्ठ मुनि के साथ बडी प्रसन्नता से, परमेष्ठी की अगवानी के लिए जानेवाले इन्द्र की तरह, उनका स्वागत करने गये। उनकी अमित शक्ति को जानते हुए उनको लिवा लाये और अर्घ्य, पाद्यादि देकर उनकी उचित रीति से पूजा की । तव मुनि ने पूछा—'(हे राजन्) तुम्हारी प्रजा कुशल से तो है, हे पूजनीय व्रती वसिष्ठ, आप कुशल से है न ? हे मुनियो, आप कुशल से है ?' (तव राजा ने कहा)—"हमें किसी वात का अभाव नही है । हम धन्य है । हे परम मुनीद्र, आप हमारा गृह पवित्र करने की इच्छा से यहाँ पधारे । इस कृपा से मै समस्त लोको में प्रख्यात हुआ और सभी राजाओ में आदरणीय हुआ । आप अपने आगमन का कारण कहें । आपका जो भी कार्य होगा, मै उसे सम्पन्न करूँगा ।

१६. यज्ञ की रक्षा के लिए श्रीराम को भेजने के लिए राजा से विश्वामित्र की प्रार्थना

तव विश्वामित्र ने राजा को देखकर कहा—"हे राजन्, दसरात्रि-पर्यंत यज्ञ करने की इच्छा से मै (यज्ञ) करने लगा, तो भयकर आकारवाले राक्षस हमारी यज्ञशाला में लगातार रक्त-मास की वर्षा करते हुए प्रवल विघ्न डालने लगे । यज्ञ करते समय हमें क्रोध नही करना चाहिए, इसलिए तुम्हारे पुत्र महावली श्रीराम को यज्ञ-रक्षणार्थ ले जाने के लिए आया हूँ । वे क्रूर राक्षस उनके सिवा अन्य किसी से नही मारे जायेंगे । उनकी (राम की) महत्ता मै जानता हूँ, (और) ब्रह्मा के पुत्र ये वसिष्ठ भी जानते है । हे अनघ ! 'राम वालक है' ऐसा विचार मत करो । 'वे मेरे पुत्र है', ऐसा लोभ छोड दो । वे स्वय यज्ञ-कर्त्ता, यज्ञ-मूर्त्ति तथा यज्ञ-भोक्ता है । उन्हें लोकाराध्य मानकर भेजो । मै उन्हें अतुल्य शस्त्रास्त्र दूँगा । उनसे ही हमारे यज्ञ की रक्षा होगी ।"

मुनि के ऐसा कहते ही राजा मूर्च्छित हो गये । वडी देर के बाद उनकी मूर्च्छा दूर हुई । वे फीके पड गये और दीन तथा दुखी होकर गद्गद-कंठ से विश्वामित्र की विनती करते हुए वोले—"राम अभी बालक है, वह बच्चा है । वह युद्ध-कला नहीं जानता । वह पन्द्रह साल का ही है । हिलती हुई शिखावाला है (अभी उसमें दृढता नही आई है) । अपने तथा शत्रुओ के वल का विचार करने की क्षमता उनमें नही है। हाय ! आप दया-मय होते हुए ऐसे वच्चे को क्यो माँगते है ? राक्षस तो कई दिव्य शस्त्रास्त्र रखनेवाले है । वे युद्ध-कला में निपुण होते है । वे विपुल वाहुवलवाले है । उनके साथ लडने की योग्यता राम में कहाँ है ? कहाँ वे और कहाँ यह ? हे श्रेष्ठ मुनीश्वर, साठ हजार साल तक पृथ्वी का शासन करते पश्चात् असमय वृद्धावस्था में मैंने इसे प्राप्त किया है । मै इसे भेज नही सकता। यज्ञ रक्षा की चिन्ता आपको क्यो है ? आप जाइए, मै आज ही सेना के साथ आपके पीछे-पीछे चला आऊँगा । हे मुनिनाथ, आपके यज्ञ में वाधा डालनेवाले राक्षसो की शक्ति कितनी है ? वे कौन है ? उनके नाम क्या है ? यह राघव उन्हें कैसे जीत सकेगा ?"

तव विश्वामित्र ने राजा से कहा—"पुलस्त्य ब्रह्मा का पोता, विश्रवसु का पुत्र, अखिल लोक का कटक, पापी रावण के आदेश से वल प्राप्त करके घमण्ड से भरे मारीच तथा सुवाहु नामक (राक्षस) उग्र रूप धारण कर यज्ञ में विघ्न डालते है । राम के सिवा अन्य कोई भी रणभूमि में उनका सामना नही कर सकेगा ।"

ऐसा मुनि के कहने पर, उन बातो पर विश्वास न करके राजा ने मुनिनाथ से विना सकोच कहा—"वह (रावण) चौथा ब्रह्मा है, महान् साहसी है और ब्रह्मा से वर प्राप्त किये हुए है। ऐसे रावण के भेजे हुए वीरो को जीतने में यह (राम) कैसे समर्थ होगा ? उन (राक्षसो) की शक्ति जाने विना मै आने की वात कही थी। अव आप लौट जाइए ।"

यो राजा के कहते ही विश्वामित्र (क्रोध से) जलते हुए, रोष-रक्त नेत्रो से देखने लगे। उनके गडस्थल अत्यधिक वेग से हिलने लगे, सारा शरीर काँपने लगा। वे राजा को देखकर वोले—"काकुत्स्थ-वशजो की रीति पर विचार किये विना ही ऐसे कुवचन क्यो कह रहे हो ? (तुमने) मेरे आगमन का कारण वताने के लिए कहा। यह कहा कि मै आपका कार्य अवश्य सिद्ध करूँगा। अव तुम मुकर रहे हो। यज्ञ-रक्षा क लिए मैने राम को भेजने की प्रार्थना की। पर तुम हिम्मत हारकर कहत हो 'नही भेजूंगा।' हे असत्य-भाषी, तुम्हारा तो मुँह देखना भी नही चाहिए। इसलिए मै जा रहा हूँ।"

मुनि के इस प्रकार कहते ही समुद्र सूख गये, पृथ्वी धँस गई, समस्त लोक व्याकुल हो उठे। दिग्गजो ने घुटने टेक दिये, देवता सहम गये, दिशाएँ सिमट गईं। सभी भूत अवश हो गये। मुनि के क्रोधावेश की कल्पना करके वसिष्ठ ने दशरथ को देखकर यो कहा—

१७. राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ भेजने के लिए वसिष्ठ की सम्मति

(वसिष्ठ ने कहा)—"हे राजन्, सूर्यवशी इस ससार में कभी असत्य भाषण नही करते। यदि तुम असत्य कहोगे, तो तुम्हारी श्रेष्ठ कीर्त्ति और तुम्हारे पूर्वजो की कीर्त्ति नष्ट हो जायगी। देने का वचन कहकर नही दोगे, तो शुद्ध (मन से) किये हुए सभी धर्म नष्ट हो जायँगे। 'दशरथ महाराज वडे धर्मात्मा है'—ऐसे तुम इस पृथ्वी में विख्यात हो। लोकरक्षा के सिवा राजाओ का धर्म और क्या है ? इसलिए, हे राजन्, राम को माननीय गाधि-पुत्र के साथ जाने दो। ऐसी शका क्यो करते हो कि मेरा पुत्र वालक है, वह युद्ध में महावली राक्षसो की वरावरी नही कर सकेगा। कौशिक के रहते किस वात का भय है ? राजन्, विश्वामित्र का उग्र तप और उनकी शक्ति विचित्र है। ये पुण्यात्मा देव, दानव, गधर्व तथा दैत्यो से भी अधिक दिव्यास्त्रो के प्रयोगो को जानते है। कोई भी ऐसा विषय कही भी नही है, जिसे ये नही जानते हो। हे जननायक, दक्ष (प्रजापति) के जया तथा सुप्रभा नामक दो पुत्रियाँ थी। उन जया और सुप्रभा के द्वारा भृशाश्व ने राक्षस-वध के लिए अस्त्र के रूप में पचास पुत्र प्राप्त किये। वे सव (पुत्र) कामरूपी है। हे राजन्, उस भृशाश्व ने (उन सभी अस्त्रशस्त्रो को) इन्हें दे दिया। इसलिए ये मुनि सभी शस्त्रास्त्रो के ज्ञाता है। तुम डरो मत। इन मुनि की शक्ति तुम नही जानते। इनको वचन देकर क्यो टाल रहे हो ? इनके साथ जाने से राम का हित ही होगा, उनकी जय अवश्य होगी। क्या ये (स्वय) राक्षसो को जीत नही सकते थे ? राजन् (तुम्हारे) हित-चिन्तक के रूप में, तुम्हारे पुत्र उज्ज्वल चरित्रवान् (राम) को शस्त्रास्त्र विद्या में निपुण सिद्ध करने के उद्देश्य से ही ये यहाँ पधारे है। अत यज्ञ की रक्षा के लिए राम को भेजो। इन्हें (राम को) देने में ही (तुम्हारा) कल्याण होगा।

१८. विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण को भेजना

इस प्रकार वसिष्ठ के कहने पर, उनकी बातों पर विश्वास करके राजा ने रामचन्द्र को बुला भेजा। उनका बालकपन देखकर राजा की आँखों में आँसू भर आये। उन्होंने उन्हें गले से लगाया, प्रेम से आशीर्वाद दिये, उनके केशों पर हाथ फेरा, कपोलों को प्यार से छुआ, थोड़ी देर सोचते रहे, फिर पुण्याह वाचन पुण्यव्रत, पुण्य हवन और ग्रहों की पूजा करके सुन्दर वस्त्र तथा भूषण प्रेम से दिये। फिर स्वयं, कौसल्या तथा वसिष्ठ ने (उन्हें) उचित आशीर्वाद देकर, पुण्य मुहूर्त्त में अपने पुत्र-रत्न को पुण्यात्मा गाधि-पुत्र को सौंपा। प्रेम और त्याग, इन दोनों का संघर्ष (मन में) चलते रहने पर भी (राजा ने) उस मुनि का सत्कार करके उन्हें विदा किया। तब लक्ष्मण भी उस राम से प्रार्थना करके उनके साथ गये। (उस समय) वृष्टि हुई, अनुकूल पवन चलने लगा, श्रेष्ठ मंगल बज उठे। आकाश से देवता बड़े प्रेम से धनुष, उत्तम शस्त्र, महान तूणीर, खड्ग आदि सहज रीति से धारण किये हुए, बड़े उत्साह से जानेवाले राघव को देखने लगे। अक्षय तूणीर, पहुँचा तथा अंगुली-त्राण पहने कटि से लटकनेवाले कृपाण के साथ दिव्य शर तथा चाप लिये हुए राघव उस मुनि के पीछे बड़े उत्साह से इस प्रकार जा रहे थे, जैसे अश्विनि-देवता भक्ति से ब्रह्मा की सेवा करते हुए जा रहे हों। वे पुण्य-चरित्र आधा योजन चलकर सरयू नदी के तट पर (पहुँचने-पहुँचने) थक गये। तब कौशिक ने राम-लक्ष्मण को बुलाकर उन्हें बल, अतिबल, नामक महामंत्रों का उपदेश दिया, जिन्हें उन्होंने घोर तपस्या के उपरान्त प्राप्त किया था और जो ब्रह्मा की पुत्रियाँ थी और सभी मंत्रों की मूलाधार थी तथा सदा सुखप्रदायिनी थी। राम-लक्ष्मण ने उस मंत्र-शक्ति के प्रताप से सूर्य का-सा तेज प्राप्त कर लिया। थकावट, भूख और प्यास आदि संकट से वे मुक्त हो शक्ति से शोभायमान हो गये। उस रात्रि को दाशरथि सरयू नदी के किनारे, तरुण कोमल कुश-शय्या पर, कौशिक से पुण्य-कथाएँ सुनते हुए बड़े आनन्द से सो गये।

गाधिपुत्र-प्रभात के समय शीघ्र ही उठे और वहाँ तृण-शय्या पर आँखें बन्द किये हुए राघवों को देखकर बड़े कौतूहल से कहने लगे—'हे अनघ, अरुणोदय हो चला। प्रात. काल के नित्य कर्मो का पालन होना चाहिए। इसलिए तुम्हें अब जागना चाहिए।' यह सुनते ही (वे उठे और) सन्ध्यावन्दन से निवृत्त होकर प्रफुल्लचित्त से कौशिक को प्रणाम किया। (उसके पश्चात्) नदी-धारा के किनारे-किनारे चलकर वे सरयू तथा गंगा के संगम के पास पहुँचे और वहाँ कई सहस्र वर्षो से नियमबद्ध हो तपस्या करनेवाले परम संयमी मुनियो को देखकर, बहुत ही हर्षित होकर दशरथात्मज ने गाधि-पुत्र से यो कहा—

१९. अनंगाश्रम का वृत्तान्त

'हे संयमीन्द्र, यह किसका आश्रम है? इस तपोभूमि में कौन रहते है?' तब मुनि ने कहा—"यह अनंगाश्रम के नाम से लोक में विख्यात है। इस आश्रम में बड़े धैर्य के साथ तप में लीन शिव को देखकर कंदर्प ने बड़े दर्प के साथ चन्द्रशेखर पर (पुष्प) बाण चलाया था और उस देव के भाल-नेत्र की अग्नि से भस्म होकर अनंग नाम पाया था।

(उसके) अगो से सबधित यह आश्रम-भूमि तब से अगदेश कहलाने लगी। । इस आश्रम भूमि में कठिन तपस्या करनेवाले पुण्यात्मा कृतार्थ हो जाते है ।"

इस तरह विश्वामित्र ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया । रघुवीर तथा मुनि वहाँ ठहरकर स्नानादि अनुष्ठान पूरा करके सतुष्ट हुए । उस स्थान के आश्रमवासी मुनीश्वरो ने दिव्य दृष्टि से यह बात जान ली । वे रमणीय रूपवाले राम-लक्ष्मण तथा अमित तपोधनी कौशिक को अपने आश्रम में लिवा ले गये और अत्यन्त उत्साह से अर्घ्य, पाद्यादि देकर उनका सत्कार किया । पुण्य-कथाओ के कथन से वह रात्रि पुण्यरात्रि हो गई । दूसरे दिन जब वे पुण्य सयमी उस नदी में नित्य कर्मो से निवृत्त हो चुके, तब विश्वामित्र ने कहा—'हमें इस नदी का पार उतारने के लिए यह नाविक समर्थ है । यह नाव सूर्य-वशजो के लिए लायक है ।' यह सुनकर राम-लक्ष्मण ने उन मुनियो को प्रणाम किया । मुनियो ने उनको विदा किया । तब वे विश्वामित्र के साथ नाव पर चढकर सरयू नदी पार करने लगे । जब नाव बीच धार में पहुँची, तब (रामने) आश्चर्य के साथ हाथ जोड-कर पूछा—'यह कैसी ध्वनि आकाश तक गूँज रही है । कृपा करके बताइए ।'

मुनि ने कहा—"कैलास पर्वत के मानसरोवर में जन्म लेकर, समृद्ध साकेतनगरी को चारो ओर से घेरने के बाद गगा नदी में मिलनेवाली सरयू नदी की लहरो का यह घोष है । इस पर (राम-लक्ष्मण) ने बडी श्रद्धा से उसे प्रणाम किया । उन पुण्यात्माओ ने नदी को पार किया और हाथी, सुअर, भैंसा, हिरण, शरभ, अजगर, बाघ, रीछ, सिंह से भरे हुए जगल में प्रवेश किया । तब राघव ने कहा—"हे मुनीश्वर, खदिर (कत्था), तिन्दुक, पूग, खजूर, निम्ब, बदरी, वट, अशोक, पाटलि आदि तरुओ तथा बहुकटक एव लता-परिवेष्टित वृक्षो से युक्त, यह निर्जन वन किसका आश्रम है ? कृपया बताइए ।" तब विश्वामित्र श्रीराम से सारा वृत्तान्त यो कहने लगे—"प्राचीन काल में इन्द्र वृत्रासुर का वध करने से मल-कलुष-प्राप्त तथा मलिनाग हुआ । तब देवता तथा मुनि इन्द्र को पाप-मुक्त करने के लिए यहाँ ले आये और पुण्यसलिल तथा पवित्र मत्रो से पुण्याभिसेचन किया । इससे उसके शरीर पर लगे मल-कलुष दोनो यहाँ के प्रदेशो में भर गये और इन्द्र शुद्ध हो गया । इसलिए इन्द्र ने इन प्रदेशो को, मल युक्त होने से 'मलद' तथा क्लेश-कलित होने से 'करुष' तथा 'पापघ्न' नाम दिये । वृत्रासुर के वध से लगे हुए पाप की मुक्ति इस प्रदेश में होने से इन्द्र ने इन नगरो को धन-धान्य-वैभव से समृद्ध रहने का वर दिया । हे रघुराम, एक बात और सुनो ।

२०. विश्वामित्र का श्रीरामचन्द्र को ताड़का का वृत्तान्त सुनाना

"इस पृथ्वी पर ताडका नाम की एक राक्षसी, एक हजार हाथियो का बल रखती हुई, बडे साहस के साथ, इन दोनो प्रदेशो में प्रवेश कर स्वेच्छा से लोगो को तग करतीहै ।" इसपर राघव ने पूछा—'इस स्त्री को किसने इतनी शक्ति दी ? यह दुष्टबुद्धि किसकी लड़की है ? यह पापिन क्यो इन दो प्रदेशो को पीडा पहुँचा रही है ? कृपया बताइए ।'

१ वाल्मीकि और कालिदास ने भी अनंगाश्रम का वर्णन किया है, पर वह अंग-देश में नहीं था । वह तो सरयू नदी के किनारे था । अंग-देश तो वर्त्तमान भागलपुर और मुंगेर जिले माने गये है, जिसमें सरयू नदी नहीं है ।—सम्पादक

इस पृथ्वी पर सुकेत नामक एक यक्ष ने पूर्व में ब्रह्मा की तपस्या की थी और अत्यधिक भक्ति से उनको तृप्त किया और उनसे एक पुत्र माँगा। (तब ब्रह्मा ने कहा) 'मैं तुम्हें पुत्र नही दूंगा। एक हजार हाथियो का बल रखनेवाली एक पुत्री दूंगा।' उस वर से उसे एक लडकी प्राप्त हुई। उसने विचार करके अपनी उस लडकी का विवाह सुद (नामक व्यक्ति) से कर दिया। उसने (सुद ने) उस स्त्री से 'मारीच' तथा 'सुबाहु' नामक दो भयकर शक्तिशाली पुत्र उत्पन्न किये। उसके पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। वह स्त्री अपने पुत्रो के साथ बडे गर्व से अगस्त्य के आश्रम में जाकर बार-बार उनको तग करने लगी। अगस्त्य ने उन पापियो को देखकर क्रोध से उन्हें राक्षस बन जाने का शाप दिया। उस दिन से राक्षस-रूप धारण कर निर्दयी हो वह मनुष्यो का आहार करती हुई यही रहती है और पृथ्वी को दुख देती है। तुम्हारे अतिरिक्त कोई उसे मार नही सकता। सिवा तुम्हारे हाथ के किसी से यह नही मरेगी। यह मत कहो कि यह स्त्री है, इसलिए इसे मारना नही चाहिए। यदि गो-ब्राह्मणो का हित हो, तो यही कारण स्त्रियो को मारने के लिए राजाओ को पर्याप्त है। प्राचीन काल में सारे ससार का नाश करने के लिए उद्यत, मतिमान् विरोचन की दुष्टा पुत्री को क्या इन्द्र ने क्रोध से नही मारा था? क्या वह कार्य (ससार में) स्तुत्य नही हुआ है? पहले दृढ व्रतवाली भृगु-पत्नी के संसार में अशान्ति फैलाने का उपक्रम करने पर क्या विष्णु ने (स्वय) उस स्त्री का वध नही किया था? इसलिए हे पुण्य-चरित्र, लोकहित के लिए स्त्रियो का वध करना भी पुण्य ही है।"

२१. ताड़का का वध

विश्वामित्र के ऐसे अनुपम वाक्यो तथा अपने पिता के आदेश का विचार करके राघव ने, उस ब्रह्मर्षि के वचन की अवहेलना नही करते हुए कहा कि मैं ताडका को दण्ड दूंगा। उन्होने (अपने) धनुष की टकार से सारे आकाश को गुंजा दिया। (उसे सुनकर) ताडका क्रोध से उबल उठी। कर्ण-कठोर धनुष की टकार सुनकर उसका चचल लाल नेत्रो वाला मुख विकृत हो उठा। वह अपने दोनो हाथो को ऊपर उठाये हुए इस प्रकार आने लगी, जैसे पखोवाला पहाड बडे वेग से आ रहा हो। प्रकट अट्टहास से उसके बडे-बडे दष्ट्रो की काति चारो ओर बिखर रही थी। (चलते समय) वह अपने पदाघात से अपनी अमित शक्ति का परिचय पृथ्वी को दे रही थी। सारा आकाश एकदम हिल-सा गया। इस प्रकार आनेवाली ताडका को देखकर दाशरथि राम ने सभ्रम-चित्त से अपने भाई से कहा—'देखा तुमने इसका ढग, इसका रूप और इसकी भयकर दृष्टि। इसको देखने पर किसे भय नही होगा? मैं अवश्य इसका वध करूँगा।"

इस प्रकार (श्रीराम) कह ही रहे थे कि (अपने) गर्जन से समस्त आकाश को कँपाती हुई, अपनी पद-धूलि से समस्त (ससार) को ढकती हुई वह भयकर राक्षसी बडी-बडी शिलाओ की वर्षा करने लगी। इससे क्रुद्ध हो राघव ने अपने अनुपम अस्त्रो से उन शिलाओ को काट डाला और उस (राक्षसी) के दोनो हाथ भी काट डाले। तब लक्ष्मण ने उसकी नाक और कान इस प्रकार काट डाले, मानो वे यह बतलाना चाहते हो कि आगे मैं उस असुर-राज की बहन की भी यही दशा कर दूंगा।

बड़े आश्चर्य की बात है कि तब वह कामरूपिणी, माया का रूप धारण करके कई अस्त्रो की वर्षा करने लगी । तब विश्वामित्र ने कहा—'हे अनघ, सध्या हो रही और सध्या के समय राक्षसो को जीतना कठिन है । अब तुम उसपर दया करना छोड द और लोक-हितार्थ इसे तुरत मार डालो ।'

तब गाधेय का आदेश मानकर (राघव ने) शब्द-वेधी बाणो से उस मायाविनी की मायाओ को दूरकर, भयकर गर्जन करती हुई बिजली के समान आनेवाली राक्षसी क (उन्होने) देखा । तब उन्होने एक महान् अस्त्र उसके कुचाग्र पर ऐसा चलाया कि रक्त की कई धाराएँ वह निकली, मानो रामचद्र असुरो को दण्ड देने का उपक्रम करते समट शरो को (रक्त का) उपहार दे रहे हो ।

तब वह (राक्षसी) पृथ्वी पर इस तरह गिरी, मानो प्रलय-मारुत से सध्या क आकाश टूटकर पृथ्वी पर गिर गया हो । समस्त प्राणी आनदित हुए । देवता तथा मुनि हर्षित हुए । कौशिक ने राम को गले से लगाकर आशीर्वाद दिये ।

तब देवता तथा गधर्वो के साथ देवेन्द्र वहाँ आया और श्रीराम के दर्शन करके उनकी पूजा तथा प्रार्थना की । फिर देव-भक्त गाधेय को देखकर इन्द्र ने कहा—"हमारी रक्षा करने के लिए इस पृथ्वी पर अवतार लिये हुए इस महापुरुष को आप भृशाश्व की सतान-रूपी सभी अस्त्र-शस्त्र प्रदान करें ।" इस प्रकार कहकर इन्द्र देव-लोक को लौट गये । इतने में सूर्यास्त हो गया । वे लोग वही ठहर गये ।

२२. विश्वामित्र का श्रीराम को भृशाश्व-संतान-रूपी शस्त्र देना

दूसरे दिन विश्वामित्र ने राम को बडे प्रेम से अपने पास बुलाकर कहा—'हे राम ! तुम्हारा रण-कौशल देखकर हम बहुत प्रसन्न हुए । अब हम तुम्हें ऐसे शस्त्रास्त्र देंगे, जो अमर, उरग, असुर तथा यक्षो के साथ युद्धो में श्रेष्ठ सिद्ध होंगे ।"

यो कहकर तन और मन से शुद्ध हो, मुनीश्वर ने राम को पूर्वाभिमुख बिठाया, ध्यान किया और क्रमश दड-चक्र, धर्म-चक्र, काल-चक्र, विष्णु-चक्र, इन्द्र का वज्र और खड्ग, वरुण-पाश, धर्म-पाश, काल-पाश, परमशिव का भयकर शूल, शक्तियुग्म (विष्णु-शक्ति तथा रुद्र-शक्ति), भयकर उष्ण तथा अनुष्ण अशनियाँ (शुष्काशनि तथा आर्द्राशनि), ककाल (जिन्हें राक्षस धारण करते है), भयकर करवाल. मूसल, ककण और क्रौचबाण आदि शस्त्र (श्रीराम को) दिये । इसके पश्चात् (उन्होने) बडी प्रसन्नता तथा प्रेम से आग्नेयास्त्र, ब्रह्मास्त्र, तेज प्रभास्त्र, ऐन्द्रास्त्र, ब्रह्मशिर, प्रस्थापन, नारायण, पैनाक, शिशिर, दारुण, शौर्य तथा सुदामन्, प्रशमन, विलापन, विशद प्रभावाला विद्याधर, वायव्य, सौम्य, सवर्त्त आदि नामक अस्त्र तथा मायाधर, मानव, मदन, सौमन, रुद्र, सतापन, मौसल, दर्पण, हयशिर आदि अस्त्र, मायाओ का प्रयोग कर विजय दिलानेवाले गाधर्व तथा सम्मोहनास्त्र, अत्यत निष्ठा-समन्वित तथा शोणितारव्य अद्वितीय आग्नेयास्त्र, गरुडास्त्र, कौबेरास्त्र, नरसिंहास्त्र, नागास्त्र, अवार्य वैष्णवास्त्र, सतत स्तुत्य वैद्याधरास्त्र, रौद्रास्त्र, राक्षसास्त्र, कल्याण-प्रद पाशुपतास्त्र, कर्त्तरीचक्र, मेघास्त्र जैसे अगणित अस्त्रसमूह, अखिल दारुण मोदकी, शिखरी नामक गदाएँ, वामन, पैशाच तथा वायव्य शस्त्र, सोम, सौम्य, सवर्द्धन, साम, मदन,

संतापन, तामस, जैसे दारुण अस्त्र, कंकाल, करवाल, मूसल आदि धारण-योग्य अस्त्र राम को दिये । उन्हें लेते हुए राम ने उस महात्मा को देखकर कहा "हे मुनिनाथ, आपकी कृपा से अभी अस्त्र प्राप्त करके मैं कृतार्थ हुआ । अब आप मुझे उपसंहार के अस्त्र प्रदान कीजिए ।"

इस पर प्रसन्न हो उस मुनि ने उन्हें सत्यवंत, रभस, पराङ्मुख, सत्य-कीर्ति, दशाक्ष, अवाङ्मुख, प्रतिहारतर, मारण, शुचि, शतवक्त्र, दैत्य, धृष्ट, लक्ष्य, कृशन, करवीरक, दश-शीर्ष, शतोदर, ज्योतिष, विमल, मकर, विरुचि, निष्कुलि, प्रमथन, सुनाभ, सर्वनाभ, दुन्दुनाभ, पद्मनाभ, तृणनाभ, नैराश्य, काम रूप, योगधर, सौमन, निद्रा, मथन, मोहन, विषमाक्ष, महानाभ, वाहुविभूति, जृम्भक, धन, धान्य, वृत्तवंत, रुचिर, सार्चिर्माली, धृतिमाली नामक कामरूपवाले महान् अस्त्रों का उपदेश राजकुमार को दिया । इनके अतिरिक्त भी (मुनि ने) उस रघु-वंश प्रभु को अनेक शस्त्रास्त्र-समूह दिये, उनकी शक्ति बताई, उनसे संबंध रखनेवाले मंत्र बताये, उनके प्रयोग की तथा उपसंहार की विधि बताई । शस्त्रास्त्र-संबंधी सभी मर्म बताये ।

तब राम के आगे वे सभी (शस्त्रास्त्र) तरह-तरह के रूप धारण करके प्रकट हुए । उनमें कुछ अग्नि-सदृश थे, कुछ भयंकर थे, कुछ धूमिल कांति के थे, कुछ अनुपम दीप्तिमान् थे, कुछ दिव्य शरीरवाले थे, कुछ चंद्र-प्रभा-विलसित थे, कुछ भानु-दीप्ति-विलसित थे, कुछ अंधकार-विलसित थे, कुछ भयंकर अट्टहास कर रहे थे और कुछ पवित्र रूप धारण किये हुए थे । उन सब ने मुकुलित करों से (राम के आगे) खड़े होकर कहा—'हे राजन्, हम कौन-सा कार्य करें, हमें क्या आदेश देते हैं ? हमें कहाँ भेजेंगे ?' तब राम ने कहा—'मेरे स्मरण करने पर तुम चले आना, अभी तुम जा सकते हो ।' यह सुनकर सभी शस्त्रों ने उस वसुवेश की प्रदक्षिणा की और नमस्कार करके चले गये ।

तब राघव ने मुनिनाथ के सामने हाथ जोड़कर विनय, भक्ति तथा विश्वास प्रकट करते हुए कहा—'हे अनघ, आपकी कृपा से मैं कृतार्थ हुआ ।'

उसके पश्चात् वे विश्वामित्र के पीछे-पीछे चलने लगे । चलते-चलते उन्हें वामनाश्रम का सुंदर प्रदेश दिखाई पड़ा । उसे देखकर काकुत्स्थवंशी राम ने कहा—"हे संयमींद्र, इस पर्वत के निकट, नाना मृगों की ध्वनियों, सुंदर पक्षियों तथा मृगों से भरा यह दर्शनीय तथा सुंदर वन किसका आश्रम है ? यहाँ सब मृग बड़े सुख से रह रहे हैं । हे सर्वज्ञ, आपकी यज्ञ-भूमि यहाँ से कितनी दूर है ? चंचल तथा उद्धत राक्षस आपके यज्ञ को अपवित्र करने के लिए कहाँ से आते हैं ? मैं अपने तेज बाणों से उन समस्त राक्षसों को मार डालूँगा और यज्ञ की रक्षा करूँगा ।"

तब कौशिक ने जगदभिराम राम के कपोल स्नेह से छूकर बड़े प्रेम से कहा—'हे अनघ, क्या कोई ऐसा विषय है, जिसे तुम नहीं जानते ? यदि मुझसे ही सुनने की इच्छा है, तो सुनो ।'

२३. कौशिक का श्रीराम को सिद्धाश्रम का वृत्तांत सुनाना ।

"प्राचीन काल में विष्णुदेव बडे आनद से तपस्या करने के लिए यहाँ अनेक युगो तक रहे । इसलिए हे अनघ, इसे वामनाश्रम कहते है । उसके पहले यह सिद्धाश्रम नाम से विख्यात था । हे जननाथ, विरोचन का पुत्र वलि अपने विशाल राज्य-वैभव के कारण घमड से प्रवल होकर देव तथा सुरो को यातनाएँ देने लगा। तव मुनि तथा देवता इस आश्रम में आये और कमलनाभ को प्रणाम करके कहा—'हे शरणागत-प्रिय, हे लोकेश, हे कमलगर्भ, हमारी रक्षा कीजिए । हमें शरण दीजिए। हमें त्रास देनेवाला वलि यज्ञ कर रहा है । उस राक्षस-यज्ञ-भूमि में जो कोई भी जो कुछ माँगता है, वह दे रहा है । उस यज्ञ की समाप्ति के पहले ही आप हमारा हित सिद्ध कीजिए ।'

"उसी समय उज्ज्वल व्रत-निष्ठ कश्यप ने अदिति के साथ एक सहस्र वर्ष का तप पूरा किया । उसके उपरात सतुष्ट हो विष्णु ने उन्हें दर्शन दिये । तव (उस दपति ने) प्रार्थना की—'हे रवि-शशि-लोचन, आप अपने शरीर में हमें समस्त लोको के दर्शन कराइए । हे आद्यन्त-रहित और वेद-वेद्य, हम आपकी शरण में आये है ।'

"विष्णु ने कृपा-दृष्टि से कश्यप को देखकर कहा—'आप अपने इच्छानुसार कोई वर माँग लीजिए, मैं दे दूंगा ।' कश्यप ने वड़ी प्रसन्नता तथा भक्ति से हाथ जोडकर कहा—'हे भगवन्, आप अत्यत तेज-समन्वित होकर मेरे तथा अदिति के पुत्र होकर जन्म लीजिए तथा सुरो की रक्षा कीजिए । यही मेरी तथा देवताओ की इच्छा है । हम सव की इच्छा आप पूर्ण कीजिए ।"

"कश्यप के इस प्रकार कहने पर विष्णु ने अपने अनुपम तेज से युक्त हो अदिति के गर्भ में जन्म लिया । उन्होने वामन का रूप धारण कर उस दानव (वलि) से तीन पग धरती माँगी । फिर, दो पगो से पृथ्वी तथा आकाश को नाप लिया और उस धन्यात्मा (वलि) को वाँधकर इन्द्र को तीनो लोक देते हुए कहा—'तुम इन पर शासन करो ।' इसीलिए यह स्थान वामनाश्रम कहलाता है । यही हमारा आश्रम है । इस पुण्यभूमि के निवासी तपोसिद्ध है, अत यह सिद्धाश्रम भी कहलाता है। तुम्ही वामन होकर त्रिविक्रम का अवतार लेनेवाले विष्णु हो । उन दिनो में भी यह तुम्हारा ही वन था । हे राम, आज भी उसी रीति से यह तुम्हारा ही वन है ।" इस प्रकार, कहते हुए कौशिक अपने आश्रम में गये और (वहाँ जाकर) राम-लक्ष्मण का सत्कार किया ।

२४. विश्वामित्र का यज्ञ

वहाँ के मुनियों ने वडे प्रेम के साथ राम की पूजा की । तव राघव ने विश्वामित्र के देखकर वडे हर्ष से कहा—'हे मुनीश्वर, आप निश्चित होकर आज ही यज्ञ-दीक्षा ले लीजिए। यज्ञ के शत्रुओ का सहार मैं अवश्य करूँगा ।'

तव विश्वामित्र अत्यत हर्षित हुए और मुनियो को वुलाकर स्वय यज्ञ-दीक्षा ली । मुनियों ने यज्ञ की वेदियाँ तैयार कर दी और यज्ञ के आवश्यक अगो से यज्ञ-त्रेदी सपन्न हो गई । घी की आहुतियाँ पडने लगी और अग्नि की ज्वालाएँ आकाश तक फैलने लगी । हवन की अग्नि के प्रज्ज्वलित होने के साथ-ही-साथ साम आदि वेदो के आनन्द-घोष, निरतर

(सुनाई पडनेवाली) देवताओं का आह्वान करनेवाली ध्वनियाँ तथा होताओं के पुण्य-मंत्रों के शब्दों से दिशाएँ अत्यधिक गूँजने लगी । एक ओर बड़े आश्चर्य के साथ यज्ञ के कार्य हो रहे थे, दूसरी ओर रामचंद्र धनुष धारण कर, भाई सौमित्र के साथ, बड़ी सतर्कता से, राक्षसों के आने का मार्ग पहले ही जानकर उस मुनि विश्वामित्र की रक्षा इस प्रकार करने लगे, जैसे समस्त विश्व को अंधकार से आवृत होने से बचाने के लिए चंद्र और सूर्य अपनी शाश्वत प्रभा फैलाते हैं । बड़ी भक्ति के साथ पाँच दिनों तक वे (उस यज्ञ की) रक्षा इस प्रकार करते रहे, जैसे पलकें पुतलियों की रक्षा करती हैं । छठे दिन मारीच तथा सुबाहु अपना समस्त बल इकट्ठा करके, उद्धत गति से आकाश में ऐसे व्याप्त हो गये, मानो (उन सबके शरीर) काले मेघों की राशि हो और उनके श्रेष्ठ खड्गों की कांति बिजली हो । वहाँ खड़े होकर वे गर्जन करते हुए घमंड से फूलकर यज्ञ-भूमि में लगातार रक्त-मांस की वर्षा करने लगे । तब होताओं में कोलाहल होने लगा । उपस्थित सदस्यों में कल-कल ध्वनि प्रारंभ हो गई । परिचारकों के दीन वार्त्तालाप सुनाई पड़ने लगे ।

यह सुनकर रामचंद्र ने क्रोध के आवेश में लक्ष्मण से कहा—"हे लक्ष्मण, अब तुम मेरी शक्ति देखो । उनके धनुष की टंकार विजय-लक्ष्मी के धनुष की टंकार के समान थी । उन्होंने खड़े होकर अपनी दृष्टि आकाश पर केंद्रित की और अत्यंत वेग के साथ वायव्य बाण चलाया । वह बाण मारीच को द्रुतगति से शत योजन तक उठा ले गया और उस क्रूर राक्षस को समुद्र में फेंक दिया । वज्र के प्रहार से समुद्र में गिरे हुए मैनाक की तरह वह असुर समुद्र में गिरा, फिर किसी तरह तट तक पहुँचा । उसने उस सूर्यवंशी (राम) के उज्ज्वल पराक्रम की प्रशंसा जहाँ-तहाँ की, (अपने) राक्षस-दल को छोड़ दिया, अपना शौर्य त्याग दिया, आसुरी वृत्ति को दबा दिया और आमुचंद्राश्रम-भूमि में सतत तपस्या में लीन रहने लगा ।

उसके पश्चात् रघुराम ने सुबाहु के हृदय पर अग्नि-बाण चलाकर उसका संहार कर डाला । एक मानव-शर से अन्य राक्षस-सेना का वध कर दिया । (यह देखकर) देवता बड़े हर्ष से पुष्प-वृष्टि करने लगे । मुनियों ने (राम की) स्तुति की । जिस प्रकार वृत्रासुर का वध करने पर देवता लोग इन्द्र की प्रशंसा करने के हेतु उनके चारों ओर एकत्र हुए थे, वैसे ही (आज) राम अपने भुज-बल के प्रताप से यज्ञ के शत्रुओं को दंड देने के कारण (मुनिजनों के बीच) शोभायमान हो रहे थे ।

विश्वामित्र बड़ी निष्ठा के साथ यज्ञ की सभी क्रियाओं को समाप्त करके आये और राम को बड़े हर्ष से गले लगाकर उनकी प्रशंसा की और आशीर्वाद देकर बोले—'रघुराम, तुम्हारी कृपा से मैं बिना किसी कठिनाई के यज्ञ संपूर्ण करके कृतार्थ हुआ ।'

इस प्रकार, उस पुण्यात्मा विश्वामित्र मुनि का अनुराग प्राप्त करके राम ने वही रात्रि बिताई और बड़े सवेरे, प्रातःकाल की सभी विधियों से निवृत्त होकर, सब मुनियों को प्रणाम करके, गाधि-पुत्र से कहा—'हे तपोनिष्ठ, अब हमारे लिए क्या आज्ञा है ? हम आपके दास हैं और आपकी कृपा के पात्र हैं ।"

तब वहाँ के सभी मुनि गाधि-पुत्र को आगे करके इस प्रकार कहने लगे—"हे रवि-कुल श्रेष्ठ, महाराज जनक बड़े सुंदर ढंग से यज्ञ कर रहे हैं । हम वहाँ चलें । उनके पास परमशिव का दिव्य धनुष है । गंधर्व तथा राक्षस आदि कई वीर उसे उठाने में असमर्थ हो चुके हैं। ऐसे धनुष को उठाकर उस पर प्रत्यंचा चढ़ानेवाले श्रेष्ठ वीर के साथ ही अपनी पुत्री का विवाह करने की प्रतिज्ञा राजा जनक कर चुके हैं । इसलिए उस श्रेष्ठ धनुष को तथा जनक के यज्ञ को देखने आपको अवश्य जाना चाहिए ।"

इस प्रकार विश्वामित्र तथा अन्य मुनियों ने उन वीर, पुण्यात्मा, दाशरथियों को मिथिलापुरी चलने की प्रेरणा दी । सब लोग बड़े हर्ष से प्रस्थानकर गंगा के उत्तर तट पर पहुँचे[1] और हिमाचल तथा सिद्धाश्रम को दक्षिण में छोड़कर[2] उत्तर की ओर बढ़े । उस मार्ग से यात्रा करते हुए वे उस दिन तीसरे पहर तक तीन योजन चले । वहाँ शोण नदी के किनारे वे ठहरे और वहाँ के पुण्य तीर्थ में स्नान आदि क्रिया से निवृत्त हुए (उसके पश्चात्) उस रम्य स्थल में मुनियों के साथ बड़े आनंद से रहते हुए राम ने कौशिक से यों कहा—

२५. कौशांबी का वृत्तांत

(श्रीराम ने कहा)—'हे मुनिनाथ, अत्यधिक प्रजा-समृद्ध यह देश किसका है ? कृपया बतलाइए ।' तब विश्वामित्र ने कहा—"हे राजन्, सुनो, ब्रह्मा के मानस-पुत्र कुश नामक एक यशस्वी मुनि पूर्व काल में रहते थे। उन्होंने वैदर्भी नामक स्त्री से रूपवान् तथा शांत प्रकृतिवाले अधूर्त्तरज, वसु, कुशाम्ब और कुशनाभ नामक चार पुत्र प्राप्त किये । चारों पुत्र अत्यंत साहस तथा शूरता के साथ अपने क्षत्रिय-धर्म का पालन करने लगे । अपने पुत्रों के चरित्र तथा सद्गुण देखकर कुश ने बड़े हर्ष से कहा—'इस पृथ्वी पर तुम लोगों को प्रजा का पालन करना चाहिए । इससे तुम्हारी कीर्त्ति व्याप्त होगी ।'

"तब कुशल कुशाब ने बहुत प्रसन्न होकर कौशांबी नाम से एक नगर का निर्माण किया । हे दशरथात्मज, कुशनाभ ने महोदय नामक नगर बसाया । शूर अधूर्त्तरज ने धर्मा-रण्य नामक सुंदर नगर का निर्माण किया और वसु ने गिरिव्रज नामक एक अत्यंत दर्शनीय नगर बसाया । यह प्रदेश, जहाँ हम हैं, महाराज वसु के राज्य में है ; इस प्रदेश के चारों दिशाओं में पाँच पर्वत हैं । उन पर्वतों के मध्य मागधी नामक एक नदी बहती है । इस सारे मगध देश पर वसु महाराज अत्यंत धर्म की रीति से प्रजा का पालन करते हैं ।

"कुशनाभ ने घृताची नामक एक अप्सरा से प्रेम करके (विवाह किया) । मन्मथ-शर जैसे नेत्रवाली सौ रूपवती पुत्रियों को प्राप्त किया । एक दिन कमनीय कांति-युक्त तथा मनोहर यौवन-संपन्न वे युवतियाँ उद्यान में गईं ।

---

१ गंगा के दक्षिण तट से चले; क्योंकि उत्तर तट पर पहुँचकर चलने से शोण नदी नहीं मिलेगी । —सम्पादक

२. हिमाचल तो 'जनकपु' से भी उत्तर है, उसे दक्षिण में छोड़कर 'सिद्धाश्रम' से चलना असंगत है । वाल्मीकिरामायण में लिखा है कि सिद्धाश्रम हिमालय की ओर उत्तर दिशा में चलने के उद्देश्य से वे चले ।—सम्पादक

"वहाँ अपने मंजीर, मेखला तथा कंकणों को मधुर-मधुर गुंजरित करती हुई ताल-गति के साथ लास्य करने लगीं। कुछ युवतियाँ मृदु-मधुर रीति से मृदंग आदि वाद्यों को बजाने लगीं, कुछ अपने कर-पल्लवों से वीणाओं को क्वणित करने लगीं, कुछ अन्य युवतियाँ आम्र-मंजरी के मधु-पान से मस्त कोकिल-कंठ से गान करने लगीं। इस प्रकार वे सभी कन्याएँ उस उद्यान में क्रीडाओं में मग्न हो गई।

उन सुंदरियों को देखकर काम-पीड़ा से व्याकुल होकर पवनदेव ने उन मानिनियों से कहा—'हे मानिनियो, आप किञ्चित् मेरी बात पर ध्यान दें। हे पद्माक्षियो, आप मुझे (अपना पति) वरण करें और अमरत्व को प्राप्त करें। इस तरह आप अजर-अमर होकर सतत यौवनावस्था में रहती हुई उन्नत कीर्ति प्राप्त करेंगी।'

"तब उन कन्याओं ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—'हे अनिल, आप सब के हृदयों में संचार करनेवाले हैं। आप हमें जानते हैं। हाय! आप अपनी महत्ता का भी विचार किये बिना क्या कह रहे हैं? हम उस कुशनाभ की पुत्रियाँ हैं, जो नीति-नय-संपन्न तथा धर्मानुरक्त हैं। हमारे पिता के रहते हुए हम अपने-आप किसी का वरण कर लें, तो इससे हमारे कुल को कलंक लगेगा। हमारे पिता हमें (विवाह में) जिन्हें देंगे, वे ही हमारे पति होंगे।'

"यह सुनकर पवन अपने क्रोध को सँभाल नहीं सका। उसने उनके अंगों में प्रवेश करके उन्हें कुब्जाओं के रूप में परिवर्तित कर दिया। खिन्न होकर वे सभी (कन्याएँ) अपने पिता के सामने गई और सिर झुकाये आँखों में आँसू भरे खड़ी रहीं। कुशनाभ अपनी पुत्रियों की दशा देखकर सहम गये और पूछने लगे—'हे पुत्रियो, तुम्हें ऐसा रूप कैसे प्राप्त हुआ? किसने ऐसा किया? तुम बोलती क्यों नहीं हो? इसका क्या कारण है?"

"तब उन धवलाक्षियों ने हाथ जोड़कर अपने पिता से कहा—'पिताजी, हमें देखकर पवन ने निर्लज्जता से कहा कि हे सुंदरियो, तुम लोग मुझे वरो। हमने उसका प्रस्ताव स्वीकार नहीं करके कहा कि आप यह बात हमारे पिता से जाकर कहिए। इसपर उस क्रूर ने कामांध होकर हमें कुब्जा बना दिया।"

"यह सुनकर उन्होंने उन कमलाक्षियों से कहा—'हे कन्याओ! औचित्य और धर्म का विचार करके (कुल की मर्यादा का उल्लंघन करना) अनुचित समझते हुए तुम लोगों ने उस मर्यादा का पालन किया। तुम्हारे इस गौरवपूर्ण कार्य से मेरे कुल की प्रतिष्ठा बढ़ गई है। देवताओं के संबंध में क्रोध करने का साहस तुमने नहीं किया। इस प्रकार तुम्हारा सहन कर जाना ही उत्तम है। क्षमा (सहनशीलता) ही सत्य है, शील है, तप है, धर्म है और कीर्ति है। वही समस्त लोकों की रक्षा करनेवाली है।"

"इस प्रकार (सांत्वना देकर) राजाने अपनी कन्याओं को विदा किया। (उसके पश्चात्) उन्होंने अपने मंत्रियों से परामर्श करके पुण्यात्मा चूली नामक मुनिवर के पुत्र सद्गुण-संपन्न ब्रह्मदत्त को बुलावा भेजा और निर्मल मति से उस महात्मा की धर्मपत्नियों के रूप में अपनी कन्याओं को दे दिया। चूली-पुत्र के उन्हें स्वीकार करते ही उन कन्याओं की विकृति दूर हो गई।"

'हे अवनीश, उस दिन से वह उत्तम नगर 'कन्याकुब्ज' के नाम से इस पृथ्वी पर विख्यात हुआ। तब कुशनाभ अपनी पुत्रियो के कमनीय रूप देखकर बहुत प्रसन्न हुए और अपनी पुत्रियो तथा जामाता को विदा किया। तब कुश ने अपने पुत्र कुशनाभ को सबोधित करके कहा—'तुम पुत्रकामेष्टि-यज्ञ करो' तो तुम्हें अमित कीर्तिमान् तथा पुण्यात्मा गाधि नामक पुत्र होगा। यो कहकर वे ब्रह्मलोक सिधारे।"

"कुश के पौत्र रूप में गाधि ने जन्म लिया। हे दशरथात्मज, मैं उसी गाधि का पुत्र हूँ। कुश का वशज होने के कारण मुझे कौशिक भी कहते है। गुणवती तथा धर्म-निष्णाता मेरी बडी बहन सत्यवती, अपने प्राणेश्वर ऋचिक के साथ सशरीर इन्द्रलोक में गई और इस लोक का कल्याण करने के लिए प्रालेय-पर्वत में स्वय कौशिकी नाम से नदी के रूप में बह रही है। सिद्धाश्रम में प्रवेश में करने के कारण सच ही मै तप सिद्ध हुआ। प्राचीन काल से मैं अपना नाम तथा इस देश के निर्माण के सबध में यह वृत्तात सुनता आ रहा हूँ। अब हे राजन्, अर्द्ध-रात्रि हो गई। तुम बहुत थके हुए हो, अत विश्राम करो।"

"सभी वृक्ष स्थिर हो गये है, इस वन-प्रान्त में मृग-समूह का सचार अब नही रहा, विहग अपने घोसले में पहुँचकर अपनी मीठी बोलियो को भूले हुए पडे है, अब निशाचर, यक्ष तथा राक्षस अपने इच्छानुसार इस पृथ्वी पर सचरण करेंगे, समस्त दिशाएँ तथा आकाश कालिख पोते हुए-से अधकारमय दीख रहे है, ब्रह्माण्ड-रूपी गृह के लिए नीलाबर में लगाये हुए मोतियो से युक्त तबू के समान यह आकाश नक्षत्रो से युक्त होकर शोभा दे रहा है तथा जन-जन को आनदित करते हुए नक्षत्र-पति अभी-अभी उदित हो रहा है।"

उन वचनो से प्रसन्न होकर सयमी मुनियो ने विश्वामित्र से कहा—'हे अनघ, आपका वश अमल है। आपके वशज अतुलनीय माहात्म्यवाले है। आप ब्रह्मा के समान है। आपका ब्रह्म-तेज स्तुत्य है।' तब विश्वामित्र ने उन मुनीश्वरो को धन्यवाद दिये। फिर राजकुमार तथा मुनिजनो ने उस रात्रि को वही शयन किया।

"प्रात काल होने पर ऋषियो तथा विश्वामित्र ने (राजकुमारो से) कहा—'हे राजकुमारो, अब तुम निद्रा तजो।' वे जग पडे और प्रात काल की क्रियाओ से निवृत्त होकर कौशिक से कहा—"यह शोण नदी-रत्न कितना अगाध और सुदर है? मछलियो से परिपूर्ण, अत्यत रमणीय सैकत स्थल, मधुर जल तथा परिचित हस आदि खग-कुल से शोभायमान, मद-मद पवन (के कारण) तरल तरगो से युक्त यह नदी बडी ही रमणीय है। हे अनघ, हम कहाँ और किस प्रकार इस नदी को पार करेंगे?"

तब विश्वामित्र ने कहा—'मुनिलोग प्राय जिस स्थान से होकर इसे पार करते है, उसे जानकर हम भी वही से इसे पार करेंगे।'

इस प्रकार कहते हुए वे सब लोग कुछ दूर आगे चले। (वे ऐसी जगह पहुँचे), जहाँ कुल हस, सारस, कारडव आदि जल-पक्षियो का कलनाद ऐसा मीठा सुनाई पड रहा था, मानो वे लोगो का स्वागत कर रहे हो। राम ने उस ध्वनि को सुनकर, मध्याह्न के समय सिद्ध मुनिपुगवो से सुसेवित, शुद्ध तथा पुण्य जल से पूर्ण, पृथ्वी में श्रेष्ठ नदी के नाम से विख्यात जाह्नवी को देखा और उसको प्रणाम करके कहा—'हे गाधेय, वह जो

अगाध श्रेष्ठ नदी दिखाई पड़ रही है, वहाँ तक हम कैसे पहुँचेंगे ?' तब मुनि बोले--'हे नरनाथ, शोण नदी को पार करके तीन योजन आगे जाने पर हम उस महानदी के पास पहुँच सकते हैं । तब तक हमें मार्ग में जल और फल आदि बहुत मिल जायेंगे ।'

यों कहकर वे (शोण) नदी पार करके चलने लगे । (निदान) वे उस गगा नदी के तट पर पहुँचे, जो सारस-समूह, पुण्य-सलिला विलसित-स्वच्छ फेन तथा सुन्दर मछलियों से युक्त हो नित्य गभीर गति से बहती थी । वे वहाँ वन-लता-कुंजों से सजे एक समतल स्थान पर ठहर गये । वहाँ राजकुमार मध्याह्न की (संध्या आदि) पूजाओं से निवृत्त हुए, बड़े आनन्द से उचित आहार ग्रहण किया और मुनियों की संगति में बैठकर वार्तालाप करने लगे ।

(उस समय) राजहंसों द्वारा (कमल-पुष्पों को) हिलाये जाने से गिरे हुए कमल-रज से पूर्ण तथा राजीव-राजित तरंगों से युक्त गगा नदी को देखकर क्षत्रिय-तिलक रामचन्द्र ने कौशिक से पूछा—"हे महात्मा, गगा नदी इस पृथ्वी पर कैसे आई, यहाँ से वह स्वर्ग-लोक में कैसे पहुँची ? पाताल को वह कैसे प्राप्त हुई ? कैसे वह समुद्र में जा मिली ? उस महानदी का जन्म कैसे हुआ ? कृपया बताइए ।'

तब उस पुण्यवर्ती विश्वामित्र ने राम से कहा—"हिमवान् (हिमालय) के कमनीय दीप्तिवाली दो पुत्रियाँ हैं । देवता लोग हिमालय से प्रार्थना करके उन दोनों में से बड़ी पुत्री पुण्यशीला गगा को यज्ञ के लिये स्वर्गलोक में ले गये । दूसरी कन्या परम सुंदरी पार्वती को भाल-लोचन (शिव) की घोर तपोनिष्ठा से संतुष्ट हो, उन्हें पत्नी के रूप में दिया । गगा सुरुचिर गति से स्वर्ग में गई और वहाँ सुरनदी के नाम से विख्यात हुई ।'

इतना कहने के बाद मुनिवर ने राजकुमार को देखकर कहा—"और एक वृत्तांत है, सुनो । पार्वती से विवाह करने के पश्चात् चन्द्र-शेखर (शिव) बड़ी अनुरक्ति के साथ एक सौ दिव्य वर्षों तक रति-क्रीडा में निमग्न रहे । तब ब्रह्मा से लेकर समस्त देवता अपने-आप सोचने लगे कि इन दोनों (शिव-पार्वती) का विषम तेज कौन धारण कर सकेगा ? इनके द्वारा उत्पन्न पुत्र की विषम शक्ति के सामने कौन टिक सकेगा ? इसलिए वे सब महादेव के पास जाकर बड़ी भक्ति से विनम्र हो कहने लगे—"हे देवाधिदेव, हे महेश, हे सर्वेश, आपकी महिमा सभी देवता जानते हैं । हे सर्वज्ञ, आप हम पर प्रसन्न होइए । आपके महान् तेज को धारण करने की क्षमता किस में है ? इसलिए आप यह क्रीडा छोड दें । आप कृपा करके तपोवृत्ति ग्रहण कर ब्रह्मचर्य का पालन कीजिए ।' इस पर गौरीश ने उनकी बात स्वीकार कर ली और कहा—'(किन्तु) अब तो तेज अपने स्थान (रेत स्थान) से विचलित हो चुका है । अब आपमें से कौन इस तेज को धारण करेगा ?' तब उनकी बात मानकर हर ने अपने (तेज का) विमोचन धरती पर कर दिया । तब देवताओं ने अग्निदेव को देखकर कहा—'हे पावक, तुम पवन के साथ, धरती पर पडे हुए तेज में प्रवेश करो ।' अग्नि तथा वायु उस तेज को धारण करने में असमर्थ रहे । तब गगा नदी ने उस तेज को बड़ी श्रद्धा के साथ धारण किया । लेकिन अपने प्रभु का तेज धारण किये रहना उसके लिए भी असभव हो गया । वह भय से काँप उठी और उसकी लहरें

भय प्रकट करते हुए उत्तुग वन गई। तव उसने क्षुभित चित्त से उस तेज को अपने तट पर उगनेवाले सरकडो के वन में प्रतिष्ठित कर दिया। शिव का तेज उस सरकडे के वन में प्रतिष्ठित हुआ।

'एक दिन ऋषि-पत्नियाँ अपने नित्य कृत्यो से निवृत्त होने वहाँ आ पहुँची। उन्होने स्नान करते समय आपस में विचार किया कि हम ठड से ठिठुर रही है, इसलिए सरकडो की उस झाडी में त्रेताग्नियो के समान प्रज्वलित होनेवाली उन अग्नियो की हम शरण लेंगी (उसके पास जाकर अपनी ठड दूर करेंगी)। इस प्रकार सोचकर वे ऋषि-पत्नियाँ उन अग्नियो के पास जा पहुँची।

"जो स्त्रियाँ उन अग्नियो के पास गईं और जिन्होने वडे उत्साह से उन्हें देखा, वे सब गर्भवती हो गई। (इससे) वे अत्यत भीत हो उठीं और पश्चात्ताप करती हुई घर पहुँची। शातचित्त मुनियो ने अपनी योग-दृष्टि से उस सारे वृत्तान्त को जान लिया और उन स्त्रियो से कहा—'यह सब तुम्हारे गर्व तथा सुख की इच्छा का फल है।' (इसके पश्चात्) वे स्त्रियो पर क्रोधोन्मत्त हो, सारी पृथ्वी को कँपाते हुए-से बोले—'तुम सब बुद्धिहीन हो, तुम्हें क्षमा नही करनी चाहिए। तुम अपने पतियो से पृथक् हो जाओ।' इस पर वे फिर गगा नदी के पास गईं और कहने लगी—'हे माता क्या, यही तुम्हें करना चाहिए ? क्या (हमारी ऐसी दशा कर देना) तुम्हें शोभा देता है ?'

"इस प्रकार कहती हुईं वे स्त्रियाँ अपने गर्भ पर अपने हाथो से ताडन करने लगी। कर-ताडन के फल-स्वरूप उनके गर्भ विच्छिन्न हो छह खडो में पृथ्वी पर गिर गये। वे (स्त्रियाँ) गिरे हुए उन खडो को चुनकर उन्हें सरकडे के वन में रखकर तप करने चली गईं।

"वह उग्र तेज वहाँ एक जगह एकत्र होकर वढने लगा और वही इस पृथ्वी पर श्वेताद्रि के नाम से विख्यात हुआ। उस पर्वत पर परम शिव के तेज से कुमार का जन्म अद्भुत रीति से हुआ। जन्म-स्थान सरकडो से भरा प्रदेश था, इसलिए वे शरजन्मा (शरवणभव) कहलाये। इस पृथ्वी पर जन्म लेने के पश्चात् कृत्तिकाओ ने उन्हें स्तन्य-पान कराकर पाला-पोसा, इसलिए उनका नाम कार्त्तिकेय पड गया। वे माताएँ (कृत्तिकाएँ) छह थी। अतएव उन्हें सतुष्ट करने के लिए कुमार ने छह मुँह धारण करके स्तन-पान किया, इसलिए वे षण्मुख (और षाण्मातुर) कहलाये। चन्द्रमौलि के वीर्य-स्कदन (पतन) से उनका जन्म हुआ, इसलिए वे स्कद कहलाये।

"(फिर) यहाँ देवता शिव-पार्वती की स्तुति करने लगे। (पुत्रोत्पत्ति में वाधा डालने के कारण देवताओ पर) क्रुद्ध होकर लाल-लाल नेत्रो से उन्हें देखती हुई पार्वती ने कहा—'हे देवताओ, तुम और यह वसुधरा सतानहीन हो जाओ। आगे से इस पृथ्वी को वहु-पतित्व प्राप्त होगा।' (यह सुनकर) देवता व्याकुल हुए। उसके पश्चात् शिवजी पार्वती के साथ तपस्या करने हिमाचल पर चले गये।

"इन्द्र के साथ सभी देवता ब्रह्मा के पास गये और उनसे विनती की—'हे जलज-सभव, हमें अत्यत भुजबली एक सेनापति प्रदान कीजिए।' तव उन्होने देवताओ को देख-

देखकर कहा—'गौरीश के पुत्र कार्त्तिकेय तुम्हारी सेना का नायकत्व ग्रहण करेंगे ।' देवता बहुत प्रसन्न हुए और कार्त्तिकेय उनके सेनाधिपति हुए । इससे उन्हें कीर्ति तथा सुख प्राप्त हुए ।"

इस प्रकार मुनि के कहने पर रघुराम अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें देखकर कहा—'हे सयमीश्रेष्ठ, इस महानदी (गगा) के त्रिपथगा होने का क्या कारण है ?'

२६. गंगा नदी का वृत्तान्त

तब कौशिक श्रीराम से उसकी कथा यो कहने लगे—"गुणवान् सगर अयोध्या के विख्यात सम्राट् थे । पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से उन्होंने (एक बार) हिमाचल में भृगु की तपस्या की । उनकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर भृगु ने उन्हें देखकर कहा—'हे राजन्, तुम्हारे बहुत-से कीर्तिवान् पुत्र होंगे । तुम्हारी एक स्त्री एक वंशोद्धारक पुत्र का जन्म देगी और दूसरी स्त्री साठ हजार अतिबलशाली पुत्र उत्पन्न करेगी ।' यह वरदान प्राप्त करके रानियो ने हाथ जोडकर बडे विनय से मुनि को प्रणाम किया और पूछा—'हे मुनीश्वर, हम (दोनो) में से किसके एक पुत्र होगा और किसके साठ हजार पुत्र उत्पन्न होंगे ?' तब मुनि बोले—'तुम्हारी इच्छा जैसी हो, वैसे ही पुत्रो का जन्म होगा ।' इससे प्रसन्न होकर बडी रानी ने राजा से (अपने) नाम को सार्थक करनेवाले एक ही पुत्र पाने की इच्छा प्रकट की । दूसरी रानी ने साठ हजार पुत्रो को प्राप्त करना चाहा । फिर उन्होंने बडे हर्ष से उस मुनिश्रेष्ठ की परिक्रमा की, उन्हें प्रणाम किया और नगर को लौट आये ।

"कुछ दिनो के पश्चात् बडी रानी केशिनी ने असमजस (असमंज) नामक एक पुत्र को जन्म दिया । (दूसरी रानी) सुकृति ने लौकी के आकार का एक गर्भ-पिंड उत्पन्न किया, जिसमें से बडे आश्चर्य से साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए । तब धाइयो ने उन शिशुओ को घी के पात्रो में रखकर कुछ दिनो तक उनका पालन-पोषण किया । वे क्रमश रूप तथा यौवन प्राप्त करने लगे । ज्येष्ठ पुत्र बडे दर्प के साथ अपने छोटे भाइयो को बलात् पकड़-पकडकर सरयू नदी मे फेंक देता था और (उन्हें डूबते देख) बहुत हर्षित होता था । ऐसे दुष्ट असमजस के अशुमान् नामक एक तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ । असमजस को अति-दुष्ट जानकर राजा ने उसे निर्वासित कर दिया और शाश्वत-धर्म-निष्ठा में तत्पर हो अश्व-मेध-यज्ञ करने का यत्न करने लगे ।"

मुनि के यो कहने पर श्रीराम ने कौशिक से कहा—'हे मुनिनाथ, मुझे अपने पूर्वजो के चरित सुनने की बडी इच्छा हो रही है । कृपया विस्तार से कहें ।'

तब विश्वामित्र कहने लगे—"हिमाचल और विंध्याचल के मध्य की भूमि में सगर ने अपना अश्वमेध-यज्ञ प्रारभ किया । यज्ञाश्व की रक्षा करने के लिए अशुमान् नियुक्त किया गया । उस समय इन्द्र राक्षस का वेश धरकर अश्व को चुरा ले गया और पाताल-लोक में प्रवेश करके वहाँ तपस्या में लीन कपिल मुनि के निकट यज्ञाश्व को बाँधकर स्वय स्वर्गलोक को लौट आया । अश्व का पता न लगने से क्रुद्ध होकर राजा (सगर) ने अपने पुत्रो को सबोधित करके कहा—"अश्व का कही पता नही है । कोई कुटिलात्मा उसे चुरा ले गया है । अत तुम लोग तुरत जाओ और जिस किसी के पास वह अश्व हो, उसका

वध करके अश्व को शीघ्र ले आओ ।' साठ हजार सगर-पुत्र अपने भुज-बल का प्रदर्शन करते हुए, निकल पडे । उन्होने पहले स्वर्ग, फिर भूलोक में अच्छी तरह उस अश्व को ढूंढा । जब कही भी उसका पता न चला तब वे पृथ्वी को टुकडे-टुकडे करने लगे । 'हममें से प्रत्येक एक योजन पृथ्वी को खोद डालेंगे'—ऐसा निश्चय करके वे प्राच्य दिशा से प्रारभ करके, बडी-बडी कुदालो और शूलो से पृथ्वी को रसातल तक खोदने लगे । इस प्रक्रिया में सामने आनेवाले पातालवासी तथा अन्य प्राणियो के समूहो का सहार भी वे करते जाते थे ।

"इस प्रकार उन अतुल बलशाली राजकुमारो ने साठ हजार योजन भूमि सहज ही खोद डाली । इस प्रकार असख्य प्राणियो से युक्त जवूद्वीप को सतत खोदते हुए, उपद्रव करनेवाले सगर-पुत्रो को देखकर अमर, गधर्व तथा सिद्ध घबरा उठे और ब्रह्मा के पास जाकर भक्ति से प्रणाम करके बोले—'हे जलजसभव, वन, पर्वत तथा द्वीपो से युक्त इस पृथ्वी को सगर-पुत्र खोद रहे है । जो कोई भी उनकी दृष्टि में पड जाता है, उसे 'इसीने यज्ञ में बाधा डाली है, यही अश्वहर है,' ऐसा कहते हुए व्यर्थ ही उसका वध कर डालते है । इस प्रकार उन्होने कितने ही शक्ति-सपन्न जलचरो का सहार कर डाला । आप कृपया इसके निवारण का कोई उपाय कीजिए ।

"तब ब्रह्मा ने उनसे कहा—'अव्यय दामोदर (विष्णु) कपिल मुनि के रूप में तप कर रहे है । उस मुनि की क्रोधाग्नि में वे सब भस्म हो जायेंगे ।'

"सगर-पुत्रो ने वज्र के समान भयकर गर्जन करते हुए इस पृथ्वी को चारो ओर से खोद डाला, किन्तु उन्हें कही भी घोडे का पता न चला । तब वे अपने पिता के पास लौट आये और बोले—'हे देव, हमने समस्त पृथ्वी छान डाली, किन्तु कही भी हमें अश्व के चोर का पता नही चला । अब जैसी आपकी आज्ञा हो ।'

"तब राजा ने अत्यन्त क्रोध से अपने पुत्रो से कहा—'तुम लोग समस्त विश्व में व्याप्त होकर घोडे की खोज करो । बिना अश्व के तुम लोग यहाँ मत आना ।'

"सगर-पुत्रो ने पिता की आज्ञा शिरोधारण करके बडी भयकर गति से रसातल में प्रवेश किया । वहाँ वे पूर्व से लेकर दक्षिण की तरफ खोदने लगे । पूर्व दिशा-भर में खोजने पर उन्हें कही भी घोडा दिखाई नही पडा । उन्होने वहाँ पर एक श्रेष्ठ गजेन्द्र को देखा, जो चारो ओर से पृथ्वी-तल को इस प्रकार सँभाले हुए था, जैसे विष्णु ने अपनी सुन्दर भुजाओ से पृथ्वी को ऊपर उठाया था । सगर के पुत्रो ने उस गजराज को देखकर उसकी पूजा की और बिना विलब किये आग्नेय दिशा में चल पडे । वहाँ खोजने पर भी उन्हें उस अश्व का पता नही लगा । वहाँ निरतर बहनेवाले मदजल की सुगधि से आकृष्ट, भ्रमरो से युक्त 'पुण्डरीक' नामक गज को देखकर उसकी पूजा तथा स्तुति की और दक्षिण दिशा में चल पडे । वहाँ भी उन्हें अश्व का कोई समाचार नही मिला । किन्तु वहाँ उन्होने 'वामन' नामक श्रेष्ठ गज को देखकर उसकी अर्चना की और नैऋती दिशा में खोज करने लगे । वहाँ भी अश्व का पता नही लगा । वहाँ उन्होने कुमुद-समान कोमल तथा कुमुद-पुष्प के वर्णवाले 'कुमुद' नामक कुजर को देखा । उन्होने उसको प्रणाम करके पश्चिम

की ओर प्रस्थान किया । वहाँ खोजने पर भी अश्व नहीं मिला । पर वहाँ उन्होंने अजन-पर्वत के समान, मदजल से युक्त 'अजन' नामक हाथी को देखकर उसकी वदना की । वे वहाँ से वायव्य दिशा में निकल पड़े, पर बहुत समय तक खोजने पर भी अश्व का पता नहीं लगा सके । वहाँ 'नमुचि' नामक राक्षस का सहार करनेवाले हाथी के समान दाँत रखते हुए भी 'पुष्पदन्त' नाम से अभिहित गज को देखकर बडी भक्ति से उसको प्रणाम किया और वहाँ से कुबेर की दिशा (उत्तर) में खोजने निकले । वहाँ भी उन्हें अश्व नहीं दीख पडा । वहाँ उन्होंने समस्त गज-लोक के चक्रवर्ती के समान विराजमान 'सार्वभौम' नामक गजेन्द्र को देखा और बडी भक्ति से उसको प्रणाम किया । वहाँ से ऐशानी दिशा में चले । उस समय उन्होंने निकट ही नेत्र बद किये हुए एकात तपोनिष्ठा में लीन हुवनाग्नि के समान (पवित्र) अनघात्मा महामुनि कपिल को और उनके पास ही अश्व को (बँधा हुआ) देखा । सगर-पुत्र उन्हें कष्ट देने लगे । जब मुनि ने क्रोध में आकर उनकी ओर दृष्टि डाली, तब वे साठ हजार सगर-पुत्र वहीं भस्मीभूत हो गये ।

"अश्व के लाने में विलब होते देखकर 'सगर' बहुत दुखी हुए और उन्होंने अपने पोते अशुमान् को भेजा । अशुमान् भी उसी मार्ग से गया और पूर्व दिशा में रहनेवाले 'विरूपाक्ष' नामक हाथी को देखकर उसकी परिक्रमा की और उससे विनयपूर्वक पूछा—'हे गजराज, क्या आप बता सकते हैं कि मेरे चाचा किस दिशा में गये हैं, कहाँ हैं और अश्व का चोर कहाँ छिपा है ?'

तब उस गजराज ने अशुमान् को बडे स्नेह के साथ देखते हुए कहा—'हे राजकुमार, तुम किसी स्थान में अवश्य अश्व को देख सकोगे ।' वहाँ से चलकर प्रत्येक दिग्गज से इसी प्रकार प्रश्न करते हुए और इसी प्रकार का उत्तर प्राप्त करते हुए अत में उसने कपिल मुनि के निकट यज्ञाश्व को देखा । वहाँ सगर-पुत्रो के शरीरो की भस्म-राशियो को देखकर वह शोक-सतप्त हो गया । उसने अपने पितरो की तिलोदक-क्रिया करने के विचार से जल की खोज की, पर वहाँ जल कहीं भी नहीं मिला ।

२७. गंगावतरण की कथा

"उस राजकुमार पर दया करके उस समय वहाँ गरुड आये और राजकुमार से कहने लगे–'हे पुत्र, कपिल को क्रोधित करके उनकी क्रोधाग्नि से सभी सगर-पुत्र भस्म हो गये हैं । इस तरह शोक-सतप्त क्यो होते हो ? यह शोक करने का समय नहीं है । एक बात सुनो । सरसिजासन (ब्रह्मा) के लिए वद्य, अरविंद-चरणवाले, अरविंददल-नेत्रवाले, आदि-पुरुष (विष्णु) ने दानव-राजा बलि को बाँधते समय, त्रिविक्रम का रूप धारण करके, अपनी अगणित शक्ति से दो पादो में ही समस्त पृथ्वी को समेट लिया था और जलजात, जलचर, तथा शख-चक्र के लिए परिचित तीसरा चरण ब्रह्मलोक तक फैलाया था । तब ब्रह्मा शीघ्र वहाँ आये और बड़ी भक्ति के साथ अपने कमडल के जल से उनके चरण-कमल धोये । वह जल स्वर्गलोक में मदाकिनी के नाम से बह रहा है । तुम बडी भक्ति के साथ ब्रह्मा की कृपा पाने के लिए तपस्या करो और स्वर्गलोक की उस गगा को इस

पृथ्वी पर ले आओ । उस पवित्र जल से इन भस्म-राशियो को सीचने से ही सगर-पुत्रो को स्वर्गलोक का सुख प्राप्त होगा । इसलिए तुम पहले इस अश्व को लेकर जाओ ।'

"अशुमान् अश्व को अपने साथ लेकर गया और अपने दादा को सारी कथा कह सुनाई । सगर अत्यत दुखी हुए । उन्होने पुण्य-यज्ञ समाप्त किया और उसके पश्चात मदाकिनी को पृथ्वी पर लाने के उद्देश्य से तीस हजार वर्ष तक सतत तप करते रहे और (विना सिद्धि प्राप्त किये ही) स्वर्ग सिधारे । उस राजा का पोता अशुमान् भी मदाकिनी को पृथ्वी पर लाने का दृढ सकल्प करके लगातार तीस हजार वर्ष तक तपस्या करने के वाद स्वर्ग-लोक को प्राप्त हुआ । उसका पुत्र राजा दिलीप भी मदाकिनी को पृथ्वी पर लाने के उद्देश्य से तीस हजार साल तक तपस्या करता रहा और अत में वह भी रोग-पीडित होकर दिवगत हुआ । उसके पुत्र पुण्यवान् भगीरथ ने अपना राज्य अपने मत्रियो के हाथो में सौपकर, धर्मात्मा तथा सद्गुण-सपन्न पुत्रो की प्राप्ति तथा पृथ्वी के समस्त पापो को दूर करने की इच्छा से आकाश-गगा को पृथ्वी पर ले आने का दृढ सकल्प कर लिया । उन्होने अत्यत भक्ति के साथ गोकर्णाश्रम में दस हजार वर्ष तक अनुपम रीति से तपस्या की । उनकी तपस्या से सतुष्ट होकर ब्रह्मा ने उन्हे दर्शन देकर कहा कि तुम कोई वर माँगो ।

"तव भगीरथ ने हाथ जोडकर कहा—'हे भारती-वल्लभ, हे लोक-स्रष्टा, हे सूर्यलोक-रक्षक, हे सत्यसपन्न, हे विधाता, हमारे पूर्वज अपनी उद्दण्डता के कारण कपिल की क्रोधाग्नि में भस्मीभूत होकर सौ सहस्र वर्षो से परलोक-गति से वचित हो भस्म के रूप में पडे हुए है । उस भस्म को मदाकिनी के पवित्र जल से सीचे विना उन्हें मुक्ति नही मिल सकती ।'

"इस पर ब्रह्मा ने कहा—'परमशिव के अतिरिक्त अन्य कोई उस गगा को धारण नही कर सकेंगे । इसलिए, तुम निष्ठा के साथ शिव की तपस्या करो कि वे गगा को धारण करें ।' इतना कहकर ब्रह्मा ने भगीरथ को उनकी इच्छा के अनुसार पुत्र-प्राप्ति का वर दिया और ब्रह्मलोक को चले गये ।

"उसके पश्चात् भगीरथ ने एक अगूठे पर खडे होकर शिवजी के प्रति घोर तपस्या की । उनकी तपस्या से सतुष्ट होकर शिवजी ने उन्हें दर्शन देकर कहा—"तुम गगा को ले जाओ, मै उसे अपने सिर पर धारण करूँगा ।' तव भगीरथ ने गगा की प्रार्थना की । गगा गगन-मडल तथा नक्षत्र-मडल को भेदकर समस्त लोको को अपने गुरु गर्जन से गुँजाती हुई, सारे जगत् को भयभीत करती हुई, यो प्रवाहित होने लगी, मानो वह कुल-पर्वतो से युक्त पृथ्वी के साथ महादेव को भी पाताल तक बहा ले जाना चाहती हो । शिवजी ने उसका गर्व-भग करने के लिए अपने जटा-जूट को ऐसा बढाया कि गगा उसमें उलझकर बाहर निकलने में असमर्थ हो गई ।

"तव भगीरथ आश्चर्य करने लगे, उतनी विशाल जल-धारा कहाँ छिप गई होगी ! उन्हें भय होने लगा । इसलिए, वे फिर शिवजी के प्रति उग्र तपस्या करने लगे । भगीरथ के तप से सतुष्ट होकर (शिव ने) अपने जटा-जूट में वँधी हुई गगा से कहा—'अव तुम भूलोक में चली जाओ ।'

"तब गंगा उनके जटा-जूट के दक्षिण भाग से बाहर निकली। उस मन्दाकिनी की धारा में मुकुलित कमल ऐसी शोभा दे रहे थे, मानो वह (मन्दाकिनी) पाताल की ओर देखकर अपनी दिव्य-दृष्टि से वहाँ के कपिल मुनि को पहचानकर, उनकी महिमा पर आश्चर्य करती हुई हाथ जोड़े उनसे प्रार्थना करती हो कि (हे मुनि) आपने जिन सगर व्यक्तियों से क्रुद्ध किया था, उन्हें सद्गति प्रदान करने के लिए मैं आ रही हूँ, आप क्रोध न करें। उस धारा में भँवर ऐसे पड़ रहे थे मानो उस मुनि के क्रोध की कल्पना करके मन्दाकिनी भय से व्याकुल हो रही हो। धारा के बीच कमल-पुष्पों में भौंरा जाने से उनमें बैठे न रह सकने के कारण भ्रमर आकाश में व्याप्त हो इस प्रकार गुंजार कर रहे थे, मानो सगर-पुत्रों के पाप, वेग से आनेवाली मन्दाकिनी की धारा को देखकर इधर-उधर भागते हुए शिवजी से विनती कर रहे हों कि (हे शिवजी) गंगा हम पर आक्रमण करने के लिए आ रही है, हम अब भागकर कहाँ जावें? हंस आकाश-मार्ग में ऐसे भ्रमण कर रहे थे, मानो शिव के जटा-जूट से पृथ्वी पर उतरनेवाली गंगा को दूर से बताना चाहते हों। उस नदी की सुंदर तथा उत्तुंग लहरें ऐसी शोभा दे रही थीं, मानो वे सगर-पुत्रों के पाप-समूह को मिटानेवाले उस (नदी के) हाथ हों। धारा उसके अधिक फेन से व्याप्त थी, मानो भगीरथ की अनुपम कीर्ति समस्त संसार में व्याप्त होने के लिए प्रस्तुत हो रही हो। उस नदी का अतुल घोष शब्द बढ़ता हुआ सारे ब्रह्माण्ड तथा आकाश में व्याप्त हो गया। इस प्रकार वह शिव के जटा-जूट से बिंदु-सरोवर में यह कहती हुई उतरी कि मैं इस संसार के पापियों को पुण्य प्रदान करने के लिए आ रही हूँ। ब्रह्मा आदि देवता उसकी स्तुति करने लगे। सुर तथा किन्नर बड़े उत्साह से वह दृश्य देखने लगे। गरुड़ तथा गंधर्व उसकी प्रशंसा करने लगे।

"मंदाकिनी की धारा की सात शाखाएँ हुईं। पावनी, ह्लादिनी, और नलिनी नामक तीन शाखाएँ पूरब की ओर गईं। सीता, सुचक्षु तथा सिंधु नामक तीन शाखाएँ पश्चिम की की ओर गईं। एक शाखा राजा भगीरथ के पीछे भूलोक की ओर चली। वह श्रेष्ठ तथा विशाल जल-धारा आकाश-मार्ग में शरत्काल के बादल के समान शोभित हो रही थी। वह जल-धारा, पृथ्वी की तरफ इस प्रकार उतर रही थी, मानो स्वर्गाभिलाषी भूलोक-निवासियों के लिए सीढ़ी लगी हो। उसकी तरंगों की ध्वनि पृथ्वी तथा आकाश को गुँजा देती थी। उस धारा में ऐसे भँवर पड़ रहे थे, मानो वह यह बताना चाहती हो कि मैं (पृथ्वी) के समस्त पापों को इसी तरह नचा दूँगी (ध्वस कर दूँगी)।

"पृथ्वी पर उसके उतरते समय जल की बूँदें आकाश की तरफ ऐसे उछल रही थीं, मानो वे नक्षत्रों से मित्रता करना चाहती हों। उसका स्वच्छ फेन-समूह ऐसा सुशोभित हो रहा था, मानो वह नदी (बड़े हर्ष से) हँसती हुई यह कह रही हो कि मैं धर्मात्माओं की पवित्र कीर्त्तियों के लिए योग्य स्थान हूँ। उस धारा में क्रीडा करनेवाली मछलियाँ ऐसी दीख रही थी, मानो नदी कह रही हो कि मै अपने असख्य नेत्रों से पृथ्वी की श्रेष्ठता देखूँगी। इस प्रकार भिन्न-भिन्न जलचरों से युक्त हो, वह नदी पृथ्वी पर उतर आई।

"तव सौ-सौ सूर्यो की कान्ति के समान प्रकाशित होनेवाले, बहु-रत्न-खचित आभूषणो की कान्ति से सारे आकाश को दीप्तिमान् करते हुए, गज तथा विमानो में आरूढ होकर अमर, गधर्व तथा सिद्ध वडे कौतुक से इस दृश्य को देखने आये । उस प्रवाह की चचल गति को देखकर महानागो ने भी उसके सामने घुटने टेके । देवताओ ने जप आदि करके उस नदी में स्नान किया और वहुत ही प्रसन्न हुए । अप्सराओ ने नृत्य किया, देवो तथा मुनियो ने वडे हर्ष से उस नदी की पूजा पुष्पो से की । उस पुण्य-नदी की धारा में अमित पापी तथा शाप-पीडित जन स्नान करके स्वर्ग जाने लगे । देवता, अप्सराएँ, गधर्व, दनुज, पन्नग, यक्ष, किन्नर आदि वडे उत्साह से भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे चले ।

"तव वह गगा वडे-वडे पर्वतो को भेदती हुई भगीरथ के पीछे-पीछे जाने लगी । उसी मार्ग में जह्नु नामक ऋषि की यज्ञ-भूमि थी । गगा ने अपने अतुल प्रवाह से उस आश्रम-भूमि को घेर लिया । यज्ञोपकरण सभी गगा के प्रवाह में वह गये । यज्ञ में विघ्न पडा हुआ देख, जह्नु क्रुद्ध हुए और उद्धत गति से आनेवाली उस गगा का सारा जल पी गये । तव देवता तथा मुनियो ने भगीरथ से कहा—'हे राजन्, यह मुनि क्रोध में आकर गगा को पी गये है । आप उनसे अपना क्रोध त्यागने तथा गगा को मुक्त करने की प्रार्थना कीजिए । मुनि प्रसन्न होकर आपकी प्रार्थना स्वीकार करेंगे ।' तव भगीरथ वड़ी भक्ति तथा विनय के साथ हाथ जोडकर उस मुनि से प्रार्थना करने लगे ।

"हे मुनिचन्द्र, हे विमलात्मा, मैं इस श्रेष्ठ गगा को घोर तपस्या के उपरान्त पृथ्वी पर ला सका हूँ । किंतु, यहाँ आने के वाद मैं उसे खो वैठा । हे धन्यचरित, हे सयमीन्द्र, आप कृपाकर उसे मुक्त कर दें ।' (राजा की वात सुनकर मुनिवर के मन में दया उत्पन्न हुई) वे वोले—'हे भगीरथ, गगानदी को इस प्रकार पृथ्वी पर ले आने में आपकी तपस्या, आपके महत्त्व तथा आपकी कीर्त्ति का वर्णन मैं कैसे करूँ ? अव मैं गगा को मुक्त कर दूँगा । इस ससार में आपके यश की व्याप्ति होगी ।'

"इस प्रकार कहकर, गगा को मुँह से छोडकर उसे जूठा न करने की इच्छा से उन्होने अपने कान के मार्ग से उसे वाहर छोड दिया । पूर्व की तरह गगा प्रवाहित होने लगी । तभी उसका नाम जाह्नवी पड़ गया ।

"जिस प्रकार पूर्वकृत पुण्य जीवन के विघ्नो को दूर करता हुआ आता है, उसी प्रकार जाह्नवी राजा के पीछे चली और समुद्र में प्रवेश करके रसातल में पहुँच गई । वहाँ सगर-पुत्रो की भस्म-राशियो को अपने पुण्य-सलिल से सीचा । तव कमलासन (ब्रह्मा) ने वड़े हर्ष से भगीरथ से कहा—'हे राजन्, जवतक समुद्र में जल रहेगा तवतक ये सगर-पुत्र दिव्य चदन, वस्त्राभूषणो से अलकृत हो स्वर्ग-लोक में दिव्य भोगो का अनुभव करेंगे । हे अनघ, आज से यह नदी भागीरथी, त्रिपथगा तथा जाह्नवी के नामो से समस्त लोको में विख्यात होगी । तुम्हारे पूर्वज सगर, अशुमान् तथा दिलीप ने जो सकल्प किया था, वे उसे सिद्ध नहीं कर सके । तुम वडे प्रयत्न के उपरान्त गगा को इस पृथ्वी पर ले आये हो, (अतएव) तुम गगाजल के निर्मल तथा कमनीय पद को प्राप्त करके चिर कीर्त्ति-वान् होकर निवास करो । काकुत्स्थ-वश की प्रतिष्ठा तथा गौरव के आधार-स्वरूप पुत्रो

को प्राप्त करो । तुम सुंदर यशों के आगार हो गये । अब तुम इस पुण्य-सलिल में विधिवत् पुण्य-स्नान करके उसका फल प्राप्त करो ।' यों कहकर कमलासन (ब्रह्मा) अपने लोक को चले गये ।

"उसके पश्चात् भगीरथ ने गंगा में स्नान करके बड़ी निष्ठा के साथ साठ हजार सगर-पुत्रों की तिलोदक-क्रिया की । उस पुण्य-क्रिया के फलस्वरूप सगर-पुत्रों ने अमरत्व प्राप्त किया और भगीरथ को आशीर्वाद देकर स्वर्गलोक सिधारे । पुण्यवान् भगीरथ अयोध्या लौटकर सुख से राज्य करने लगे ।

"पापों का नाश करनेवाला यह उपाख्यान जो कोई भक्ति से पढ़ेगा या सुनेगा, वह अनंत पुण्य प्राप्त करता हुआ धन-धान्य तथा यश से समृद्ध हो चिरंजीवी होगा । उसपर सभी देवता प्रसन्न होंगे, उसके सभी कार्य सिद्ध होंगे, उसे स्वर्ग की प्राप्ति होगी तथा उसके पितरों को सद्गति मिलेगी ।"

इस प्रकार राघव ने गंगावतरण की कथा कौशिक से सुनकर उनकी प्रशंसा करते हुए कहा—'हे मुनीन्द्र मैं आपसे पृथ्वी पर गंगावतरण की कथा बड़े आश्चर्य के साथ सुन प्रसन्न हुआ ।'

(उन्होंने) वह रात्रि वहीं बिताई और प्रातःकाल ही उस प्रसिद्ध नदी में स्नान करके संध्या आदि कार्यों से निवृत्त होकर जाह्नवी नदी को पार किया । नदी के उत्तर तट पर निवास करनेवाले मुनियों की बड़ी भक्ति के साथ पूजा की और उस स्थान को छोड़कर आगे चले ।

थोड़ी दूर जाने पर उन्हें 'विशाला' नामक सुंदर नगर दिखाई पड़ा । तब राम ने गाधेय को संबोधित करके पूछा—'हे मुनि, इस नगर का नाम क्या है ? किस वंश का राजा यहाँ राज्य करता है ? आप कृपाकर बतलाइए ।'

२८. अमृत-मंथन की कथा

तब कौशिक ने राघव से कहा—"मैंने बहुत पहले यह कथा इन्द्र से सुनी थी । प्राचीन काल में दिति के अत्यन्त बलवान् तथा पराक्रमी पुत्र तथा अदिति के बड़े धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुए । उन्होंने सोचा कि क्षीरसागर को पहले रस तथा ओषधियों से भरकर उसका मथन करें और उस जलराशि से उत्पन्न होनेवाली श्रेष्ठ तथा कान्तियुक्त वस्तुओं को बड़ी प्रसन्नता से ग्रहण करें । (इस प्रकार सोचकर) वे मंदर-पर्वत को मथनी और वासुकी को रस्सी बनाकर मथन करने लगे । उस समय समुद्र में से समस्त लोकों को, मन्मथ-समुद्र में डुबोने की क्षमता रखनेवाला सौंदर्य, क्वणित होनेवाली करधनी से युक्त गुरु नितम्ब, क्षीण कटि, सुन्दर कुच, कोमल भ्रू-लता-रूपी कोदण्डवाले कामदेव के बाणों के समान (तीक्ष्ण) कटाक्ष, भव्य भुज-लता-विक्षेप, अमर नव-यौवन तथा कमनीयता से सुशोभित साठ हजार अप्सराएँ तथा उन सुन्दरियों के योग्य हाव-भावों से युक्त परिचारिकाएँ उत्पन्न हुईं । उन अप्सरा-युवतियों को देवता तथा दैत्यों ने क्रमशः ले लिया । उसके पश्चात् भी समुद्र-मथन चलता रहा । तब वरुण की पुत्री वारुणी का जन्म हुआ । दिति के पुत्रों ने उसका वरण करना स्वीकार नहीं किया । इसलिए वे असुर कहलाये । अदिति

के पुत्रो ने उसे स्वीकार कर लिया । इसलिए, वे सुर के नाम से विख्यात हुए । उसके पश्चात् उच्चैःश्रवा नामक अश्व, श्वेत गज (ऐरावत) तथा कौस्तुभ-मणि का जन्म हुआ । कौस्तुभ-मणि के बाद अमृत उत्पन्न हुआ । अमृत के बाद सुधा-कमण्डल को लिये धन्वन्तरि का जन्म हुआ । फिर विष उत्पन्न हुआ । जब वह (विष) अत्यन्त भयकर अग्नि के समान व्याप्त होने लगा, तब शिव ने उसका पान किया । इसके उपरान्त अमृत के लिए सुर और असुर परस्पर युद्ध करने लगे । उस समय उन सुरासुरो को देखकर सुरो पर कृपा करते हुए, विष्णु एक सुन्दरी का रूप धारण कर आये और अमृत का वितरण करने लगे । उस समय राहु तथा केतु नामक राक्षस (विष्णु के मन की बात जानकर) सुरो की पक्ति में आकर बैठ गये और अमृत के लिए हाथ फैलाया । उनके शरीर की कान्ति देखे बिना ही उस सुन्दरी ने अमृत दे दिया । रवि तथा शशि ने बडी घबराहट के साथ इसे देखा और सुन्दरी को आँख के सकेत से यह बताया । तब विष्णु ने क्रुद्ध होकर अपना चक्र उन (राक्षसो) पर चलाकर उनके सिर काट डाले । उन्होने उन राक्षसो के शिरो को ग्रहो के रूप में आकाश में प्रतिष्ठित किया । अमृत-पान करने से वे मृत्यु को प्राप्त हुए बिना रहने लगे । उसी दिन से वे (राक्षस) पुण्य के दिनो में सूर्य और चन्द्र को पीड़ा पहुँचाते आ रहे है ।

"सुन्दरी ने असुरो की आँख बचाकर सुरो को ही अमृत दिया और युद्ध में उनको विजय भी प्रदान की । इन्द्र ने सभी दैत्यो का नाश किया और तीनो लोको का अधिपति बनकर राज्य करने लगा ।

"अपने सभी पुत्रो की मृत्यु से दुःखी होकर दिति ने बडी दीनता से अपने पति कश्यप से कहा—'हे महात्मा, आप मुझे एक ऐसा पुत्र प्रदान कीजिए, जो इन्द्र को भी मारने की शक्ति तथा पराक्रम रखता हो ।' उसकी प्रार्थना स्वीकार करके कश्यप ने कहा—'हे भद्रे, यदि तुम एक हजार साल तक शुद्धात्मा तथा पवित्र रह सकोगी, तो तुम्हें तीनो लोको को जीतनेवाला तथा इन्द्र का अन्त करनेवाला पुत्र मुझसे प्राप्त होगा ।' यो कहकर उन्होने अपने कर-कमल से दिति के शरीर का मृदु गति से परिमार्जन कर दिया । उसके पश्चात् वे तप करने चले गये ।

"उनके चले जाने के बाद दिति 'कुशप्लव' (नामक स्थान में) उग्र तपस्या करने चली गई । यह वृत्तान्त जानकर इन्द्र माता दिति के पास शिष्य के रूप में पहुँच गया और बडी भक्ति के साथ उनकी पूजा-अर्चना करने के लिए आवश्यक कुश, समिधा, फल, कद-मूल, जल आदि वस्तुएँ जुटाते हुए सतत उनकी सेवा-परिचर्या करता रहा । दिति जब जो वस्तु चाहती, वह उसके सकेत-मात्र से ही वह वस्तु वहाँ प्रस्तुत कर देता था । इस प्रकार नौ सौ निन्यानवे वर्ष बीत गये ।

"एक दिन दिति अपने मन की बात छिपा नही सकी । उन्होंने इन्द्र से कहा—'हे इन्द्र, मैंने तुम्हारे पिता से एक पुत्र की प्रार्थना की थी । एक हजार वर्ष के उपरान्त मुझे एक पुत्र होगा, ऐसा वर उन्होने मुझे प्रदान किया है । आज से दस वर्ष के पश्चात् तुम्हारे भाई का जन्म होगा । तुम और वह दोनो तीनो लोको का राज्य करोगे और यशस्वी बनोगे ।'

उस दिन मध्याह्न के समय दिति थकावट के कारण, अपने केश बिखेरकर (खाट पर) पायताने की तरफ सिर रखकर सो गई । उन्हें इस प्रकार देखकर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुआ और सोचा कि यही मेरे लिए अच्छा अवसर है । उसने अपनी योग-शक्ति से दिति के गर्भ में प्रवेश किया और अपने वज्रायुध से अपने शत्रु-शिशु के खण्ड-खण्ड करने लगा । शिशु का रुदन सुनकर दिति जाग पड़ी । तब इन्द्र धीरे-धीरे कहने लगा—'मा रुद मा रुद (मत रोओ, मत रोओ) । दिति चिल्लाने लगी—'शिशु का वध मत करो ।' दिति का क्रंदन सुनकर इन्द्र गर्भ से बाहर आ गया और हाथ जोड़कर बड़ी भक्ति के साथ दिति से कहा—'माता, आप मुक्तकेशी होकर पायताने की ओर सिर किये सो रही थी । इससे आपकी पवित्रता में भंग पड गया । इसलिए मैंने अपने कार्य की सिद्धि के लिए आपके गर्भ में प्रवेश करने का साहस किया और मेरा नाश करने के लिए उत्पन्न होनेवाले गर्भस्थ शिशु के सात खण्ड कर दिये । नन्हा शिशु मेरा शत्रु था, इसलिए मैंने उसका वध किया । हे माता, धर्म का विचार करके आप (मुझे) क्षमा कीजिए ।' इस प्रकार इन्द्र दुःख प्रकट करने लगा ।

"इन्द्र को दुःखी देखकर दिति ने कहा—'हे स्वर्ग के स्वामी, इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है । सारा दोष मेरा ही है । ये सातों खण्ड मरुत नाम से तेजस्वी बनकर उत्पन्न होंगे । तुम उन्हें इच्छानुसार सारे संसार में विचरण करने देना । तुम मेरे इन सातों पुत्रों को सप्त मारुतों के गण-नायक बनाना । यही तुमसे मेरी विनती है ।'

"इन्द्र उनकी प्रार्थना स्वीकार करके इन्द्रलोक को चला गया । वे सातों शिशु क्रमशः इन्द्र की मित्रता प्राप्त करके मरुद्गण तथा देवता बन गये । इसी पुण्य-प्रदेश में देवेन्द्र ने दिति की परिचर्या की थी । वहीं पर इक्ष्वाकु नामक राजा ने अपनी रानी अलबुषा से 'विशाल' नामक पुत्र उत्पन्न किया था । उस विशाल ने यहाँ 'विशाला' नामक नगर का निर्माण किया । उस विशाल के हेमचद्र नामक पुत्र हुआ । उसने सुचन्द्र को, सुचन्द्र ने धूम्राश्व को, धूम्राश्व ने सृंजय को सृंजय ने कुशाश्व को, उसने सोमदत्त को, सोमदत्त ने ककुत्स्थ को और ककुत्स्थ ने सुमति को जन्म दिया । वह सुमति अभी इस नगर में रहते हुए अत्यन्त धर्म-वृद्ध होकर राज्य कर रहा है । हे अनघ, धर्म तथा वैभवसंपन्न ये राजा संसार में 'वैशालिक' के नाम से विख्यात हैं । हम यहाँ आज की रात्रि बितायें और प्रातःकाल होते ही राजा को देखने चलेंगे ।"

वहाँ का राजा सुमति विश्वामित्र के आगमन का समाचार जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ । वह अपने पुरोहित तथा बंधु-जनों के साथ नगर के बाहर आया और विधिवत् संयमीन्द्र विश्वामित्र की पूजा करके उनसे हाथ जोड़कर बड़ी श्रद्धा से कहा—'हे मुनीन्द्र, मैं आज इस पृथ्वी पर धन्य हुआ । मेरा जन्म सार्थक हुआ ।'

परस्पर कुशल-प्रश्नों के पश्चात् सुमति ने विश्वामित्र को संबोधित करके कहा—'हे मुनिनाथ, आपके साथ रहनेवाले असमान रूपवान्, विशालबाहु, दिव्य-पराक्रमी, गज की गतिवाले, सिंह-सम शक्तिशाली, ललित तथा प्रफुल्ल अरविंद-सम नेत्रवाले, धनुष तथा करवाल-धारी, आकाश जैसे रवि-शशि के संचार से अलंकृत होता है, वैसे ही आपके पदन्यास को

अलंकृत करनेवाले, दर्शकों को दोनों ही सब प्रकार से समान दीखनेवाले ये कुमार कौन हैं? किसके पुत्र हैं ? कृपया बताइए।'

तब विश्वामित्र ने उसे देखकर कहा—"हे राजकुल-चन्द्र, हे सद्‌गुण-सागर, मैं इनका वृत्तान्त तुम्हें सुनाता हूँ, तुम सुनो। सरयू नदी के किनारे कोशल-देश में अयोध्या नामक नगर है। उस नगर में अत्यन्त प्रीति से प्रजा का पालन करनेवाले राजा दशरथ राज्य करते हैं। यह उनका श्रेष्ठ पुत्र राम है। यह उसका अनुज लक्ष्मण है। मेरी प्रार्थना पर राजा ने यज्ञ-रक्षणार्थ इन दोनों को मेरे साथ भेजा है। मेरे साथ आकर (इन दोनों ने) मेरे यज्ञ की रक्षा की, युद्ध में बड़े पराक्रम के साथ सुबाहु का वध किया और मारीच को परास्त किया। उसके पश्चात् मिथिला जाने के उद्देश्य से गंगा पार करके यहाँ आये हैं। ये राजचन्द्र सूर्य-वंश-तिलक हैं। उनके सामर्थ्य की कथा आश्चर्य में डालनेवाली है।"

विश्वामित्र के वचन सुनकर राजा सुमति आश्चर्य-चकित हुआ। उसने उन राजकुमारों का आदर-सत्कार किया। उन्होंने प्रेम से राजा का आतिथ्य ग्रहण किया। सबने रात्रि वहीं बिताई और प्रभात होने पर राजा ने उनको वहाँ से विदा किया।

२९. गौतम के आश्रम का वृत्तान्त

(वहाँ से चलकर) मार्ग में चलते-चलते राघव ने गौतम के आश्रम को देखकर गाधि-पुत्र को संबोधित करके कहा—"हे मुनीश्वर, ललित पल्लवों से युक्त, आम्र, कटहल, नारंगी, जंबीर, नारिकेल, देवदारु, बिजौरी, नीबू, बेल, सुपारी, केला, अशोक, लाख, दाड़िम, तेंदू, सेमल, चंदन, कर्पूर, मीठे आम, भिलावाँ, गुग्गुल, आदि पेड़ों से सुशोभित, सिंधुवार, पुन्नाग, मौलसिरी, चमेली, कुंद, कर्पूर आदि पुष्पों की सुगंधि से परिपूर्ण, सर्वत्र व्याप्त लौंग तथा एला की लताओं से युक्त, सरोवरों से सुशोभित, रम्य पक्षियों के कल-कूजन से मुखरित यह आश्रम-भूमि आज निर्जन क्यों है ? इसके पहले कौन मुनि यहाँ तपस्या करते थे ? कृपया बतलाइए।"

तब मुनि ने कहा—"किसी समय गौतम मुनि अहल्या के साथ इस आश्रम में अत्यन्त निष्ठा से घोर तपस्या करते थे। यह देख इन्द्र ने उनकी तपस्या में बाधा डालनी चाही। एक दिन उसने मुर्गे के रूप में पर्णशाला के पास पहुँचकर बाँग दी। मुनि (प्रातः-काल हो गया समझकर) अनुष्ठान करने के लिए (नदी-तट पर) चले गये। तब इन्द्र गौतम का रूप धारण करके आया और अहल्या को देखकर कहा—'अभी रात्रि बहुत बाकी है। हे सुन्दरी, यह तुम्हारा ऋतु-काल है। इस समय रति-क्रीडा करने की इच्छा से ही मैं आया हूँ।' इस पर (सारी बातें जानकर) अहल्या ने कहा—'मैं जानती हूँ कि तुम इन्द्र हो, अंदर चले आओ।' यों कहती हुई वह इन्द्र को पर्णशाला में ले गई और उसके साथ रति-क्रीड़ा की। जब इन्द्र झिझक तथा भय से वहाँ से जाने लगा, तभी गौतम मुनि वहाँ पहुँच गये। (इन्द्र को देख) उन्होंने शाप दिया—'रे पापी, क्या यह तुम्हारे लिए उचित है कि तुम मेरा रूप धारण कर मेरी पत्नी से मिलो। इस पाप-कर्म के लिए तुम अंडकोश-रहित हो जाओ।' गौतम का शाप अप्रतिहत होकर उसे लगा और तुरंत उसके अण्डकोश भूमि पर गिर गये।

"इसके पश्चात् गौतम ने अहल्या को देखकर कहा—'हे नारी, तुम पाषाण होकर इस भूमि पर पड जाओ और प्रचण्ड धूप में लोटती रहो ।' तब अहल्या ने उनसे पूछा—'हे देव, आपके शाप का अंत कैसे होगा ?' तब गौतम ने कहा—'वैकुंठवासी, अवाप्त-कामी, लोक-रक्षक और पुराण-पुरुष (विष्णु) राम के रूप में जन्म लेंगे । कौशिक के यज्ञ की रक्षा करने के बाद वे सूर्यवंशतिलक इसी मार्ग से आयेंगे। यदि उनके चरणों का स्पर्श तुमसे होगा तो तुम शाप-मुक्त हो जाओगी ।' यों कहकर वे शीताद्रि के लिए चल पड़े । वही मुनि-पत्नी यहाँ पाषाण के रूप में पड़ी हुई है ।

"जब सुरराज (इन्द्र) ने अपनी दुर्गति का समाचार देवताओं से कहा, तब उन्होंने मेष (भेड़) का अंडकोश लाकर इन्द्र के शरीर में जोड दिया । इसी कारण से पुण्यवान् लोग यज्ञ के समय मेषों का वध करते हैं ।

"इस प्रकार मुनि के शाप से पीडित अहल्या इसी तपोवन में पडी हुई है । हे राम, हे पुण्यधाम, तुम उस अहल्या का दुख-मोचन करो ।"

यों कहकर विश्वामित्र (राम-लक्ष्मण के साथ) गौतम के आश्रम में आये । श्रीराम का चरण छूते ही, बादलों के हटने पर प्रकाशित होनेवाले चन्द्र के समान, धुआँ से मुक्त होने पर हवन-कुंड की अग्नि-ज्वाला के समान, कलंक-रहित कमलिनी के समान, मलिनता से रहित स्वर्ण के समान, राम के चरण-कमलों के रज का स्पर्श होते ही पाप-मुक्त होकर उस स्त्री (अहल्या) ने शिला का रूप तजकर निज रूप प्राप्त कर लिया । वह पहले ही अपने पति से राम की महत्ता के विषय में सुन चुकी थी, इसलिए उस गजगामिनी ने उस महापुरुष का आतिथ्य किया और कहा—'आपके शुभागमन से मैं कृतार्थ हो गई । आपके चरण-कमलों ने मेरा उद्धार कर दिया । हे त्रिलोकीनाथ ! हे रघुनाथ ! आपका चरणोदक ही आकाश-गंगा के रूप में धरती के समस्त पापों को दूर करने (पृथ्वी पर) आया है । आपने अपने एक चरण से पृथ्वी को और दूसरे चरण से आकाश को नाप-कर बलि को दबाया था, सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर वेदों के शिरोभाग में विचरण करनेवाले आपके चरण यदि मुझे शाप-मुक्त कर दें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?' इस प्रकार अहल्या ने राम की स्तुति की । इतने में गौतम मुनि भी वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने रघु रामचन्द्र की पूजा की और पूर्व-जन्म की सुकृति-रूपी अहल्या को स्वीकार करके पूर्ववत् उसी आश्रम में रहने लगे । तब कुंभ-वृष्टि (घोर वृष्टि) हुई और देव लोग दुंदुभियाँ बजाने लगे ।

३०. मिथिला में आगमन

वे पुण्यचरित वहाँ से चलकर जनक की राजधानी मिथिला नगर में पहुँचे, जो गगनचुंबी प्राकारों, सौध-समूहों, रत्न-खचित गृहों, रमणीय राजमार्गों, दुर्गों, मनोहर उद्यानों, सुन्दर वनस्पतियों तथा समस्त शुभों से परिपूर्ण था ।

जनक की यज्ञ-भूमि में कलिंग, नैपाल, कर्णाटक, लाट, मालव, सौवीर, मगध, पांचाल, कुरु, पाण्ड्य, बर्बल, कुंतल, अवंती, मरु, तरुष्क, आभीर आदि देशों के राजा विराजमान थे । वह यज्ञ-भूमि, यज्ञोपकरणों तथा उसके अनुरूप पशुओं, यूपकाष्ठ, दधि-क्षीर से

भरे पूर्ण कुभो, समिधाओ से भरे सुदर स्थलो, पक्तियो में सजे हुए दर्भासनो, उचित आसनो पर विराजमान तपोनिधि मुनियो, अत्यन्त रमणीय रत्न-पल्लव तोरणो, सामादि वेदो के घोषो, सतत यज्ञ के दर्शनार्थ आनेवाले तपस्वियो, आकाश तक व्याप्त होनेवाला हवन का धुआँ, देवताओ का आह्वान करनेवाली ध्वनियो, पूजाओ को ग्रहण करनेवाले पुण्य सयमी (मुनियो) तथा पूजाओ को प्राप्त करने में न थकनेवाले ब्राह्मणो से परिपूर्ण था।

(गाधि-पुत्र को आया जानकर) जनक महाराज बडे उत्साह से उनके सम्मुख गये, मुनिनाथ को दडवत्-प्रणाम किया और उन्हें ले जाकर उनकी उचित पूजा की और कुशल-प्रश्न पूछे। उसके पश्चात् वे उस मुनीन्द्र की प्रशसा करते हुए कहने लगे—आपके आगमन से मै परम पवित्र हुआ। मेरा यज्ञ समृद्ध हुआ।' इस प्रकार कहने के उपरान्त उस मुनीन्द्र के पीछे सुशोभित विशाल वक्षवाले, काकपक्षधारी, महाधनुर्धर, कोमल शरीरवाले, सुभग, यशस्वी, भूमि पर अवतार लिये हुए देवताओ के समान दीखनेवाले दयालु, सतत प्रसन्नवदनवाले, भुवन-पावन चरित्रवाले, सूर्य तथा चन्द्र की-सी कान्ति से विलसित, आजानु-बाहु, अश्विनीकुमारो के समान दीखनेवाले, अतुल पराक्रमी और कमल-लोचनवाले, राम तथा लक्ष्मण को देखकर जनक ने विश्वामित्र से पूछा—'हे महात्मा, ये, धनुर्बाणधारी तथा चतुर बालक किनके पुत्र है? ये नव-पल्लव के सदृश अरुण तथा कोमल चरण-कमल यहाँ तक कैसे पैदल आये?'

तब विश्वामित्र ने कहा—'हे राजन्, ये अनघ महाराज दशरथ के पुत्र है। इन्होने अपनी अमित शक्ति से मेरे यज्ञ की रक्षा की। कृपा करके अहल्या का उद्धार किया और आपके घर में रखे हुए शिव-धनु को देखने यहाँ आये है।' मुनीश्वर की इन बातो से प्रसन्न होकर जनक ने उन (राजकुमारो) का स्वागत-सत्कार किया।

फिर गौतम मुनि के शिष्य शतानन्द ने कौशिक को सबोधित करके कहा—"हे महात्मा, राघव को अपने साथ ले आकर आपने हम पर बडी कृपा की है। इस विश्वप्रभु को यहाँ तक ले आने का कार्य किसके लिए सभव था? राघव के चरण-रज ने मेरी माता अहल्या के पापो का शमन कर दिया। गौतम मुनि के शाप से मुक्ति प्राप्त कर मेरी माता फिर मुनि से मिल गई है। रामचद्र के चरण की महिमा का वर्णन मैं किन शब्दो में करूँ?"

३१. विश्वामित्र की शक्ति का परिचय

इसके पश्चात् शतानद ने राम की ओर देख कर कहा—"हे रामचद्र, सुनते हैं कि यह पुण्यात्मा कौशिक, इस पृथ्वी पर, आपके अभिभावक है। अब आपको किस बात की कमी है? विश्वामित्र की असमान क्षमता का वर्णन करना कठिन है। फिर भी आप सुनें। हे दशरथात्मज, कुश नामक मुनि ब्रह्मा के पुत्र थे, कुश ने कुशनाभ को जन्म दिया। गाधि उस कुशनाभ के पुत्र थे। ऐसे पवित्र गाधि के ये (विश्वामित्र) पुत्र हैं। ये धर्म-निरत होकर, अमित पराक्रम के साथ पृथ्वी का शासन करते थे। एक दिन विनोदार्थ मृगया खेलने के लिए अपनी विशाल सेना के साथ निकले। बहुत समय तक वन में मृगया खेलने के पश्चात् बहुत ही थके-माँदे होकर वे वसिष्ठ के आश्रम में पहुँचे। वसिष्ठ का

आश्रम नाना प्रकार की सुगंधित पुष्प-मंजरियों से तथा विविध प्रकार के फलों से लदे वृक्षों से भरा था। पक्षियों का कलरव तथा वेद-घोषों से सारा आश्रम गूंज रहा था। उसमें कई सरोवर तथा यज्ञ की वेदियाँ थीं। भिन्न-भिन्न जाति के मृग अपने स्वभाव-सुलभ वैर को भूलकर वहाँ विचरण कर रहे थे। उनका आश्रम वायु, जल तथा (वृक्षों से गिरे) पाडु-पत्रों पर जीवन व्यतीत करते हुए तप करनेवाले मुनियों, योगियों, पुंगवों, पन्नगों, खेचरों, सिद्धों, सुपर्वों तथा किन्नरों से युक्त होकर ब्रह्मलोक के समान सुशोभित था। विश्वामित्र ने बड़ी प्रसन्नता तथा भक्ति से वसिष्ठ को प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद दिये और उचित आसन पर बिठाकर उनका सत्कार किया और सुस्वादु फल, मूल आदि प्रस्तुत किये।

"विश्वामित्र ने उन सबको ग्रहण करते हुए हाथ जोड़कर बड़ी भक्ति के साथ पूछा—'हे अनघात्मा! लोकहितार्थ चलनेवाले आपके तप तथा हवन आदि अच्छी तरह हो रहे हैं न? आप, आपके शिष्य और आश्रम के सभी व्यक्ति प्रसन्न तो हैं?'

"तब वसिष्ठ ने कहा—'हम सब प्रसन्न हैं। आप नीति-युक्त हो राज्य कर रहे हैं न? स्नेह के साथ अपने भृत्यों का पालन करते हैं न? राज्य के सभी अंगों का (उचित रीति से) पर्यवेक्षण कर रहे हैं न? आक्रमण करनेवाले शत्रुओं को आप पराजित कर तो रहे हैं न? आप स्वयं सकुशल तो हैं? आपके पुत्र और पत्नियाँ कुशल में हैं न?'

"तब कौशिक ने वसिष्ठ से कहा—'महात्मा, आपकी कृपा से हम सब कुशल-मंगल से हैं।' तब वसिष्ठ ने कहा—'राजन् मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप मेरे यहाँ भोजन करके यहाँ से जायँ।'"

"कौशिक ने उनका निमंत्रण स्वीकार किया। वसिष्ठ ने विश्वामित्र तथा उनकी सेना को भोजन देने के उद्देश्य से अपनी काम-धेनु का स्मरण करके उससे प्रार्थना की कि राजा तथा उनकी सेना को विविध मिष्टान्न तथा भोजन से तृप्त करना है। इसके लिए आवश्यक वस्तुओं का तुम प्रबंध करो।

"तब कामधेनु विभिन्न प्रकार के भात, शाक, मिष्टान्न, अँचार, विविध फल, खीर, मक्खन, चीनी, ताजा घी, कई प्रकार के मद्य और मांस आदि से युक्त बढ़िया भोजन का प्रबंध किया। जिसकी जो इच्छा होती, वह उसे बिना माँगे ही मिल जाता था। गाधेय तथा उनके सैनिक भर-पेट भोजन करके संतुष्ट हुए।

"इसके पश्चात् गाधि-पुत्र ने मन में सोचा कि इस कामधेनु को किसी भी तरह मुनि से ले लेना चाहिए। वे मुनि के पास जाकर बोले—'हे मुनिवर, मैं आपको एक लाख अश्व, एक लाख हाथी, एक लाख गायें और कई हजार मणियाँ दूँगा। आप यह गाय मुझे दे दें।' इस पर मुनि अत्यन्त दुःखी होकर बोले—'हे राजन्, यह गाय मेरा जीवन है, मेरा प्राण है, मेरी तपस्या का साधन है। हव्य-कव्य तथा अतिथि-सत्कार इसी गाय के कारण बिना विघ्न के संपन्न होते हैं। अतः इस पुण्य-धेनु को मैं तुम्हें दे नहीं सकता।'

"तब महाबली विश्वामित्र क्रोध में आकर बोले—'मैं आपसे यह गाय देने की प्रार्थना क्यो करूँ ?' यह कहकर उन्होने अपने हजारो सेवको की सहायता से बलात् उस गाय को पकडकर ले जाने का प्रयत्न किया । तब उस गाय ने उनके पीछे न जाकर मुनिपुगव को देखकर कहा—'हे अनघ, वसिष्ठ, हे सयमीन्द्र ! कौशिक (अपने बल के) मद में मुझे बलात् ले जाने का यत्न कर रहा है । हाय ! आप दुर्वार होते हुए भी उसे रोकते क्यो नही ? निर्विरोध मुझे उसके हाथो में सौपना, क्या आपको उचित जँचता है ? हे अनघात्मा ! मैंने आपके प्रति कोई अपराध नही किया है, फिर भी मेरी उपेक्षा करना क्या आपके लिए उचित है ?'

"धेनु की बातें सुनकर वसिष्ठ दयार्द्रचित्त होकर कहने लगे—'मैं तुम्हें क्यो छोडने लगा ? राजा अपने भुज-बल से बलात् तुम्हें ले जा रहे है । यदि क्षत्रिय उद्दण्ड हो जायँ, तो ब्राह्मण उनका निवारण किस प्रकार कर सकते है ? यह गाधि-पुत्र इस पृथ्वी के अधीश्वर है । इनके पास अक्षौहिणी सेना है । मै इन्हें कैसे जीत सकूँगा ?'

"तब धेनु ने मुनि से कहा—'हे मुनिनाथ ! ससार में ब्राह्मण-तेज, क्षत्रिय के तेज से अधिक बलवान् होता है, इसलिए मै यह बात जानती हूँ कि कौशिक किसी भी दशा में आपसे अधिक श्रेष्ठ नही हो सकता । आप मुझे आज्ञा दीजिए, मै इसकी सारी सेना को एक ओर से नष्ट कर दूँगी ।' तब वसिष्ठ ने गाय से कहा—'अच्छा, तो तुम सेना उत्पन्न करके (राजा की सेना का) नाश करो ।'

"वसिष्ठ की आज्ञा मिलते ही धेनु ने हुकार भरी । उसके हुकार भरते ही उसके कान, पूँछ, दाँत, रोम, खुर, जाँघ, आँख, घुटने, श्वास, गलकबल, और रोम-कूपो से भयकर आकारवाले असख्य किरात, पल्लव, काम्भोज तथा यवन वीर उत्पन्न हुए। वे प्रचण्ड विक्रमी, अद्भुत आकार तथा विचित्र आयुध धारण किये हुए थे । उनके नेत्र और हुकार अनोखे ढग के थे । योद्धाओ का वह समूह हाथी तथा अश्वो पर (आरूढ होकर) विश्वामित्र की सेना का सहार करने लगा यह देखकर विश्वामित्र के पुत्र विविध आयुधो से सुसज्जित होकर वसिष्ठ का वध करने आये । किन्तु धेनु के हुकार-मात्र से भस्म हो गये ।

"अतुल पराक्रमी वीरो से पूर्ण अपनी सेना को मृत्यु का ग्रास बनते देखकर तथा अपने सौ वीर पुत्रो की मृत्यु का विचार करके विश्वामित्र दुःख तथा शोक से सतप्त हो उठे । वे अपने एक पुत्र को अपना राज्य सौपकर तप करने के लिए हिमालय में चले गये । वहाँ उन्होने जल में खडे रहकर त्रिपुरातक (शिव) के प्रति घोर तपस्या की । शिवजी प्रत्यक्ष हुए और विश्वामित्र ने उनसे विविध दिव्यास्त्र प्राप्त किये ।

"इसके पश्चात् विश्वामित्र बडी शीघ्रता से वसिष्ठाश्रम के पास आये और (उस आश्रम पर) आग्नेय-बाण चलाने लगे । उनके बाणो के तेज से वसिष्ठ के आश्रम में अग्नि की ज्वालाएँ फैल गई । यह देखकर वसिष्ठ, काल-दड लिये हुए यमराज के समान क्रोधोन्मत्त हो अपने हाथ में अधारी लिये हुए बाहर आये और बोले—'हे पापी, हे विश्वा-मित्र, क्या इस प्रकार कही पुण्य-भूमि तपोवन को जलाया जाता है ? तुम्हारी शक्ति कितनी है, और मेरी शक्ति कितनी ? (क्या इसका भी तुम्हें ज्ञान है ?)'

"तब अत्यधिक क्रोध से उन्मत्त होकर कौशिक ने उत्पग, रौद्रास्त्र, पशुपतास्त्र, शक्तिमान्, वज्र, ब्रह्मपाश, पैशाचास्त्र, काल-पाश, विष्णु-चक्र, कालचक्र, वारुणास्त्र, गांधर्वास्त्र, वायव्यास्त्र आदि कई शक्तिशाली अस्त्रों को चलाया। किन्तु वसिष्ठ ने अपने ब्रह्मदंड की सहायता से उन सबको व्यर्थ कर दिया। इन शस्त्रों में केवल अग्नि-कण बिखर जाते थे। उससे और भी क्रुद्ध होकर विश्वामित्र ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके उसे वसिष्ठ पर चलाया। (यह देखकर) सब देवता, मयमी, गंधर्व, पन्नग, भूत, दिक्पाल, सभी नक्षत्र, ग्रह, सूर्य, चन्द्र और समस्त लोक क्षुब्ध हो उठे। सभी दिशाएँ प्रज्वलित होने लगीं। सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर प्रचण्ड वेग से ब्रह्म-दण्डकी शक्ति का अतिक्रमण करके उस ब्रह्मास्त्र को अपनी ओर आते देखकर ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी दुर्वार उस अस्त्र को वसिष्ठ ने सहज ही पकड़कर निगल लिया। वसिष्ठ की मूर्त्ति प्रभापुंज ब्रह्म-तेज से दीप्त हो उठी। उनके रोम-रोम से अनेक बाण, ज्वाला उगलते हुए, निकले और विश्वामित्र को जलाने लगे। यह देखकर कौशिक अधीर हो उठे; उनकी सारी शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई। वे सोचने लगे कि इस एक ब्रह्मदण्ड के कारण मेरे सभी श्रेष्ठ अस्त्र-समूह व्यर्थ हो गये। इनका (वसिष्ठ का) ब्रह्म-तेज अत्रस्त तथा अचल है। क्षत्रिय-तेज (इसके आगे) किस काम का?

"इस प्रकार परास्त होने के पश्चात् विश्वामित्र अपनी धर्मपत्नी के साथ (दक्षिण की ओर जाकर) घोर तप करने लगे। इसी समय उन्होंने हुष्पद, मधुष्पद, दृढनेत्र तथा महारथ नामक चार शक्तिशाली पुत्र प्राप्त किये। अविचल निष्ठा के साथ कई वर्षों तक तपस्या करने के उपरान्त ब्रह्मा ने उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया और बोले—'हे अनघ, मैं तुम्हारे तप से सन्तुष्ट हुआ। जाओ, मैं तुम्हें राजर्षि का पद देता हूँ।'

"गाधेय अत्यन्त विनम्र होकर बोले—'इतने दिनों तक घोर तपस्या करने के बाद भी मैं ब्रह्मर्षि नहीं बन सका। मेरा उग्र तप विफल हो गया है। मैं राजर्षि का पद नहीं चाहता।' यह कहकर वे पुन: घोर तपस्या में निरत हो गये।

"इसी समय इक्ष्वाकु-वंश के त्रिशंकु नामक यशस्वी राजा ने सशरीर स्वर्ग जाने के लिए यज्ञ करना चाहा। उसने बड़ी भक्ति से वसिष्ठ को बुलावा भेजा और अत्यन्त विनय से उनसे कहा—'हे अनघ, सशरीर स्वर्ग में जाने के निमित्त आप मुझसे एक यज्ञ कराने की कृपा कीजिए। आप (इसके लिए) मुनियों को यहाँ बुला भेजिए।' तब वसिष्ठ ने कहा—'हे राजन्, पृथ्वी के निवासियों का सशरीर स्वर्ग में जाना असंभव है।'

"इसके पश्चात् राजा दक्षिण दिशा में घोर निष्ठा से तपश्चर्या में लीन वसिष्ठ के पुत्र के पास गया और प्रणाम करके कहा—'महात्मा, सशरीर स्वर्ग में पहुँचने के निमित्त आप मुझसे एक यज्ञ कराइए।' तब उन्होंने कहा—'अगर वसिष्ठजी इस प्रकार का यज्ञ कराने का आदेश दें, तो मैं अवश्य ऐसा यज्ञ कराऊँगा।' तब राजा ने कहा—'हे मुनि, वसिष्ठ मुनि ने तो कहा है कि ऐसा यज्ञ कोई राजा कर ही नहीं सकता। इसीलिए तो मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप मुझपर कृपा करके मुझसे ऐसा यज्ञ कराइए। पुरोहित ही तो राजाओं के लिए धर्म-साधक होते हैं।'

"इसपर वसिष्ठ के पुत्र ने कहा—'राजन्, तुम्हारे-जैसे दुर्मतियो के अतिरिक्त दूसरा कोई निर्मल चित्तवाला व्यक्ति ऐसे यज्ञ की वात सोच भी सकता है ?' मुनि-पुत्र के यह कहने पर राजा ने उपेक्षा से कहा—'आपके पिता ने यज्ञ कराना अस्वीकार कर दिया है, और आप भी अस्वीकार करते हैं । मेरे हित की चिंता न करनेवालो से अब मेरा क्या सबध ? मै किसी और से यह यज्ञ कराऊँगा ।'

"तब रुष्ट होकर उस पुण्यात्मा ने कहा—'तुम चाडाल हो जाओ ।' तुरंत राजा का रूप ऐसा विकृत हो गया, मानो उसका दीप्तिमान् तेज वासिष्ठ की क्रोधाग्नि से भस्म हो गया हो । उसका शरीर काला हो गया । उसके शरीर पर के वस्त्र काले हो गये । उसके केश बिखर गये । उसका रूप इतना मलिन हो गया, मानो उसके स्पर्श-मात्र से दूसरा भी मलिन हो जायगा । उसके शरीर पर रहनेवाले कान्तिमान् मणिमय स्वर्णाभरण लोहवत हो गये । उसके रूप, रग, वाणी आदि चाडाल-जाति के अनुरूप हो गये ।

"इस प्रकार राजा को भयकर चाडाल-रूप धारण किये हुए देखकर नागरिक, सेवक, अमात्य तथा वधु-वर्ग ने उसे त्याग दिया । तब राजा अत्यन्त भयभीत होकर लोगो (के मार्ग) से वचता हुआ अपने-आपको छिपाता हुआ धीरे-धीरे महातेजस्वी विश्वामित्र मुनि के पास जा पहुँचा । उसे देखकर गाधि-पुत्र का हृदय दया से उमड आया । वे वोले—'अयोध्या का शासन करनेवाले, तुम्हें यह चाण्डालत्व कैसे प्राप्त हुआ ?'

"तब राजा ने हाथ जोडकर कहा—'हे महात्मा, मैंने वसिष्ठ से सशरीर स्वर्ग-गमन का यज्ञ कराने की प्रार्थना की थी, तो उन्होने अस्वीकार कर दिया । उनके पुत्र ने कहा कि जब वसिष्ठ की ऐसी सम्मति है, तब यज्ञ हो नही सकता । इसपर मैंने दूसरो से यज्ञ सपन्न करवा लेने का विचार प्रकट किया, तो अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्होंने मुझे चाण्डाल बन जाने का शाप दिया । इसी कारण मुझे यह रूप मिला है । मैंने जो यज्ञ करने का सकल्प किया है, उसे अवश्य पूरा करूँगा । विपत्ति में भी मै असत्य नही बोलता । भविष्य में भी किसी भी प्रकार से मै सत्य का पालन करूँगा । मैंने अबतक कितने ही यज्ञ किये, कितने ही धर्म-सबधी कार्य किये और सुख-समृद्धि प्राप्त की । मैंने गुरुओ से प्रार्थना की, परन्तु उनकी कृपा न रहने से यह धर्म-कार्य पूर्ण नही हो सका । दैव-बल के अभाव में पुरुषार्थ में भी दोष आ जाता है । हे अनघ, आप मेरे लिए ईश्वर-तुल्य हैं । किसी भी प्रकार आप मेरी रक्षा कीजिए ।'

"तब विश्वामित्र ने उसे देखकर कहा—'हे राजन्, अब तुम दुःख मत करो । तुम्हें दीन जानकर मै त्रिकरण शुद्धि (पवित्र मन, वचन एव शरीर) से तुम्हें शरण दे रहा हूँ । मै मुनियो को बुलाकर तुमसे यज्ञ कराऊँगा और तुम्हें सशरीर स्वर्ग भेजूँगा, जिससे तुम्हारी प्रतिज्ञा झूठी न हो । मै तुम्हें पवित्र बनाऊँगा ।' इस प्रकार कहकर उन्होने अपने शिष्यो से कहा—'तुम लोग तुरत जाओ और त्रिशकु के यज्ञ के लिए ऋत्विजो तथा मुनियो को लेकर शीघ्र आओ ।'

सभी शिष्य तुरत-गये और श्रेष्ठ मुनियो को साथ लिये हुए विश्वामित्र के पास आकर बोले—'हे अनघात्मा, हम सभी मुनियो को बड़ी प्रसन्नता से ले आये हैं । वसिष्ठ के

आश्रम के मुनियो के अतिरिक्त शेष सभी मुनि आ गये है। वसिष्ठ के पुत्रों ने जो जो अपशब्द कहे, उन्हें सुन लीजिए। उन्होंने कहा—'यह कितने आश्चर्य की बात है कि यज्ञ करानेवाला एक राजा है और यज्ञकर्त्ता एक चाण्डाल! भला चाण्डाल के यज्ञ में भाग लेने-वाले मुनि किस प्रकार वहाँ भोजन करेंगे? देवता अपने हविर्भाग लेने किस मुँह से आयेंगे? विश्वामित्र की शरण प्राप्त करने-मात्र से यही नर स्वर्ग-लोक प्राप्त कर सकेगा?'

"इन बातो को सुनकर विश्वामित्र क्रोध से जल उठे। बोले—'अटल निष्ठा के साथ तपस्या करनेवाले मुझे, अपशब्द कहनेवाले सभी पापी ससार में सात सौ वर्ष तक चाण्डाल-भाव धारण किये हुए, मानव तथा कुत्तो का मांस खाते हुए, नीच होकर रहेंगे। यों ही मेरी निंदा करनेवाला वह महात्मा पृथ्वी पर निषाद होकर जन्म लेगा।' इस प्रकार, शाप देकर सयमी मुनियो को देखकर उन्होंने कहा—'हे मुनियो, ये राजा त्रिशकु इक्ष्वाकु-कुलीन, कीर्तिमान्, धर्मज्ञ तथा सत्यनिष्ठ है। इसलिए इनसे आप यज्ञ करवाइए, जिससे ये शरीर के साथ इद्रपुरी को जा सकें।'

"ऋषि के वचन सुनकर वे सभी मुनि परस्पर यों विचार करने लगे—'यदि हम गाधि-पुत्र के वचनो को टाल दें, तो वे क्रोध में आकर हमें घोर शाप देंगे। अत. उनके कहे अनुसार हम राजा से यज्ञ करावेंगे।' यों सोचकर सभी मुनि यज्ञ-कार्य में लग गये। विश्वामित्र ऋत्विक् बने और मत्रो के उच्चारण के साथ उन्होंने यज्ञ-भाग लेने के लिए देवताओ का आह्वान किया। देवताओ ने उच्च स्वर में कहा कि हम नहीं आवेंगे।

"तब क्रोधाग्नि से भभकते हुए, कुश की पवित्री हाथ में लिये हुए, स्रुवा उठाकर कौशिक ने कहा—'हे त्रिशकु यदि मैंने बाल्यावस्था से नियमो का पालन करते हुए तप किया हो, तो तुम सशरीर स्वर्गलोक में पहुँच जाओगे। अब तुम जाओ।'

"इसपर त्रिशकु स्वर्ग में पहुँच गया। किन्तु (वहाँ जाने पर) इन्द्र ने कहा—'तुम चाण्डाल हो, हम तुम्हें यहाँ रहने नही देंगे।' और उसने त्रिशकु को स्वर्ग से नीचे ढकेल दिया।

"त्रिशंकु सिर के बल नीचे की ओर गिरते हुए चिल्लाने लगा—'हे विश्वामित्र, मेरी रक्षा कीजिए, मेरी रक्षा कीजिए।' तब विश्वामित्र का हृदय दया से भर गया। उन्होंने कहा—'हे राजन्, तुम आकाश में ही ठहर जाओ।' यों कहकर उन्होंने त्रिशकु को आकाश में ही ठहरा दिया और बड़े क्रोध में आकर इन्द्र से प्रतिरोध लेने के उद्देश्य से उन्होंने दक्षिण दिशा में अपर स्वर्ग का निर्माण किया। उसमें उन्होंने (नये) सप्त ऋषियो तथा नक्षत्रो का सर्जन किया। इतना ही नहीं, वे उस स्वर्ग में दूसरे देवताओ तथा अपर इद्र को भी उत्पन्न करने का सकल्प मन-ही-मन करने लगे।

"यह समाचार मिलते ही सभी मुनि तथा देवता विश्वामित्र के पास आकर बोले—'हे मुनिनाथ, यह त्रिशकु गुरु के शाप से पीडित है। यह स्वर्ग में रहने योग्य नही है।' इस पर विश्वामित्र ने कहा—'हे देवताओ मैंने त्रिशकु को सशरीर स्वर्ग भेजने का वचन दिया है। मेरा वचन व्यर्थ नही होना चाहिए। इसलिए इस राजा को इसी स्वर्ग में रहने दो। जबतक यह ससार रहेगा, ये नक्षत्र, देवलोक से भी ऊपर आसमान में तेज से प्रकाश-

मान रहेंगे । उन नक्षत्रो के बीच त्रिशकु को इसी दशा में (सिर नीचा किये) देवताओ के समान रहने दो और पुण्यात्मा तथा यशस्वी बनने दो ।' इस व्यवस्था को स्वीकार कर मुनि तथा देवता विश्वामित्र की प्रशसा करते हुए अपने-अपने स्थान को लौट गये ।

"तब विश्वामित्र ने (अपने आश्रम के) मुनियो को देखकर कहा—'यह स्थान अब तपस्या के लिए उपयुक्त नही है । यहाँ अब लोगो की भीड एकत्र होने लगी है । अत हम यहाँ से किसी दूसरे स्थान में चले जायेंगे ।' यो कहकर वे उस स्थान को छोडकर (पश्चिम दिशा में) विशाला के निकट पुष्कर-तीर्थ में जा पहुँचे । वहाँ केवल जल और फल का ही आहार करते हुए बहुत वर्ष तक वे तपस्या करते रहे ।

"उस समय अयोध्या के राजा, मन्मथ के समान रूपवान् अवरीष ने एक यज्ञ करने का निश्चय किया । उस यज्ञाश्व को इन्द्र ने चुरा लिया । राजा ने यज्ञाश्व को कई स्थानो में ढूँढा, किन्तु अश्व के न मिलने से उसके प्रायश्चित्त-स्वरूप विधि पूरी करने के निमित्त नर-पशु की माँग करते हुए वह कई आश्रमो में गया । निदान भृगुतुग में अत्यत तपोनिष्ठा में सलग्न रुचि नामक मुनि के पास पहुँचकर राजा ने मुनि को प्रणाम करके कहा—'हे करुणानिधि, मैंने यज्ञ करने का यत्न किया था, किन्तु यज्ञाश्व कही खो गया है । आप कृपया अपने एक पुत्र को यज्ञ-पशु के रूप में मुझे दें । उसके बदले में एक लाख गायें मैं आपको दूँगा ।' तब मुनि ने कहा—'मैं अपने जेष्ठ पुत्र से अत्यधिक स्नेह रखता हूँ, इसलिए मैं उसको नही दे सकता ।' तब मुनिपत्नी ने कहा—'मैं कनिष्ठ को बहुत चाहती हूँ । मैं उसे दे नही सकती ।' उन दोनो की बातें सुनकर शुनशेप ने राजा से कहा—'ज्येष्ठ पुत्र को मेरे पिता चाहते है और कनिष्ठ पुत्र को मेरी माता चाहती है । अत उनकी बात छोड दीजिए, मैं आप के साथ चलूँगा । इसके लिए आप मेरे माता-पिता को सहस्र गायें दीजिए ।' राजा ने वैसा ही किया और शुनशेप को रथ पर बिठा-कर शीघ्र वहाँ से चल दिया ।

"इस प्रकार राजा शुनशेप को साथ लेकर पुष्कर-प्रदेश में स्थित आश्रम में पहुँचा । वहाँ अमित तपोनिष्ठा में लीन, अचल रीति से तपस्या करनेवाले अपने मामा विश्वामित्र को देखकर शुनशेप ने उनको प्रणाम किया और कहा—'हे अनघ, मेरे माता-पिता ने मुझे इस राजा को यज्ञ-पशु के रूप में बेच दिया है । आप कृपया इस राजा के यज्ञ को सफल बनाकर मेरे प्राणो की रक्षा कीजिए । आज आप ही मेरे माता, पिता, गुरु और बधु है ।'

"इस प्रकार अत्यत दीन होकर जब शुनशेप ने कहा, तब विश्वामित्र ने अपने पुत्रो को सबोधित करके कहा—'पुण्यात्मा लोग परलोक में सुगति प्राप्त करने के लिए ही पुत्र उत्पन्न करते है । इस बालक ने मेरी शरण ली है, इसलिए इसकी प्राण-रक्षा करना ही अब मेरे लिए स्वर्ग है । यह मेरा भानजा है । तुम लोग इसकी रक्षा करो और तुममें से कोई सके लिए अपने प्राण दो ।'

"मुनि-पुत्रो में से कोई भी उनका आदेश पालन करने के लिए सन्नद्ध नही हुआ, तब अत्यत क्रुद्ध होकर मुनि ने उन्हें शाप दिया—'तुम एक हजार वर्ष तक कुत्ते का मास खाते हुए दुःख भोगो ।'

"इसके पश्चात् विश्वामित्र ने उस शुनःशेप को बड़े प्रेम से अपने पास बुलाकर कहा—'मैं तुम्हें दो मंत्र देता हूँ। तुम सतत उनका जप करते रहो। वे (मंत्र) तुम्हारी रक्षा करेंगे और अंबरीष का यज्ञ भी सफल हो जायगा।' यों कहते हुए उन्होंने उसे दो मंत्रों का उपदेश किया।

"दूसरे दिन राजा अपनी यज्ञ-भूमि में पहुँच गया। उसने उस निर्मल आत्मा (शुनःशेप) की पूजा आदि करके उसे यूपकाष्ठ से बांध दिया। तब वह मुनि-पुत्र अत्यंत शांत तथा निश्चल चित्त से उन मंत्रों का जप करने लगा। तब देवेन्द्र ने वहाँ आकर अंबरीष का यज्ञ सफल बनाया तथा रुचि मुनि के पुत्र को चिरंजीवी बनाकर देवताओं के साथ (अपने लोक में) चला गया।

"एक हजार वर्ष तक घोर तप करने के उपरान्त ब्रह्मा ने विश्वामित्र को दर्शन दिये, और बोले—'तुम्हारी तपस्या सफल हुई। तुम्हें ऋषित्व प्राप्त हो गया।'

"उनके चले जाने के पश्चात् भी विश्वामित्र अत्यंत निष्ठा के साथ तपस्या करने में ही संलग्न रहे। तब कामरूप धारण करने में चतुर, कामदेव का कमनीय बाण ही अप्सरा के रूप में प्रकट हुआ हो, ऐसा दिखाई देनेवाला ललित यौवन-कला-विलास से युक्त मेनका (अप्सरा) जलक्रीडा करके वहाँ आई। उसका जूड़ा शिथिल हो रहा था। मनोहर नेत्र, स्निग्ध कपोल, मंत्रमुग्ध करनेवाला मुख, माणिक्य के-से ओंठ, मधुर-मंद मुस्कान, स्वर्ण कलश के समान कुच, सोलहों कलाओं से परिपूर्ण कांति, स्वर्ण-चूर्ण झरनेवाले बाहुमूल, ललित रोमराजि, सिंह की-सी कटि, पुन्नाग के पुष्प के सदृश नाभि, गुरु नितंब, तथा काम-विकारों को उद्दीपन करनेवाले उरुभाग से युक्त वह सुंदरी विश्वामित्र के सामने उपस्थित हुई। अपने शरीर की कांति को विकीर्ण करनेवाली उस अप्सरा को देखकर विश्वामित्र में काम-वासना प्रबल हो उठी। उन्होंने अपने ध्यान, मौन-व्रत तथा तपस्या को तिलांजलि देते हुए कहा—'हे सुंदरी, तुम मेरे साथ रतिक्रीडा में अनुरक्त हो जाओ।' उनका आदेश स्वीकार करके मेनका ने दस वर्ष तक उस मुनि को रति-क्रीडा से परितृप्त किया। तब विश्वामित्र ने मन-ही-मन विचार करके जान लिया कि मेरे तप में विघ्न डालने के लिए ही देवताओं ने इस सुंदर रमणी को भेजा है। इसलिए उन्होंने उस कामिनी को देवलोक में भेज दिया और कामदेव को जीतने का विचार करके आप उत्तर पर्वत में कौशिकी नदी के तट पर निवास करते हुए एक सहस्र वर्ष तक बड़ी निष्ठा से घोर तपस्या करते रहे। उनके कठोर तप से देवता भीत होकर ब्रह्मा के पास पहुँचे और बोले—'हे कमलासन, विश्वामित्र अब आपसे महर्षि मान लिये जाने की अर्हता (योग्यता) रखते हैं। ब्रह्मा भी विश्वामित्र के तप से संतुष्ट हुए और कौशिक के पास जाकर बोले—'हे मुनि आज से तुम संसार में महर्षि के रूप में विख्यात होगे।' तब मुनिनाथ कौशिक ने कहा—'हे कमलासन, जबतक आप संतृप्त होकर मुझे ब्रह्मर्षि घोषित नहीं करेंगे, तबतक मैं तपस्या करता ही रहूँगा।' ब्रह्मा ने कहा कि 'ऐसा ही करो' और वे अपने लोक को चले गये। विश्वामित्र ने संकल्प कर लिया कि मैं ब्रह्मा को संतृप्त करके ब्रह्मर्षि का पद अवश्य प्राप्त करूँगा। इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके वे अन्न-जल त्यागकर ऊर्ध्वबाहु हो,

वायु-भक्षण करते हुए ग्रीष्म ऋतु में, आश्रम के बाहर, तथा जाडे में जल-कुडो में खड़े रहकर अत्यत उग्र तप करने लगे ।

"इस प्रकार एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये । एक दिन इन्द्र ने रभा को देखकर कहा—'हे सुदरी, मैं तुमसे एक ऐसा कार्य कहूँगा, जिसमें देवताओ का हित निहित है। किसी तरह तुम कौशिक को काम-पीडित करके उनके तप में विघ्न डालो ।' तब रभा ने कहा—'हे देव, कौशिक क्रोध में मुझे शाप दे देंगे । इसीका मुझे भय होता है । ऐसे उग्र तप में लीन उस मुनि के पास पहुँचना क्या मेरे लिए सभव है ? हे शचीनाथ, मैं आपसे क्षमा चाहती हूँ । मैं ऐसे महामूर्ख की तरफ आँख उठाकर भी नही देख सकती, आपके चरणो का सौगध खाकर कहती हूँ । ऐसा मूर्ख कौन होगा, जो जान-बूझकर आग में कूद पडे ?'

यह सुनकर इन्द्र ने कहा—'यदि तुम्हें इतना भय है, तो मन्मथ और वसत भी तुम्हारे साथ जायेंगे, तुम जाओ ।' इन्द्र की इच्छा की अवहेलना न कर सकने के कारण वह सुदरी, मन्मथ तथा वसत की सहायता से कीर, कोकिल से युक्त हो, मयूर तथा सारिकाओ को साथ लेकर अपनी सखियो के साथ उस तपोवन में गई, जहाँ गाधि-पुत्र तप कर रहे थे । वहाँ पहुँचकर रभा मनोहर गति से लास्य करने लगी । कौशिक क्रुद्ध होकर बोले—'हे पद्‌ममुखी, तुम दस हजार वर्ष तक पाषाण बनकर पडी रहो । उसके बाद एक श्रेष्ठ तपोनिधि ब्राह्मण के द्वारा तुम्हारा शाप-मोचन होगा ।'

"मुनि के शाप देते ही रभा पाषाण बन गई । मन्मथ भीत होकर वहाँ से भाग गया । शाप देने के कारण गाधि-पुत्र ने देखा कि उनके तप का एक भाग नष्ट हो गया है । उन्होंने सोचा पहले काम-वासना के कारण मेरा तप नष्ट हो गया था और अब क्रोध से मैंने अपनी तपस्या खो दी । इस प्रकार चिंतित होकर उन्होंने काम तथा क्रोध दोनो का त्यागकर निराहार तथा जितेन्द्रिय हो एक हजार वर्ष तक तप किया । ब्रह्मा उनपर बहुत प्रसन्न हुए । (तब विश्वामित्र ने) ब्रह्मर्षि कहलाने की अदम्य इच्छा लिये उत्तर दिशा को छोडकर पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान किया और वहाँ इन्द्र के असख्य विघ्नो से विचलित न होते हुए अटल भाव से तप किया । उसके पश्चात् सिद्धाश्रम में पहुँचकर वही घोर तप करते हुए रहने लगे ।

"इस प्रकार श्रेष्ठ तपोनिष्ठा में एक सहस्र वर्ष बीत गये । विश्वामित्र तपस्या की पूर्ति के पश्चात् पारण करने के लिए नीवार-धान्य एकत्र करके ले आये, उसे पकाया और देवताओ को अर्पण करने के उपरात भोजन करने ही वाले थे कि इन्द्र एक बूढे ब्राह्मण का रूप धरकर वहाँ आया और भोजन माँगा। विश्वामित्र ने सारा भोजन उस ब्राह्मण को दे दिया । इन्द्र ने बिना एक दाना छोडे सब खा लिया । इस पर विश्वामित्र फिर एक हजार साल तक अविचल निष्ठा से तपस्या करते रहे ।

"इस घोर तपस्या के फलस्वरूप उनके सिर से धुआँ निकलकर सारे लोक में फैल गया । सभी समुद्र क्षुब्ध हो गये । पृथ्वी काँपने लगी । कुलपर्वत थर्रा उठे । दिशाएँ उलझ गईं । अमर, गधर्व तथा सभी मुनि ब्रह्मा के पास जाकर बोले—'हे कमलगर्भ,

कौशिक बडे उत्साह से उग्र तप कर रहे हैं । उनका मनोरथ पूर्ण करके यदि उनकी तपस्या को बद नही करायेंगे, तो उस पुण्यात्मा विश्वामित्र के तप से उत्पन्न अग्नि से सभी लोक भस्म हो जायेंगे ।'

"उनकी बातें सुनकर ब्रह्मा उनको साथ लिये हुए विश्वामित्र के पास आये और बोले—'हे कौशिक मुने । अब इस उग्र तप की आवश्यकता नहीं है । आज से तुम ब्रह्मर्षि हो गये ।'

"तब कौशिक ने ब्रह्मा आदि देवताओं को देखकर बड़ी भक्ति तथा आश्चर्य के साथ कहा—'यदि मैंने सच ही ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त कर लिया है, तो ब्रह्मा के पुत्र, निर-पुण्यात्मा, लोक-पावन वशिष्ठ आकर मुझे ब्रह्मर्षि कहें । तभी मैं विश्वास करूँगा ।'

"तब ब्रह्मा तथा देवताओं की प्रार्थना पर वशिष्ठ वहाँ आये और बोले—'अपने उग्र तप से तुम ब्रह्मर्षि हो गये, इसमें कोई सदेह नहीं है । तुम प्रसन्न होकर जा सकते हो ।' तब विश्वामित्र ने बड़ी भक्ति से वशिष्ठ की पूजा की । सभी देवता विश्वामित्र को आशीर्वाद देकर देवलोक को चले गये ।

"विश्वामित्र की महिमा इन अद्भुत बातों से आपको विदित होगी ।"

सतानद के इस प्रकार कहने पर राम, लक्ष्मण, जनक तथा उनके सभासद अत्यत प्रसन्न हुए (इतने में) सूर्यास्त हुआ, मानो सूर्य स्वर्गलोक में यह समाचार देने जा रहा हो कि कल राघव जनक के निवास में रखे हुए शिव-धनुष को तोड़कर सीता का पाणि-ग्रहण करेंगे ।

जनक को विदा करके गाधि-पुत्र ने राम तथा लक्ष्मण के साथ अपने निवास में वडे आनद से रात बिताई । सूर्योदय होते ही स्नान, पूजा आदि से निवृत्त होकर विश्वामित्र राम के साथ जनक के यहाँ गये और बोले—'हे जनक, कोटिसूर्य-प्रभा-समन्वित, पुण्य-चरित, अनन्य-गोचर तथा विश्वमूर्त्ति आपके यहाँ स्थित शिव-धनुष के दर्शनार्थ आये हैं । आप कृपया उस धनुष को मँगावें ।'

३२ शिव-धनुष का वृत्तांत

तब जनक बडे आश्चर्य-चकित होकर बोले—"हे नियतात्मा, शिवजी ने अधकासुर, भस्मासुर आदि राक्षसो को इसी धनुष से मारा था । पूर्व काल में उसी धनुष से उन्होंने भयंकर राक्षसों का सहार किया था । शकर ने अत्यन्त क्रोध करके इसी धनुष से त्रिपुर-दुर्गों को जीता था, इसी धनुष से उन्होंने देवेन्द्र आदि देवताओं को भगाकर दक्ष के यज्ञ का ध्वस किया था । शिवजी ने हमारे पितामह नीति-सपन्न निमि चक्रवर्ती से छह पीढी पूर्व के हमारे पूर्वज देवरात को यह धनुष सौंपा । तब से यह अतुल शक्ति-सपन्न धनुष हमारे घर में है । मैंने यज्ञ करने का सकल्प करके, भूमि को शुद्ध करने के लिए जब उसमें हल चलाया, तो मुझे हल की फाल-रेखा में एक मजूषा (पिटारी) मिली । हर्ष-पुलकित हो जब मैंने उसे खोला, तो मेरे आश्चर्य की सीमा न रही । उसमें एक अत्यत प्रभा-समन्वित कन्या निकली । मैंने उसका नाम सीता रखा और उसे अपनी पुत्री मानकर बडे प्रेम से उसका लालन-पालन करने लगा । वसत ऋतु में बढनेवाली लता के समान तथा दिन-प्रति-दिन वृद्धि-पानेवाली चद्रकला के सदृश वह कन्या बढ़ने लगी । क्रमश यौवनावस्था को प्राप्त

हो गई । यह देखकर इस पृथ्वी के कई नरेशो ने उस कन्या के साथ विवाह करने की प्रार्थना की । तब मैंने उन से कहा—'इस चन्द्रमुखी को प्राप्त करने के लिए एक कन्या-शुल्क नियत है । (वह शुल्क) यह शिव-धनुष है । जो नरेश इस धनुष पर प्रत्यचा चढाकर अपने भुज-बल का परिचय देगा, उसी को मै अपनी पुत्री बडे हर्ष से दूँगा ।' बहुत-से राजा आये, किन्तु कितने ही राजा उस धनुष को उठाने में भी असमर्थ होने के कारण लज्जा से अपना सिर भी न उठा सके । इसलिए उन राजाओ ने सोचा—'पुत्री को देने का वचन देकर, कोदण्ड का दुस्साध्य प्रतिबध लगाकर जनक ने हमें अच्छी तरह भ्रम में डाल दिया है । हम उन्हें युद्ध में परास्त करके उनसे प्रतिशोध लेंगे ।' इस प्रकार सोचकर वे अपनी विशाल सेना के साथ एक वर्ष तक हमारे किले पर घेरा डाले रहे । जो अन्न तथा खाद्य-सामग्री हमने पूर्व से किले में सचित करके रखी थीं, सब समाप्त हो गई । अत मैंने मन में विचार करके देवताओ की प्रार्थना की । उनकी कृपा से प्राप्त चतुरगिनी सेना के साथ मैंने शत्रु-सेना पर आक्रमण किया । इस सेना का सामना न कर सकने के कारण कुछ लोग भीत होकर भाग खडे हुए तथा कुछ मेरे साथ घोर युद्ध करके हार गये और तितर-बितर हो गये । यदि राम अपनी आश्चर्यजनक शक्ति से उस शिव-धनुष का सधान कर सकें, तो मै अपनी पुत्री का विवाह उनके साथ कर दूँगा ।"

३३ शिव-धनुर्भंग

इसके पश्चात् जनक ने धनुष की पेटी ले आने के लिए दस हजार बलिष्ठ सेवको को भेजा । वह लोहे की पेटी बहुत ही विशाल तथा आठ पहियो से युक्त थी । वे सभी बलवान् उस पेटी को अपना सारा बल लगाकर इस प्रकार खीचकर लाने लगे, मानो मेरु पर्वत को ही लिये आ रहे हो । यह देखकर जनक के अन्त पुर के परिचारक तथा परि-चारिकाएँ, जानकी, उर्मिला तथा जनक की पत्नी के निकट जाकर बोली—"देवियो, हमारा एक निवेदन सुनें । हमारी राज-सभा में गाधि-पुत्र कौशिक के साथ दो आजानुबाहु, देवो तथा गधर्वो से भी अधिक तेजस्वी, दो उत्तम नर-रत्नो को आया हुआ देखकर महाराज जनक ने मुनि से प्रश्न किया कि ये कौन है ? तब कौशिक ने अत्यन्त हर्ष से कहा—'हे राजन्, ये दशरथ के पुत्र हैं । शिव-धनुष पर प्रत्यचा चढाने के लिए यहाँ आये है । इसलिए आप योग्य व्यक्तियो को भेजकर धनुष को मँगवाइए ।' तब राजा ने अपने मत्रियो को बुलाकर धनुष को लाने के लिए भेजा है । हम वह दृश्य गवाक्ष से देख सकती है । आप भी शीघ्र चलकर देखिए ।"

परिचारिकाएँ जब राम के कुल, रूप, शौर्य तथा गुणो का वर्णन कर रही थीं, तब सीता को ऐसा भान हो रहा था, मानो उनके कानो में सुधा की वर्षा हो रही हो । उन्हें रोमाच हो आया । उन्हें प्रीति तथा भय का अनुभव होने लगा । वे सिर झुकाये खड़ी रही । लज्जा से अभिभूत उस सुन्दरी को चुपचाप खडी देखकर सखियाँ उनकी परि-चर्या करने लगी । गुलाब-जल में कुकुम घोलकर एक ने उनके कपोलो पर सुन्दर ढग से 'मकरिका-पत्र' की रचना की (चित्र बनाये) । दूसरी ने जवादियुक्त चदन का लेप किया । एक दूसरी परिचारिका ने माथे पर कस्तूरी का तिलक लगाया और एक उनके सामने

दर्पण लिये खडी रही । एक युवती ने उनके केशों को कंघा करके उनका जूडा बाँध दिया, तो अन्य एक ने उसे निराले ढग से पुष्पो से अलकृत कर दिया । एक रमणी ने उन्हें सुगधित बीडा दिया । किसी ने उनकी कटि-तट पर किकिणियुक्त करधनी बाँधी, तो किसी सुन्दरी ने उनके कुचो पर डोलनेवाले मोतियो के हार पहनाये । एक सखी ने चद्र-काति-सम धवल वस्त्र उन्हें उत्तम ढग से पहनाये । इस प्रकार सभी सखियाँ सीता को एक स्वर्ण-पीठ पर बिठाकर उनका अलकरण कर रही थी । अलकरण समाप्त होते ही जनक की पत्नी उस कल्याणी राजकुमारी को साथ लेकर कनक-सौध के गवाक्ष के निकट आई । उन सब रमणियो के मन में 'सूर्यवश में उत्पन्न राघव को कब देखेंगे' ऐसा कुतूहल भरा था । उन्होने गवाक्ष से लोकाभिराम दिव्य धाम, अत्यत रूपवान्, विष्णु के समान तेजस्वी, धनुर्धर, प्रत्यचा के चिह्न से अकित कर-कमलवाले राम को देखा । उनको देखकर सखियाँ मन-ही-मन सोचने लगी, रूप और रग में ये अद्वितीय है । ये विष्णु के अग्रज है और राजपुत्रो के रूप में जन्मे है । जानकी रामचन्द्र के लिए योग्य है और उर्मिला सौमित्र के लिए । इस प्रकार सोचती हुई वे अत्यन्त आसक्ति के साथ सभा की ओर देखती रही ।

इन्द्र-सभा के समान सुशोभित उस राज-सभा में धनुष की पेटी लाई गई । तब महाराज जनक ने शुभमूर्त्ति गाधि-पुत्र को देखकर कहा—'हे मुनि, किन्नर, यक्ष, गधर्व, देवता, पन्नग, तथा राक्षस आदियो में से कोई इस धनुष की डोरी को न चढा सका । फिर नरो की कौन कहे ? यह धनुष आप राम-लक्ष्मण को दिखाइए ।' तब मुनि ने रामचद्र की ओर देखकर कहा—'हे रघुवश के वीर, इस महान् धनुष को उठाकर उसकी प्रत्यचा चढा दो । आदिवराह का अवतार लेकर समस्त भूतल को सहज ही उठाकर अपनी शक्ति का परिचय देनेवाले तुम्हारे लिए यह धनुष क्या वस्तु है ?'

इस प्रकार मुनि का आदेश प्राप्त करके राम, लक्ष्मण के साथ उठे । उनके मन में प्रेम तथा उमग का सघर्ष हो रहा था । उन्होने अपना दुकूल उतार दिया और कमरबद कसकर बाँधा । उस समय उनके मोहक रूप की काति सभी दिशाओ में बिखर रही थी । उस कमल-लोचन तथा अद्वितीय साहसी की करधनी की छोटी-छोटी घटिकाओ का सौदर्य अद्भुत था । उनकी नव-रत्नमालिका बाहुओ तक डोल रही थी । उनके ककण और अँगूठियो की काति चारो ओर छिटक रही थी । कर्णभूषणो की काति स्निग्ध कपोलो पर प्रकाशित हो रही थी । उनके केश पीठ पर नृत्य कर रहे थे और कनक वर्णवाला उनका शरीर चारो ओर अपनी आभा विकीर्ण कर रहा था । करोडो मन्मथो का-सा सौदर्य लिये हुए वे मनुवश-तिलक गभीर गति से जनक की सभा में सब के सम्मुख आये और धनुष की पेटी खोली । समस्त धरा को अपने ऊपर धारणकर चिरनिद्रा में सुख से सोने-वाले शेषनाग के समान, काले बादलो के मध्य अपनी पूरी कान्ति को समेटकर अचल भाव से रहनेवाले विद्युत्-दड के समान अनुपम सौदर्य से समन्वित धनुष को राम ने पेटी में से उठाया ।

वह अनुपम धनुष अरुण रत्न-प्रभा की-सी दीप्ति बिखेरनेवाली अग्नि-ज्वाला के समान ऐसा खडा था, मानो वह उसे उठाने के लिए बड़े गर्व के साथ प्रयत्न करनेवाले राजकुमारो के

बल को आहुति के रूप में निगलने के लिए उद्यत हो। राम जब उस धनुष की डोरी चढाने का उपक्रम करने लगे, तब विश्वामित्र बोले—'राम अपनी समस्त शक्ति से सपन्न होकर शिवजी के धनुष की प्रत्यचा चढा रहे है। हे धरती, तुम दोलायमान मत होओ। हे शेषनाग, तुम विचलित मत होओ। हे दिग्गजो, तुम सावधान रहो।'

इसी समय राघव ने धनुष की डोरी चढाई और अपने भुज-बल का परिचय दिया। वे जनक से बोले—'हे भूपाल, यह धनुष बहुत ही पुराना, कमजोर, और घटिया है। यदि बाण का सधान किया जाय, तो यह टिक नही सकेगा। इसी धनुष की आपने इतनी प्रशसा की थी ?'

इस प्रकार कहते हुए (राम ने) सुर, खेचर, भूसुर, किन्नर, नर तथा नृपतियो के समक्ष धनुष की ऐसी टकार की, मानो वह सब दिशाओ मे उनकी विजय की घोषणा कर रही हो। इसके पश्चात् उन्होने चाप के गुण को (धनुष की प्रत्यचा को) आकर्णात् इस प्रकार खीचा, मानो सीता के गुण उनके कानो तक पहुँच गये हो। (फिर) उन्होने अपनी मुट्ठी की पकड इस तरह ढीली कर दी, जैसे राक्षसो की पकड (शक्ति) ढीली पड़ गई हो। तुरत वह धनुष अरराकर टूट गया। दिशाएँ उस ध्वनि से गूँज उठी। धनुष के टूटते ही सभी राजाओ का अभिमान भी चूर-चूर हो गया, सारी पृथ्वी मे दरारें पड गई, दिग्गज कुचल गये, शेषनाग धँस गया, समस्त भूत भीत हो गये और सभी लोक थर्रा उठे। उस कठोर ध्वनि को सुनते ही जनक, राम, लक्ष्मण तथा विश्वामित्र को छोडकर शेष सभी लोग मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडे। जनक महाराज हर्ष तथा विस्मय के साथ कौशिक को देखकर बोले—'मै अपने वचन के अनुसार विना विलब के ही अपनी पुत्री का विवाह इस महान् व्यक्ति से कर दूँगा। महाराज दशरथ को विवाह के लिए सादर निमत्रण भेजूँगा।'

इस प्रकार कहने के पश्चात् उन्होने तुरत अपने प्रिय मत्रियो को बुलाकर दशरथ को सारा समाचार सुनाकर उन्हें शीघ्र लिवा लाने के लिए भेजा। वे भी जवनाश्वो (तेज घोडो) पर रवाना हुए और तीन दिन की यात्रा के उपरान्त साकेत (अयोध्या) पहुँच गये। वहाँ अपने पुत्रो की कुशल की चिंता मे निमग्न राजा (दशरथ) को देखकर जनक के मत्री बोले—'हे राजश्रेष्ठ, आपके पुत्र शौर्यनिधि रामचन्द्र ने कौशिक मुनि के यज्ञ की रक्षा की और जनक महाराज का यज्ञ देखने (मिथिला) आये। वहाँ मुनि तथा अन्य राजाओ के समक्ष उन्होने उस शिव-धनुष का सधान करके उसे सहज ही तोड डाला, जिसे उठाना सुरो तथा असुरो के लिए भी असभव है। इसपर महाराज जनक ने अपनी पुत्री सीता का विवाह राम के साथ करने का निश्चय किया है। उस विवाह मे आपको सादर आमन्त्रित करने के लिए हमें भेजा है। इसलिए आप शीघ्र पधारें।'

यह समाचार सुनकर राजा आनन्द-सागर मे डूब गये। उन्होने नगर-भर मे विवाह की सूचना देने के लिए दूत भेजे और महाराज जनक के मत्रियो को श्रेष्ठ रत्न, आभूषण कनकावर (सोने की पोशाक) आदि बडी प्रसन्नता से भेंट किये। उन्होने तुरत अपने कुल-गुरु वसिष्ठ, धीरात्मा वामदेव, जावालि, कश्यप, मार्कण्डेय, महिमावान् कात्यायन (आदि मुनियो)

तथा अपने अमात्यो को बडे आदर के साथ बुला भेजा और अत्यन्त नम्रता से बोले—"राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ विदेह के घर में हैं। राम ने राजाओ की प्रशसा प्राप्त करते हुए इन्दु-शेखर (शिव) का कठोर धनुष तोड़ा है। अत महाराज जनक ने सीता का विवाह राम के साथ करने का निश्चय करके, विवाह के लिए हमें आमन्त्रित करने के लिए इन्हें (मन्त्रियो को) भेजा है। क्या जनक के साथ (हमारा) सबध प्रजा को स्वीकृत होगा ?" तब सबने उस सबध की प्रशसा की।

दूसरे दिन वसिष्ठ आदि मुनियों, बधु-मित्र तथा अन्य राजाओ के साथ राजश्रेष्ठ दशरथ ने रथ में बैठकर बडे आनन्द से मिथिला के लिए प्रस्थान किया। उनके साथ रमणीय दिव्याबर, कमनीय रत्न-समूह, हाथी, रथ, तुरग तथा पदचर सेना, परम आप्त मत्री तथा पवित्र स्त्रियों के समूह थे। राजा के पार्श्व में उनके पुत्र भरत तथा शत्रुघ्न हाथियो पर, मोतियो के छत्र की छाया में चल रहे थे। मगल-वाद्यो के घन-नाद से सभी दिशाएँ मुखरित हो रही थी। इस प्रकार, जहाँ-तहाँ ठहरते हुए, चार दिन की यात्रा के पश्चात्, दशरथ (अपने परिवार के साथ) मिथिला पहुँच गये।

तब महाराज जनक सूर्यवश में श्रेष्ठ राजा (दशरथ) की अगवानी करने आये और बड़े उत्साह एव आदर के साथ उन्हें ले जाकर उनका उचित रीति से आदर-सत्कार किया। उसके बाद सभी मुनियों को प्रसन्न करते हुए वे बडे हर्ष से बोले—"महाराज, अपनी पुत्री का विवाह आपके पुत्र के साथ करने का निश्चय करके मैंने आपको निमन्त्रित किया है। आपके आगमन से मै कृतार्थ हुआ। इन वसिष्ठ, वामदेव आदि मुनियो के आगमन से मेरी इच्छाएँ पूर्ण हो गई। मेरा जन्म सफल हुआ। मेरा वश पवित्र हुआ। रविकुल के उत्तम नरेश के साथ सबध करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। कल ही विवाह का शुभ मुहूर्त है। आप अपने इष्ट-मित्रो को बुलाकर उचित तथा आवश्यक कार्य सपन्न कीजिए।"

उनके वचन सुनकर दशरथ ने बड़े प्रेम से कहा—'ऐसा ही हो' और जनक के द्वारा सपन्न कराये गये जनवासे में प्रसन्न-चित्त से ठहरे। तब विश्वामित्र राम तथा लक्ष्मण के साथ वहाँ आ पहुँचे। दशरथ ने उस मुनि को प्रणाम करके बडे विनय से कहा—"हे अनघात्मा, आपकी कृपा से मै धन्य हुआ।" तब कौशिक बोले—"हे राजन्, तुम अकलक-चरित्र हो। अपने पुण्य-कार्य से तुम पवित्र हो गये हो। रविकुलोत्तम राम को पुत्र के रूप में प्राप्त करके तुम विशेष रूप से पवित्र हुए हो। उस दिन तुमने यज्ञ की रक्षा करने के लिए सद्बुद्धि से अपने पुत्र राम-लक्ष्मण को मुझे दिया था। यह लो, तुम्हारे पुत्र कुशल-मगल से है। उन्हें स्वीकार करो।" इतने में दोनो (राम-लक्ष्मण) ने राजा को प्रणाम किया। राजा ने उन्हें आशीर्वाद देकर बड़े स्नेह से गले लगा लिया।

दशरथ उस दिन अपने नित्य-नैमित्तिक वैदिक कर्मो से निवृत्त हुए। दूसरे दिन जनक अपने मन्त्रियो के साथ विवाह-मडप में आ विराजे। अपने पुरोहित शतानन्द को देखकर कहा—'हे अनघात्मा, मेरे भाई कुशध्वज को भी इस विवाह में अवश्य आना चाहिए। वह इक्षुमती के किनारे साकाश्यपुरी में रहता है।' यों कहकर उन्होने (अपने भाई को) बुला भेजा।

बडे कौतूहल के साथ कुशध्वज वहाँ आया और शतानन्द तथा महाराज जनक को बडी श्रद्धा से प्रणाम किया और महाराज की आज्ञा पाकर उचित आसन पर बैठा । तब जनक ने सुदामन नामक अपने मत्री से कहा—'तुम शीघ्र जाकर महाराज दशरथ को उनके सचिव, पुत्र, वसिष्ठ आदि मुनियो के साथ सादर लिवा लाओ।' उसने दशरथ के सम्मुख पहुँचकर निवेदन किया—'महाराज, राजा जनक ने मुझे आपकी सेवा में भेजा है । आप कृपाकर अपने पुरोहित, पुत्र तथा अमात्यो के साथ विवाह-मडप में पधारें ।' राजा दशरथ सपरिवार वहाँ पहुँचे और (उचित आसन पर) आसीन होने के पश्चात् जनक से बोले—'महाराज, हम इक्ष्वाकुओ के लिए मुनि वसिष्ठ गुरु तथा देवता हैं । वे सर्वज्ञ तथा जितेन्द्रिय हैं । वे ही हमारे पुरोहित रहकर सस्कार करायेंगे ।'

३४ दशरथ का वंश-क्रम

तब मुनि वसिष्ठ दशरथ के वश का वर्णन करते हुए कहने लगे—'हे राजन्, निर्गुण ब्रह्म ने सगुण रूप धारण करके, अपनी लीला प्रसारित करने के निमित्त, अपने नाभि-कमल में ब्रह्मा को उत्पन्न किया । इस प्रकार हरि के पुत्र ब्रह्मा उत्पन्न हुए । ब्रह्मा के पुत्र मरीचि हुए । मरीचि के पुत्र कश्यप हुए और उनसे सूर्य उत्पन्न हुआ । सूर्य का पुत्र था वैवस्वत मनु । उसका पुत्र इक्ष्वाकु नामक राजा बहुत विख्यात हुआ । इक्ष्वाकु का पुत्र कुक्षि हुआ, और कुक्षि का पुत्र विकुक्षि उत्पन्न हुआ । विकुक्षि के पुत्र बाण के अनरण्य नामक पुत्र हुआ । उसके पृथु नामक पुत्र हुआ, जिसका पुत्र त्रिशकु हुआ, जो बडा ही चतुर राजा था । उसके पुत्र हरिश्चन्द्र के रोहिताश्व नामक पुत्र हुआ, जिसका पुत्र दुदुमार हुआ । दुदुमार का पुत्र युवनाश्व था, उसकी दो रूपवती रानियाँ थी । किन्तु उसके सतान नही थी । इसलिए राजा ने सतान की प्राप्ति की इच्छा से बहुत-से श्रेष्ठ मुनियो को बुला भेजा और उन महान् आत्माओ की अर्घ्य-पाद्य आदि से पूजा की और उनसे निवेदन किया—'हे महात्माओ, आप कृपा करके मुझे सतान-प्राप्ति का वर दीजिए ।' तब बडी प्रसन्नता से मुनि बोले—'हे राजन्, तुम भक्ति-युक्त हो ऐन्द्र-यज्ञ करो, तो तुम्हें सतान-प्राप्ति होगी ।'

"राजा ने यज्ञ के लिए आवश्यक उपकरणो को तुरत एकत्र कराया । सयमी मुनियो ने बड़े हर्ष के साथ राजा के सतान-प्राप्ति हेतु ऐन्द्र नामक यज्ञ प्रारभ किया । यज्ञ पूरा हुआ और मुनियो ने अभिमत्रित जल से पूर्ण कुभो को यज्ञ-शाला में एक ओर रखा। उसी दिन रात्रि के समय राजा ने प्यास से पीडित होकर, भूल से यज्ञ-शाला में रखे हुए कलशो में से लेकर अभिमन्त्रित जल पी लिया ।

"(दूसरे दिन) जल-रहित कलशो को देखकर मुनि कहने लगे—'कलशो का जल किसने पी लिया ? जल कहाँ गया ?' जब उन्होने ध्यान लगाकर देखा, तब उन्हें ज्ञात हुआ कि राजा ने ही जल पीया है । इस विचित्र दैव-माया को देखकर सभी मुनि आश्चर्य-चकित हो गये । राजा ने गर्भ धारण किया और एक बालक को जन्म देकर मर गया । ऋषि अत्यन्त दु खी हुए और मत्र-शक्ति के प्रभाव से युवनाश्व को फिर सजीव बनाया । युवनाश्व जीवित हो उठा।

"चक्रवर्त्ती के शुभ लक्षणो से युक्त उस बालक को देखकर ऋषियो ने विचार किया कि वह सप्तद्वीपो पर राज्य करेगा । इससे वे बहुत प्रसन्न हुए । युवनाश्व ने बडे प्रेम से

उन ऋषियों को अतुल धन देकर उनका सम्मान किया और वे विदा हुए। मातृहीन वह शिशु भूख से व्याकुल होकर जब रोने लगा, तब इन्द्र वहाँ आया और उसकी भूख मिटाने के लिए अपना अंगूठा उस शिशु के मुँह में दे दिया। शिशु उससे अमृत-पान करने लगा। सुधा-पान करने के कारण इन्द्र ने बुधजनों के द्वारा उस शुभलक्षण का नाम मान्धाता रखवाया और इन्द्र-लोक को लौट गया।

"मान्धाता पूर्ण-चन्द्रप्रभा-सम दीप्तिमान् होकर बढ़ने लगा। यौवन के आने ही वह अत्यन्त शौर्य-संपन्न हुआ और रावण आदि (बलशाली) राजाओं को कई युद्धों में परास्त कर समस्त भूमंडल का शासक बन बैठा। विष्णु की भक्ति करते हुए इन्द्र का बल प्राप्त करके उसने बहुत-से यज्ञ किये। उस राजा के बिमलांगी नामक स्त्री से अत्यन्त तेजस्वी मुचुकुंद और सुसंधि नामक दो पुत्र और पचास पुत्रियाँ उत्पन्न हुई। कन्याओं के युवावस्था को प्राप्त होते ही राजा ने उनका विवाह सौभरि नामक मुनि के साथ कर दिया। उन कन्याओं का अग्रज हरि-भक्ति में जीवन व्यतीत करते हुए स्वर्ग सिधारा। उसके भाई सुसंधि ने पुण्य-कार्य करते हुए (चिर काल तक) राज्य का पालन किया। उस सुसंधि के ध्रुवसंधि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके पुत्र प्रसेनजित् के भरत नामक पुत्र हुआ और भरत के असित नामक पुत्र हुआ।

"असित के राज्य-काल में अत्यन्त पराक्रमी हैहय-वंश में भयंकर आकारवाला ताल-जंघ नामक वीर उत्पन्न हुआ। उसने असित के साथ घोर युद्ध किया और युद्ध में पराजित करके उसका वध कर डाला। राजा की दोनों रानियाँ ने अत्यन्त दुखी होकर राज-काज का सारा भार मंत्रियों को सौंप दिया और शान्ति से जीवन बिताने लगी। उन दोनों रानियों में कालिंदी नामक रानी गर्भवती थी। सौतिया डाह के कारण दूसरी रानी से यह सहा नहीं गया और उसने उस गर्भ को हानि पहुँचाने के उद्देश्य से विष का प्रयोग किया। विष-प्रयोग से गर्भ-पात तो नहीं हुआ, किन्तु उसके प्रभाव से वह कड़ी वेदना का अनुभव करने लगी। तब कालिंदी हिमालय में च्यवन ऋषि के यहाँ गई और बड़ी भक्ति से उन्हें प्रणाम करके अपना सारा वृत्तांत कह सुनाया। मुनि ने उसके दुःख की कथा सुनकर कहा—'बेटी, तुम मेरी पुत्री के समान हो, डरने की कोई बात नहीं है।' उन्होंने उसे स्नेह से उठाया और अपनी दिव्य-दृष्टि से सारी स्थिति को समझकर कहा—'हे कालिंदी, तुम्हारे अत्यंत धार्मिक, अतुल तेजस्वी, महान् चेता, कीर्तिवान्, वंशोद्धारक, रूपवान् तथा शत्रुदमन पुत्र उत्पन्न होगा।' इस प्रकार मुनि का आशीर्वाद प्राप्त करने के पश्चात् वह रमणी मुनि को प्रणाम करके अपने घर लौटकर प्रसन्न-चित्त रहने लगी।

"निदान शुभ मुहूर्त में उस शुभांगी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। कालिंदी अत्यन्त हर्षित हुई। वह अपने शत्रुओं का दमन करके बड़े आनन्द से राज करने लगा। उसका नाम सगर था। उसका पुत्र असमंजस था। असमंजस का पुत्र अंशुमान था, जिसका पुत्र राजा दिलीप था। दिलीप के पुत्र पुण्यात्मा भगीरथ थे, जिन्हें ककुत्स्थ नामक पुत्र हुआ। उसके पुत्र रघु महाराज के पुरुपादक नामक पुत्र हुआ। उसके उज्ज्वल कीर्तिमान् नामक पुत्र हुआ। उसके पुत्र शंखण था, जिसके पुत्र सुदर्शन के अग्निवर्ण नामक पुत्र हुआ, जिसका पुत्र ऋतुपर्ण था। ऋतुपर्ण का पुत्र मरु था और उसका पुत्र शीघ्रग था। शीघ्रग के

पुत्र मनु के अबरीष नामक पुत्र हुआ। अबरीष का पुत्र जनवदित नहुष था, जिसका पुत्र ययाति नामक वीर था। ययाति के पुत्र नाभाग था और उसका पुत्र अज था। अज के पुत्र ही ये दशरथ है, जो पुण्यात्मा तथा सफल मनोरथ हैं। इन्ही दशरथ के पुत्र राम है। इनके विषय में अधिक क्या कहूँ? इनके पुत्र को ही तुमने अपनी पुत्री देने का निश्चय किया है। तुम कृतकृत्य हो। तुम्हारा वश (इससे) मगलमय हुआ।

इस प्रकार वसिष्ठ को रघुवश की प्रशसा करते हुए सुनकर पवित्रात्मा शतानन्द जनक की अनुमति लेकर बडे हर्ष से सभी सभासदो के सुनते हुए यों कहने लगे—'हे मुनीन्द्र, हमने बडे हर्ष से अनघात्मा दशरथ के वश-क्रम का वर्णन आपसे सुना। मै अब आपको प्रशसनीय जनक की वशावली सुनाऊँगा।"

३५ राजा जनक की वंशावली

"द्विजो तथा परमहसो के जन्मदाता अद्वितीय ब्रह्म अच्युत के नाभि-कमल में ब्रह्मा का जन्म हुआ और उनका पुत्र हुआ मरीचि। मरीचि का पुत्र कश्यप था। कश्यप के सूर्य उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र था मतिमान्, जिसके मनु नामक पुत्र हुआ। मनु ने ध्यान-मग्न अवस्था में कभी छीका, तो (उस छीक से) वैवस्वत का जन्म हुआ। उस वैवस्वत का पुत्र निमि था, जो निर्मल आचारवान्, नीतिकोविद, धर्मनिरत, विमल मूर्तिमान् तथा यशस्वी था। उसका पुत्र मिथि था, जिसके जनक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जनक के उदावसु नामक पुत्र हुआ, जिसका पुत्र नन्दिवर्द्धन था। नन्दिवर्द्धन का पुत्र सुकेतु था, जिसका पुत्र देवरात था। देवरात के बृहद्रथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके महाविभु नामक पुत्र था। महाविभु का पुत्र सुधृति था, सुधृति का पुत्र धृष्टकेतु और उसका पुत्र हर्यश्व था। हर्यश्व के मरु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके प्रतीधक नामक पुत्र हुआ। प्रतीधक का पुत्र कीर्त्तिरथ था, जिसके देवमीढ नामक पुत्र हुआ। देवमीढ का पुत्र विबुध और विबुध का पुत्र महाध्रक था। महाध्रक के कीर्त्तिरात नामक पुत्र हुआ और उसका पुत्र महारोम था। महारोम के स्वर्ण-रोम नामक पुत्र हुआ, जिसके ह्रस्वरोम नामक गुणवान् पुत्र हुआ। ह्रस्वरोम के दो पुत्र हुए—महाराज जनक और कुशध्वज। ये दोनो सौजन्य की मूर्त्ति है। जब जनक महाराज राज्य करते थे, तब साकाश्य का पराक्रमी राजा सुधन्वा अपनी सेना के साथ आया और मिथिला तथा सीता-समेत शिव का धनुष माँगते हुए एक दूत भेजा। जब उसकी माँग की उपेक्षा कर दी गई, तब उसने शिव-धनुष तथा सीता को प्राप्त करने के लिए घोर युद्ध किया। जनक ने युद्ध-भूमि में उसका सहार किया और अपने अनुज को उस राज्य का राजा बनाया। जनक से लेकर उस वश में उत्पन्न सभी राजाओ के नाम जनक के कारण प्रशस्त हो गये है। निमि-वश में जन्म लेनेवाले सभी नरेश योग-ज्ञान-सम्पन्न तथा चिरजीवी होते है।"

इस प्रकार, जनक के वश के सदाचरण तथा सीता के सद्गुणो की प्रशसा करने के पश्चात्, अत्यत प्रतापी तथा विमल-भाषी दशरथ को सबोधित करके (शतानन्द ने) कहा—'हे महाराज आप अपने नित्य अभिराम पुत्र राम का विवाह सीता के साथ सपन्न करके चिर-कीर्त्ति प्राप्त कीजिए।'

दशरथ ने इन बातो को सुनकर बडे उत्साह से वसिष्ठ तथा गाधि-पुत्र को देखकर कहा—'आप जनक महाराज से कहिए कि वे उर्मिला का विवाह सौमित्र से तथा राजा कुशध्वज की कन्याओ का विवाह उत्तम गुण-सपन्न भरत तथा शत्रुघ्न के साथ कर दें।' तब उन्होंने राजा जनक को सारी बातें कह सुनाई और उनकी सम्मति प्राप्त करके बडे हर्ष से राजा दशरथ को जनक की स्वीकृति कह सुनाई।

दूसरे दिन विवाह के लिए अनुकूल शुभ लग्न था। अतः जनक ने उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र में विवाह का शुभ-मुहूर्त्त ठहराया और नगर तथा अतपुर को सजाने के लिए परिचारको को भेजा। उन्होंने चदन-कस्तूरी-मिश्रित जल से (नगर के) मार्गो पर छिडकाव करके उन्हें सुगधमय बनाया। चीनाशुको (रेशमी वस्त्र) के वितान सजाये, मणि-तोरण-ध्वजाओ से सारा नगर अलकृत किया, फलो के भार से अवनत कदली के पेडो तथा सुपारी के पत्तो से प्रत्येक घर तथा कक्षो के द्वारो को सजाया और विशाल चबूतरो को जवादि से लीपकर उनपर चौक पूरे। मणिकचन-कलशो से युक्त सौधो के गोपुरों का समूह अगणित सूर्यो का भ्रम उत्पन्न कर रहा था। सारा नगर मणि-दीपो, वारभी (धूप) के धुएँ तथा पुष्प-कलापो का भार वहन कर रहा था। इस प्रकार नगर को अलकृत करने के पश्चात् उन्होंने अतपुर को बडी निपुणता से सजाया। फिर उन्होंने शिल्पकारो द्वारा विवाह-वेदी का निर्माण कराने का आदेश दिया। शिल्पकारो ने मरकत की भूमि पर सोने के स्तभ स्थापित किये, उनपर नीलमणि के कार्निस लगाये और उनपर माणिक्य की धरन (शहतीर) बैठाई। सुदर ढग से नक्काशी करके बनाये गोमेदक के छज्जे बनाये और ऊपर वज्र (हीरे) का गारा किया। (उस मडप के) चार विशाल किवाड बनाये गये, जो मणि तथा स्वर्ण के बने थे। (मण्डप में) सोने के सुन्दर चित्र बनाये गये। नीलमणि के हाथी तथा स्फटिक के सिंहो से सुसज्जित सोपान रचे गये। उशीर (खस) का विशाल शामियाना बनाया गया, जिसके मध्य में फूलो की लडियाँ लटकाई गईं। विवाह के लिए मरकत की वेदी बनाई गई। उसे कस्तूरी से लीपकर उसपर मोतियो के चौक पूरे गये। इस प्रकार सुसज्जित वह विवाह-मण्डप दर्शको को नेत्रोत्सव प्रदान कर रहा था।

तब वसिष्ठ, विश्वामित्र तथा अन्य पुण्यात्माओ को देखकर जनक ने कहा—'आप लोग ही मिथिला तथा अयोध्या के कर्त्ता (विधाता) है। अब आगे जो कार्य करना उचित हो, उन्हें कराइए।'

निरतर बजनेवाले मगल-वाद्यो के कलनाद तथा सुमगली स्त्रियो के मधुर गीतो के बीच महाराजा दशरथ तथा उनके चारो पुत्र मणिपीठो पर बैठे। उन्हें तैल तथा उबटन लगाकर उनका मगल-स्नान कराया गया। उसके उपरात माथे पर तिलक देकर उन्हें चीनाशुक (रेशमी वस्त्र) तथा आभूषणो से अलकृत किया गया। (उन्हें देखकर) दशरथ तथा उनकी पत्नियाँ आनन्द से फूली नही समाती थी। इसके पश्चात् उन्होंने पवित्र मन से अपने पुत्रो के शुभ अभ्युदय के निमित्त गो-दान देने का निश्चय किया। प्रत्येक पुत्र के हितार्थ उन्होंने वेद-विधि के अनुसार सोलह हजार गायें श्रेष्ठ ब्राह्मणो को दान दी। वे गायें धौत-खुर, कनक-शृग, ताम्र-पुच्छ से अलकृत थी और सुन्दर दीखती थी। उनके साथ

उनके बछड़े भी थे। ये गायें श्रेष्ठ वस्त्रो से सज्जित थी। गायो के साथ उनको दूहने के लिए काँसे की दोहनी भी राजा ने दान में दी। इनके अतिरिक्त राजा ने स्वर्ण, भूमि तथा रत्नादि दक्षिणा के साथ अलग-अलग (पुत्रो के हितार्थ अलग-अलग ब्राह्मणो को) दिये।

इसी समय भरत का मामा युधाजित् वहाँ आ पहुँचा। वह अपने पिता कैकय-नरेश की आज्ञा से भरत को ले जाने के लिए अयोध्या आया था। किन्तु पुत्रो के विवाहार्थ दशरथ को मिथिला गये हुए जानकर वह सीधे मिथिला आ गया। दशरथ ने बड़े प्रेम से उसका आदर-सत्कार किया और कुशल-समाचार पूछे।

दूसरे दिन स्नातक आदि विधियो को पूर्ण करने के पश्चात् (राम) अपने भाइयो के साथ दशरथ के सम्मुख उपस्थित हुए। दशरथ ने उनका अलकार करने का आदेश दिया। (परिचारक राम का अलकार करने लगे) उनके सिर पर मुकुट, उदयाद्रि के शृग के समान शोभा दे रहा था। उन्होंने हाथो में ककण धारण किये, मानो वे भक्तो की रक्षा के लिए बद्ध-ककण (कृत-सकल्प) हो रहे हों।

उनके वक्ष पर हार ऐसे शोभ रहे थे, मानो उनके वक्षःस्थल से उत्पन्न चन्द्रकिरणें चारो ओर छिटक रही हों। कटि-प्रदेश में कनक-वस्त्र ऐसे शोभित हो रहे थे, मानो पृथ्वी ने उनके कनकाबरत्व को धारण कर लिया हो। उनके कानो में कुडल ऐसे शोभ रहे थे, मानो रावण के अत्याचार से पीडित अष्ट-दिक्पालों का यश दोनो ओर मोतियो के बहाने अपनी विनती (श्रीराम को) सुना रहे हों। ऐसे सौंदर्य से सपन्न उनके मुख की कान्ति को बढाते हुए कस्तूरी-तिलक शोभित हो रहा था। उदित होनेवाले भानु के तेज के समान विलसित, एव कुडल केयूर, मुकुट तथा हारो से मडित लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के बीच राम ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो दिक्पालको के मध्य इन्द्र विराज रहा हो।

वहाँ (जनक के अत पुर में) जनक ने (अपनी) चारो कन्याओ को सुसज्जित करने के लिए दासियो को आदेश दिया। उन्होंने उन कन्याओ को दीप्तिमान् मणिपीठ पर बिठाया, सुमगलियों के मगल-गीतो और शारिका तथा कीरो के कलरव के बीच प्रत्येक को कुकुम, कस्तूरी, गोरोचन तथा जवादि की सुगधि से सुवासित उबटन लगाया। ककणो की मृदु ध्वनियो से मुखरित कर-पल्लवो से उनके केशो में चपा का तेल लगाया, हरिचदन का लेप किया और घनसार की सुगधि से युक्त कुनकुने जल से उन कन्याओ का स्नान कराया, महीन कपडो से (उनके शरीर को) पोछा और गुलाबी रग के लहगो पर सुनहली जरीदार अचलवाले वस्त्र पहनाये। (उसके बाद) उन्होंने उनके जूडे ऐसे सुदर ढग से बाँधे मानो समस्त शृगारो की राशि एकत्र कर दी हो। उन जूडो में जूही की कलियाँ सजाई। कर्पूर तथा गुलाब-जल में कस्तूरी घोलकर (सारे शरीर पर) लेप किया, सुनहली जरीदार कचुकी पहनाई तथा उनके वक्ष पर मरकत-मोतियो के हार पहनाये। फिर उनके (कन्याओं) के कमनीय मुखो के सौंदर्य की वृद्धि करते हुए तिलक लगाये, कपोलो पर मकरिका-पत्रो को रचा, नाक में बेसर पहनाये, रत्नो के कर्णफूल, मोतियो की बालियाँ और माणिक्य के कुण्डल सजाये। सके पश्चात् (उनके पैरो में) मरकत के कडे, पद्म-राग जड़े नूपुर तथा गोमेदक-जड़े पाजेब पहनाये।

इस प्रकार, हारो तथा आभूषणो से अलकृत होने पर उन्हें देख सब स्त्रियां आश्चर्य करने लगी कि ये दुलहिनें शरत्-पूर्णिमा के चन्द्र है, वसत-काल की पुष्प-लताएँ है या खराद पर चढे हुए श्रेष्ठ रत्न है, श्री-समन्वित कुदन की शलाकाएँ है, धीन मुक्ताएँ है, अथवा सुगध से परिपूर्ण चदन की प्रतिमाएँ है । उनमें सीता तो स्वय लावण्य की मूर्त्ति, श्रेष्ठ गुणवती, जगन्माता, आदिलक्ष्मी का अवतार थी, उस देवी के सौदर्य का वर्णन करना किसके लिए सभव है ? वे भूषणो के लिए आभूषण थी, भूदेवी के समान थी, रत्नाकर की मेखला थी, गधवती (पृथ्वी) थी और वसुमती थी ।

शुभ मुहूर्त्त निकट आते देखकर वसिष्ठ जनक से परामर्श करके आये और दशरथ को इसकी सूचना दी । तब महाराज दशरथ कौशिक, वसिष्ठ आदि गुरुओ को साथ लेकर अमरेन्द्र के वैभव से युक्त हो, उचित वाहनो पर सवार होकर जनक के अन्तपुर की ओर चले । उनके पीछे-पीछे उनके पुत्र तथा सुसज्जित हो रमणियाँ चलने लगी । उनके पीछे राजा के सामन्त, मगलप्रद द्रव्यों को लिये हुई पुण्यवती स्त्रियाँ, याचक, अलकृत अश्व तथा गज, मत्री, वेद-पाठ करते हुए विप्र तथा प्रसन्न-चित्त मुनिगण चलने लगे ।

३६ सीता और राम का विवाह

बरात को आते देख जनक ने अत्यन्त उत्साह से उनकी अगवानी की थी । कमल-लोचनी सुहागिनो ने उनकी आरती उतारी । जनक ने उन्हें विवाह-मडप में नवरत्न-खचित पीठो पर आसीन कराया । उसके पश्चात् उन्होंने अविलब अपने पुरोहित के द्वारा स्वर्ण-वेदी में अग्नि की प्रतिष्ठा कराई और वेदोक्त विधि से हवन-कार्य सपन्न किया । उसके उपरान्त उन्होने देव-कन्याओ की-सी दीखनेवाली, लावण्यवती अपनी कन्याओ को बडे स्नेह से बुलवाया । उन्होने मधुपर्क की विधि पूरी की और अपनी प्रिय पुत्री विद्युत् अगवाली, स्त्री-रत्न, कमललोचनी सीता को परदे के पीछे खडा किया । फिर उन्होने वाछित फल की सिद्धि के हेतु सकल्प-पूर्वक राम से कहा—'हे राम, मेरी पुत्री, सद्धर्मचारिणी सीता को अग्नि के समक्ष ग्रहण करो ।' इस प्रकार कहते हुए उन्होने (राम के हाथो में) सीता को सौपा । (उस समय) अजस्र पुष्प-वृष्टि हुई तथा देव-दुदुभियाँ बजने लगी । सुदर रमणियाँ दीपो की थालियाँ लिये खड़ी थी, स्वर्ण के थालो में मगलाक्षत लिये सुमगलालियाँ पार्श्व-भाग में खडी थी । गुड तथा जीरा मिलाकर वधु-वरो के सिर पर रखा गया।[1]

तब सुमुहूर्त्त जानकर (मुनि ने) परदा हटाया । सीता का भव्य मुख सामने देखकर राम की आँखें पूर्णिमा के चन्द्र के प्रकाश में विकसित कुमुद-पुष्प के समान प्रफुल्लित हो गईं । सीता की दृष्टि पति के चरण-कमलो पर इस प्रकार स्थित हुई, जैसे पद्म पर भ्रमर बैठे हो ।

रामचन्द्र की दृष्टि इस प्रकार दीखने लगी, मानो वह उस परम सुन्दरी के लावण्य-रूपी सागर में तैर रही हो । वधू की दृष्टि वर के शरीर के कान्ति-रूपी प्रवाह के मध्य विकसित पद्म (कमलो) के सदृश शोभायमान हो रही थी । पत्नी तथा पति की आँखें थोडी

१ आंध्र-देश में विवाह के समय शुभ मुहूर्त्त में वर-कन्या के सिरो पर गुड़ तथा जीरा मिलाकर रखने की प्रथा है। यह शुभ माना जाता है।

देर के लिए आपस में इस प्रकार मिली, जैसे रति तथा मन्मथ के सुन्दर रूप वडी शोभा-युक्त गति से परस्पर मिले हो । उसके पश्चात् रघुवीर ने सीता के लाल कमल के समान कर को अपने हाथ में लिया और पुलकित गात्रो से दोनो एक ही पीठ पर आसीन होकर बडी प्रीति से हवन का कार्य सपन्न करने लगे । जनक ने वडी प्रीति से श्रेष्ठ युवती उर्मिला का हाथ लक्ष्मण के हाथ में दिया, कुशध्वज की पुत्रियो में से कमल के-से विशाल नेत्रोवाली माडवी का कर भरत के हाथ में सौपा और चन्द्रमुखी श्रुतकीर्त्ति का हाथ शत्रुघ्न को दिया ।

इस प्रकार वेद-विधि से पाणिग्रहण-सस्कार समाप्त करके दशरथ के पुत्रो ने अक्षता-रोपण-विधि पूरी की और लाज-होम (धान का लावा अग्नि में डालने की क्रिया) सपन्न करके मुनियो के आशीर्वाद प्राप्त किये । स्वर्ग के देवो ने दुदुभियाँ बजाई, पुष्प-वृष्टि की, देवता सतुष्ट हुए, मुनि प्रसन्न हुए, गधर्व अत्यन्त हर्षित होकर गाने लगे तथा आनन्द से अप्सराएँ नृत्य करने लगी । तव वसिष्ठ ने वैव.हिक हवन के उपरान्त राजकुमारो को अग्नि की परिक्रमा कराई और सप्तर्षियो की पूजा कराई । सब मुनि तथा पुरोहितो ने वडे हर्ष से वर-वधुओ को आशीर्वाद दिये । दूसरे दिन सदसि (ब्राह्मणो की सभा, जिसमें वे वेदोच्चारण के साथ वर-वधू को आशीर्वाद देते है) सपन्न किया गया और सबने शुद्ध चित्त से आशीर्वाद दिये ।

इस प्रकार, विवाह के चार दिन वडे समारोह के साथ व्यतीत हुए । समस्त शुभ सस्कारो का दर्शन करके, महाराज दशरथ तथा समुद्र-सदृश शीलवान् जनक को आशीर्वाद देकर कौशिक ने हिमाचल की ओर प्रस्थान किया । मिथिलेश के आनन्द की सीमा न रही । इसके पश्चात् (जनक तथा दशरथ) दोनो राजाओ ने अपने विभव के अनुकूल विवाह में आये हुए राजाओ को श्रेष्ठ वस्त्राभरण देकर विदा किया और सभी याचको को अपरिमित धन देकर सतुष्ट किया ।

जनक ने अपनी पुत्रियो को वडे स्नेह से उचित सीख दी और उन्हें श्रेष्ठ रत्ना-भूषण, चित्र-विचित्र के चीनाबर तथा दासियाँ भेंट में दी । अपने जामाताओ को रथ, गज, तुरग, पदचर, सैनिक तथा आभूषण भेंट किये । वसिष्ठ आदि सयमियो तथा महाराज दशरथ को विविध रत्नाभरण देकर उनका सत्कार किया और अपनी पुत्रियो को उनके साथ विदा किया । अपने पुत्र तथा पुत्र-वधुओ के साथ राजा दशरथ अयोध्या के लिए रवाना हुए । किन्तु मार्ग में अचानक वडे वेग से प्रतिकूल पवन चलने लगा । इसके अतिरिक्त कितने ही अपशकुन भी होने लगे । राजा ने वहुत व्याकुल होकर वसिष्ठ से पूछा—"हे मुनीश्वर, ये अपशकुन किस कारण से हो रहे है ?" तब वडी अनुकपा से वसिष्ठ ने राजा को देखकर कहा—'राजन्, आगे एक वडी विपत्ति आनेवाली है, पर वह देखते-देखते दूर हो जायेगी । चिंता मत करो ।'

मुनि इस प्रकार कह ही रहे थे कि पवन प्रचण्ड गति से चलने लगा, सारे आकाश में धूल छा गई । हाथी, घोडे तथा रथो पर सवार योद्धा तथा अन्य लोग चकित-से रह गये । सारी सेना तितर-बितर हो गई । सूर्य का तेज मलिन हो गया । उसी समय

पराक्रमी परशुराम कधे पर परशु धारण किये आते दिखाई पड़े, जिन्होंने इक्कीस बार इस पृथ्वी को निःक्षत्रिय कर दिया था। उनकी आँखें ऐसी लाल थीं, मानो अपने जटा-जूट में स्थित गगा की आर्द्रता से ललाट को आर्द्र बनाये हुए, अत्यत भयकर रूप में जलनेवाले तथा अपने कठ के विष को क्रोध से दैत्यों के ऊपर उगलनेवाले परम शिव के ललाट-नेत्र की प्रज्वलित वह्नि को (परशुराम) अपनी दोनों आँखों में लिये हुए आ रहे हों। उनकी बिखरी हुई लाल-लाल जटाएँ ऐसी दीप्त रहीं थीं, मानो उनके भीतर की क्रोधाग्नि प्रज्वलित होकर बाहर तक अपनी लाल-लाल ज्वालाएँ फैला रही हों। उनके कधे पर रहनेवाला परशु ऐसा शोभा दे रहा था, मानो उनकी भुजा रूपी लक्ष्मी ने नाल-युक्त विकसित कमल हाथ में धारण किया हो। ऐसे भयकर रूप में आनेवाले परशुराम को देखकर राजा दशरथ तथा मुनिगण भयभीत होकर भय-निवारक मत्रों का जप करते हुए अर्घ्य-पाद्यो के साथ परशुराम के सामने आये।

३७ परशुराम का गर्व-भंग

परशुराम ने अर्घ्य-पाद्य ग्रहण नहीं किया और राजा दशरथ को डरा-धमकाकर राम के आगे आकर खडे हुए। भार्गव राम (परशुराम) को देखकर राम ने बडी भक्ति से प्रणाम किया और हाथ जोडे बडे विनय से खड़े रहे। उन्हें देखकर परशुराम ने कहा—'हे राजन्, तुम कितना भी विनय दिखाओ, तोभी मैं तुम्हें क्षमा नहीं करूँगा। तुम मुझसे युद्ध करो।' तब राम ने कहा—"हे भृगुसत्तम, आपने कश्यप आदि ब्राह्मणों को सारी पृथ्वी दान कर दी है और महान् जितेन्द्रिय हो वनों में रहकर घोर तपस्या में सलग्न रहते है। अत आपकी वदना करना उचित है। हे मुनीश्वर, यही विचार करके मैंने आपको प्रणाम किया है, आपसे भीत होकर नहीं। क्या यह उचित है कि आप व्यर्थ ही मेरी निंदा करें?"

परशुराम बोले—"तुम मुझे तपस्वी कहते हो? जानते हो, मैंने युद्ध में सहस्रबाहु को मार डाला और इक्कीस बार पृथ्वी पर के सभी क्षत्रियो का नाश कर डाला है तथा (उनके) रक्त से अपने पितरो की तिलोदक-क्रिया की है। हमारे पितर राजाओं के शवो का सोपान बनाकर स्वर्ग में चले गये है। हे अनघ, ऐसे भार्गव राम को बिना जाने तुम इस ससार में राम होकर कैसे जन्मे? क्षत्रिय के नाम से जो जन्म लेता है, मै उसका नाश करूँगा। (ऐसी दशा में) राम का नाम धारण करनेवाले क्षत्रिय को क्या मै कभी छोड सकता हूँ? राज-वश में जन्म लेकर राम का नाम धारण करनेवाले तुम्हें मै कदापि क्षमा नही करूँगा। राजा होने के कारण तुम्हारे पिता को युद्ध में मार डालने के उद्देश्य से मै आया था, लेकिन स्त्रियो की आड में शरण लेने के कारण मैंने उसे छोड दिया था। इसीलिए वह गर्वांध हो यहाँ फूला-फूला विचर रहा है। आज भले ही वह कही छिप जाय, पर मै उसे जीवित नही रहने दूंगा।"

तब दशरथ अत्यन्त भीत होकर बडे विनय से भार्गव से बोले—"हे भार्गव, आप ब्राह्मण है, आपको इतना रोष क्यो? मेरे पुत्र बालक है। उनपर क्रोध करना आपको शोभा नही देता। मै जानता हूँ कि आप समस्त शास्त्रो एव पुराणो में पारगत है। ऐसा

कौन धर्म है, जिसे आप नही जानते । आपका सामना करके आपसे युद्ध करने की क्षमता शिवजी में भी नही है । ऐसी दशा में दूसरो की शक्ति की वात कौन कहे ? हे परम-पावन, देवेन्द्र भी आपकी कठोर प्रतिज्ञा को व्यर्थ नही कर सकता । आप हम सबको क्षमा करके प्रसन्नता से गमन कीजिए ।"

दशरथ ने इस प्रकार कहकर प्रणाम किया और सिर झुकाकर चुपचाप खडे हो गये। फिर भी परशुराम की आँखें क्रोध से लाल ही रही । उन्होने अपनी प्रशसा में कहे हुए वचनो को अनसुनी कर दिया और मन-ही-मन उन सबका दमन करने का विचार करके अत्यत क्रोध के साथ बोले—"जिस समय मै शिव के साथ धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहा था, उस समय कार्तिकेय ने मुझसे युद्ध आरभ किया, पर वह मुझसे हार गया । तव शिव ने भी मेरी शक्ति की प्रशसा की थी । उस शिव के धनुष का तोडना मै कैसे सहन कर सकता हूँ ?"

तव रघुराम ने हँसते हुए कहा—"मैंने विनोदार्थ उस धनुष का सधान किया, तो वह टूट गया । इतना ही नही, मेरे सधान करने से भला वह पिनाक कही टिक सकता था ? मेरी भुजाओ की शक्ति ही इतनी अधिक है । इक्ष्वाकु-वशी युद्धो में कभी पशुओ तथा ब्राह्मणो का वध करना नही चाहते । आपने जो वातें कही, वे सव आपके लिए उचित है । आप ब्राह्मण है, मै आपका वध करना नही चाहता । यह मेरी गर्दन है, वह आपका परशु है । विना दया दिखाये जो उचित समझें, करें ।"

रघुराम को क्रोधोद्दीप्त देखकर भार्गव राम घवराकर बोले—"तुम्हारी वातो से मुझे ज्ञात होता है कि तुम्हें इस वात का गर्व है कि मै ब्राह्मण हूँ और तुम क्षत्रिय हो । तुम ऐसा मत सोचो । मै अभी अपने प्रताप का तेज तुम्हें दरसाऊँगा । उस जनक राजा के घर में जिस धनुष को तुमने तोडा है, उसे तथा इस धनुष को (जो मेरे पास है) पहले देवताओ ने वडे प्रेम से विश्वकर्मा के द्वारा एक साथ वनवाया था । उनमें से एक उन्होने त्रिपुर-विजय के लिए जाते समय शिव को दिया । रुद्र ने उसी धनुष से त्रिपुरो को विजित किया ।" उसके पश्चात् 'वीर-गर्व की मुद्रा धारण करके वे कहने लगे—'मैंने विना किसी की सहायता के ही त्रिपुरासुरो का वध किया है । मेरे समान शक्तिशाली इस ससार में कौन है ?'

(उनके वचनो को सुनकर) देवता, मुनि, सनकादि, विष्णु के पार्श्वचर कहने लगे कि विष्णु त्रिपुरासुर के वध में शिव के सहायक वने, अन्यथा रुद्र से यह कार्य कैसे सधता ? यह वार्त्ता रुद्रगण ने सुनकर शिव से कह दिया । शिव ने अत्यत क्रोध करके विष्णु को युद्ध के लिए ललकारा । (यह वात जानकर) सुर, गरुड तथा उरगादि देवता ब्रह्मा के पास गये और उनसे परामर्श करने के वाद यह निश्चय किया कि हरि तथा हर की परीक्षा के लिए दोनो में युद्ध होना ही चाहिए। अत उन्होने कामुक नामक धनुष विष्णु को दिया । हरि तथा हर दोनो अतुल रीति से युद्ध करने लगे । नारायण द्वारा की गई भयकर वाण-वर्षा के कारण शिव के धनुष का थोडा-सा भाग टूट गया । तव देवताओं ने निर्णय किया कि हरि की शक्ति ही प्रवल है और उन्होने दोनो का युद्ध वद करवा दिया।

देवताओं का मनोभाव जानकर शिव ने अपना धनुष देवरात को दिया। उन्होंने वह धनुष जनक को दिया। विष्णु ने अपना धनुष रुचिक को दिया, रुचिक ने जमदग्नि को दिया और जमदग्नि ने कृपा करके मुझे यह धनुष दिया। शिव का धनुष पहले ही थोडा-सा टूटा हुआ था, इसलिए तुमने उसे तोडा होगा। हे राजन्, मेरे हाथ का यह धनुष उसी धनुष के जोड का है। इसपर वाण-सधान करके अपनी शक्ति का परिचय दिये विना मैं तुम्हें यहाँ से हटने नहीं दूँगा।"

इन वचनों को सुनकर दशरथात्मज अत्यत क्रुद्ध हुए। उनकी आँखों से अग्नि-कण निकलने लगे। राम ने भार्गव राम से, जो उनकी शक्ति से अनभिज्ञ थे, कहा—"मैं जानता हूँ कि आपमें अतुल वल है। मैं यह भी जानता हूँ कि आपने क्षत्रियों को परास्त करके उनका वध किया है। किन्तु, आप मुझे भी दूसरों की तरह समझकर, निर्भय होकर डीग मार रहे हैं। आपको मेरे भुज-वल का ज्ञान नहीं है। भला, आपकी शक्ति ही कितनी है? आपका यह धनुष क्या चीज है? लाइए, देखूँ तो सही।

इस प्रकार कहकर उन्होंने (परशुराम के हाथ से) धनुष लेकर, उसकी प्रत्यचा चढा दी और एक उग्र वाण-सधान करके कहा—"मैं आपके पैर काटकर आपका गर्व-भग करते हुए आपका क्रोध दूर करूँगा।"

परशुराम भयभीत हो गये। उनका घमड चूर-चूर हो गया। उनकी हेंकडी जाती रही। तुरन्त वडी नम्रता से प्रार्थनापूर्वक कहने लगे—"हे राजेन्द्र, हे राम, मानवाधीश मुझे क्षमा करो। मेरी रक्षा करो। मैंने सारी पृथ्वी कश्यप को दान में दे दी है। अत: मैं रात के समय इस पृथ्वी पर ठहर नहीं सकता। मुझे रात तक महेन्द्राचल पर पहुँच जाना चाहिए। इसलिए तुम मेरे पैर मत काटो। (तुम चाहे तो) मेरे समस्त सचित पुण्य पर यह वाण छोड दो।"

तव राम ने वह वाण परशुराम के (सचित) पुण्य पर छोड दिया। देवता, सिद्ध, खेचर आदि जडवत् खडे भार्गव राम तथा क्रुद्ध काकुत्स्थ राम को देखते रहे। तव पुष्प-वृष्टि हुई। स्वर्ग में रहनेवाले ब्रह्मादि देवता आनन्दित होकर राम की प्रशंसा करने लगे।

भार्गव राम राम को देखकर मन-ही-मन उनकी महिमा का विचार करके वोले—"हे अनघ, मैंने तुम्हारी शक्ति को देख, मन-ही-मन विचार करके जान लिया है कि तुम विष्णु हो। हे काकुत्स्थ, इसलिए युद्ध में हार जाना मेरे लिए स्वाभाविक ही है। तुम मेरे वल हो, मेरी आत्मा हो, मेरे वधु-वाधव सव तुम ही हो। हे रामचन्द्र, तुम मेरे कुवचनों का खयाल मत करो। हे रघुकुलाधीश राम, तुम मेरी रक्षा करो।"

इस प्रकार उन्होंने राम की स्तुति की, मन-ही-मन रघुराम की महिमा गुनते हुए उनकी परिक्रमा की और भक्ति से हाथ जोडकर, अत्यन्त विनय से राम की कृपा प्राप्त करने के उद्देश्य से वोले—"हे राघव, हे जानकीनाथ, अव मुझे जाने की आज्ञा दो। मेरी त्रुटियों का ध्यान न करके उन्हें क्षमा कर दो, मेरी रक्षा करो और स्नेह से मुझे जाने की अनुमति प्रदान करो। मैं एकनिष्ठ होकर, अविचल रीति से नेत्र वद करके तुम्हारे प्रति तपस्या करूँगा और ज्ञान प्राप्त करूँगा, जिससे सभी मुनि-समाज हर्षित हो जाय।"

इस प्रकार राम की स्तुति करके, वडे प्रेम से वे वहाँ से प्रस्थान करते हुए वोले— 'राम, तुम्हारी शक्ति अनुपम है।' उसके पश्चात् वे महेन्द्राचल पर चले गये। वरुण की प्रार्थना मानकर रघुराम ने उसी क्षण परशुराम का धनुष उन्हें दे दिया।

तव अनुकूल पवन चलने लगा। सेना में फिर से उत्साह छा गया। नर तथा सुरो की प्रशसा प्राप्त करते हुए विजय-श्री से युक्त हो राघव ने अपने पिता महाराज दशरथ तथा पुण्यात्मा वसिष्ठ को प्रणाम किया। राजा ने वडे आनन्द से उन्हें गले से लगाकर आशीर्वाद दिया और वोले—"मेरा पुनर्जन्म-जैसा हुआ है। तुम्हारे जैसा पुत्र प्राप्त करक इस पृथ्वी पर मैं देवराज इन्द्र के समान वन गया। परम पावन परशुराम जव शिव की तरह (भयकर रूप लेकर) यहाँ आये, तव भय से मेरा सारा शरीर काँपने लगा और मैंने सोचा कि अव कोई उपाय नही है। इसलिए मैंने उनसे विनती की। जव उन्होने मेरे विनीत वचनो को ठुकरा दिया, तव पुत्र-स्नेह से विह्वल होकर मैं चुप हो रहा। (तुम्हारा) उनको जीतना मेरे लिए वडे आश्चर्य का विषय है। मैंने आज अतुल वैभव प्राप्त किया है। तुम्हारे प्रताप के फलस्वरूप सारा भय दूर हो गया है। मै इस ससार में यशस्वी हुआ।"

इस प्रकार, राम का अभिनदन करने के उपरान्त राजा ने वसिष्ठादि मुनियो और सभी सेनाओ को साथ लिये हुए वडे आनन्द से अयोध्या की ओर प्रस्थान किया।

३८ अयोध्या में प्रवेश

मगल-चिह्नो तथा पुण्यात्माओ के साथ, मगल-वाद्यो की ध्वनि होते हुए, दशरथ ने अपने पुत्रो-सहित वडी प्रसन्नता से अयोध्या में प्रवेश किया। अलकृत राजमार्ग में, राज-कुल के लोग तथा अन्य मित्र-वर्ग, सौधो पर से उन सुन्दर राजकुमारो को देखकर उनपर पुष्प-वृष्टि करने लगे। भूसुर आशीर्वाद देने लगे। तव राजा ने अत्यन्त सुन्दर ढग से अलकृत अत पुर में प्रवेश किया। कौसल्या कैकेयी तथा सुमित्रा आदि रनवास की सभी स्त्रियाँ अत्यन्त हर्ष से उनके स्वागतार्थ आईं। उन्होने उनपर फूलो की वर्षा की और उनकी आरती उतारी। पुत्र तथा पुत्र-वधुओ ने उनके पैर छुए, तो उन्होने उन्हें गले लगाकर आशीर्वाद दिये। सीता आदि पुत्र-वधुओ का मधुर स्वभाव एव कुशलता देखकर सभी सतुष्ट हुए।

दशरथ अपने चारो पुत्रो की सेवाएँ प्राप्त करते हुए, चतुर्भुज विष्णु के समान, चार शृगोवाले स्वर्ग के हाथी (ऐरावत) के समान विलसित होते थे और वडे आनन्द से पुण्य की रक्षा करते हुए राज्य करने लगे। एक दिन दशरथ ने उचित समय देखकर शुभ लक्षणो से सपन्न अपने पुत्र भरत को बुलाकर कहा—"हे वत्स, तुम्हारे मामा कैकय तुम्हें अपने यहाँ ले जाना चाहते हैं, अत तुम शत्रुघ्न के साथ उनके यहाँ जाओ और उनकी इच्छा पूर्ण करो। हे वत्स, (वहाँ) अपने नाना, नानी, मामा तथा ब्राह्मणो के प्रति भक्ति-युक्त विनय दरसाते रहना। उनकी परिचर्या करते हुए उनसे रथ चलाना, शस्त्र चलाना, वेद-शास्त्र, नीति-शास्त्र तथा अन्य सभी कलाओ को सीखने में सतत तत्पर रहना। एक क्षण भी व्यर्थ न विताना और (समय-समय पर) अपना कुशल-समाचार भेजते रहना।"

राजा का आदेश पाते ही भरत ने माता-पिता तथा रघुराम को विनय से प्रणाम किया और शत्रुघ्न को साथ लेकर अपने मामा के साथ राजगृह की राजधानी के लिए रवाना हुए।

राजकुमारो ने अपने आगमन का समाचार अपने नाना को भेज दिया । उस राजा ने अपने नगर को फूल-मालाओ, तोरणो तथा पताकाओ से सुदर ढग से सजाया । सुगधित जल से मार्गो का सिंचन करवाया तथा पुष्प एव धूप आदि से राजमार्ग को सुगधित किया । (फिर) मत्रियो, स्त्रियो तथा परिचारको को साथ लेकर तरह-तरह के वाद्य, नृत्य, गीतो से युक्त हो राजा ने उनकी अगवानी की और वदी, सूत तथा मागध-जन की स्तुति-वचनो के साथ अपने नाती को बडे स्नेह से अत पुर में ले आये । भरत ने अपने नाना से लेकर क्रमश सभी गुरुजनो को प्रणाम किया और उनके आशीर्वाद प्राप्त किये ।

युवराज राम बडी कुशलता तथा एकाग्रता से, अपने पिता की सेवा करते हुए, भी प्रजा को एक समान मानते हुए धर्म-निरत हो, सीता के साथ नव-वैवाहिक जीवन का आनन्द प्राप्त करने लगे । वे अट्टालिकाओ पर, क्रीडा-सौधों में, चन्द्रकान्त शिलाओ पर, शीश-महलो में, सोने के शयनागारो में, जूही की पुष्प-शय्याओं पर, चपक, पूग, नारियल, रसाल, नारगी आदि वृक्षो से युक्त उपवनो में, क्रीडा-पर्वतो पर, सरोवरो में, लतागृहो में, धवल वितानो में, वालुकामय भूमि पर, आमोद-प्रमोद के साथ रहते हुए, समस्त सुख-भोगो का अनुभव करते रहे ।

इस प्रकार, आध्र के भाषा-सम्राट्, काव्य तथा आगमो के ज्ञाता, आचारवान्, अपार ज्ञान-समुद्र, भूलोक के लिए निधि-सम दीखनेवाले गोनबुद्ध राजाने अपने पिताश्रेष्ठ, धैर्यवान् शत्रुओ के लिए काल-स्वरूप, महापुरुष, श्रेष्ठ शूर, दयालु, गुणवान् विट्ठलराजा के नाम, आचन्द्रार्क विलसित होनेवाली, समस्त भूमडल में अत्यत पूज्य, अनुपम, ललित शब्दार्थो से युक्त रस-सिद्ध रामायण के कला एव भावो से परिपूर्ण बालकाड की रचना की ।

आर्षग्रन्थ, आदि काव्य, रसिको को आनद देनेवाले तथा शाश्वत, इस पुण्यचरित्र को जो कोई पढेंगे या सुनेंगे, वे सामादि वेद-समूहो का निवास-स्थान, रामनाम चिंता-मणि, समस्त भोग, परहित आचरण, ऊँचे विचार, पूर्ण शक्ति, राज-सुख, विमल यश, चिर सुख, धर्म-निष्ठा, दान में आसक्ति, चिरायु, स्वास्थ्य, समृद्धि आदि अवश्य ही प्राप्त करेंगे । उनके पापो का नाश होगा, पुत्र की प्राप्ति होगी, शत्रुओ का नाश होगा और धन-धान्य की वृद्धि होगी । विना किसी प्रकार के विघ्न-बाधाओ के, उन्हें लावण्यवती धर्म-पत्नी का सह-वास प्राप्त होगा । उनके भाई भी उन्नति प्राप्त करते हुए बडे स्नेह से हिल-मिलकर रहेंगे । देवता तथा पितर सदा तृप्त रहेंगे । यह रामायण मोक्ष-साधक है, पापहारी है, दिव्य तथा भव्य है । शुभप्रद है । इस रामायण की पूजा नियम-पूर्वक करने से पुण्य प्राप्त होगा, इसकी रचना करनेवालो की शुभ उन्नति होगी और स्वर्ग-लोक का निवास प्राप्त होगा । जबतक कुल पर्वत, समुद्र, रवि-चद्र, नक्षत्र, वेद, दिशाएँ तथा ससार शोभायमान रहेंगे, तबतक यह कथा शाश्वत आनद-समूह का निवास-स्थान बनी रहेगी ।

: बालकांड सामप्त :

श्रीरंगनाथ रामायण

(अयोध्या कांड)

१ राम-राज्याभिषेक का संकल्प

महाराजा दशरथ अत्यत शुभप्रद रीति से राज्य का पालन करते थे। एक दिन उन्होंने विचार किया, 'मेरा पुत्र राम, मेरे चारो पुत्रो में शुभ-गुण-सपन्न, अतुल यशस्वी, सदा दीन-दुखियो की चिंता करनेवाला, परहित का विचार करनेवाला, समस्त प्राणियो पर दया दिखानेवाला, चारो पुरुपार्थो की सिद्धि के लिए यत्न करनेवाला, सतत सतुष्ट, प्रशसा के योग्य गुणो से युक्त उचित क्रोध तथा प्रसाद गुणो से पूर्ण, शासन-शक्ति से समन्वित, गज-तुरग आदि के आरोहण में दक्ष, विजयलक्ष्मी से समन्वित, चतुर, इच्छित कार्यो को अविलव सपन्न करनेवाला, दीर्घ कोप से रहित, सेवको पर कृपा रखनेवाला, अतिरथी, ईर्ष्यारहित, करुणा-सिधु, दूसरो के अच्छे गुणो का आदर करनेवाला, बुद्धि में बृहस्पति को भी परास्त करनेवाला, शुद्ध तज में सूर्य के सदृश दीखनेवाला, प्रजारजक, चद्र के समान शोभायमान, धनुर्वेद तथा वेदशास्त्रो में पारगत, न्याय के मार्ग से ही धनार्जन करने में निपुण, क्षमा में पृथ्वी के समान और सकल-सद्गुण-सपन्न है। उसका राज-तिलक कर देना चाहिए।' ऐसा विचार करके उन्होने वसिष्ठादि महामुनि, सुमत्र आदि सचिव, पास-पडोस के राजा, मित्र, बधु, नागरिक, जनपद के लोग, आश्रित, बुद्धिमान्, सामत राजा, योद्धा, राजनीतिज्ञ

आदि लोगो को राजसभा में बुला भेजा । उनके समक्ष राजा घन-गर्भ र स्वर म बोल—'हमारे पूर्वज इक्ष्वाकु-वश के राजाओ ने बडी उत्तम रीति से इस पृथ्वी पर शासन किया था । उनके समान मैंने भी इस राज्य-भार को बडी क्षमता से वहन किया और आपके सहयोग से निजकुल-धर्म में निरत होकर मैंने इसका पालन किया । यह विषय तो आपको ज्ञात ही है । मै आपसे और एक बात कहना चाहता हूँ । साठ हजार वर्ष तक मैंने इस राज्य का पालन किया, सुदर श्वेत छत्र की छाया में रहते हुए वृद्ध हो गया हूँ । भूमि-भार की अपेक्षा वृद्धावस्था का भार मुझपर अधिक हो गया है । विकसित कमल के सदृश मेरा शरीर कौमुदी के समान (पाडुर) हो गया है । केवल प्रताप बचा हुआ है । अत, प्रजा का पालन करने के लिए मै अपने पुत्रकल्याण राम, देवता-हितकाक्षी धीमान्, इदीवर-श्याम, कोटिसूर्यप्रभावान्, सौदर्य में मन्मथ को भी जीतनेवाले, जगदभिराम, राम का राजतिलक कर देना चाहता हूँ और राज-भार से अवकाश लेना चाहता हूँ । क्या आप इसको स्वीकार करेंगे ?'

घन-गर्जन को सुनकर हर्षित होनेवाले वन-मयूरो की भाँति सभासदो में अत्यधिक उत्साह छा गया । कल-कल ध्वनि होने लगी । प्रजा में प्रमुख भूसुरो ने परस्पर परामर्श करके सूर्यवशी राजा से कहा—'हे राजन्, आपके श्रेष्ठवचन सब लोगो के लिए हितकर, हृदयरजक तथा अभीष्टदायक हैं । वे सब लोगो के लिए आनददायक है । राजनीतिज्ञ, निर्मल-धर्मनिपुण, जगत् के बधु, दीनो के लिए कृपा-सिंधु, शाति-सपन्न, सत्यव्रती, सतत विप्र-पूजा-निरत, सच्चरित्रवान्, नीति, प्रीति, निपुणता, क्षमा, ख्याति, ऐश्वर्य, काति, दाति, शाति आदि कितने ही सद्गुणो से आपसे भी श्रेष्ठ, लोकाभिराम राम को राजा बनाना सर्वथा उचित है । वे तीनो लोको का शासन करने में समर्थ है, फिर इस लोक का शासन करना इनके लिए कौन बडी बात है ? हमारी भी यही इच्छा है कि आप उनका राज-तलक कर दें ।'

राजा ने ये बातें सुनी, तो उनका हर्ष दूना हो गया । हर्षातिरेक से प्रफुल्लित होकर वे वसिष्ठ तथा वामदेव को देखकर बोले—'हे अनघ, यह मधुमास अभीष्टप्रदायक है । अत, हम इसी मास में राम को समस्त साम्राज्य-लक्ष्मी का राजा बनायेंगे । आप उचित रीति से उसके लिए आवश्यक वस्तुएँ सचित करावें ।' ये बातें सुनकर ऋषियो ने अभिषेकार्थ आवश्यक वस्तुओ का सचय करने के लिए आदमी भेजे ।

वसिष्ठ ने राजा की आज्ञा के अनुसार परिचारको से कहा—'तुम लोग, श्रेष्ठ स्वर्ण, रत्न, समस्त ओषधियाँ, चदन, धवल पुष्प, मधु, घृत, खील (धान का लावा), नव ललित-वस्त्र, राजा के लिए योग्य श्रेष्ठ रथ, स्वर्ण-रत्नजटित आयुध, शुभ लक्षणो से युक्त भद्रगज, श्वेत अश्व विजन धवल छत्र, चामर, श्रेष्ठ पताके, एक सौ स्वर्ण कलश, स्वर्ण शृगो से युक्त श्रेष्ठ वृषभ, व्याघ्र-चर्म और अन्य आवश्यक मगल-द्रव्य हवन-शाला में ले आओ । नगर के द्वार, राज-पथ तथा सौध-शिखरो का अलकार करो । समस्त नगर को फूल-मालाओ, पताकाओ तथा तोरणो से सजाओ । कम-से-कम एक लाख भूसुरो (ब्राह्मणो) के भोजन की व्यवस्था करो । दान-दक्षिणा आदि के लिए आवश्यक धन प्रस्तुत रखो ।

पूजा तथा उपहारो से नगर-देवताओ की अर्चना करो । नगर के सभी निवासी तथा वेश्याएँ, नगर के दूसरे फाटक के पास ढग से आकर खडे रहे । नगर के सभी सेवको को सेवा के लिए उपस्थित रहने की सूचना दो ।' परिचारको ने वसिष्ठ के आदेशो का पालन करके उसकी सूचना वसिष्ठ को दी ।

राजा ने सुमत्र आदि उत्तम सचिवो तथा सगे-संबधियो को अलग-अलग बुलाकर उन्हे सकल्प कह सुनाया । उन्होने भी राजा के निश्चय का अनुमोदन किया । तब उन्होने शीघ्र रघुराम को बुला भेजा और अपनी आँखो से स्नेह-सुधा की वृष्टि करते हुए कहा—'हे वत्स, प्रजा की प्रशसा प्राप्त करते हुए मैने दीर्घ काल तक राज्य किया । दान, धर्म तथा यज्ञादि वडी निष्ठा से मैने पूरे किये और अत मे तुम जैसे सद्गुण-सपन्न को पुत्र के रूप मे प्राप्त किया । अब मै राज का भार सँभालने मे असमर्थ हो रहा हूँ । इसलिए मै तुम्हारा राज-तिलक कर दूँगा । परसो ही राज्याभिषेक के लिए उपयुक्त शुभ मुहूर्त है । सलिए तुम और सीता भक्ति के साथ उपवास करो ।'

तब राम ने राजा को देखकर विनय तथा साहस के साथ कहा—'हे महाराज, मेरे लिए आपके चरण-कमलो की सेवा से वढकर कोई दूसरा राज्य इस ससार मे हो नही सकता । आप अपने इन विचारो को त्याग दीजिए ।' तब राजा ने कहा—'हे वत्स, तुम पुण्य-चरित्र हो, पुण्य-धनी हो, सूर्यकुल के रत्न हो । तुम्हारे सिवा इस पृथ्वी का पालन करने के लिए योग्य और कौन हो सकता है ? अत, हे अद्वितीय वीर ! तुम इस राज्य-भार को अवश्य सँभालो ।'

राम ने उनकी आज्ञा के सामने सिर झुकाया और अपने महल मे चले गये । राजा भी सामत राजाओ, नागरिको तथा अन्य नातेदारो को विदा करके अपने महल मे गये । (वहाँ पहुँचकर) उन्होने सुमत्र के द्वारा श्रीराम को बुलवाया, उन्हे अपने पास विठाकर, आनदाश्रु वहाते हुए वोले—'हे मेरे भाग्य-निधि, हे मेरे पुण्य-स्वरूप, मेरे तप के फल, हे मेरे पुत्र, मैने कुछ बुरे स्वप्न देखे है । मैने दुष्ट ग्रहो को तथा उल्का-पात होते देखा है । अत मेरा मन वहुत व्याकुल हो रहा है । अभी तुम इस 'पुण्य-योग' मे ही राज-तिलक कर लो । इससे मेरी इच्छा पूर्ण होगी । विलव क्यो ? तुम्हारी उन्नति का समस्त ससार इच्छुक है ।'

रामचद्र ने पिता की आज्ञा शिरोधारण करके, उन्हे प्रणाम किया और उनकी आज्ञा लेकर वहाँ से विदा हुए । उन्होने अपनी माता, सुमित्रा तथा जानकी तथा लक्ष्मण को यह समाचार सुनाकर उन्हे आनद-सागर मे डुवो दिया । उसके पश्चात् पूर्ण-चन्द्रसदृश राम, सीता के साथ प्रफुल्लचित्त से अपने महल मे गये ।

इसके पश्चात् राजा ने वसिष्ठ से कहा कि आप राम के उपवास के लिए विधिवत् सकल्प कराइए । तव वसिष्ठ ब्रह्म-रथ पर आरूढ हो रामचन्द्र के महल के लिए रवाना हुए और अपने आगमन का समाचार देने के लिए एक शिष्य को पहले ही भेज दिया । उनके तीसरे फाटक तक पहुँचते-पहुँचते राम उनके स्वागतार्थ आ पहुँचे और वडी भक्ति से उस पुण्यात्मा को प्रणाम किया और बड़े हर्ष से उन्हे अत पुर मे ले गये । वहाँ उन्होने

उस लोक-वंद्य का उचित आदर-सत्कार किया । वसिष्ठ ने पुण्याह-वाचन कराया और पुण्य-सकल्प-पूर्वक उपवास व्रत का प्रारभ कराया । दक्षिणा के रूप में राम से दस हजार गायें लेकर वसिष्ठ ने सारा समाचार राजा को कह सुनाया और घर चले गये ।

राम ने बडे प्रसन्नचित्त से सीता के साथ स्नान आदि से निवृत्त होकर विष्णु की प्रीति के लिए हवन किया, हवन-शेष को ग्रहण किया और वसिष्ठ के आदेश के अनुसार विष्णुगृह में कुशासन पर एकनिष्ठ हो विष्णु का ध्यान करते हुए उपवास करते रहे ।

अयोध्या में लोग बडे हर्ष से आनदोत्सव की तैयारी में लग गये । कोई मोतियो से चौक पूर रहा था, तो कोई अपने घरो का अलकार कर रहा था । कोई मणिमय तोरण सजा रहा था, तो कोई फूलों से वितान बना रहा था । कुछ लोग झडे लगा रहे थे । कुछ जहाँ-तहाँ फूल-मालाएँ लटका रहे थे । कुछ एक दूसरे के अलकरण में मग्न थे । कही लोग दशरथ की प्रशसा कर रहे थे, तो कही इष्ट देवताओ की पूजा कर रहे थे । कुछ दान-पुण्य कर रहे थे और पुण्य कथा-गोष्ठियो में भाग ले रहे थे । जहाँ-तहाँ लोगो की भीड एकत्रित होकर राम के गुणो का गान कर रही थी । लोग उनकी सेवा करने के लिए आतुरता प्रकट करते थे और भगवान् से राम को ही राजा बनाने की प्रार्थना कर रहे थे ।

२. मंथरा की कुमंत्रणा

उसी समय कैकेयी की दासी मथरा ने रनवास की छत पर से नगर का यह आनदोत्सव देखा । वह सोचने लगी—'क्या कारण है कि आज नगर अद्भुत साज-सज्जा से परिपूर्ण है । सभी नगरवासी सजे-धजे तथा प्रफुल्ल दिखाई पड रहे हैं । कौसल्या के अत पुर की सभी स्त्रियाँ सुसज्जित होकर आनद-मग्न हो रही है । जाने किस कारण से आज कौसल्या अगणित धन व्यय कर रही हैं ।' उसने आनद में मग्न राम की धाय से पूछकर यह जान लिया कि राम के राज-तिलक के लिए ही सारे नगर में उत्सव मनाया जा रहा है । तब उसने निश्चय किया कि बाल्यावस्था में रामने जो मेरी टाँग तोड दी थी, उसका बदला लेने का यही अच्छा अवसर है । इस प्रकार सोचकर वह रानी कैकेयी को सारा वृत्तात सुनाने के लिए उनके महल में गई । उस समय पद्मलोचना कैकेयी अपने क्रीडा-घर में हिंडोले पर लेटी थी । मथरा ने उससे कहा—'उठिए महारानी, आपको किसी बात की चिंता ही नहीं है ।' यो कहते हुए उसने कैकेयी का हाथ पकडकर उसे उठाकर बैठाया और त्रिया-चरित्र रचती हुई बोली—'आप तो यह कहते हुए फूली न समाती थी कि राजा मुझसे ही अधिक प्रेम रखते है । वह झूठा सिद्ध हो गया है । महाराजा ने अपनी बडी रानी के भय से आपको भ्रम में डालकर, भरत को परदेश भेज दिया है और रघुराम का राज-तिलक करने की बात सोच रहे है । यदि यही बात हुई, तो आपका जीवन निरर्थक है । राजाओ का विश्वास कभी नही करना चाहिए । आप फूली-फूली क्यो फिरती है ? ऐसा क्रूर, वचक और कपटी पुरुष मैंने कही देखा नही है । वे कैसे आपके पति है ? वे तो आपके क्रूर शत्रु है । यदि आप अपनी सौत के पुत्र को समस्त पृथ्वी का राजा बनने देंगी, तो आपको, आपके पुत्र को तथा मुझे, दुःख के सिवा

सुख नही मिलेगा । आपकी भलाई का विचार करके आपके पिता ने मुझे भेजा, तो स्नेह के कारण मैं यहाँ आई हूँ । आपकी भलाई मेरी भलाई है, आपका अभाव मेरा अभाव है । मैंने आपकी भलाई की बात आपसे कह दी । आप ऐसा कोई यत्न कीजिए जिससे कि आपका पुत्र इस ससार में जीवित रहे ।'

कैकेयी ने ये बातें सुनी तो अत्यन्त हर्ष से उसकी प्रशंसा करते हुए उसे गले से लगा लिया और कहा—'हे सखी ! राम के राज-तिलक का शुभ समाचार देकर तुमने मेरे कर्णपुटो में सुधावृष्टि-सी कर दी । तुम्हारे साथ मेरी मित्रता आज सफल हुई । अब तुम अपने वक्र वचनो को छोड दो । भरत की अपेक्षा उसका अग्रज मेरे प्रति विशेष श्रद्धा रखता है । तुमने यह शुभ-समाचार मुझे देकर बहुत अच्छा किया ।' इस प्रकार कहकर उसने मथरा को नवरत्न-खचित अपने सोने का कडा उपहार के रूप में दिया । किन्तु, उस कपट स्त्री ने उस कडे को दूर फेंककर अपने पापपूर्ण हृदय का क्रोध एव जलन प्रकट करते हुए कहा—'हे कैकेयी । आप मन-ही-मन फूली हुई है, मानो कोई उत्तम कार्य हो रहा है । आपने यह उपहार मुझे किसलिए दिया ? आपकी भलाई के लिए जो परामर्श मैंने दिया, उसके विषय में विचार किये बिना ही आप ऐसा प्रलाप क्यो करती है ? मैं आपके स्वभाव के बारे में क्या कहूँ ? क्या अपना अहित करनेवाला धर्म, कोई धर्म है ? आँखो को हानि पहुँचानेवाला काजल किस काम का ? कहो इस ससार में ऐसे भी लोग है, जो सौत के पुत्रो के हित की कामना करते है ? यदि आपकी सौत का पुत्र साम्राज्य का स्वामी हुआ, तो सभी राजा, तानेदार, प्रजा तथा मत्री राम की सेवा में लगे रहेंगे । गज, तुरंग आदि सेना उनके वश में हो जायगी । उसके पश्चात् दशरथ भी स्वतत्र नही रह सकेंगे । तब शशिमुखी कौसल्या समस्त ऐश्वर्य का उपभोग करेंगी और आप उनकी सौत होती हुई एक पगली की तरह कैसे रह पायेंगी । इतना ही नही, आपको उनकी आज्ञा का पालन करते हुए उनकी दासी बनकर रहना पडेगा । भरत को उस रघुपति से भय खाते हुए एक भृत्य के समान रहना पडेगा । आपकी पुत्रवधू को राज-रानी सीता की सेवा करनी पडेगी । यदि यही हुआ, तो आपका जन्म निरर्थक हुआ । इसका उपाय यह है कि राम को वनवास के लिए भिजवा दीजिए और भरत का राज-तिलक करवाइए ।'

तब कैकेयी बोली—'हाय, महाराज मुझे इतनी स्वतत्रता क्यो देने लगे ? मैं उनसे ऐसी प्रार्थना कैसे करूँ ? करूँ भी तो वे मेरी प्रार्थना क्यो मानेंगे ? यह कैसी बात है ? तुम जो भी कहो, यह काम नही होने का । मैं राम से कैसे कहूँ कि तुम वन में जाकर निवास करो ।'

तब मथरा अपनी पाप-बुद्धि को प्रकट करती हुई बोली—"हे सुन्दरी, क्या आप इस बात को भूल गई कि शबरासुर और इद्र के युद्ध में इद्र की सहायता करने के लिए अपनी सेनाओ के साथ जाते समय राजा आपको भी अपने साथ ले गये थे । महाराजा दशरथ ने रात्रि के समय उस राक्षस का सामना किया था । राक्षस ने क्रोध में आकर विभिन्न प्रकार की मायाओ से राजा का वध करने का प्रयत्न किया था; किन्तु आपने 'धवलाग नामक मुनि की कृपा से प्राप्त शक्ति की सहायता से उस राक्षस की मायाओ को

दूर कर दिया था और राजा को उस राक्षस के तेज बाणो से आहत होने से बचाया था । राजा ने सतुष्ट होकर आपको दो वर दिये थे । आपने ही खुद यह सारा वृत्तात मुझे सुनाया था । भले ही आप इसे भूल जायँ, मैं कैसे भूल सकती हूँ ? अत आप राजा से दो वर माँगिए—एक तो यह कि कौसल्या का पुत्र राज-पाट छोडकर चौदह वर्ष तक मुनियो का-सा जीवन व्यतीत करते हुए भयकर वनो में रहे, और दूसरा, आपका पुत्र इस पृथ्वी पर शासन करे । आपके वर माँगने पर राजा बहुत गिडगिडायेंगे । फिर भी, आप मूर्ख के समान मत रहें । सत्य की दुहाई देकर दृढ सकल्प से आप इस कार्य को सिद्ध कर लीजिए । आपके पति असत्य से डरते हैं, उसपर भी आपसे उनका अत्यधिक प्रेम है। इसलिए वे आपके वचनो का अतिक्रमण नही करेंगे । अवश्य आपकी बात मान लेंगे ।"

इन बातो से प्रसन्न होकर कैकेयी ने मथरा से कहा–'तुम्हारी जैसी सखी, साथिन और गुणवती को मैंने कही नही देखा है । हे उत्तम नारी, जिन वरो के सबध में मैंने तुमसे कहा था, उन्हें तो मैं भूल ही गई थी । तुमने जैसे सोचा, वैसे मेरा पुत्र यदि इस समस्त पृथ्वी का राजा बनेगा, तो मैं तुम्हारे कूबड को शुद्ध स्वर्ण से अच्छी तरह सजाऊँगी, तुम्हारे मुख-चन्द्र पर कस्तूरी-तिलक करूँगी और तुम्हारे शरीर पर असख्य आभूषण पहनाकर तुम्हें अलकृत करूँगी । हे सखी ! इस प्रकार सज-धजकर तुम मन्मथ की स्त्री के समान विचरोगी, तो सभी दासियाँ तुम्हारी आज्ञा का पालन करती रहेंगी । मैं ऐसी व्यवस्था कर दूँगी ।'

स प्रकार, मथरा से प्रिय वचन कहने के पश्चात् कैकेयी अपने कक्ष में चली गई । उसने अपने समस्त आभूषण उतार दिये, माथे पर कस्तूरी का गाढा लेप लगाया, मलिन वस्त्र पहने और अत्यन्त क्रोध धारण किये फर्श पर पडी रही। अपनी मत्रणा की सफलता से सतुष्ट होनेवाली मथरा को देखकर कैकेयी बोली—'जबतक राजा राम को बुलाकर उसे वन में जाने की आज्ञा देकर नही भेजेंगे और भरत का राज-तिलक नहीं करेंगे, तबतक मैं अन्न-जल नही ग्रहण करूँगी । जितने भी स्वर्णाभूषण दें, मैं उन्हें नही लूँगी और यहाँ से हटूँगी भी नही ।' यो कहते हुए वह मन-ही-मन बहुत क्रुद्ध होकर पडी रही ।

३ कैकेयी के महल में दशरथ का आगमन

राघव के राज-तिलक का समाचार कैकेयी को सुनाने के उद्देश्य से दशरथ उस दिन रात को वहाँ (कैकेयी के महल में) आये । स्वर्ण-रत्नजटित किवाडो तथा [illegible], कस्तूरी, चदन, कर्पूर की सुगधि से युक्त तथा नाना रत्नो की कान्ति से सुशोभित सोपानो को पार करके वे रग-महल के निकट पहुँचे । कैकेयी को वहाँ न देखकर दशरथ ने सेवक से पूछा । उसने दुःख प्रकट करते हुए हाथ जोडकर कहा—'देव ! देवी न जाने किस कारण से कोप-भवन में चली गई है ।'

ये बातें दशरथ के कानो को धनुष की उग्र टकार की भाँति भयकर लगी । उनका मुँह पीला पड गया । कैकेयी के प्रति उनका प्रेम द्विगुण हो उठा । धीरे-धीरे उन्होने कोप-भवन में प्रवेश किया और [illegible] पृथ्वी पर उतरकर [illegible]

की भाँति, केशो को फैलाये फर्श पर पड़ी हुई कमलभृंगी कैकेयी को देखकर राजा सन्न रह गये । उन्हें बडी वेदना का अनुभव हुआ । बडे दीन भाव से वे उसके निकट पहुँचे, उसके शरीर का स्पर्श करके देखा और काम-पीडित होकर उससे प्रार्थना करने लगे—"हे कमलाक्षी, हे चन्द्रवदनी, हे भ्रमरो के-से केशवाली, इतना कोप क्यो ? अत्यन्त मृदु पर्यंक पर लेटनेवाली, तुम्हें लेटने के लिए यह कडी भूमि क्यो ? कोमल दुकूलो के पहनने, तुमने ऐसे मैले वस्त्र क्यो पहने है ? कनकशलाका-सी अपनी देह पर तुमने आभूषण धारण क्यो नही किये ? उदधि-सुत चद्रमा की चाँदनी के समान उज्ज्वल तुम्हारे ललाट पर यह लेप क्यो ? तुम्हारे मन में ऐसा विचार क्यो उत्पन्न हुआ ? प्रतिदिन की भाँति तुम अपने घने तथा नीले केशो में माँग काढकर उन्हें सजाती क्यों नही ? पद्मराग मणि की लालिमा को परास्त करनेवाले अपने अरुणाधरो को ताबूल-चर्वण से अलकृत क्यो नहीं करती ? तुम्हारे मुख-चद्र में स्वर्ण-पुष्पो के समान प्रफुल्लित होनेवाली मुस्कान क्यो नहीं दीखती ? हे प्रिये, किसलिए तुम मन छोटा किये हुए हो ? इतनी सतप्त क्यो हो ? किसने तुम्हें कटुवचन कहे ? किसने तुम्हारी बातो का विरोध किया ? हे कमलनयनी । उनके नाम बताओ । चाहे वे कोई भी हो, मै उन्हें दण्ड दूँगा ।" इस प्रकार कहते हुए आँखो में उमड़नेवाले आँसुओ को पोछते हुए वे बोले—"हे सुन्दरी, एक अनाथ की तरह तुम इस प्रकार भूमि पर क्यो लोट रही हो ? बताओ कि यह काम-पीड़ा है अथवा किसी भयकर रोग का प्रकोप है ? क्यो सकोच कर रही हो। कहो तो वैद्य आकर तुरत तुम्हें स्वस्थ करेंगे । हे ललितागी ! तुम्हारी कोई इच्छा हो तो कहो, मै उसे पूरा करूँगा । तुम्हारे लिए मै अवध्य पुण्यात्माओ का भी वध करूँगा । वध्य दुर्जनो को दण्ड देकर तुम्हारी बात रखूँगा । यदि तुम चाहो, तो रक को राजा बनाऊँगा । तुम्हारे क्रोध का पात्र धनी को भी दरिद्र बनाऊँगा । जब मैं और मेरे परिवार के अन्य लोग तुम्हारी इच्छा के अनुसार चलने के लिए तैयार है, तब इस प्रकार क्यो रहती हो ? हे सुन्दरी ! मेरी बात सुनो, किंचित् मुँह उठाकर मेरी ओर देखो, ताकि मुझे शाति मिल जाय । तुम चाहो तो मै अपने प्राण भी देने को प्रस्तुत हूँ ।"

दशरथ की ये बातें सुनकर कैकेयी प्रसन्न हुई । वह अपने पति का प्रेम जानती ही थी, इसलिए उसने क्षीण स्वर में राजा से कहा—'हे देव ! यदि मुझे यह वचन दें कि आप मेरे कथन के अनुसार कार्य करेंगे, तो मैं अपने मन की इच्छा कहूँगी ।'

राजा ने कहा—'जो धनुर्विद्या में असमान है, जो धर्म का पालन करता है, जिसे बिना देखे मै एक क्षण भी जी नही सकता और जिसको मै निरतर भक्ति से भजता रहता हूँ, उस राघव की सौगध खाकर कहता हूँ कि मै तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा ।'

कैकेयी ने पवन, अग्नि, शशि तथा नभ को साक्षी के रूप में मानते हुए दशरथ के मन की आतुरता का ज्ञान रखते हुए निष्ठुर होकर कहा—'हे राजन् ! आपने देवासुर-युद्ध में मुझे दो वर दिये थे । कदाचित् आप उन्हें भूल गये है । मैं अब उन दोनों वरो को माँगना चाहती हूँ ।'

४. दशरथ से कैकेयी का वर माँगना

'आप रविकुल में उत्पन्न महाराज हैं । उस कुल के प्रथम राजाओ की अपेक्षा आप अधिक पुण्यात्मा है। आप असत्य नही कहेंगे और अपना वचन भी नही छोडेंगे। अत, मुझे वे दोनो वर दीजिए । पहले वर से आप भरत का राज-तिलक कर दीजिए, और दूसरे वर से आप राम को चौदह वर्ष तक तपस्वी के रूप में वन में निवास करने के लिए भेज दीजिए ।'

इन वचनो को सुनते ही राजा स्तभित रह गये । दुख से वे तुरत मूच्छित हो गये। बहुत समय के बाद उनकी चेतना लौटी तो वे बोले—"हे कोमलागी, कैकय-वश में जन्म लेकर इस प्रकार के वचन तुम्हारे मुँह से कैसे निकले ? राम ने तुम्हें क्या हानि पहुँचाई है कि तुम राम को अरण्य-वास देना चाहती हो ? वह कौसल्या की अपेक्षा तुम्हें अधिक मानता है, तुम्हारी सेवा करता है और तुम्हारा आदेश मानता है । ऐसे सद्गुण-सपन्न राम को निष्ठुर होकर वन जाने का आदेश कैसे देती हो ? तुम्ही कहो, मै उसे वन जाने का आदेश कैसे दे सकता हूँ ? ऐसे महापुरुष राम को जगल भेजने के बाद मेरे प्राण कैसे टिके रहेंगे ? तुम राजपुत्री हो, ऐसा समझकर मैंने तुम्हारा पाणिग्रहण किया था । किंतु तुम काली नागिन सिद्ध हो रही हो । तुम चाहो, तो मैं अपना सारा राज्य और अपने प्राण दे दूँगा, किंतु राम को वन जाने का आदेश न दे सकूँगा । इस वृद्ध, दीन, अनाथ तथा दुर्बल को दुख से बचाओ । मै तुम्हारे चरणो को प्रणाम करता हूँ। मै राम के वियोग में जीवित नही रहूँगा । इसलिए इस पाप-कल्पना को छोड दो ।"

तब कैकेयी क्रोध में आकर कहने लगी—"हे राजन्! आप सत्यनिष्ठ, पराक्रमी और ओजस्वी है । ऐसे आपको असत्य कहना क्या शोभा देता है ? आपने इतने सारे देवताओ के समक्ष सौगध खाई है । आप कैसे राजा है ? एक कबूतर के लिए शिवि ने अपने शरीर का सारा मास काटकर बाज को दे दिया था । क्या आप इसे नहीं जानते ? क्या अलर्क नामक राजा ने बडे प्रेम से क्षोणिदेव को अपने नेत्र नही दिये थे ? क्या उत्तुग लहरो से युक्त समुद्र, वेला की मर्यादा के भीतर आबद्ध नही हुआ ? उनको छोड दीजिए । आपके पूर्वज कौतुक के लिए भी, स्वप्न में भी, कभी झूठ नही बोले । आप इक्ष्वाकु-वश के होते हुए भी कौसल्या के भय से असत्य-भाषण करते हैं । असत्यभाषी कही पुरुष कहलाने योग्य है ? आपने असत्य कहा । अब आप मुझे पा नहीं सकते । मैं अब स्वतत्र होकर विष-पान करूँगी और मर जाऊँगी । उसके पश्चात् आप भरत का वध करा दीजिए और राम का तिलक करके कौसल्या के साथ सुख से रहिए ।"

इस प्रकार के कैकेयी के कटुवचनो से राजा अत्यत सतप्त हो गये । उनके मुख की काति जाती रही, उनका विवेक जाता रहा । वे कैकेयी से बोले—"हे कैकेयी! तुम्हारे मन में ऐसी पाप-कल्पना और ऐसी मन्द बुद्धि कैसे उत्पन्न हुई ! ज्येष्ठ के रहते हुए कहीं कनिष्ठ अविनीत होकर पृथ्वी का पालन करेगा ? इतना क्यो, तुम्हारा धर्म-निरत भरत तुम्हारे इस पाप-पूर्ण वचन को कैसे स्वीकार करेगा ? हमारे कुल की रीति का विचार करो। शोक-पीडित मुझे निष्ठुर होकर मत मारो । सतत गृहिणी-धर्म का पालन करते हुए,

भक्ति और हित का विचार करते हुए सखी की तरह, माता के समान, दासी की भाँति, बहन की-सी, भिन्न-भिन्न प्रकार से मेरी सेवा करनेवाली कौसल्या अपने पुत्र के वियोग में कसे जीवित रह सकेगी ? सौदामिनी तथा लता-सदृश शरीरवाली वैदेही किस प्रकार यह दुख सह सकेगी ? सौमित्र तथा उसकी माँ इस दुःखद समाचार को कैसे सहन कर सकेंगे ? राम के राज-तिलक की अपेक्षा करनेवाले नागरिक जब उत्सव मनाने में सलग्न हैं, तब यदि मैं राम को वन भेज दूं, तो क्या वे नागरिक मुझे अपशब्द नहीं कहेंगे ? अपनी इस प्रार्थना से समस्त लोगों का अहित करते हुए तुम कौन-सा सुख भोगोगी ? एक बात और है । हे रमणी ! तुम उसे अवश्य सुनो । कमल के-से नेत्रवाले, मधुर मुस्कान से युक्त मुखवाले, वलिष्ठ, आजानुबाहु, चद्र-सम सौदर्यवाले, नीलोत्पल की-सी शरीर-कान्तिवाले, शीतल दृष्टियों को विकीर्ण करनेवाले, सुधा-सम वचन बोलनेवाले, सदा बुधजनों का हित ही सोचनेवाले, सतत मेरी सेवा में सलग्न रहनेवाले, धर्म-रूपी, भार्गव राम को जीतनेवाले, सद्गुण-सपन्न, सौंदर्यवान्, शातवाम, रवि-सम उज्ज्वल, राम को छोड़कर मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकूंगा । हे कमलाक्षी ! ऐसे राम को क्या तुम नहीं जानती ? उस उत्तम पुरुष को वन भेजते ही मेरे प्राण निकल जायेंगे । तुम कितनी पापिन हो ? कितनी कठोर हो ? कितनी मूर्खा हो ? कितनी भयकर राक्षसी हो ? हे क्रूर नारी ! तुम्हारे मन में इतना कल्मष क्यों है ? साध्वी होते हुए मूर्खा की तरह क्यों ऐसी इच्छा करती हो ? तुम प्राणापहरण करनेवाली काल-रात्रि हो, स्त्री नहीं । राम कैसे पैदल वन में जायगा ? सबसे विलग होकर वन में कैसे रहेगा ? सुकोमल शय्या पर शयन करनेवाला पुरुष तृण-शय्या पर किस प्रकार सो सकेगा ? बधुओं के साथ पंक्ति में बैठकर अपना इच्छित भोजन करनेवाला राम, कद-मूल का आहार कैसे पसंद करेगा ? हे रमणी ! तुम अपने परम भक्त राम का बुरा मत सोचो । उसे क्षमा करो ।"

इस प्रकार प्रार्थना करते हुए दशरथ बड़े दुख के साथ उसके पैरों पर गिर पड़े । लेकिन उसने अपने पैर हटाते हुए उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की । तब राजा भूमि पर गिर पड़े और लोटने लगे । किन्तु कैकेयी ने उसकी भी परवाह किये बिना ही राजा दशरथ को देखकर कहा—'हे राजन् ! अब इन कपट-वचनों को बद कीजिए । अब व्यर्थ के छल-कपट से कोई लाभ नहीं होगा । धर्म को त्यागिए, सत्य को छोड़ दीजिए और अपने निर्मल यश को मिट्टी में मिलाकर असत्य वचन कहिए कि मैंने तुम्हें वर नहीं दिये । उसके बाद आप अपने पुत्र तथा पत्नियों के साथ सुख से रहिए । मैं अपने पुत्र भरत के साथ प्राण तजूंगी ।'

तब राजा बिना प्रत्युत्तर दिये, मन-ही-मन दुखी होते हुए, सिर झुकाये बैठे रहे । इतने में प्रभात हो गया । मगल-वाद्य बजने लगे । वन्दी-जन के स्तुति-पाठ होने लगे । राम-सीता ने कर्पूर-चन्दन की सुगधि से सुवासित जल में स्नान किया, दिव्य वस्त्राभरण पहने और शची-समेत इन्द्र के समान पूर्ण तेजस्वी दिखाई देने लगे । अभिषेक-मण्डप में वसिष्ठ आदि मुनि अरुधती आदि सुमगलियाँ, धीमान् मत्री तथा अन्यान्य चक्रवर्ती राजा विराजमान थे । वसिष्ठ ने पचपल्लव, पचवल्कल, पचामृत, भद्रगज (राजा का हाथी),

आठ कन्याएँ, हेम ऋक्ष, औदुम्वर (गूलर) की पीठिका, गगादि तीर्थों का जल तथा अन्य मगल-वस्तुओ को मँगाया, श्रेष्ठ रत्नाभूषणो को वेद-विधि से दान कराया, एक लाख कन्याएँ, एक लाख गायें, एक लाख ऊँट मँगाये; जप आदि कराया, शाति-पाठ कराया, हवन आदि सपन्न किया और शुभ मुहूर्त्त को आसन्न देखकर राजा को लिवा लाने के लिए सुमत्र को भेजा ।

सुमत्र कैकेयी के अत पुर में गया और शयन-कक्ष के किवाड के पास खडे होकर निवेदन किया —'हे देव ! सूर्योदय हो रहा है । श्रीराम के राज-तिलक का मुहूर्त्त निकट आ रहा है । अत· आप शीघ्र पधारें । हे राजन् ! अभिषेक-मण्डप में मुनि, राजा तथा अन्य महात्मा उपस्थित है । पुरजन विबुध तथा नातेदार आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे है ।'

इन बातो को सुनकर राजा सोचने लगे—'अब तुम भी मुझे दुख पहुँचाने के लिए आये हो, मानो अब तक मुझे कोई दुख ही नही है ।' यो सोचकर वे चुपचाप लेटे रहे । तब कैकेयी ने सुमत्र से कहा—'तुम शीघ्र जाकर राम को यहाँ ले आओ । यह राजा का आदेश है ।' तुरत सुमत्र वहाँ से चला गया ।

सुमत्र कैकेयी के अत.पुर से उस राज-मार्ग से जाने लगा, जो शीतल चदन-जल से सिंचित आँगन, ध्वजाओ से अलकृत गृहो, चदन, अगरु तथा धूप से सुगधित वायु, मद पवन से डोलनेवाली पुष्प-मालाओ, प्रत्येक गृहद्वार पर स्थापित कदली-वृक्षो, अतुलित मणि-तोरणों और उत्साह-पूर्ण पुरजनों से भरा हुआ, दुर्गम दीख रहा था । उस मार्ग से होकर वह रामचन्द्र के उस अत.पुर के पास जा पहुँचा, जो इन्द्र-भवन का भी परिहास करता हुआ कुबेर के महल के समान अतुल वैभव-लक्ष्मी से समन्वित था । वहाँ पहुँचकर उसने राम को अपने आने का समाचार कहला भेजा और उनकी अनुमति पाकर भीतर गया । वहाँ उसने तारा से सुशोभित शशि के समान दीखनेवाले, सीता से युक्त रामचद्र को देखकर उन्हें प्रणाम किया और कहा—'हे देव ! महाराज दशरथ देवी कैकेयी के गृह में आपको लिवा लाने के लिए मुझे भेजा है ।'

राम मुस्कराते हुए जानकी को वही छोडकर लक्ष्मण के साथ रथ पर आरूढ होकर कैकेयी के महल की ओर रवाना हुए । उनके पीछे चतुरगिणी सेना चली । अतुल वाद्य बजने लगे, वन्दीजन स्तुति-पाठ करने लगे और सुमगलियाँ पुष्प-वर्षा करने लगी । नगर-निवासी जयजयकार करने लगे । इस प्रकार, वे बड़े वेग से राजा के अत पुर के पास जा पहुँचे, और रथ से उतरकर उन्होने कैकेयी के भवन में प्रवेश किया ।

५. कैकेयी के भवन में राम का दशरथ से भेंट करना

कैकेयी के भवन में जाकर राम ने देखा कि महाराज दशरथ सिर झुकाय, पाडुर-मुख में सूखनेवाले ओठो को आर्द्र करते हुए, सारा तेज खोकर सतत अश्रु-धारा बहाते हुए, शोक-सतप्त बैठे है । राम ने उनके निकट पहुँचकर अत्यत शोकाकुल-चित्त से उन्हें प्रणाम किया और उसके पश्चात् कैकेयी को प्रणाम किया । फिर, अत्यत सभ्रमित तथा व्याकुल होकर, भय तथा विह्वलता से रामचद्र बोले—'हे देवी, यह क्या बात है कि महाराज

मेरी ओर देखते भी नहीं हैं। मेरा क्या अपराध है? यह निर्बलता, यह चिंता और दुःख राजा को किस कारण से हो रहे हैं?' तब कैकेयी ने कहा—'हे राम, यदि तुम मानोगे, तो मैं राजा की इच्छा तुम्हें बतलाऊँ।' रघुराम ने कहा—'हे माता, आप कृपया विस्तार से सुनाइए कि वह कौन-सी बात है? मैं पिता के आदेश से भयंकर अग्नि-ज्वालाओं में या विष के समुद्र में कूद सकता हूँ या विष भी खा सकता हूँ। इसको सत्य मानें और बिना संकोच के कहें।'

तब कैकेयी राम को देखकर किंचित् भी ममता-मोह के बिना बोली—'देवासुर-संग्राम में राजा ने दया करके मुझे दो वर दिये थे। अब मैंने उन दोनों वरों को देने की प्रार्थना की। एक वर से मैंने अपने पुत्र भरत के लिए राज्य माँगा और दूसरे से तुम्हें चौदह वर्ष तक वन-वास देने की प्रार्थना की। राजा ने वर देना तो स्वीकार किया; किन्तु तुम्हें अपना आदेश सुनाने में हिचकते हैं। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे पिता को असत्य-भाषण का दोष न लगे, तो तुम तुरत राजकुमार का वेष त्याग दो और वल्कल तथा जटाएँ धारण करके तपस्वी के रूप में वनवास के लिए चले जाओ।'

इन बातों को सुनकर राम के मुखपर मंद हँसी लास्य करने लगी। उनके वचनों में किसी भी प्रकार का मालिन्य नहीं आया। दया, त्याग और गरिमा दिखाते हुए परम पुण्यात्मा रामचंद्र बोले—'हे माता, इस प्रकार की आज्ञा देनेवाले सूर्यवंश के तिलक मेरे पिता हैं और राज्य का अधिकारी होगा मेरा भाई। फिर, आपकी इच्छा में बाधा क्यों पड़े? हाय! आप कितनी भोली हैं! इस छोटी-सी बात के लिए सूर्यवंशी राजा को मन में चिंतित होने की क्या आवश्यकता है? अपने पिता की आज्ञा का पालन नहीं करने-वाला कहीं पुत्र कहलाने योग्य है? वह तो एक जाति-विरोधी है। मेरे और मेरे भाई में कोई भेद नहीं है। इस पृथ्वी का भार वहन करने के लिए जिस पुण्यात्मा को आपने नियत किया है, उस भरत के लिए मैं अपने प्राण भी देने के लिए प्रस्तुत हूँ, इस राज्य की क्या गिनती!'

राम की बातों से अत्यंत हर्षित होकर कैकेयी बोली—'हे राजकुमार, तब मैं भरत को बुला भेजूँगी। तुम तुरत वन के लिए रवाना हो जाओ। यहाँ से तुम्हारे जाने तक महाराज न भोजन करेंगे, न बोलेंगे, न उठेंगे ही। वे इसी प्रकार पड़े रहेंगे।'

कैकेयी के इस प्रकार कहते ही राजा ने कहा—'हाय, ऐसी कटूक्तियाँ भी क्या उचित हैं? और वे तुरत मूर्च्छित हो गये। तब राम ने तुरंत उन्हें पकड़ लिया और शैत्योपचारों के उपरान्त, जब उनकी चेतना लौटी, तब उन्हें अच्छी तरह समझाते हुए कैकेयी की ओर देखकर अत्यंत हर्ष से बोले—'आपको इतनी चिंता क्यों हो रही है? मेरे लिए यह कौन बड़ा काम है? आप मन में किसी प्रकार का संदेह मत कीजिए। मैं तो विवेक के साथ धर्म का पालन करूँगा, कभी धर्म का उल्लंघन नहीं करूँगा। राजा की आज्ञा यदि मुझे नहीं मिलेगी, तो मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। यह सच मानिए। शीघ्रगामी अश्वारोही दूतों को भेजकर इसी शुभ मुहूर्त में भरत को बुलवाकर उसका राज-तिलक कर दीजिए। मैं अभी वन के लिए प्रस्थान करता हूँ।'

इस प्रकार कहने के उपरान्त प्रफुल्ल-मुखचंद्र से राम ने कैकेयी की परिक्रमा की और कहा—'मैं अपनी माता, माता सुमित्रा तथा जानकी को यह समाचार सुनाऊँगा और उन्हें सांत्वना देकर अवश्य वन में चला जाऊँगा । आप मन में संदेह न कीजिए ।' यों कहकर उन्होंने राजा तथा कैकेयी को प्रणाम किया और लक्ष्मण के साथ वहाँ से चल पड़े ।

राम ने राज-तिलक के लिए संचित सभी मंगल-द्रव्यों की परिक्रमा करके उनको प्रणाम किया । अचल तथा विकार-रहित चित्त से वे अपनी माता को यह समाचार सुनाने के लिए चले । तबतक अन्तःपुर में यह समाचार फैल गया कि लोकवंद्य राम राज-पाट छोड़कर वन जा रहे हैं । दशरथ की अन्य स्त्रियाँ आपस में कहने लगीं—'राम अपनी माता कौसल्या के प्रति जो भक्ति दिखाते हैं, वही भक्ति हमारे प्रति भी रखते हैं । ऐसे सद्गुणालंकार, महान् उदार-चेता, हिमाचल के समान धीर, उस महान् वीर पुत्र-रत्न को हाय ! राजा ने वनवास की आज्ञा कैसे दी ? पागल की तरह राम को वनवास के दुःखों में भेजना कहाँ तक उचित है ।' इस प्रकार, महाराजा की निंदा करते हुए सभी स्त्रियाँ शोक करने लगीं ।

उसी समय राम ने कौसल्या के अंतःपुर में प्रवेश किया । उससे पूर्व कौसल्या ने अभिषेक के निर्विघ्न संपन्न होने के निमित्त जप, शांति, हवन आदि को एकनिष्ठ होकर पूरा किया था और भक्ति-युक्त हो जनार्दन से प्रार्थना कर रही थीं । राम के आगमन से वे अत्यंत प्रसन्न हुईं । सुमंगलियों के साथ फूल लिये हुए वे सामने आईं और विधिवत् मंगलाचार आदि पूरे किये । रामचंद्र ने उनके चरण छुए । उन्होंने राम को उठाकर गले से लगा लिया और आशीर्वाद दिया—'हे पुत्र, तुम चिरायु, सुयश एवं राज्य-लाभ करो ।'

६. कौसल्या का दुःख

अपनी माता कौसल्या को देखकर राम अत्यंत दीन होकर बोले—'हे माता, आपको, माता सुमित्रा को तथा मैथिली को भय उत्पन्न करनेवाली एक घटना घटी है । मैं उसे आपको सुनाऊँगा । आप धैर्य के साथ सुनिए । किसी समय युद्ध में माता कैकेयी ने महाराज से दो वर प्राप्त किये थे । उन्होंने अभी वे दोनों वर राजा से माँगे हैं । एक वर से उन्होंने अपने पुत्र का राज-तिलक माँगा और दूसरे से मेरा वन-वास चाहा है । इस पर महाराजा अत्यंत शोक-संतप्त हो गये हैं । पिता के वचनों की रक्षा के लिए मैंने चौदह वर्षों तक वन में रहने का निश्चय किया है ।'

इन बातों को सुनकर कौसल्या मन-ही-मन दुःखी होकर, स्तंभित हो गईं । उनके मुख की कान्ति उतर गई और गला रुँध गया । वे काष्ठ की तरह चेष्टाहीन हो गईं और चीत्कार करती हुई जड़ से उखाड़ी हुई लता के समान मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं । राम ने घबराकर बड़ी भक्ति से उन्हें उठाया, उनके शरीर पर लगी हुई धूल पोंछी और उन्हें एक सुन्दर आसन पर बिठाया । इसके पश्चात् लक्ष्मण और राम ने उनका उचित उपचार किया । जब उनकी चेतना लौट आई, तब वे अपने आँखों को आर्द्र करती हुई कहने लगीं—"हे अनघ राघव ! तुम्हें वन में रहने का आदेश देना, मेरे प्राणों को अन्या

विचित्र-सा मालूम होता है। महाराज तुम्हें बुलाकर इस प्रकार का आदेश कैसे दे सके ? भले ही भरत का राज-तिलक करके उसे पृथ्वी का स्वामी बना दें, किन्तु काकुत्स्थ-वंशी राजा को तुम्हें वन भेजने की आवश्यकता क्यों हुई ? न वे विवेक-शून्य हैं, न अधम हैं। फिर सौत की बातों में आना उन्हें कैसे शोभा देता है ? क्या हितैषी मंत्री तथा कुल-गुरु वसिष्ठ ने भी तुम्हारे हित का विचार करके यह नहीं कहा कि अमुक कार्य धर्म-सगत है और अमुक कार्य उचित है ? मेरे प्राणनाथ ने इतना बड़ा अपराध कभी नहीं किया था और कैकेयी ने कभी ऐसा पाप नहीं किया। तुम्हें देखकर वन जाने का आदेश देने के के लिए कैकेयी का मुख कैसे खुला ? हे राम, प्रेम से प्राण भी माँग लेनेवाली, महाराज की प्रेम-पात्री कैकेयी के गर्भ से जन्म लेकर, पृथ्वी का पालन करने का सौभाग्य प्राप्त न करके तुमने मेरे गर्भ से क्यों जन्म लिया ? यदि तुम मेरे गर्भ मे जन्म नहीं लेते, तो तुम पर यह विपत्ति क्यों आती ? हाय ! पुत्रहीन वंध्या की अपेक्षा भी मुझे आज अधिक दुःख मिल रहा है। दीर्घ काल तक सतानहीना होकर रही और उसके पश्चात् ईश्वर की कृपा से तुम्हें पुत्र के रूप में प्राप्त किया, तो मन को बड़ी शांति मिली, किन्तु मेरा सारा तप आज व्यर्थ हो गया है। हे राजकुमार, जिस दिन तुम मुझे छोड़कर दारुण के साथ घोर वन में चले जाओगे, उस दिन मेरे लिए मृत्यु को छोड़कर अन्य कोई शरण नहीं दीखती। तुम मुझे छोड़कर कैसे वन में जाओगे ? मैं कैसे अपने दुःख को शान्त कर सकूँगी ? पच्चीस वर्ष तक मैंने तुम्हें बड़े प्रेम से पाला-पोसा। यह सारा ससार जानता है। तुम मुझे इस दशा में छोड़कर कैसे जाओगे ? हे पुत्र, मैंने तुम्हारे लिए जो विविध व्रत रखे तथा विविध दान दिये, वे सब ऊसर भूमि में डाले गये बीजों की तरह निष्फल हो गये। यदि भरत राजा बन जाय, तो परिजन क्रूर कैकेयी के भय से मेरी सेवा करने के लिए कैसे आयेंगे ? राजा के प्रेम से वंचित तथा सब प्रकार के राजभोगों तथा वैभवों से रहित होकर मैं अपनी सौतों के मध्य कौन-सा मुँह लेकर रहूँगी ? कैकेयी का अधिकार मैं कैसे सहूँगी ? मैं नहीं जानती थी कि सारा कार्य इस प्रकार चौपट हो जायगा। इस अशुभ समाचार के सुनने के पहले ही मैं क्यों नहीं मर गई ? हे सूर्यवंश-तिलक, भले ही कैकेयी सारा राज्य लेकर अपने पुत्र को उसका अधिकारी बनाकर उसे भोग ले। हे तात, तुम वनों में क्यों जाओगे ? तुम मेरे पास वैसे ही रहो। तुम्हारी बाल्यावस्था में वसिष्ठ आदि मुनियों ने तुम्हारे चरण-कमलों में, पद्म, हल, वज्र, ध्वजा, कलश आदि चिह्नों को देखकर कहा था कि यह बालक समस्त विश्व का पालन करेगा। आज कैकेयी ने उनके वचन को असत्य सिद्ध कर दिया।"

७ लक्ष्मण का क्रोध और राम का समझाना

इस प्रकार विविध प्रकार से विलाप करनेवाली कौसल्या को देखकर लक्ष्मण दुःख और क्रोध से व्याकुल हो गये। उनका मुख तमतमाने लगा और उनकी भौहें तन गईं। क्रोधाग्नि में जलते हुए तलवार चमकाते हुए वे राम तथा राम की माता से बोले—"हाय ! पौरुष तथा अभिमान को तिलांजलि देकर, क्षत्रिय-धर्म को त्यागकर, तेजोहत हो, ऐसे दीन वचन आप क्यों कह रहे हैं ? मंदमति पिता का आदेश आपको ठुकरा देना चाहिए।

कामातुर, पापकर्मी तथा वृद्ध का इतना आदर करने की क्या आवश्यकता है ? जब कैकेयी को दिये हुए वचन का भंग करना वे नहीं चाहते, तो आपको राज्य देने का वचन देकर वे कैसे मुकर रहे हैं ? वसिष्ठ आदि सब सज्जनों के समक्ष ही तो उन्होंने कहा कि मैं राम को राज्य दूँगा । क्या इस वचन का पालन नहीं करना चाहिए । सबसे पहले यह असत्य हुआ कि नहीं ? कहाँ के दशरथ और कहाँ के वर ? कौन भरत और कौन कैकेयी ? यदि मैं हाथ में धनुष लूँ, तो मेरा सामना करने की क्षमता किसमें है ? भरत से लेकर मैं सभी शत्रुओं का वध करके इस नगर को मिट्टी में मिला दूँगा। हरि, हर, ब्रह्मा आदि युद्ध में मेरा सामना करें, तो भी मैं उनसे युद्ध करके उनपर विजय प्राप्त करूँगा। सुंदर केयूर-कंकणों से अलंकृत तथा चंदन-चर्चित अपने इन हाथों से मैं आपका राज-तिलक करूँगा और सभी शत्रुओं का वध कर दूँगा । मेरे जैसे सेवक के रहते हुए आपको सारा साम्राज्य त्यागने की क्या आवश्यकता है ? वन जाने का विचार छोड दीजिए और अपनी शक्ति के प्रताप से राज्य ग्रहण करके प्रजा का पालन कीजिए और माता कौसल्या को प्रसन्न कीजिए ।"

राघव ने अपने अनुज की बातों पर मन-ही-मन विचार करके बडे स्नेह से उन्हें देखकर कहा—'हे लक्ष्मण ! शौर्य-प्रदर्शन के लिए यह उचित अवसर नहीं है । इससे हमारा कल्याण नहीं होगा । अब हमें राज्य-पालन करना नहीं है । हमें दूसरे काम करने हैं । शौर्य यहाँ दिखाने की क्या आवश्यकता है ? उसे तो शत्रुओं के प्रति दिखाना चाहिए ।'

तब कौसल्या ने राम से कहा—'हे वत्स ! तुम अपने अनुज की इन विमल वचनों को सुनो । शौर्य का आश्रय लो और आर्य-सम्मत रीति से राज्य का पालन करते हुए प्रजा की प्रशंसा प्राप्त करो । क्या तुम्हें यह उचित है कि मेरी सौत की बातों के कारण राज्य छोडकर वन में निवास करो । मेरे यहाँ रहो, और मेरी सेवा-शुश्रूषा करो । इससे बढकर इस पृथ्वी पर तुम्हारा कौन-सा धर्म है ? तुम पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए उद्यत हो, पर क्या, तुम्हें माता की आज्ञा कम मान्य हो गई है ?'

तब दुःखित होनेवाली माता को ढाढस बँधाते हुए राम उनसे बोले—"हे माता ! आप कैसी बातें कर रही हैं ? आप इतनी दुःखी क्यों हो रही हैं ? क्या अपने पिता की आज्ञा मानकर भार्गव ने अपनी माता का वध नहीं किया था ? क्या पिता की आज्ञा पाते ही कुडिन ने एक गाय का वध नहीं किया था ? पुरूरवा ने अपना यौवन अपने पिता को देकर बुढापा ग्रहण नहीं किया था ? अपने पिता के आदेश से क्या सगर के पुत्रों ने समुद्र-तल को खोद नहीं डाला था ? तब पिता की आज्ञा से वन में निवास करना मेरे लिए कौन बडा काम है ? आपके पति के वचन का पालन करना आपके और मेरे लिए परम धर्म है । लक्ष्मण तो अभी बच्चा है, वह वीरों के समान सोचने के सिवा दूसरा कुछ नहीं जानता ।" इस प्रकार राघव वे हँसते हुए अपने अनुज से बोले—'हे लक्ष्मण, तुम्हारे भुजबल, पराक्रम, धनुर्विद्या, बुद्धि तथा पौरुष ये सब किस काम के हैं ? मेरे प्रति स्नेह से प्रेरित होकर तुम कितना दुस्साहस करना चाहते हो ? तुमने मुझे कैसा आदेश दिया ? माता ने वन जाने का आदेश दिया है और राजा ने ममता त्याग करके वन जाने की आज्ञा

दी है। मेरा भाई इस समस्त राज्य पर शासन करनेवाला है। अब तुम किसपर क्रोध करते हो? ऐसे समय में अपने बल का घमंड दिखाना क्या तुम्हें उचित है? पिता की आज्ञा का पालन करने से बढ़कर दूसरा धर्म कौन-सा है? पिता की आज्ञा का उल्लंघन करने से बढ़कर दूसरा पाप कौन-सा है? चाहे तुम किसी भी रीति से विचार करो, राजा की आज्ञा का पालन करना मेरे लिए, तुम्हारे लिए और माताओं के लिए धर्म-संगत है। उनकी आज्ञा के अनुसार मुझ वन जानेवाले को मत रोको। परम पवित्र रविकुल के वंशजों के चरित्र का तो तुम्हें विचार करना चाहिए। जो होना है, वह होकर ही रहेगा। विधि का लेख कौन मिटा सकता है?" इन बातों को सुनकर लक्ष्मण ने अपना क्रोध शान्त कर लिया और रामचंद्र का रुख देखकर मौन हो चुप रह गये।

८. राम का कौसल्या को धैर्य देना

रानी कौसल्या अपने पुत्र का त्याग देखकर अत्यंत दुखी हुई और षोडश कलाओं से युक्त, पूर्णचंद्र के सदृश, प्रकाशमान राम का मुख देखकर बोली—'हे मेरे कुल-दीपक, हे मेरे प्रिय पुत्र, हे मेरे तात, वत्स (बछडा) को खोनेवाली गाय की तरह मैं तुम्हें छोड़कर चौदह साल तक यहाँ नहीं रह सकूँगी। मैं भी तुम्हारे साथ घने वन में आकर रहूँगी।' इस प्रकार विलाप करती हुई माता को सांत्वना देते हुए बड़े अनुनय-विनय से तथा अत्यंत दीन भाव से राम बोले—

"हे माता, ऐसा कहना क्या आपको उचित है? विचार करके देखिए। स्त्री के लिए पति ही प्राण है, नातेदार है और देवता है। ऐसे पति को त्यागकर मेरे साथ जाने के लिए जो आप कहती हैं, क्या यह आपको उचित है? यदि महाराज ने राज-पाट भरत को देने की आज्ञा दी है तो इसमें दोष क्या है? राजा ने जो वर देने का वचन दिया था, उन्हें माँगना क्या कैकेयी की भूल है? असत्य कहने से डरकर राजा का वर देना क्या अनुचित है? अपने पिता की आज्ञा मानकर मेरा इस प्रकार वन जाने के लिए प्रस्तुत होना क्या दोष है? सत्य तो यह है कि पति के आज्ञा-पालन में बाधा देना आपकी भूल कही जायगी। मेरे वन जाने के पश्चात् आपको दीन तथा दुखी राजा की सतत सेवा-परिचर्या करते हुए, उनके मन का दुख दूर करते रहना चाहिए। पाप-रहित तथा बंधु-प्रेमी भरत मुझसे अधिक भक्ति-युक्त होकर आपकी सेवा करेगा। आप शोक न करें। स्वप्न में भी महाराज दशरथ के संबंध में कटु विचार मत लाइए। आप कैकेयी के साथ स्नेहयुक्त होकर रहिए। मेरे कुशल का विचार करके आप मुझे वन जाने की आज्ञा दीजिए।"

इस प्रकार कहते हुए राम ने माता को प्रणाम किया। कौसल्या ने राम को हृदय से लगा लिया। उनकी आँखों से दुःख के अश्रु उमड़-उमड़कर राम की पीठ पर गिरने लगे। उनकी पीठ पर हाथ फेरते हुए वे गद्गद स्वर से बोली—'हाय, तुम वन में जाओगे?' इसके पश्चात् उन्होंने किंचित् धैर्य धारण करके अपने कपोलों पर झरनेवाले अश्रुओं को पोंछ लिया। पवित्र जल से हाथ तथा मुँह का प्रक्षालन किया और पुण्याह-वाचन कराया और कहा—'सुर, खेचर, यति, गिरि, वृक्ष, वेद, शान्ति, दान्ति, नदी, निधि, समुद्र आकाश, जल,

वायु, पृथ्वी, अग्नि, दिक्पाल, दश दिशाएँ, सूर्य-चन्द्र, तथा ब्रह्मा आदि सभी सदा तुम्हारा कल्याण करते रहें ।' इस प्रकार स्वस्ति-वचन कहकर कौसल्या ने देवताओ की पूजा करके राम के दाहिने हाथ में रक्षा-ककण बाँधा और कहा—'वृत्रासुर का वध करने के लिए जानेवाले इन्द्र को देवताओ ने जो कल्याणप्रद कामनाएँ की थी, वे सब तुम्हें प्राप्त हो । स्वर्ग से अमृत लाने के लिए जानेवाले गरुड को विनता ने जो शुभ आशीर्वाद दिये थे, हे राम, वे सब तुम्हें प्राप्त हो ।'

इस प्रकार, आशीर्वाद देकर कौसल्या ने राम को हृदय से लगा लिया, सिर सूँघा और उन्हें जाने की अनुमति दी । तब माता का चरण-स्पर्श करके वे अनुज के साथ वहाँ से अपने अत पुर के लिए श्वेत छत्र-चामर-रहित हो पैदल रवाना हुए । अभिषेक में विघ्न पडा हुआ जानकर राज-सभा के सभासद, सामत राजा, मत्री तथा नगर-निवासी अत्यत दु खी होने लगे ।

९. राम का अभिषेक-भंग का वृत्तांत सीता को सुनाना

रामचद्र अपने अत पुर में पहुँच गये, तो सीता अपनी सहेलियो के साथ उनकी अगवानी के लिए आई । सीता को देखकर राम का मुख मलिन हो गया । यह देखकर सीता का मुख भी मलिन पड़ गया । उन्होने कहा—"हे प्राणनाथ, यह कैसी विचित्र बात है कि आपका मुख-कमल आज मुरझाया हुआ है ? क्या राजा ने पुण्य-योग का मुहूर्त बीतता जानकर आपका राज-तिलक कर दिया ? चद्र-मडल की समता करनेवाला श्वेत छत्र आपके मुख-कुमुद पर क्यो छाया नही कर रहा है ? क्या कारण है कि चामरधारी आपके पार्श्व-भाग में नही है ? भद्रगज क्यो नही दीख रहा है ? आपके सिर पर मत्राक्षत क्यो नही दीख रहे है ? नगर-जन आपकी सेवा में प्रवृत्त हो क्यो नही आ रहे है ? दुदुभी तथा पटह-नाद क्यो नही सुनाई पड रहे है ? बदी-मागधो के स्तुति-पाठ कहाँ ? हे प्रभु ! आज तो राज-तिलक का दिन है । आपमें कोई राज-चिह्न नही दीख रहा है ? क्या कारण है कि सौमित्र का वदन प्रफुल्ल नही है ? इन सबका क्या कारण है, आप कृपया बतलाइए ।"

सीता के ये भोले वचन सुनकर राम मन-ही-मन दु खी हुए और उस मानिनी सीता को देखकर बोले—"भला मुनियो को राज-चिह्नो से क्या मतलब ? सुनो, इसका कारण बताता हूँ । माता कैकेयी ने पहले मेरे पिताजी की सेवा करके उनसे जो वर प्राप्त किये थे, उन्हें आज माँग लिया है । एक वर से उन्होने भरत का राज-तिलक और दूसरे वर से मेरा वन-वास माँगा है । अत राजा ने राज्य का पालन करने के लिए मेरे अनुज का राज-तिलक करने का वचन दिया है और मुझे पिता की आज्ञा से चौदह साल तक वन में रहना है । माता-पिता की आज्ञा का पालन करनेवाले वीर के हाथ में ही ऐश्वर्य, यश, नाना लोक और नाना पुण्य रहेंगे । इसलिए हे कमललोचनी ! जबतक मैं महाराज की आज्ञा के अनुसार वनवास पूरा करके न लौटूं, तबतक तुम दु ख त्याग कर गुरुजनो की भक्तिपूर्वक परिचर्या करती रहो । मन-ही-मन मेरे कुशल की कामना करती रहो और उत्तम आचरण से अपने धर्म का पालन करती हुई माताओ के पास रहो ।"

इन बातों को सुनकर जानकी सभ्रम-चित्त हो उठी । प्रचड वायु से कपायमान होनेवाली कदली के समान वह थरथर कांपने लगी और अत्यधिक दुःख से कांतिहीन होकर गद्गद स्वर में बोली—'हे प्राणेश, यदि यह सच है, तो मैं भी अवश्य इसी क्षण आपके साथ चलूँगी । मैं आपके वियोग में जीवित नही रह सकूँगी । मेरे प्राण मुझमें नही रहेंगे । आप मुझे अपने साथ अवश्य ले चलिए ।'

राघव बोले—'हे कमलाक्षी, यह कैसे सभव है कि तुम जगलों में कद-मूल खाते, पथरीले रास्तो में पैदल चलते, वल्कल पहने, कड़ी धूप तथा प्रचड वायु को सहते तथा कडी भूमि पर शयन करते हुए पर्णशाला में जीवन बिताओ । तुम तो कोमलागी हो और कष्ट का नाम तक नही जानती । ऐसी कोमलागी तुम आश्चर्यजनक हाथी, बाघ, रीछ, भेडिये, हिरन, सांप तथा लाल चीटियो से पूर्ण गिरि, गुफा, तथा घाटियो में कैसे रह सकोगी ? भयावने लता-मार्गो पर, अत्यत दुर्गम, लता, कटक, वृक्षों से भरे हुए पथों से युक्त भयकर वनो में कैसे चल सकोगी ? हे सीते ! इसलिए तुम माता कौसल्या के पास रहो । उनकी इच्छा के अनुकूल तुम उनकी सेवा करती रहो । गृह-देवताओं की पूजा करती हुई मन में मेरी भक्ति करती रहो । दिन-रात पिता की सेवा में निरत भरत माता के समान तुम्हारी सेवा करता रहेगा । हे अबले, कभी उसे कटु वचन मत कहना । हे मुग्धे, चौदह वर्ष पूरा करके मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा । चिंता मत करो ।'

राम के इन वचनों को सुनकर सीता शोक-सतप्त होकर बोली—'हे नाथ, पति का भाग्य ही सती स्त्रियो की रक्षा करने में समर्थ है । आप मेरे प्रभु है, मेरे देव है तथा मेरी पुण्य गति हैं । श्रेष्ठ स्वर्ग-सुख का उपभोग करने की अपेक्षा निश्चल मन से, अत्यत भक्ति-युक्त होकर आपके चरणारविन्दो की सेवा करना ही मेरे लिए सुखदायक है । हे राजन्, विष्णु-सदृश जगदेकवीर आपकी रक्षा में रहते हुए, इन्द्र भी मेरी तरफ सिर उठाकर देख नही सकेगा । मै आपके साथ वल्कल धारण करके पैदल चलूँगी और पर्वत तथा नदी-सरोवरो को देखूँगी । चाहे कुछ भी हो, आप मुझे अपने साथ अवश्य ले चलिए ।'

राम बोले—'हे वनजाक्षी अविरल दुर्गम वनवास की इच्छा तुम क्यो करती हो ? मैं सतत तुम्हारी याद मन में रखते हुए राजा की आज्ञा का पालन करके लौट आऊँगा । कहाँ तुम और कहाँ घोर वन ! कौतुक से विहार करने के लिए सर्वथा अनुपयुक्त घने वन के दुर्गम तथा कुटिल मार्गो में तुम्हें ले जाना कहाँ तक उचित है ? अत्यत क्रूर भेडिया, बाघ, रीछ, सिह आदि मृगो के हुकार तथा उलूक, कनकौआ एव झिल्ली की कर्कश झकार से तुम अवश्य भीत हो जाओगी । इसलिए तुम्हारा वहाँ जाना ठीक नही है ।'

इन वचनो को सुनकर सीता बोली—'हे नाथ, आपके रहते मुझे किसी प्रकार का भय नही होगा । वेदविदो (ज्योतिषियो) ने कहा है कि मेरे भाग्य में वनवास लिखा है । इसलिए हे भानुकुलाधीश, मैं आपके चरणो की सेवा करती हुई आपके साथ ही रहूँगी । मुझे मत छोड़िए । मेरी भक्ति का विचार कीजिए ।'

यों कहती हुई वे राम के चरणो पर गिरकर विलाप करने लगी । फिर भी राम को विचलित होते नही देख अत्यत दीन स्वर में वे बोली—"हे नाथ यदि जान-बूझकर, या अनजान में मैंने कोई अपराध किया हो, तो आप मुझे क्षमा कर दीजिए । कर्कश शिलाओ से आकीर्ण प्रदेशो में भी आपकी सेवा करते हुए मुझे कोई थकावट नही होगी । आप जो कद-मूल कृपा-पूर्वक देंगे, वे मेरे लिए अमृत-तुल्य होगे । आप ही मेरे आप्त-बधु हैं । अत, मैं आपके साथ अवश्य चलूंगी । न मैं अपने पिता का स्मरण करूँगी न माता का, न इष्ट बधुजनो का । । हे प्राणेश आपने अग्नि के समक्ष मेरे पिता से मुझे सह-धर्म-चारिणी के रूप में ग्रहण किया था । आप लोकवद्य हैं, सत्यनिष्ठ है । मुझे यही छोडकर वनवास के लिए आपका चला जाना क्या उचित है ? वहाँ जो भी कष्ट हो, वह आपकी कृपा से मेरे लिए सुख ही सिद्ध होगा । आपके बिना ये राजभवन, ये बधु-बाधव, यह ऐश्वर्य और जीवन भी सार-हीन हो जायेंगे । मैं कैसे यहाँ रह सकूँगी ? जैसे पुण्य सती सावित्री अपने पति की अनुगामिनी होकर रही, मैं भी आपकी परछाई की तरह आपके पीछे-पीछे चलूँगी । मेरी जैसी साध्वी के लिए यही धर्म है । आपको छोडकर मैं यहाँ एक क्षण भी नही रह सकती । आपके साथ चौदह वर्ष क्या, हजार वर्ष तक जगलो में रहकर आपकी सेवा करती रहूँगी । आप ऐसे आदर्श का पालन कीजिए, जो ससार में पति-पत्नियो के लिए अनुकरणीय हो । इतना ही क्यो ? यदि आप मुझे छोडकर वन चले जायेंगे, तो मेरे प्राण भी उड जायेंगे अथवा मैं स्वय अग्नि, जल या विष से अपने प्राण त्याग दूंगी । मुझे छोडकर मत जाइए, मेरी मृत्यु देखकर जाइए ।" यों अत्यत शोकार्त्त हो जानकी विलाप करने लगी ।'

१०. राम का सीता तथा लक्ष्मण को भी साथ चलने की अनुमति देना

सीता की यह दशा देख राम का हृदय दया से पिघल गया । उन्होंने अपने कर-पल्लवो से उस सुदरी को उठाकर कहा—'हे सुदरी, तुम्हें यहाँ छोडकर अकेले वन में निवास करना मैं भी नही चाहता । मैं केवल तुम्हारा हृदय परखना चाहता था । तुम मेरे साथ चलो, तो सब तरह से मेरा कुशल ही होगा । मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूंगा । तुम चलने से पूर्व आवश्यक दान आदि कर लो ।' कृपालु राम के अनुमति देते ही सीता ने स्वर्ण-रत्नादि आभूषण अपने प्रिय परिजनो को दान कर दिये ।

तत्पश्चात् राम ने सौमित्र को अपने पास बुलाकर कहा—'यदि तुम भी मेरे साथ वन में चलोगे, तो मेरे साथ तुम्हें भी खोकर हमारी माताएँ कौसल्या तथा सुमित्रा अत्यत दुखी होंगी । उनका दु ख कौन दूर करेगा ? हम दोनो चले जायें, तो पिताजी की देख-भाल करनेवाले कौन हैं ? पहले से ही माता कैकेयी सौतिया डाह से प्रेरित हैं । अब राज-मद भी उन्हें हो जाय, तो न जाने वे अपनी प्रभुता दिखाती हुई उन्हें दु ख देंगी या धर्म का विचार करके (चुप) रह जायेंगी । अत मेरे लौटने तक तुम्हारा यहाँ रहना सर्वथा उचित है ।

इन बातो से दु खी होकर लक्ष्मण ने अपने भाई से कहा—'मैं आपके साथ अवश्य वन चलूंगा । यदि आप मना करेंगे, तो यही अपने प्राण त्याग दूंगा । यह मेरा दृढ

निश्चय है।' अनुज का यह दृढ निश्चय सुनकर राम ने उन्हें अपने साथ चलने की अनुमति दे दी।

११. राम-लक्ष्मण का संपत्ति-दान

फिर राम ने अपने अनुज लक्ष्मण को भेजकर वसिष्ठ के पुत्र उत्तम गुण-संपन्न सुयज्ञ को बुलवाया और उचित रीति से उनका आदर-सत्कार करके उन्हें हार, कुंडल, वलय, अंगद आदि सभी आभूषण, मामा का दिया हुआ मत्त गज, ख्याति, शत्रुंजय आदि नामवाले सहस्र हाथी, सुन्दर वस्त्र आदि दान में दिये। इनके अतिरिक्त राम ने उन्हें दस करोड़ सुवर्ण-मुद्राएँ तथा अन्य अनुपम वस्तुएँ भी बड़ी श्रद्धा से दीं। उन्हें ग्रहण करके सुयज्ञ ने हर्षित होकर आश्चर्य-चकित हृदय से उस राज-दंपती को आशीर्वाद दिये। उसके पश्चात् उन्होंने अपने राज-कोष का समस्त धन मँगाकर, याचकों, निर्धनों तथा दीन-जनों में वितरित कर दिये। अगस्त्य तथा कौशिक मुनियों को रत्न-राशियाँ दान कर दीं। वसिष्ठ आदि मुनियों तथा तपस्वियों को उचित दान दिया। वंदी-मागध आदि, परिजन तथा अन्य निर्धनों को अमित धन दिया। तत्पश्चात् ब्राह्मणों तथा बंधु-मित्रों को भिन्न-भिन्न प्रकार के दान देकर उन्होंने सौमित्र की ओर देखकर कहा—'तुम भी दान करो।' तब उस राजकुमार ने बड़े आनंद से कौशिक, गार्ग्य तथा शांडिल्य को बुलवाकर उन्हें अमित धन दिया। जिस किसी ने जो कुछ माँगा, उसे उन्होंने दे दिया। सीता ने परम कल्याणी, अरुंधती तथा सुयज्ञ की पत्नी को अपने आभूषण, अपना धन, तथा अपने अंतःपुर के सभी वस्तु-समूह दान में दे दिये। तब अरुंधती ने वसिष्ठ को देखकर कहा—'हाय! इक्ष्वाकु के वंशजों की ऐसी दशा देखकर चुप रह जाना क्या आपको उचित लगता है?' मुनि ने अच्छी तरह विचार करके कहा—'यह भगवान् की इच्छा है, किसी भी तरह यह टल नहीं सकती। तुम चुप-चाप देखो।'

१२. त्रिजटाख्य को राम का गायों का दान देना

उस समय त्रिजटाख्य नामक एक विप्र अपनी जीविका चलाने के उद्देश्य से खेत जोतते हुए मन-ही-मन अपने दारिद्र्य का विचार करके दुःखी हो रहा था। उसकी स्त्री अपने बच्चों के साथ अपने पति के पास गई और काम में व्यस्त पति को देखकर कहा—'हे नाथ, अभी आप हल चलाने में क्यों व्यस्त हैं, हल को वहीं छोड़कर आइए, मैं एक बात कहती हूँ। आज रामचंद्र बड़े आनंद से सभी याचकों को असंख्य धन दान कर रहे हैं। जो कोई जो कुछ माँगता है, उसे वे दे रहे हैं। आप अपना कुल तथा अपना नाम बतलाकर उस काकुत्स्थ पति से अपने इच्छानुसार धन प्राप्त कर लीजिए। आप शीघ्र जाइए।'

यह सुनकर उस विप्र की इच्छाएँ प्रबल हो उठीं। वह तुरंत रामचंद्र के निकट पहुँचकर उन्हें आशीर्वाद देकर बोला—'हे राजन्, मैं निपट दरिद्र हूँ। मेरे कई बाल-बच्चे हैं। मैं अत्यन्त निर्धन हूँ। आप मेरी रक्षा करें। तब रघुराम बोले—'अभी मेरे पास गायों के कई समूह हैं। आप अपनी सारी शक्ति लगाकर कोई ढेला फेंकिए। आपका ढेला जितनी दूर तक जायगा, उतनी दूर तक की भूमि में जितनी गायें हैं, वे सब आपको

मिल जायँगी । मन-ही-मन हर्षित होते हुए उस विप्र ने अपनी धोती तथा शिखा कसकर बाँध ली, सभी नाडियो को कस लिया, दाँत पीसे और हाथ में ढेला लिये हुए श्रीरमापति विष्णु तथा श्रीराम का नाम-स्मरण करके अपनी मुट्ठी जोर से घुमाकर ढेला सरयू नदी तक फेंक दिया । सरयू नदी तक की भूमि में जितनी गायें थी, उन्हें ब्राह्मण ने ले लिया । ब्राह्मण के इस बाहुबल को देख राम को आश्चर्य हुआ । उन्होने ब्राह्मण से कहा कि यदि आपकी इच्छा हो, तो मैं बिना किसी सकोच के आपको और एक हजार गायें तथा वस्त्र आदि दूँगा । तब विप्र ने कहा—'आप मुझे एक यज्ञ के लिए आवश्यक धन दे सकें, तो अच्छा होगा ।' राम ने उसकी इच्छा के अनुसार उसे धन देकर सतुष्ट किया । ब्राह्मण धन आदि लेकर अपनी पत्नी के साथ सतुष्ट मन से घर लौट गया ।

तब रघुराम अपने-आपको कृत-कृत्य मानते हुए अतपुर के भीतर आये और गृह-देवताओ की पूजा की, भक्ति के साथ मुनियो को प्रणाम किया और याचको को मुँह-माँगा दान दिया । उसके पश्चात् उन्होने अपने गुरु के घर में रखे हुए तथा धनुष-यज्ञ के समय वरुण से प्राप्त कोदड, तूणीर, खड्ग आदि अपने अनुज के द्वारा मँगाये और उन्हें धारण करके सीता तथा लक्ष्मण के साथ राजा के दर्शन करने चले । नगर की प्रजा उन्नत सौध-शिखरो तथा चौपालो से राजचिह्न-रहित राम को जाते हुए देख अत्यत शोक-सतप्त होकर कहने लगी—'क्या राम ऐसी दुर्दशा को प्राप्त होने योग्य है ? वे जहाँ जायँगे, हम भी वही जायँगे ।' कुछ लोग कहते—'हम सब इस राजकुमार के साथ वन चले जायँ और उजडे हुए नगर पर कैकेयी राज्य करे ।' इसी तरह कुछ दूसरे लोग कहते—'यह नगर धीरे-धीरे भालू, बाघ, सिह, लोमडी, पिशाच तथा असख्य भूत-प्रेतो का निवास-स्थान बन जायगा और वन में जहाँ राम रहेंगे, वही एक नगर बस जायगा ।' इस प्रकार लोगो के रोने-पीटने से सभी दिशाएँ गूँज उठी ।

१३. सीता-लक्ष्मण-सहित राम का दशरथ के दर्शनार्थ जाना

लोगो की आर्त्त ध्वनियो को बडे धैर्य के साथ सुनते हुए राम महाराज के अतपुर में पहुँचे । उन्होने सुमत्र के द्वारा राजा को अपने आगमन की सूचना भेजी । सुमत्र ने शोक-सतप्त राजा को देखकर कहा—'महाराज, राम-लक्ष्मण पूज्यशीला सीता के साथ आये है ।' यह सवाद सुनते ही राजा मूर्च्छित हो गये। जब उनकी मूर्च्छा दूर हुई, तब वे धीरे-धीरे उठकर आसन पर बैठ गये और धैर्य धरकर गद्गद कठ से बोले—'मेरी सभी रानियाँ रघुराम को देखने के लिए आवें ।'

सुमत्र राजा के वचन सुनकर रनवास में गये और राजा की तीन सौ पचास रानियो को अत्यत विनय के साथ बुला लाये। तत्पश्चात् वे महान् तेजस्वी रामचद्र को सीता और लक्ष्मण के साथ महाराजा के सामने ले गये। राजा राम को हृदय से लगा लेने के लिए उठे, किन्तु उनके पैर आगे नही बढ सके । वे वही लडखडाकर भूमि पर गिर पडे । तब राम ने उन्हें उठाया और उनका सिर अपनी गोद में रखकर दुःख प्रकट करने लगे । थोडी देर बाद राजा की चेतना लौट आई और वे उठ बैठे । पिता को एकटक अपनी ओर ताकते हुए देखकर लोकवन्द्य राम बोले—'हे अनघ, आपके वचन

की रक्षा करने के हेतु मुझे वन-गमन के लिए उद्यत देखकर साध्वी जानकी तथा सौमित्र, मेरे मना करने पर भी मेरे साथ वन जाने के लिए प्रस्तुत हो गये हैं । उन्हें भी वन जाने की अनुमति प्रदान कीजिए ।'

इन वचनो को सुनकर राजा ने कहा—'मतिभ्रष्ट कैकेयी की बातो में आकर मैंने तुम्हें वन जाने का आदेश देकर बडी निर्दयता की है । किन्तु तुम्हें उसका पालन करने की आवश्यकता ही क्या है ? तुम अपने ढग से राज्य करो ।'

इस पर राम ने हाथ जोडकर कहा—'हे राजन्, आप मेरे गुरु हैं, पृथ्वीपति हैं, प्रेम से मेरी रक्षा करनेवाले आप्त-बधु हैं । अत, आप अपनी आज्ञा का पालन करने की अनुमति मुझे दीजिए और जाने की आज्ञा भी दीजिए । सत्यनिष्ठ होकर आप सदा समस्त लोको का पालन कीजिए ।'

दशरथ बोले—'हे वत्स ! तुम चिरायु, अमितशुभ, सुयश, पराक्रम, निष्कलक धर्म-बुद्धि प्राप्त करो । तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो । हे पुत्र, तुम आज रात को यहीं रहकर कल वन के लिए प्रस्थान करो ।' इस पर राम ने कहा—'हे महाराज, हमारा अब यहाँ रहना उचित नही है । आज और कल में विशेष अतर नहीं पडता । अत, आप हमें स्नेह से जाने की अनुमति दीजिए । मेरे अनुज भरत को राज्य-पालन करने दीजिए । अब आप शोक मत कीजिए ।'

राम की त्याग-बुद्धि देखकर महाराज दशरथ को अत्यधिक दुख हुआ । वे बोले—'तुम्हारे जैसे सुपुत्र को घोर जगलो में निवास करने की अनुमति मैं किस मुँह से दूँ ? हाय ! कैकेयी की बातो में आकर मैं धोखा खा गया ।' यों कहते हुए वे करुणोत्पादक ढग से विलाप करने लगे । अतपुर की सब नारियाँ भी रोने लगी । इसी समय कौसल्या तथा सुमित्रा दुख-सतप्त हृदय से वहाँ आईं और राजा के साथ विलाप करने लगी ।

उन रमणियो तथा राजा का विलाप सुनकर सुमत्र अपार दुख से पीडित हुए और क्रोध से कैकेयी की ओर देखकर कहने लगे—'आपके कारण ही राजा को तथा हम सबको यह सताप हो रहा है । मैं आपको क्या कहूँ ? आप पति के हित का विचार न करने-वाली राक्षसी हैं । आप भी अपनी माता के समान ही पति की हत्यारिन हैं । आपके पिता सभी भाषाओ के ज्ञाता थे । एक दिन वे और आपकी माता शय्या पर लेटे हुए थे । तब उन्होने किन्ही कीडो को आपस में बोलते हुए सुना और उसका विचार करके हँस दिया । तब तुम्हारी माँ ने अपने पति से कहा—'बतलाइए कि आप क्यो हँस रहे रहे हैं ?' तब उन्होंने कहा—'यदि मैं इसका कारण तुम्हें बतला दूँ, तो मेरी मृत्यु हो जायगी ।' किन्तु आपकी माँ ने कहा कि मैं आपकी मृत्यु से नही घबराती, आप अवश्य अपनी हँसी का कारण बतलाइए । तब उन्होने निर्दय होकर आपकी माता को नगर से निर्वासित कर दिया । भला, ऐसी चडी की पुत्री, आपको अपने पति के हित का विचार कैसे होगा ?'

कैकेयी सिर झुकाकर थोडी देर तक सोचती रही और फिर दशरथ को देखकर बोली—'हे राजन्, प्राचीन काल में आपके वशज महाराज सगर महान् यशस्वी होकर

राज्य करते थे । क्या उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र असमजस को बिना किसी झिझक के नगर स बाहर नही कर दिया था ? तब आप भी यदि राम को वन में भेज दें, तो इसमें दोष ही क्या है ?'

शोक-समुद्र में डूबे हुए दशरथ इसका प्रत्युत्तर नही दे सके । तब सिद्धार्थ नामक मत्री ने कपटी कैकेयी को देखकर कहा—'असमजस दर्प से उद्दण्ड होकर नगर के बालको को बाँध-बाँधकर सरयू नदी में फेंक देता था । जब प्रजा ने राजा से इसकी शिकायत की, तब जन-हित का विचार करके उन्होंने अपने पुत्र को नगर से निर्वासित कर दिया । क्या रामचद्र में कोई दोष है ? वे तो उत्तम गुण-सपन्न है ।'

तब कैकेयी बोली—'राम तो पिता के दिये हुए वचनो का पालन कर रहा है । वह सुकृति है ।' कैकेयी की निष्ठुरता देखकर दशरथ बहुत दुखी हुए और सुमत्र को देखकर बोले—'हे सुमत्र, तुम राज्य के धन, मणियाँ, गोधन, बधुजन, अतपुर के निवासी मित्र, मत्री तथा विजय-चिह्नो से अलकृत गज, रथ, तुरग आदि सब को राम के साथ भेज दो । इस शून्य नगर पर ही कैकेयी का पुत्र राज्य करेगा ।'

इन वचनों को सुनते ही कैकेयी क्रोध से जल उठी । वह अपने पति को कोसती हुई बोली—'हे राजन्, आप रामचद्र को राज्य का ऐश्वर्य देकर उजडा हुआ नगर भरत को क्यो देना चाहते है ? ऐसी बातें क्यो करते है ? यदि राम, सौमित्र तथा जानकी के साथ वल्कल पहनकर सतुष्ट मन से सारे ऐश्वर्य को त्याग कर मेरे देखते हुए वनवास के लिए नही जायगा, तो आपका वचन पूरा नही होगा । आपका वचन झूठा होगा । हे राजन्, मै आपके वर नही चाहती । निश्चय ही आपका वचन भग हुआ ।'

कैकेयी की बातें सुनकर दशरथ मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पडे । उस दशा में पृथ्वी पर पडे हुए पिता को देखकर घोर परिताप से पीडित होकर राघव बोले—'हे माताजी ! आप बार-बार महाराज की निंदा क्यो करती है ? मेरे गुरु, महाराज, मेरे पूज्य पिता, मेरे परमदेव, मुझे आज्ञा दें, तो मै प्रेम से विष-पान भी करूँगा । प्रचड अग्नि या विष के समुद्र में भी प्रविष्ट् होऊँगा । वनो में जाकर मुनियो के साथ रहना कौन-सा बडा कार्य है ?'

दशरथ उन वचनो को सुनकर कैकेयी को देखकर बोले—'सुनो, मै भी राज्य छोडकर राम के साथ वन में जाऊँगा । तुम समस्त वैभव के साथ भरत को अयोध्या का राजा बनाकर राज्य करो । अब अधिक विवाद क्यो ?' तब राम ने राजा से कहा—'महाराज, निर्जन वन मेरे लिए योग्य रहेगा । मेरे साथ और कोई क्यो आये ? मेरे लिए वल्कल मँगाइए । मै उन्हें धारण कर चौदह वर्ष तक वन में रहते हुए आपकी आज्ञा का पालन करूँगा । माता, आप शीघ्र हमें वल्कल दीजिए ।'

तब कैकेयी निर्लज्ज होकर मन-ही-मन प्रसन्न होती हुई सबके सामने वल्कल ले आई और उन्हें राम को देकर बोली—'हे राजकुमार ! इन्हें धारण कर लो ।'

राम ने बडी प्रसन्नता से माता से वल्कल ले लिये और अपने कपडे उतारकर वल्कल पहन लिये । राम के समान ही लक्ष्मण ने भी वल्कल पहने । कैकेयी ने सीता को

दो वल्कल दिये । तब सीता ने मन-ही-मन व्याकुल होकर राम से कहा—'वन में रहने-वाले मुनि, न जाने इन वल्कलो को कैसे पहनते होंगे ।' उन्होंने एक वस्त्र को अपने कंधे पर डाल लिया और दूसरे को हाथ में लिये पहनने में असमर्थ हो खड़ी रहीं । राम ने यह ढग देखा तो उन्होंने स्वयं सीता को वह वल्कल पहना दिया । सभी रानियों ने राघव को देखकर कहा—'हे राजकुमार ! इस श्रेष्ठ राजकुमारी सीता को इतना निष्ठुर होकर तपस्विनी की तरह घने जगलो में क्यों ले जा रहे हो ? हमारी बात मानकर तुम सीता को हमारे पास छोड दो और लक्ष्मण के साथ तुम वन जाओ।'

१४. कैकेयी पर वसिष्ठ का क्रोध

तब वसिष्ठ कैकेयी को देखकर अत्यत क्रोध से बोले—"तुम कुलनाशिनी हो । तुमने राजा को धोखा दिया है । तुमने जैसा पाप किया, वैसा पाप कही भी किसी ने नहीं किया है । रघुराम की आज्ञा से जानकी को रानियों के साथ रहने दो । तुम इसे स्वीकार क्यो नही करती हो ? यदि वैदेही वन में चली जायगी, तो हम भी नगर-निवासियों के साथ वन चले जायेंगे । इतना ही नहीं, भरत तथा शत्रुघ्न अत्यत प्रसन्न मन से रामचन्द्र की सेवा करने के लिए वन जायेंगे । तब तुम इस निर्जन नगर में रहोगी । राम पुण्यशील है । उसके रहने से इस नगर की शोभा है । उसके चले जाने के बाद यह नगर उजडा हुआ दीखेगा । पाप-पूर्ण मन से तुमने पति को धोखा दिया । अधिक लोभ से प्रेरित हो, तुम राम को वन में भेजकर भरत का राज-तिलक करके चिर काल तक राज्य करने की बात सोच रही हो । भरत कभी अपने पिता की आज्ञा नहीं टालेगा । वह अपने भाई रामचद्र को पितृ-तुल्य मानता है । तुम्हारी बात सुनकर, धर्म-निष्ठा को त्यागकर, रामचन्द्र को ठुकराकर क्या वह राज्य ग्रहण करेगा ? वह दशरथ का पुत्र है । तुम्हारा दोष सिद्ध होने पर, क्या वह तुम्हे मन से माता मानेगा ? क्या राम के वन में रहते हुए वह साम्राज्य का भार वहन करेगा ? तुम भरत का हृदय नहीं जानती । अगर उसे यह बात मालूम हो जाय, तो वह तुम पर क्रुद्ध होगा । किसके लिए तुम इतने निष्ठुर बन रही हो ? क्या भरत इसके लिए अपनी स्वीकृति देगा ? कदापि नही । इसलिए इसे तुम शुभप्रद मत समझो । इतना ही नहीं, राम तथा सीता को वल्कल देने के लिए तुम्हारे हाथ कैसे आगे आये ? वल्कल छोड़कर नवरत्न-खचित आभूषण तथा चीनाम्बर पहने जानकी परिचारिकाओं के साथ वन में जाय ।"

इस प्रकार कहते हुए उस सयमीश्वर ने सीता को सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण दिये । सीता ने उन्हें ग्रहण किया और वल्कल वही छोड दिये । सब लोग कैकेयी की निंदा करने लगे । राजा सबकी निंदा सुनते रहे और अत में कैकेयी को देखकर बोले—'तुमने मन में पाप का सकल्प करके राम के लिए वनवास माँगा था । लेकिन क्या तुमने मुझसे यह भी माँगा था कि सीता को वल्कल पहनने चाहिए ? क्या यह मानवती इसके लिए योग्य है ? मैंने क्या पाप किया, जो तुम इतनी क्रूर बनी हुई हो ? विनयाभिराम राम को तपस्वी के रूप में वन भेजने से बढकर कोई और पाप है ? उसे यहाँ से भगाकर भी तुम्हें चैन क्यो नहीं मिलता ? ऐसी पापिनी का पति मेरे पापो का अत ही नहीं है क्या ?'

तब राम ने दशरथ से कहा—'महाराज, मेरे वियोग से शोक-सतप्त मेरी माता कौसल्या को सात्वना देते हुए आप उनकी रक्षा करते रहें ।'

तब दशरथ ने अत्यत दु खी होकर कहा—'हे राम, न जाने मैंने पूर्व जन्म में कौन-सा पाप किया था ? उसका फल तो मुझे भोगना ही चाहिए । माताओ से पुत्रो को अलग करके तुम्हारे हृदयो को दु ख देना पड रहा है । हाय, कैकेयी के वचनो के कारण तुम्हें वन में कष्टो को सहने के लिए निष्ठुर होकर भेजना पड रहा है । हे पुत्र, हे राम, यह कैसा अनर्थ है ।'

यो कहकर दशरथ मूर्च्छित हो गये । उपचार के उपरात जब वे कुछ सँभले, तब उन्होने चौदह वर्ष के लिए आवश्यक श्रेष्ठ वस्त्र तथा आभूषण सीता को दिलवाये । सीता ने उन श्रेष्ठ वस्त्रो तथा आभूषणो को धारण किया ।

१५. राम का दशरथ को सांत्वना देना

तब दशरथ को देखकर राम ने कहा—'महाराज मै चौदह वर्ष की अवधि चौदह दिन की तरह बिताकर शीघ्र ही लौट आऊँगा । मेरी अपेक्षा भरत आपका प्रिय भक्त है । आप दु ख मत कीजिए । भरत का राज-तिलक कर दीजिए । माता कैकेयी के कृत्य को सोचते हुए आप मन-ही-मन क्षुब्ध मत होइए । मेरी माँ आपकी सेवा अच्छी तरह करती रहेगी । उन पर आप भी कृपा-दृष्टि रखिए ।'

यो कहकर उन्होने सीता तथा लक्ष्मण के साथ उनकी परिक्रमा की और प्रणाम किया । तब राजा ने अपने पुत्रो तथा बहू को आशीर्वाद दिया—'तुम वन जाकर कुशल-पूर्वक लौटो ।' उसके पश्चात् उन तीनो ने कौसल्या के चरण-कमलो का स्पर्श किया । राघव की वेश-भूषा देखकर माता ने क्रूर विधि की निंदा करती हुई विलाप किया और फिर राम तथा लक्ष्मण को आशीर्वाद दिये ।

१६. सीता को सीख देना

फिर जानकी को देखकर कौसल्या अत्यत दु खी होकर बोली—'राम को योग्य राज-पुत्र समझकर बिना हमारे माँगे ही तुम्हारे पिता ने तुम्हारा विवाह उसके साथ कर दिया । किन्तु आज दैव-योग से तुम्हारी यह दशा हो गई । तुम्हें तापस-वृत्ति ग्रहण कर अपने पति के साथ वनो में निवास करना पड रहा है । इसके लिए चिन्ता मत करो । राघव अवश्य बाद को पृथ्वी का पालन करेगा । चाहे पति निर्धन ही क्यो न हो जाय, फिर भी स्त्री को उसे त्यागना नही चाहिए । यही सती स्त्रियो का धर्म है । पति की आज्ञा पालन करनेवाली स्त्रियो का दोनो लोको में शुभ होगा ।'

तब सीता ने कौसल्या को देखकर कहा—'हे माताजी, मैं अवश्य पति के अनुकूल होकर भक्ति के साथ उनकी सेवा करूँगी और धर्म के मार्ग पर चलूँगी । पति की प्रसन्नता जिस रमणी को प्राप्त नही है, वह चक्र-हीन रथ के समान और तार-हीन वीणा के समान है । वह पुत्रोवाली पुण्यवती होने पर भी अत्यत दु खी रहेगी । अत , यदि पति को प्रिय हो, तो मै अपने प्राणो को भी बडे हर्ष से निछावर कर दूँगी ।'

तब कौसल्या ने सीता से कहा—'भू-माता की पुत्री होकर तुम्हारे ये गुण तुम्हारे अनुकूल ही हैं । लक्ष्मण, उज्ज्वल गुण-सपन्न तुम्हारे पति का आप्त-बधु है । उसके प्रति

स्नेह रखना ।' 'आपकी आज्ञा शिरोधार्य है'—सीता ने कहा और उन्हें प्रणाम किया । कौसल्या ने उन्हें हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद दिये ।

फिर कौसल्या ने राम को संबोधित करके कहा—'हे राजकुमार, मैथिली तथा सौमित्र का सतत ध्यान रखना ।' राम बोले—'माता, आपकी आज्ञा का पालन अवश्य करूँगा । लक्ष्मण तो मेरा दाहिना हाथ है और सीता मेरी गति के समान है । क्या मैं कभी इनके प्रति असावधान रह सकता हूँ ? यदि मैं धनुष धारण करूँ, तो (इन्हें) कौन-सा भय हो सकता है । चाहे त्रिनयन ही क्यों न आ जायें । अब आप शोक मत कीजिए । हम तीनो, आपको, पिताजी को और सब माताओं को प्रणाम करते है, आप हमें आशीर्वाद दीजिए ।'

इस प्रकार कहते हुए उन्होने सीता तथा लक्ष्मण के साथ तीन सौ पचास माताओं की प्रदक्षिणा की । यह दृश्य देखकर सभी माताओं का हृदय पिघल गया और वे विलाप करने लगी ।

जब तीनो ने माता सुमित्रा को प्रणाम किया, तब उन्होंने उन्हें हृदय से लगा लिया और राम तथा सीता को आशीर्वाद दिये । उसके पश्चात् वे महाराज के अनुचित कार्य का विचार करके दुखी हुई और लक्ष्मण को पास बुलाकर अत्यंत गभीर स्वर में बोली—'हे वत्स ! तुम राम को ही अपने पिता दशरथ के समान और जानकी को मेरे समान मानना । वन को ही अयोध्या समझना और अत्यंत भक्तियुक्त होकर राम की सेवा करते हुए अत्यधिक विजय तथा उन्नति प्राप्त करो ।' उसके बाद वे राम को देखकर बोली—'हे रघुवीर, लक्ष्मण सतत तुम्हारे कल्याण का विचार करनेवाला, कल्मष-रहित सखा तथा अनुज है । वन में तुम इसकी रक्षा करते रहना ।' राम ने माता की आज्ञा को बडी नम्रता से स्वीकार किया ।

१७. राम का वन-गमन

तत्पश्चात् राम ने गृह-देवताओ, मुनियों तथा माताओ को प्रणाम किया और सीता तथा लक्ष्मण के साथ शर-चाप-तूणीर से युक्त हो वे वन के लिए रवाना हुए । तब दशरथ ने मन-ही-मन दुखी होते हुए सुमंत्र को देखकर कहा—'वह देखो, राम वन जा रहा है, उसके लिए रथ ले जाओ ।'

राजा की आज्ञा मानकर सुमंत्र रथ को लिये राम के पास पहुँचे और भक्ति से प्रणाम करके बोले—'हे रघुराम, राजा ने यह रथ भेजा है । इस पर आरूढ होकर आप वन के लिए प्रस्थान कीजिए ।' राजा की आज्ञा को मानकर राम ने सीता को पहले रथ पर बिठाया, फिर अपने शस्त्रो को रखने के बाद लक्ष्मण के साथ स्वयं भी उस विशाल रथ पर चढकर वन के लिए रवाना हुए ।

नागरिक, वृद्ध, आप्त, मंत्री, स्त्रियाँ, बालक, मित्र, आश्रित, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र अत्यधिक दुख प्रकट करते हुए रथ के आगे-पीछे तथा दोनो ओर भीड लगाकर चलने लगे । कुछ लोग मंथरा को कोस रहे थे कि उसने इक्ष्वाकु-वंश के गौरव को नष्ट कर दिया, कुछ कैकेयी की निंदा करते हुए कह रहे थे कि क्या रघुराम को तपस्वी का

रूप देना उचित था, दूसरे कुछ लोग दशरथ पर क्रोध प्रकट करते हुए कह रहे थे कि राजा का इस प्रकार अपनी पत्नी से भीत होना उचित नही था, कुछ लोग दुखी होकर कह रहे थे कि आज राम तथा सौमित्र अधिकार-रहित होकर कितने अनाथ हो गये ? ऐसे भी लोग थे, जो कह रहे थे कि प्राप्त होनेवाले साम्राज्य का भार वहन किये बिना व्यर्थ ही ये लोग वन में जा रहे हैं ? कुछ कह रहे थे, चौदह वर्ष तक ये लोग कैसे विपत्तियो को झेलते रहेंगे ? कुछ मन-ही-मन सोच रहे थे कि न जाने इस राजकुमारी ने किस व्रत का अनुष्ठान किया है ? कुछ कह रहे थे कि अत्यत दुखी होकर राम के वन चले जाने के पश्चात् बुद्धिमान् भरत कैसे राज्य करेंगे ? कुछ सीता की प्रशसा कर रहे थे कि कोमलगात्री, भूमि-सुता को पति ने यही (अयोध्या में ही) क्यो नही छोड दिया ? कुछ आश्चर्य कर रहे थे कि ऐसे पुत्र को वन जाते हुए देखकर न जाने कौसल्या कैसे धैर्य रख सकी ? इस प्रकार, कहते हुए सभी लोग शोक-सतप्त मन से रथ के पीछे-पीछे जाने लगे ।

कौसल्या तथा सुमित्रा अत्यत दुख के प्रवाह में डूबी हुई (उनके पीछ) जा रही थी। उनके हाथो का सहारा लिये हुए, झुके हुए, दुख से लडखडाते महाराज दशरथ रनवास की स्त्रियो के साथ अविरल अश्रु-जल से भरे नेत्रो से, 'हे राम ! हे राम !' का आर्त्तनाद करते हुए अतपुर से बाहर निकले । तब रवि का प्रकाश मद पड गया और अधकार चारो ओर से आकाश में व्याप्त होने लगा । अग्नि ने अपना सहज दहन-गुण त्याग दिया । पृथ्वी में दरारें पड गई । नक्षत्रो का प्रकाश मद पड गया । आकाश में ग्रह एक दूसरे से टकरा गये । हाथियो का मदजल सूख गया । अश्वो की आँखो से अश्रु टपकने लगे । छोटे, बडे, बूढे, बच्चे, सभी की विलाप-ध्वनि सारे आकाश में व्याप्त हो गई। सुर-लोक की कामिनियो का अत्यधिक आर्त्तनाद नगर-निवासियो को सुनाई पडने लगा।

तब दशरथ ने अश्रुपूरित नेत्रो मे रथ की ओर देखा, मगर उन्हें कुछ भी दृष्टि-गोचर नही हुआ । तब वे उच्च स्वर में चिल्लाने लगे--'हे सुमत्र, रथ लौटा लाओ । रामचद्र का चद्रबिंब-सदृश मुख एक बार देखने दो ।' इस तरह नगर के बाहर भी शीघ्र गति से आनेवाले महाराज को देखकर रामचद्र सुमत्र से बोले---'वह देखो, सूर्यवशाधिप आ रहे हैं । रथ की गति तीव्र कर दो । शीघ्रता करो ।'

उनकी आज्ञा के अनुसार सुमत्र ने रथ की गति तीव्र कर दी। तब वसिष्ठ राजा से मन-ही-मन दुखी होते हुए बोले—'हे अनघ, इस प्रकार दु.खी होकर तुम्हें (अपनी सतान को) भेजना नही चाहिए । यहाँ से अब तुम लौट चलो ।' तब दशरथ रुक गये और अपने पुत्र के रथ की ओर अपलक दृष्टि से देखते रहे । जब वे आँखो से ओझल हो गये, तब उस रथ की धूलि की ओर देखते रहे । जब वह भी दिखाई नही पडी तब वे ऊँचे स्वर में—'हा राम ! हा राम !' का आर्त्तनाद करते हुए पृथ्वी पर गिर-कर लोटने लगे ।

जब उनकी मूर्च्छा छूटी, तब वे अत्यत क्रोध-भरी दृष्टि से कैकेयी को देखकर बोले—'तुम्हारी पाप-मत्रणा से अनभिज्ञ होकर मैं अपने पुत्र-रत्न को खो बैठा । तुम्हारे साथ

विवाह करके मैं पतित हो गया। सब बातों में श्रेष्ठ होने हुए भी मैं अब दीन-हीन हो गया हूँ। मैं सभी की निंदा का पात्र बन गया। जीवन के अंतिम समय में मैंने काकुत्स्य-वंश की कीर्ति को कलंकित किया। हे दुष्टे! तुम्हारा स्पर्श भी नहीं करना चाहिए, तुमसे वार्त्तालाप तक नहीं करना चाहिए, तुम्हारा मुँह भी नहीं देखना चाहिए।

इस प्रकार राजा के कहते ही सभी रानियाँ कैकेयी को कोसने लगीं। कैकेयी सब सुनती हुई सिर झुकाये खड़ी रही। दशरथ तब संतप्त-चित्त से अयोध्या नगर में लौट आये। उजड़े हुए-से दीखनेवाले राज-मार्ग में जहाँ-तहाँ ठहरते हुए वे निदान राजभवन में वापस आये। कौसल्या भी रनवास में पहुँच गई और धूलि-धूसरित मुँह से शय्या पर गिरकर लोट-लोटकर विलाप करने लगी। वे पथराई हुई आँखों से चारों ओर देखती थीं और बार-बार 'हा राम! हा राम!' का आर्त्तनाद करती थीं। वे इस प्रकार भगवान् को कोसती हुई अपने-आपको दोष देती हुई असह्य दुःख का अनुभव करने लगीं। वे कह रही थीं—'किंचित् भी दुःख से अनभिज्ञ मेरे पुत्र और पुत्रवधू न जाने अब कितनी दूर पहुँचे होंगे? न जानें वे कहाँ हैं? न जाने उन्हें मन-ही-मन कितना दुःख हुआ होगा? न जाने वे कैसे वन में निवास करेंगे? कैसे वे कंद-मूल खायेंगे?' यों मन-ही-मन वे राम तथा सीता के कष्टों की कल्पना करके अत्यंत दुःखी हो रही थीं। सुमित्रा उनको सांत्वना दे रही थी।

रामचंद्र थोड़ी दूर जाने के पश्चात्, अपने पीछे आनेवाले नगरवासियों को देखकर बोले—'हे सज्जनो, आप सब लोग अयोध्या लौट जाइए और मेरी विजय की कामना करते रहिए। भरत की आज्ञा का अनुसरण करते हुए आप सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत कीजिए।' तब सब लोगों ने एक स्वर से कहा—'हे राम, आप का इस प्रकार कहना क्या आपको उचित है? जब आप वन-वास करने जा रहे हैं तब हमें भरत की क्या आवश्यकता है? नगर, भवन, वाहन, सौध, स्त्री आदि हमें क्यों चाहिए? आप जा रहे हैं, तो हम भी आपके साथ वन में चलेंगे। यदि आप हमें मना करेंगे, तो हम प्राण त्याग देंगे। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।' इस प्रकार सभी प्रजा राम के रथ के पीछे-पीछे चलने लगी।

इस प्रकार, चलते-चलते संध्या तक वे तमसा नदी के तट पर पहुँच गये। उन्होंने उस रात को वहीं ठहरने का निश्चय किया और संध्या समय की पूजा-वंदना आदि से निवृत्त हुए।

राज-प्रासाद में, राजकुमारों के लिए योग्य मृदु शय्या पर शयन करनेवाले मोहनाकार राम ने उस दिन, पेड़ के नीचे, पर्ण-शय्या पर सीता के साथ विश्राम किया। उनके चारों ओर उनकी प्रजा अपने स्त्री-पुत्रों और घर-बार को भूलकर राम के साथ वन जाने का दृढ़ निश्चय करके गाढ़निद्रा में लेट गई। उन्हें नगर लौटाने का कोई और उपाय न देखकर, राम ने अर्द्ध-रात्रि के समय सुमंत्र से प्रजा को भुलावा देकर वहाँ से चल देने की बात उन्हें समझाकर कहा कि रथ तैयार करके ले आओ। रथ के आते ही उन्होंने पहले उसे अयोध्या की तरफ थोड़ी दूर चलाया, फिर उसे लौटाकर तमसा नदी को पार

कराया और तृण तथा शिला-आवृत भूमि पर अत्यंत वेग से उसे चलाने का आदेश दिया। उनका गमन तथा महाराज के आदेश की कथा सुनकर मार्ग के ग्राम-वासी अत्यंत दुःखी हुए और धैर्य तजकर रुदन करने लगे। ऐसे कितने ही ग्रामवासियों का रुदन बार-बार सुनते हुए मार्ग के विविध वन-दृश्यों को सीता को दिखाते हुए, प्राचीन काल में सूर्य-वंश-मणि इक्ष्वाकु को मनु के द्वारा दी हुई भूमि का अवलोकन करते हुए अत्यंत शीघ्र गति से उन्होंने सरयू नदी[1] को पार किया और दूसरे दिन संध्या तक गंगा नदी के तट पर पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने एक इंगुदी-वृक्ष के नीचे बड़ी शान्ति के साथ विश्राम किया।

वहाँ, तमसा नदी के तट पर अयोध्या की प्रजा ने प्रभात के समय उठकर चारों ओर देखा, तो वे सम्भ्रमित तथा आश्चर्य-चकित रह गये। वहाँ न राम-लक्ष्मण थे, न रथ का कहीं पता था। उनके शोक की सीमा नहीं रही। रथ के पहियों के चिह्न देखकर उन्होंने सोचा कि कदाचित् महाराज की आज्ञा पाकर राम राज्य-भार को वहन करने अयोध्या लौट गये हैं। वे अयोध्या को लौट आये, किन्तु वहाँ भी राम को न देखकर वे शोकाग्नि में तपने लगे और कहने लगे—'हाय! राम हमें भुलावा देकर चले गये!' वे राम की दयालुता, उनकी सत्यनिष्ठा तथा सद्व्यवहार की प्रशंसा करते हुए उनके वियोग में दुःख का अनुभव करने लगे।

१८. गुह से राम की भेंट

निषादराज गुह को जब यह समाचार मिला कि राघव गंगा-तट पर ठहरे हुए हैं, तब वह राम-लक्ष्मण की सेवा में कंदमूल-फल आदि खाद्य पदार्थ, सुनहले वस्त्र तथा विविध उपहार लेकर आया और बड़ी भक्ति से उन्हें प्रणाम करके सब वस्तुओं को उनके चरणों में अर्पित करके कहा—'हे देव, क्या कारण है कि आप राज-पाट छोड़कर वनवास के लिए पधारे हैं? हे सूर्य-वंश-तिलक, मेरे जैसे सेवक के रहते हुए आपकी ऐसी दशा क्यों? जिस दुष्ट ने आपकी यह दशा कर दी है, उस नीच का मैं युद्ध में वध कर डालूँगा।'

उसकी सद्भक्ति, शक्ति तथा धीर वचनों को सुनकर राघव अत्यंत प्रसन्न हुए और उसे गले से लगाकर अपना सारा वृत्तांत कह सुनाया। सारी कथा सुनने के पश्चात् गुह मन-ही-मन चिंतित हुआ और कैकेयी की करतूत पर दुःख प्रकट करने लगा। उसने दशरथ की सरलता पर खेद प्रकट किया और दशरथात्मजों की दुर्दशा का विचार करके शोक-पीड़ित हुआ। राम अत्यंत स्नेहातुर हुए और आप तथा लक्ष्मण दोनों ने उचित रीति से गुह के दुःख का शमन किया।

इतने में सूर्यास्त हो गया। राजकुमारों ने संध्या-वंदन आदि से निवृत्त होकर गंगा-जल से अपनी क्षुधा शांत की। उसके पश्चात् राम, जानकी तथा लक्ष्मण तृण-शय्या पर विश्राम करने लगे। सूत (सुमंत्र) तथा शृंगवेरपुर का स्वामी गुह उनकी सेवा में लगे रहे।

---

१ सरयू नदी तो अयोध्या से उत्तर होकर बहती है और फिर बिहार में प्रवेश करती है। राम दक्षिण की ओर चले थे, उन्हें सरयू नदी कैसे मिलती? वाल्मीकि ने गंगा के निकट पहुँचने के पहले राम को वेदश्रुति और गोमती नदी को पार उतरवाया है।—सम्पादक

लक्ष्मण ने चौदह वर्ष तक अपने भाई की रक्षा में संलग्न रहने के उद्देश्य से दिन-रात कभी नहीं सोने की प्रतिज्ञा की और धनुष-बाण धारण किये अपने भाई की शय्या से थोडी दूर पर खडे हो गये। उस रात को निद्रा देवी स्त्री का रूप धारण करके आई और लक्ष्मण से बोली—'हे मानधनी, मैं निद्रादेवी हूँ। विधि के नियम का पालन तो मुझे करना ही होगा। आप मेरे लिए क्या व्यवस्था देते है, जिससे मैं आपको छोडकर चली जाऊँ ?'

तब लक्ष्मण बोले—'तुम दिन-रात ऊर्मिला पर हावी होकर रहो। अवधि पूरी करके मैं तुम्हें ग्रहण करूँगा।' उनका आदेश शिरोधार्य करके निद्रा चली गई और लक्ष्मण भी निद्रा देवी की कृपा प्राप्त करके संतुष्ट हो गये।

उसके पश्चात् लक्ष्मण ने सुकुमार यौवन-शोभा-संपन्न तथा धीरचेता राम एवं सीता के दुःख का वृत्तांत गुह को कह सुनाया और कहा—'हंस-तूलिका-तल्प (हंसों के परों से बनाई हुई कोमल गद्दी) पर शयन करनेवाले (भोगी) आज सुन्दर पत्थरों पर बिछी पल्लव-शय्या पर पत्थरों के चुभते रहने से परेशान होते हुए किसी तरह गाढ निद्रा में खर्राटे भर रहे हैं।' उसके पश्चात् उन्होंने गुह को माता कौसल्या और सुमित्रा के शोक का वृत्तांत सुनाया और दोनों अत्यंत शोकमग्न हो गये।

इतने में अरुणोदय हुआ। राघव ने निष्ठा से प्रातःकाल के सब विधि-विधान पूरा किये। उसके पश्चात् उन्होंने गुह के द्वारा वट का दूध मँगाया, लक्ष्मण तथा अपने कोमल तथा दीर्घ केश खोलकर उन्हें उस दूध से जहाँ-तहाँ भिगोकर उनकी जटाएँ बनाईं। वैदेही विवश तथा क्षुब्ध हो देखती रही। फिर अनुज के साथ राम ने बडी निष्ठा से वैखानस-वृत्ति (वानप्रस्थ की एक शाखा) ग्रहण की।

तत्पश्चात् राम ने सुमंत्र को पास बुलाकर कहा—'हे सुमंत्र अब हमें रथ पर चढना नहीं चाहिए। अत, तुम रथ को लेकर अयोध्या को लौट जाओ और राजा की सेवा में प्रवृत्त हो जाओ। महाराज को तथा माताओं को हमारे प्रणाम कहना। तब सौमित्र ने क्रोध से कहा—'अब भी ऐसी बातें क्यों ? (शांतिपूर्ण वचन क्यों ?) उनसे मेरी ओर से कहना कि अपनी स्त्री की प्रेरणा से उन्होंने नीति-भ्रष्ट होकर, किसी बात का विचार किये बिना ही हमारी ऐसी दशा कर दी। अब वे अपनी स्त्री तथा प्रिय पुत्र के साथ राज-भोग का अनुभव करें। अब तुम जा सकते हो।' लक्ष्मण की बातों से अप्रसन्न होकर राम ने कहा—'सौमित्र, तुम अपनी बातें बन्द करो।' और, सुमंत्र को संबोधित करके कहा—'तुम ये बातें राजा से मत कहना। यदि वे ये बातें सुनेंगे, तो और अधिक दुःख से पीडित होंगे।' तब सुमंत्र ने अत्यधिक शोक-संतप्त तथा अत्यंत भीत होकर कहा—'हे देव, आपको वन में छोडकर मैं दीन की तरह अयोध्या कैसे जाऊँ ? मैं प्रजा से यह समाचार कैसे कहूँ ? मैं यह रिक्त रथ किस मुँह से ले जाऊँ ? कौसल्या को मैं कैसे सांत्वना दूँ ? कैकेयी का मुँह मैं कैसे देखूँ ? नहीं, यह मुझसे नहीं हो सकता। मैं भी आपके साथ चलूँगा।'

तब राम हँसकर बोले—'हमने गंगा पार करके वन में प्रवेश किया है, यह समाचार तुम जब जाकर कैकेयी से कहोगे, तभी वे उसे सत्य मानेंगी। इसलिए तुम शोक न

करके लौट जाओ । मेरे बदले तुम राजा को बार-बार धैर्य देते हुए, उनकी सेवा करते रहना ।' तब अत्यत दीन होकर सुमत्र साकेत नगर के लिए रवाना हुए ।

१९. राम का गंगा पार करके वन में प्रवेश करना

राघव ने बडी भक्ति के साथ मन-ही-मन अयोध्या नगर को प्रणाम किया और गुह की लाई हुई नाव में बैठकर गगा पार करने लगे । बीच धारा में पहुँचने पर सीता ने गगा नदी को भक्ति के साथ हाथ जोडकर प्रणाम किया और अत्यत विनीत भाव मे प्रार्थना करने लगी—'हे माता गगे ! दशरथ नृप की आज्ञा से राज त्यागकर दुर्दशा को प्राप्त मेरे पति घोर कानन में चौदह वर्ष तक निवास करने जा रहे है । मै उनके साथ भ्रमण करती हुई (अवधि-समाप्ति पर) यदि राम-लक्ष्मण के साथ सकुशल लौट आऊँगी, तो आपकी सेवा में असख्य गायें, वस्त्र, मिष्टान्न आदि विविध चढावें समर्पित करूँगी और भूसुरो को दान दूँगी ।' इस प्रकार उन्होंने भव-भग (ससार के पापो का नाश करनेवाली) धवलाग (धवल शरीरवाली) भवमौलिसग (शिव के जटाजूट में निवास करनेवाली) गगा की प्रार्थना की ।

गगा नदी पार करने के पश्चात् राम ने गुह का आभार मानकर उसे विदा किया और उसके बताये हुए मार्ग से सीता को बीच में करके आगे-आगे लक्ष्मण तथा पीछे-पीछे स्वय चलने लगे । इस प्रकार तीन योजन का मार्ग तय करके सुधर्मद नामक सरोवर के निकट पहुँचकर उस दिन वहीं ठहर गये । उस भयकर कानन में अकेली सीता को सोती हुई देखकर, अपनी दशा, अपनी माताओ का शोक कैकेयी की इच्छा की पूर्त्ति, महाराज की सत्य-निष्ठा, प्रजा का दुख—इन सब के बारे में अपने अनुज से कहते हुए रामचन्द्र की आँखो से अश्रु बहने लगे ।

रात्रि व्यतीत हुई । प्रभात होते ही राघव वहाँ से रवाना हुए और तीन योजन चलकर पवित्र गगा तथा यमुना के सगम-स्थल पर प्रयाग पहुँचे । वहाँ निवास करनेवाले मुनिलोक-वद्य भरद्वाज मुनि को देखकर राम ने उन्हें प्रणाम किया और सारा समाचार उनसे निवेदन किया । उस तपोधन ने रघुवशज उन दोनो भाइयो को आशीर्वाद दिये, रघुराम की सुशीलता पर आश्चर्य प्रकट किया और तथ्य को जान गये । उन्होने कद-मूल-फल आदि से उन्हें सतुष्ट करके बडे प्रेम से उनका सत्कार किया । वहाँ उन्होने बडे आराम से रात बिताई और प्रातःकाल ही बडी निष्ठा से सध्योपासना करके मुनियो के आशीर्वाद प्राप्त किये । इसके पश्चात् पुण्यात्मा भरद्वाज से अनुपम चित्रकूट पर्वत का मार्ग जानकर वे वहाँ से विदा हुए । वन के बीच राम अपने धनुष की टकार-मात्र सुनकर भागनेवाले मृग-समूहो को सीता को दिखाते हुए उनका मनोरजन करते जाते थे । जब वे थक जाते या सीता थक जाती थी, तो थोडी देर के लिए ठहर जाते और फिर चल पडते । इस प्रकार कई दुगम स्थलो को पार करके वे यमुना के तट पर पहुँच गये । यमुना को पार करते ही उन्होंने सिद्ध-वटवृक्ष (अक्षय वट) को देखा । सीता ने बडी भक्ति से अपनी कार्यसिद्धि-हेतु हाथ जोडकर उस वृक्ष की प्रार्थना की । वे उस रात को वहीं ठहर गये। और, दूसरे दिन घोर जगलो में सुरक्षित मार्ग से होते हुए उन्होंने माल्यवती से घिरकर,

श्रेष्ठ संयमी मुनियों के निवास-स्थान से होते हुए सुगन्धित तरु-लताओं के समूह से भरे चित्रकूट को देखा। उस पर्वत पर निवास करनेवाले तपोधन मुनियों को देखकर उन्होंने प्रणाम किया और उनसे उचित आदर-सत्कार प्राप्त किया। फिर, उनकी आज्ञा प्राप्त करके राम और उनके अनुज दोनों ने एक स्थान पर बड़े उत्साह से पेड़ों की शाखाओं को काटकर अनोखी पर्णशाला बनाई। एक काले हिरन का वध करके गृह-शान्ति तथा हवन-आदि विधिवत् पूरा किये। उसके पश्चात् राम और सीता ने उस पर्णशाला की प्रशंसा करते हुए उसमें प्रवेश किया और मुनियों की प्रशंसा प्राप्त करते हुए उनकी चरित्र-चर्चाओं में आनंद लेते हुए वहाँ रहने लगे।

२०. काकासुर-वृत्तांत

एक दिन सीता की जाँघ पर सिर रखे राम सोये हुए थे। सीता भोजन के लिए कंद-मूल-फल आदि तैयार कर रही थीं। तब निर्भय गति से एक दुष्ट कौआ पर्णशाला में प्रवेश करके उसका नाश करने लगा। सीता ने उसे भगाने का प्रयत्न किया, फिर भी वह भागा नहीं। वह इधर-उधर देखकर अंत में सीता के स्तन पर बैठकर चोंच मारने लगा। जब रक्त की धारा बहने लगी, तब राम जाग पड़े। उस दुष्ट कौए की करतूत पर क्रुद्ध होकर राम ने उस पर एक बाण चलाया। उसने कौए का पीछा किया। कौआ काँव-काँव करता हुआ (उस बाण से बचने के लिए) तीनों लोकों का चक्कर काटने लगा। मगर कहीं कोई रक्षक नहीं मिला। उसने दिक्पाल, ब्रह्मा तथा शिव की शरण माँगी। किन्तु उन्होंने कहा—'यह श्रीराम का शर है। उसे हम रोक नहीं सकते।' तब वह कौआ फिर राम की शरण में आया। तब अत्यंत कृपा से उस कौए को देखकर राम ने कहा—'मेरा बाण कभी खाली नहीं जायगा। अतः तुम अपना कोई अंग उसे देकर अपनी जान बचाओ।' तब कौए ने बड़ी भक्ति से अपनी एक आँख उस अस्त्र को भेंट की और वहाँ से चला गया। तब राम ने देवताओं को सीता के तैयार किये हुए फल आदि का भोग चढ़ाया और उसके पश्चात् सब लोगों ने उन फलों को ग्रहण किया।

२१. सुमंत्र का अयोध्या पहुँचना

वहाँ सुमंत्र राम की गति-विधि जानने के लिए तीन दिन तक गुह के साथ रहे। फिर दूसरे दिन उन्होंने घोर दुःख से पीड़ित होते हुए अयोध्या नगर में प्रवेश किया। सहज श्री से हीन उस राज-मार्ग में जब वह जाने लगा, तब नगरवासी रथ की ध्वनि सुनकर यह कहते हुए सुमंत्र के पास आये कि देखो, रामभद्र आ गये हैं। किन्तु रथ में रघुराम को न देखकर वे सुमंत्र से कहने लगे—'हे क्रूरकर्मी, राम के बिना यह रिक्त रथ यहाँ क्यों लाये हो?' इस प्रकार लोगों की भीड़ एकत्रित होकर उनकी निंदा करने लगी। सुमंत्र उन्हें रामचन्द्र का वृत्तांत सुनाते हुए राजा के अंतःपुर के निकट आ पहुँचे। वहाँ रथ से उतरकर वे राजा के निवास की ओर गये। उन्होंने धूलि-धूसरित शरीर तथा अश्रु-पूरित नयनों से, मन-ही-मन कुढ़नेवाले राजा को अविरत दुःख से अभिभूत होकर कौसल्या के घर में पड़े और विलाप करते हुए देखा। उन्होंने राजा को प्रणाम

करके कहा—'हे राजन्, आपके पुत्र-रत्न सत्यनिष्ठ राम तथा लक्ष्मण, दोनो ने जटाएँ धारण किये, गगा को पार किया और पैदल चित्रकूट पर्वत की ओर चले गये है ।'

इन वचनो को सुनकर राजा अत्यधिक शोक करने लगे । उन्होने सुमत्र को अपने निकट बुलाकर अपने पुत्र का समाचार विस्तार-पूर्वक जान लिया और उसके पश्चात् बोले—'हे अनघ, सुमत्र, हे मतिमान्, तुम्हारे कारण मै अपने रामभद्र का कुशल-समाचार जान पाया । नेत्रो का दुख तथा मन का शोक दूर करनेवाले उसे (राम को) जी भरकर देखे बिना मेरे ये प्राण शरीर में रहते नही दीखते । तुम मुझे राम के पास ले चलो ।' तब सुमत्र बोले—'राजन्, यदि आप श्रीराम के पीछे जायेंगे, तो प्रजा को दुख होगा और कैकेयी आपकी निंदा करेंगी । अत यह आपके लिए उचित नही है ।' हे मानवेंद्र, आप इतना दुख मत कीजिए, धैर्य धारण कर धर्म का पालन करते हुए पुण्यवान् बनिए । समस्त दुख भूलकर बिना किसी अभाव का अनुभव किये आपके पुत्र कानन में सुख-पूर्वक रहते है ।'

इसके पश्चात् सुमत्र ने लक्ष्मण के वचन राजा को सुनाये, तो राजा अत्यधिक ग्लानि का अनुभव करते हुए बोले—'सौमित्र के वचन सत्य हैं । मै वैसा ही कामाध हूँ । क्रूर-कर्मी तथा पापी हूँ ।' इस प्रकार कहते हुए राजा ने सुमत्र को भेज दिया और स्वय मन-ही-मन कुढने लगे । उन्हें देखकर कौसल्या बोली—'हे राजन्, अब 'हे राम, हे राम, का आर्त्तनाद करते हुए चिंतित क्यो हो रहे है ? क्यो ऐसा स्वाग भरते है ? इस तरह शोक का अभिनय क्यो कर रहे है ? क्या मै सब बातें नही जानती ? लोक-निंदा के भय से आपने स्वय कैकेयी को सारी बातें सिखा दी थी । फिर अपने राम का राज-तिलक करके उसे समस्त पृथ्वी का पालन कराऊँगा, ऐसी घोषणा करके आपने उसे वन भेज दिया है । आप महादुष्ट है । आप का भी कोई धर्म है ? निंदा के भय से आपने मेरे पुत्र का राज-तिलक रोकने के लिए उसे वन भेज दिया है । निस्सकोच होकर यदि कैकेयी राम का वध करने के लिए भी कहे, तो आप उसका वध भी कर देंगे । बहुत समय तक सतानहीन होकर मै दुखी रहती थी । निदान कितने ही जप-तप और व्रतो के उपरात मैंने इस इकलौते पुत्र को प्राप्त किया था और इससे मेरा चित्त कुछ शात हुआ था । आपने मुझे शात रहने भी नही दिया ।'

इस प्रकार निंदा करनेवाली कौसल्या को देखकर राजा अपनी पूर्व-कथा उन्हें सुनाने का विचार करके बोले—'हे कौसल्ये ! तुम जो कुछ कह रही हो वह सत्य ही है । मै निश्चय ही पापकर्मी हूँ । अब बहुत समय तक मेरे शरीर में प्राण नही रहेंगे, इसलिए चिढा-चिढाकर मुझे मत मारो । मैने जो पाप-कर्म पहले किये थे, वे वैसे ही नही टलेंगे । देवताओ को भी अपने कर्म का फल अवश्य भोगना ही पडता है । मै अपनी एक कथा सुनाऊँगा । तुम उसे सुनो ।'

२२. दशरथ का कौसल्या को अपने शाप का वृत्तांत सुनाना

"यह मेरी युवावस्था की बात है । मै मारे राज्य पर शासन करता था । एक दिन अर्द्धरात्रि के समय मै मृगया की इच्छा से धनुष-बाण लिये सरयू नदी के किसी अनुपम

घाट के निकट झाड़ियों में छिपा बैठा था। विविध मृग-समूहों के पानी पीने का शब्द मुझे सुनाई पड़ने लगा। जैसे-जैसे शब्द सुनाई पड़ने लगा, वैसे-वैसे मैंने शब्दवेधी बाण चलाकर उनका वध कर डाला। मैं उससे संतुष्ट न होकर वहीं ताक में बैठा रहा। उस समय यज्ञदत्त नामक एक मुनि-पुत्र वहाँ आया और अपना जल-कलश पानी में डुबोया। कलश के डूबने से जो 'गटगट्' की ध्वनि सुनाई पड़ी, उसे सुनकर मुझे भ्रम हुआ कि वह कोई मत्त गज है। तुरन्त मैंने (शब्दवेधी) बाण चलाया। उस तीव्र शर के लगते ही—'हे पिता, हे माता, का आर्त्तनाद मेरे हृदय को चीरकर निकल गया। वह मुनि-पुत्र पृथ्वी पर गिरकर कहने लगा—'हाय, मैं वनों में कन्द-मूल-फल खाते हुए तपस्वी का जीवन व्यतीत करते, अपने माता-पिता की सेवा करता रहता हूँ। मैंने किसी का अहित नही चाहा। मुझे ऐसी घोर मृत्यु क्योंकर प्राप्त हुई? कोई पापी रात के समय, रति-केलि में प्रवृत्त मृगों का वध नहीं करता। कौन है वह मदांध, जिसने अर्द्ध-रात्रि के समय मुझपर बाण चलाया है। न जाने उसकी क्या दुर्गति होगी? अब मेरी मृत्यु को वह कैसे रोक सकेगा? हाय मेरे अंधे, दीन तथा वृद्ध माता-पिता इस पुत्र-शोक को कैसे सह सकेंगे? 'रात अधिक बीत गई है, अकेले गया हुआ है, उसके आने में इतना विलम्ब क्यों हो रहा है'—ऐसे सोचती हुई न जाने मेरी माता कितना दुःख करती रहेगी? मेरे पिता मेरे नहीं लौटने का समाचार मेरी माता से कहकर न जाने शंकाकुल मन से कितने व्याकुल होते होंगे? वे सोचते होंगे कि बाल-सुलभ-कौतुक में व्यस्त, हमारा पुत्र अभी तक लौटा नही है। या सोचते होंगे कि शायद जल लाने में असमर्थ होकर वह वहीं रह गया है। यदि वे मेरी मृत्यु का समाचार सुन लें, तो न जाने उनकी क्या दशा होगी? उन्हें कौन जल ले आकर देगा? उनकी रक्षा आगे कौन करेगा? हाय, इस एक शर से हम तीनो की मृत्यु एक साथ हो गई। विधि के क्रूर विधान को मैं क्या दोष दूँ?'

"उस मुनि-पुत्र का आर्त्तनाद सुनकर मैं अत्यत क्षोभ-युक्त हो, उस महापुरुष को देखने की तीव्र उत्कंठा लिये हुए अधकार के दूर होने की प्रतीक्षा करने लगा। इतने में उस वनधि (वन) में मेरी शोक-वनधि (शोक-समुद्र) उमड़ाते हुए चद्रोदय हुआ। तब मैंने सरयू नदी को पार किया और उत्तर की दिशा में ढूँढ़ने लगा। वहाँ मैंने एक स्थान पर मुनि-कुमार को अपने हाथ में जल-कलश को नीचे रखकर अपना कपोल कलश के मुँह पर टेककर पड़े हुए पाया। उसके वक्ष तथा पीठ से बहनेवाली रक्त-धाराओं से सारा शरीर भीग गया था। उसकी शिखा खुल गई थी और अत्यधिक पीडा से उसका मुख काति-हीन हो गया था। शर के भीतर प्रवेश करने से वह इस प्रकार पड़ा हुआ था, जैसे कोई योगी आत्मचिंतन में लीन हो और वह दैहिक व्यापारो को रोक, इद्रियो की गति का दमन करके अतिम योग-क्रिया में विस्मृत होकर पड़ा हो।

"उस सुदर आकृतिवाले मुनि-कुमार को तथा अपने बाण को देखकर मैं घबड़ा गया। तुरत मैंने नदी से जल लाकर उस मुनि-कुमार की आँखें पोछी तथा उसका सारा शरीर पोछ डाला और फिर कहने लगा—'हाय मुनिनाथ! प्रमादवश मेरे शर ने आपका वध कर डाला। इस नदी में जल के लिए आप क्यो आये? मै अब इस पाप से कैसे मुक्त होऊँगा?'

"इस प्रकार मैं अपना दुःख प्रकट कर रहा था कि मुनि-कुमार ने आँखें खोली। उसने अपनी ओर, फिर मेरी ओर देखा, और मेरे भय को देखकर कहा—'हे राजन्! आप क्या करेंगे? आप क्यों दुःखी होते हैं? मुझे मारने की शक्ति आपमें कहाँ है? दैवयोग से ही मेरी ऐसी गति हुई है। इसके लिए आप क्यों शोक करते हैं? आपने तो हाथी समझकर बाण चलाया था। जान-बूझकर तो नही चलाया। ब्रह्म-हत्या का दोष भी आपको नही लगेगा, क्योंकि मैं ब्राह्मण नही हूँ। मैं वैश्य-पिता और शूद्र-माता से उत्पन्न हुआ हूँ। मेरी मृत्यु देखकर आप विचलित मत होइए। आप मेरे माता-पिता को मेरी मृत्यु का सवाद न भी दें, तो भी वे योग-दृष्टि से सभी बातें जान लेंगे। तब यदि वे क्रुद्ध होकर आपको शाप देंगे, तो उससे रघुकुल का क्षय हो सकता है। हे राजेन्द्र, इस पहाड़ के निकट, पश्चिमी कोने में एक वटवृक्ष है। उसी वटवृक्ष के पास मैं एक काँवर में बिठाकर बड़ी श्रद्धा से उनकी सेवा-शुश्रूषा में लगा रहता हूँ। आज रात भी मैं उन्हें उस वृक्ष के कोटर में बिठाकर आया हूँ। आप शीघ्र इस कलश का जल लेकर वहाँ जाइए और उन्हें सावधानी से नीचे उतारकर निर्भय होकर उन्हें सारा वृत्तात सुनाइए। हे राजन्! इस अस्त्र के साथ मेरी मृत्यु अनुचित है। इसलिए धीरे-धीरे यह बाण निकाल दीजिए। शरीर की पीड़ा अब मुझसे सही नही जाती। मेरे प्राण अब नही रहेंगे।'

"मुनि कुमार के इन वचनो को सुनकर मैं धीरे-धीरे उनके निकट पहुँचा। अत्यधिक आत्म-ग्लानि से पीडित होते हुए मैंने उस शर को निकालने के लिए हाथ बढाया, किन्तु भय से मेरा हाथ रुक गया। फिर साहस बटोरकर काँपते तथा दुःखी होते हुए मैंने उस शर को निकाल दिया। उसी क्षण मुनिकुमार की मृत्यु हो गई।

"मन-ही-मन दुःखी होते हुए मैं जल-कलश लेकर मुनि के आश्रम में पहुँच गया और वहाँ अपने सुत की प्रतीक्षा करते हुए पर-कटे पक्षियो की तरह पड़े हुए वृद्ध तथा अधे पुण्यात्माओं को देखा। निकट सुनाई पडनेवाली आहट सुनकर मुनि कहने लगे—'हे पुत्र, इस प्रकार कही विलम्ब किया जाता है? मैं तुम्हारी माता के साथ यही सोच रहा था कि इतना विलब करने का क्या कारण है? क्या तुम एक ही स्थान में इतने समय तक ठहर सकते हो? तुमने कहाँ इतनी देर लगाई? तुम्ही तो हमारी आँखें हो। हम अत्यत वृद्धो के लिए तुम्ही आधार हो। हम गतिहीनो के लिए तुम्ही सद्गति हो। भला, तुम बोलते क्यो नही? मैंने तुम्हें कहा ही क्या है? हे पुत्र, मैं तो केवल जल माँग रहा हूँ।'

"मुनि के ये वचन मेरे मन के भय और शोक को बढाने लगे। मैंने शीघ्र वृक्ष पर चढकर काँवर नीचे उतारा और अत्यत दीन होकर थर-थर काँपते हुए, एक क्षण तक इस दुविधा में पड़ा रहा कि सारा समाचार कहूँ या न कहूँ। फिर यह सोचकर कि किसी भी तरह मुझे कहना ही पड़ेगा, मैंने गद्गद स्वर से कहा—'हे उत्तम तपस्वी, मैं राजा दशरथ हूँ। मैं आपका पालक हूँ, पुत्र नही हूँ। मैंने आज एक ऐसा नीच कर्म किया है, जिसे सुनकर नीच व्यक्ति भी मेरी निंदा करेंगे। किसी भी युग में किसी और ने जो पाप नही किया होगा, वैसा पाप करके मैं आज आपके पास आया हूँ। मैं कैसे कहूँ? विधि ने

ही मुझसे ऐसा दुस्साहस करने के लिए प्रेरित किया है । सरयू नदी के तट पर मैं अँधेरी निशा में मृगया के लिए गया था और मृगो के आने के स्थान के पास छिपकर उनकी आहट सुनकर उनपर शब्दवेधी बाण चलाकर उनका शिकार करता था । सयोग की बात, उसी समय आपके पुत्र ने नदी के प्रवाह में जल के लिए कलश डुबोया । उसकी ध्वनि सुनकर मुझे हाथी का भ्रम हुआ और मैंने बाण चला दिया । हे अनघ, मेरे उस शक्ति-शाली बाण ने आपके पुत्र के प्राण हर लिये ।'

"इतना सुनना था कि मुनि का हृदय धक् से रह गया और वे मूर्च्छित हो गये । मुनि-पत्नी 'हाय पुत्र !' कहकर भूमि पर निश्चेष्ट हो गिर पड़ी । थोड़ी देर के बाद मेरा विलाप सुनकर उनकी मूर्च्छा छूटी, तो उन्होंने मुझे देखकर कहा—'हे दशरथ ! तुमने हमको शोकाग्नि में जलाने के लिए हमारे पुत्र को कहाँ छिपा रखा है ? वन में तपस्या करते हुए हम अधे तथा वृद्ध को मारकर तुमने घोर पाप किया है । तुम्हारा बाण लगते ही न जाने हमारे पुत्र ने क्या कहा होगा ? कौन जाने कि उस हृदय-पीडा से उसके प्राण निकल गये या अभी तक वह तडप रहा है । क्या मृत्यु का कोई कारण नही होना चाहिए क्या बाण बिना कारण ही मुनि-पुत्र के प्राण हर सकता है ? वानप्रस्थ-आश्रम में जीवन व्यतीत करनेवालो का वध, चाहे इन्द्र भी करें, तो उसका भी नाश हो जाता है, तो राजा की क्या गिनती ? हे राजन्, तुमने अनजान में हमारे पुत्र का वध किया है, इसलिए तुम पर क्रोध करना उचित नही है । अपने पुत्र को देखे बिना हमारी शोकाग्नि शात नही होगी । हमें अपने पुत्र के पास ले चलो ।'

"इस प्रकार शोक-विह्वल उन वृद्ध तपस्वियो को ले जाकर उन्हें उनके पुत्र को दिखाकर मैंने कहा—'यही आपका पुत्र है । मुनि-पत्नी हाथो से टटोलते हुए कहने लगी, 'कहाँ है वह दयालु, उदार और विमलचेता ? कहाँ है वह तपोधन तथा पुण्यवान् ? कहाँ है वह विद्वानो की प्रशसा के योग्य आचरणवाला ? कहाँ है वह सतत वेदाध्ययन में तत्पर ?' यो कहती हुई वह अपने पुत्र पर गिरकर विलाप करने लगी । फिर उन्होने उसे अपनी गोद में लिटाकर उसके भीगे हुए केशो पर सिर रखकर रोती हुई कहने लगी—'हे विमलात्मा, हे यज्ञदत्त, हे सदाचरणवाले, हे धर्म-निपुण, तुम हमसे कहे बिना कभी कही नही जाते थे । आज तुमने ऐसा क्यो किया ? आज स्वर्गलोक की यात्रा के लिए जाते समय तुमने मुझसे क्यो नही कहा ? हे मेरे वश-तिलक ! मैं बडी पापिनी हूँ । अर्द्ध-रात्रि के समय मैंने तुमसे (जल के लिए) जाने को कहा । गुरुजनो की भक्ति में ससार में अद्वितीय पुत्र को मैंने खो दिया । मेरे लिए अब तपस्या किसलिए ? तुम्हारे साथ परलोक जाने में ही मेरी सद्गति है । कहाँ तीक्ष्ण बाण और कहाँ तुम्हारे प्राण ? कहाँ राजा दशरथ और कहाँ तुम ? हाय ! अन्त में तुम्हारे कर्म-फल ने इन सबका सयोग करके तुम्हारे प्राण ले लिये है ।'

"शोक-सतप्त माता के इस तरह के आर्त्तनाद को सुनकर मुनि अपने पुत्र पर गिरकर कहने लगे—'हाय पुत्र ! तुम तो मेरे पास आकर मेरी सेवा करते थे । आज मैं तुम्हारे पास आया हूँ, तो भी तुम मेरी सेवा-शुश्रूषा नही करते हो, क्या तुम्हें यह उचित है ?

इस बाण से जो घाव तुम्हें लगा, उसके द्वारा क्या तुम्हारा सारा निर्मल गुण-समूह निकल गया ? मैं अब किसे वेद पढ़ाऊँगा ? किसे अब शास्त्र समझाऊँगा ? किसे धर्म सुनाऊँगा ? काव्य किसे समझाऊँगा ? हमारी आवश्यकता पहचानकर हमें कौन फल तथा जल लाकर देगा ? मैंने सदा तुम्हें चिरायु रहने का ही तो आशीर्वाद दिया है ? कब मैंने वज्रसम शक्तिशाली बाण से तुम्हारी मृत्यु की कल्पना की थी ? हे पुत्र, तुम मुझे भी अपने साथ ले चलो, तो मैं यम से भी पुत्र-भिक्षा देने की प्रार्थना करूँगा । संसार की यही रीति है कि पुत्र अपने माता-पिता के परलोक-संबंधी क्रिया-कर्म करते हैं । आज विधि ने उस क्रम को उलट दिया और तुम्हारे क्रिया-कर्म करने के लिए हमें नियोजित किया । जबतक तुम रहे, तुमने बड़ी भक्ति से हमारी सेवा करके हमारी रक्षा की । हे पुण्यचरित्र ! मैं किस युग में तुम्हारे जैसा पुत्र प्राप्त करूँगा ? तुम पाप-रहित हो, श्रेष्ठ तपोनिधि हो, गुरुभक्त, परमार्थी, आर्य, धर्मनिष्ठ, दानी, पर-दुःखनिवारण करनेवाले, अन्न आदि महादान करनेवाले जो पुण्य लोक प्राप्त करते हैं, वही तुम भी प्राप्त करो ।'

"इस प्रकार शोक करते हुए उन्होंने अपने पुत्र का यथाविधि अग्नि-संस्कार किया । यज्ञदत्त ने देवताओं के विमान में आरूढ़ हो आकाश की ओर प्रस्थान करते हुए कहा—'हे गुरुजनो, मैंने स्वर्गलोक का भोग प्राप्त किया है आपकी सतत सेवा करते हुए पुण्यवान् हुआ हूँ । अब मेरी मृत्यु का आप शोक मत कीजिए । जिस समय जो होना चाहिए, वह हुए बिना नहीं रहता । होनहार होकर ही रहता है । आप इन पर (राजा पर) क्रोध न कीजिए ।' इस प्रकार कह उसके स्वर्गलोक चले जाने के बाद, उन्होंने पुत्र-प्रेमजन्य दुःख से प्रेरित होकर मुझे शाप दिया—'हे राजन् ! लो, हम पुत्र-शोक से मर रहे हैं, तुम भी हमारे समान ही पुत्र-शोक के कारण मृत्यु को प्राप्त करोगे ।' इस प्रकार, कहकर उन्होंने वहीं अपने प्राण छोड़ दिये ।"

२३. दशरथ का स्वर्गवास

'यही मेरा कर्म-फल है, जिसे भोगने का समय आसन्न है । अग्निसम पवित्र उन तपस्वियों का अग्नि-संस्कार करके मैं नगर में लौट आया । मेरा धैर्य छूट गया है । मेरी बुद्धि भ्रमित हो रही है, कंठ सूख रहा है, आँखें देखने में असमर्थ हो रही हैं, दूसरे के शब्द सुनाई नहीं पड़ रहे हैं, अब मेरे प्राण रोकने पर भी इस शरीर में नहीं रुकेंगे । मेरे लिए कल्पतरु, बुद्धिमान्, पराक्रमी, गुणवान्, मेरा भाग्य-प्रद, शुभ-गुण-संयुक्त राम को इस समय मैं नहीं देख पा रहा हूँ । आज सात दिन हुए, मैंने राम को नहीं देखा । राम को छोड़कर मैं कैसे रह सकता हूँ ?' इस प्रकार 'हा राम ! हा राम !' का आर्त्तनाद करते हुए दशरथ का स्वर्गवास हो गया ।

शोक से अत्यधिक पीड़ित होकर राजा सो गये हैं, ऐसा सोचकर कौसल्या भी सो गई । प्रभात होते ही वंदी तथा मागध स्तुति-पाठ करने लगे, मंगल-वाद्य बजने लगे और नगर-निवासी एकत्रित होकर राजा के दर्शनार्थ उत्कंठा से प्रतीक्षा करने लगे । प्रतिदिन की तरह राजा अबतक जगे क्यों नहीं, यह सोचते हुए परिचारक राजा की शय्या के निकट गये और राजा को सोई हुई दशा में देख उन्हें कुछ भय हुआ । लंबी साँस भरते हुए

उन्होने राजा के हाथ-पैर छूकर देखे । उन्हें अब ज्ञात हो गया कि राजा के शरीर में प्राण नही है । तब वे रुदन करने लगे । कौशल्या हड़बड़ाकर उठी, सुमित्रा भी जागकर आई । उन दोनो ने राजा को देखा और ऊँचे स्वर में विलाप करने लगी—'हाय प्राणनाथ, हाय महाराज ! आप हमें छोड़कर चले गये ।' यह विलाप सुनकर कैकेयी दौड़ी हुई आई । दोनो ने सर पीटते हुए कैकेयी को देखकर कहा—'हाय कैकेयी ! आज तुम्हारी इच्छाएँ पूरी हुई । तुमने काकुत्स्थ-वंश का सर्वनाश किया । राम को वन में भेजकर अपयश का सहन करते हुए तुमने दशरथ के प्राण ले लिये । आज से तुम अपने पुत्र के साथ समस्त पृथ्वी का उपभोग करो ।'

इस प्रकार, कौसल्या आदि रानियाँ कैकेयी को घेरकर रोने-कलपने लगी । वह सर झुकाये अत्यधिक शोक से अपने पति के शरीर पर गिरकर कई प्रकार से विलाप करने लगी । कौसल्या की चेतना जब लौट आई, तब उन्होने कहा—'हे राजन् ! क्या आप जैसे धर्मात्मा की ऐसी मृत्यु होनी चाहिए ? आपके आदेश का उल्लंघन न करके मैं धोखा खा गई । आपकी सत्यनिष्ठा ने आपकी यह दशा कर दी । अत्यंत क्रूर स्त्री कैकेयी को देखकर और राम के वनवास के दुःख से अभिभूत होकर मैं आपकी उचित परिचर्या न कर सकी । आपकी इच्छा का पालन करते हुए वन में निवास करके राघव महायश का भागी बना । सत्य का पालन करके आपने स्वर्ग-सुख को प्राप्त किया । अब मुझे केवल आप जैसे उत्तम पति को कटुवचन सुनाने का पाप मिला ।'

इस प्रकार, कौसल्या को विलाप करते देख सुमित्रा आदि रानियाँ ऊँचे स्वर में रुदन करने लगी । बात-की-बात में यह समाचार सारे नगर में फैल गया । स्त्रियो के विलाप से सारा आकाश गूँजने लगा । सूर्योदय के होते ही अत्यंत भीत हो राजा के मित्र, जागीरदार, सामंत-राजा, वसिष्ठ आदि मुनि, ब्राह्मण तथा नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति, आकर शोक व्यक्त करने लगे । वसिष्ठ मुनि मंत्रियों के परामर्श के पश्चात् महाराज दशरथ के शरीर को तेल में डुबोकर मणिमय सिंहासन पर उसे बैठा दिया, मानो वे दरबार में बैठे हुए हो । उसके पश्चात् उन्होने सामंत राजाओ को तथा मंत्री और राजनीतिज्ञो को संबोधित करते हुए कहा—'महाराज साम्राज्य का पालन करके सुरधाम चले गये । पिता का वचन पालन करने के लिए राम अपनी स्त्री के साथ वन-वास करने गये । उससे पूर्व ही शत्रुघ्न के साथ भरत अपने मामा के नगर गये हैं । यदि हम रामचन्द्र को बुला भेजें, तो वे नही आयेंगे । वे अपने प्रण के पालन में पटु हैं । इसलिए हमें राजकाज को सँभालने के लिए भरत को शीघ्र बुलाना चाहिए । राजा के बिना कोई भी देश, नगर या राष्ट्र शोभा नही देता । दण्डनीति, दान-धर्म आदि की व्यवस्था बिगड़ जायगी । शत्रु प्रबल हो जायेंगे । जार-चोर आदि की वृद्धि होगी । दुर्जन सज्जनो को दुःख देने लगेंगे । सामंत, दुर्ग-रक्षक आदि कर नही देंगे ।'

ऐसा निश्चय करके उन्होने धीमान्, जयन्त आदि चार मंत्रियो को बुलाकर कहा—'तुम लोग भिन्न-भिन्न वस्त्राभरण लिये हुए वज्रपुर जाओ और भरत को यहाँ की घटनाओ का पता दिये बिना सिर्फ इतना कहो, कि, गुरु, वसिष्ठ ने आपको लिवा लाने के लिए हमें

भेजा है । तुम उन्हें अपने साथ अवश्य लिवा लाना, शीघ्र जाओ । वे मत्री घोडो पर सवार हो रथ की गति से चलते हुए विभिन्न नगरो, जनपदो, नदियो, काननो, पहाडो तथा झाडियो को पार करते हुए केकयराज के नगर में जा पहुँचे । दशरथ की मृत्यु के सातवें दिन रात को वहाँ उन्होने (भरत और शत्रुघ्न) स्वप्न में देखा कि उनके पिता गोबर तथा कीचड से भरे विशाल गढे में गिर पडे है । समुद्र सूख गया है, चन्द्र पृथ्वी पर गिर गया है; भद्रगज का एक दाँत टूट गया है । ऐसे दुस्वप्न देखकर वे जाग पडे और अत्यत भीत होकर अपने इष्ट-मित्रो को स्वप्न का वृत्तात सुनाकर, उसका फल जानना चाहा । इसी समय अयोध्या के दूत वहाँ पहुँचे और भरत को प्रणाम करके साथ लाई हुई भेंट उन्हें देकर अत्यत विनीत भाव से बोले—'हे देव, किसी कार्यवश वसिष्ठजी ने आपको शीघ्र लिवा लाने के लिए हमें भेजा है । अत आप शीघ्र प्रस्थान कीजिए ।'

दूतो के कृत्रिम हाव-भाव देखकर वे और भी भीत हो गए । उन्होने अपने मामा से सारा वृत्तात कह सुनाया और सादर उनकी आज्ञा प्राप्त करके रथ पर आरूढ हो, मत्री तथा चतुरगिणी सेना के साथ चल पडे । अत्यत वेग से यात्रा करते हुए वे सात दिनो में अयोध्या पहुँच गये ।

२४. भरत का अयोध्या में प्रवेश

अयोध्या में प्रवेश करते ही उन्होने देखा कि सारा नगर पतिहीना पत्नी के समान तथा चन्द्रहीन रात्रि के समान श्रीहीन होकर उजडा हुआ दीख रहा है । यह ढग देखकर वे मन-ही-मन व्याकुल होकर सोचने लगे कि आज सारा नगर शून्य-सा लग रहा है । नगर-निवासी मुझे देखकर आँखो से आँसू बहा रहे है । मुझसे कतराते हुए जा रहे है । क्या कारण है कि दूकानो में कोई भी चीज सजाकर नही रखी गई है ? यो सोचते हुए अतपुर के फाटक पर वे रथ से उतर गये और आप और शत्रुघ्न शून्य-से दीखनेवाले अतपुर में पहुँचे । उनको देखते ही कैकेयी बडे प्रेम से उनके सामने आई और उन्हें हृदय से लगा लिया । तब उन्होने बडी भक्ति से उनको प्रणाम किया और अपने मामा की दी हुई भेंट उन्हें देकर उनका कुशल-समाचार कह सुनाया । उसके उपरात भरत ने माता से पूछा—'हे माता, यह कैसा आश्चर्य है कि सारा अतपुर वैभवहीन होकर शून्य-सा लग रहा है । राम-लक्ष्मण और महाराज सकुशल तो है ?' तब बहुत चिंतित होती हुई कैकेयी ने भरत के सभ्रम को बढाती हुई मद हास के साथ कहा—'हे वत्स, किसी दिन तुम्हारे पिताजी ने बडे प्रेम से मुझे दो वर दिये थे । मैंने एक वर से भरत का राज-तिलक और दूसरे वर से राम के वनवास की प्रार्थना की । पिता की आज्ञा के अनुसार राम, जानकी-लक्ष्मण-समेत वन-वास के लिए चला गया । पुत्र के वियोग से महाराज स्वर्ग सिधारे । ईर्ष्यावश मैंने तुम्हारे लिए यह व्यवस्था कर ली । अब राज्य सँभालो, प्रजा का पालन करो, ऐश्वर्य प्राप्त करो और अपने बाहुबल से राज्य की रक्षा करो । इसके विपरीत कुछ मत कहो ।'

इन बातो को सुनते ही भरत मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडे । थोडी देर के बाद सँभलकर उन्होने अत्यत क्रोध से कैकेयी को देखकर कहा—"हे माता ! मेरी माता

होती हुई तुम निर्दयता से ऐसा कठोर आचरण कैसे कर सकी ? राम को मुनि-वेष में वनवास की आज्ञा तुम कैसे दे सकी ? निर्मल धर्माचरण करनेवाले रघुवंशियो की रीति तुम्हें क्या मालूम नही है ? मै अपने पिता की मृत्यु पर कैसे शोक कर सकता हूँ ? कौन-सा मुँह लेकर राम को देख सकता हूँ ? हाय ! न जाने मन-ही-मन राम कितने व्याकुल हुए होगे ? न जाने लक्ष्मण को कितना क्रोध आया होगा ? वन के लिए जाते समय सीता ने न जाने मुझे कितने अपशब्द कहे होगे ? कौन जाने, माता कौसल्या की क्या दशा हुई ? माता सुमित्रा तथा अन्य रानियाँ न जाने कितनी दुखी होती होगी ? इनके सामने विलाप करने के लिए मै कहाँ योग्य रहा ? मै उनके मन की व्यथा दूर कैसे कर सकूँगा ? मुझे अब यह नगर किसलिए ? मुझे राजभोग किसलिए ? निश्चय, वन ही अब मेरे लिए शरण है। घोर पापिनी तुम्हारी माता ने एक राक्षस से तुम्हें जन्म दिया होगा। तुम महाराज केकय से उत्पन्न पुत्री नही हो। अब मैं तुमसे क्या कहूँ ?" इन सब बातो को आड में खडी छिपकर सुननेवाली मथरा को देखकर लोगों ने कहा--'इसीने इतने सारे पाप कराये' यह सुनते ही शत्रुघ्न ने उस वृद्ध स्त्री की टाँग पकडकर एकदम उसे उठाया और बडे जोर से उसे घुमाकर इस तरह नीचे फेंक दिया कि उसकी कूबड जाती रही, केश बिखर गये और सभी भूषण तितर-बितर होकर गिर पडे। सभी स्त्रियाँ देखती रह गई। कैकेयी आदि अन्य रानियाँ भागने लगी। कैकेयी का वध करने के लिए शत्रुघ्न को जाते हुए देख भरत ने कहा—'इस पापिन को मारकर हम पाप क्यो कमायें ? रामचन्द्रजी सुनेंगे, तो मातृहता कहकर हमसे घृणा करेंगे। इसलिए तुम यह काम मत करो।'

२५ भरत का कौसल्या के घर जाना

वहाँ से निकलकर भरत अनुज के साथ कौसल्या के यहाँ गये और उनके चरणो में सर नवाकर शोक-सतप्त हृदय से दोनो भाई उच्च स्वर से विलाप करने लगे। तब भरत को देखकर कौसल्या बडे क्रोध से इस प्रकार बोलने लगी—'पति को खोकर, सुत से अलग रहते हुए अत्यत दुख से पीडित मै रोती हूँ, तो वह स्वाभाविक ही है। तुम क्यो रो रहे हो ? तुमने जैसा चाहा, तुम्हारी माता ने कर दिया। हे वत्स, अब तुम राज्य सँभालो। यह सुनकर अत्यत भीत हो, हाथ जोडे कौसल्या के पीछे चलते हुए भरत कहने लगे—'माताजी—यदि मैंने मन, वचन तथा कर्म मे श्रीराम का अहित किया हो या पृथ्वी का पालन करना चाहा हो, कैकेयी के मन की इच्छा मुझे मालूम रही हो, एक भी अहित मैंने सोचा हो, तो मै उस पापी की गति प्राप्त करूँ, जिसने मद्य पिया हो, निर्धन ब्राह्मण का वध किया हो, गुरु-पत्नी से व्यभिचार किया हो, युद्ध में अपजय प्राप्त की हो, दुष्टता से सोना चुराया हो, गाय की हत्या की हो, न्याय-रहित होकर राज्य-पालन किया हो, बराबर चुगली खाई हो, शरणार्थी को शरण नही दी हो, माता-पिता को अपशब्द कहे हो, श्रेष्ठ धर्म को बेचा हो, स्वामी से द्रोह किया हो, गुरुजनो को अपशब्द कहे हों, सतत पापी होकर असत्य कहा हो, दूसरो के धन की इच्छा की हो और पर-स्त्री गमन किया हो। मै रामचन्द्रजी का अहित क्यो करूँगा ? मैं कहाँ और ये नीच कर्म कहाँ ?' इस प्रकार विलाप करनेवाले भरत के शोक का आधिक्य समझकर कौसल्या आत्म-ग्लानि का

धर्मों का पतन हो जायगा, शत्रु प्रवल होगे और वर्णसंकर पैदा होगे । राज्य को राजा-रहित नही रहना चाहिए । तुम विमलमतिमान् हो, तुम राज्य का भार सँभालो ।'

मुनि के उपदेश सुनकर भरत ने हाथ जोडकर कहा—'हे मुनिनाथ, क्या मै इतना मूर्ख हूँ कि अपने कुल की रीति न जानूँ ? मेरी माता ने मेरे अग्रज को वन भेजकर मेरे पिता के प्राण ले लिये है । क्या यह (दड) मेरे लिए पर्याप्त नही है ? क्या अब राज्य करने की बात भी मै सोचूँ ? आप आगे कुछ मत कहिए । मै कैकेयी का पुत्र हूँ, इसीलिए तो आप मुझसे ऐसी बातें कहते है । अन्यथा आप मेरे सबध में ऐसे विचार मन में नही लाते । मै तुरंत अपने भाई राम के पास जाऊँगा । उनसे प्रार्थना करके उन्हे लौटा लाऊँगा और उनका राज-तिलक कराऊँगा । यदि मै ऐसा नही कर सका, तो जैसे मेरे भाई ने मुनि-वृत्ति ग्रहण की, वैसे मै भी मुनि-वृत्ति लूँगा । इसके सिवा मेरे लिए और कोई मार्ग नही है ।'

२६. भरत का राम के पास जाना

इस प्रकार निश्चय करके भरत ने मत्रियो को देखकर कहा—'हमें अपने बडे भाई के दर्शनार्थ जाना है । मार्गो को ठीक करो और सभी नगरवासियो को मार्ग में जहाँ-तहाँ ठहरने के लिए उचित व्यवस्था करके आवश्यक वस्तुओ का सग्रह करो ।' मत्रियो ने उनकी आज्ञा का पालन किया । दूसरे दिन वदी-मागध, मत्री, सुकुमार नर्तकी, नट, नौ सहस्र हाथी, एक लाख अश्व, साठ सहस्र रथ और असख्य पदचर सेना, सभी नगरवासी तथा धन एव रत्नराशियो को साथ लिये वसिष्ठ आदि मुनि, राजा, मत्री और प्रतिष्ठित जनो के सग, भरत, शत्रुघ्न तथा उनकी माताएँ विविध वाहनो पर सवार होकर चले । इस प्रकार, चलकर सब गगातट पर पहुँचे और वहाँ पडाव डाला । अत्यत बाहुबली गुह को यह मालूम हुआ कि कैकेयी-पुत्र सेना के साथ राम पर आक्रमण करने के लिए जा रहे है, तो वह अत्यत क्रुद्ध हुआ और अपने दल-बल-सहित भरत के पास पहुँचकर बोला—'हे भरत, जब रामचन्द्र आपको अपना सारा राज्य देकर वन में रहते है, तब क्या आपको यह उचित है कि आप अपनी सेना के साथ उनपर आक्रमण करने चलें ? मै राम का सेवक हूँ । मै आपको जाने नही दूँगा । मै आपकी सेना का सहार कर डालूँगा । आपसे युद्ध करते हुए मै मर जाऊँगा । तभी आप राम पर आक्रमण कर सकेंगे ।'

गुह के इन रोषपूर्ण वचनो को सुनकर भरत विमल मन से हँसते हुए बोले—'हे गुह, मै परमात्मा रामचन्द्र से प्रार्थना करके उन्हें अयोध्या लौटाकर उनका राज-तिलक सपन्न कराने के उद्देश्य से ही उनकी सेवा में जा रहा हूँ । तुम अपने मन में अन्यथा समझकर ऐसे वचन मत कहो ।' इस प्रकार कहकर भरत ने गुह को हृदय से लगाया और उसके मन की राम-भक्ति समझ गये । गुह ने भरत के चरणो पर मस्तक नवाकर अनुपम वन-वस्तुओ की भेंट की । फिर वह भरत को उस स्थल पर ले गया, जहाँ पहले राम गगातट पर ठहरे थे । भरत ने अपना पडाव वही डाल दिया । उसके पश्चात् गुह उन्हें उस स्थल पर ले गया, जहाँ राम ने जटाएँ धारण की थी । उस स्थल को देखकर सभी नगरवासी, मुनि, मत्री तथा भरत अत्यत दुखी हुए । तब भरत ने अत्यत दीन होकर बट का दूध मँगवाकर अपने भाई शत्रुघ्न के साथ जटाएँ धारण कर ली ।

दूसरे दिन नित्यकर्मों से निवृत्त होकर भरत ने गुह के द्वारा मँगाई गई पाँच सौ विशाल नावों में चढ़कर माताओं, मुनियों, मन्त्रियों तथा सेना के साथ गंगा नदी पार की। वहाँ से गुह को साथ लिये हुए, उसके बताये मार्ग पर चलते हुए भरद्वाज के उस आश्रम के पास पहुँचे, जहाँ से निकलनेवाले यज्ञ-धूम से सारा आकाश व्याप्त होकर बादलों का भ्रम उत्पन्न कर रहा था तथा जिन्हें देखकर मोर अपने पंखों को फैलाकर आनंदोन्मत्त हो नाच रहे थे। उनके पंखों के समूह से सारा आश्रम-स्थल ऐसा दीख रहा था, मानो विचित्र रत्न-तोरणों से सारा आश्रम अलंकृत किया गया हो।

२७. भरत का भरद्वाज के आश्रम में पहुँचना

भरत ने अपनी सारी सेना आश्रम से बहुत दूर पर ठहराकर आप स्वयं उस पुण्यात्मा भरद्वाज मुनि के दर्शनार्थ गये और मुनि को देखकर प्रणाम किया। भरद्वाज बड़े रुष्ट होकर बोले—'हे भरत, जब राम-राघव वन में निवास कर रहे हैं, तब तुम अपनी चतुरंगिणी सेना लेकर उनपर आक्रमण करने क्यों जा रहे हो?' मुनि का क्रोध समझकर भरत भय तथा विनय के साथ बोले—'हे मुनीश्वर, मैं तो रामचन्द्रजी से राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना करने जा रहा हूँ। दूसरे किसी उद्देश्य से नहीं। आप अन्यथा न समझें।'

भरत की बातों से हर्षित होकर भरद्वाज बोले—'हे अनघ, तुम अपनी समस्त सेना के साथ आज हमारे आश्रम में ठहरकर हमारा सत्कार स्वीकार करो।' इसके पश्चात् मुनि ने विश्वकर्मा को बुलाकर कहा—'तुम तुरंत एक सुंदर नगर का निर्माण करो, जिसमें सभी लोगों के लिए उनकी योग्यता के अनुसार निवास रहे।' विश्वकर्मा ने तुरंत पाँच योजन विस्तार में एक विशाल नगर बनाया, जो भूमि-देवता के चरण के आभूषण-सा विराज रहा था। उसमें एक स्वर्णमय राजभवन भी था। उस भवन में श्वेत छत्र-संपन्न सिंहासन रखा हुआ था और एक रमणीय सभा-भवन भी था। मुनि की आज्ञा से भरत ने उस राजभवन में प्रवेश किया। वहाँ सिंहासन को देखकर भरत ने उसे राम का सिंहासन कहकर उसका नमस्कार किया और उसके निकट ही एक पीठ पर आसीन हुए। मुनि की आज्ञा से किन्नर, गंधर्व तथा खेचर रमणियों ने भरत के सामने आकर नृत्य-गान किया। इस प्रकार, मुनि की आज्ञा से सभी निवासों में नृत्य-गीत आदि, पृथ्वी पर जितने मनोरंजन हो सकते थे, वे सब वहाँ संपन्न हुए। (अयोध्या की) प्रजा ने स्नान आदि से निवृत्त होकर स्वच्छ वस्त्र पहने, मंदार-पुष्प-मालाएँ पहनी, चंदन का लेप किया और विविध आभूषण पहने। इसके पश्चात् कामधेनु द्वारा प्रस्तुत किये गये चार प्रकार के भोजन ग्रहण करके परितृप्त हुए। तब सुरांगनाओं के साथ रति-क्रीडाओं में मग्न होते हुए वे अपने जन्म को सफल मानने लगे। इस प्रकार, मुनि का आश्रम स्वर्ग का भी तिरस्कार करता हुआ-सा दीखने लगा।

भरत तथा उनकी सेना ने मुनि भरद्वाज की प्रशंसा करते हुए रात वहीं बिताई। प्रातःकाल होते ही उन्होंने देखा कि वहाँ न कोई नगर था, न भवन, न सुरांगनाएँ। भरत के आश्चर्य की सीमा न रही। वे श्रेष्ठ तपस्वी भरद्वाज के सम्मुख जाकर बोले—

'हे महात्मा, आपके तपोवल की महिमा की प्रशसा करना ब्रह्मा के लिए भी कठिन है । अब हम सूर्यवश-तिलक रघुराम की सेवा में जायेंगे । हमें आज्ञा दें ।' यो कहकर भरत ने अपनी माताओ से मुनि को प्रणाम करवाया । मुनि बोले—'ये कौन-कौन हैं ? अलग-अलग इनका परिचय मुझे दो ।' तब भरत ने कहा—'हे महात्मा, ये राजा की ज्येष्ठ रानी सफलजन्मा कौसल्या हैं, जिन्होने सब लोगो में कीर्त्ति तथा प्रशसा पाई है । राम को पुत्र-रूप में प्राप्त कर अपनी कोख को सफल बनाया है; पर उनके (राम के) वियोग की अग्नि में तप्त हो रही हैं । ये लक्ष्मण को जन्म देनेवाली पुण्यशीला सुमित्रा हैं, जो कौसल्या के बायें हाथ की तरह रहती हैं । पुष्प-रहित कर्णिकार की शाखा के समान अलंकारहीना होकर राम के वियोग-दुख से दुखी हैं । ये हतपुण्या मेरी माता कैकेयी हैं, जिनके कारण मेरे अग्रज बनवास के लिए गये हैं, जिनके कारण मेरे पिता का देहात हुआ और जिनकी इच्छा ने मेरी ऐसी दुर्गति कर दी है ।' इतना कहकर उमडते हुए शोक मे विह्वल तथा गद्गद हो वे चुप हो रहे । मुनि ने उन्हें सात्वना देते हुए आगे के कार्य का विचार करके कहा—'कैकेयी ने लोकहित किया है । यह तुम लोगो को आगे स्पष्ट होगा ।' इतना कहकर उन्होने भरत को राम के निवास-स्थान का मार्ग बताया और उन्हें आशीर्वाद देकर विदा किया ।

भरत ने अत्यत श्रद्धा से युक्त हो सेना के साथ चित्रकूट पर्वत की ओर प्रस्थान किया । हाथियो के चिंघाड़ने, अश्वो के हिनहिनाने, सेना के वार्त्तालाप करने, तथा रथों के चलने से जो विपुल रव होता था, उससे भीत होकर जगली मृग चारो दिशाओ में भागने लगे। विशाल सेना के चलने से उठी हुई धूलि से आवृत होकर सूर्यमडल भी मलिन दीखने लगा ।

वहाँ चित्रकूट में कुटिल-कुतला सीता के साथ राम बडे आनद से वार्त्तालाप कर रहे थे । सीता का ध्यान पर्वत की शोभा की ओर आकृष्ट करते हुए वे कह रहे थे—'हे बिंबाधरवाली, देखा तुमने पर्वत की शोभा, हमारे नेत्रो को कितना अपूर्व आनद पहुँचा रही है । इस पर्वत की महिमा का वर्णन करना क्या शेषनाग के लिए भी सभव है ? निर्झरो की घन गंभीर ध्वनियो को मेघ-गर्जन समझकर अत्यत आनद से तुम्हारे केशो की समता रखनेवाले अपनी पखो को फैलाकर नाचनेवाले उन मयूरो को देखो । क्या, इन भीलनियो को तुमने देखा, जो अपने कुच-कुभो को गज-कुभों की समता प्रदान करने के लिए, गजो के कुभस्थल को चीरकर उसमें से निकले हुए मणियो को धारण कर रखा है । देवताओ का सकेत-स्थान होने के कारण इस घाटी में दिव्य सुगधि फैल रही है । वहाँ देखो, वह गधर्वो का क्रीड़ा-स्थल उनके पदतलो के महावर-वर्ण से प्रकाशमान दीख रहा है । हे किन्नर-कठवाली, यह गिरि-गुफा देखो, जो किन्नर-किन्नरियों के संगीत से मुखरित है । हे कोकिलकठी, इस सहकार-वृक्ष को देखो, जो कोयल की कलध्वनि तथा पल्लवो से युक्त है । हे कोमलांगी, मलयानिल विभिन्न प्रकार के फूलो की सुगधि को एकत्रित करते हुए मंद-मंद गति से चलकर हम पर अपना प्रभाव डाल रहा है । वहाँ उस मंदाकिनी को देखो, जो लाल तथा सफेद कमलो के समूह से अलकृत है, जिसके कूल

पर तमाल, रसाल, कपिला, ताल, हिंताल, लसोडा आदि वृक्ष सुशोभित है, जिसके पवित्र तट पर मुनियो का समूह विराज रहा है और जिसका प्रवाह हसो के मद गमन से हिल-मिल रहा है ।' इस प्रकार कहते हुए वे विभिन्न प्रकार के वृक्षो के नीचे, लता-कुजो, पर्वत के शिखरो पर, तराइयो में तथा गुफाओ में अत्यन्त प्रसन्नता से विचरण कर रहे थे ।

इसी समय उन्होने भरत की सेना का कोलाहल सुना । भयभीत होकर चारो ओर भागनेवाले हाथी, वराह आदि मृगो को तथा उडती हुई अत्यधिक धूल को देखा । तब उन्होने लक्ष्मण से कहा कि तुम पता लगाओ कि इस प्रकार धूल क्यो उड रही है ? लक्ष्मण ने तुरत एक ऊँचे वृक्ष के शिखर पर चढकर देखा कि उत्तर की दिशा से सूर्यवश के चिह्नो से युक्त पताकाएँ फहराती हुई एक विशाल सेना आ रही है । उन्होने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि भरत राम पर आक्रमण करने के लिए आ रहे है । पर्वत पर वज्रपात होने के समान तुरत वे पेड से उतर पडे और दौडते हुए राम के पास पहुँचकर अत्यधिक रोष से बोले—'हे देव, आपको वन भेजकर समस्त राज्य को हस्तगत करने से तृप्त न होकर, आज कैकेयी का पुत्र सारी सेना लेकर आप पर आक्रमण करने आ रहा है। वह देखिए, कचनार (जैसी लाल) ध्वजाएँ ! वह सुनिए सैनिको के वीर-वचन ! आप शर, चाप तथा कवच धारण करके भरत का सामना कीजिए । नही, नही, आप और सीता यहाँ से हट जाइए । आपकी सज्जनता ने ही इतना (अनर्थ) किया है । मै अब सहन नही करूँगा । यदि भरत यहाँ आया, तो मै उसका वध कर डालूँगा ।'

राम बोले—'हे लक्ष्मण, मेरा अनुज होकर जन्म लेने पर भी तुम ऐसे अविनीत क्यों हो रहे हो ! भ्रातृ-प्रेम की मूर्ति, परम पवित्र, नीति-कोविद तथा धर्म-तत्पर भरत, तुमसे भी अधिक मेरा भक्त है । भरत के मन में कोई पाप नही है । मुझसे अयोध्या लौट चलने की प्रार्थना करने के लिए वह आ रहा है । तुम शका छोड दो । राम के आदेश का उल्लघन न कर सकने के कारण लक्ष्मण चुप हो रहे ।

२८. भरत की राम से भेंट

भरत ने नगरवासियो मित्रो, तथा सेना को एक जगह ठहरा दिया, माताओ के साथ आने के लिए वसिष्ठ मुनि से प्रार्थना करके, स्वय शत्रुघ्न, सुमत्र और गुह के साथ उस पर्वत पर चढने लगे । जगल में मार्ग को पहचानने के लिए लक्ष्मण ने जो सकेत बना रखे थे, उन्हें पहचानते हुए, चारो ओर दृष्टि डालते हुए (उन्होने) समस्त शस्त्रास्त्र-समूह से युक्त, विशाल आँगनवाली सुदर पर्णशाला को देखा । वहाँ पर मुनि-वेष धारण किये हुए अत्यत हर्ष से विलसित होनेवाले राम को देखकर भरत मन-ही-मन अत्यत दुखी हुए और शत्रुघ्न से कहने लगे—'हे शत्रुघ्न, देखा तुमने ? स्वर्ण-सौधो में रहनेवाले राम आज एक पर्णशाला में निवास कर रहे है । पुष्प-शय्या पर विराजनेवाले आज धूलि-युक्त पर्णशाला में रह रहे हैं। मुकुट धारण करनेवाले, प्रेम से जटाएँ धारण किये हुए है । राजाओ की सेवाएँ प्राप्त करते हुए रहनेवाले आज मृगो के मध्य रहते है । दिव्य वस्त्र धारण करनेवाले आज मुनियो के वल्कल पहने हुए है । सुस्वादु भोजन करनेवाले, आज कच्चे फलो पर दिन व्यतीत कर रहे है । हाय, शुभप्रद मूर्तिवाले राम आज इस

प्रकार का दुख का अनुभव कर रहे हैं। कैकेयी के पापी गर्भ से जन्म लेने के कारण ही मुझे उनकी यह दुर्दशा देखनी पड रही है।'

इसके पश्चात् उन दोनो ने (राम के निकट पहुँचकर) उनको प्रणाम किया। राम ने उन्हें गले से लगा लिया और नेत्रो से आनदाश्रु बहाते हुए बडे स्नेह के साथ उनकी पीठों पर हाथ फेरा और उन्हें आशीर्वाद दिये। तब सुमत्र तथा गुह ने उस सूर्यवशी को बडी भक्ति के साथ प्रणाम किया। भरत तथा शत्रुघ्न ने तब जानकी तथा लक्ष्मण को प्रणाम किया। उसके पश्चात् उन्हें कुशासन पर बैठने का आदेश देकर राघव बार-बार पिता तथा माता का कुशल समाचार पूछते हुए बोले—"हे भरत, तुम क्यो इतनी दूर चलकर आये? राजा की आज्ञा से राज्य-भार ग्रहण करके नीति के साथ राज-काज चला रहे हो न? सत्यनिष्ठ महाराज दशरथ की सेवा नित्य प्रति करते हो न? माताओं को सात्वना देते हुए बडे आदर के साथ उनकी देखभाल करते हो न? हमारे कुलगुरु तपोनिष्ठ वसिष्ठ की पूजा करके सध्या के समय अग्निहोत्र की विधि का नियमपूर्वक पालन करते हो न? सज्जन मत्रियो का परामर्श लेकर विजय-साधक मार्ग को समझ रहे हो न? प्रतिदिन रात्रि के पिछले पहर में जागकर तुम अर्थ-सिद्धि का चितन करते हो न? उत्तम, मध्यम और अधम, जनो का विचार करके उनकी योग्यता के अनुसार उन्हें काम में लगाते हो न? अपराध का विचार करके अपने लोगो के सबध में भी न्यायदड का पालन ठीक तरह से करते हो न? मतिमान्, लोकप्रिय, स्वामिभक्त तथा पराक्रमी को तुमने अपना सेनापति बनाया है कि नही? सेवको के वेतन बिना विलब के उन्हें देते हो न? दूतों के द्वारा राज्य का समाचार तथा शत्रुओं की गति-विधि का ज्ञान रखते हो न? गर्व त्यागकर दीन तथा निर्धन व्यक्तियों की पुकार सुनते हो न? वर्णाश्रम-धर्म में किसी प्रकार का व्यतिक्रम लाये बिना आवश्यक व्यवस्था करते हो न? चोरो और जारो की बढती को रोककर उन्हें कारावास में रखकर उचित दड देते हो न? समय-समय पर चतुरगिणी सेना की पटुता का निरीक्षण करते हो कि नही? दुर्गों को धन-धान्य तथा सेना से युक्त रखते हुए उनका बल बढाते रहते हो न? अन्याय से (पर) धन-सचय न करके, किसानो की प्रेम से साथ रक्षा करते हो न? धन-लोभ में पडकर विप्रो की जागीरो का किंचित् भाग भी अपहरण नही करते हो न? सतत गो-ब्राह्मणो के हित की कामना करते हुए धर्म-निष्ठा में तत्पर रहते हो कि नही? जो राजा (इच्छा, क्रिया, ज्ञान) शक्तित्रय का, चार उपायो (साम, दाम, भेद, दड), पचागो, षड्गुणो तथा राजा के चौदह दोषो का ज्ञान रखते हुए, दयालु होते हुए, मनु-धर्मशास्त्र के अनुसार देवताओं, पितरो तथा ब्राह्मणो की पूजा करते हुए अपना जीवन व्यतीत करता है, वही स्वर्ग प्राप्त करता है। तुम भी उसी प्रकार राज्य करते हो न?"

२९. भरत का राम को दशरथ की मृत्यु का समाचार देना

तब भरत गद्गद कठ से हाथ जोडकर बोले—'हे राजकुलाधीश, मैं यह धर्म-मार्ग कुछ नही जानता। हे धर्मनिपुण, और एक समाचार सुनिए। कैकेयी ने निर्दयतापूर्वक आपको बुला भेजा और आपको वन जाने का आदेश दिया। आप बिना विलब किये

यहाँ चले आये। आपके दुख में तडपते हुए सातवें दिन महाराज दशरथ ने अपने प्राण छोड दिये। मैं पितृ-कर्मो को पूरा करके आपके दर्शनार्थ यहाँ आया हूँ।'

यह समाचार राम को वज्र के समान लगा, और वे तुरत मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडे। सीता तथा लक्ष्मण भी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर गये। थोडी देर के पश्चात् राम कुछ सँभले और बार-बार विलाप करने लगे। तब उन्हें देखकर भरत ने कहा—'हे देव, धीर होते हुए भी जड के समान इस प्रकार विलाप करना आपको शोभा नही देता। आप, लक्ष्मण तथा सीता महाराज की परलोक-क्रिया विधिवत् पूरा कीजिए। यही उचित है।'

तब राम मदाकिनी नदी के तट पर पहुँचकर, स्नान आदि से निवृत्त होकर बडी निष्ठा से अपने पिता की तिलोदक-क्रिया की, पिंड-दान किया और अत्यधिक शोकाकुल चित्त से पर्णशाला में लौट आये। उस समय वसिष्ठ, कौसल्या आदि अवरोध-जन (रनवास की स्त्रियाँ), नगरवासी, नातेदार, सुशील मत्री आदि के साथ पर्णशाला में पहुँच गये। शोकाग्नि से सतप्त होनेवाले राम, सीता तथा लक्ष्मण के साथ उनके चरणो में गिरे और रोने लगे। यह देखकर वे सब भी रोने लगे। तब वसिष्ठ ने सात्वना के शब्दो से उन्हें शांत किया।

तब वनवास के कारण विवर्ण दीखनेवाली सीता को देखकर कौसल्या मन-ही-मन विधि को कोसती हुई अत्यत दुखी होने लगी। उसी समय उस पर्वत पर रहनेवाली किन्नर, यक्ष, गरुड, उरग तथा अमर-कामिनियाँ वहाँ आ पहुँची और कौसल्या से कहने लगी—'राम की पत्नी, दशरथ की बहू, महाराज जनक की पुत्री (यहाँ) विविध सकटो का अनुभव कर रही है। विधि-विधान के लिए कोई बात असभव नही है।'

उसके पश्चात् राम ने सीता के साथ अनघ वसिष्ठ के चरणो की वदना की, मुनियो माताओ, नातेदारो, मित्रो तथा मत्रियो को कुशासनो पर बिठाया और आप भी कुशासन पर बैठ गये। तब भरत की वेश-भूषा देखकर राम बोले—'हे वत्स, तुम जटाएँ तथा वल्कल क्यो धारण किये हुए हो? राजा की आज्ञा का पालन करते हुए तुम शीघ्र जाकर राज्य-भार ग्रहण करो।' इन वचनो को सुनकर भरत ने राम के मुख-कमल को देखते हुए हाथ जोड़कर कहा—'हे देव, हे राघव, कैकेयी ने असहनशीला हो, आपके महत्त्व से अनभिज्ञ हो, आपको वन जाने का आदेश देकर महान् पाप किया, तो क्या आपको यह उचित था कि आप तुरत यहाँ चले आये? आपके वियोग से दुखी हो, महाराज दशरथ भी स्वर्ग सिधारे। मेरी माता ने ऐसे घोर पाप किये है। क्या इसके कारण वे नरक-कूप में नही गिरेंगी? राज्य आपका है। मै उसे सँभालने में असमर्थ हूँ। आज ही आप अयोध्या को लौट चलिए और शुद्ध मन से राज्य-भार ग्रहण कीजिए। पति को खोकर अत्यधिक शोक से पीडित होनेवाली माताओ को सात्वना दीजिए। मित्रो, मंत्रियो, बधुओ तथा प्रजा-जन पर कृपा दृष्टि रखते हुए उनको अपनाइए। हे दयामय, मैं आपका दास हूँ, मुझे अपनाकर मेरी विनती को स्वीकार कीजिए।' इस प्रकार कहते हुए भरत राम के चरणो पर गिर पडे।

राम अपने भाई को उठाकर हृदय से लगाते हुए बोले—"हे भरत, यह कैसी बात है कि तुम बालकों की तरह धर्म-मार्ग को छोड़ने की सलाह दे रहे हो ? माता कैकेयी को अपशब्द क्यों कह रहे हो ? अब तुम स्वयं पिता की मृत्यु के लिए क्यों दुःख कर रहे हो ? मिट्टी, मिट्टी में मिल गई है। ऋणानुबंध (पूर्वजन्म का ऋण) रूप में पुत्र, मित्र, कलत्र प्राप्त होते तथा बिछुड़ते रहते हैं। मनुष्य के लिए पृथ्वी पर जन्म लेते ही मृत्यु निश्चित है। यह जानकर जो नर अपने कुलोचित धर्म के मार्ग में प्रवृत्त रहता है, वह परम भव्य होता है। हमारे पिता ने सत्यनिष्ठा से नीतिनय-संपन्न होकर महान् यज्ञ-दान आदि कितने ही सत्कार्य किये, राजभोग का प्रचुर अनुभव किया, हम जैसे पुत्रों का मुँह जी भरकर देखा, और तब वे प्रजा की प्रशंसा प्राप्त करते हुए स्वर्ग सिधारे हैं। उनके लिए शोक करना उचित नहीं है। उनके आदेश को ठुकराना ठीक नहीं है। पितृ-वचन का पालन करना पुत्र का प्रिय धर्म होना चाहिए। जो पुत्र ऐसा करता है, वही विख्यात होता है। पिताजी ने मुझे चौदह वर्ष तक वन में रहने तथा तुम्हें राजसुख का भोग करने का आदेश दिया है। अतः, हम वैसे ही रहें। इसके विरुद्ध तुम और कुछ भी न कहो।"

तबतक सूर्यास्त हो चला था। रात्रि अत्यंत प्रीति से कटी। दूसरे दिन प्रातःकाल ही संध्या आदि से निवृत्त होकर रघुराम कुशासन पर विराजमान हुए। वसिष्ठ आदि मुनि तथा अन्य मंत्री चारों ओर बैठे। सभा में भरत उठे और हाथ जोड़कर बोले—"हे देव, आपकी आज्ञा को शिरोधारण कर पिता के वचन के अनुसार सारा राज्य-भार मैंने ग्रहण कर लिया है। मैं अपना वह राज्य आपको दे रहा हूँ। अब आप और कुछ न कहें। समस्त पृथ्वी का भार अपने सिर पर धारण करने की क्षमता आदिशेष को हो सकती है, किन्तु जल-सर्प का बच्चा उसे कैसे वहन कर सकता है ? मैं वैसा ही एक बालक हूँ। इतनी विशाल पृथ्वी का भार कहाँ और मैं कहाँ ? क्या सत्पुरुषों की रक्षा का भार मैं सँभाल सकता हूँ ? बालारुण से सुशोभित होनेवाले उदयाचल पर जुगनू का प्रकाश जैसा दिखाई देगा, आप श्रीनिधि के सिंहासन पर मेरा बैठना भी वैसा ही दिखाई देगा। इसलिए, आप मुनि-वेश को त्यागकर अयोध्या लौट चलिए और अपने शील से राज्य करते हुए सारी प्रजा की इच्छा पूर्ण कीजिए। आप इसके विरुद्ध कुछ मत कहिए। यदि आप इसे स्वीकार नहीं करेंगे, तो मैं आपके सम्मुख ही प्राण-त्याग कर दूँगा या सौमित्र की तरह आपकी सेवा करते हुए यहीं रह जाऊँगा।" इस प्रकार कहते हुए भरत दर्भासन पर (प्राण त्याग करने को) लौट गये।

राघव ने अपने अनुज को उठाकर कहा—"भरत, यह कैसी बात है ? ऐसा कहना क्या तुम्हारे लिए उचित है ? अपने पिताजी की आज्ञा का विचार तुम बिलकुल करना नहीं चाहते हो ? महाराज दशरथ के साथ तुम्हारी माता का विवाह करते समय तुम्हारे नाना ने महाराज से यह वचन माँगा था कि आप मेरी पुत्री द्वारा उत्पन्न संतान को ही राजा बनायेंगे। राजा के वचन देने पर ही विवाह संपन्न हुआ था। उस वचन को दृष्टि में रखकर ही कैकेयी ने देवासुर-युद्ध में राजा के द्वारा दिये गये वरों को माँगा। तुम्हें

पृथ्वी और मुझे वनवास देनेवाले राजा ने अपनी सत्यनिष्ठा की रक्षा करने के लिए ही ऐसी व्यवस्था दी है । इससे उनकी कीर्ति शाश्वत हो गई । इसलिए हम भी महाराज की आज्ञा का पालन करते हुए महान् यश को प्राप्त करें । सभी पिता इसीलिए पुत्र प्राप्त करते हैं कि वह गया की यात्रा करे, कन्यादान करे और वृषभ छोड़े । पुन्नाम नरक से (पितरों की) रक्षा करनेवाला होने से ही वह पुत्र कहलाता है । यदि मैं ही अपने पिता के वचन का पालन नहीं करूँगा, तो इस पृथ्वी पर पिता के आदेश का पालन कौन करेगा ? 'यथा राजा तथा प्रजा' वाली उक्ति के अनुसार प्रजा भी हमारे समान ही आचरण करेगी । मैंने जो व्रत लिया है, उसको पूरा करके लौटूँगा । तुम हठ का त्याग करो । मेरी बातें मानो और मेरे कथन के अनुसार राजा बनो । अब तुम नगर को लौट जाओ ।"

तब सभा में उपस्थित मुनि, सुर तथा ब्राह्मणों ने (मन-ही-मन) निश्चय कर लिया कि अब युद्ध में रावण की मृत्यु निश्चित है । ऐसा सोचकर उन्होंने भरत से कहा— 'हे उज्ज्वल धर्म-निरत भरत, तुम राम के आदेश का पालन करो ।'

३०. श्रीराम को जाबालि का उपदेश

तब मुनि जाबालि ने राम को देखकर कहा—'यह तुम्हारा कैसा व्यर्थ विचार है ? तुमने मुनि-वेश धारण किये, नृप-वेश छोड़ दिया, राजभोग त्याग दिया और नियमों का पालन करते हुए इस ढंग से जीवन व्यतीत करते हो ? कहाँ के माँ-बाप और कहाँ के पुत्र ? कहाँ का सत्य और कहाँ का पुत्र-धर्म ? यह सब मिथ्या है । माता-पिता अपने सुख के लिए आपस में मिलते हैं । शुक्र तथा रक्त के संयोग से मनुष्य का जन्म होता है । पिता केवल बीज का दान देता है । बहुत क्यों, बुझे हुए दीप में तेल देना जितना निरर्थक है, वेद-विधि से परलोक-क्रियाएँ करना भी उतना ही निरर्थक है । इसलिए मेरी बात मानकर तुम अयोध्या लौट जाओ और राज्य ग्रहण करो ।'

जाबालि के इन वचनों को सुनकर रघुवीर ने क्रोध में आकर कहा—'हे मुनींद्र, ऐसे नास्तिकतापूर्ण विचार आप किसी दूसरे को समझावें । हमारे लिए वही आचरणीय है जिसे हमारे पूर्वजों ने किया है । सब धर्म सत्य के आधार पर निर्भर है । सत्य से बढ़कर दूसरा धर्म और क्या हो सकता है ? ऐसे सत्य का पालन करने के लिए मेरे पिताजी ने मुझे वन में भेजा है । यदि उनके आदेश का तिरस्कार करूँ तो मुझसे बढ़कर नीच और कौन हो सकता है ? ज्ञानियों का कहना है कि सत्य, धर्म, शम, दम, भूत-दया, नीति, विक्रम, प्रिय वचन तथा देव-पितृ-पूजन स्वर्ग के साधन हैं । इन सब को मिथ्या घोषित करनेवाले आप अग्रजन्मा कैसे कहला सकते हैं ? आपको क्यों दोष दूँ ? आप जैसे नास्तिक का आदर करनेवाले मेरे पिता ही दोषी थे ।

राम के वचनों को सुनकर जाबालि ने बड़े स्नेह से कहा—'हे राजन्, मैंने आपको नास्तिक मानकर ऐसा विचार इसलिए प्रकट किया है, कि आप किसी प्रकार भी अयोध्या लौट चलिए । इसलिए आप धैर्य धारण करें ।'

३१. पादुका-दान

तब संयमी वसिष्ठ ने इक्ष्वाकु से सूर्यवंश तक के सभी राजाओं की चर्चा

करते हुए कहा—'हे अनघ, तुम्हारे वश में ऐसा कभी नही हुआ कि अग्रज के रहते हुए अनुज राजा बने। पूर्वजो की परपरा के अनुसार तुम्हारा राज्य ग्रहण करना ही उचित है। किन्तु पिता के आदेश का उल्लघन न करने का तुम्हारा दृढ सकल्प है, तो जैसे भरत प्रेम से तुम्हारी सेवा करता रहा है, वैसे वह तुम्हारी पादुकाओ की पूजा करते हुए शाति से रह सकेगा। अत, तुम अपनी पादुकाएँ उसे प्रदान करो।'

तब माता, मित्र, आश्रित, मत्री, प्रजा आदि सबने कहा—'हे राम, ऐसा करना ही उचित है।' तुरत भरत ने स्वर्ण-विलसित पादुकाएँ राम के सामने रख दीं। तब राम ने उत्फुल्ल अरुण कमल के गर्भ के वैभव को भी परास्त करनेवाले मुनि-वधू के शाप का मोचन करनेवाले, श्रुति-शिरोभाग पर विलसित होनेवाले, सतत सनकादि मुनिजनो के विवाद के कारणभूत, अपने चरण उन पादुकाओ पर रखकर उन्हें भरत को दे दिया। उन दोनो को सिर पर धारण किये हुए भरत राघव से बोले—'हे देव, नृप-वेश त्याग करके, मुनि-वेश धारण किये हुए, राज्य का भार इन पादुकाओ पर रखकर, मैं चौदह वर्ष तक राज्य की रक्षा करूँगा। आपके चरणो की सौगंध खाकर कहता हूँ कि यदि अवधि के समाप्त होते ही आप अयोध्या नही लौटेंगे, तो मैं अग्नि में प्रवेश करूँगा।' यो कहकर उन्होने अत्यत भक्ति से अपने अग्रज को प्रणाम किया। राम ने उन्हें हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया। उसके पश्चात् उन्होने अपनी माताओ को सात्वना दी और पुण्यात्मा मुनि-पुगवो, मित्रो, मत्रियो, बधु-बाधवो तथा सभी प्रजा को बडे प्रेम से विदा किया। अत्यधिक उमडते हुए शोकाकुल हृदय से भरत ने पादुकाओ की परिक्रमा की, उन्हें भद्रगज पर प्रतिष्ठित किया और आप तथा शत्रुघ्न छत्र-चामर लिये हुए उसके पार्श्व में खडे हो गये। सब लोग वहाँ से रवाना हुए। भद्रगज के चारो ओर सेना चलने लगी।

भरत इस प्रकार चित्रकूट से चलकर भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचे। वहाँ उन्होने भरद्वाज मुनि को प्रणाम करके सारा वृत्तात उन्हें कह सुनाया। उनकी आज्ञा लेकर आगे चले और गगा नदी पार करके श्रृगवेरपुर पहुँचे। बडे आदर से वहाँ गुह को विदा करके, वे अयोध्या नगर पहुँच गये। रनवास में माताओ को छोडकर उन्होने अत.पुर की रक्षा के लिए सेना रख दी। मणि-रहित रत्न-मजूषा की तरह तथा सूर्य-रहित दिन की तरह रामचन्द्र-रहित शून्य अयोध्या को देखकर उन्हें उस नगर में रहने की किंचित् भी इच्छा नही रह गई थी। इसलिए वे नदीग्राम में जाकर निवास करने लगे। रघुराम की पादुकाओ पर समस्त राज्य-भार रखे हुए, राम के समान ही उनकी सतत सेवा करते हुए, वल्कल तथा जटाएँ धारण किये हुए, राघव के पुनरागमन की कामना करते हुए और उनके सद्गुणो की प्रशसा करते हुए सरस सज्जन मत्रियो के परामर्श से भरत राज-काज सँभालने लगे।

यह अयोध्याकाड समस्त लोक में विख्यात होते हुए विद्वज्जनो की प्रशसा का पात्र बन जाय। आध्र-भाषा के अधीश्वर, विमलचेता, आचारवान्, अनुपम धीमान्, भूलोकनिधि गोनबुद्ध राजा ने, कमनीय गुण तथा धैर्य में मेरुपर्वत, शत्रु के लिए भैरव-रूप, महात्मा, अपने पिता विट्ठल-नरेश के नाम पर आचद्रार्क ससार में पूज्य रहने योग्य रीति से, असमान भाव तथा ललित शब्दार्थो से युक्त रामायण के अयोध्या-कांड की रचना की।

ऋषि-आदिकाव्य और रसिकजनो के लिए आनददायक होकर पृथ्वी पर विलसित इस पुण्य-चरित्र को जो पढते है, या सुनते है, उन्हें साम आदि बहुवेदो का धाम, रामनाम-रूपी चितामणि की महिमा से समस्त भोग, परहित बुद्धि, उदार विचार, परिपूर्ण शक्ति, साम्राज्य, विमल यश, नित्य सुख, धर्मनिष्ठा, दान में प्रेम, चिरायु, ऐश्वर्य तथा स्वास्थ्य, अक्षय कल्याण, पापो का क्षय, श्रेष्ठ पुत्रो की प्राप्ति, शत्रु-नाश और धन-धान्य-समृद्धि आदि प्राप्त होगे । उन्हें विना किसी विघ्न-बाधा के लावण्यवती स्त्रियो का प्रेम तथा पुत्रो के साथ जीवन प्राप्त होगा । उनके सब सकट दूर होगे । नातेदारो से उनका प्रेमपूर्ण मिलन होता रहेगा और उनकी सब कामनाएँ पूर्ण होगी । उनके गृहो में देवता तथा पितृ-देवताओ की तृप्ति होती रहेगी । यह (रामायण) मोक्षसाधक है, पापनाशक है, दिव्य है, भव्य है, श्रीकर है । इसके रचयिता की श्रेष्ठ तथा शुभ उन्नति होगी और वे इद्र-भोगादि को प्राप्त करेंगे । जवतक कुल-पर्वत, नक्षत्र, रवि, चन्द्र तथा दिशाएँ रहेंगी, जवतक वेद रहेंगे, पृथ्वी तथा समस्त लोक रहेंगे, तवतक यह कथा अक्षय आनद-समूह को देने में समर्थ होगी ।

: अयोध्याकांड समाप्त :

श्रीरंगनाथ रामायण

(अरण्यकांड)

१. चित्रकूट से प्रस्थान

चित्र-विचित्र वस्तुओ के आगार 'चित्रकूट' में निवास करते हुए और मुनियो की प्रशंसा प्राप्त करते हुए राम ने भरत के आगमन की बात सोचकर निश्चय किया कि अब मुझे यहाँ निवास नही करना चाहिए। वे सोचने लगे कि अगर मै यहाँ रहूँ, तो अयोध्या-वासी यहाँ पर अक्सर आते रहेंगे। अब भी गज, रथ तथा अश्वो के आने से वन का बहुत-सा भाग नष्ट हो गया है। इसके अतिरिक्त परम संयमी मुनि मुझसे अनुरोध कर रहे है कि मै खर-दूषण आदि राक्षस-समूह के अत्याचार दूर करूँ। (इसलिए मेरा यहाँ से चला जाना आवश्यक है।)

इस प्रकार सोचकर दूसरे दिन उन्होने चित्रकूट के मुनियो की आज्ञा प्राप्त की और वहाँ से चलकर अत्रि मुनि के आश्रम में पहुँच गये। मुनि ने अपने शिष्यो के साथ बड़े स्नेह से राम की अगवानी की और उन्हें आश्रम में ले जाकर कई प्रकार से उनका आदर-सत्कार किया। मुनि-पत्नी अनसूया ने बडे प्रेम से सीता का आतिथ्य किया। उन्होने सीता को पातिव्रत्य-धर्म का उपदेश किया, अपने सगे-सबधियो को छोड़कर पति के साथ वन में रहने के उनके निश्चय की प्रशसा की। इसके पश्चात् अनसूया ने सीता को विभिन्न प्रकार के अगराग, कभी न मुरझानेवाले फूल और कभी मैले न होनेवाले वस्त्र दिये।

फिर उन्होंने सीता से कहा—'हे रमणी, तुम मुझे यह बताओ कि स्वयंवर में राघव ने तुम्हें कैसे प्राप्त किया ।' तब (सीता) अपने पति की ओर देखकर व्रीड़ा से अभिभूत हुई और मंद-मंद मुस्कुराती हुई बोली—'हे माता, सुनिए । मिथिला के अधिपति जनक के, यज्ञ-शाला के लिए भूमि जोतते समय मेरा जन्म हुआ । इस कारण मेरा नाम सीता पड़ा। संतानहीन होने के कारण राजा ने बड़े स्नेह से मेरा पालन-पोषण किया । युवावस्था को प्राप्त होनेवाली मुझे देखकर उन्होंने सोच-विचारकर घोषित किया कि हमारे घर में स्थित शिव-धनुष का जो संधान करेगा, उसी के साथ मैं इस कन्या-रत्न का विवाह करूँगा । इस समाचार के पाते ही अनेक राजा वहाँ आये, किन्तु वे शिव-धनुष को उठाकर उसका संधान न कर सकने के कारण वापस चले गये । कुछ दिनों के पश्चात् विश्वामित्र की सेवा करने के उपरान्त राघव वहाँ आये । उन्होंने शिव-धनु को इस प्रकार तोड़ दिया, जैसे हाथी ईख को तोड़ डालता है । तब उन्होंने मेरा पाणि-ग्रहण किया ।'

इस प्रकार सीता के अपने विवाह का वृत्तांत सुनाने पर अनसूया हर्षित हुई । तब तक रवि पश्चिम समुद्र में डूबने लगा । राम ने संध्या आदि नित्य-कर्मों को पूरा किया और अत्रि का सत्कार ग्रहण किया तथा उनकी सत्संगति में रात वहीं बिताई ।

२. राम का दण्डक-वन की यात्रा करना

दूसरे दिन प्रातःकाल ही संध्या आदि कर्मों से निवृत्त हो अत्रि की आज्ञा लेकर राम ने उस दण्डक-वन में प्रवेश किया, जो सरल ताल, तमाल, साल, कपिला, कुरवक, अगरु, कुटज आदि वृक्षों से भरा हुआ था, जो सूर्य के समान तेजस्वी मुनियों का निवास-स्थान था और जो गैंड़ा, सिंह, हाथी, नीलगाय जैसे मृगों तथा 'गंड भेरुण्ड' (दो सिरों-वाला एक पक्षी) जैसे पक्षियों से पूर्ण था । ऐसे वन में प्रवेश करके वेद-घोष से प्रति-ध्वनित होनेवाली तथा हवनकुंडों से पवित्र पर्णशालाओं में पवन, जल तथा सूखे पत्तों का आहार करते हुए तपश्चर्या में लीन मुनियों के निवासों तथा तपस्वियों के आश्रमों के दर्शन करते हुए, राम अपने अनुज के साथ मुनियों का आतिथ्य ग्रहण करते हुए यात्रा करते रहे ।

३. विराध का वध

इस प्रकार उस दण्डक-वन में जाते समय, पर्वत के समान आकार, भयंकर आँखें, बड़ा मुँह और नासिका तथा दीर्घकाय विराध नामक भयंकर राक्षस, अपने अट्टहास से सारे आकाश को कँपाते हुए और वन को चीरते हुए आया और अपनी बलिष्ठ तथा पैनी चोंच तथा बाहुओं से कुंचित केशोंवाली सीता को इस प्रकार आकाश की ओर उड़ा ले गया, जैसे गरुड़ पक्षी सँपोले को उड़ा ले जाता है । फिर, जानकी की दशा देखकर दुःखी होनेवाले राम तथा लक्ष्मण को संबोधित करके उसने कहा—'अरे रे, तुम्हारा कितना साहस है कि तुम वीरों की तरह निर्भय होकर धनुष-बाण धारण किये इस वन में विचर रहे हो, जिसमें मैं रहता हूँ । आखिर तुम्हारा भुजबल कितना है ? मेरी माता शतह्रदा है और मेरे पिता जय है । किसी भी आयुध से न मरने का वर मैंने पहले ही ब्रह्मा से प्राप्त किया है ।

मैं ब्राह्मणों को खानेवाला हूँ । मेरा नाम विराध है । मैं क्रोध में आता हूँ, तो इन्द्र आदि देवताओं को भी निगल जाता हूँ; फिर मनुष्यों की क्या बात ? अब तुम्हारा कुशल इसी में है कि इस रमणी को मुझे सौंपकर, तुम यह वन छोडकर चले जाओ । अन्यथा मेरे हाथ के शूल के वार की प्रतीक्षा करो ।'

सौमित्र ने सीता की भीति, तथा राक्षस का गर्व देखकर कहा—'हे राक्षस, ये पृथ्वी की पुत्री, पुण्यवती, साध्वी, राम की पत्नी हैं, उन्हें ले जाना तुम्हारे लिए उचित नही है। अब तुम ले भी कहाँ जा सकते हो ? मैं अभी तुम्हें पकडकर तुम्हारा वध कर डालूँगा ।'

इस प्रकार कहते हुए उन्होने क्रोध से धनुष पर बाण-सधान करके उसके वक्षस्थल पर चलाया । तब विचित्र ढग से अट्टहास करते हुए बडे क्रोध से उसने शूल को घुमाकर उनपर फेंका । घने बादलो से छूटकर नीचे गिरनेवाली बिजली के समान आनेवाले उस शूल को राम ने अपने दो बाणो मे काट दिया। इसपर ओर भी क्रुद्ध होकर उसने सीता को पृथ्वी पर गिरा दिया । उस राक्षस के हाथो मे मुक्त होकर बादलो से निकलकर आकाश-मार्ग से पृथ्वी की ओर बिजली की तरह आनेवाली छटपटाती हुई सीता को राम ने गरुड-अस्त्र की सहायता से पृथ्वी पर उतार लिया ।

इसके पश्चात् राम ने उस राक्षस पर कई बाण चलाये, किन्तु वह उनकी जरा भी परवाह न करके अट्टहास करने लगा । वह बड़े वेग से आया और अपने हाथो से राम और लक्ष्मण को उठाकर अपनी पीठ पर लादकर वहाँ से शीघ्रता से जाने लगा । जानकी यह देखकर विलाप करने लगीं । राम और लक्ष्मण ने अत्यत क्रोध से बिजली के समान चमकनेवाले अपने खड्गो को म्यान से निकालकर उसके दोनो हाथों को काट डाला । तब धराशायी होनेवाले पहाड़ की तरह वह राक्षस पृथ्वी पर लोटने लगा । फिर भी उसे जीवित देखकर राम-लक्ष्मण ने अपने पदाघात तथा मुष्टियो के प्रहार से उस राक्षस को चूर-चूर कर दिया । (यह देखकर) सभी मुनि साधुवाद देते हुए उनकी प्रशसा करने लगे ।

इसके पश्चात् राक्षस गधर्व का रूप धारण किये हुए विमान में बैठकर राम से बोला—'मैं गधर्व हूँ, मेरा नाम तुबुर है । रंभा के साथ रति-क्रीडा में तल्लीन रहते हुए, कुबेर की सभा में उपस्थित न हो सकने के कारण कुबेर ने मुझे राक्षस का जन्म लेने का शाप दिया था । आपके बाहुबल के प्रताप से मेरा शाप-मोचन हुआ । अब मैं जा रहा हूँ । आप मेरे शरीर को यही गाड़कर शरभग मुनि के आश्रम में जाइए ।'

इस प्रकार कहकर प्रणाम करके वह वहाँ से चला गया। उसके शरीर को वही गाड़कर श्रीराम ने सीता को बड़े स्नेह से गले लगा लिया और उनका भय दूर किया । उसके पश्चात् उन्होने अपने अनुज से कहा—'क्या इस पृथ्वी में ऐसे दुर्गम वन कही हो सकते है ? हमें शीघ्र ही सीता को लिये हुए इस वन को पार कर जाना चाहिए ।

४. श्रीराम का शरभंग के आश्रम में पहुँचना

इस प्रकार सोचकर, शरभग के दर्शन करने की अभिलाषा से राम उनके आश्रम की ओर चले । उस समय उन्होने उस आश्रम के ऊपर से उदित सूर्य की भाँति प्रकाशमान

अश्वो से युक्त, श्वेत छत्र से आवेष्टित, देवताओ से भरे एक विमान को चारो ओर उज्ज्वल मणियो की आभा विकीर्ण करते जाते हुए देखा । उस विमान में विराजमान कल्याणगुण-सपन्न व्यक्ति को देखने की इच्छा से राम तेजी से आगे बढे, किन्तु इतने में वह विमान आँखो से ओझल हो गया ।

राम ने मुनि के आश्रम में पहुँचकर, मुनि को प्रणाम किया और मुनि का सत्कार ग्रहण करने के पश्चात् बडे प्रेम से मुनि को देखकर पूछा—'हे मुनीश्वर आपके दर्शनार्थ हमारे आते समय एक विमान अपना प्रखर तेज विकीर्ण करते हुए यहाँ से निकल गया था । वह यहाँ क्यो आया था और कहाँ चला गया है ? उस विमान में कौन विराजमान थे ? आप कृपया बतावें ।'

तब मुनि बोले—'हे देवेन्द्र-बधु । वह देवेन्द्र था । हे देव, ब्रह्मलोक जाने का आमत्रण देने के लिए वह देवताओ के साथ देवलोक से यहाँ आया था । हे रामचद्र, मुझे मालूम था कि आप यहाँ पधारेंगे । आपका पूजा-सत्कार करने के पश्चात् जाने का निश्चय करके मैंने उससे कह दिया कि मै अभी नही आऊँगा । तुम चाहो तो जा सकते हो । इन्द्र भी बहुत दुखी होकर, बनवास (के दुख) से खिन्न आपको न देख सकने के कारण, यहाँ से चला गया है । इतने में आप भी यहाँ आ पहुँचे । हे राजन्, आपके प्रसाद से मैंने बडी निष्ठा से, अपना तप निर्विघ्न समाप्त किया है । यज्ञ भी सफल हुआ । मै आपके दर्शन कर सका । आप अब सयमी सुतीक्ष्ण के दर्शन करके उनके यहाँ रहिए । मै अब ब्रह्मलोक में जाऊँगा ।' इस प्रकार कहने के पश्चात् उस मुनीश्वर ने राम के सम्मुख ही अपने शरीर को मत्र-रत करके, अग्नि में दहन कर दिया और इन्द्र आदि देवताओ की सेवाएँ प्राप्त करते हुए ब्रह्मलोक को चले गये ।

तब उस आश्रम के निवासी सयमी, वायुसेवी, वैखानस, मौनव्रती, पर्णशाला-विहीन, भूमिशायी, मननशील, उदात्त मुनि, एकातवासी, अनशनव्रती और पचाग्नियो के मध्य तपस्या करनेवाले, सभी तपस्वी झुड-के-झुड दयालु रामचद्र के पास आये और बोले—'हे राम, आप पिता की आज्ञा का पालन करने में अत्यत तत्पर हैं, सत्यव्रती हैं और निर्मल यश के आगार है । आप जैसे राजा के रहते हुए क्या हमें रक्षसो के उपद्रवो से पीडित होना चाहिए ? व्रत की रक्षा करनेवाले राजा को भी उस व्रती के पुण्य का एक चौथाई भाग मिलता है । अब आप सभी दैत्यो का सहार करके हमारे तपोव्रत को सफल बनाइए । हम आपकी शरण में आये है ।' शरणागत के रक्षक होने के कारण राम ने उन आश्रमवासी मुनियो को अभयदान दिया और कहा—'आपकी कृपा से बलवान् राक्षसो के उपद्रवो को मै दूर करूँगा । आप दुखी मत होइए ।'

५. श्रीराम का सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में पहुँचना

इसके पश्चात् वे भयकर वन-प्रात में से होते हुए महान् मतिमान् सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में पहुँचे । उस मुनि की परिक्रमा की और अपना नाम कहकर उन्हें प्रणाम किया । सुतीक्ष्ण मुनि ने राम को आशीर्वाद देकर उनका उचित आदर-सत्कार किया और उसके पश्चात् बोले—"हे अनघ, जबसे आपके मुनि-वेश धारणकर चित्रकूट में पहुँचने का समाचार

हमने सुना, तबसे हम आपके आगमन की उत्कट इच्छा लिये हुए थे। आखिर आप यहाँ आ ही गये है। आपके दर्शन कर सके, इसमे हम अपने को धन्य मानते है। दुरात्मा, अत्यधिक बाहुबली राक्षस गर्वोन्मत्त होकर हमारे आश्रम में आये, और हवन-वेदियो का नाश किया, यूप-काष्ठो को उखाडकर फेंक दिया, पेडो को उखाड डाला, जप-मालाओ को तोड दिया, हमारे वस्त्र फाड डाले, फलो को चुन लिया, फूलों को गिरा दिया, सरोवरो का पानी गदा कर दिया, कई प्रकार के दुख दिये और कई मुनियो को मार भी डाला। हमारी रक्षा करनेवाला कोई नही है। हे देव! आप हमारी रक्षा कीजिए। हमें दुख देनेवाले इन राक्षसो को हम अपनी क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखकर, चाहें तो भस्म कर सकते है। किन्तु पृथ्वी पर आपके जैसे राजा के रहते हुए हम क्रोध नही करते है। अत, आप इन दुष्ट राक्षसो का सहार करके हमारे तप की रक्षा कीजिए।" तब राम ने उन्हें सात्वना दी कि मै युद्ध में इन राक्षसो का वध करूँगा, आप खिन्न मत होइए। इसके पश्चात् उन्होने शरभग के आश्रम के निवासी मुनियो को अपने अभयदान का वृत्तात सुनाया, राक्षसो का वध करने की प्रतिज्ञा की और उनकी सगति में वही रात बिताई।

दूसरे दिन बहुत-से मुनि वहाँ आये और राम से अपने-अपने आश्रमो में आने की प्रार्थना की। तब राम सुतीक्ष्ण मुनि से आज्ञा लेकर अन्य मुनियो के पुण्याश्रमो को देखने की अभिलाषा से वहाँ से रवाना हुए। मार्ग में जानकी ने राम को देखकर कहा—"हे अनघ, (हम) राज्य छोडकर वन में आये है, जटाएँ तथा वल्कल धारण किये मुनियों की तरह जीवन बिता रहे है, ऐसी दशा में आप राक्षसो पर क्यो क्रोध करते है? विचार करने पर यह सगत नही मालूम होता है। हे काकुत्स्थ-तिलक, जबसे आपने मुनियो को राक्षसो का वध करने का आश्वासन दिया है, तबसे मेरा मन बहुत ही खिन्न हो रहा है। यह कार्य ठीक नही है, इसलिए आप यह कर्म छोड दीजिए। हे प्राणेश्वर, क्या प्राणियो को मारने से पाप नही लगेगा? किसी समय एक मुनि अत्यत तपोनिष्ठा से जीवन-यापन करते थे। इन्द्र ने उन्हें एक खड्ग देकर कहा—'इसे आप रखिए, मैं फिर आकर इसे ले जाऊँगा।' तदनतर उस मुनि ने उस खड्ग से लता, वृक्षो को काटते हुए, हिंसा में प्रवृत्त हो, जड़मति बनकर तपश्चर्या त्याग दी और अत को दुर्गति को प्राप्त हुआ। इसलिए हे देव, कहाँ तप और कहाँ राजधर्म तथा अस्त्र-शस्त्र? आप ऐसा कार्य न कीजिए।"

तब रामचद्र ने हँसकर सीता से कहा—'हे साध्वी, तुम्हारा बताया हुआ मार्ग ब्राह्मणो का है, क्षत्रियो का नही। मेरा हृदय जानते हुए भी मुझपर अत्यधिक अनुराग रखने के कारण तुम ऐसा कह रही हो। हे तरुणी, उत्तम राजधर्म का पालन करनेवाले इसीलिए तो धनुष-बाण धारण करके विचरण करते है कि शरणागतो की रक्षा कर सकें। तुम इस परम धर्म का विचार क्यो नही करती हो? मै उन महामुनियो को दिये गये वचन का अवश्य ही पालन करूँगा। यही मेरा दृढ सकल्प है। मैं अपने प्राण भले ही छोड दूँ, तुम्हें भी त्याग दूँ, या लक्ष्मण को भी छोड दूँ, किंतु अपना प्रण नही टाल सकता।' इन बातो को सुनकर जानकी चुप रह गई और लक्ष्मण विस्मित हो गये।

६. मंदकर्णी का वृत्तांत

इसके पश्चात् रामचद्र प्रत्येक आश्रम में, कही तीन महीने, कही चार महीने, आराम से रहते हुए, पुण्याश्रमो के दर्शन करते हुए आगे वढे । मार्ग में उन्होने एक स्थान पर एक तडाग देखा, जिसके जल के मध्य से संगीत का निनाद अत्यधिक सुनाई पड़ रहा था । अत्यत विस्मय-चकित होकर वे उस तडाग के किनारे पहुँचे और उसके निकट निवास करनेवाले धर्ममृत नामक मुनि को देखकर वोले—'हे मुनिनाथ, यह कैसी विचित्र वात है कि इस तडाग के जल में से ऐसा शब्द सुनाई दे रहा है ? 'तव धर्ममृत ने अत्यत उत्साह से रामचद्र से कहा—'किसी समय मदकर्णी नामक मुनि इस तडाग के जल के वीच खड़े होकर वड़ी निष्ठा से अनेक वर्ष तक अत्युग्र तपस्या करते रहे । उस तप को देखकर इन्द्रादि देवता भयभीत हो गये । उस मुनि के महत्त्व को क्षीण करने के लिए उन्होने पाँच अप्सराओ को भेजा । वे अप्सराएँ मुनि की परिणीता वधुएँ वन गईं और वे जल के मध्य मुनि के द्वारा निर्मित स्वर्ण-सौधो में, मुनि के सम्मुख वड़े मोद-मग्न हो नृत्य कर रही हैं । इसी कारण से यह सरोवर पचाप्सर के नाम से विख्यात है । जो मधुर ध्वनि अब सुनाई पड रही है, वह उनके वाद्यो की ध्वनि है ।

इन वचनो को सुनकर राम ने अत्यत भक्ति मे पुण्यात्मा मदकर्णी को प्रणाम किया और उस घोर वन के मार्ग से आगे वढे । मार्ग में उन्होने कई मुनियो का दर्शन करके उनको प्रणाम किया । वहुत-से पुण्य तपोवनो को देखकर मुग्ध हुए, कमल और कमलिनियो से भरे सरोवरो में स्नान किया, मद-मद गति से चलनेवाले पवन की प्रशसा और झिल्लियो की झंकार की निंदा की । शुक, मयूर आदि पक्षियो को पकडते हुए, वे हाथी, वराह आदि मृगो का शिकार करते जाते थे । कभी मेघास्त्र का प्रयोग करके गर्मी को दूर करते और कभी अपने दर्शन करनेवाले के पाप मिटाते । कभी यौवन को प्राप्त लताओ से फूल चुनते, कभी झकार करनेवाले भ्रमरो को दूर भगाकर गगनचुवी पर्वत-शिखरो पर चढ़ जाते । जव जानकी थक जाती थी, तव उनका परिहास करते हुए वडी मृदुल गति से गुफाओ को पार करते हुए, चढाव पर चढने की क्रिया (जानकी को) सिखाते । वहाँ की भीलनियो के साहस की प्रशंसा करते हुए, अभेद्य झाड़ियो में प्रवेश करते हुए ऐसी घाटियो में भ्रमण करने लगे, जहाँ सूर्य की किरणें भी नही पहुँच पाती थी । इस तरह राम, लक्ष्मण तथा जानकी के साथ पुण्य तीर्थो, पुण्य नदियो तथा पुण्य तपोवनो में भ्रमण करते हुए दस वर्ष के उपरान्त फिर से सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में लौट आये और उस मुनि के यहाँ वडे आराम से कुछ वर्ष तक रहे ।

७. अगस्त्य से भेंट

एक दिन रामचद्र ने अगस्त्य के दर्शन की इच्छा से प्रेरित होकर (सुतीक्ष्ण) मुनि को देखकर पवित्र भक्ति से साथ कहा—'हे महात्मा, मुनिश्रेष्ठ, अगस्त्य कहाँ रहते हैं ? उनका आश्रम कहाँ है ? कृपया वतलाइए ।' सुतीक्ष्ण ने उन्हें उस आश्रम के मार्ग की दिशा तथा चिह्न बताये और आशीर्वाद देकर उन्हें विदा किया । अपने प्रिय अनुज तथा पत्नी के साथ दक्षिण की ओर चार योजन का रास्ता तय करके, वहुत-से जंगलो, पहाडो

तथा नदियो को पार करते हुए वे अगस्त्य के भ्राता के आश्रम में पहुँचे । वहाँ बडी श्रद्धा से उस यतीश्वर के चरणो में सिर झुकाकर वे उस रात को वही ठहरे । मुनि के सत्सग में रहते हुए राम ने उनसे प्रश्न किया—'हे यतीश्वर, पहले इस स्थान पर अगस्त्य ने वातापि का सहार कैसे किया ?' तव वह मुनीद्र रामचद्र को देखकर उस पुण्य-कथा को इस प्रकार कहने लगे—"किसी समय वातापि और इल्वल नामक दो प्रचड राक्षस इस पृथ्वी पर रहते थे । उनमें वातापि मेष का रूप धारण कर लेता था और इल्वल ऋषि के रूप में मार्ग में अडा रहता था । वह मार्ग में जानेवाले ब्राह्मणो को श्राद्ध के वहाने अपने घर में आमत्रित करता था और वडे प्रेम से घर वुला लाता था । उसके पश्चात् उस मेष को मारकर वडे प्रेम से उसका भोजन वनाकर उसे अतिथियो को खिलाता था । भोजन के पश्चात् वह वातापि का नाम लेकर पुकारता था—'हे वातापि । जल्दी चले आओ ।' तव वह ब्राह्मणो का पेट चीरकर बाहर निकल पडता था । इस प्रकार, उन्होंने कितने ही मुनियो को मार डाला । एक दिन कुभसभव (अगस्त्य) उस मार्ग से आये, तो उसने कपट से उन्हें भी भोजन कराया और भोजन के पश्चात् वातापि को पुकारा । तब अगस्त्य ने कहा—'अव वातापि कहाँ से निकलेगा । वह तो कभी का पच गया है ।' इस पर क्रुद्ध होकर इल्वल ने राक्षस का रूप धरकर उनपर आक्रमण करने के लिए निकला, तो कुभसभव ने अपने हुकार-मात्र से देखते-देखते उसको भस्म कर दिया और सब मुनियो को हर्षित किया । इतना ही नही, उन्होंने विध्याचल को दवा दिया, अद्वितीय ढग से समस्त सागर को पी गये और नहुष को साँप वन जाने का शाप दिया । ऐसे पुण्यमूर्त्ति अगस्त्य केवल मुनि नही है । वे मुनि के रूप में (रहनेवाले) शिवजी है ।"

इन वातो को सुनकर रघुराम हर्षित हुए । दूसरे दिन मुनि ने रामचन्द्र का उचित आदर-सत्कार करने के वाद उन्हें आशीर्वाद देकर अगस्त्य मुनि के आश्रम का मार्ग बताया उस मार्ग से एक योजन तक जाने के पश्चात् उन्होने अगस्त्य के उस रमणीय आश्रम को देखा, जो कटहल, दाडिम, शमी, वेर, अश्वत्थ, साल, द्राक्षा (किशमिश), रसाल, तमाल, वेल, खर्जूर, मदार आदि वृक्षो से और उन वृक्षो पर लदे हुए सुगधित फूल, और उन फूलो के मकरद पर आसक्त भ्रमर, सुन्दर पुष्पो के पौधे, और उन पौधो के मध्य मित्रता के साथ विचरण करनेवाले मृगो, कोकिलो का कल-कूजन, शास्त्र तथा वेद-ध्वनि, तथा विविध तपोविनोदो से दीप्तिमान् था ।

आश्रम में पहुँचकर राम ने एक मुनि के द्वारा अपने आगमन का समाचार अगस्त्य मुनि को जनाया, और उसके पश्चात् उनके सम्मुख उपस्थित होकर उनके चरण-कमलो में वडी भक्ति से वदना की । अगस्त्य ने उन्हें हृदय से लगाया, आशीर्वाद दिये और विविध प्रकार से सतुष्ट किया । तदुपरान्त मुनि बोले—'हे शुभ नामवाले राम, हे उत्पल-श्याम, हे गुणधाम, तुम क्रूर दानवो में भय उत्पन्न करनेवाले हो । मुनियो का सौभाग्य है कि तुमने मुनि-वेश में तपस्वी की तरह वन में निवास करते हुए, मुनियो को अभयदान दिया है कि तुम राक्षसो का संहार करोगे, अत. वे दुखी न हो। तुम्हारे इन दयापूर्ण वचनो को सुनकर मुझे परम हर्ष हुआ ।'

इस प्रकार कहने के पश्चात् उन्होने बडे प्रेम से उनका अतिथि-सत्कार किया और असमान दिव्यास्त्र, शस्त्र, कोदड तथा कवच आदि प्रदान किये। उन सबको ग्रहण करके रामचद्र ने वही उनके सत्सग में रात्रि बिताई।

दूसरे दिन सध्या आदि से निवृत्त होने के पश्चात् परमात्मा राम ने उस मुनिश्रेष्ठ को प्रणाम किया। तब उनको आशीर्वाद देकर भविष्य के कार्य की सभावना करके उस धीमान् कुभसभव ने अत्यत आदर के साथ रामचद्र को सबोधित करके कहा—'हे राम! तुम उस पचवटी में जाकर रहो, जिसके प्रागण में गोदावरी नदी के पुण्य जल से शीतल बनाये गये तथा मद-मद चलनेवाले पवन के प्रभाव से लता-रूपी नर्त्तकियाँ नृत्य करती रहती है, और जो जटाधारी धूर्जटि के लिए पूज्य है। कुभसभव की आज्ञा लेकर रघुवर उस स्थान के लिए रवाना हुए।

८. जटायु से मित्रता

मार्ग के मध्य में उन्होने एक खगराज को देखा, जो पखो से युक्त कुल-पर्वत के समान था। राम ने सोचा कि यह भी कोई राक्षस होगा, इसलिए उससे प्रश्न किया कि तुम कौन हो? तब वह पक्षी बडे हर्ष से कहने लगा—'हे राम, मेरे पिता, गरुड के अग्रज, कश्यप के पुत्र तथा सूर्य के सारथी महात्मा अरुण है। सपाति मेरे अग्रज है। मैं आपके पिता का मित्र हूँ; आपका हितैषी हूँ, पराया नही हूँ और मै महान् साहसी हूँ। मेरा नाम जटायु है। यह वन असुर-राजा के अधीन है, इसलिए (आप) सीता की रक्षा सावधानी से करते रहिएगा।' तब राम ने उसे अपने पिता दशरथ के समान मन में मानकर बडे स्नेह से उसकी पूजा की और वहाँ से चलकर पचवटी में जा पहुँचे। वहाँ के श्रेष्ठ तपस्वी तथा मुनियो को बडी भक्ति से प्रणाम करके राम ने उनका सत्कार ग्रहण किया और फिर लक्ष्मण तथा सीता को देखकर बोले—'हमने कई प्रकार के पुण्य आश्रमो को देखा है, किन्तु ऐसी गौतमी गगा (गोदावरी), ऐसे सरोवर, ऐसे वृक्ष और ऐसे आश्रम कही नही देखे। हम आज से यही रहेंगे।'

इस प्रकार वे अत्यत हर्षित हुए और वहाँ के मुनियो की अनुमति प्राप्त करने के पश्चात् स्वय तथा लक्ष्मण ने उसी दिन बडी तत्परता से एक सुदर पर्णशाला बनाई। तत्पश्चात् आप और लक्ष्मण ने उसकी पूजा की और भूसुता (सीता) के साथ उस पर्ण-शाला में प्रवेश किया। इस प्रकार वे छह मास तक बडे सुख से वहाँ रहे।

९ हेमंत-वर्णन

तब समस्त पृथ्वी को तथा दसो दिशाओ को कुहरे से आच्छादित करते हुए हेमत ऋतु का आगमन हुआ। एक दिन प्रातकाल ही सीता के साथ स्नान करने के लिए जाते समय राम ने लक्ष्मण को देखकर कहा—"हे लक्ष्मण, तुमने शीतकाल की महिमा देखी है? चारो ओर हिम इस प्रकार आच्छादित हो गया है, मानो सभी दिशाएँ ठड से भीत होकर श्वेत कौशेय धारण किये हो। सारी पृथ्वी पर गिरी हुई ओस की बूँदें जमकर ऐसी दिखाई दे रही है, मानो हेमत ऋतु-रूपी बादल ने समस्त आकाश में व्याप्त होकर

अत्यधिक ओले वरसाये हो । कही-कही ओस-कण दूर्वांकुरो के सिरो पर ऐसे दिखाई पड़ रहे है, मानो मरकत की शलाकाओ की पक्तियो पर सदर ढग से पिरोये गये मोतियो की लडियाँ हो । उस पुष्प-लताओ को देखो, जो कामदेव के सम्मोहनास्त्र के समान, स्पर्श करनेवाले पवन से भयभीत होकर, मानो विरहिणियो की तरह चचल गति से डोल रही है । ओस में रहनेवाले कमल, आँसुओ में निमग्न विरहिणियो के मुखो का उपहास कर रहे है । वहाँ देखो, पानी के ऊपर तैरनेवाले कमलो के पराग पर मँडरानेवाले भ्रमर और लाल कमल, ठड मे पीडित सरोवर के देवताओ के लिए धुएँ से युक्त अगीठियो के समान दीख रहे है । हे अनुज, वहाँ देखो, जगली हाथी प्यास से व्याकुल होकर मद गति से दौडते हुए इस नदी में आते है, नदी के जल को अपनी सूँडो में भरकर चिघाडते हुए अपनी सूँडो को समेटे हुए भाग रहे है । अव भरत भी मेरे प्रति भक्ति रखने के कारण राज-भोग छोडकर, वल्कल तथा जटाएँ धारण करके, मेरे आगमन की प्रतीक्षा करते हुए तड़प रहा होगा । न जानें, वह महान् व्यक्ति, परम पावन भ्रातृ-प्रेमी, अपने पिता तथा अग्रज की आज्ञा का पालन करनेवाला परम यशस्वी, आश्रितो का रक्षक भरत, उप काल में कैसे सरयू-नदी में स्नान करता होगा ? न जाने, वह मुनि की तरह कैसे पृथ्वी पर सोता होगा ? मेरे पिता के सत्य वचन तथा मेरा दृढ सकल्प उनके कारण ही सभी लोको में इतने प्रख्यात हुए। जिस माता की आज्ञा के कारण मैं सभी सयमी मुनियो के आशीर्वाद प्राप्त कर सका, ऐसी माता को न जाने कटु वचनो से वह कितना दुख देता होगा । नही, भला वह पुण्यात्मा ऐसा क्यो करने लगा ? राज्य के अधिकार मे अलग होकर मै तपस्वी हुआ, किंतु राज्य का अधिकारी होते हुए भी वह तपस्वी हुआ । उस पुण्यात्मा को देखकर दूसरो को सीखना चाहिए कि भाइयो में परस्पर कैसा व्यवहार उचित है । ऐसे भरत तथा स्नेहपूर्ण माताओ, तथा अन्य नातेदारो को न जाने हम कब देख पायेंगे ।" इस प्रकार उनके सबध में सोचते हुए वडी श्रद्धा से उन्होने गौतमी नदी में जी भरकर स्नान किया, सूर्य को अर्घ्य दिया, गायत्री-मत्र का जप करने के पश्चात् ब्रह्म-यज्ञ किया और पर्णशाला को लौटकर वड़ी प्रसन्नता से रहने लगे ।

१०. जंबुमालि का वृत्तांत

एक दिन लक्ष्मण प्रात काल ही उठे और वडे पवित्र चित्त से अपने भाई को प्रणाम किया और कद, मूल, फल आदि लाने वन में चले गये । वनो में घूमते-घामते उन्होने एक ऊँचे पहाड को देखा और उसके निकट विचरण करने लगे । इसी समय समस्त पृथ्वी को देदीप्यमान करते हुए सूर्य से उत्पन्न एक खड्ग आकर भीषण जलद के गभीर गर्जन की-सी वाणी में कहने लगा—'हे राक्षस-कुमार, तुम्हारे तप से प्रसन्न होकर सूर्य ने शत्रुओ का नाश करने के लिए मुझे तुम्हारे पास भेजा है । तुम मुझे ग्रहण करो।' तब उस राक्षस-कुमार ने कहा—'सूर्य ने स्वय तुम्हें मुझे न देकर, मेरा अनादर किया है । मैं तुम्हें ग्रहण नही करूँगा । मेरे सारे तप पर पानी फिर गया है । हे सूर्य के खड्ग, तुम जहाँ चाहो, जा सकते हो ।' यो कहकर वह पूर्ववत् अचल समाधि में लीन हो गया ।

(यह देखकर) लक्ष्मण विस्मित हुए और उस खड्ग की ओर देखकर बडी कुशलता से उसके निकट पहुँचे और उसे हाथ में लेकर देखने लगे । फिर यह सोचकर कि तपस्वियों के आधार इन फल-वृक्षो को काटना नही चाहिए । वे जहाँ-तहाँ भटकते हुए एक विशाल बाँस की झाड़ी के निकट पहुँचे और उस झाडी पर खड्ग चलाया । खड्ग चलाते ही उस झाडी के मध्य में तपस्या में लीन एक मुनि कटकर भूमि पर लोटने लगा । यह देखकर लक्ष्मण मूर्च्छित-से हो गये । कुछ समय के उपरान्त वे सँभले और विलाप करने लगे—'हाय, यह मैने क्या कर डाला ? अनजान में मैने एक ब्राह्मण का वध किया और समस्त लोको की निंदा का पात्र बना । ब्रह्म-हत्या का पाप मुझे प्राप्त हुआ है । हाय, मैं इतनी दूर क्यो आया ? मैंने यह खड्ग लिया ही क्यो ? अनुपम धर्मात्मा रामचद्र के अनुज मुझे ऐसा घोर पाप लग गया है । यह मुनि न जाने कौन है ? (अनजान में) मैंने उनका वध कर डाला । जानकीनाथ सुनेंगे, तो न जाने मुझे क्या कहकर तज देंगे । क्या जाने मुनिजन कैसा शाप देंगे । मैं यह वृत्तात (राम से) कह भी नही सकता, कहे बिना रह भी नही सकता । हाय भगवान् ! सर्वनाश हो गया है ।' इस प्रकार भय-विह्वल हो, दुःख करते हुए धीरे-धीरे पैर घसीटते हुए वे चले । मन-ही-मन सोचते जाते थे कि महाराज दशरथ को पितृ-भक्त (श्रवणकुमार) के वध का पाप लगा था । पृथ्वी के लोग कहेंगे कि पिता के समान पुत्र को भी पाप लगा ।

इस प्रकार चिंतित होते हुए वे अपने अग्रज के सम्मुख पहुँचे और थर-थर काँपते हुए गद्गद कंठ से युक्त हो उन्हें प्रणाम किया । राघव ने अपने अनुज को उठाकर गले से लगाया, (उनके) अश्रुओ को पोछा, और दयार्द्रचित्त से कहा—'हे अनघ, मेरे रहते तुम क्यो भयभीत हो रहे हो ? तुम धर्म के अनुसार आचरण करनेवाले हो, उदार हो निर्मल आत्मा हो, नीतिवान् हो, महाराज दशरथ के मान्य पुत्र हो शिव के समान पराक्रमी तथा शूर हो । भाई, तुम्हारा मुँह ऐसा क्यो उतरा हुआ है ? स्पष्ट रूप से सारा हाल कह सुनाओ ।'

तब जयशील लक्ष्मण ने कहा—'हे भयत्राता, आपकी आज्ञा लेकर मैं वन से कद-मूल, फल लिये आ रहा था । तब एक क्रूर खड्ग को आकाश से आता हुआ देखकर मैंने उसे हाथ में ले लिया और एक बाँस की घनी झाडी पर उसे चलाया । उस झाडी में (तपस्या में लीन) एक श्रेष्ठ मुनि तुरत भूमि पर लोट गये। अपने अपराध के लिए चिंतित होते हुए, आपके सामने आने का साहस न रहने हुए भी मुझे आना ही पडा ।'

यह सुनकर राघव अत्यधिक आश्चर्य में पडकर आगे के कर्त्तव्य के संबध में सोचने हुए चुप हो रहे । उसी समय वहाँ के सब मुनि सारा वृत्तात (राम को) सुनाने का निश्चय करके आये और रामचद्र को आशीर्वाद देकर अत्यत कोमल स्वर में यों बोले—

'हे अखिलेश, आपके अनुज ने अभी अखिललोक-शत्रु रावण के भानजे, जम्बु नामक एक दुष्ट का संहार किया है । इसमें कोई दोष नही है । हे राजन्, उनके इस कृत्य से सभी मुनि संतुष्ट हो गये हैं ।'

तब राघव ने उन मुनियों से पूछा—'हे महात्मा, कृपया बतलाइए कि उसने किस देवता के प्रति इतना घोर तप किया और वह खड्ग कहाँ से आया ?' तब मुनियों ने राम से कहा—"पूर्वकाल में अपने बल-विक्रम से सभी दिशाओं को जीतने के लिए जाते समय दशकंठ ने किसी दूसरे पर विश्वास न करके, अपने बहनोई, पराक्रमी विद्युज्जिह्व को बुलाकर कहा था—'सावधान होकर लंका की रखवाली करते रहना ।' इस प्रकार उसे लंका की रखवाली करने के लिए नियुक्त करके वह चला गया ।

"इसके पश्चात् विद्युज्जिह्व ने मन-ही-मन सोचा—मैं सभी मायाओं को जानकर दशकंठ को लंकापुर में प्रवेश नहीं करने दूंगा और खुद लंका को हस्तगत कर लूंगा । यों सोचकर वह पाताल-लोक में चला गया और वहाँ प्रमुख राक्षसों के पास रहते हुए महान् माया-युक्त मंत्र-तंत्र, ग्रहवाद, अखिलवाद, गारुड क्रियाएँ, विषवाद, रसवाद आदि विद्याएँ सीखीं और वहीं रहते हुए तरह-तरह की मायाओं को सीखने में तत्पर रहा । इधर रावण सभी दिक्पालों को जीतकर लंका लौट आया । विद्युज्जिह्व का सारा हाल जानकर वह अत्यंत क्रुद्ध हुआ और आँखों से अग्नि-वर्षा करते हुए कहने लगा—'मेरी आज्ञा का पालन किये बिना ही यह (विद्युज्जिह्व) मायाओं के जानने गया है । मैं भी देखूंगा; उसकी समस्त मायाओं को आज मैं मटियामेट कर दूंगा ।' यों कहते हुए वह पाताल-लोक में गया तो 'अस्मय' नगरवासी सभी राक्षस भयाकुल हो गये । रावण ने अत्यधिक क्रोध से अपनी तलवार को म्यान से निकालकर, इसका विचार भी नहीं करके कि यह मेरा बहनोई है, मेरी बहन का पति है, विद्युज्जिह्वा का पीछा करके उसका वध कर डाला ।

"इसके बाद वह लंका लौट आया और अपनी बहन शूर्पणखा को बुलवाकर उसे सांत्वना दी और कहा—'तुम अपनी स्वेच्छा से विचरण करती हुई, अपनी इच्छा के अनुकूल किसी भी पति का वरण करके निर्भय संसार में रहो ।' उस समय शूर्पणखा को छह मास का गर्भ था । यथासमय उसने जम्बुकुमार नामक एक भयंकर तथा बलशाली पुत्र को जन्म दिया । वह जब बड़ा हुआ, तब उसने अपनी माता से अपने पिता की मृत्यु का समाचार जान लिया और अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने का निश्चय किया । उसने सोचा—यदि मैं ब्रह्मा की तपस्या करूँ, तो वे मेरी इच्छा पूरी नहीं करेंगे, शिव की तपस्या करूँ, तो रावण शिवभक्त होने के कारण वे उस पर क्रोध नहीं करेंगे; यदि विष्णु की तपस्या करूँ, तो न जाने कब वे प्रसन्न होंगे और कब मैं प्रतिशोध ले सकूंगा । कहते हैं कि हरि, हर तथा ब्रह्मा ये तीनों सूर्य के रूप में रहते हैं । इसलिए मैं सूर्य के प्रति तपस्या करके उनकी कृपा प्राप्त करूँगा तथा दनुजों के नेता दशकंठ का वध करूँगा । यों सोचकर वह सूर्य की तपस्या करने लगा ।

"सूर्य ने उसकी तपस्या से संतुष्ट होकर प्रतिशोध लेने के लिए उस राक्षस के पास एक खड्ग भेजा । किन्तु गर्वान्ध होकर उसने वह खड्ग नहीं लिया । इस तरह वह खड्ग आपके अनुज को मिल गया । ऐसा न होकर यदि वह राक्षस के हाथ में पड़ जाता, तो वह सभी लोगों को त्रास देता । दैवयोग से वह राक्षस नष्ट हुआ । हे सूर्यवंश-तिलक, अब इसके बारे में चिंता क्यों करते हैं ? युद्ध में कार्त्तवीर्य ने रावण को जीता था ।

भार्गव ने उसे मार डाला। ऐसे भार्गव राम को आपने युद्ध में हराकर उनका मद चूर्ण किया। ऐसे (शक्ति-सपन्न) आपके द्वारा राक्षस युद्ध में अवश्य ही मारे जायँगे।" इन बातो को सुनकर रघुराम आश्चर्य-चकित हुए और विनम्र होकर मुनियो को प्रणाम करके उन्हें विदा किया।

११. शूर्पणखा का वृत्तांत

शूर्पणखा प्रतिदिन के जैसे बढिया भोजन, विविध मिष्टान्न आदि से भरा हुआ टोकरा लिये हुए आई और कटी हुई बाँस की झाडी के बीच खड-खड होकर गिरे अपने पुत्र को देखकर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडी। सँभलने के बाद वह उन खडो को एकत्र करके बडी देर तक विलाप करती रही। उसके पश्चात् वह कहने लगी—"हे कुमार, तुम्हारे लिए क्या यह उचित है कि तुम अपनी आँखें खोलकर मेरी ओर न देखो और मुझे न अपनाओ। रावण तुम्हारे मामा है, इसका भी विचार किये बिना तुम उस प्रतापी (रावण) का वध करना चाहते थे, किन्तु वह तुम से नही हो सका। क्या तुम ऐसा कर सकोगे ? क्या वे (रावण) कार्त्तवीर्य से पराजित हुए थे ? क्या अनरण्य की शापाग्नि से वे नष्ट हुए ? क्या ब्रह्मा के धनुष की अग्नि से उनका अत हुआ ? क्या नलकूबर से वे पराजित हुए ? क्या वे शिव के वाहन नदीश्वर के क्रोध का शिकार बने ? क्या शाण्डिल्य मुनि का क्रोध उनका नाश कर सका ? इतना क्यो, क्या कुबेर लका में रह सका ? तुमने बात पर ध्यान नही दिया कि बलवान् से विरोध करना उचित नही। उनकी मृत्यु अब नही होने की। क्या पापी चिरायु की लोकोक्ति झूठी होगी ? (अर्थात् पापी चिरायु होता है, यह लोकोक्ति प्रचलित है) ? मैंने तुम्हें कितना समझाया कि (उन से) वैर मत ठानो, किन्तु तुमने मेरी बातो की परवाह न की, और इस प्रकार नष्ट हो गये। भला, रावण तुम्हारे हाथ क्योकर मरने लगे ? कहते हैं कि माता का वचन धर्म-देवता का वचन होता है। हे निर्मलात्मा, तुमने उसकी (माता के वचन की) परवाह न की। गधर्व, सुर, सिद्ध आदि (रावण के) कारागार में रहते-रहते अधे हो गये है। क्या कही राक्षसो को जीता जा सकता है ? हे विद्युज्जिह्व के कुल-दीपक, हे महातपस्वी, हे पुण्यवान्, तप के सिद्ध होते समय तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। अब भगवान् की निंदा क्यो करूँ ? मैं तो पतिहीना पापिनी हूँ। यदि सुत का मुँह देखती रहती, तो शोक कुछ कम हो जाता। स्त्रियो के लिए कुल का उद्धार करनेवाली सतान बहुत ही आवश्यक है।"

इस प्रकार विलाप करती हुई उसने अपने पुत्र के शरीर का अग्नि-संस्कार किया। उसके पश्चात् थोडी दूर पर तप करते रहनेवाले महात्माओ के पास जाकर बोली—"हे नीच तपस्वियो, तुम शिर पर जटाएँ धारण किये, शरीर पर विभूति मले हुए, जनेऊ धारण करके, आँखें बद किये, घोर निष्ठा-युक्त तपस्या का बहाना करते हो। सबलोग मिलकर बकरो का सिर काटते हो, उन्हें अच्छी तरह पकाकर पेट भर खा लेते हो और उनकी सूखी खालो को पहनकर कपट-वेष धारण किये निरपराधो की तरह रहते हो। हे गर्व से अघे, तुमलोगो ने पाप-बुद्धि से प्रेरित होकर मेरे पुत्र को किस प्रकार और क्यो मारा ?

यदि यह नही बताओगे, तो मै तुम्हें अवश्य निगल जाऊँगी और अपना क्रोध शान्त करूँगी। आज मै तुम्हें छोडनेवाली नही हूँ।'

इस प्रकार गरजती हुई वह उन मुनियो के निकट पहुँची। मुनि भयभीत होकर उससे बोले—'हे शूर्पणखा, सुनो। मुनि-वेष धारण किये हुए एक मानव, तुम्हारे पुत्र का वध करके, फल आदि इकट्ठा करके, उस पर्णशाला में जाकर अविचलित मन से रहता है। वहाँ जाओ, तो तुम्हें सभी बातो का पता चल जायगा।'

तब वह दुर्मति राक्षसी क्रोध से लक्ष्मण के चरण-चिह्न का अनुसरण करती हुई (राम की पर्णशाला की ओर) चली। इधर मुनि लोग हर्षित होने लगे कि यह बाघ को छेड़ेगी और अवश्य ही रघुवशी इसे उचित दड देकर भेजेंगे। सभी दैत्यो के नाश का यह मूल कारण बनेगी।

तब राक्षस राजा की बहन शूर्पणखा ने समय का विचार करके ऊँची नाक, उग्र भाव बडी-बडी आँखें. दाढो से युक्त जबड़े, विशाल उदर, बिखरे केश, खुला हुआ मुँह, काला शरीर, लबी जीभ, विशाल काया और क्रूर दृष्टि आदि धारण किये और स्त्री-रूप में राम के निकट इस प्रकार पहुँची, मानो वह अत्यत भयकर गति से आनेवाला विष हो या समस्त लोको को निगलने के निमित्त आनेवाला भूत हो, या दैत्य-वश के नाश का समय आसन्न जानकर पृथ्वी पर उतर आई हुई मृत्यु ही हो।

उसने जब इदीवरश्याम, सूर्य-प्रभा-सम तेजस्वी, सौंदर्य में काम को भी लजानेवाले, जगदभिराम, दैत्यो का नाश करनेवाले, राम को देखा, तो तुरत वह काम-पीड़ित हो गई। वह अपने-आपको भूल गई और तमोगुण से प्रेरित होकर अपने को समस्त लोक की सुंदरी मानने लगी। उस राक्षसी ने अपने चौड़े मुख से उनके (राम के) मनोज्ञ मुख की, अपने विशाल उदर से उनके क्षीण उदर की, और अपनी तिरछी आँखो से उनके विशाल नेत्रों की तुलना करके अपने में और रामचन्द्र में बिलकुल समानता देखने लगी। तब उसने निश्चय कर लिया कि यही मेरे लिए उचित पति है। तदुपरान्त उसने सूप-जैसे अपने मुख पर हँसी प्रकट करते हुए कहा—'धनुष-बाण धारण किये, पत्नी के साथ तुम इन अगम्य वनो में क्यो भ्रमण कर रहे हो? इस वेश में तुम क्यो रहते हो? तुम कौन हो और तुम्हारा नाम क्या है?

इन वचनो को सुनकर राम ने मद-मद हँसकर उस राक्षस-रमणी से कहा—हे मनोहरसुदरी, मेरा नाम राम है। मेरे पिता महाराज दशरथ है। इस पर्णकुटी में रहनेवाला मेरा अनुज है। यह पद्माक्षी मेरी पत्नी सीता है। पिता की आज्ञा से मैं इस वन में तपस्वियो की तरह रहता हूँ। हे युवती, तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है? आज हमारे यहाँ तुम क्यो आई हो? तुम्हारे हाव-भाव, तुम्हारा यौवन-रूप तथा तुम्हारी सुदरता, क्या अन्य किसी रमणी में है?'

इन बातो को सुनकर शूर्पणखा ने राम को सबोधित करके कहा—'मै विश्रवसु के पुत्र, समस्त ससार का शत्रु, विक्रम-यशोधन, अमित शक्तिशाली रावण की बहन हूँ। मेरा नाम शूर्पणखा है। मैंने तुम्हारे रूप की अपने रूप के साथ तुलना की है और मुझे

विश्वास हो गया है कि मेरा और तुम्हारा प्रेम उचित होगा । इसलिए मैं तुम प' आसक्त हूँ । मैं अपनी इच्छा से कोई भी रूप धारण कर सकती हूँ, कहीं भी जाने की क्षमता रखती हूँ, किसी भी वस्तु को प्राप्त कर सकती हूँ, कोई भी सुख पहुँचा सकती हूँ ! अब तुम्हारे साथ जो (स्त्री) है, वह किस काम की है ? मेरा सौदर्य देखो और मेर' पाणि-ग्रहण करो । यह (सीता) कुल तथा गुण मे हीन है, विकृतरूपिणी है, यह तुम्हारे लिए कहाँ योग्य है ? हे राम, मैं अभी इसे निगल जाऊँगी और तुम्हारी इच्छा के अनुसा' तुम्हारे साथ रति-क्रीडा में प्रवृत्त हो जाऊँगी ।'

इस प्रकार कहते हुए जब वह राम के पास आने लगी, तब राम ने सीता को अपने निकट बुला लिया । तरुणी की इच्छा को सुनकर, उसका परिहास करने के उद्देश्य से उसके रूप को देखकर हँसते हुए बोले—'हे सुदरी, मैं पत्नी के साथ रहता हूँ । यह मेरा विश्वास करके मेरे साथ वन में आई है, इसलिए इसे तुमको सौंपना उचित नही है । इतना ही नहीं, तुम सौत के साथ सुख से कैसे रह सकोगी ? अगर यह नही होती, तो मैं पहले ही तुम्हें ग्रहण करता । अब भी कुछ बिगडा नही है । वह देखो, मेरा भाई है, श्रेष्ठ तपोधन है, वह मुझसे भी अधिक सुदर है । वह सदा अपने लिए अनुकूल, चचल तथा विशाल नेत्रवाली स्त्री की अभिलाषा करता रहता है । इसलिए वही तुम्हें ग्रहण करने में समर्थ है ।'

इस पर शूर्पणखा लक्ष्मण के पास गई और कहने लगी—'हे लक्ष्मण, मैं तुम पर आसक्त होकर तुम्हारे साथ विवाह करने के लिए आई हूँ । मुझे तुम ग्रहण करो ।' लक्ष्मण समझ गये कि राम के भेजने पर यह मेरे पास आई है । इसलिए वे बोले—'हे सुदरी, पहले तुमने अपने मन से मेरे भाई से प्रेम किया था । अत, तुम्हें ग्रहण करना मेरे लिए उचित नही है । सौदर्य में सीता तुम्हारी समता नही कर सकती । तुम्हारा प्रेम और तुम्हारे हाव-भाव आदि यदि एक बार और राघव देखेंगे, तो वे सीता को छोडकर तुम्हें ग्रहण करेंगे । हे रमणी, इसलिए तुम राम से ही प्रार्थना करो ।'

सौमित्र की बातो पर विश्वास करके वह तमोगुण-सपन्न स्त्री, अपने भद्देपन का विचार न करके पुन राम के पास गई और रति-क्रीड़ा के लिए प्रार्थना करने लगी । तब राम ने कहा—'हे सुदरी, तुम उसी (लक्ष्मण) के पास जाओ ।' तब युवती पुन लक्ष्मण के पास जाकर प्रार्थना करने लगी । इस प्रकार अनुज अग्रज को, अग्रज अनुज को दिखाने लगे । वह युवती विकल मन के साथ बडी अनुचित आशा लिये मन्मथ के सूत्र के द्वारा नचाई जानेवाली कठपुतली की तरह, यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ, आने-जाने लगी । अंत में वह उन दोनो की रसहीन बातो से तग आकर क्रुद्ध होकर बोली—'हे मानव, एक अकिंचन स्त्री के समान मुझे तग करना क्या तुम्हारे लिए उचित है ? अगर मै क्रोध करूँ, तो मानवो की कौन कहे, इद्रादि देवताओ को भी खा जाऊँगी । अब मैं इस स्त्री के साथ समस्त ससार को पीसकर खा जाऊँगी ।' यो कहती हुई उसने बडा भयकर रूप धारण कर लिया और मृत्यु के समान अट्टहास करती हुई वह (सीता के) निकट जाने लगी । तब राघव बोले—'हे सौमित्र, यह जानकी के ऊपर आक्रमण करने

आ रही है। अब इससे परिहास छोड़कर, इसे दण्ड दो।' तब लक्ष्मण ने बाँबी से निकलनेवाले विष-ज्वालाओ से युक्त साँप-सा अपना खड्ग म्यान से निकाला और उस राक्षसी की नाक और कान काट लिये। तब वह रोती-कलपती, विवश हो, टूटे हुए शृगवाले लाल पर्वत के सदृश (नाक-कान से) रक्त बहाती हुई, वहाँ से भाग गई। वहाँ से भागकर वह चतुर्दश सहस्र श्रेष्ठ निशाचरो के निलय, खर के निवास-स्थान में पहुँची।

१२ खर-दूषण का वध

खर ने जब उस (शूर्पणखा)का रूप देखा, तब वह डर गया और पूछा—'किसने निर्भय होकर तुम्हारा रूप ऐसा विकृत कर दिया है? काले नाग को जानकर भी किसने उसे पैर से कुचला है? किसने मृत्यु को इस प्रकार छेडा है? मुझे उसका नाम बताओ। मैं शीघ्र उसका रक्त और मास तुम्हें ला दूँगा। इस प्रकार प्रश्नो की वर्षा करनेवाले खर को देखकर वह स्त्री भर्राई हुई विकृत आवाज में रोती हुई, अत्यधिक लज्जा से सर झुकाये हुए, इस प्रकार कहने लगी—'वन में जहाँ मैं रहती हूँ, मेरा पुत्र सूर्य के प्रति अत्यत निष्ठा से तप कर रहा था। तब मुनि-वेशधारी अत्यत साहसी, मोहनाकार राम-लक्ष्मण नाम के राजकुमारो ने विना भय के उसका वध कर डाला। मैंने अपने पुत्र की अत्येष्टि-क्रियाएँ की और वन में रहनेवाले उन सुन्दर आकारवाले राजकुमारो के पास गई और उनपर मोहित हो गई। उन्होंने अपनी अमित शक्ति के प्रताप से मेरी ऐसी दुर्गति कर दी है। मैं दुखी होती हुई तुम्हारे पास आई हूँ। तुम तुरत उनके पास जाओ और अपनी पूरी शक्ति लगाकर उनका वध करके उनका मास ला दो। इस तरह मेरे हृदय को शाति पहुँचाओ।'

इन बातो को सुनकर खर ने कहा—'इस छोटी-सी बात के लिए मेरे आने की आवश्यकता ही क्या है? उनकी शक्ति ही कितनी है? मैं अपने अनुचरो को (तुम्हारे साथ) भेजूँगा। उन्हें ले जाओ। इस प्रकार कहकर उसने यम के-से उग्र तेजवाले (भटो) को बुलाकर कहा—'तुम इस शूर्पणखा के साथ जाओ और उन मानवो का वध करके मेरी बहन शूर्पणखा को उनका रक्त पिला दो।'

वे राक्षस वायु के साथ आनेवाले दुर्वार मेघो के समान, बिजलियो के-से शूल घुमाते हुए राम और लक्ष्मण-रूपी सूर्य-चद्रो पर आक्रमण करने लगे, और घोर गर्जन करने लगे। तब राम ने अपने दीप्तिमान् धनुष तथा अन्य आयुधो से युक्त हो उनका सामना किया। उन्होंने राक्षसो से फेंकी हुई बिजली तथा शूलो को अपने शस्त्रो से काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया। उसके पश्चात् (राम ने) भयकर वज्र-से बाणो से उनके कठो को काट डाला और तब उनके सिर पके हुए फलो के समान गिर पड़े और वे अनुपम बाणो के आघात से सीधी शिलाओ के समान पृथ्वी पर लुढक पड़े।

तब शूर्पणखा अत्यत वेग से भागकर सभी लोको को भयभीत करनेवाले खर से उन राक्षसो की मृत्यु का तथा रघुराम की महिमा-समन्वित युद्ध का समाचार कहा। आहुति के पड़ने से उत्तेजित होकर भभक उठनेवाली अग्नि के समान क्रुद्ध होकर खर अत्यधिक आवेश से भरे दूषण, त्रिशिर आदि चौदह सहस्र बलशाली राक्षस वीरो को साथ

लेकर चला। यह देखकर देवताओ के साथ सारा स्वर्ग काँप गया और सभी पहाडो से युक्त पृथ्वी हिल उठी। खर ने रण-भेरी बजाई और सुमेरु-पर्वत की आभा के समान दीखनेवाले चितकवरे रग के अश्वो से युक्त, मणिमय कूवर तथा दस स्वर्णमय चक्रो से समन्वित, रण में विजय प्रदान करनेवाले, धनुष-बाण और खड्गो से भरे, किंकिणि-ध्वनि से मुखरित होनेवाले रथ पर चढकर वह रण-विद्या-विशारद राम पर आक्रमण के लिए निकल पडा। (उसके पीछे-पीछे) बाज के पखो के समान बाणवाला, बिजली की समता रखनेवाला, त्रिशिर (नामक राक्षस) सभी दिशाओ की काति को मलिन करता हुआ, सूर्य की काति के समान उज्ज्वल, श्रेष्ठ गधो के समूह से खीचे जानेवाले स्वर्ण से आच्छादित रथ पर बैठकर बड़े गर्व के साथ उस महायुद्ध के लिए रवाना हुआ। उसके आगे-आगे मयूर की छटा को मात करनेवाले, पवन की गति का भी तिरस्कार करनेवाले, काति-युक्त शीघ्र-गामी अश्व-समूह के द्वारा खीचे जानेवाले उत्तम रथ पर बैठकर, अत्यधिक उत्साह से बडे ठाट-बाट के साथ (खर) जा रहा था। पृथुग्रीव, श्येनगामी, विहगमुख, मेघमाली, महामाली प्रलयकाल की कालाग्नि की समता करनेवाला सर्पमुखी, कालकार्मुक, दुर्जय, यज्ञ-शत्रु, परुष, करुणा-रहित, करवीरनेत्र और रुधिराशन नामक बारह प्रतापी राक्षस वीर, बारह आदित्यो के समान, बडी श्रद्धा से खर के पीछे जा रहे थे। त्रिशिर, प्रमाथी, रणकुशल, महाकपाल और स्थूलाक्ष, (आदि राक्षस) उस रण-मदमत्त सेना के साथ चारो ओर सावधान होकर चल रहे थे।

(इस प्रकार जब राक्षस-सेना निकली), तब भयकर गज-समूहो के चिंघाडने, घोडो के हिनहिनाने, रथो के चलने तथा पदचरो के हुँकारने की ध्वनि तथा पताकाओ के फडफड़ाने की ध्वनि से पृथ्वी धँस गई, दिशाएँ चूर-चूर हो गई, समुद्र उमड़ने लगे और सभी भूत थर-थर काँपने लगे। सेना के चलने से जो धूल उडी, उसने आकाश को ऐसा ढक दिया कि सदेह होने लगा कि रवि-मडल है या नही। इसी समय खर की पताका पर चील बैठने लगे। घोडे घुटने टेकने लगे, रक्त की वर्षा होने लगी, सियार रोते हुए सेना के बीच से दौडने लगे, नक्षत्र टूटने लगे, पक्षियो की ध्वनि चारो ओर सुनाई पडने लगी। इसी प्रकार के कितने ही उत्पात पृथ्वी और आकाश में होने लगे। फिर भी खर बिना भयभीत हुए आगे बढता गया और दण्डक-वन में पहुँच गया। अनुपम आकारवाले राम उस कोलाहल को सुनकर पर्णशाला के बाहर आकर खड़े हुए और पृथ्वी तथा आकाश में दीखने-वाले अपशकुन को देखकर, शीघ्र अपने अनुज को बुलाया और कहा—'सौमित्र, युद्ध-सूचक चिह्न कितने ही दिखाई पड रहे हैं। कदाचित् वह निंद्य और नकटी राक्षसी अपने साथ और सेना ला रही है। वह सुनो, सेना का रणघोष सुनाई पड रहा है। वहाँ देखो, सेनाओ के चलने से धूल आसमान में छा रही है। जानकी का अब यहाँ रहना ठीक नही। इसलिए सावधान होकर तुम शीघ्र ही उसे अपने साथ ले जाकर पर्वत की गुफा में ठहरो।'

तब लक्ष्मण ने कहा—'हे सूर्यवश-तिलक, आपको यहाँ छोडकर मैं कैसे जा सकता हूँ? आप ही सीताजी के साथ पर्वत की गुफा में जाकर देखते रहिए। मैं आपकी कृपा से इन दुर्वार राक्षसो का वध करूँगा।' ये बातें सुनकर राम ने कहा—'इनसे युद्ध करना

मेरे लिए कौतुक का विषय होगा । इसलिए तुम यहाँ मत रहो । जानकी को साथ लेकर जाओ ।' (इन बातों को सुनकर) लक्ष्मण सीता को साथ लेकर पर्वत-गुफा में चले गये ।

तब राम प्रलयकाल के रुद्र के समान क्रुद्ध होकर अपना प्रताप प्रकट करते हुए, कृपाण, कवच, धनुष-बाण धारणकर, श्रेष्ठ तूणीर-युगल (पीठ पर) बाँधकर और पर्वत को भी धनुष के आकार में झुकानेवाले शिव की तरह, अपने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर, उस प्रत्यंचा की टंकार करने लगे । उस धनुष की टंकार की ध्वनि सारे आकाश में गूँजने लगी । इन्द्र, दिक्पाल और अन्य देवता अपने रत्न-खचित विमानों पर आसीन हो यह देखने की उत्सुकता प्रकट करने लगे कि राम अकेले खर तथा दूषण आदि अत्यन्त पराक्रमी चौदह सहस्र राक्षसों का वध कैसे करते हैं ? सभी देवर्षि स्वर्ग में कई बार आशीर्वाद देने लगे कि महात्मा राम इन मायावी राक्षसों का वध करने में सफल हों । राम का तेज सभी वन, वृक्ष, पृथ्वी तथा आकाश में ऐसा व्याप्त हुआ, मानो दस सहस्र कोटि सूर्यों का तेज समस्त लोकों में व्याप्त हो गया हो ।

इस प्रखर तेज के कारण जड़वत् हो, सभी उत्साह को खोकर, आँखें चौंधिया जाने के कारण अत्यंत दीन दीखनेवाले राक्षस-समूह को देखकर, खर ने दूषण से कहा—'(हे भाई), क्या कारण है कि हमारी सेना की गति मंद पड़ गई है । क्या शत्रु-सेना ने उसका सामना किया है ? या कोई नदी बीच में पड़ गई है ?'

तब दूषण ने सारा समाचार जानकर कहा—'हे दनुजेश्वर, राम का उद्दण्ड तेज सारे संसार में व्याप्त हो गया है । इसलिए हमारी सेना की गति मंद पड़ गई है ।'

यह बात सुनकर खर अत्यंत क्रुद्ध हुआ और सेना को डाँट-फटकार बताते हुए, भयंकर रीति से सारी सेना का संचालन करते हुए वह आगे बढ़ा । अत्यधिक भुजबल, आटोप तथा पराक्रम से समन्वित उस राक्षस-सेना ने गज, रथ, तुरग आदि से युक्त हो, अत्यंत वेग से काकुत्स्थ-वंशज राम को इस तरह घेर लिया, जैसे अग्नि-समूह एक साथ प्रचंड दावानल पर आक्रमण कर दे । (इस प्रकार राम को चारों ओर से घेरकर) वे उन पर, शर, खड्ग, त्रिशूल, करवाल, भाले, मुद्गर, परशु, गँडासा, गदा, पाश, चक्र आदि विविध आयुधों की वर्षा करने लगे । देवता भयभीत हो उठे । मेघों से आच्छादित भास्कर के समान थोड़ी देर के लिए राम दिखाई भी नहीं पड़े । किन्तु तुरन्त उन्होंने ऐन्द्रजालिक की तरह राक्षसों के द्वारा चलाये गये सभी विविध शस्त्रास्त्रों को नष्ट कर दिया । इससे हर्षित होकर सभी देवता उनकी प्रशंसा करने लगे । अविरल गति से राक्षसों के द्वारा बरसाये जानेवाले शस्त्रास्त्रों को बीच में ही नष्ट करते हुए (राम ने) परिवेश (मंडल) से घिरे हुए मध्याह्न-सूर्य के समान अपने चारों ओर अपने प्रखर तेज का घेरा बनाये हुए, कोदंड को कुंडलाकार में झुकाकर, युद्ध के उत्साह से फड़कनेवाली भुजाओं से युक्त हो, अपने तूणीर के अनगिनत बाणों का एक साथ संधान करके, अपने आगे-पीछे तथा दोनों पार्श्व-भागों में व्याप्त राक्षस-सेना पर उनका प्रयोग किया । उनके इस शर-प्रयोग से मत्त हाथी और योद्धा कट मरे, अश्व और घुड़सवारों के टुकड़े-टुकड़े हो गये, पदचर सैनिक और उनके आयुध नष्ट-भ्रष्ट हो गये । शिर और शर उनके सामने कट-कटकर

गिरने लगे, योद्धाओ के अग और रथो के भाग पृथ्वी पर गिरने लगे गुण-सहित धनुष तथा कवच चूर-चूर हो गये, रथी और सूत पृथ्वी पर लोटने लगे, श्वेत छत्र और पताकाएँ टूटने लगी, और मांस-खंड छिन्न-भिन्न होकर गिरने लगे। इस प्रकार, युद्ध ने भयकर रूप धारण किया।

सूर्य के प्रकाश से जिस प्रकार अधकार तितर-बितर हो जाता है, वैसे ही राम के असमान पराक्रम से नष्ट होने के बाद बची हुई राक्षस-सेना दर्प खोकर खर की शरण में पहुँची। खर ने उनको प्रोत्साहित किया और दूषण को युद्ध करने के लिए भेजा। बची हुई सेना के साथ वह अपनी शक्ति दरसाते हुए, शीघ्र ही राम के निकट आ पहुँचा और उनपर ताल, साल (आदि वृक्ष), शिलाएँ तथा विविध अस्त्रो की वर्षा करने लगा। (इन अस्त्रो के लगने से) राम के शरीर से रक्त-प्रवाह होने लगा। तब क्रोध से आँखें लाल किये हुए राम ने उन राक्षसो पर गाधर्व-अस्त्र चलाया। उस शक्ति-सपन्न अस्त्र के तेज के आगे गज, रथ, तुरग, पदाति राक्षस-सेना टिक न सकी। वह अस्त्र अपने भयकर तेज से दनुज-वर्ग को नष्ट-भ्रष्ट करके, उनका सहार करने लगा। रण-भूमि में जहाँ देखो, अश्व तथा गज के धड़, मुड, आँत, भेजा तथा रक्त का प्रवाह दिखाई पड़ने लगा। शाकिनी, भूत, पिशाच, बैताल आदि झुड-के-झुड वहाँ पहुँचकर कहने लगे—'यह लो, राम के युद्ध-रूपी धर्मशाला में हाथियो के शिर-रूपी घट में मोती-रूपी चावल का भात पकाया गया है। चलो हम सब खायें।'

वे सब भूत-प्रेत अत्यत हर्ष से पंक्तियो में बैठ गये; रक्त-चदन, नवरक्त-अक्षत रक्त-सकल्पपूर्वक धारण किया, चमडा-रूपी केले के पत्ते बिछाये, खोपडी-रूपी दोने सजाये; शर की अग्नि में पकाये गये मास को भात, मस्तिष्क को दाल, चर्बी को घृत, विभिन्न अगो के मास को शाक, छोटी आँतो को पायस, हृदय-पिंड को मिठाई, नये रक्त को मीठा जल मानते हुए, उसे सब प्रकार से विप्रोचित भोजन समझकर छककर खाया। भोजनोपरात सब एकत्रित हुए कुछ ने आशीर्वाद दिये कि—'श्रीरामचन्द्र ! ते विजयोऽस्तु।' तो कुछ ने पीछे से कहा—'तथास्तु।' कुछ भूतो ने हाथियो के दाँत छडी की तरह हाथ में धारण कर लिया, तो कुछ ने अस्थियो की मालाएँ कठाभरणो के रूप में धारण कर ली और हाथियो की घटिकाओ का ताल देते हुए बड़े आनद से अपना निंदनीय रूप प्रकट करना शुरू किया।

तब मदमत्त वैरियो के लिए भयंकर रूपवाला दूषण अत्यत दुःखी होकर अपने समान बलशाली पाँच सहस्र योद्धाओ को राम पर आक्रमण करने के लिए भेजा। उन्होंने तीनो लोको को कँपाते हुए, राम पर आक्रमण किया, तो राम ने अपनी धनुर्विद्या की कुशलता प्रदर्शित करते हुए, अत्यत क्रुद्ध दृष्टि धारण किये हुए एक-एक राक्षस पर एक-एक बाण का प्रयोग कर उन सब का वध कर दिया। कुछ लोगो को एक साथ इकट्ठा करके भी उनका सहार किया। यह देखकर दूषण अत्यत क्रोध से राम को कटु वचन कहते हुए, अपना रथ राम के सम्मुख ले गया और उनपर वज्र तथा काल-नाग की समता करनेवाले बाणो की वर्षा करने लगा। राम ने उन बाणो को बीच ही में तोड़ दिया, उसके

धनुष के टुकडे-टुकड़े कर दिये । रथ से विहीन होन से दूषण क्रोधोन्मत्त होकर भयकर, प्राणातक, विजयशील यम की गदा की समता रखनेवाले मुद्गर को घुमाते हुए राम पर दौडा । तब राम ने दो तेज बाणो को चलाकर उसके दोनो हाथ काट डाले और एक घातक तीर उसके हृदय में मारा । तब वह राक्षस पृथ्वी पर ऐसे गिर पडा, जैसे मत्तगज दाँतो के टूटने से ढेर होकर पृथ्वी पर गिरता है । उसको गिरा देखकर प्रमाथी, महाकपाल तथा स्थूलाक्ष नामक तीन दण्ड-नायको ने परशु, कृपाण तथा भाला उनपर चलाये, तो राम ने उनके अस्त्रो तथा उनके मस्तको को एक-एक करके गिरा दिया ।

तब खर ने अपने बारह सेनापतियो को उत्तेजित किया । उन बारहों सेनापतियों ने अपने दुर्वार शौर्य से वीर राघव पर आक्रमण किया और अलग-अलग उनसे युद्ध करने लगे । तब राम ने वज्र की धार के समान पैने तथा भयकर बाणो के प्रयोग से अपनी शक्ति दरसाते हुए श्येनगामी का अत कर डाला; कालकार्मुक का वध किया; करवीरनेत्र को गिरा दिया; सर्पास्य का गर्व-भग किया, विहगम का सहार किया, यज्ञशात्रव की शक्ति को नष्ट करके उसे दण्ड दिया; दुर्जय तथा महामाली का वध किया; मेघमाली का सहार किया, रुधिराशन का अत किया और खर तथा त्रिशिर को छोड़कर अन्य सभी राक्षसो का सहार कर डाला ।

इस प्रकार पवन के चलने से गिरनेवाले पके पत्तो के समान सारी सेना नष्ट हुई देखकर त्रिशिर ने अत्यत क्रोध से राम के निकट अपना रथ चलाया और सिंह-गर्जन करते हुए, राम पर ऐसे आक्रमण किया, जैसे मत्त हाथी सिंह पर आक्रमण करता है । धनुष की टंकार करते हुए उसने एक साथ असख्य बाण राम पर चलाये । राम ने बड़े क्रोध से प्रतिरोधक बाण चलाकर उसके बाणो को बीच में ही नष्ट कर दिया । तब उसने अपने नाम के प्रताप के अनुरूप राम के ललाट पर तीन बाण छोडे । जब वे तेज बाण राम के ललाट पर लगे, राम हँसने लगे और त्रिशिर के वे तीनो बाण कुसुमो की दशा को प्राप्त हो गये । तब राघव बोले—'अब मैं ऐसे चौदह दारुण बाण तुम पर छोड़ूँगा, जो चतुर्दश भुवनो में प्रवेश करने पर भी तुम्हें पकड़कर तुम्हारा वध कर देंगे । अब तुम उनका सामना करो । इस प्रकार कहते हुए राम ने चौदह बाण छोडे । वे बाण उस राक्षस के हृदय को पार करके पृथ्वी में जा गडे । तब राघव ने चार और बाणो का प्रयोग करके उसके रथ को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और तत्क्षण ही दस अस्त्र उस राक्षस के उर पर चलाये । उस सुरवैरी (त्रिशिर) ने क्रोधोन्मत्त हो राम पर शूल चलाया, किन्तु राम ने चार बाणो से शूल को काट दिया । इसके पश्चात् उन्होंने तीन अस्त्र चलाकर उस राक्षस के तीनो सिर काट डाले । त्रिशिर पृथ्वी पर ऐसे गिरा, जैसे कोई वृक्ष तीन शाखाओ के साथ समूल कटकर, शोभा-रहित हो, पृथ्वी पर गिर पडता है ।

त्रिशिर को गिरते हुए देखकर, खर राम के प्रताप का विचार करके विस्मित हो गया । वह तुरत अत्यधिक क्रोध से अपना रथ राम के सामने ले गया और राम पर भयकर बाण-वर्षा करने लगा । राम भी अस्त्र चलाने में अपना कौशल दिखाते हुए खर पर प्रतिबाण चलाने लगे । खर के तथा राघव के बाणो से पृथ्वी तथा आकाश भर गये।

सूर्य की दीप्ति मद-सी हो गई और दिशाओ में अधकार व्याप्त हो गया। न खर राघव से भीत था, न राघव ही खर से भीत थे। दोनो विजय की आकाक्षा से दो हाथियो के समान, दो सिंहो के समान और महिष-द्वय के समान आपस में जूझ गये और अपने बाहुबल को प्रदर्शित करने लगे। तब खर ने एक अर्द्धचद्राकार बाण से राम के हाथ के धनुष को काट डाला, उनके कवच को छिन्न-भिन्न कर दिया, और उनके शरीर को शर-वर्षा से भर दिया। उन बाणो की परवाह किये बिना ही सूर्यवशी राम ने अगस्त्य से प्राप्त वैष्णव-चाप का तुरत सधान किया, धनुष की टकार की और तेज बाण चलाकर उस राक्षस की पताका को काट डाला। तब उस राक्षस ने राम के हृदय का विदारण कर सकने की शक्ति रखनेवाले चार बाण चलाये। रक्त-सिक्त अगो से राम ने उस राक्षस को विविध बाणो से पीडित करते हुए एक प्रबल अस्त्र से उसका धनुष तोड़ दिया, चार बाणो से घोडो को मार गिराया और सारथी को मार डाला। उनका धनुष ऐसा दीखने लगा, मानो वह अपनी बाणाग्नि में रथ की पूर्णाहुति देना चाहता हो। तब रथ से वचित हो खर प्रलयकाल के रुद्र की भाँति हाथ में गदा लिये हुए राम की ओर आने लगा तो पहाड़ो के साथ पृथ्वी काँप गई। उस दुष्ट दैत्य को देखकर रघुराम ने बडे दर्प के साथ कहा—'हे राक्षस, हे नीच, अब भी तुम्हारी शूरता किस काम की ? तुम्हारी सेना नष्ट हो गई; तुम्हारे बधु कट मरे, तुम्हारी अस्त्र-सपत्ति समाप्त हो चली, इस दण्डक वन में अपने अद्वितीय शौर्य से बढते हुए, यहाँ के पुण्यात्मा मुनियो को मारने के पाप-फल को भोगने का (तुम्हारा) समय आ गया है। उसे अब भोगो, मैं अभी तुम्हारा वध करता हूँ।'

इन वचनो को सुनकर खर क्रोध से जलते हुए बडे घमंड के साथ बोला—'हे राघव, ऐसा गर्व क्यो करते हो ? युद्ध में कुछ क्षुद्र राक्षसो को मारने से (गर्व से) फूलकर अपनी प्रशसा आप क्यो कर लेते हो ? कुलीन जन कही अपनी प्रशसा आप करते है ? यह लो, मैं गदा लिये हुए आया। मुझसे भिडो और मेरी शक्ति देखो। देवता तथा असुर मेरी ओर दृष्टि तक नही उठा सकते, तब क्या तुम मेरे आगे खडे रहने योग्य शूर हो ? मैं एक-एक करके तुम्हारी मास-पेशियो को काटकर अपनी बहन को दे दूँगा।'

इस प्रकार कहकर उसने अपनी गदा घुमाकर उसे राम पर फेंका। पवन की शीघ्र गति, सूर्य का तेज, अग्नि का ताप, और बिजली की कठोरता मानो उस गदा के रूप में आ रही हो। उस गदा को, अत्यन्त प्रचड वेग से अपनी तरफ आते देखकर राम ने उस गदा के लबे काड (भाग) को खड-खड कर दिया और बोले—'क्यो रे, तुम्हारी गर्वोक्तियाँ तथा घमड चूर हुए कि नही ?' तब उसने (खर) गर्जन करते हुए एक वृक्ष को उखाड़कर अपने बाहुबल से उसे घुमाकर 'लो, मरो'—कहते हुए राम पर फेंका। राघव ने तुरंत उस वृक्ष को काटकर सूर्य की सहस्र किरणो की आभा के समान उज्ज्वल सहस्र शरो को उस पर छोडा, जिससे वह अत्यत व्याकुल हो उठा। उसके शरीर में रक्त की धाराएँ बहने लगीं। फिर भी वह अपना समस्त साहस एकत्रित करके राम के आगे आया। उसे देखकर राम ने, दया त्यागकर, समस्त भुवनो को व्याकुल करते हुए, ऐन्द्रास्त्र का सधान करके

उस पर चलाया। तव वह राक्षस (खर) अपना सारा अकड़ खोकर वज्रपात से चूर-चूर होकर पृथ्वी पर गिरनेवाले पर्वत के समान गिर पड़ा। डेढ मुहूर्त्त के अतर (तीन घड़ियो) में अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले खर-दूषणादि चौदह सहस्र राक्षसो का (राम ने) इस प्रकार वध किया, यह देखकर सुरो ने राम की भूरि-भूरि प्रशसा की। मुनियो ने आशीर्वाद दिये, देवताओ ने पुष्प-वृष्टि की। पर्वत की गुफा से शीघ्र जानकी को साथ लिये हुए लक्ष्मण बाहर आये, राम को प्रणाम किया और उनकी प्रशसा करते हुए, उनके हाथ में शोभायमान होनेवाले धनुष को ले लिया। हर्ष से भरे हृदय से जानकीरमण पर्णशाला में गये और युद्ध में मरे हुए राक्षसो का वृत्तात सीता को सुनाते हुए वडी प्रसन्नता से रहने लगे।

१३. लंका में अकंपन तथा रावण का वार्त्तालाप

तव अकपन नामक राक्षस प्रकपित हो आर्त्तनाद करते हुए, वडे वेग से लका गया और रावण को देखकर कहा—'हे असुराधिपति, चौदह सहस्र राक्षस वीर तथा खर-दूषण आदि काकुत्स्थ राम के शरो की अग्नि में भस्म हो गये हैं। यह सत्य है।' यह सुनकर रावण आश्चर्य-चकित हुआ और उस अकपन को रोषपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—'क्यो रे, कैसी वात कर रहा है? कौन है वह राम? क्या वह कोई कुबेर है, या इद्र है, या यम धर्मराज है? वे तीनो मिलकर भी तो हमारे खर-दूषण को जीत नही सकते। ऐसी दशा में वह अकेले उन प्रतापी वीरो को किस प्रकार जीत सका, स्पष्ट रूप से समझाओ। हम तुम्हें अभय-दान देते है।' तव अकपन निर्भय होकर राघव का वृत्तात, उनके साहस और शौर्य, खर-दूषण आदि राक्षसो का वध, सौमित्र और जानकी का वृत्तात आदि से अत तक कह सुनाया।

तव रावण अत्यत क्रुद्ध हुआ और युद्ध करने के लिए उद्यत होने लगा। उससे घनिष्ठ मित्रता रखने के कारण अकपन ने रावण से कहा—'हे राक्षसराज, रघुराम को जीतना क्या पक्षिवाहन (विष्णु) या शूलपाणि (शिव) के लिए भी सभव हो सकता है? वह निपुण (व्यक्ति) वात-की-वात में आकाश तथा पृथ्वी को जोड़ने अथवा तोड़ने की शक्ति रखता है; दावाग्नि का या पवन का अवरोध करने तथा मुक्त करने में वही समर्थ है। सभी लोको का नाश करने या उनका पोषण करने की शक्ति उसी में है, समस्त ब्रह्माण्ड की रक्षा करने की क्षमता उसी में है, इसलिए मै आपको एक उपाय बताता हूँ। युद्ध की कोई आवश्यकता नही है। उस काकुत्स्थ राम की देवी, लावण्य का समुद्र (सीता) को यदि आप ला सकें, तो राम उसके वियोग की अग्नि में भस्म हो जाएगा।

यह सुनकर उस राक्षसराज ने उसी को उचित समझकर अकपन की भूरि-भूरि प्रशसा की और स्वर्ण-रथ पर आरूढ होकर समुद्र पार किया और धुरधर मत्री ताड़का-पुत्र मारीच के पास पहुँचा। उसने उसे खर-दूषण आदि राक्षसो के वध का वृत्तांत सुनाया और कहा—'मै राम की स्त्री सीता को हरकर ले जाने के उद्देश्य से तुम्हारे पास आया हूँ।'

तव मारीच ने कहा—'हे रावण, यह कैसी इच्छा है? किसी अभाव के विना, समस्त भोगो का अनुभव करके भी ऐसी दुष्ट वुद्धि तुम में कैसे उत्पन्न हुई? किस दुष्ट-वुद्धि

मंत्री ने तुम्हें ऐसा परामर्श दिया है ? तुम उसे अपना शत्रु जानो । मैं तुम्हारा हित चाहनेवाला मंत्री हूँ, अन्य नहीं हूँ । यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है । इस पृथ्वी पर किसी भी पतिव्रता स्त्री को प्राप्त करने की इच्छा अनुचित ही है । ऐसी इच्छा तुम करोगे तो तुम्हारे वंश का सर्वनाश हो जायगा । इसलिए हे दानवनाथ, तुम लंका को लौट जाओ और प्रसन्नता से रहो । अपनी स्त्रियों के साथ सुख-भोग प्राप्त करो ।' मारीच की इन बातों को सुनकर रावण लंका लौट गया ।

१४ शूर्पणखा का रावण से दीनालाप

खर, दूषण आदि राक्षसों को राम की शर-वह्नि में भस्म हुए देखकर शूर्पणखा अत्यंत संतप्त होती हुई लंका पहुँची । देव-सभा के बीच चिंतामणि से निर्मित सिंहासन पर विराजनेवाले इंद्र के समान, सम्माननीय सभा-मंडप के बीच सिंहासन पर आसीन, गरुड, उरग, अमर तथा गंधर्व-युवतियों की सेवाएँ प्राप्त करनेवाले, ऐरावत के भयंकर दाँतों के अग्रभाग से रगड़ खाये हुए उर को श्रेष्ठ आभूषणों से आच्छादित रखनेवाले, सारे संसार में एकमात्र भीषण आकारवाले, संग्राम में भयंकर रूप से गर्जन करनेवाले, शत्रुओं का सर्वनाश करनेवाले रावण को देखकर शूर्पणखा रोती हुई हाथ जोड़कर अपने हृदय के विषाद को प्रकट करती हुई बोली—'हे असुरेन्द्र, तुम समझते हो कि मैं समस्त लोकों में अद्वितीय शक्तिशाली हूँ, तुम गर्व करते रहते हो कि मैंने तीनों लोकों के शत्रुओं का सर्वनाश किया है । तुम प्रसन्नता से फूले रहते हो कि मेरा राज्य अकंटक है । वही समस्त लोकों का स्वामी कहला सकता है, जो गुप्तचरों के द्वारा (अन्य) राजाओं का, (उनके) राजकोषों का, उनकी इच्छाओं का, तथा रहस्यों का पता लगाकर कार्य करता रहता है । तुम्हारी भयंकर मायाओं की शक्ति, तुम्हारा प्रताप, तुम्हारा बाहुबल और तुम्हारा वैभव—ये सब इसके पहले सफल होते थे, अब नहीं । इसका कारण भी सुन लो । भानुकुल का पावन व्यक्ति राम तपस्वी के रूप में अपने पिता महाराज दशरथ की आज्ञा से अपने प्रिय अनुज लक्ष्मण तथा पत्नी सीता के साथ दंडक वन में आया है और मुनियों पर दया करके उन्हें अभय-दान देकर पंचवटी में बड़े आनंद के साथ रहता है । मैं उस पर आसक्त होकर उसके निकट पहुँची, तो क्रोध में आकर उसने मेरी ऐसी दुर्गति कर दी । मैंने खर से सारा वृत्तांत कहा, तो उसने अत्यंत क्रुद्ध होकर प्रलयकाल के रुद्र के समान भयंकर रूप धारण कर, दूषण तथा त्रिशिरों के साथ चौदह सहस्र मानव-भक्षक वीर राक्षस-सैनिकों के सहित राम पर आक्रमण किया और रघुराम के बाण-रूपी अग्नि-शिखाओं में भस्मीभूत हो गये । इसलिए अब मेरे अपमान को दूर करनेवाले तुम्हारे सिवा और कौन है ? मेरे मुख की विकृति देखो और मेरा दुःख तुम अपना दुःख मानो ।'

उसकी बातें सुनकर दानवनाथ विस्मित हुआ और (थोड़ी देर तक) सोचने के बाद उस राक्षसी से कहा—'मैंने अपने ज्ञातियों का वध तथा तुम्हारे वहाँ पहुँचने आदि का समाचार सुना है । उसे रहने दो । तुम तो मुझे यह बताओ कि उस राम की शक्ति कैसी है ? उसका कैसा रूप है ? उसकी क्या अवस्था है ? उसका आकार कैसा है ? उसके

भाई का रूप कैसा है ? उसकी स्त्री सीता का रूप कैसा है ? तुम अपनी देखी हुई बातों का पूरा विवरण दो, तो मैं उनकी रक्त-धाराओं से तुम्हारी प्यास बुझाऊँगा ।'

तब शूर्पणखा बडी प्रसन्नता से यो कहने लगी—'रामचद्र उन्नत वक्षवाला, श्यामालोत्पल वर्णवाला, सभी लोकों में श्रेष्ठ रूपवान्, सूर्य-मडल के तेज को परास्त करनेवाला तेजस्वी, धीर, आजानुबाहु, महान् पराक्रमी और कमलो के समान नेत्रवाला है । उसी योद्धा ने अकेले खर, दूषण आदि राक्षसो को परास्त किया था । सौमित्र हेमवर्णवाला है और दूसरी बातो में अपने भाई के समान ही सभी गुणो से सपन्न है । उसी ने मेरी ऐसी गति कर दी है । अब सीता की सुदरता के सबध में भी जान लो । मैंने देवताओ की स्त्रियो को, राक्षस-स्त्रियो को, किन्नर-अगनाओ को, भोगिनी कामिनियो को, गधर्व-पत्नियो को, यक्ष-कांताओ को अच्छी तरह देखा है । मैंने पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती तथा रति को भी देखा है । मैंने रभा, शची तथा त्रिभुवनो में रहनेवाली सभी स्त्रियो को देखा है; मुनि-पत्नियो को देखा है और ब्राह्मण-स्त्रियो को भी देखा है । किन्तु वैसे कुच, वैसी आँखें, वैसी मधुर बोली, वैसे कपोल, वैसी नाक, वैसा सौदर्य, वैसे चिकुर, वैसे कटाक्ष, वैसे उरु, वैसे हाव-भाव, वैसी मद हँसी, वह मद-गमन, और वह विवेक किसी भी स्त्री में नही देखा । मैं कैसे सीता की प्रशसा करूँ ? वह स्त्री सभी लोको पर राज्य करनेवाले तुम्हारे जैसे पति के लिए ही योग्य है, अन्यो के लिए योग्य नही है । वह चद्रमुखी, वह चकोराक्षी, वह नवयुवती, वह कुद-सम दाँतवाली, वह गजगामिनी, वह नवल-लतिका, वह मानिनीमणि, वह पुष्पगधि, वह स्त्री, तुम्हारी स्त्री होकर रहे, तो हे दनुजेश, तुम्हारे राज्य की शोभा बढेगी ।'

१५ रावण का पुनः मारीच के पास जाना

कामातुर रावण ने जब देखा कि इस स्त्री की बातो तथा अकपन की बातो में कितनी समानता है, तो वह अत्यत विस्मित हुआ । उसने राजसभा स्थगित कर दी और भाग्य से प्रेरित होकर एकान्त में चला गया और सारथी को बुलाकर रथ लाने की आज्ञा दी । सारथी के रथ लाते ही वह सूर्य-किरणो के सदृश अनुपम आयुधो से परिपूर्ण उस रथ पर आरूढ होकर करोड सूर्यो की दीप्ति से विलसित होते हुए आकाश-मार्ग से समुद्र के मध्यभाग से जाते, विविध वस्तुओ को देखते समुद्र पार कर गया और पूगीफल, मिर्च, अगरु, नारिकेल, साल, हरेणु, रसाल, विशाल आदि वनो को बडे कौतुक के साथ देखता हुआ चला । पहले, गरुड के सुधा-कलश को लाने के लिए जाते समय, गज-कच्छपो को खाने के लिए, जिस वृक्ष पर अपना पैर रखा था, उस वृक्ष को, तथा उस पर पक्षींद्र के द्वारा कृत चिह्न को और शत योजनो तक फैली हुई शाखाओ से विलसित, मुनियो से घिरे हुए सुभद्र नामक वटवृक्ष को बड़ी प्रसन्नता से देखा और महान् महिमा-समन्वित आसुचद्र आश्रम में जटा-वल्कल धारण किये हुए, शात चित्त तथा सौम्य भाव से अत्यधिक तपोनिष्ठा से रहनवाले मारीच के पास पहुँचा और उससे आदर-सत्कार प्राप्त करने के पश्चात्, अत्यत दीन होकर उससे अपने आगमन का कारण यो कहने लगा—"हे मारीच, तुम मेरे अतरग मत्री हो, इसलिए मैं यहाँ आया हूँ । सूर्यवशी रामचन्द्र अपने पिता की

आज्ञा से अपने अनुज तथा पत्नी के साथ तपस्वी की तरह जीवन बिताने के लिए दडक-वन में आया है और अपने सहज स्वभाव के कारण यहाँ के मुनियो को अभय-दान देकर यही रहने लगा है। उसने निर्भय होकर अकारण ही हमारी शूर्पणखा की नाक और कान काट लिये हैं तथा खर-दूषण आदि राक्षसो का वध किया है। उस युद्ध में मरे हुए चौदह सहस्र राक्षस-बधुओ का प्रतिशोध लिये बिना मेरे मन की पीडा दूर नही होगी। तुमने इसके पहले मुझे अच्छा उपदेश तो दिया था, किन्तु उसका अनुसरण करने से मेरा मान-भग होगा। इसलिए मैं उस रामचद्र की स्त्री का माया से अपहरण करके ले जाने के लिए जा रहा हूँ। मैंने एक उपाय सोचा है। यदि तुम चाहो, तो वह सिद्ध होगा। तुम अत्यधिक प्रयत्न से उस आश्रम के पास जाना और माया-मृग का रूप धारण करके विचरण करते रहना। सीता तुम्हें देखकर तुम्हारे प्रति आकृष्ट होगी और राम तथा लक्ष्मण से तुम्हें लाकर देने की प्रार्थना करेगी। तुम मृग-सुलभ कौशल से उन्हें भुलाते हुए घने वन के मध्यभाग में ले जाकर अतर्धान होकर अपने आश्रम में पहुँच जाना। मैं यहाँ सीता को बडे हर्ष से लका ले जाऊँगा। मैं चाहता हूँ कि राम सीताजी की विरहाग्नि में ही भस्म हो जाय। इसलिए तुम ऐसा करो, मैं अपना आधा राज्य तुम्हें दे दूँगा।"

१६ मारीच का पुनः उद्बोधन

उस नीच के वचनों को सुनकर मारीच अत्यत भयभीत हुआ और दुख-सागर की लहरो में डूबते-उतराते सौजन्य छोडकर कहा—"हे दनुजेश्वर, ऐसा विचार तुम्हें कैसे उत्पन्न हुआ? ऐसा अनुचित मार्ग तुम्हें कैसे शोभा देगा? किसने तुम्हें ऐसा उपदेश दिया? सुख-चैन से रहनेवाले तुम, अपने सभी बधु-मित्रो के साथ क्यो मरना चाहते हो? न जाने तुमने कुटिल राक्षस-वश का नाश करनेवाले राम को क्या समझ रखा है? मैं उनकी बाल्यावस्था का थोडा-सा हाल जानता हूँ। वे नित्य कल्याणगुण-सपन्न हैं, असमान साहसी हैं। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने के लिए जब वे आये और यज्ञ की रक्षा कर रहे थे, तब मैं और सुबाहु ने अपनी समस्त शक्ति के साथ उनसे युद्ध किया था। तब उन्होने क्रुद्ध होकर एक ही शर से सुबाहु का वध कर दिया और दूसरे बाण से मुझे समुद्र के मध्य में फेंक दिया। अस्त्रहीन होते हुए भी, बालक होते हुए भी बाल्यावस्था में ही उस अकलक साहसी ने वैसा शौर्य दिखाया था। आज वे प्रबल अस्त्रो से सुसज्जित शौर्यनिधि हैं। आज उनके प्रताप के आगे कौन टिक सकता है? उनके वर्त्तमान शौर्य का भी थोडा-सा हाल मैं जानता हूँ, तुम अवश्य सुनो। पहले की शत्रुता से प्रेरित होकर मैं दो और भयकर राक्षसो के साथ बाघ का रूप धारण किये हुए, उनके तप में अपने-आपको नष्ट करने के उद्देश्य से गया। तब की बात कैसे कहूँ? उन्होने तीन बाणो से हम तीनो को गिरा दिया। किन्तु हममें से दो ही मरे। न जाने मेरी शेष आयु की कितनी शक्ति है? मैं यहाँ आकर गिरा और अपने-आपको सजीव पाया। तब से राम के अतुल पराक्रम का विचार करके मैंने अपना समस्त पौरुष त्याग दिया और 'रकार' ('र' ध्वनि) से प्रारभ होनेवाले—रव, रथ, रमणीय, रवि, रति, रत्न आदि शब्दमात्र के सुनने से उनका स्मरण करके भयभीत होता हुआ इस प्रकार तपस्वी

का जीवन व्यतीत कर रहा हूँ । हे रावण, तुम राम की शक्ति को नही जानते । हमारी शूर्पणखा अपने भद्दे रूप का विचार नही करती, अपनी दशा के बारे में नही सोचती । उन अनुपम गुणधाम, अभिराम, रामचद्र पर यो फूली-फूली आसक्त होना क्या उचित था ? उसने स्वय ही (अपने अपराध से ही) अपना रूप ऐसा विकृत करवा लिया । इनपर क्रुद्ध होकर खर और दूषण रघुराम पर आक्रमण करने गये और उनकी बाणाग्नि की ज्वालाओ में दग्ध हो गये । उनके कारण तुम क्यो मतिभ्रष्ट हो राम का शत्रु बनकर अपने को नष्ट करना चाहते हो । यह न उचित है, न नीतिसगत है । इसलिए तुम अपना विचार छोड दो और लका लौटकर प्रसन्नता मे रहो । किसी भी प्रकार तुम विचार करो, यह अनुचित कार्य ही है । यदि मै प्रयत्न करके जाऊँ भी, तो राम के बाण मे मेरे प्राण नही बचेंगे । मैं तुम्हारा अपकार कभी नही करूँगा । मै अपने मन में कभी तुम्हारे अहित की इच्छा नही करता । इसलिए तुम अवश्य मेरी बात मानो । मैं जो कहता हूँ, उसे हित-वचन मानो । तुमने तो कहा था कि यदि तुम यह कार्य करोगे, तो मैं अपना आधा राज्य दूँगा । किन्तु कौन कह सकता है कि रघुराम को छेडकर मैं जीवित लौट आ सकूँगा ?"

मारीच के इन वचनो को सुनकर रावण क्रोध-विवश होकर बोला—'एक साधारण मानव को तुम लोकरक्षक, तीनो लोको को भयभीत करनेवाला, तथा मुझसे श्रेष्ठ बतलाते हो। तुम अपने प्राणो के भय से ऐसा प्रलाप कर रहे हो और मुझे भयभीत करने के लिए बातें बना रहे हो । तुम नही सोचते कि मै राजा हूँ । मेरी आज्ञा की तुम अवहेलना करते हो । अब मुझे तुम्हारी आवश्यकता ही क्या है । साथ कर लेने के लिए तुम्हें बुलाया भी, तो मेरी ऐसी दशा हुई ।'

इस प्रकार कहकर रावण मारीच का वध करने के लिए उद्यत हुआ । उसका क्रोध देखकर मारीच ने मन-ही-मन सोचा—'इस नीच के हाथ से मरने की अपेक्षा उस राम के हाथो से मरना ही भला है ।' इसके पश्चात् उसने राक्षसराज को देखकर कहा—'उचित बात कहने पर तुम ऐसा क्रोध क्यो करते हो ? अच्छा उपदेश देनेवाले मत्रियो का वध करनेवाले राजा कही हो सकते हैं ? ठीक है, तुम जो कहो, मै उसके अनुसार करूँगा ।' तब रावण ने बडे स्नेह से उसको क्षमा कर दिया और उसे अपने रथ पर बैठाकर अत्यत वेग से उसके साथ पचवटी में पहुँच गया । कामातुर की बुद्धि ऐसी ही होती है । बुरे मार्ग को वह क्यो त्यागने लगा ?

१७ मारीच का माया-मृग के रूप में आना

मारीच रथ से उतर गया और उस राक्षसराज की प्रार्थना के अनुसार, (स्वय मायावी होने के कारण) अच्छी तरह सोच-विचारकर राक्षस-शक्ति के प्रभाव से सुदर माया-मृग का रूप धारण किया । उस माया-मृग का शरीर सुनहला था, उसका विशाल नेत्रयुग्म इन्द्रनील मणि के समान था, उसकी भौहें प्रवाल की-सी और कान उज्ज्वल वज्र के-से थे, नीले खड्ग के समान उसके मरकत के सीग थे, मोतियो का-सा उसका पृष्ठ-भाग था, रत्न-बिंदुओ के समान (उसके शरीर पर) धब्बे थे, नव पद्मराग के समान उसका उदर था, और उसके खुर रजत के समान चमकते थे । वह मृग ऐसा प्रतीत होता था

मानो रोहणाचल का समस्त सौंदर्य मृग का रूप धारण किये हुए पृथ्वी पर विचर रहा हो, अथवा अकेले राहु से भीत होकर चद्रमडल पृथ्वी पर घूम रहा हो, अथवा राक्षस-क्षय करने के हेतु ब्रह्मा ने समस्त सौदर्य को एकत्रित करके मृग का निर्माण किया हो और उसे कपट (मन) से भेजने पर यहाँ वह आ गया हो, अथवा जानकी ने अपनी कुटिल वेणी से इन्द्रनील मणियो का, दाँतों से मोतियो का, अरुण ओष्ठो से प्रवालो का, कपोलो से वज्रो का, शरीर की काति से वैडूर्य का, उदर के ऊपर की रोम-राजि से मरकत-मणियो का, पाणि-द्युति से पद्मरागो का, और नख-द्युति से गोमेदको का परिहास किया था । इसलिए सभी रत्न, रत्नगर्भा की पुत्री-रूपी रत्न को सताने के लिए मृग का रूप धारण करके आये हो, अथवा रघुराम ने सीता के लिए मेरा धनुष तोड़ा था। अब मैं उन्हें व्याकुल करूँगा—यो सोचकर हर के भेजने पर उनके हाथ का हिरन इस प्रकार आया हो, अथवा सीता के मुख की काति से पराजित होकर, चद्र के भेजने पर आया हुआ माया-मृग हो । इस प्रकार का वह हिरण चित्र-विचित्र वर्णो की काति से समन्वित हो, कपट-रूप धारण किये हुए, अनुपम सौदर्य को प्रकट करते हुए, ढूँढ-ढूँढ-कर तृण चरने लगा । कभी वह अपनी पूँछ की रमणीय काति से वन के मयूरो को नचाता, कभी अपने शरीर की कान्ति को विकीर्ण करके सारे वन को सुनहला बना देता था, तो कभी चौकड़ी भरकर इन्द्रधनुष का-सा दृश्य प्रस्तुत करता था; कभी तो आकाश की ओर उछलकर विद्युल्लता की-सी ज्योति उत्पन्न कर देता, तो कभी अपने पार्श्वभाग की काति से चद्रकात मणि को लज्जित कर देता; कभी मृगो के झुडो के साथ मिलकर चरने लगता, तो कभी उन्हें डराता, कभी छिप जाता, तो कभी प्रकट हो जाता, कभी अति निकट पहुँच जाता, फिर इतने में डरकर चौकड़ी भरकर दूर निकल जाता, कभी पेडों की छाया में चला जाता, कभी पर्णशालाओ में घुस जाता, कभी सिकुडता, फिर तुरत ही छलाँग मारकर निकल जाता, कभी वह पृथ्वी को सूँघने लगता, पूँछ हिलाता, कान खड़े करके कुछ सुनता और तुरत अत्यत वेग से दौड़ने लगता । कभी निकट पहुँचता, सिकुड़े हुए अपने शरीर को हिलाता, घास पर लेट जाता, और बड़े स्नेह से मुनियो के निकट चला जाता, कभी अपने खुरो से अपने कानो को खुजलाता और सीगो से पुष्प-लताओ को हिलाकर उनके सभी फूलो को गिरा देता । इस प्रकार वह हिरण उस सुन्दर पर्णशाला के आगे बड़े आनद से विविध कौतुक करने लगा ।

उसी समय सीता फूल चुनने के लिए आई और उस पर्णशाला की सुदर भूमि को अपने मजुल नूपुरो की मृदु ध्वनि से भरती हुई, सौरभ से महकनेवाली पुष्प-लतावो की झाडियो के निकट पहुँचकर फूल चुनने लगी । तब वह मन को आश्चर्यचकित कर देनेवाले उस हिरन को देखकर विस्मित हुई और सूर्यवशाधिप राम को देखकर बोली—'हे नाथ, यह देखिए, निकट ही एक अद्भुत मृग दीख रहा है । हमने इतने वर्षो का, ऐसा सुदर मृग अबतक किसी भी वन में नही देखा । इसके चर्म पर सुख से शयन करने की बड़ी इच्छा हो रही है । इसलिए हे प्राणेश, इसका पीछा कीजिए और इसे मारकर मुझे इसका चर्म ला दीजिए । नहीं, नही, किसी भी उपाय से इसे जीवित ही पकडकर

ला सकें, तो और भी अच्छा होगा । हमारा वनवास तो समाप्त होनेवाला है । हम इस स्वर्ण-मृग को अपने नगर में ले जायँगे और सासो तथा भरत आदि को इसे दिखाकर उन्हें आनद दे सकते हैं ।'

सीता के इन वचनो को सुनकर लक्ष्मण रामचद्र को देखकर बोले—'हे प्रभु, जब पृथ्वी पर मृगराज का भी ऐसा (सुन्दर) शरीर नहीं है, तो भला मृग का ऐसा शरीर कहाँ हो सकता है ? यह माया-मृग है, इसका विश्वास मत कीजिए । राक्षस मायावी होते हैं और कदाचित् यह उनकी माया ही है । यही नही, क्या आपने मुनियो के वे वचन नही सुने कि क्रूर मायावी मारीच इस प्रात में घूमता रहता है । प्राय वही हमें भ्रम में डालने के लिए इस प्रकार आ गया है । इस पर आसक्त होकर, उतावले हो आप इसे पकडने का विचार मत कीजिए । वैदेही तो भोली-भाली है । हे प्रभु, आप भी वैसे थोडे ही है ?'

यह सुनकर रामने सीता का मुख-कमल देखा और हँसते हुए लक्ष्मण को देखकर बोले—'हे लक्ष्मण, ऐसे विचलित क्यो होते हो ? क्या पृथ्वी पर राक्षसो की माया मेरा सामना कर सकेगी ? मै या तो इस मृग को पकडकर ले आऊँगा या इस प्रचड राक्षस का वध करूँगा ? इन दो बातो को अच्छी तरह जानकर ही मैं इसका पीछा करूँगा और इसे मारकर, इसका चर्म लाकर जनकजा को दूँगा । इतने दिनो के बाद सीता ने यह छोटी-सी इच्छा प्रकट की है, तो क्या मैं इसे भी पूरा न करूँ ? तुम सावधान होकर इस पर्णशाला का तथा सीता की रक्षा करते रहो ।'

१८ राम का माया-मृग का पीछा करना

इस प्रकार उन्हें यह भार सौपकर, रघुराम ने उनके हाथ में स्थित धनुष को लिया और उस पर डोरी चढाकर, ऐसे चल पडे, जैसे पूर्वकाल में यज्ञ-मृग का पीछा करनेवाला गजासुर-वैरी गया था । वे कही धीरे-धीरे किसी झाडी के पीछे छिपते, कही झुकते, कही दौडते, फिर खडे होकर देखते, किसी आड में छिपते (मृग का) पीछा करते, उसे पकडने के लिए आतुर होते और धनुष-बाण को पीछे छिपाँकर दबे पाँव चलने लगते ।

वे उस मृग को पकडने के लिए, अवसर देखकर, उसके निकट पहुँचते, 'अब पकडा, लो, यह आया, अब हाथ में आ गया'—ऐसा सोचते हुए उसका पीछा करते जाते । वह हिरन भी कभी निकट ही दिखाई पड़ता, उनके पास पहुँच भी जाता, किन्तु पकडने का यत्न करते ही भाग निकलता । कभी राम को क्रोध में आया जान (वह) खडा हो जाता, फिर चारो दिशाओ में मनोहर ढग से चौकडियाँ भरने लगता । लार के साथ घास के टुकडो को (वह अपने मुँह से) गिराता, एक छलाँग में निकट पहुँच जाता, तो दूसरी छलाँग में दूर निकल जाता, (जहाँ-तहाँ) सूँघ-सूँघकर चौकडी भरता और बिजली की तरह अपनी जीभ को (एक क्षण के लिए) बाहर निकालकर घुमाता, मानो कोई मशाल घुमा रहा हो । (वह) कभी कुम्हार के चाक के समान चक्कर काटता, कभी थके हुए की भाँति, घुटनो के बल खडा रहता, किन्तु निकट पहुँचते ही बाज की तरह आकाश की ओर छलाँग मारकर निकल जाता । थके-माँदे जब राम आश्चर्यचकित होकर

खडे हो जाते, तब उनके पार्श्वभाग में ही दिखाई पडता और तुरत छल करके दूर हो जाता । जब राम तग आकर उसपर बाण चलाने के लिए सन्नद्ध हो जाते, तब वह अदृश्य हो जाता । इस प्रकार वह माया-मृग राम को थकाते हुए, वहाँ से दूर घने वन में जा पहुँचा और उनकी आँखो से ओझल होने का यत्न करने लगा । अब राम समझ गये कि वह माया-मृग है और मन-ही-मन कहने लगे—'दिखाई देकर अब कैसे बचोगे ?' उन्होंने ब्रह्मास्त्र का सधान किया, और पर्वतो को कँपाते हुए, समुद्र को आदोलित करते हुए, सभी लोको को भयभीत करते हुए और दिशाओ को थर्राते हुए, उस अस्त्र को मृग पर चलाया। वह माया-मृग अपना कपटरूप छोडकर, असुर का दीर्घ आकार धारण किये हुए 'हाय लक्ष्मण' का आर्त्तनाद से दिशाओ को गुँजाते हुए, प्राण छोडकर पृथ्वी पर ऐसे गिरा, मानो राक्षसो की लक्ष्मी ही नष्ट हो गई हो, रावण का ही सर्वनाश हुआ हो, अथवा लकापुरी ही विध्वस्त हो गई हो । उस माया-मृग को पृथ्वी पर गिरते देख, जानकीनाथ ने अत्यत हर्षित होकर उस राक्षस को देखा और निश्चय कर लिया कि वह मारीच ही है । उन्हें अपने भाई के वचन याद आये और वे अपने भाई की प्रशसा करने लगे । वे मन-ही-मन सोचने लगे—इस मायावी राक्षस का आर्त्तनाद सुनकर न जाने सौमित्र और सीता कितना भयभीत होते होगे ।

(राक्षस के) उस आर्त्तनाद को सुनकर सीता भयभीत हो गई और मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पडी । चेतना लौटते ही फटी-फटी आँखो से चारो ओर देखती हुई धैर्य खोकर तड़पने लगी और ऊँचे स्वर में लक्ष्मण को देखकर बोली—'हे सौमित्र, यह कैसी बात है कि राम तुम्हें आर्त्तध्वनि में पुकार रहे हैं ? हे अनघ, क्या तुम उनकी आवाज नही सुन रहे हो, या सुनना नही चाहते हो, या तुम्हें सुनाई नही पडती ? तुम तो किंचित् भी विचलित नही हो, भयभीत नही हो, दु खी नही हो ? यह कैसी बात है ? मेरा हृदय विविध प्रकार के दु.खो से उबल रहा है । वे वन में अकेले चले गये हैं । बहुत विलब हो चुका है, फिर भी नही आये हैं । कही राक्षसो के साथ युद्ध करते-करते उनके हाथो में फँस तो नही गये ? इसीलिए हे लक्ष्मण, तुम अपने भाई के पास बिना विलब किये चले जाओ ।'

इस प्रकार कहती हुई और आँखो से आँसू बहाती हुई जानकी को देखकर लक्ष्मण बोले—'हे माता, आप क्यो विचलित होती हैं ? क्या, प्रभु राम पर कही भी कोई विपत्ति आ सकती है ? क्या आप अपने प्रिय हृदयेश्वर के प्रताप को नही जानती ? जानती हुई भी आप ऐसा क्यो कहती हैं ? किसी दैत्य ने आपको इस प्रकार से व्याकुल करने के लिए ऐसा आर्त्तनाद किया है । जगदीश राम ऐसी छोटी बातो के लिए कही भयभीत हो सकते हैं ? आपको इतना दैन्य क्यो हो रहा है ? यदि रघुराम युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जायँ, तो क्या राक्षस उनके सामने टिक सकते हैं ? गर्व से फूलकर दावानल पर आक्रमण करनेवाला शलभ-समूह क्या भस्म हुए बिना रह सकता है ? इसलिए राम की आज्ञा का उल्लघन करके आपको यहाँ छोडकर जाना मेरे लिए उचित नही है । इसे घने वन में आपको छोड जाऊँ, तो न जाने आप पर कैसी विपत्ति आ पडेगी । इसलिए, मैं जाने से डरता हूँ । मेरी बातो का विश्वास करके आप व्याकुल हुए बिना रहें ।

तब धरणिजा (जानकी) ने रोषाग्नि से जलते हुए सौमित्र की निंदा करते हुए कहा—"हे लक्ष्मण, तुम तो रामचंद्र के परम भक्त हो, आज तुम इतने नीच कैसे हो गये ? श्रीराम के पुकारते रहने पर भी भयंकर शत्रु के समान तुम चुप क्यों हो ? क्या यह तुम्हारे लिए उचित है ? 'मेरा अनुज बुद्धिमान् है, उत्तम है', यों सोचकर, तुम्हारा विश्वास करके, जब तुम्हारे भाई यहाँ से गये है, तुम ऐसा पापमय व्यवहार क्यों करते हो ? हाँ, मैं जानती हूँ, असुरो की माया से राम का वध होगा, इसे अच्छी तरह जानकर अनुचित बुद्धि से, निःशंक हो, अपने भाई को दिये हुए वचन की अवहेलना करते हुए मुझे प्राप्त करने का विचार कर रहे हो; या कदाचित् यह सोचते हो कि मैं इसको कैकेयी-सुत को सौंप दूँगा । अपने इस शरीर में मुझे अब प्राणों को रखना उचित नही प्रतीत होता । मैं तुरंत गोदावरी में डूबकर अपना प्राण-त्याग करूँगी । अब अन्य बातों से कोई प्रयोजन नही है ।"

सीता के ऐसे कठोर वचन कहने पर लक्ष्मण अत्यंत क्षुब्ध हो गये । उन्होंने राम का नाम लेते हुए अपने कर्णपुटों पर हाथ रखे तथा चारों ओर देखते हुए बोले—'हे वन-देवताओ, क्या तुम लोग सुन रहे हो ? सीता कठोर होकर मुझे कैसे पापपूर्ण कटु वचन सुना रही है ।' इस प्रकार कहकर उन्होंने आँखों में आँसू भरे हुए, अब यहाँ रहना अनुचित समझकर, सीता से कहा—'माता, मैं अभी जा रहा हूँ । मैं आपके पति को शीघ्र ही लिवा लाऊँगा । आप दुःखी मत होइए ।'

इसके पश्चात् उन्होंने पर्णशाला के चारों ओर सात रेखाएँ खींच दीं और कहा—'माता, इन रेखाओं को पार करके बाहर मत जाइए । यदि कोई इन रेखाओं को पार करेगा, तो उसका सिर उसी क्षण चूर-चूर हो जायगा ।' तब उन्होंने अनल से प्रार्थना की और उन्हें सीता की रक्षा का भार सौंपकर, जानकी को बड़ी भक्ति से प्रणाम करके वहाँ से राम की खोज में चल पड़े ।

१९. भिक्षुक के वेश में रावण का सीता के पास आना

उसी अवसर की प्रतीक्षा में, अत्यंत उद्विग्न होकर रहनेवाला रावण कपट सन्यासी का वेश धारण करके वहाँ आया । उसके हाथ में दंड और कमंडल थे । विशाल ललाट पर तिलक था, उंगलियों में कुश की पवित्री थी, विशाल उर पर जनेऊ था, दायें हाथ में रुद्राक्ष की माला थी, और वह गेरुए रंग के वस्त्र पहने हुए था । कई प्रकार की जपमालाएँ धारण करने से उसकी गरदन एक ओर झुकी हुई थी । उसका गात्र कृश था और उसके हाथ में एक जीर्ण छत्र था । उसकी बँधी हुई शिखा पीछे की ओर लटक रही थी । सन्यासी का ऐसा छद्म-वेश धरकर वह उंगलियों को गिनता हुआ, कुछ मंत्रों को गुन-गुनाता हुआ, कही मुनि उसे पहचान न जायें, ऐसा मन-ही-मन भयभीत होता हुआ, जरा-पीड़ित वृद्ध के समान सिर को किंचित् हिलाता हुआ, थके हुए के समान जहाँ-तहाँ ठहरता हुआ 'हरि-हरि' शब्द का उच्चारण करके मानो शांति प्राप्त करता हुआ-सा, धीरे-धीरे पर्णशाला के निकट पहुँचा । वनदेवताओ ने जब देखा कि जगद्रोही वहाँ पहुँच गया है, तब वे अत्यंत भयभीत होकर एक ओर सटककर रह गईं ।

पर्णशाला के सम्मुख खडे हुए उस कपटवेशधारी को देखकर सीता ने उसे एक सयमी मुनि समझा । तुरत अत्यत भक्ति-युक्त हो, कर-कमलो को जोडकर उसे प्रणाम किया और सौमित्र की खीची हुई रेखाओ को पारकर बडी भक्ति के साथ उस अभ्यागत का पूजन-सत्कार किया । तब उस कल्याणी सीता को देखकर उसने कहा—'हे सुदरी, तुम ऐसे दुर्गम कानन में किस प्रकार अकेली रहती हो ? पता नही, तुम रति हो, या लक्ष्मी हो, या भारती हो ? नही तो पृथ्वी तथा स्वर्गलोक की स्त्रियो में ऐसा सौदर्य कहाँ ? तुम्हारा मुख पूर्ण चद्र की राका का उपहास कर रहा है, तुम्हारे अधर पद्मराग मणियो को परास्त कर रहे हैं, तुम्हारा शरीर विद्युल्लता को लज्जित कर रहा है, तुम्हारी वाणी सुधा से भी अधिक पवित्र है, तुम्हारी वेणी जलद की वेणी को परास्त कर रही है, तुम्हारे सौदर्य का वर्णन करना मेरे लिए असभव है । हे तरुणी, तुम्हारे आलिगन-पाश में बधकर सुख-भोग करनेवाला व्यक्ति ही पुरुषो में श्रेष्ठ है । तुम्हारा साहचर्य्य प्राप्त करनेवाला व्यक्ति ही पूर्णकामी तथा नित्यकल्याणसपन्न है । हे कमलाक्षी, तुमको यहाँ रहते देखकर, हमें आश्चर्य तथा दुख हो रहा है । हे सुदरी, तुम कौन हो ? इस कानन में किस लिए तुम रहती हो ? हमें सारा समाचार कहो ।'

तब सीता ने बड़ी भक्ति से कहा—"हे अनघ, मैं रघुराम की पत्नी हूँ । मेरे पिता महाराज जनक हैं । महाराज दशरथ मेरे ससुर हैं । मेरा नाम सीता है । उन्नत कान्तिवान् रामचद्रजी अपने पिता की आज्ञा के अनुसार गृह त्यागकर वनवास के लिए आये, तो मै और लक्ष्मण उनके साथ चले आये हैं । इस आश्रम में हम तीनो तपस्वियो का-सा जीवन व्यतीत करते हैं । आज हमने अपने आश्रम के सामने एक स्वर्ण-मृग को चौकडी भरते देखा, तो मैंने अपने पति से उसे किसी तरह ला देने के लिए कहा । इसी हेतु वे गये हैं । उसके पश्चात्, 'हाय लक्ष्मण' का आर्त्तनाद शूल की तरह मेरे कानो को चुभाते हुए सुनाई पड़ा । भयभीत हो मैंने लक्ष्मण को भेजा । वह गया हुआ है, किन्तु न जाने अब तक वह क्यो नही लौटा ।"

इतना कहकर, उन्होंने उस कपट मुनि को सबोधित करके कहा—'हे अनघ, आपका शुभ नाम क्या है ? और आप यहाँ क्यो आये हैं ?' तब लकाधिपति ने अपना कपट तजकर उनसे कहा—'हे वनजाक्षी, मैं समुद्र के मध्य में स्थित लका का राजा हूँ । राक्षसो में श्रेष्ठ हूँ, विश्रवसु का पुत्र हूँ, यक्षेश का अनुज हूँ, दिग्विजयी हूँ । मेरा नाम रावण है, युद्ध में देवता तथा राक्षसो में किसी को भी मारने की क्षमता रखता हूँ । हे सुन्दरी, मैंने तुम्हारे रूप-सौदर्य की प्रशसा सुनी थी, इसलिए बडे हर्ष से तुम्हें देखने आया हूँ । इस अकिंचन मानव के साथ तुम इन घोर वनो में क्यो रहती हो ? हे विशालाक्षी, तुम अपनी इच्छा से शासन करती हुई अपनी मनोज्ञता को प्रकट करती हुई, अत्यधिक आदर के साथ, पुष्पक आदि विमानो तथा ऊँची अट्टालिकाओ में सुर, गरुड, उरग, असुर तथा सिद्धो की श्रेष्ठ कन्याओ की सेवाएँ प्राप्त करती हुई निवास करो । तुम्हारे चरणो की काति मेरे महलो का मणिमय कुट्टिम (फर्श) बन जाय । हे सुदरी, तुम्हारे कटाक्ष की शोभा मेरे अत पुर की कुमुदिनियो के साथ होड लगावे । तुम्हारा मद हास प्रतिदिन मेरे प्रेम-सागर के लिए चद्रिका बन जाय । तुम मेरी लकापुरी को चलो ।'

इन बातो को सुनकर सीता अत्यत भयभीत हुई। किन्तु वे धीरमना थी, इसलिए एक तृण हाथ में लिये हुए वे उसे सबोधित करके उसकी बातो का उत्तर देने लगी, मानो वे उस रावण को तृणवत् मानती हो। वे कहने लगी—'क्यो रे, मुझे श्रेष्ठ पतिव्रता न मानकर, इस प्रकार कहना, क्या तुम्हें उचित है? तुम्हारी इच्छा ऐसी दुर्लभ है, जैसे देवताओ को प्राप्त करने योग्य पूर्णाहुति किसी कुत्ते के लिए दुर्लभ है। तुम श्रीरामचंद्र को प्राप्त मुझ पर आसक्त होने का साहस करते हो? चुपचाप तुम अपने नगर को लौट जाओ। यदि ऐसा न करके तुम कोई दुराचरण करने का विचार करोगे, तो मेरे पति राघव, जो विविध शस्त्रास्त्रो के प्रयोग में निपुण है, जो अनायास ही, देखते-देखते शिव-धनुष को भग करने में सफल हुए, और खर-दूषण आदि राक्षसो के शिरच्छेदन करनेवाले है, तुम्हें तथा तुम्हारे वश को नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। तुम्हारे और उन सूर्यवशी में उतना ही अतर है, जितना सियार और सिंह में, मशक तथा दिग्गज में, नाले और समुद्र में, कौआ और गरुड़ में अतर होता है। इसलिए अब तुम सुबुद्धि के साथ लका लौट जाओ।'

इन बातो को सुनकर रावण ने अत्यत क्रोधावेश से अभिभूत हो, भयकर दृष्टि से जानकी को देखा—और कपट रूप तजकर निज रूप धारण किया। उसके मन में मन्मथ दीप्त हो रहा था और उसकी दस अवस्थाएँ मानो रावण के दस मणिमय जटा-जूटो से युक्त सिरो के रूप में दिखाई देने लगी। उसकी बीस भुजाएँ ऐसी दीखने लगी, मानो मन्मथ की दस अवस्थाओ की इच्छाएँ दुगुनी होकर प्रकट हो रही हो। उसके कमल के-से बीस हाथ ऐसे दीख रहे थे, मानो उसकी (मदन-प्रेरित) इच्छाएँ पल्लवित हो गई हो। इच्छा के उन पल्लवो में फूलो के समान शस्त्रास्त्र दिखाई देने लगे। उसके शरीर के विविध आभूषणो की काति मदनाग्नि की ज्वालाओ के समान दीखने लगी। इस प्रकार भयकर आकार धारण करके खड़े हुए रावण को देख सीता का धैर्य छूट गया और वे भयभीत हो मूर्च्छित हो गई। तेज आधी के प्रहार से (पेड से अलग हो) नीचे पडी हुई वनलता के समान पृथ्वी पर पडी हुई चारुलोचनी सीता को, निर्दयी हो दशकठ ने, अपने रथ पर ला रखा। सीता की आँखो से अश्रु-धारा बह रही थी, बाहु-लताएँ भय से काँप रही थीं; उनकी वेणी खुल गई थी, कुच हिल रहे थे, रत्न-हार जहाँ-तहाँ टूटकर उसके रत्न बिखर रहे थे, और भय तथा शोक से उनका सारा शरीर काँप रहा था। ऐसी स्थिति में वह राक्षस सीता को अपने रथ पर बिठाकर आकाश-मार्ग से यो जाने लगा, मानो दैव-प्रेरित हो मृत्यु-देवता को साथ लिये जा रहा हो। रास्ते में सीता की चेतना लौट आई, तो उन्होंने आँखें खोलकर देखा और (सूखे हुए) होठो को आर्द्र करती हुई, अपने बिखरे हुए आँचल को ठीक कर लिया और ऊँचे स्वर में शिशु-कोयल की-सी वाणी में विधि को कोसती हुई, अपने प्राणेश्वर को पुकारती हुई क्रोध तथा विषाद से सतप्त होकर विलाप करने लगी।

२०. जानकी का शोक

सीता कहने लगी—'हे राघवेश्वर, हे रामचद्र, हे सूर्यवशी, हाय! आपकी पत्नी—मुझे एक अनाथा बनाकर यह कुटिल राक्षस उठाकर ले जा रहा है। आप शीघ्र आकर

इसका नाश कीजिए और मेरी लाज बचाइए और मेरी रक्षा कीजिए। अरे राक्षस, यह निंदा तुम अपने ऊपर क्यो लेते हो ? तुम स्वय अपनी लका को क्यो भस्म कर देना चाहते हो ? तुम्हारे लिए यह भयकर अन्याय उचित नही है। क्रोध में राघव तुम्हारा वध कर डालेंगे। हाय, मैंने स्वर्ण-मृग देखा ही क्यो ? मैंने अपने प्राणेश को क्यो जाने के लिए कहा ? (लक्ष्मण के) मना करने पर मैंने उसकी बात क्यो नही मानी ? प्रभु मृग लाने के लिए क्यो गये ? मैंने उनकी शक्ति का विचार क्यो नही किया ? लक्ष्मण को कोसकर जाने के लिए मैंने उससे क्यो कहा ? हाय ! होनहार मुझे क्यो चुप रहने देगा ? इन बातो से क्या प्रयोजन है ? हे भाई लक्ष्मण, तुम अभिमान-धनी हो, मुझे माता के समान माननेवाले उन्नत गुणवान् हो। सौजन्य की मूर्त्ति हो। ऐसे तुम्हें जो अपशब्द मैंने कहे, उनका फल मै अब भोग रही हूँ। क्रोध तज दो और शीघ्र आकर मेरी रक्षा करो। हाय कैकेयी ! आपने जो वर माँगे, वे आगे चलकर सफल होंगे। आप अपने पुत्र के हाथ एकच्छत्राधिकार का अनुभव करते हुए राजभोग कीजिए।'

इस प्रकार सीता उस राक्षसराज की निंदा करती हुई, रामचद्र को पुकारती हुई, भगवान् को कोसने लगी। वह काकुत्स्थवशी लक्ष्मण की प्रशसा करती और कैकेयी की निंदा करती हुई अत्यधिक शोक से कहने लगी—'मै मिथिलेश्वर की पुत्री, दशरथ की पुत्र-वधू और राम की पत्नी हूँ, ऐसी मुझे रक्षा करनेवाले जहाँ अनुपस्थित है—उस स्थान से एक राक्षस मुझे उठाकर ले जा रहा है। हे वृक्षो, हे मेरे सहोदरो, आप धरणीश्वर (राम) से सारा वृत्तात कह सुनाइए। हे सुरो, आप सुरवैरी का सामना करके किसी उपाय से मुझे कैद से छुडाइए। हे गोदावरी, बडी भक्ति के साथ मै आपके आश्रय में रहती थी, अब आपको मेरी रक्षा करना उचित है। कम-से-कम आप जाकर भूपति से यह वृत्तात सुनाइए। मै दुष्ट के हाथो में फँसकर विपत्ति में पडी हूँ। हे माता, क्या आपको मेरी रक्षा नही करनी चाहिए ? हे भूमाता, आप रघुराम भूपालमणि से मेरी इस दुरवस्था का समाचार बतलाइए। सब प्रकार के लोगो को पुकारते हुए मेरा कठ सूख रहा है, धैर्य छूट रहा है, प्राण दुखी हो रहे हैं। हे किन्नरो, हे पुण्यात्माओ, हे महात्माओ, हे तपस्वियो, हे खेचरो, हे व्रतियो, हे यतियो, हे वन-पक्षियो, हे सिंहो, हे गधर्वो, हे नरो, हे सुरो, हे नागेंद्रो, आप (सब) मेरी रक्षा कीजिए।'

भूसुता विविध प्रकार से व्यर्थ ही शोक करने लगी। पृथ्वी भी काँप उठी, गौतमी (गोदावरी) ने अपनी गति रोक दी। समस्त प्राणी शोकाकुल हुए। मुनि लोग 'यह अन्याय है, अन्याय है,' कहते हुए, कपट सन्यासी रावण का स्वभाव जानकर, परिताप करने लगे और शोकाश्रु बहाने लगे। मृग उनका (आर्त्तनाद) सुनते हुए चरना भूल गये, पक्षी क्रन्दन करने लगे, पवन की गति मद पड गई, वृक्ष सूखने लगे, सारा आकाश क्षुब्ध हो उठा, धर्म-देवता यह सोचकर कि अब मेरी रक्षा कौन करेगा, दुखी हुए, वन-देवता शोक-सतप्त हुए, साधुजन जानकी को देख रोने लगे।

२१. जटायु और रावण का युद्ध

उस समय अरुण का पुत्र, पक्षिराज तथा महान् साहसी जटायु ने एक पहाड पर से

'हाय रघुराम' का आर्त्तनाद स्पष्ट रूप से सुना । यह आर्त्तध्वनि सुनकर उसने भय तथा आश्चर्यचकित हो, सिर उठाकर सारे आकाश तथा सभी दिशाओं में अपनी दृष्टि दौड़ाई और मन-ही-मन कहने लगा—'दया-रहित हो रावण उस राम की पत्नी को अपने यहाँ ले जा रहा है । उस दिन जब से मुझे राम ने देखा, तब से वे मेरे साथ घनिष्ठ मित्रता का व्यवहार कर रहे हैं । अब इस राक्षस के दुष्कर्मों को सहना ठीक नहीं है । अपना शौर्य दिखाकर मैं अकेले ही इस राक्षस का वध करूँगा और वैदेही को छुड़ा लाऊँगा या सूर्यवंशाधिप राघव के लिए युद्ध में अपने प्राण छोड़ दूँगा ।'

ऐसा निश्चय करके, उसने अपने सुदृढ़ शरीर को बढ़ाकर आकाश की तरफ ऐसे उछल पड़ा, जैसे वज्र के वार का सहन न कर सकने के कारण महापर्वत आकाश में उड़ रहा हो । (उसके उड़ते समय) पर्वत-शृंग (उसके पैरों का टक्कर खाने से) चूर-चूर हो गये । उसने अपने मुँह में रखे हुए मांस-खंडों को पृथ्वी पर थूक दिया । भयंकर रूप से उसके नखों में फँसे हुए करि, सिंह, शरभ आदि मृगों के सिर (उसके पैरों से छूटकर पृथ्वी पर) लुढ़कने लगे । उसकी बलिष्ठ चोंच की दीप्ति तथा पंखों की आभा (चारों ओर) विकीर्ण होने लगी । अत्यधिक क्रोध से उसकी आँखें प्रचंड दीखने लगीं, पंखों के द्वारा उत्पन्न पवन से पर्वत-शिखरों पर रहनेवाले वृक्ष टूटकर दिशाओं को भरने लगे । वह रावण की ओर इस प्रकार आने लगा, मानो रावण के (मन के) तम को दूर करने के लिए आनेवाला मध्याह्न का सूर्य हो, या बली रावण-रूपी सूर्य को निगलने के लिए बड़े भयंकर रूप से आनेवाला राहु हो, या रावण-रूपी राहु को निगलने के लिए अत्यधिक वेग से आनेवाला तार्क्ष्य (एक मुनि) हो । जटायु कहने लगा—'हे कुटिल राक्षस, ठहर, ठहर, आगे मत बढ़ । तू रघुराम नृपचंद्र की देवी को कहाँ लिये जा रहा है ? अब कहाँ ले जा सकेगा ? कहाँ जायगा ? किस ओर जायगा ? यदि तू जाना भी चाहे, तो जाने न दूँगा; तुझे मैं मारूँगा, काटूँगा, खंड-खंड कर दूँगा, दंड दूँगा और पोली लकड़ी के समान (तेरे) सिरों को काट दूँगा ।' इसके पश्चात् वह सीता को देखकर कहने लगा—'हे देवी, दु:खी मत होइए । इस भयंकर राक्षस का वध करके मैं आपको इसके हाथों से छुड़ाऊँगा ।'

भयंकर निदाघ के मध्य बादलों का गर्जन जैसे मयूरों को प्रसन्नता पहुँचाता है, वैसे ही इन वचनों से सीता को कुछ सांत्वना मिली । कुम्हलाये हुए मुँह से, अत्यंत दुःख से कुढ़ती हुई सीता बोली—'हे जटायु ! हे भाई ! देखो यह सुरवैरी राम-लक्ष्मण को वंचित करके घमंड से मुझे उठाकर ले जा रहा है ।' इन बातों को सुनकर अरुणनंदन (गरुड़) क्रोधोन्मत्त होकर रथ के आगे आकर खड़ा हो गया और प्रलय-काल के बादलों के निर्घोष की भाँति कठोर वचनों से बार-बार दशकंठ को डाँटते हुए अत्यधिक साहस के साथ कहने लगा—'हे रावण, तू परम पवित्र ब्रह्मा का पोता है, पुण्यात्मा विश्रवसु का पुत्र है; कुबेर का भाई है और दानवश्रेष्ठ है, क्या तेरे लिये ऐसा काम उचित है ? तू जगदेकपति नृप राम की पत्नी को बलात् लिये जा रहा है, यह उचित नहीं है । तुझे तो राम से लड़कर उसके पश्चात् उनकी स्त्री को लाना चाहिए था । उनको धोखा देकर, उनकी स्त्री को इस प्रकार लाया है । क्या यह कोई शूरता है ? अरे, राम की क्रोधाग्नि तुझे

तेरे बधुजनो तथा तेरी लका को भस्मीभूत कर देगी। जान-बूझकर क्यो विष पी रहा है ? क्रोधी सर्प के ऊपर पैर क्यो रखता है ? साठ सहस्र वर्ष की आयुवाले मुझे जानता है या नही ? मै जटायु हूँ। इस पुण्य साध्वी को मुझे सौपकर चला जा, अन्यथा मै तेरा वध कर दूँगा, अपनी चोच से तेरे धनुष के टुकडे-टुकडे कर दूँगा और वर्म तथा मर्म को भेदकर तेरे प्राण ले लूँगा और साथ ही जानकी को मुक्त करूँगा।'

तब उस भयकर राक्षसश्रेष्ठ ने अपना रथ रोका, क्रोधोन्मत्त हो धनुष की टकार की और लक्ष्य साधकर जटायु पर घोर अस्त्र चलाये। किन्तु उस वीर विहग ने रुष्ट होकर उसके बाणो को तोड दिया और अपने पखो से उसके वक्ष पर आघात किया, ललाट पर चोच मारी, कधो पर पद-प्रहार किया और अपने तेज नखो से उसे अत्यधिक पीडा पहुँचाई। तब उस राक्षसकुलेश्वर ने उस खगराज के पखो का लक्ष्य करके दस उग्र बाण चलाये। जटायु ने अपनी चोच से रावण के धनुष के टुकडे-टुकडे कर दिये, उसकी ध्वजाओ को नीचे गिराकर उसके मुकुट को भी पृथ्वी पर गिरा दिया, सारथी से जूझकर उसका पेट चीर दिया, आगे बढकर उस राक्षस के रथ के अश्वो को मार डाला और अत्यधिक क्रोध से उसके रथ को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। तब राक्षसराज कपित होकर पृथ्वी पर गिरकर फिर उठा और धरणिजा (सीता) को उठाये हुए अपनी माया की शक्ति से आकाश में और भी ऊँचा उड़ गया। उसे जाते हुए देखकर जटायु ने उसको रोका और आकाश-मार्ग में महान् वेग से उस पर आक्रमण किया और कहने लगा—'हे पापी, तू लुक-छिपकर भले ही किसी भी लोक में चला जा, मै तुझे तिनके की तरह पकडकर तेरा वध कर दूँगा।'

तब अत्यत रोष से दैत्यराज ने अति भयकर मुद्गर उस पर फेंका। जटायु ने उसे अपनी चोच से तोड दिया और उसके सिर पर चलते हुए उसे कुचल-सा दिया और उसके सर के केशो को चुनने लगा। रावण ने क्रोध से, विना भय या सकोच के, उस पक्षीराज को दृढता से पकडकर नीचे अपने सामने रखा, और अपनी भयकर शक्ति को प्रकट करते हुए अपनी मुष्टियो के प्रहार से उसे पीडित करने लगा। दनुजेन्द्र और विहगेन्द्र के बीच के उस युद्ध को देख देवता आश्चर्यचकित हुए। तब रावण अपने अद्वितीय पराक्रम को प्रकट करते हुए, अपने अति भयकर खड्ग को खीचकर जटायु के पखो और पैरो को काट दिया। तुरत खगपति धरती पर गिर पडा।

उसे इस प्रकार गिरते देख वैदेही दु खी हो किसी वृक्ष के नीचे खडी होकर राम का नाम ले-लेकर विलाप करने लगी। रावण उस परम पतिव्रता को उठाकर बडे हर्ष से आकाश के मार्ग से अत्यत शीघ्र जाने लगा। ब्रह्मादि देवता तथा मुनि आपस में यह कह-कर हर्षित होने लगे कि अब दशकठ अवश्य ही राम के हाथो मारा जायगा और हमारे मनोरथ सफल होगे।

आकाश-मार्ग से जब रावण अत्यधिक वेग से जाने लगा, तब सीता के चरण का नूपुर इस प्रकार पृथ्वी पर गिरा, मानो सुरवैरी के लिए उत्पात की सूचना देनेवाली उल्का हो। उस रमणी के कुचो पर विहार करनेवाले हार टूटकर इस प्रकार जहाँ-तहाँ

पृथ्वी पर गिरने लगे, मानो जाह्नवी की जल-धारा हो। सीता हाहाकार करती हुई मन-ही-मन कुढती जाती थी। ऋष्यमूक पर्वत पर सीता ने पांच बलिष्ठ वानरो को देखा, तो तुरत अपने वस्त्र का थोडा सा भाग फाडा, उसमें अपने आभूषणो को बांधा और सोचने लगी कि कम-से-कम ये मेरे आभूषण राम भूपाल को मेरे हरण का समाचार देंगे, तो राम के द्वारा दशकठ का वध शीघ्र होगा। इस प्रकार सोचकर उन्होंने उस पोटली को उनके बीच गिरा दिया। उन (वानरो) ने उस पोटली को तुरत छिपा दिया।

दनुजाधिपति (यह सोचकर) भय से व्याकुल हो रहा था कि दशरथात्मज उसका पीछा करेंगे। इसलिए वह पीछे की ओर देखते हुए, भय-विह्वल होते हुए, शीघ्र ही समुद्र पार कर गया और लका में जा पहुँचा। उस समय कितने ही मृत्युसूचक अपशकुन दिखाई पडने लगे। वह लका पहुँचकर अनुपम तथा विविध भोगो का आगार अपने महल में गया और बडे गर्व के साथ जानकी को अपनी सारी सपत्ति दिखाई।

२२. जानकी को अशोक-वन में रखना

तत्पश्चात् रावण ने बडे हर्ष से सीता से कहा—'हे कमललोचनी, ये मेरे भवन है; यह मेरा धन है, ये मेरे तुरग है, ये मेरे गज है। यह वे मेरे दिव्य आभूषण है, जिन्हें मैंने सभी देवताओ को परास्त करके प्राप्त किया था, यह पुष्पक-विमान है, जिसे मैंने कुबेर को जीतकर प्राप्त किया था, ये चारण, अमर, सिद्ध तथा साधको की पत्नियाँ है, जो अलग-अलग मेरी सेवा करती रहती है। ये स्त्रियाँ वे है, जो घमंडी होकर मेरी बात स्वीकार नही करने के कारण कारागार में तडप रही है। वह देखो, नाट्यशाला है; वह क्रीडा-वन है, ये चन्द्रशालाएँ है। तुम इन सब की स्वामिनी होकर अनुपम गति से समस्त वैभवो का उपभोग करो।'

तब सीता एक तृण-खड को हाथ में लेकर, रावण की उपेक्षा करती हुई कहने लगी—'अरे मूर्ख, तुम्हारा यह पाप तुम्हें यो ही नही छोड़ेगा। वह भयंकर अग्नि बनकर तुम्हें दग्ध कर देगा। तुम और तुम्हारे बधु-बाधव अब बहुत दिनो तक जीवित नही रह सकेंगे। अवश्य ही नष्ट हो जायेंगे। यह सत्य है। जबतक राम की बाणाग्नि की राशि में गिरकर तुम्हारा शरीर जल नही जायगा, तबतक तुम्हारे ये पाप कैसे कटेंगे?' फिर सीता बार-बार परिताप करती हुई बोली—'तुमने आज मुझे ऐसे कलुषित वाक्य सुनाये, जिनसे मेरा सारा महत्त्व जाता रहा। मेरे गर्व ने मुझे ऐसा कर दिया; मै अपने भाग्य को कैसे रोऊँ?' यो कहती हुई वह उच्च स्वर में रुदन करने लगी। (यह देखकर) राक्षस-वल्लभ मन-ही-मन बहुत क्रुद्ध हुआ और त्रिजटा आदि स्त्रियो को बुलाकर उन्हें सीता को दिखाते हुए कहा—'तुम लोग बडी सावधानी से इसकी रक्षा करती रहो और मुझसे विवाह कर लेने का उपदेश देती रहो। उचित यत्न के साथ इस रमणी को अशोक-वन में रखो।' यो कहकर उसने उन्हें भेज दिया और काम-पीडित मन से व्याकुल रहने लगा।

२३. श्रीराम का दुःख

माया-मृग का वध करने के पश्चात् राम ने और एक हिरन का वध किया और उसके मास तथा चर्म को लेकर बडे हर्ष से लौट रहे थे। सियारो का चिल्लाना सुनकर,

(मन-ही-मन) वे व्याकुल होते हुए बडी तेजी के साथ नि श्वास भरते हुए आ रहे थे कि वन के मध्य में उन्होने लक्ष्मण को देखा । लक्ष्मण को देखते ही वे अत्यत भय-विह्वल हुए और बोले—'हाय लक्ष्मण, अत्यत धीर तथा विवेकी होकर भी मेरी आज्ञा के बिना, सीता को वन में अकेली छोडकर तुम कैसे आये ? तुम इस तरह क्यो आये ? क्या, तुम नही जानते कि इस पृथ्वी पर रहनेवाले सभी राक्षस हमारे शत्रु है ? भाई, क्या तुम्हें वश-मर्यादा, धर्म तथा गुरुजनो की हानि का विचार नही करना चाहिए था ?'

इन बातो को सुनकर लक्ष्मण अत्यत भयभीत हुए । काँपते हुए उन्होने हाथ जोडकर कहा—'हे प्रभो, त्रिलोकीनाथ, मै जानता हूँ कि मेरा इस प्रकार चला आना उचित नही है । जिस कुटिल राक्षस ने माया-मृग के रूप में आपको भटकाकर निदान आपके दिव्य बाणो की अग्नि-शिखाओ से प्राणत्याग किये, उसने मरते समय 'हाय लक्ष्मण' कहकर आर्त्तनाद किया । वह आर्त्तनाद जब सीताजी के कानो में पडा, तब वे अत्यत भयभीत हुई और आपकी श्रेष्ठता को सर्वथा भुलाकर कहने लगी—'भाई लक्ष्मण, क्या बात है ? कुछ पता लगाओ । हे सौमित्र, तुम्हारे भाई कभी ऐसा दीन आलाप नही करते ।' तब मैंने उनसे कहा—'माताजी, हमारे मन में भय उत्पन्न करने के निमित्त ही क्रूर राक्षस ने ऐसी पुकार मचाई होगी । कहाँ सूर्य-वश के अधीश्वर और कहाँ दीन वचन, माताजी आप विचलित मत होइए ।' तब देवी मुझे अपशब्द सुनाती हुई कोसने लगी और मै मन ही मन दु खी हुआ और वन-देवताओ के सरक्षण में उन्हें छोडकर यहाँ चला आया । इसलिए प्रभो, आप इसे मेरी त्रुटि न मानें ।'

इस प्रकार कहते हुए अश्रुपूरित नयनो से लक्ष्मण ने अपने भाई को प्रणाम किया । राम ने अपने अनुज को बडे स्नेह से उठाया, आँखो से गिरनेवाले अश्रुजल को पोछा, और अत्यत दु खी होते हुए बोले—'हे तात, आजन्म पवित्र, सर्वज्ञ जनक महाराज की पुत्री होती हुई, उस प्रख्यात पुण्यशीला सीता का ऐसे वचन कहना ही सभी विपत्तियो का कारण है—ऐसा विचार करके तुम्हें तो वही ठहर जाना चाहिए था । तुम्हारे जैसे व्यक्ति को विचलित नही होना चाहिए था ।'

इस प्रकार, सौमित्र को सात्वना देकर राम ने अपनी आश्रम-भूमि में प्रवेश किया और (उसे सर्वथा नि.स्तब्ध पाकर) बोले—'हे लक्ष्मण, यह कैसी बात है कि यह आश्रम सर्वथा शून्य दीख रहा है । वन-देवताओ के हर्ष भरे वचनो की ध्वनि सुनाई नही पड रही है ? पक्षियो का कलरव नही सुनाई पड रहा है । मुनिजनो का सचार यहाँ नही दीख रहा है ? सीता (मेरे स्वागतार्थ) आगे आती नही दीख रही है ? मेरा मन अत्यत दीन तथा व्याकुल हो रहा है । आज मेरी बाईं आँख न जाने क्यो फडक रही है । हाय, इस वन में न जाने हम दोनो कैसा दु ख भोगेंगे ?'

इस प्रकार कहते हुए वे पर्णशाला के पास पहुँचे और दिनकर-रहित दिन-लक्ष्मी के समान, निशाकर-विहीन रात्रि के समान, सारिका-रहित पिंजडे के समान, कोयल-रहित आम्र-वृक्ष के समान, देखने में विवर्ण तथा कातिहीन दीखनेवाले उस पर्णशाला को देखकर वे मन-ही-मन बहुत अधीर हुए । व्याकुलता के कारण उनका मुख विवर्ण हो गया,

आँखो से अश्रु ऐसे बहने लगे, मानो शोक-रस ही प्रवाहित हो रहा है। वे अपने सूखे ओठो को आर्द्र करते हुए भग्न हृदय से अपने अनुज को देखकर बोले—'हे लक्ष्मण, मैंने अच्छी तरह देख लिया, पर्णशाला में कही भी भूमिसुता का पता नही है। कदाचित् पुष्प-चयन के लिए गई हो अथवा हमें ढूँढती हुई किसी दूसरे मार्ग से चली गई हो। पता नही, सरोवर में जल-क्रीड़ा करने गई हो या अत्यत भयभीत हो कही सतप्त हो रही हो, निकट पहुँचनेवाले बाघो के भय से कही छिप गई हो अथवा क्रोध से कही अकेली चली गई हो। मुझे तो कुछ भी मालूम नही हो रहा है कि वह कहाँ गई, जो भी हो यहाँ तो नही है।'

इस प्रकार तर्क-वितर्क करते हुए उन्होने पर्णशाला के भीतर प्रवेश करके सब स्थानो में ढूँढा। किन्तु कही भी जानकी को न पाकर उनका मन अत्यधिक सतप्त होने लगा, शरीर निश्चेष्ट हो गया, ज्ञान-रूपी रवि-शोक-समुद्र में अस्त होने से भ्राति-रूपी अधकार ने व्याप्त होकर उनके अतरग तथा नेत्रो को ढक लिया, धैर्य को आवृत कर लिया और अभिमान को घेर लिया। वे व्याकुल होकर भूमि पर लोट गये। उन्होने यह भी नही सोचा कि मै पहले ही सीता के (वनवास) दु:ख से चिंतित हूँ, अब मुझे यह दु:ख भी सहना पडा। यह दु:ख मुझे कैसे प्राप्त हुआ? कैसे मै इस दु:ख को पार करूँगा? हम क्यो इस वन में आये? अब मै इससे (लक्ष्मण से) क्या बात कर सकता हूँ? मै इसका अग्रज हूँ, यह मेरा अनुज है, हम दोनो इस दु:ख का भार कैसे वहन करेंगे?' इन बातो का विचार किये बिना वे मन-ही-मन क्षुब्ध होकर मदन-पीड़ित उन्मत्त की तरह चारो ओर निरुद्देश्य दृष्टि से देखते हुए, अपने महत्त्व को भी भूलकर प्रलाप करने लगे। वे कभी चिल्लाते—'हे तनुमध्ये (पतली कमरवाली)। इतनी देर तक तुम कहाँ हो? शीघ्र आओ।' फिर ऐसी चेष्टाएँ करते, मानो वे आ गई हो और उनका आलिंगन कर रहे हो। तुरन्त दु:खी होते, फिर धीरे-धीरे उनको सात्वना देते। थोड़ी देर में जब किंचित् चेतना लौट आती तो कहते—'हाय सौमित्र, अवनिसुता न जाने कहाँ चली गई? क्या हो गया उसे, उसके पद-चिह्नो के अनुसार चलकर ढूँढने पर भी वह दिखाई नही देती; वह पर्णशाला में भी नही है। वह कमललोचनी न जाने किस दिशा में गई है? क्या यह दण्डकवन नही है? क्या यह (हमारा) निवास-स्थान नही है? क्या यह (हमारी) पर्णशाला नही है? क्या मै राम नही हूँ? तब तो उस चचलाक्षी से बिछुडकर मेरे प्राण अभी क्यो टिके हुए है? उसके वियोग-दु:ख से यदि मै प्राणो का मोह त्यागकर मर जाऊँ, तो महाराज दशरथ तो यही सोचेंगे कि यह कैसा पुत्र है, जो व्रत को पूर्ण किये बिना ही चला आया है? ऐसी दशा में क्या वे मेरा आदर करेंगे? ऐसा नही करके यदि मै व्रत को पूर्ण करके, राज्य करने के लिए राजधानी को लौट जाऊँ और मिथिलेश्वर वहाँ आयें तो, उन्हें देखकर क्या मै लज्जित नही होऊँगा? इसलिए तुम मुझे इस कानन में ही छोडकर राजधानी को लौट जाओ और भरत से कहो कि वह अपनी इच्छा से समस्त पृथ्वी का शासन करे और माता कैकेयी, सुमित्रा तथा कौशल्या को जानकी के खो जाने का तथा मेरा समाचार कहो। मेरी बात मानो।'

इस प्रकार कहते हुए राघव ने अपनी आँखें ऐसे बद कर ली, मानो वे इस समाचार को मन से बाहर जाने नही देना चाहते थे कि सीता पर्णशाला से अदृश्य हो गई है।

तब लक्ष्मण सारी स्थिति देखकर अत्यधिक शोक से विलाप करने लगे—'मै अब किस माता की सेवा करूँगा ? किस माता की आज्ञा का पालन करूँगा ? किसे मै अपनी माता के समान मानूँगा ? सूर्यवश-तिलक के शोक को कैसे शान्त करूँगा ? सभी माताओ तथा भाइयो के लिए, इनके साथ का जीवन ही जीवन है (ये यदि न रहें, तो दूसरे कैसे रह सकेंगे)। हाय! अब तो मनुवश का ही अत हो गया।'

इतने में राम की चेतना लौट आई। उन्होने उमडते हुए शोक से दण्डकवन के चारो ओर एक बार दृष्टि दौडाई, और आँखो में आँसू भर लिये। सीता का स्मरण करते ही उनका दुख दुगुना हो गया, धैर्य के छूट जाने से मन और भी शोकाकुल हुआ। वे बोले—"हाय सीता, तुम चली गईं। तुम अपने शरीर को मेरे इस शरीर से अलग करके इसे यही छोडकर चली गईं ? सुर तथा असुरो के लिए पूजनीय है, इसका भी विचार नही करके मैंने तुम्हारे लिए शिव-धनुष को भग कर दिया था। परशुराम ब्राह्मण हैं इसका भी विचार नही करके मैंने उन्हें शत्रु समझकर उनका गर्व भग किया था। हे कमलाक्षी, तुम्हारे लिए मैंने इन दोनो निंदाओ को अपने ऊपर ले लिया है। अत में क्रूर दैव ने तुम्हें मुझसे अलग किया है। मैं तो केवल निंदा प्राप्त करने के लिए रह गया। तुम्हारे मन की अभिलाषा देखकर, उसे पूर्ण करके तुम्हें आनन्दित करने के लिए मैं गया, उस माया-मृग का वध करके उसका चर्म लाया हूँ। अब मैं प्रेम से वह (चर्म) किसको दूँ ? सब सुखो को भुलाकर, मेरा विश्वास करके मेरे साथ वन में आई हुई तुम्हारी रक्षा मैं नही कर सका। तुम्हारे जाने का मार्ग जानकर, तुमसे शीघ्र आकर मिल न सका। समस्त जगत् का शासन करने की महान् शक्ति रखनेवाले के समान शर-चाप धारण करके इस घोर वन में रहने आया और मूर्ख मति से अपने पूर्वजो की महत्ता को भी भुलाकर, आज तुम्हें खो बैठा हूँ। हे मृगलोचनी, तुमसे विछुडकर मैं इस शरीर में अपने प्राण कैसे रोक सकूँगा ? हे भूमिसुते! इस भूमि को छोडकर मै और किस स्थान पर इस शरीर को धारण कर सकूँगा ? हे सुदरी, तुम्हारी विरहाग्नि तुम्हारे सौदर्य-सागर में डूबे विना बुझेगी नही। तुम्हारे शरीर-रूपी नौका के विना, इस शोक-समुद्र को कैसे तर सकूँगा ? तुम्हारे कुचो की आड के विना मैं कामदेव की शर-वृष्टि को कैसे सह सकूँगा ? भगवान् मुझे उस तरफ ले गया और तुम्हें इस तरफ। हम दोनो को अलग करनेवाले भगवान् के लिए क्या असभव है ? हे कोमलागी, तुम्हें उठाकर ले जाते समय, तुमने क्या कहकर विलाप किया था ? तुमने मुझे क्या कहा था ? तुम किस देश में चली गई हो ? कहाँ रहती हो ? कैसा दुख भोग रही हो ? क्या कर रही हो ? कौन तुम्हें ले गया है ? किस मार्ग से गई हो ? हाय, हमारी कैसी दशा हो गई है। तुम्हारी जैसी निपुणा, तुम्हारी जैसी मुग्धा, तुम्हारी जैसी सौदर्य-निधि कहाँ है ? तुम्हारे साथ रहते एक दिन जी भरकर सुख भोगने का सौभाग्य (अब) मिलेगा क्या ? हे जलजनयनी, तुम्हारे साथ रहने पर मैं यही अनुभव करता था कि साकेतपुरी में ही रह रहा हूँ।

हे पिकवयनी, तुम्हारे संग रहने पर मैं अपने को स्वर्ण-महलों में रहनेवाले के समान ही समझता था। हे सुदरी, मैं तुम्हारे सहवास में अपने को समस्त भोगो को प्राप्त करता हुआ-सा अनुभव करता था। तुम्हारे साथ रहते हुए सब प्रकार के सुख-भोगो को भोगता हुआ-सा मानता था। आज ही मुझे ज्ञात हो रहा है कि यह महाकानन है; यह पर्ण-शाला है, यह तपस्या है, यह दु खमय जीवन है। हे राजकुमारी, हे मृगनयनी, हे कमलाक्षी, हे लतागी, मैं कैसे सतप्त हो रहा हूँ। फिर भी तुम सहानुभूति का एक शब्द भी नही कहती हो ? आज दैव ने तुम्हारे मद गमन की शोभा हंसो को, ललित चरणो की काति प्रवालो को, उन्नत कुचो की शोभा चक्रवालो को, करो का अरुण राग पद्मो को, तन की कान्ति नये जलद की बिजली को, आँखो का वैभव मछलियो को, शीतल मुख की शोभा चद्र को, उज्ज्वल हँसी चद्रिका को, मधुर भाषण तोते को, केशो की कान्ति भ्रमरो को, कटि की कृशता आकाश को, देकर तुम्हें निगल लिया है। हे वामलोचनी! हे पद्मगधी! हे कमलमुखी! हे सीते!" कहते हुए दु ख-विवश हो राम भूपाल अत्यधिक व्याकुल हुए। उसके पश्चात् अत्यत दीन होकर वे अपने अनुज को देखकर बोले—'हे लक्ष्मण, वह इदीवराक्षी न जाने किस ओर गई है। क्या हम उसे खोजते हुए चलें ? वह इन लता-समूहो में न जाने कहाँ लीन हो गई है, क्या हम उसे पुकारें ? वह पृथ्वी की कुमारी न जाने किन पेडो की आड में छिप गई है; क्या हम चलकर देखें ? वह शुक-जुवाणी न जाने किन सरोवरो में (स्नान करने) गई है, क्या हम उसका पता लगाने जायँ ?' इस प्रकार बार-बार अत्यत दीनालाप करते हुए, मन-ही-मन खिन्न होते हुए वे असह्य वेदना से पीडित होने लगे।

(तत्पश्चात्) वे गौतमी के किनारे पहुँचे और उसे सबोधित करके कहने लगे—'हे लोकपावनी, हे लोकमाता, लोकपावनी सीता का पता क्या आप जानती हैं ? हे लोक-बधु, हे कर्मसाक्षी (सूर्य), क्या आप जानते है कि सीता कहाँ है ? हे जगत्प्राण, हे सब स्थानो में सचार करनेवाले (पवन) क्या आप भी नहीं जानते कि सीता कहाँ है ? हे लताकुमारी, क्या तुम नही जानती कि वह लतागी कहाँ है ? हे जलज, क्या तुमने उस जलजातगधी को नही देखा ? हे सिंह, क्या, तुमने उस सिंहमध्या (क्षीण कटिवाली) को नही देखा ? हे गजराज, क्या तुमने उस गजगामिनी को नही देखा ? हे हरिण, क्या तुमने उस हरिणाक्षी को नही देखा ? हे पिक, क्या तुमने उस पिकवयनी को नही देखा ? हे भ्रमर, क्या तुमने उस नीलवेणी को नही देखा ? हे तिलकवृक्ष, क्या तुमने उस तिलक से अलकृत मुखवाली को नही देखा ?' इस प्रकार भ्रात हो, राघव जहाँ-तहाँ जाकर सीता को ढूँढने लगे, पर कही भी वैदेही का पता न मिलने से, विरहाकुल तथा विवश होकर रह गये।

२४. लक्ष्मण का राम को सांत्वना देना

ऐसे दुःखी होनेवाले अपने भाई को देखकर लक्ष्मण ने उनसे कहा—'हे भाई, आप समस्त लोको के लिए आराध्य है, उदात्त चित्तवाले है, महान् बलशाली है, अपनी स्त्री के लिए इस प्रकार आप शोक करें, यह उचित नही। हे सूर्यवशाधिप, इस प्रकार का मोह

तथा शोक आपको क्यो ? यह ससार तो तमोगुण से आवृत है । आप यदि धनुष अपने हाथ में लें, तो देवता भी आपको देखकर दूर जायेंगे । हे अखिलेश, आप अद्वितीय शक्ति-शाली है । मेरे जैसा व्यक्ति आपका सेवक है । आपके लिए असाध्य क्या हो सकता है ? आप अपने महत्त्व का विचार क्यो नही करते ?'

तब राम ने अपने आपको सँभाल, शोक तज दिया और अपने भाई को देखकर बोले—'अब मै जानकी का वियोग किसी भी प्रकार सहन नही कर सकता । मै अपने दुर्वार बाणो के सतत प्रयोग से सारी पृथ्वी को चीरकर, पातालवासियो को पीडित करके, चद्रमुखी सीता को प्राप्त करूँगा या सप्त समुद्रो को आलोडित करके भूधरो को चूर-चूर करके, दिग्गजो के कुभ-स्थलो को फाडकर भूमिसुता को प्राप्त करूँगा । या सभी दिक्-पालो के हृदयो को चीरकर, सूर्यबिम्ब को तोडकर, नक्षत्रो को चूर-चूर करके सारी पृथ्वी को अधकार में डुबोकर अपनी स्त्री को प्राप्त करूँगा या अपने दिव्यास्त्रो का प्रयोग करके सभी राक्षसो को भस्म कर दूँगा, पृथ्वी को राक्षस-रहित कर दूँगा और वैदेही को साथ लूँगा (प्राप्त कर लूँगा) । या समस्त ब्रह्मलोक को छानकर, आदि ब्रह्मा का सहार करके, सभी प्राणियो में भय उत्पन्न करके, अपने पराक्रम से अपनी स्त्री को प्राप्त करूँगा । यदि मै अपने बाहुबल का प्रदर्शन नही करूँ, तो क्या, यो ही सुरगण सीता का पता बतायेंगे ? यह देखो, सभी भुवनो को कँपाती हुई मेरे बाणो की अग्नि-ज्वाला दीप्त हो रही है । लो, सीता को देखो, मै अभी सीता को ऐसे प्राप्त करूँगा कि सभी देवता मेरी प्रशसा करने लगेंगे ।'

इस प्रकार कहते हुए उनकी भौहें ऐसी तन गईं, मानो वे सभी लोको के लिए उत्पात की सूचना दे रही हो । सभी जीवो के साथ समस्त ब्रह्माण्ड को चूर-चूर करनेवाला *सकर्षण* रूप उन्होने धारण किया और प्रलयकाल के रुद्र की भाँति क्रुद्ध होकर धनुष हाथ में ले लिया । तभी सभी जीव भयभीत हुए, सारी पृथ्वी थरथराने लगी, सभी लोक व्याकुल हुए, आकाश हिलने लगा, ब्रह्माण्ड मानो टूटने लगा, ब्रह्मा का मत्र मिट गया, रवि पथ-भ्रष्ट हो गया, नक्षत्र टूटने लगे, शिव भी भयभीत हुए और यक्ष, देव तथा असुर विचलित हुए ।

तब लक्ष्मण राम के निकट पहुँचकर अत्यधिक भय से, हाथ जोडकर बोले—'हे प्रभो, आप करुणानिधि है, लोक रक्षण-कला में प्रवीण है । जनकजा के लिए सभी लोको का समूल नाश कर देना, क्या आपके लिए उचित है ? एक-एक वन में, सभी समुद्रो में, जनाकीर्ण नगरो में तथा समस्त देशो में वैदेही को बिना थके ढूँढने के उपरान्त भी यदि वे नही मिली, तब आप अपने क्रोध तथा पराक्रम से उनको प्राप्त कर सकते है ।'

इस प्रकार लक्ष्मण के कहने पर राम ने उनकी बातें बडे स्नेह से मान ली, क्रोध तजा और धनुष को रख दिया । उसके पश्चात् अखिलेश राम अपने अनुज के साथ दक्षिण दिशा की ओर चल पडे । उस समय मार्ग में जहाँ-तहाँ सीता की वेणी से गिरे हुए फूल, उस तन्वी के वक्षोजो पर विलसित हारो के रत्न, उनके मणिमय चरण-नूपुर पृथ्वी पर

पड़े हुए देखकर राम अत्यधिक शोक से अभिभूत हुए। उन्होंने विचार करके निश्चय कर लिया—हाय, निश्चय ही कोई क्रूर दानव उस कुटिल-कुंतला सीता को उठाकर ले गया है।

यों चिंतित होते हुए वे मार्ग में अन्वेषण करते हुए थोड़ी दूर आगे बढ़े। मार्ग में जहाँ-तहाँ राक्षस के चरण-चिह्नों को देखते तथा उनका अनुसरण करते हुए वे कुछ दूर गये। वहाँ उन सूर्यवंशजों ने एक स्थान पर कटे हुए पंख, रक्त के कीचड़ में मृत पड़े हुए सारथी, उसपर टूटकर गिरे हुए रथ, रथ के पास कटकर गिरे हुए अश्व, पृथ्वी पर बिखरे हुए पताका के खंड, उनके सामने ही गिरे हुए धनुष के खंड, छितराये हुए अस्त्र-शस्त्र देखे। (इन सब वस्तुओं को) लक्ष्मण के दिखाने पर राम विस्मित हुए और सोचने लगे कि किन्हीं ने यहाँ पर युद्ध के आनन्द का उपभोग किया है।

२५. जटायु का अग्नि-संस्कार करना

उक्त योद्धा का पता लगाने के उद्देश्य से रघुराम उस मार्ग में जहाँ-तहाँ ध्यान से देखते हुए आगे बढ़े। उस स्थान के निकट ही पंख और पैर कटे हुए, रक्त में डूबे, वज्र के आघात से गिरे हुए मैनाक पर्वत की भाँति विवश पड़े हुए विहगेन्द्र (पक्षिराज) को देखकर राम ने कहा—'हे लक्ष्मण, देखा तुमने? चपलराक्षस सीता को निगलकर, अपना निज रूप दिखाने से डरकर पक्षी के रूप में यहाँ पड़ा हुआ है। भय से तड़पनेवाले इसका वध मैं कर डालूँगा।' यों कहते हुए वे धनुष हाथ में लिये उस पक्षी पर आक्रमण करने को उद्यत हुए। उन्हें देखकर पक्षिराज ने रक्त का वमन करते हुए, लंबी साँस भरते हुए, गद्‌गद कंठ से कहा—'हे राजन्, मैं आपके पिता का मित्र हूँ, कश्यप ब्रह्म का पौत्र हूँ; अरुण का पुत्र हूँ तथा जटायु नामधारी हूँ। मैं इन घने वन तथा शैल-शृंगों पर निवास करता हूँ। मैंने अपना सारा वृत्तांत आपको इसके पहले स्पष्ट रूप में निवेदन कर ही दिया था। हे पुण्यात्मा, ऐसे मुझे यह विपत्ति क्यों कर आई, उसका भी विवरण सुन लीजिए। आज रावण आपकी देवी को चुराकर लिये जा रहा था, तो मैंने उसको रोका और अपनी अमित शक्ति के साथ उससे युद्ध करके बुरी तरह घायल होकर पृथ्वी पर पड़ा हूँ। यह उसका केतु, सूत तथा अश्वों से युक्त रथ है। युद्ध में मेरे द्वारा ये नष्ट हुए हैं। तब क्रोध से वह क्रूर राक्षस सीता को उठाकर आकाश-मार्ग से चला गया। आप तो आये नहीं। (अब) मैं आपको यह समाचार सुना सका, आपकी शुभ मूर्त्ति के दर्शन कर सका। मैं पुण्यवान् हुआ।'

तब राघव का शोक द्विगुण हो उठा। उन्होंने धनुष को फेंक दिया और मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़े। सौमित्र की परिचर्या के उपरान्त उनकी चेतना लौटी, तो वे बोले—'हाय, महात्मा जटायु! मेरे कारण आप पर यह विपत्ति आई है।' उन्होंने जटायु के शरीर पर हाथ फेरा, और सारा रक्त स्वयं पोंछा और अपने अनुज को देखकर बोले—'लक्ष्मण, इन्होंने हमारे लिए रावण का सामना करके इस प्रकार युद्ध किया है। ऐसे पुण्यात्मा कहाँ मिल सकते हैं? इनके स्वर्ग सिधारने के पहले ही तुम इनसे पूछ लो कि रावण की राजधानी को जाने का क्या मार्ग है, उसकी शक्ति आदि कितनी है।' तुरन्त लक्ष्मण ने रघुराम के कार्य में सहायक जटायु से उस सुरवैरी की शक्ति आदि

धाम, अति पुण्यप्रद नामवाले, हे रघुराम, मैं आज आपके दर्शन कर सकी। मेरी तपस्या आज सफल हुई। मैंने अद्वितीय पुण्यो को प्राप्त किया। हे काकुत्स्थ, मार्ग के श्रम से आप बहुत क्लात हुए होगे, कही और न जाकर आज हमारे आश्रम में ठहर जाइए। हे अनघात्म, मैंने अपने गुरु मतग मुनि के द्वारा आपका वृत्तात सुना है। आप आदिदेव है, सर्वनिगम-वेद्य है, अत., आपकी स्तुति करना असभव है। यह मतग मुनीद्र का आश्रम है, तपश्चर्या से परिपूर्ण तथा विश्रामदायक है।

इस प्रकार (उस आश्रम का) महत्त्व वताकर उसने वडे प्रेम से वन के कंद, मूल, फल ले आकर उन्हें दिये और राम ने उन फलो को खाया। राम उस रात को वही ठहर गये और दूसरे दिन घनी जटा-जूट की कवरी धारण करनेवाली शवरी को देखकर वोले—'सीता की वियोगाग्नि से मैं अत्यत व्याकुल हूँ, अत, एक स्थान पर ठहर नही पा रहा हूँ, अब मुझे उस उत्फुल्लकमलमुखी सीता को ढूँढने के निमित्त जाना है। आप कृपया मुझे आज्ञा दें।'

तव शवरी अत्यत सतुष्ट होकर बोली—'दनु नामक देवता ने आपको भविष्य में करने योग्य सभी विषयो के सबध में कहा ही है। फिर भी मैं कहूँगी। हे राजन्, आप अवश्य ही रावण का वध करेंगे और सीता को प्राप्त करेंगे। इसमें सदेह करने की कोई आवश्यकता नही है। फिर भी आप अकेले मत जाइए। हे भानुकुलाधिप, यहाँ से आप ऋष्यमूक पर्वत के निकट जाइए। उस पर्वत पर तीक्ष्ण बुद्धिवाले, सूर्य-पुत्र सुग्रीव नामक वानर राजा रहता है। वह अपने अग्रज के हाथो अपना राज्य तथा अपनी स्त्री को खो चुका है। वह शोकातुर है। उसकी वानर-सेना अनत है। इसलिए आप उसका उपकार कीजिए जिससे कि उसके मन में आपके प्रति विश्वास उत्पन्न हो जाय। उसके पश्चात् आप उसके साथ लका जाइए और अति शक्तिशाली रावण को युद्ध में मारकर अपने वल-विक्रम की ख्याति चारो ओर फैलाते हुए अपनी स्त्री सीता को प्राप्त कीजिए।

इस प्रकार शवरी ने उन्हें भविष्य में करने योग्य सभी कार्य वतलाकर अपने गुरु के वचनो का स्मरण किया और तुरत अग्नि प्रज्वलित करके उसमें अपना शरीर भस्म कर देने के लिए तैयार हो गई। उस समय आकाश में इन्द्रादि देवता मणियो के प्रकाश से देदीप्यमान होनेवाले विमानो पर आरूढ होकर इस दृश्य को देखने लगे। नारद, सनक सनदन आदि प्रमुख मुनीद्र अत्यत हर्षित हुए। तव शवरी ने परमधाम, परमकल्याण-गुण-सपन्न, पूर्णस्वरूप, अव्यय, अविकार, अखिल अतरात्मा, अव्यक्त अखिलेश, आघात-रहित, ब्रह्मा से भी स्तुत्य, ससार के रोगो के वैद्य, और रघुकुल-रूपी समुद्र के लिए चद्र के समान शोभित होनेवाले, रघुराम चन्द्र को अपने मन में प्रतिष्ठित करके, वडी भक्ति से उनकी स्तुति की और उस प्रभु के समक्ष ही रामार्पण के रूप में अपने शरीर को अग्नि में भस्म कर दिया। उसके पश्चात् वह देवताओ के लिए मान्य दिव्य विमान पर आरूढ होकर देवताओ की विविध सेवाओ को प्राप्त करती हुई वडे हर्ष से देवलोक को चली गई।

२८. श्रीराम का ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचना

इस प्रकार शवरी अग्नि-मुख के द्वारा स्वर्ग-सुख को प्राप्त हुई। यह देखकर रमणीय

आकारवाले महाबलशाली राम-लक्ष्मण उस स्थान को छोडकर आगे बढे और उस ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँच गये, जो सतत आलोकमय, तथा श्रेष्ठसपन्न मुनियो का निवास था।

उस पर्वत के झरने ऐसे दीख रहे थे, मानो त्रिलोकीनाथ के आगमन के कारण आनद से उमडकर, वह पर्वत आनंदाश्रु बहा रहा हो। उस पर्वत की तराइयो में अत्यधिक संख्या में देदीप्यमान चंद्रकात मणियो की काति ऐसी दीख रही थी, मानो मेरु, मदर तथा हिमाचलो का उपहास करनेवाली उस पर्वत की हँसी हो। उस पर्वत की ऊँची चोटियो पर चमकनेवाले नक्षत्र इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, मानो ब्रह्मा ने इस पृथ्वी के पर्वत-राज्य का अभिषेक करके उसके सिर पर मत्राक्षत छीट दिये हों।

उस पर्वत पर उज्ज्वल रूप से दीप्त होनेवाली सूर्यकात मणियो की दीप्ति ऐसी दीख रही थी, मानो उस पर्वत की शरण में आये हुए सुग्रीव पर अत्याचार करनेवाले वालि पर क्रुद्ध होकर वह अपने प्रताप की अग्नि दिखा रही हो। उस पर्वत पर विचरण करनेवाले दतो से युक्त मत्त गज ऐसी शोभा दे रहे थे, मानो नील मेघ उस पर्वत पर विचरण करते हुए अपनी बिजलियो को चमका रहे हो। उस पर्वत के शिखर के निकट ही बहनेवाली आकाश-गंगा, (मन्मथवैरी) शिव के जटा-जूटो पर शोभायमान गंगा के समान थी, उसके आस-पास क्रीडा करनेवाले हंसो की पवित शिव का शिरोभूषण चद्र के समान थी। उस पर्वत पर रहनेवाले अत्यधिक शृग, वृक्ष तथा पल्लव-समूह शिव के बिखरे जटा-जूट के समान सुशोभित थे और वह पर्वत सिद्धो की सेवाएँ प्राप्त करते रहनेवाले शिव के सदृश ही दीख रहा था। उस पर्वत पर रहनेवाले कल्प-वृक्ष, कामधेनुएँ, देव-कन्याएँ, विविध औषधियाँ, चिंतामणि जैसी श्रेष्ठ मणियो का समूह, कभी नष्ट न होनेवाली निधियाँ और सतान-वृक्ष (एक प्रकार का कल्प-वृक्ष) आदि ऐसे दीख रहे थे, मानो इद्रादि देवता, समुद्र-मथन से प्राप्त वस्तुओ को (उनके वितरण के समय इद्रादि देवताओ के बीच झगडा उत्पन्न होने के कारण लाकर यहाँ पर रख दिया हो), या अमृत-पान से बेसुध होकर भूल से यही छोड़ दिया हो; या योग्य स्थान होने के कारण उन्हें यहाँ छिपा रखा हो।

इस पर्वत को देखकर राघव अत्यत विस्मित हुए और उसकी प्रशसा करने लगे। अपने अनुज की अकलक भक्ति-युक्त सेवा प्राप्त करते हुए वे उस शैल के निकटवर्त्ती पपा सरोवर के पास पहुँचे और उस सरोवर में नियमानुसार स्नान किया। उसके पश्चात् वे उस सरोवर के चारो ओर की शोभा का अवलोकन करके अत्यत मुग्ध-से हो गये। अपनी क्लान्ति मिटाने के निमित्त वे एक आम के वृक्ष की छाया में बैठे, तो लक्ष्मण उनका शीतलोपचार करने में प्रवृत्त हुए।

कुछ समय के पश्चात् राघव ने उस आम के वृक्ष को ध्यान से देखा और लक्ष्मण से बोले—'हे अनुज, जबसे हमने वन के लिए प्रस्थान किया, तबसे कितने ही ऊँचे पर्वत और पुण्य नदियाँ देखी, किन्तु हमने इस वृक्ष के जोड़ का वृक्ष कही नही देखा। कदाचित् सुरपति आदि देवताओ ने मिलकर इस वृक्ष का निर्माण किया हो; ब्रह्मा ने स्वयं प्राण देकर इसे यहाँ पर प्रतिष्ठित किया हो, या रविसुत (सुग्रीव) की तपस्या से सतुष्ट होकर ब्रह्मा ने इस वृक्ष को यहाँ उत्पन्न किया हो, या अमृत को प्राप्त करने के बाद सुरो ने सूर्य-

पुत्र का पक्ष लेकर अमृत से सींचकर इस वृक्ष को वर्द्धित किया हो। सूर्य के साथ प्रेम बढाने के निमित्त इस वृक्ष ने आठो दिशाओ में अपनी उन्नत शाखाओ को फैलाया है। इच्छित फल प्रदान करने के निमित्त मानो इसने अपनी शाखाओ की काति चारो ओर फैला रखी है। यह अपने पत्तो को फैलाकर, उसकी कान्ति को विकीर्ण करते हुए, सूर्य की रश्मि भी नीचे आने नही देता; रात्रि के समय यह शशि के प्रेम से अनुरक्त हो उनकी चांदनी को पृथ्वी पर पडने नही देता। इसके फल अमृत-फलो की अपेक्षा सौगुने अधिक स्वादिष्ट है। ऐसा लगता है कि देवताओ ने इस पृथ्वी के वृक्षो के राजा के रूप में इसका अभिषेक कर दिया है।

लक्ष्मण ने अपने अग्रज के चित्त का भाव जानकर उनके कथन का अनुमोदन किया और उनके लिए पत्रो की मृदु शय्या का प्रबध किया। तब राम ने उस शय्या पर शयन किया, तो लक्ष्मण रघुराम के चरण दबाने लगे। इस प्रकार अत्यत शोभा-समन्वित हो उनके वहाँ रहते हुए कुछ समय व्यतीत हुआ। तब अनघ रघुराम को सबोधित करके लक्ष्मण ऊँचे स्वर में बोले—'हे देव, अभी-अभी छिपकली की बोली मुझे सुनाई पडी है कि आप युद्ध में शत्रु-सेना को जीतकर अवश्य अपनी देवी को प्राप्त करेंगे। सर्वत्र आपकी विजय ही होगी।'

तब राम ने कहा—'अब वानरेश्वर बडी श्रद्धा के साथ यहाँ आकर हम से मिलेगा और हम शीघ्र ही लका जायेंगे। युद्ध में रावण मरेगा और सीता हमें मिल जायगी और उसके पश्चात् मैं राज्य-भार ग्रहण करूँगा।' इस प्रकार राम के कहने के पश्चात् राम तथा लक्ष्मण बडी प्रसन्नता से वहाँ रहने लगे।

आध्र-भाषा के सम्राट्, श्रेष्ठ काव्य तथा आगम आदि के ज्ञाता, आचारवान्, अपार धैर्य-सागर, भूलोक-निधि गोन बुद्ध राजा ने अपने पिता महनीय गुणसपन्न, मेरु पर्वत के समान धीर, विट्ठल राजा के नाम पर, आचद्रार्क पृथ्वी पर स्थायी रहनेवाली, असमान तथा ललित शब्द तथा अर्थो से विलसित रामायण के, अलकार तथा भावो से भरे अरण्य-काण्ड की रचना इस प्रकार की कि वह इस पृथ्वी पर आचद्रार्क लोगो की प्रशसा प्राप्त करती रहे। रसिकजनो को सतत आनद देनेवाले, श्रेष्ठ, आर्ष, आदि काव्य-रूपी इस पुण्य चरित को जो पढ़ेंगे, या सुनेंगे, उन्हें सामादि वेद-समूहो का आधार, रामनाम-रूपी चिंता-मणि, नव-भोग, परहित-बुद्धि, उन्नत विचार, परिपूर्ण शक्ति, राज्य-सुख, निर्मल कीर्त्ति, नित्य सुख, धर्म में निष्ठा, दान में आसक्ति, चिरायु, आरोग्य तथा ऐश्वर्य सतत सप्राप्त होगे। इसे सुनते रहने से पाप-क्षय, पुत्र-प्राप्ति, शत्रुओ का नाश, धन-धान्य की समृद्धि, विघ्न-बाधारहित सुन्दर स्त्रियो के साथ जीवन और पुत्रो के साथ सहजीवन सिद्ध होगे। सब विपत्तियाँ दूर होगी, बधु-बाधवो का सहवास रहेगा, अभिलषित वस्तुओ का वियोग न होगा, (घरो में) देवता-तर्पण तथा पितरो की तृप्ति होती रहेगी। इस पुण्य चरित के लिखनेवालो को श्रेष्ठ तथा शुभ उन्नति तथा इद्रलोक का निवास प्राप्त होगा। जब-तक कुलपर्वत, नक्षत्र, रवि तथा चद्र, दिशाएँ, वेद, पृथ्वी तथा समस्त लोक स्थित रहेंगे, तबतक यह कथा अक्षय आनद-समूह का आधार रहेगी।

। अरण्यकांड समाप्त।

श्रीरंगनाथ रामायण

(किष्किंधाकांड)

१. पंपासर-दर्शन

श्रीराम ने तब शीतल जल तथा कमल, उत्पल एव कुमुदो से सुशोभित पंपा सरोवर को और उसके तटवर्त्ती, वसत ऋतु के कारण, फूल और फल के भार से युक्त चंपक तथा सहकार वृक्षो की शोभा को देखकर जानकी के विरह से कपित होते हुए लक्ष्मण से कहा— "हे सौमित्र, यह पंपा सरोवर इतना मनोहर है कि यह देवताओ की कामिनियो के लिए भी जल-क्रीडा करने की इच्छा करने योग्य है। इस सरोवर की समता करनेवाला कोई दूसरा सरोवर वताना, क्या शेषनाग के लिए भी सभव हो सकता है? इसका महत्त्व जानने के पश्चात् क्या मानसरोवर भी तुच्छ नही प्रतीत होगा? पवित्र जीवन का आधार इस सरोवर की समता, क्या स्वर्गलोक का कोई भी जलाशय कर सकता है? (जल के) वाहर निकले हुए मृणालो के ऊपर दीखनेवाली कर्णिकाओ पर (वीजकोष) विकसित श्वेत कमल, मरकत के स्तभो पर स्थित स्वर्ण-कलशो पर आधारित छत्रो की भाँति दीखते है। दोनो पार्श्वभागो में भ्रमरो के पंखो से उत्पन्न शीतल वायु के कारण तरगायमान होनेवाली लहरो पर डोलनेवाले राजहसो के फैलाये हुए पख चामरो की भाँति सुशोभित है। इनके कारण यह सरोवर शोभा-रूपी साम्राज्य के लिए अभिषिक्त सा अत्यत मनोहर दीख रहा है। वसतकाल के समान यौवन की काति से परिपूर्ण हो, छोटे-छोटे पल्लव-रूपी

माणिक्य के आभूषण पहने हुए ये पेड़ो की फैली हुई शाखाएँ इस स्निग्ध सरोवर रूपी दर्पण में उझक-उझककर (अपना मुँह) देख रही है । उनकी शिखाएँ मद पवन में इस तरह हिल रही है, मानो वे अपने सौदर्य को देखकर प्रसन्नता से अपना सिर हिला रही है । यहाँ की शुक-सारिकाएँ इस प्रकार बोल रही है, मानो एक दूसरे की प्रशसा कर रही है । इस सरोवर के तीर की वन-स्थली को देखकर मेरा संताप, मन्मथ के प्रताप के समान, उद्दीप्त हो उठा है । मेरी धृति भी नष्ट हो गई है ।

"हे सौमित्र, विचार करने पर ऐसा लगता है कि यह वन-भूमि नही है, बल्कि कामदेव का शस्त्रागार है, वे आम्र-पल्लव नही है, बल्कि मन्मथ के तेज खड्ग है; यह भ्रमरो का गुजार नही है, बल्कि निकट पहुँचनेवाले मन्मथ के धनुष्टकार है; वे फूलो के गुच्छ नही है, बल्कि मन्मथ के तीक्ष्ण बाण है, यह कोयल की मीठी बोली नही है, बल्कि उसके (कामदेव के) कर्णकटु हुकार है । मेरे जैसे स्त्री-विरही इस कानन में कैसे रात्रि बितायेंगे ? इस वन में सुनाई पडनेवाला कोयल का कल-कूजन वर्षा ऋतु के बादलो के घोर गर्जन के समान लगता है, वृक्षो से गिरनेवाले पुष्प-रज का प्रकाश, नये बादलों की बिजली के समान लगता है; पल्लव-युक्त शाखाएँ इन्द्र-धनुष के समान लगती है; पृथ्वी पर गिरनेवाले फूल ओले के समान लगते है, सतत झरनेवाला मकरद वर्षा के समान दीखता है । (इन कारणो से) यह वसत ऋतु भी वर्षा ऋतु के समान दिखाई पडती है । इस पर भी पल्लव-रूपी अग्नि-ज्वालाओ से, भ्रमर रूपी धुएँ से, वकुल के पुष्परज-रूपी राख से, सेमर के फूल-रूपी अगारो से प्रकट होकर, यह ऋतु विरहियो के लिए अग्नि के समान दीखती है और मन्मथ के प्रताप की अग्नि का भी तिरस्कार करती हुई, मेरे मन को जला रही है । हाय ! अब मै क्या करूँ ? कैसे मै इसे सहन करूँ ? कामिनी-कुल-भूषणा सीता को मै कब देखूँगा ? क्या कभी मै सीता के साथ उस प्रकार मिलकर रह सकूँगा, जैसे पपा सरोवर के तटवर्ती वन की शोभा के साथ वसत रहता है । इस पपा के कमलो के समान दीखनेवाले सीता के मुख का मै कब अवलोकन कर सकूँगा ? यहाँ की मछलियो की आँखो के समान उस इदुवदनी की आँखें मै कब देख सकूँगा ? भ्रमर यहाँ के पद्मो का मकरद जैसे पान करते है, वैसे ही मै कब उस सुदरी का अधर-पान करूँगा ? यहाँ के जलपक्षी जैसे जोडो में रहते है, वैसे ही उस कमलाक्षी के सग मै कब रह सकूँगा ? हाय, यह कैसा विचार है ! अब वह सीता कहाँ ? कहाँ यह विरह ? इन दोनो का मेल कैसे सभव है ? हे अनुज, अब तुम अयोध्या लौट जाओ । मै अब अपने प्राणो को रख नही सकूँगा ।"

इस प्रकार अनाथ की तरह शोक करनेवाले राम को देखकर लक्ष्मण बोले—'हे रघुराम, आप समस्त लोको का सामना करने की क्षमता रखनेवाले पुरुषोत्तम है । ऐसे मोहजन्य शोक से आप क्यो पीड़ित हो रहे है ? सीता को छल से ले जानेवाले रावण के संहार का उपक्रम कीजिए ।' तभी भासत नामक पक्षी (शकुन-पक्षी) बोल उठा ।

इतने में उस ऋष्यमूक पर्वत की तराइयो में विचरण करते हुए सुग्रीव ने निकट ही राम तथा लक्ष्मण को देखा । वह अत्यधिक भयभीत होकर, चीत्कार करते हुए, अपने

मार्ग में पड़नेवाले झाड़-झखाड़ की परवाह किये बिना अंधाधुंध पर्वत पर चढ़ने लगा। उसने वानरों को एकांत में बुलाकर उन्हें राम और लक्ष्मण को दिखाते हुए कहा—'वह देखो, पंपा के पास दो व्यक्ति धनुष धारण किये हुए, विविध शस्त्रास्त्रों से सज्जित होकर ठहरे हुए हैं। ये प्रच्छन्न वेशधारी, वालि के भेजने पर, हमारा संहार करने आये हैं। अन्यथा, मुनियों को खड्ग, तूणीर, धनुष-बाण आदि की क्या आवश्यकता है? इनके पवित्र मुनिवेश देखकर मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है। अब हमें यहाँ से कहीं चला जाना चाहिए; यहाँ रहना उचित नहीं है।'

जब सुग्रीव ने मंत्रियों से इस प्रकार के वचन कहे, तब उन्हें सुनकर विमल विचारों से भरे हनुमान् बोले—'इन्हें देखने पर ऐसा लगता है कि ये कोई पुण्यात्मा हैं, ये कपट-वेशधारी नहीं हैं। रवि-चंद्र के समान दीखनेवाले, ये दयालु व्यक्ति ही हैं। पता नहीं कि इस रूप में वे यहाँ क्यों आकर रहते हैं? उनका महत्त्व जाने बिना हमें भयभीत होने की क्या आवश्यकता है?' तब सुग्रीव ने हनुमान् से कहा—'हमें शंका होती है कि ये वालि के भेजने पर यहाँ आये हैं, पता नहीं कि क्रोध से भरा हुआ वालि हमें कब कैसी हानि पहुँचायेगा। हमें कभी अपने शत्रु का विश्वास नहीं करना चाहिए। अतः हे पवन-पुत्र, तुम किसी कौशल से उनसे जाकर मिलो और इस बात का पता लगाओ कि ये क्यों आये हैं। उनके मन की बात जानकर मेरे मन के भय का निवारण करो। शीघ्र जाओ।'

२. हनुमान् की राम से भेंट

इस प्रकार हनुमान् को विदा करके सुग्रीव अपने मंत्रियों के साथ वहाँ रहने से डरकर मलयाद्रि पर चला गया। तब अत्यंत शूर, उत्तम गुणवान्, शीलवान्, बाहुबली, तेजस्वी, कमनीय रूपवाले, वानरों के रक्षक, धर्मार्थमोक्ष के इच्छुक, अतुल गुरु-भक्त, अत्यंत कुशल, तथा कीर्तिवान्, अंजन-सुत हनुमान् उस पर्वत से धीरे-धीरे ऐसे उतरा, मानो वालि को अमरलोक भेजकर सुग्रीव को राज्य पर प्रतिष्ठित करने, सुरों की रक्षा करने, रावण की विजय-लक्ष्मी राम को देने, सीता के दुःख को दूर करने तथा रवि-पुत्र (सुग्रीव) के चित्त को मोद-मग्न करने के लिए जा रहा हो। इस प्रकार वह वानरेश्वर पर्वत से उतरकर आया और वटु का वेश धारण करके पंपा सरोवर के निकट पहुँचा। महात्माओं के दर्शनार्थ जाते हुए रिक्त हस्तों से जाना उचित नहीं है, इसलिए राम के देने योग्य एक फल हाथ में लिये हुए, वह उनके निकट जाने लगा। इस प्रकार आते हुए अनिल-कुमार को देखकर राम अपने अनुज से बोले—'हे लक्ष्मण, सुनहला रंग, मुंज की सुंदर करधनी, रत्न-कुंडलों से विलसित कर्ण, श्रेष्ठ हार, यज्ञोपवीत, कौपीन, तथा हस्त-कंकण धारण किये हुए किसी मनुष्य ने क्या अनुपम कपि का रूप धारण किया है? इस रूप को धारण करने की इच्छा से स्वयं रुद्र ने इस रूप में जन्म तो नहीं लिया है? अन्यथा इस पृथ्वी पर कपिमात्र को ऐसी प्रभा कैसे प्राप्त हो सकती है?'

इस प्रकार प्रशंसा करनेवाले राजकुमार को देखकर पुलकित गात्र से हनुमान् उनके निकट पहुँचा और बड़ी प्रीति के साथ फल उनको भेंट किया, मानो कह रहा हो कि मैं साध्वी सीता का शिरोरत्न आप को शीघ्र ही ला दूँगा। इसके पश्चात् वह बोला—'हे प्रभो,

आप ही शरण हैं । आपकी दृष्टि ने मेरा स्पर्श किया । मैं विभूषित हुआ । मैं कृतार्थ हुआ। धन्य हुआ । मैं आपका प्रिय सेवक हूँ । मेरा नाम हनुमान् है, मैं वायु-पुत्र हूँ, और सूर्य-पुत्र का मंत्री हूँ । अंजना-सुत हूँ । मैं भय तजकर भिक्षुक के रूप में आपके विषय में जानने के लिए आपके पास आया हूँ । आप सुनिए। यशस्वी सुग्रीव वानरों के राजा हैं। और परम बलवान् हैं । वे सूर्य-पुत्र हैं और सूर्य-सम तेजस्वी हैं, वे अभिमानी तथा असमान पराक्रमी हैं । अपने भाई वालि के द्वारा अपना सारा राज्य खोकर, अत्यंत व्याकुल हो, वे इस पर्वत पर रहते हैं । वे दुखी हैं और आपके सखा बनकर रहने योग्य हैं ।'

इस प्रकार कहकर उसने हाथ जोड़कर राम-लक्ष्मण को प्रणाम किया और बड़ी भक्ति के साथ आगे कहा—'हे महात्माओ ! इस पृथ्वी के इन्द्र तथा उपेन्द्र के समान, अश्विनीकुमारों के समान, रवि-चंद्रों के समान मनोहर रूप, उन्नत स्कंध, चंद्र के समान मंद हास से युक्त मुख, कमल-दलों को भी परास्त करनेवाले नेत्र, स्वर्ग के निवासियों की भी प्रशंसा प्राप्त करने योग्य बाहुबलवाले, दुर्लभ राजचिह्नों से सुशोभित, धनुष धारण करनेवाले, आपने यह मुनिवेश क्यों धारण किया है ? आप कौन हैं ? यहाँ क्यों आये हैं ?'

इस प्रकार के सुधा-मधुर वाक्यों में अत्यंत नम्र होकर जब हनुमान् ने उनसे प्रश्न किया, तब राम उसकी वाक्-पटुता, बुद्धि-चातुरी, आकृति, मन की प्रीति तथा नीति से प्रसन्न होकर अपने भाई से बोले—'हे लक्ष्मण, ऐसे वचन कहना ब्रह्मा के लिए या उनकी पत्नी के लिए ही संभव है, अन्यों के लिए नहीं । कदाचित् यह (वानर) व्याकरण, निगम, शास्त्रादि का ज्ञाता है । इसके संभाषण तथा रूप अतुल शुभ लक्षणों से समन्वित है । ऐसा दूत यदि हमें मिल जाय, तो हमारे सभी कार्य सफल होने में कोई संदेह नहीं रहेगा । इसलिए तुम इसे मेरे सभी कार्यों का विवरण क्रमशः सुना दो ।'

तब रामानुज ने अत्यंत प्रसन्न होकर हनुमान् को संबोधित करके कहा—'हे अनघ, हम इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न दोनों भाई हैं । ये मेरे भाई राम हैं और मैं लक्ष्मण हूँ । हम दोनों महाराज दशरथ के पुत्र हैं । राजा दशरथ की आज्ञा से तपस्वियों का-सा जीवन व्यतीत कर रहे हैं । दुर्मति रावण हमें धोखा देकर राम की स्त्री, भूमिसुता को ले गया है। उसके मार्ग का अन्वेषण करते हुए हम वन में फिर रहे थे तो एक स्थान पर शबरी ने हमें सुग्रीव का समाचार सुनाया था । वह महाबली हमारा मित्र बन जाय, ऐसी कामना करके हम यहाँ आये हैं । अब तुम हमें स्पष्ट रूप से बताओ कि तुम कौन हो और तुम्हारा क्या परिचय है ?'

३. हनुमान् का अपने जन्म का वृत्तांत सुनाना

तब हनुमान् ने उन रघुवंशियों को प्रणाम करके निवेदन किया—"हे महात्माओ, अपनी प्रिय माता के गर्भ से जन्म लेने के कुछ वर्षों के पश्चात् मैंने किसी उद्देश्य से ब्रह्मा की तपस्या की थी । तब मेरी तपस्या से प्रसन्न होकर सरसिजभव ने मुझे दर्शन दिये और बोले—'कोई इच्छा हो तो कहो ।' तब मैंने उनकी परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम किया, सहस्रों प्रकार से उनकी स्तुति की और फिर कहा—'हे विमलात्मा, इस पृथ्वी पर मेरे मोक्ष तथा इच्छित कार्यों की सिद्धि का आधार तथा मेरा आराध्य कौन है ? मैं किसकी

प्रार्थना तथा सेवा करूँ ?' तव कमलसभव ने अपने मन में विचार करके कहा—'जो तुम्हारे शरीर के आभूषणो को देख सकेगा, वही तुम्हारा स्वामी और प्रभु होगा। (भाव यह है कि हनुमान् के आभूषण दूसरो के लिए अदृश्य थे।) वही हम सब के इष्टदेव, समस्त प्राणियो तथा इस ससार के कर्त्ता है, वे ही विष्णु है। जान लो, वे ही तुम्हारे त्राता तथा प्रभु हैं।'

'इस प्रकार आदेश देकर ब्रह्मा चले गये। तब से मै समस्त लोक में विचरण करता रहता हूँ। हे राजन्! मेरे आभूषणो की दीप्ति स्वर्ग के निवासी भी नही देख सकते।'

तब सौमित्र ने मारुति को देखकर कहा—'हे अनघ, सुनो, राघव की शक्ति लोक-विख्यात है। वे अनुपम दिव्यास्त्र के ज्ञाता तथा अतुल साहसी है; वे करुणा के समुद्र है और गभीर प्रकृति के है, वे शरणागत-त्राता तथा सद्धर्म में तत्पर है। वे जगन्नाथ हैं, अशरणशरण हैं, अगणित गुणो से विभूषित है, तेजस्वी, दिव्य पराक्रमी तथा सत्यवादी है। ऐसे महान् व्यक्ति का सेवक तथा हितेच्छु होकर मै रहता हूँ। राघव के लिए कोई कार्य असाध्य नही है। कुटिल राक्षस का पता लगाकर हम स्वय सीता को ला सकते है; किन्तु परिश्रम उठाकर अकेले जाना उचित नही है और वह राजनीति भी नही है। इसलिए मेरे प्रभु का विचार है कि तुम्हारे सुग्रीव को अपना मित्र बनाया जाय। अब तुम इस कार्य को किसी तरह सपन्न करो।'

तब पवन-पुत्र ने अत्यत प्रसन्न होकर अपना निज रूप दिखाया। राम-लक्ष्मण ने उसे अपनाया, इससे उसने अपने को कृतार्थ समझा। तब उसने अपनी आँखो में आनदाश्रु भरकर उनकी अत्यधिक स्तुति की। तत्पश्चात् राम और लक्ष्मण ने अत्यत हर्ष से अनिल-कुमार को विदा किया। हनुमान् अत्यधिक आनद तथा उत्साह से सुग्रीव के पास पहुँचा और उसे रघुवश के राजकुमारो का वृत्तात इस प्रकार कहने लगा—'हे सुग्रीव, रमणीय रूपवाले राम-लक्ष्मण, महनीय गुणो से अलकृत होते हुए इस जगत् में विद्यमान है। शोक-सागर में निमग्न होनेवाले तुम्हें, रघुराम एक नौका के रूप में मिल गये है। हे सुग्रीव, अब तुम सुरक्षित हो गये। तुम्हारा प्रतिशोध पूर्ण होगा। तुम्हें पूर्ण सतोष होगा। मै तुम्हारे पुण्य की प्रशसा कैसे करूँ? सच्चरित्रवान्, दयामूर्त्ति, सत्यवादी, आजानुबाहु, महा-विष्णु, श्रीनिवास और पुण्यनिधि, दशरथात्मज राम ही तुम्हारे प्रभु है। वे महात्मा जब अपने पिता की आज्ञा से दडकवन में रहते थे, तब दशानन उनकी पत्नी को चुराकर ले गया। उससे युद्ध करके उसका सहार करने के उद्देश्य से वे तुमसे मित्रता करने यहाँ आये है।

इन बातो को सुनकर सुग्रीव हर्षित हुआ। उसने अनिलकुमार को देखकर कहा—'हे पवनसुत, मेरा सारा भय दूर हो गया। मेरी तपस्या सफल हुई। तुम्हारे जैसे अजन के प्राप्त होने से मै राघव-रूपी निधि को देख सका। तुम्हारे जैसे कर्णधार के रहने से मैं इस शोक-सागर को पार करने में समर्थ हुआ। तुम उन्हें ऋष्यमूक पर्वत पर लिवा लाओ और मेरे मन का सताप दूर करो। अब तुम जाओ।'

वायु-पुत्र तुरंत रघुराम के पास गया और प्रणाम करके उनसे निवेदन किया—'हे देव, श्रीमान् का मित्र सुग्रीव, आपके दर्शनो का अभिलाषी है, अत: आप पधारें।' राम

मन-ही-मन हर्षित हुए और हनुमान् की प्रशसा करने लगे । तत्पश्चात् एक पुण्य मुहूर्त्त म अपने अनुज के साथ वे हनुमान् के कधो पर बैठकर ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचकर अत्यत हर्षित हुए । हनुमान ने उन्हें किसी निर्जन स्थान में ठहरा दिया और मलयाद्रि पर पहुँचकर, श्रीराम के दर्शनो के लिए उत्कठित सुग्रीव को देखकर कहा—'हे देव, तुम्हारी इच्छा पूर्ण हुई । राम और लक्ष्मण ऋष्यमूक पर आ गये । तुम अब चलो । तब सूर्यपुत्र ने आनंद से फूलकर मनुष्य-रूप धारण किया । मुकुट, केयूर आदि आभूषणो से सुसज्जित होकर अपने मन्त्रियो के साथ शीघ्र ही ऋष्यमूक पर जा पहुँचा । वह बडी भक्ति के साथ राम के सामने पहुँचा और साष्टाग प्रणाम करके सतुष्ट होकर, हाथ जोडकर उनके सम्मुख खडा रहा ।

तब राम ने सुग्रीव को गले से लगाया और मद हास की अमृत-वृष्टि करते हुए वे सुग्रीव से बोले—'हे सूर्यपुत्र, मै वायु-पुत्र के मुख से तुम्हारे पराक्रम, बाहुबल आदि को सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ । अब तुम भयभीत मत होओ । तुम पर आक्रमण करनेवाल तुम्हारे शत्रु का सहार मै करूँगा । अब तुम्हारे सिवा मेरा आप्तबधु और विश्वास-पात्र मित्र दूसरा कौन है ?'

इस प्रकार सात्वना देने पर सूर्यनदन ने कहा—'हे देव, आपने मुझे अपना प्रिय सेवक स्वीकार किया है, आपकी करुणापूर्ण दृष्टिमात्र से मै धन्य हुआ । हे सूर्य-कुल-नाथ, मेरे जैसा सेवक आपको मिल गया है, अब आप निश्चय जानिए कि आपने रावण का वध करके सीता को प्राप्त कर लिया । तब राम तथा सुग्रीव अग्नि के समक्ष परस्पर (एक दूसरे की सहायता करने का) वचन देकर सतुष्ट हुए ।

उस समय अगद ने, जो क्रीडा करने योग्य आयु का था, और जो विनोदार्थ वही पर विचरण करते हुए खेल रहा था, राम तथा सुग्रीव के अग्नि-समक्ष दिये हुए वचनो को सुन लिया । उसने घर जाकर अपनी माता तारा से सभी बातें कह सुनाई । वह मन-ही-मन अत्यत दुःखी होती हुई कितनी ही दुशकाओ से पीडित हो उठी ।

४. सुग्रीव का सीता के आभूषणों को देना

तब वायुपुत्र ने एक विशाल वृक्ष की शाखा को तोडकर, सुग्रीव तथा राघव के लिए एक आसन बनाया । उस पर बैठकर वे दोनो वार्त्तालाप करने लगे । कुछ समय के पश्चात् सूर्यपुत्र दोनो राजकुमारो को गुफा के भीतर ले गया और बडे प्रेम से उन सभी आभूषणो को लाकर दिखाया, जिन्हें सीता ने फेंका था । उसने कहा—'हे देव, जिस समय राक्षस दण्डकवन में आपको धोखा देकर, आपकी देवी को आकाश-मार्ग से उठाकर लिये जा रहा था, उन्होने (सीता ने) हमें इस पहाड पर देखकर, ऊँचे स्वर में आपका नाम लेकर पुकारा और अपने झीने अचल का एक भाग फाड़कर इन आभूषणो को बाँधा और उन्हें यहाँ गिरा दिया ।'

इतना कहते ही राम शोक-सागर में डूब गये और अश्रुधारा बहाकर उन आभूषणो का सारा मैल धो दिया । उन्होने उन आभरणो को अपने वक्ष पर जहाँ-तहाँ रखकर देखा। सीता का स्मरण आते ही उनके सभी अग शिथिल-से हो गये । उन्होने लडखडाते हुए

स्वर में लक्ष्मण को बुलाकर कहा—'लक्ष्मण, देखा तुमने ? सीता के सभी शृंगार इस प्रकार मिट्टी में मिल गये हैं। भला, आभूषणों को गिरा देने का क्या अर्थ है ? इनको साथ रखने में उसे क्या कष्ट होता ? सीता तो मेरी प्राणेश्वरी है। हाय, इस अंचल की दशा को तो देखो ! जो झीना अंचल उसके सुडौल कुचों पर सतत रहता था, उसकी ऐसी दशा हुई ! मेरे चरणों को गुलाबजल से धोकर, उन्हें इसी से वह पोंछती थी। इसे विजन बनाकर, अत्यंत सुंदर ढंग से मेरे श्रम-बिंदुओं को सुखा देती थी। अपनी प्रभा-समन्वित तनुलता की कांति बिखेरती हुई वह इसी के पाँवड़े बिछा देती थी।' इस प्रकार शोक करते हुए राम अश्रु बहाने तथा बार-बार मूर्च्छित होने लगे। फिर सँभलकर भक्ति के साथ सिर झुकाये खड़े सुग्रीव को देखकर रघुनाथ बोले—'हे सुग्रीव, बतलाओ कि मेरी देवी को लेकर आनेवाला वह इन्द्र का शत्रु किस देश में रहता है ? उसका नगर कौन-सा है ? मैं अभी उस राक्षस का संहार करके सीता को छुड़ा लाऊँगा।'

यह सुनकर सुग्रीव बोला—'हे देव, मैं उस द्रोही का निवास नहीं जानता। फिर भी कोई चिंता नहीं। अब मैं सब बातें जानने का प्रयत्न करूँगा। आप शोक त्यागकर धैर्य धारण कीजिए। अत्यंत पराक्रमी वालि के द्वारा अपनी पत्नी के हरे जाने पर भी मैं इतना दुखी नहीं हूँ। हे देव, विपत्ति-रूपी सागर को आत्मधैर्य-रूपी नौका से ही पार किया जा सकता है। हे प्रभो, हम जैसे साधारण मानवों की तरह आप भी शोक करें, यह कहाँ उचित है ?'

सुग्रीव के आप्त वचन सुनकर रघुवीर धैर्य धारण करते हुए सोचने लगे—'सीता के खो जाने का ढंग जानने के पश्चात् मन-ही-मन दुखी होते रहना शूरता नहीं है। यों सोचकर उन्होंने संताप त्याग कर सीता को किसी भी प्रकार प्राप्त करने के कार्य में प्रवृत्त होने का निश्चय किया। किन्तु उसके पूर्व उन्होंने सुग्रीव के शत्रु का अंत करने का निश्चय किया। सीता के आभूषण लक्ष्मण को सौंपकर वे सुग्रीव को देखकर बोले—'हे मित्र, विद्वानों का कहना है कि विपत्ति के समय मित्र के समान कोई सहायक नहीं होते। चाहे मित्र गुणवान् हो, या गुणहीन, विपत्ति के समय वही सहायक होता है। तुम्हारी मित्रता प्राप्त करके मुझे किसी भी वस्तु के अभाव की चिंता नहीं रही, यह तो निश्चित है। अब मैं उस पापी वालि का वध करूँगा, जो तुम्हारी स्त्री का अपहरण करके तुम्हारा वध करना चाहता है। भाइयों में स्नेह का भाव हो, तो उससे श्रेष्ठ सुख और कुछ नहीं है। किन्तु ऐसा स्नेह तुम में क्यों नहीं रह पाया ? तुम्हारे और तुम्हारे अग्रज में शत्रुता क्यों हुई ? इसका वृत्तांत मुझे सुनाओ।'

तब सुग्रीव ने कहा—'हे राम, मैं अपने और वालि की शत्रुता का वृत्तांत सुनाता हूँ, सुनिए। (समुद्र-मथन के समय) मंद्राचल को मथानी बनाकर, वासुकि को नेती बनाकर जब देवताओं ने हमारे बाहुबल को जानकर हमसे प्रार्थना की, तब मैं और वालि, दोनों मथन के लिए एक ओर खड़े हो गये और दूसरी ओर देवता, गरुड, उरग, असुर, सिद्ध आदि थे। इस प्रकार जब हम क्षीरसागर का मथन करने लगे, तब उसमें से हलाहल निकलकर समस्त लोक को जलाने लगा, तो महादेव ने सबको आश्चर्यचकित करते हुए,

उसे पी गये। उसके पश्चात् उसमें से ज्योष्टा देवी का जन्म हुआ, तो उसे कलि महाराज ने बड़े प्रेम से अपनाया। इसके उपरान्त कितनी ही वस्तुए उसमें से उत्पन्न हुई। सब ने अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार उन वस्तुओ को बडे हर्ष से ग्रहण किया। आगे चलकर ऐरावत, मेष, महिष, मकर, करेणु (हथिनी), हय, वृषभ आदि उस सागर से उत्पन्न हुए, तो इन्द्रादि दिक्पालो ने बड़े हर्ष से उन्हें अपने-अपने वाहनो के रूप में ग्रहण किया। महनीय सौभाग्यवती तथा महिमामयी लक्ष्मी का जब जन्म हुआ, तब लक्ष्मीनारायण ने उन पर आसक्त होकर अपनी पत्नी के रूप में उन्हें ग्रहण किया। तत्पश्चात् चद्र तथा देव-कामिनियो का जन्म हुआ। देवताओ ने उन सुदरियों में से 'तारा' नामक सुदरी को हमें दिया, तो हमने उसे ग्रहण किया। उसके उपरान्त हमारे मथने पर अमृत का जन्म हुआ। देवताओ ने बड़ प्रेम से उस सुधारस को कामधेनु और कल्पवृक्ष के साथ चद्र को भी लेकर अपने निवास-स्थानो में चले गये। हम भी वहाँ से विदा हुए।

हम अपने निवास को लौटकर बडे आनन्दपूर्वक उस सुदरी के साथ रहने लगे। कुछ दिनो के पश्चात् सुषेण की प्रिय पुत्री रुमा के साथ विवाह करके बडे उत्साह से मैं जीवन व्यतीत करने लगा। मेरे पिता तथा अन्य मत्रियो ने ज्यष्ठ पुत्र होने के कारण वालि को वानर-राज्य का अधिपति बना दिया। वालि भी मेरा बडा आदर करते हुए, राज्य करने लगा और मैं भी उसका सेवक बनकर उसे पिता के समान मानते हुए दिन-रात उसकी सेवा में लगा रहा। इस प्रकार हम परस्पर प्रेम-भाव रखते हुए जीवन व्यतीत करने लगे।

एक दिन की बात है कि पुरानी शत्रुता से प्रेरित होकर दुदुभि का पुत्र मायावी नामक भयकर राक्षस अर्द्ध-रात्रि के समय किष्किधा नगर को भयभीत करते हुए आया, और दुर्वार गर्व मे उसने हमें युद्ध के लिए चुनौती दी। अनुपम शील-सपन्न वालि ने क्रुद्ध होकर मुझे साथ लेकर युद्ध के लिए निकला। हम दोनो को आक्रमण करने के लिए आते देखकर वह राक्षस भयभीत होकर भागा और अपनी गुफा में छिप गया। तब वालि ने मुझसे कहा—'मैं इस गर्वोद्धत राक्षस को पकडकर उसका वध करके लौटूंगा; मेरे आने तक तुम सावधान होकर यहाँ रहो, जिससे अन्य कोई यहाँ प्रवेश न कर पाये। इस प्रकार, मुझे गुफा के द्वार पर नियुक्त करके वालि ने गुफा में प्रवेश किया। एक वर्ष पर्यन्त गुफा में घोर युद्ध होता रहा। रक्त उमडकर गुफा के द्वार तक बहने लगा और राक्षस के हुंकार मुझे सुनाई पडने लगे। तब मैंने निश्चय कर लिया कि वालि राक्षस के हाथो मैं मारा गया है। यदि वह जान जाय कि मैं यहाँ हूँ, तो वह बाहर आकर मेरा भी वध कर डालेगा। इस प्रकार सोचकर मैं एक पहाडी से उस गुफा का द्वार बद कर दिया और वालि की तिलोदक-क्रिया करके किष्किधा लौट आया। मत्रियो ने यह कहकर कि वालि की मृत्यु के बाद इस राज्य के अधिकारी तुम ही हो, विवश करके मुझे वानर-राज्य का राजा अभिषिक्त किया। तब से मैं वानरो का चक्रवर्ती होकर राज्य करता रहा।

'हे राजन्, वहाँ वालि मायावी (राक्षस) का संहार करके, मुझे पुकार-पुकार कर, हार गया। उसके पश्चात् वह द्वार पर मेरे द्वारा स्थापित पहाडी को पदाघातो से चूर-चूर

करके बाहर निकल आया। मुझे वहाँ न देखकर वह अत्यत क्रुद्ध हुआ और किष्किधा में प्रवेश किया। मेरे प्रणाम को भी स्वीकार किये बिना वह गरज उठा—'क्यो रे, तुम्हें अपना अनुज समझकर तुम पर विश्वास करके मै शत्रुओ से युद्ध करने गया, तो तुम इस प्रकार मुझे धोखा देकर मेरे राज्य का अपहरण करके, उसका शासन करने लगे? क्या तुम्हारे लिए यह उचित है? तुम महा पापात्मा हो। तुम्हें मारने से भी कोई दोष नही लगेगा।'

तब मैने उसके चरणो पर गिरकर भक्ति तथा विनय के साथ निवेदन किया—'हे भाई, एक वर्ष तक आप और मायावी युद्ध करते रहे। तब (एक दिन) मैंने गुफा से रक्त का प्रवाह उसके द्वार तक आते देखा, तो भयभीत तथा मतिभ्रष्ट हो भागकर यहाँ आया। मुझे देखकर मन्त्रियो ने विवश करके मेरा राज्याभिषेक कर दिया। इसके अतिरिक्त मै कोई कपट नही जानता। आपका आगमन मेरे लिए शुभप्रद है। यह वानर-राज्य आप पुन ग्रहण कीजिए। मुझे यह कहने की आवश्यकता नही है कि नाते से मै आपका भाई हूँ, किन्तु वस्तुत मै आपका सेवक तथा पुत्र हूँ। हे करुणानिधि, मुझसे कोई भूल हो गई हो, तो उसे क्षमा कीजिए।'

इस प्रकार के वचनो से मैने वालि की बहुत विनती की, किन्तु उसका क्रोध पग-पग पर बढता ही गया। मन्त्रियो ने भी उसे बहुत समझाया कि अनुज के प्रति इतना क्रोध उचित नही है, किन्तु उसने उनकी बातो पर ध्यान नही दिया। उसने मेरी पत्नी रुमा को मुझसे छीन लिया, मेरा राज्य ले लिया और मेरा वध करने के लिए तैयार हो गया। मै भयभीत होकर भागने लगा, तो वह मेरा पीछा करने लगा। मै सारे भूलोक में शरण ढूँढते हुए भागा और अत में इस पर्वत पर रहने लगा; क्योकि वालि इस पर्वत पर चढ नही सकता।'

तब राम ने आश्चर्य से पूछा—'हे सूर्यपुत्र, इस पर्वत पर वालि क्यो नही चढ़ सकता? इसकी कथा मुझे सुनाओ।" तब सुग्रीव विनम्र भाव से यो कहने लगा—'पूर्वकाल में दुदुभि नामक दुष्ट राक्षस, वरदानो के प्रताप से प्रबल होकर तीन लोको को भयभीत करने लगा था। वह जगली भैसे का रूप धारण करके समुद्र के पीछे पड़ गया और उसे युद्ध के लिए चुनौती दी। तब समुद्र व्याकुल हो उठा और करोड़ो रत्नो की भेंट देकर कहा—'तुम्हारे साथ युद्ध करके श्रेष्ठ हिमाद्रि ही जीवित रह सकता है। मै तुम से युद्ध नही कर सकता।' तब वह उस हिमाद्रि से युद्ध करने चला गया, जिसके शृगो ने इद्र के बाहुस्तभ से सम्मानित वज्रायुध के तेज को भग किया था। तब उस पर्वतेश्वर ने कहा—'क्या मै तुम्हारी बराबरी कर सकता हूँ? इस ससार में तुम्हारा सामना करके, तुम्हारे साथ युद्ध करने का बाहुबल केवल वालि में है। वह अपनी प्रबल शक्ति के साथ किष्किधा पर राज्य कर रहा है। यदि तुम युद्ध करने की इच्छा रखते हो, तो हे महाबली, वहीं जाओ।'

तब वह राक्षस बडे उत्साह से किष्किधा आया और प्रलय-काल के बादल के समान गर्जन करके अपने साथ युद्ध करने के लिए वालि को चुनौती दी। तब वालि क्रुद्ध होकर

बाहर आया और गर्जन करते हुए दुदुभि के समान ध्वनि करनेवाले उस दुदुभि का सामना करके बोला—'देखूँ अब तुम कहाँ जाते हो?' इस प्रकार कहकर वालि ने शिलाओ तथा वृक्षो को उखाड़-उखाडकर फेंका और मुष्टि के प्रहारो से उसे व्याकुल कर दिया। जब उसने अपने तीक्ष्ण शृगो से वालि पर आक्रमण करना आरभ किया, तब वालि ने क्रुद्ध होकर, भयकर रूप धारण करके एक पर्वत उठाकर उस पर फेंका। राक्षस ने उसे बचाकर, स्वय एक और पहाड उठाकर वालि पर फेंका। तब कपिराज ने एक बहुत बडा पर्वत उस पर फेंका। राक्षस ने अपने सीगो से उन पहाडो को हटाते हुए, वालि के कठ को पकड़कर ऐसा धक्का दिया कि वालि विचलित हो उठा। तब वालि ने उसका पीछा किया और एक वृक्ष उखाडकर उस राक्षस पर फेंका। राक्षस उससे भी बच गया और छिपकर वालि पर आक्रमण करने लगा। तब वालि ने एक मोटे ताड के वृक्ष से उस पर प्रहार किया। राक्षस ने अपने सीगो से उसे भी उठाकर फेंक दिया, तो कपिराज ने अपनी कठोर मुष्टिसे उस पर प्रहार करना आरभ किया। राक्षस भी अपने सीगो से वालि को मारने लगा। इस प्रकार एक दूसरे पर प्रहार करते हुए एक सौ वर्ष तक दोनो घोर युद्ध करने लगे। तब वालि ने उसके दोनो सीगो को पकड कर नीचे गिरा दिया और उसका वध कर डाला। उसके पश्चात् उसने अपना सारा बल लगाकर लात मारी, तो उसका शव मुँह तथा नाक से रक्त बहाते हुए वज्राघात से गिरनेवाले पर्वत की तरह, एक योजन दूर पर जा गिरा। गेरू रग के झरने के समान गिरनेवाली उस रक्त-धारा की कुछ बूँदें, इस पर्वत पर भी गिरी। तब इस पर्वत पर तपस्या में निरत भयकर शक्तिशाली मतग मुनि ने क्रोध में आकर शाप दिया कि वालि इस पर्वत पर न चढ सकेगा। हे जगन्नाथ, मै इसी कारण से निर्भय हो सतत इस ऋष्यमूक पर ही निवास करता हूँ। हे राजन्, दुदुभि के उस शरीर को एक योजन तक फेंक सकने की शक्ति वालि के सिवा और किसी में नही है। यदि आप उस शव को, उससे भी दूर, न फेंक सकें, तो मै आपकी शक्ति पर विश्वास नही कर सकता।'

तब राम ने मद-मद हँसकर कहा—'हे सूर्यपुत्र, मै उस दुदुभि के शरीर को वैसे ही फेंककर तुम्हारा सदेह दूर करूँगा। मुझे वह शव दिखाओ। मेरु-मदराकारवाले उस शव को सुग्रीव के दिखाने पर, राम उसके पास पहुँचे और उसकी परवाह किये बिना ही, केवल अपने अगूठे से उठाकर उसे दस योजन दूर फेंक दिया। तब भी सुग्रीव को रघुराम की शक्ति के महत्व पर विश्वास नही हुआ। उसने कहा—'हे देव, जब वालि ने इसे फेंका था तब यह बहुत से रक्त-मास से भरा था, आज तो केवल इसकी अस्थियाँ रह गई है। इसलिए आप इसे बडे वेग से फेंक सके, इसलिए विश्वास नही होता कि आपका बल वालि से भी अधिक है। इतना ही नही, बिना थके वालि पहाडो को गेंदो की तरह उछाल सकता है, चारो समुद्रो में सध्या-वदन करता है और शिवजी के चरणो को अपने सिर पर धारण करता है। वायु से भी अधिक वेग से वह सभी समुद्रो को पार कर सकता है। ऐसे वालि की, जिसे इन्द्र ने स्वर्ण-माला प्रदान की थी, कौन समता कर सकता है? हे राजन्, और एक बात सुनिए। यहाँ जो सात ताल-वृक्ष खड़े हैं,-इन सभी

को वालि अपनी वर-शक्ति से एक साथ अपने हाथो में पकड़कर उनके सभी पत्तो को तोड सकता है । इन्द्रादि देवता इन में से किसी एक ताल को भी हिला नही सकते । हे वसुधेश, यदि आप एक बाण से इस सातो ताल-वृक्षो को गिरा सकते है, तो हम विश्वास कर सकते हैं कि आपकी शक्ति वालि की शक्ति स भी अधिक है । मातग मुनि ने मुझसे कहा था कि जो इन सातो ताल-वृक्षो को एक ही बाण से गिराने की शक्ति रखता है, उस व्यक्ति के हाथो से वालि का नाश होगा ।'

तब राम ने मंदहास करके कहा—'हे वनेचरेश्वर, उन ताल-वृक्षो को तुम अवश्य मुझे दिखाओ । तब निपुण राम ने वज्र-सम अद्वितीय तथा निशित बाण संधान करके चलाया, तो वह बाण, पृथ्वी पर टेढ़े-मेढे ढग से खड़े उन ताल-वृक्षो को एक साथ ऐसे काटकर गिरा दिया, मानो रावण की नाडियो को ही काट दिया हो । उसके पश्चात् वह शर निकट के पर्वत को भी पार करके पृथ्वी में प्रवेश किया और पाताल तक पहुँचकर किंचित भी अपनी गति मद किये बिना, बडे वेग से रघुराम के तूणीर में वापस आ गया । यह देखकर सुग्रीव आश्चर्यचकित हो अत्यधिक आनद में डूब गया और मन-ही-मन यह सोचकर फूल उठा कि जिन ताल-वृक्षो के मूल सप्त पातालो तक गये थे, जिनके पत्र सप्त वायुमडलो तक फैले थे, ऐसे तालो को इन्होने एक ही शर से गिरा दिया । अब मेरा सदेह दूर हो गया । अब अवश्य ही राघव के हाथो वालि का वध होगा । मै अब वानर-राज्य पर शासन कर सकूँगा । तब सूर्यवश के प्रभु राम को देखकर सूर्यपुत्र ने हाथ जोडकर कहा—'हे देव, आपका रूप देखकर मैंने आपकी शक्ति की कल्पना नही करके पशु-बुद्धि का परिचय दिया । मैं सूर्यपुत्र हूँ और आप सूर्य-वश-सभव है । अत. मैंने आपकी समानता करने का विचार करने का अपराध किया । आप त्रिलोकीनाथ है । मुझ मूर्ख को अपना सेवक मानकर मेरे शत्रु का सहार कीजिए और मुझे मेरा राज्य दिलाकर मेरा दु.ख दूर कीजिए ।'

५ वालि-सुग्रीव का द्वंद्व-युद्ध

तब राम ने अत्यधिक कृपा-दृष्टि से सुग्रीव को देखकर कहा—'हे सुग्रीव, तुम शीघ्र ही किष्किंधा को जाओ और वहाँ वालि से युद्ध करते रहो । मैं एक ही बाण से (वालि का वध करके) सहज ही तुम्हें राज्य दिला दूँगा । तुम निर्भय होकर जाओ । तब बिना किसी सकोच के तथा अत्यत उत्साह से सुग्रीव ने, नल, नील, हनुमान् तथा बलवान् तार आदि को साथ लिये युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर किष्किंधा के लिए प्रस्थान किया । राम तथा लक्ष्मण उसके पीछे-पीछे चले । किष्किंधा के निकट एक वन में प्रवेश करके उन्होने वहाँ से सुग्रीव को वालि पर आक्रमण करने के लिए भेजा । सुग्रीव शीघ्र किष्किंधा पहुँचा और नगर के बाहर खड़े होकर भयकर गर्जन किया और अपने साथ युद्ध करने के लिए वालि को चुनौती दी । हाथी का चिंघाडना सुनकर जिस प्रकार सिंह क्रोध में आ जाता है, वैसे क्रुद्ध होकर, शिवजी के चरण-कमलो को प्रणाम करके, रावण के कठो को अपनी बगल में दबानेवाले वालि ने आकर सुग्रीव का सामना किया । अप्रतिहत पराक्रमी, समान रूप, समान क्रोध, समान शक्ति तथा समान पराक्रम रखनेवाले दोनो वानर जूझ गये और

एक दूसरे के घुटनो, जाघो, वक्षो, नाभियो तथा कटि-प्रदेशो को विचित्र ढग से झुकाकर इस प्रकार युद्ध करने लगे, जैसे पूर्व तथा पश्चिम के समुद्र आपस में युद्ध करते हो। उसी समय राम ने अपने धनुष पर बाण का सधान करके, उसे चलाने के विचार से, उन दोनो को देखा। किंतु उनके वदन तथा रदन, पूँछ तथा बाहु, उदर तथा अधर, उरु तथा पार्श्व, कक्ष तथा वक्ष, पैर तथा उँगली, वीक्षण तथा शिक्षण, वेष तथा भाषा, नाक तथा गाल, सिर तथा स्कध, पिंडली तथा चरणयुग्म, कर्ण तथा वर्ण, कठ तथा अग, इन सब को एक समान देखकर, यह निर्णय नही कर सके कि इन दोनो में वालि कौन है और सुग्रीव कौन ? तब राम ने मन-ही-मन आश्चर्यचकित होकर सोचा कि यदि मैं बाण चलाऊँ, तो न जाने इनमें से कौन मृत्यु-मुख को प्राप्त हो जाये। यो सोचकर वे बिना बाण चलाये ही रह गये।

युद्ध करते-करते अत्यधिक थक जाने पर भी सुग्रीव ने अपनी सारी शक्ति तथा निपुणता लगाकर युद्ध किया, किन्तु वालि से परास्त हो गया। वालि की बलिष्ठ मुष्टियो के आघातो के कारण वह घोघो की थैली के समान हो गया और लबी साँसें लेता हुआ सोचने लगा—'हाय रे, राम का विश्वास करके मै क्यो आया ? इसका मुझे अच्छा पुरस्कार मिला। बस, बस, अब अपना रास्ता नापने में ही मेरा कल्याण है।' यो सोचते हुए वह सुध-बुध खोकर, अपनी पूँछ को कठ में लपेटे हुए, चारो ओर देखते तथा झूलते हुए ऋष्यमूक पर्वत पर भागा और मन-ही-मन दुखी होने लगा।

ठीक इसी समय राम वहाँ पहुँचे। अनन्त विक्रमधाम राम को देखकर सूर्यपुत्र ने सिर झुकाकर कहा—'हे राजन्, मैंने आपका विश्वास करके अपना असमान बल-विक्रम दिखाकर वालि से युद्ध किया। किन्तु आपने मेरी उपेक्षा की, मेरी रक्षा नही की, चुपचाप देखते ही रह गये। सूर्य-वश में जन्म लेकर ऐसा अधर्म करना, क्या, आपको शोभा देता है ? हे देव, आपके सत्य तथा तेज का विश्वास करके मैंने वालि को छेडा। नही तो मै कहाँ और वालि कहाँ ? वालि को चुनौती देकर फिर बचकर आना असभव था। शायद किसी पूर्व-पुण्य के फल से बचकर मै पूर्ववत् इस पर्वत पर पहुँच सका। आपका विश्वास करने के कारण शत्रु के हाथो से पराजय और जग-हँसाई मुझे प्राप्त हुई। आपमें दया, साहस और शक्ति की अधिकता देखकर मैंने आपका विश्वास किया था।'

इन वचनो को सुनकर राम बोले—'हे सुग्रीव, तुम अपने मन में इतना सदेह क्यो करते हो ? इसमें मेरा कोई दोष नही है। क्या मै तुम्हें शत्रु के हाथ में सौंप दूँगा ? एक बात सुनो। विश्व-विमोहक आकारवाले विख्यात अश्विनीकुमारो के समान तुम्हारी और वालि की रूप-रेखा समान होने के कारण मैं तुम दोनो में भेद नही कर सका और बाण चलाने में मुझे भय हुआ; क्योकि यह अस्त्र अमोघ है। इसलिए तुम इसे बुरा मत समझो। इस बार तुम इन गज-पुष्पो की माला पहनकर वालि से युद्ध करो। मै अवश्य ही वालि का वध करूँगा। संदेह मत करो, दृढ निश्चय से युद्ध के लिए किष्किंधा के लिए प्रस्थान करो।' यो कहकर उन्होने अपने प्रिय अनुज से गज-पुष्पो की माला मँगवाकर उसे सुग्रीव के कठ में पहनाया। तब सुग्रीव नक्षत्रो से घिरे हुए चन्द्र के समान,

वक-पक्तियो से अलकृत सध्या-गगन के समान, शरत्काल के वादलो के साथ विलसित मेरु-पर्वत के समान सुशोभित दीखने लगा ।

तव राम तथा उनके अनुज वडे हर्ष से युद्ध के लिए सन्नद्ध हुए । उसके पश्चात् वे नल, नील, तारा तथा हनुमान् के साथ सुग्रीव को साथ लिये हुए नदियो, पुष्पो से युक्त लता-समूहो, पुन्नाग, नारगी, कदली तथा सहकार-वृक्षो से भरे वनो को देखते हुए उज्ज्वल कैरव, पद्म तथा कल्हारो से शोभायमान, वहु सरोवरो का दर्शन करते हुए, गज, सिंह, वराह तथा जगली भैसो को देखते हुए, वहुत दूर तक चल और वहाँ अग्नि-सम तेजस्वी 'सप्त जनाह्व' नामक मुनि के आश्रम का दर्शन किया । सुग्रीव के मुँह से उस आश्रम का महत्त्व सुना । उसके पश्चात् वालि के शासन में रहते हुए ऐश्वर्य से सपन्न किष्किधा-नगर को देखकर सुग्रीव से वोले—'तुम पूर्ववत् जाकर वालि के साथ युद्ध करो, मैं अवश्य वालि का सहार करूँगा ।' यो कहकर उस पुण्यात्मा सुग्रीव को आदर के साथ भेजकर राम समीप ही एक पेड की आड में खडे हो गये ।

६ तारा का वालि को रोकना

तव सूर्यनदन ने किष्किधा की सभी गुफाओ को विदीर्ण करते हुए घोर गर्जन किया और इन्द्र-सुत वालि को अपने साथ युद्ध के लिए ललकारा । वालि अत्यंत क्रोधावेश में आकर सोचने लगा—'यह एक मर्द की तरह अपने वाहुवल का गर्व कर रहा है । अव इसका सहन करना उचित नही है, अव मैं इसका वध कर डालूँगा ।"

इस प्रकार निश्चय करके वह शक्तिशाली तथा जयशील वालि युद्ध के लिए निकला, तो अपने पति का मार्ग रोककर तारा कहने लगी,—"हे देवेन्द्रनदन, विना सोचे-विचारे आप सूर्य-पुत्र पर आक्रमण करने क्यो जा रहे है ? अभी-अभी आपसे युद्ध करके वह घायल होकर भाग गया था । फिर इतना शीघ्र वह कैसे आ गया ? यदि आपसे कही अधिक वलवान् की सहायता उसे नही मिलती, तो वह कदापि यहाँ नही आता । हे इन्द्र-पुत्र, यही नही, मैंने अगद से और एक वात सुनी है । अपने पिता की आज्ञा क अनुसार दशरथ-राम वनवास के लिए आये थे । वहाँ दशकधर (रावण) ने उनकी पत्नी को हर लिया । वे और उनके भाई मुनि-वेश में सीता की खोज में ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे और सुग्रीव को अपना सेवक स्वीकार करके तुम्हें मारना चाहते है । राघव स्वयं विष्णु है, कमलनाभ है, वैरियो के लिए भयकर रूप है, दयालु है, धीर है और धनुर्विद्या के गुरु है । उनका शत्रु वनकर उनको जीतना असभव है । आप प्रेम से सूर्य-पुत्र को अपना राज्य देकर, फिर राम से सधि कर लीजिए । यदि ऐसा नही हो सकता, तो मुनि-वृत्ति ग्रहण करके अपने प्राणो की रक्षा कीजिए ।"

तारा के इन वचनो को सुनकर वालि अत्यत क्रुद्ध होकर वोला—'मेरी पत्नी होकर तुम इतनी भयभीत क्यो होती हो ? मैं अपने वाहुवल से किसी भी वलवान् पुरुष को युद्ध में जीतकर विजय प्राप्त कर सकता हूँ । मैं कभी किसी से पराजित नही होऊँगा । जव शत्रु आकर युद्ध के लिए ललकारे, तव अधीर होकर उससे सधि कर लेना वीरो का धर्म नही है । हे कमलाक्षी, मेरे-जैसे वलवान् के रहते, मुझे स्वीकार नही करके, राम ने

सुग्रीव को अपनाया है। इसलिए जान पड़ता है कि राम नीतिवान् नही है। ऐसी दशा में राम की मित्रता स्वीकार करना मेरे लिए उचित नही है। सुग्रीव अनाथ होकर राम का सेवक बन गया है। मुझे राम की क्या आवश्यकता है। सधि की क्या आवश्यकता है? मै किसी की प्रार्थना क्यो करूँ? वह महान् पुरुष तथा धर्मात्मा राम, अकारण ही मेरा वध क्यो करेंगे? (तुम्हारी) ये बातें सर्वथा असगत हैं। मैं अभी जाकर अपने भयकर वज्र की समता करनेवाली अपने मुष्टि-प्रहारो से सुग्रीव का वध करके आता हूँ। तुम निश्चित रहो।'

इस प्रकार के वचनो से तारा को सतुष्ट कर इन्द्र-पुत्र वालि अपने पराक्रम, शक्ति तथा साहस के साथ इस ढग से (युद्ध के लिए) निकला, मानो कर्मपाश के आकर्षण को टालने की शक्ति उसमें नही रही हो। उसने अपने गर्जन से सभी समुद्रो को क्षुब्ध कर दिया, भू-वलय को कँपा दिया। उसके बाद वह सुग्रीव को डाँटते हुए भयकर स्वर में बोला—'मेरे साथ युद्ध में हारकर, लज्जाहीन हो, फिर युद्ध करने आया है? कोई बात नही। मैं अभी तुझे यम के मुँह की बरी बनाऊँगा। डीगें मारना छोडकर तू थोडी देर अटल खड़ा रह। मै युद्ध में अपने मुष्टि-प्रहारो से तेरे प्राण हरण करूँगा।'

इस प्रकार कहकर वालि ने वज्र का परिहास करनेवाली, अपनी मुष्टि बाँधकर उससे ऐसा प्रहार किया कि सुग्रीव नीचे गिरकर रक्त उगलने लगा। तुरत वह सँभल उठा और साहस के साथ खडे होकर गर्जन किया और तिरस्कारपूर्ण वचनो से इन्द्र-सुत की निंदा करते हुए कहा—'मैं अब तक तुम्हारी उद्दण्डता केवल इसलिए सहता आ रहा था कि तुम मेरे भाई हो और पूज्य हो। ऐसी बात नही कि मै तुमसे युद्ध करने से डरता हूँ। मै पहले का सुग्रीव नही हूँ। सोच-विचार कर मेरे साथ युद्ध करना। हे वालि, मै अवश्य अभी तुम्हारा वध कर दूँगा और कपि-राज्य पर अधिकार करूँगा।'

इतना कहकर सुग्रीव ने अत्यधिक क्रोध से एक साल-वृक्ष को उखाडकर तेजी से वालि पर फेंका। उसके लगते ही वालि कपित होकर पृथ्वी पर गिर पडा और मूर्च्छित हो गया। थोडी देर के बाद वालि सचेत होकर दुर्वार गर्व और बडे शौर्य तथा धैर्य के साथ एक पर्वत उठाकर उस रवि-पुत्र पर इस प्रकार फेंका कि देवता भी आश्चर्यचकित रह गये। सुग्रीव ने उस पर्वत को अपनी पूँछ से रोक दिया। तब वालि ने सुग्रीव के पैरों पर प्रहार किया। सुग्रीव ने अपने तेज नखो से वालि का शरीर नोच डाला। वालि ने उग्र रूप धरकर सुग्रीव पर मुष्टि का प्रहार किया। क्रमश दोनो अपनी अमित शक्ति का प्रदर्शन करते हुए एक-दूसरे की शिखाओ को पकडकर पदाघातो से, नखो से मुष्टियो से, एक-दूसरे पर प्रहार करते हुए, गर्जन करते हुए, हुकार भरते हुए, घोर युद्ध करने लगे। उनके अगो से रक्त की धारा बहने लगी। वे अपनी बाहुओ तथा पूँछो को दूसरो की बाहुओ तथा पूँछो से फँसाकर, परस्पर धक्का देते हुए, फिर दूर हटते हुए, अपना सारा बल लगाकर परस्पर प्रहार करने लगे। इस प्रकार अत्यत भयकर रीति से जब वे लड रहे थे, तब इन्द्र-सुत वालि के आघातो से रवि-पुत्र सुग्रीव बहुत घायल हुआ। वह गर्व खोकर, व्याकुल और भयभीत हो, अपने ओठो को आर्द्र करते हुए, दीन दृष्टि से चारो ओर देखने लगा।

७. वालि का संहार

निग्रह तथा अनुग्रह के निधि राम ने जब देखा कि सुग्रीव अब क्लांत तथा खिन्न हो गया है, तब सोचने लगे कि यदि मैं अब वालि का वध नही करूँ, तो वह अवश्य ही सुग्रीव को मार डालेगा। तब राम ने सप्त समुद्रो तथा सप्त लोको को क्षुब्ध करते और समस्त भूतो को कँपाते हुए, अपने धनुष का टंकार किया, वालि को तृणवत् मानकर, लक्ष्य को साधा, और एक अमोघ अस्त्र का संधान करके उसे उस असमान बलशाली वालि पर चलाया। तब वह बाण अपनी सूर्य-तेज सदृश कांति को सारे आकाश-मंडल में विकीर्ण करने तथा भयंकर अग्नि-शिखाओ को फैलाते हुए, गरुड, उरग, अमर, गंधर्वो को भयभीत करते हुए ऐसे वेग से चला, मानो अपने पुत्र की रक्षा करने तथा शत्रु को दण्ड देने के लिए सूर्य ही अस्त्र के रूप में जा रहा हो, अथवा सूर्य-पुत्र होने के कारण यम धर्मराज ने ही अपने अनुज सुग्रीव की रक्षा करने के लिए, अपना काल-दंड वालि पर चलाया हो। वह बाण सीधे जाकर वालि के उर में लगा। वालि पृथ्वी पर ऐसे गिरा कि दिग्गजो, पर्वतो तथा वृक्षो के साथ पृथ्वी काँप उठी। वह बाण वालि के उर के पार निकलकर पृथ्वी में धँस गया। अविरल बहनेवाली रक्त की धाराओ से वानरेश्वर का सारा शरीर भीग गया और वह इस प्रकार पृथ्वी पर गिरा, मानो पुष्पित अशोक-वृक्ष आँधी में गिर गया हो, अथवा प्रलय-काल में कांतिहीन होकर पृथ्वी पर गिरा हुआ सूर्य हो। तब पृथ्वी पर विवश पड़े हुए उस वालि के पास राम आये।

अपने समीप पहुँचे हुए रघुराम को देखकर मन-ही-मन कुपित होता हुआ वालि कहने लगा—'हे राघवेश्वर, हे रामचंद्र, इस पृथ्वी पर लोग आपको धर्मात्मा कहते है। आप दम-शम, दया, सत्य, सम-बुद्धि, नीति, सौजन्य आदि सद्गुणो के भाण्डार है। ऐसे होते हुए भी आपने अपनी महत्ता को त्यागकर मेरे और सुग्रीव के युद्ध करते समय हमारे बीच में आये और मेरे ऊपर बाण चलाया, क्या यह आपके लिए उचित है? मैंने आपका कोई अपकार नही किया है। मैंने कभी आपकी बुराई नही सोची। मैं आपका शत्रु भी नही हूँ। मै जानता भी नही हूँ कि आपके शत्रुओ ने आपका क्या अहित किया है। उन बातो को जानकर मैंने आपकी उपेक्षा की हो, सो भी नही। फिर भी आपका ऐसा करना, क्या उचित है? हे सूर्य-कुल-तिलक, आप जानते हुए भी अनजान बनकर रहे। संसार में राजा लोग, शरभ, सिंह, शार्दूल, कोला, गज, हिरण आदि का संहार करने के लिए मृगया खेलते हैं। भला, कही कोई वानरो का वध भी करता है? सूर्य-पुत्र तथा मैं, दोनो भाई-भाई है। गर्वांध हो, क्रूर बनकर, हम चाहे जैसा भी आचरण करें, आपका इस प्रकार मेरा संहार करने का क्या कारण है? खरगोश, नेवला, कछुआ, जंगली सूअर आदि जानवर खाद्य होते है, किन्तु वानर को कोई खाता नही है। फिर आपने आड में छिपकर क्यो मेरा वध किया? हे राजन्, अब आप अपने अनुज के साथ मेरे रक्त-मांस का भोग लगाइए। उज्ज्वल कीर्त्तिवान्, जगद्विख्यात दशरथ की आज्ञा से वन में तपस्वियो का-सा जीवन व्यतीत करने के लिए आप आये, फिर भी जीव-हिंसा का त्याग नही किया। यदि इस पृथ्वी पर रहते हुए हम कोई अपराध करते है, तो उसके लिए दण्ड देने का कार्य

भरत का है । आपका इससे क्या सबध है ? क्या आप राजा है ? आपने मुझे नही अपनाकर मेरा वध कर डाला । अपनी पत्नी को हरकर ले जानेवाले नीच रावण को जीतने के उद्देश्य से आप आये हैं । आपने मेरी अवहेलना की और सूर्य-पुत्र को अपनाया । इस प्रकार आप इस लोक में नीति-रहित-से हो गये । यदि यह समाचार आप मुझे देते, तो क्या मैं आपकी पत्नी को छुडाकर नही ला देता ? जो महाबलवान् की तरह आकर सीताजी को चुराकर ले गया, उसे मैंने अपनी पूँछ की रोमावली से बाँधकर सभी समुद्रो में डुबोया था और अत में उसपर कृपा करके उसे छोड दिया था । मेरा बाहुबल सारा ससार जानता है और सुग्रीव भी जानता है । हाय ! मुझे भयभीत करके मार डालने की शक्ति रखनेवाले आप, मेरे सामने खडे होकर, मुझे ललकार कर, मुझपर आक्रमण करके मार न सके । भय से आड में छिपकर आपने मुझे मारा । क्या यही राजधर्म है ?'

वालि के इन वचनो को सुनकर राम ने कहा—'हे वालि, ये बातें तुम्हें शोभा नही देती । तुम कपि के वश में पैदा हुए और कपियो के बीच में पले हो । धर्मशास्त्र की नीति न जानते हुए भी वाचाल के समान मेरे दोष गिना रहे हो। यह न्यायसगत नही है। तुमने जो वचन कहे, उनके प्रत्युत्तर में मेरी कुछ बातें ध्यान देकर सुनो । ससार के धर्माचार्यो की सम्मति है कि अग्रज को चाहिए कि वह अपने अनुज को अपने तनुजवत् (पुत्रवत्) पाले । तुमने उस नियम का उल्लघन किया । निरपराध सूर्य-पुत्र को तुमने नगर से निर्वासित किया । ऐसा कामान्ध, तुम्हारे सिवा इन तीनो लोको में और कौन हो सकता है । दूसरी बात यह है कि जब हम दोनो (मैं और सुग्रीव) मित्र है, तो तुम मेरे मित्र के शत्रु होने के कारण तुम्हारा वध करना मेरे लिए उचित ही था । मृगया खेलनेवाले निष्कलक राजा, सजातीय पशु-पक्षियो की सहायता से मृगो का शिकार करते है, या एक मृग को किसी दूसरे के साथ लडते समय उसको मारते है, या झाडी में छिपकर उसका शिकार करते है या जाल फैलाकर मारते है, या अकारण ही मारते है, या आड में खडे होकर शिकार खेलते है, या कटघरा सजाकर शिकार खेलते हैं । इसलिए मुझे किसी भी प्रकार से इसका दोष नही लगेगा । तुम तो शाखा-मृग ठहरे । तुम्हारा वध मैं किसी भी प्रकार करूँ, तो उसका दोष मुझे क्यो लगेगा ? अपने श्रेष्ठ बाहुबल से समस्त जगत् के स्वामी (बने हुए) भरत की आज्ञा से हम दुष्ट मृग तथा राक्षसो का वध करते रहते है। तुम अपने अनुज की पत्नी को बलात् छीननेवाले पापात्मा हो । इसलिए हमने तुम्हारा वध किया । राजाज्ञा से दण्डित व्यक्ति नरक के सकटो को प्राप्त नही होते । इसलिए तुम दुखी न होओ और स्वर्ग-सुख को प्राप्त करो ।'

रघुराम के इन वचनो को सुनकर वालि थोडी देर तक आँखें बद किये हुए विवश पडा रहा और उसके पश्चात् कातियुक्त पूर्णचद्र रामचन्द्र को देखकर कहा—'हे शुभ नामवाले राम, हे भयकर किरणवाले, हे चद्रसम मुखवाले, मेरी पत्नी तारा ने आप प्रभु के शौर्य का परिचय देकर मुझसे अनुरोध किया था कि आप युद्ध में मत जाइए। मैंने अपनी दुर्बुद्धि के कारण, विधि की प्रेरणा से, उसकी बात पर ध्यान नही दिया और आपमें शत्रुता

करके इस प्रकार पृथ्वी पर पडा हुआ हूँ । क्रोध के आवेश में मैंने मूर्ख हो, आपको अप-शब्द कहे हैं । आप मुझे क्षमा कीजिए । हे राजन्, मैं अपनी दुर्दशा की चिन्ता नही करता, तारा के लिए भी चिन्ता नही करता, किन्तु अपने पुत्र अगद के लिए मै व्याकुल हो रहा हूँ । मेरी पत्नी और पुत्र की न जाने क्या दशा होगी । मैंने नही सोचा था कि मेरी ऐसी दुर्दशा होगी ।' इस प्रकार कहते और शोक तथा मोह-रूपी समुद्र में डूबे हुए (मूक की तरह) मूच्छित हो पडा रहा ।

यह समाचार जब (वालि के) रनवास में पहुँचा, तब तारा आदि स्त्रियाँ वालि के वध का हाल जानकर अधीर हो उठी और उनके हृदयो पर वज्र के समान आघात हुआ । वे सब पछाड खाकर पृथ्वी पर गिर पडी । वे एक क्षण होश में आती, फिर दूसरे ही क्षण मूच्छित हो जाती । वे अत्यधिक सतप्त हो, वालि का नाम ले-लेकर पुकारती हुई चिल्ला-चिल्लाकर विलाप करने लगी—'हे अगद, हाय, आज वालि का स्वर्गवास हो गया है ।' फिर वे अत्यधिक शोक में डूबी हुई उच्च स्वर में रोती हुई अगद को साथ लेकर किष्किधा नगर से बाहर निकली । चलते समय उनके पैर लडखडाने लगे, उनके अचल खिसक गये, उनकी वेणियाँ खुल गईं, होठ कंपित होने लगे, आँखो से अश्रु-धारा बहने लगी और उनकी क्षीण कटियाँ इधर-उधर हिलने लगी । इस प्रकार जब वे आ रही थी, तब मार्ग में ही वानरो ने उन्हें सूचना दी कि राघव के हाथो से वालि का वध हो गया है । अब तुमलोग क्यो जा रही हो ? यदि वहाँ जाओगी, तो अवश्य कोई-न-कोई विपत्ति आयगी । क्या तुम नही जानती कि राम तथा सुग्रीव मिल गये हैं । न जाने, वे इस अगद को पकड़कर क्या करेंगे ? हमें शत्रुओ के मन का विश्वास नही करना चाहिए । अत. हम अब अगद को ही अपना राजा बनायेंगे । वैसे तो हमारे यहाँ अनेक बुद्धिमान् मत्री है । तुम वहाँ मत जाओ ।'

८. तारा का शोक

तब तारा, औचित्य का विचार करके, उन कपियो की बार-बार निंदा करती हुई बोली—'यदि मैं अपने प्राणनाथ वालि को न देख सकूँ तो मुझे यह अगद किस लिए और यह राज्य ही किस लिए है ?' इस प्रकार उनकी बातो की परवाह न करके, वह चद्रमुखी तारा मन-ही-मन वालि का स्मरण करती हुई अपने कुचो को देखकर अत्यत शोक-संतप्त होकर कहने लगी—'दूर से ही अमरेन्द्र-पुत्र का आगमन देखकर, यत्न करके, उनके निकट पहुँचकर, रति-क्रीडा की अभिलाषा करके उनसे टकराते रहने के कारण ही तो आज तुम उस सुरराज के पुत्र को खो बैठे । अपने किये का फल तुम अब भोगो ।' यो कहकर अत्यधिक क्रोध से वह अपनी छाती पीटने लगी । उमडते हुए शोक से जब वह चलने लगी, तब उसके हार छिन्न-भिन्न होकर गिरने लगे । वेणी खुल गई । जैसे कमल से मकरद झरता है, वैसे ही उसकी आँखो से अश्रु गिरने लगे । वह पवन के वेग से वालि के निकट पहुँच गई और तरु से टूटकर गिरनेवाली पुष्प-लता के समान वालि पर जा गिरी और बार-बार परितप्त होती हुई इस प्रकार विलाप करने लगी—'हे कपिकुलाधीश, हे कपि-राजचद्र, हे कपिराजशेखर, हे कपिसार्वभौम, समस्त सुरासुर-समूहो में तुम अकलक शक्ति-शाली हो,

तुम विंध्याद्रि को उखाडकर फेंकने तथा उन्हें व्याकुल करने में समर्थ हो, तुम महाबलशाली, त्रिभुवनो के पालन करनेवाले, कुल-पर्वतो को भेदनेवाले (इन्द्र) के पुत्र हो। कोलत्रु नामक क्रूर गधर्व का सहार करनेवाले युद्ध-वीर तुम ही तो हो। ऐसे तुम, एक मानव के हाथो से ऐसी नीच मृत्यु को प्राप्त हुए। अब मै क्या कहूँ ? सूर्य-पुत्र तुम्हारा सामना करने की शक्ति नही रख सकने के कारण तुम्हें युद्ध में मारने के लिए राम को साथ लेकर आया था। मैने तुम से कहा था कि राम को जीतना असभव है; तुम युद्ध में मत जाओ। मेरी बात तुमने नही मानी, मेरा सर्वस्व तुमने हर लिया। मैने कहा कि वह महात्मा विष्णु ही है, उनके निकट मत जाओ। यह भी कहा कि वह महान् शूर है, तुम अपना प्रताप त्याग दो। तुमने नही जाना कि राम तुम्हारा सहार करने आया हुआ यम ही है। तुमने उनसे दुख पाया। जब समुद्र का मथन करते-करते देवासुरो की सारी शक्ति शिथिल हो गई थी और वे क्लान्त होकर पडे हुए थे, तब तुम्हारी जिन भुजाओ ने वासुकि को मदर पर्वत से लपेटकर, समुद्र का मथन करके तीनो लोको में अपनी श्रेष्ठ शक्ति का परिचय दिया था, वे ही आज धूलि से सनी हुई है। महान् शक्तिशाली राक्षसराज (रावण) को अपनी दृढ मुष्टि में पकडकर उसको व्याकुल करते हुए सभी समुद्रो में डुबोनेवाली तुम्हारी पूँछ आज मिट्टी में लोट रही है। नीलकठ के श्रीचरण-कमलो में भ्रमर के समान झुकनेवाला तुम्हारा सिर आज निरी पृथ्वी पर पडा है। हे हृदयेश्वर, मै तुम्हें छोडकर जीवित नही रह सकती, जहाँ तुम जाओगे, वही मै भी जाऊँगी। इस वेदना को सहना मेरे भाग्य में लिखा था। मै अपनी अनाथ अवस्था के कारण दुखी नही होती। हे इन्द्र-नदन, मै आपके प्रिय पुत्र के लिए शोक करती हूँ। हे स्वामिन्, तुम्हारा पुत्र धूल में सने हुए तुम्हारी गोद में लोट रहा है। उसे क्यो नही अपनाते ? हे राजन्, अपने पुत्र अगद को अपनी जाँघो पर बैठाकर, प्रेम से उसका सिर सूँघकर, उसके गालो पर हाथ फेरकर, उसे चूमते हुए, उसको रोने से क्यो नही रोकते ?'

इस प्रकार विलाप करती हुई और उमडते हुए शोक से उसने सुग्रीव को सबोधित करके कहा—'वालि के सामने खड़े रहने की क्षमता न रखने के कारण, कई बार कायर के समान तुम भाग गये और अनाथ की तरह जाकर राघव को साथ ले आकर कपट-विजय के बाद तुमने किष्किधा को जीता। तुमने जो चाहा, वही हुआ। तुम्हारा प्रतिशोध पूरा हुआ। अब कपियो का राज्य लेकर उसका पालन करो। सधि की बातें (मित्रता की बातें) करके राघव को यहाँ लाने के लिए हनुमान् तो तुम्हारे साथ है ही। मत्रणा के लिए तुम्हारे पास नल, नील तथा तार भी है। (अब तुम्हें किस बात की कमी है?)'

इसके पश्चात् उस कमलाक्षी ने रघुराम को देखकर कहा—'हे राजन्, आपने वालि का सहार क्यो किया ? हे रघुराम, क्या वालि ने आपकी ऐसी दशा कर देने के लिए (वनवास की आज्ञा देने के लिए) आपके पिता को परामर्श दिया था ? हे रघुराम, क्या वालि आपके राज्य-सुख को छीननेवाला भरत था ? क्या वालि दुष्टता करके आपकी पत्नी को चुराकर ले जानेवाला रावण था ? आपने वालि से अकारण वैर ठानकर इस प्रकार उसका सहार क्यो किया ? आप-जैसे पुण्यात्मा, आप-जैसे प्रभु और, आप-जैसे कल्याणनिधि को

क्या ऐसा करना उचित है ? क्या जानकी के साथ आपका विवेक भी चला गया ? क्या घोर विरहाग्नि में आपका ज्ञान भी जल गया ? हे राजन्, मेरा भाग्य ही आज ऐसा हो गया है । अब मैं क्या करूँ ? होनहार को मैं कैसे दोष दूँ ? मैं वालि को छोड़कर नही रह सकती । हे देव, आप मेरा भी वध कर डालिए ।'

इस प्रकार विलाप करती हुई वह अपनी छाती और मुँह को पीटती हुई रुदन करती रही । तब हनुमान् ने तारा को देखकर कहा—'क्या ऐसी कोई धर्म-नीति है, जिसे तुम नही जानती? युद्ध में स्वर्ग को प्राप्त होनेवाले वीर वालि के लिए इस प्रकार तुम शोक क्यो करती हो ? ये सब कार्य भगवान् की इच्छा के अनुसार चलते है ।' इस प्रकार वह नीति-विलक्षण (हनुमान्) वार-वार तारा को समझाता रहा ।

९. वालि का सुग्रीव को उपदेश देना

इतने में अमरेन्द्र-पुत्र ने आँखें खोलकर अपनी पत्नी का अवर्णनीय शोक तथा अगद के उससे भी अधिक कठोर दुख को देखा और फिर सूर्य-नदन को सबोधित करके कहा—'हे भानु-पुत्र, राम के द्वारा आज समस्त ससार के समक्ष तुम्हारा प्रतिशोध पूर्ण हुआ । इस पृथ्वी पर राजाओ की कृपा का कभी विश्वास मत करना । अपनी बुद्धि का विश्वास करके सावधान होकर व्यवहार करना । तुमने राम को जो वचन दिया था, अब उसका पालन करने का प्रयत्न करो । मायावी पुरूहुत जब लगातार अपनी सारी शक्ति लगाकर, अनवरत युद्ध करके हार गया था, तब मुझसे सतुष्ट होकर उसने यह हेम-मालिका दी थी । इसे तुम धारण करो । यही कपि-राज्य का राज-चिह्न होगा । अब इस अगद के शोक को दूर करो । तुम मेरे समान ही उसकी रक्षा इस प्रकार करो कि वह मुझे भूल जाय । सुषेण की पुत्री यह तारा बुद्धिमती है । इसके परामर्श के अनुसार तुम आचरण करो और मेरे सब अपराधो को भूल जाओ । अब मेरे प्राण नही बचेंगे, लो, इस रत्न-मालिका को भी ले लो ।' यह कहकर उसने शोक से सिर झुकाये खडे रहनेवाले सुग्रीव को बुलाया। तब सुग्रीव ने रघुराम की अनुमति प्राप्त करके उस हेम-मालिका को बड़ी भक्ति के साथ धारण किया ।

इसके पश्चात् वालि ने बडे प्रेम से अगद को देखकर कहा—'हे पुत्र, अब तुम शोक त्यागो । सुग्रीव के रहते हुए तुम्हें शोक करने की क्या आवश्यकता है ? सूर्य-पुत्र मुझसे भी अधिक प्रेम से तुम्हारा लालन-पालन करेगा । सुग्रीव जो पद तुम्हें दे, उसी में सतुष्ट रहना । तुम्हारी कीर्त्ति अमर रहेगी और तुम्हें श्रेष्ठ सुख प्राप्त होगे । तुम्हें किष्किधा का राजा बनाकर उसे देखकर आनन्द पाने के योग्य पुण्य मैंने नही किया था । अब मैं स्वर्ग को जा रहा हूँ ।'

इसके उपरान्त वालि ने रघुराम को अत्यत प्रेम से देखकर कहा—'हे राम, अत्यधिक गर्व करके, मेरा सुग्रीव से जूझना ही मेरे लिए अतिम पथ्य सिद्ध हुआ । वही मेरी मृत्यु का कारण सिद्ध हुआ । यह अगद निर्बल है । यदि वह कोई अपराध करे, तो उसे सहन कीजिएगा । हे सूर्य-वश-तिलक, सूर्य-पुत्र के बाद इसको राजा बनाइए। वेद-शास्त्रो के अध्ययन-मात्र से किसी को तुम्हारे दर्शन नही प्राप्त हो सकते । आपका आदि, मध्य तथा

अत नही है । प्राणो के जाते समय आपने यहाँ पधारकर मुझे दर्शन दिये । परलोक ज
जाने पर ही जिसके दर्शन सभव होते है, (उसके दर्शन) मैने अभी प्राप्त कर लिये है
मै कृतार्थ हुआ । हे सूर्य-वश-तिलक, हे परमकल्याण-रूप, अब मेरे प्राण नही बचेंगे
कृपया यह बाण (मेरे शरीर से) निकालिए ।' राम की आज्ञा पाकर नील ने उस दिव
वाण को वालि के शरीर से बाहर निकाला । तव वालि ने पवन की गति को अपने
शरीर में रोककर, उस रुद्ध पवन की सहायता से अपनी चित्त-वृत्ति को निश्चल बनाकर
उस सुदरमूर्ति श्रीराम को मन में धारण करके, ब्रह्मानद का अनुभव करते हुए ब्रह्मरध्र के
द्वारा अपने प्राण छोड दिये ।

तब तारा आदि स्त्रियाँ वालि के शरीर पर गिरकर वार-बार हाहाकार करती हुई विलाप करने लगी। अगद, सुग्रीव तथा वहाँ के सभी कपि-पुगव 'हाय, वालि तुम हमें छोडकर चले गये !' कहते हुए विलाप करने लगे । तब सौमित्र ने सुग्रीव तथा अन्य कपियो को सात्वना देते हुए कहा—हे हनुमान्, तुम तुरत वस्त्र, माला, कर्पूर, चदन आदि मँगवाओ । हे तारे, स्वर्ण तथा रत्नो से निर्मित शिविका शीघ्र मँगवाओ ।' उन्होंने वैसा ही किया । सभी वनचर वहाँ पहुँच गये । सूर्य-पुत्र ने तारा आदि स्त्रियो का दुख शान्त किया । रामचन्द्र की आज्ञा प्राप्त करके सुग्रीव, अगद, हनुमान् आदि ने वालि की उत्तर-क्रियाएँ यथाविधि समाप्त की । दस रात्रियो तक शव क्रिया-कर्म पूरे किये और परिशुद्ध होकर रामचद्र के सम्मुख उपस्थित हुए ।

१०. सुग्रीव को किष्किंधा का राजा बनाना

तब राम ने अत्यत हर्ष से उन कपि-नायको को देखकर कहा—'अब तुमलोग मेरा आदेश मानकर किष्किधा नगर को सजाओ और कपिराज के सिंहासन पर सुग्रीव का राज-तिलक करो तथा अगद को युवराज के पद से अभिषिक्त करो ।' तुरन्त सभी वानर-दण्ड-नायक एकत्र होकर किष्किधा चले आय । उन्होने सारा नगर सुदर ढग से सजाया । सारा नगर, नूतन श्रृगारो से सुसज्जित भवन, रत्नो की वेदियाँ, रमणीय हीरो के चौको से अलकृत द्वार, सुरम्य ध्वजाएँ, विशाल तथा सुगधित जल से सिक्त राज-मार्ग तथा उनमें सचार करनेवाले निरुपम सुदराकार पुरजनो से परिपूर्ण दीखने लगा । उन्होने राजसभा का भी अलकार किया, मानो वह अत्यधिक ऐश्वर्य-रूपी समुद्र का आवास हो । नद तथा नदियो का जल मँगाया और विविध मगल-द्रव्यो को एकत्र किया । इसके पश्चात् उन्होने सुदर पुण्य मुहूर्त में पुण्याह वचन का उच्चारण करते हुए कपिसिंह (सुग्रीव) को सिंह के चर्म से अलकृत सिंहासन पर विठाया और जिस प्रकार देवता इन्द्र का अभिषेक करते है, वैसे ही उज्ज्वल तथा पवित्र ढग से श्रेष्ठ वानरो ने सुग्रीव का राज्याभिषेक किया। पुण्य-स्त्रियाँ रत्नो की वर्षा करने लगी । तदनतर उन्होने अगद को युवराज के पद पर प्रतिष्ठित किया । तब सारे अतपुर तथा नगर में अत्यधिक आनद छा गया । नल, नील, तार, हनुमान् तथा सगे-सवधी सुग्रीव से वडे प्रेम से मिले । अन्य वानर-राजाओ ने हाथ जोडकर वडे हर्ष से उसकी प्रशसा की । तव सुग्रीव ने अपनी विशाल सपत्ति को प्राप्त करके, वडी प्रसन्नता से रत्न-राशि वानरो को भेंट की । तत्पश्चात् सुग्रीव ने अपनी वानर-सेना के

साथ रामचंद्र के निकट पहुँचकर बडी भक्ति से उनके चरणो में प्रणाम किया और हाथ जोडकर बडे प्रेम तथा आनद से कहने लगा—'हे विश्वेश, अब आपको यहाँ ठहरने की क्या आवश्यकता है ? आप कृपया मेरे नगर में पधारें ।'

११. राम का माल्यवंत पर पहुँचना

तब राम ने सुग्रीव को देखकर बडे प्रेम से कहा—'हे सूर्य-पुत्र, तपस्वियो को नगरो में निवास नही करना चाहिए, इसलिए किष्किधा नगर हमारे रहने योग्य नही है । आषाढ का महीना आ गया है, अत शत्रुओ पर आक्रमण करने के लिए यह समय अनुकूल नही है। मैं वर्षाऋतु में किसी तरह माल्यवत पर अपने दिन व्यतीत करूँगा । तुम किष्किधा में जाकर रहो । शरत्काल के आते ही हम शत्रुओ पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान करेंगे ।' इन वचनो को कहकर राम ने उसे बडे आदर के साथ विदा किया और उस स्थान को छोडकर वे अपने अनुज के साथ माल्यवत पर्वत पर जा पहुँचे ।

पर्वत पर पहुँचकर राम कुसुम सदृश कोमल सीता के गुण, वय तथा असमान रूप-विलास को मन-ही-मन सोचते हुए अत्यधिक दुख में मग्न हो रहे ।

उस समय आकाश में, सूर्य के प्रकाश को ढँकते हुए बादल इस प्रकार घिर आये, जैसे सीता के वियोग से दुखी होनेवाले राम को घेरकर दुख बार-बार आता था । बादलों में से निकलकर बिजली इस प्रकार जहाँ-तहाँ अपनी चचलता दिखाने लगी, मानो वह बता रही हो कि रावण का राज्य राम के द्वारा विचलित हो जायगा । वायु के साथ धूल इस प्रकार आकाश की तरफ उडने लगी, मानो पृथ्वी देवताओं को इस बात की सूचना देने जा रही हो कि इक्ष्वाकु-वल्लभ (राम) देवलोक के शत्रु (रावण) पर आक्रमण करने जा रहे हैं । आकाश में इद्र-धनुष इस प्रकार सुशोभित हो रहा था, मानो युद्ध में राक्षसो का वध करने के लिए यम ने अपने हाथ का काल-पाश भेज दिया हो । आकाश में जहाँ-तहाँ मँडराते हुए मेघ ऐसे गर्जन कर रहे थे, मानो राम की सहायता के लिए देवताओ की भेजी हुई सेना, भेरी-निनाद कर रही हो । प्रथम वर्षा की बूँदें जहाँ-तहाँ इस तरह गिरने लगी, मानो वर्षाकाल-रूपी पुरुष के, आकाश-लक्ष्मी से बडे प्रेम से भेंट होने पर, उसके (मोतियो के) हार टूटकर उसके मोती पृथ्वी पर गिर रहे हो । जहाँ-तहाँ धरती के भीतर से भाँप इस प्रकार निकलने लगी, मानो (राक्षस के हाथो में) फँसकर कैद में पडी हुई अपनी पुत्री का स्मरण करके धरती माता दुख से पीडित होकर निःश्वास छोड रही हो। आकाश में उमड-घुमडकर दौडनेवाले बादलो को देखकर चातक पक्षी ऐसे फूल उठे, मानो राम-लक्ष्मण-रूपी मेघो को देखकर सुर-लोक के चातक आनद से फूल उठे हो । मेघ के 'घर-घर' गर्जन के साथ लय मिलाकर मयूर केका करते हुए इस प्रकार नृत्य करने लगे, मानो मर्दल की 'धी-धी-धप' की ध्वनि से लय मिलाकर नर्त्तकियाँ सगीत के साथ नृत्य कर रही हो । भयकर घोष करते हुए वज्र पर्वत के शिखरो पर इस प्रकार गिरने लगे, मानो वे यह प्रकट कर रहे हो कि राक्षसो के अगो पर राम के बाण इसी प्रकार गिरेंगे । अत्यधिक अरुण वर्ण धारण करके इद्रगोप (वीरबहूटी) पृथ्वी पर इस प्रकार बिखर गये, मानो वे यह प्रकट करते हो कि राक्षसराज के शरीर के मास के टुकडे इसी प्रकार रण-भूमि में बिखर जायँगे ।

ओले इस प्रकार पृथ्वी पर गिरने लगे, मानो रावण का संहार करते समय देवता हर्षित होकर दिव्य पुष्पों की वृष्टि करेंगे। राजहंसों का झुंड इस प्रकार धीरे-धीरे वहाँ से क्रौंच-गिरि पर चले गये, मानो राम के प्रताप के कारण रावण की कीर्त्ति-परंपरा लुप्त हो जायगी। सूर्य के चारों ओर का परिवेश ऐसा दीखने लगा, मानो उसने इस विचार से अपने चारों ओर एक सुदृढ़ प्राचीर बना लिया हो कि मेरे पुत्र सुग्रीव ने युद्ध में इन्द्र के पुत्र को मरवा डाला है, इसलिए इन्द्र मेरे ऊपर क्रोध न करें। वर्षा की धारा ऐसी दीखने लगी, मानो अघट उत्साह से आकाश-गंगा में स्नानार्थ गई हुई नाग-कन्याएँ फिर से रसातल को लौट रही हों। मेंढक जहाँ-तहाँ ऐसे अद्भुत ढंग से स्वर-भेद दिखाते हुए टर-टराने लगे, मानो वे उस महान् व्यक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे हों, जिसने उन्हें प्रचुर मात्रा में जीवन-दान किया है। सारी धरती पर नीला पंक ऐसा दीख रहा था, मानो मेघों ने वर्षाऋतु-रूपी वधू के शरीर पर कस्तूरी लपेट दी हो। जल-प्रवाह जहाँ-तहाँ के तालाबों में इस कारण से ठहर गया, मानो वह यह सोचकर डर रहा हो कि समुद्र में मिल जाने से श्रीराम के बाणों की अग्नि से तप्त होना पड़ेगा। बड़ी-बड़ी नदियों का जल इस प्रकार भँवरों में चक्कर काटता हुआ घोर शब्द करता हुआ, समुद्र में प्रवेश कर रहा था, मानो वह भयभीत हो कह रहा हो कि लोक-कंटक राक्षस को मैंने अपनी गोद में स्थान दिया है; काकुत्स्थ-वंशज राम मुझे बंधन में डालेंगे।

कुछ दिनों में वर्षा समाप्त हुई, आकाश में दीखनेवाले मेघ विलीन हो गये। अपनी किरणों को सारे लोकों में फैलाते हुए सूर्य सर्वत्र प्रकाशमान होने लगा। पृथ्वी कीचड़ से रहित हो गई। सरोवरों में कमल सुंदर रूप से दीखने लगे। मत्त गज अपने दाँतों से टीलों को खोद-खोदकर मिट्टी उछालने लगे। रात्रि चंद्रिका तथा नक्षत्रों से सुशोभित हो उठी। हंस सरोवरों में निवास करने के लिए लौट आये और मृणालों का भक्षण कर संतुष्ट हुए। ईख, लाल-लाल धान तथा पकी फसलें प्रचुर हो गईं। वृषभ-समूह गर्जन करने लगा। जल का गँदलापन दूर हो गया और वह स्वच्छ दीखने लगा तथा यात्रियों को (इससे) सुख मिलने लगा। आकाश में मेघ निर्मल दीखने लगे। जल कम हो जाने से नदियाँ पार करने योग्य हो गईं।

इसके कुछ दिन पूर्व हनुमान सूर्य-पुत्र से मिलकर कहने लगा—'शरत्काल आ गया है; अब श्रीराम का कार्य संपन्न करना चाहिए। अतः सब वानर-राजाओं को बुला भेजो।' तब रवि-पुत्र ने अपने सेनापति नील को बुलाकर कहा—'विविध पर्वत, नदी तथा द्वीपों के राजाओं, वानर, लंगूर तथा रीछ-राजाओं को बुला भेजो। जो नहीं आवें, उसे भी आदेश भेजकर बुला लेना।'

यहाँ राम ने अनुज की सहायता तथा सांत्वना प्राप्त करते हुए, दुख से पीड़ित होते हुए जैसे-तैसे वर्षाकाल को समाप्त किया। शरत्काल का आगमन होते ही कोमलांगी सीता का स्मरण-मात्र से उनके मन में विविध इच्छाएँ उत्पन्न हुईं। मदनातुर हो वे भ्रमित मन से उदयाद्रि पर स्थित उडुपति को देखकर कहने लगे—'यह कैसा उत्पात है? यह कैसी रीति है? रात्रि के समय सूर्योदय क्यों हुआ? मेरे शरीर का ताप दुगुना हो

गया है । हे सौमित्र, मुझे पेड की छाया में ले चलो ।' तब लक्ष्मण ने कहा—'हे देव, यह चद्र है, सूर्य नही । वह देखिए, उसमें हिरण का चिह्न दिखाई दे रहा है ।' लक्ष्मण की बातें सुनकर वे व्याकुल हो कह उठे—'हाय ! हिरण की-सी आँखोवाली (हमसे) बिछुड गई है', और मूच्छित हो गये ।

लक्ष्मण ने दाशरथि का शीतलोपचार किया और उनकी मूर्च्छा दूर की । तब राम संभलकर बोले—'अब हमें तुरत लका पर आक्रमण कर देना चाहिए । हे सौमित्र, देखा तुमने ? सूर्य-पुत्र हमसे क्या कहकर गया था ? वर्षाकाल के समाप्त होते ही आने का वचन दिया था । वर्षाकाल तो समाप्त हो गया, किन्तु वह आया नही है । कदाचित् वह मेरे किये उपकार को भूलकर तारा के साथ रति-क्रीडा में मग्न रहता हो या राज्य-मद में अपने आपको भूलकर पडा हो । अन्यथा मेरे कार्य के सबध में वह अपने मन में सोचता क्यो नही है ? हम इस कृतघ्नता को सहते हुए विलब क्यो करें ? विबुध जनो का कहना है कि उपकार को भूल जानेवाले, वचन भग करनेवाले और अपने मित्र का कार्य नही करनेवाले अधम पुरुष होते है । तुम शीघ्र जाकर सुग्रीव को बुलाओ । यदि वह आने से इनकार करे और अकडता हो, तो उससे कह देना कि जिस शर ने वालि का सहार किया था, वह कही गया नही है । अच्छा, अब तुम जाओ ।'

१२. लक्ष्मण का किष्किंधा में जाना

तब लक्ष्मण ने अपने अग्रज को प्रणाम किया और आँखो से अग्नि-कण उगलते हुए अपने श्रेष्ठ धनुष-बाण लेकर, लबे-लबे डग भरते हुए चले । वे ऐसे लबे डग भरते हुए जा रहे थे कि पृथ्वी थर-थर काँपने लगी और उनके पवन-सम वेग के कारण सभी वृक्ष टूटकर गिरने लगे । वे पुण्यात्मा जब किष्किधा पहुँचे, तब सभी कपि भयभीत हो जहाँ-तहाँ भागने लगे । किले के फाटक पर रहनेवाले वानरो ने यह सोचकर कि न जाने यह कौन है, तुरत किले के किवाड बद कर दिये और वानर-समूह को फाटक की रक्षा के लिए नियुक्त करके, उसका समाचार अपने राजा को सुनाने के लिए भयभीत होकर दौड़े । राजमहल में पहुँचकर उन्होने हाथ जोडकर तारा की परिचारिकाओ से सारा समाचार कह सुनाया । परिचारिकाओ ने, यह सोचकर कि राजा को समाचार देने के लिए यह उचित समय नही है, अगद के पास जाकर हाथ जोडकर कहा—'हे विख्यात तेजस्वी युवराज, हमारे किले के फाटक पर कोई महाबलशाली मुनि-वेश में जटा-वल्कल धारण किये, हाथ में धनुष-बाण लिये हुए यम के समान आकर खडा हुआ है ।' तब अगद ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि अवश्य राम के भाई होगे । उसने तुरत फाटक पर आकर लक्ष्मण को देखा । तब लक्ष्मण ने उसे देखकर कहा—'हे अंगद, मेरे आगमन का समाचार सूर्यपुत्र को (सुग्रीव को) सुना दो ।'

अगद तुरत उस सुग्रीव के पास पहुँचा , जो मन्मथ के विकार-सागर में निमग्न पडा था । रुमा अपने कर-पल्लवो से उसके चरणो को दबा रही थी । तारा तथा मृदुर उसके तकिये के समान बैठी थी । इस प्रकार के सुख-भोग में निमग्न सुग्रीव को देखकर अगद ने कहा—'लक्ष्मण हमारे किले के फाटक पर, क्रोधाग्नि में जलते हुए खड़े हैं ।'

सुग्रीव ने शंकाकुल चित्त से अपने मंत्रियो को बुलाकर कहा—'क्या कारण है कि सौमित्र मित्रता छोडकर इस प्रकार आ गये है? मेरे जाने, मेरे द्वारा कोई अपराध नही हुआ है।' इस प्रकार दुविधा में पडे सुग्रीव को देखकर हनुमान् ने कहा—"राम ने उस महेन्द्रसुत वालि का युद्ध में सहार करके तुम्हें कपियो का राज्य दिया था। ऐसे राम के कार्य को भुलाकर तुम इस प्रकार भोग-विलास में निमग्न रहते हो?, क्या यह उचित है? इसमें कोई सदेह नही कि इसी कारण से सौमित्र यहाँ उग्र रूप धारण करके आये होंगे। ऐसे वीर को द्वार पर ही खडा रखना उचित नही। लोकवद्य उस महात्मा का स्वागत करो, उनकी सेवा करो, राम के कार्य का विचार करो और अपना वचन पूरा करो।"

इन वातो को सुनकर सूर्य-पुत्र ने रामानुज को लिवा लाने का आदेश दिया। तव लक्ष्मण ने स्वर्ण-गोपुरो के हर्म्य-समूह, विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित चित्रो का कला-कौशल, कैलास पर्वत के समान दीखनेवाले सौध, मध्यभाग में निर्मित क्रीडा-सरोवरो से युक्त उपवन देव-गधर्व के अवतार, वानरो के आवास आदि से पूर्ण उस नगर में प्रवेश किया और वहाँ की अनुपम वस्तुओ की उत्कृष्टता पर आश्चर्य प्रकट करते हुए, इन्द्र के गृह की समता रखनेवाले वानरराज के प्रासाद में प्रवेश किया। वहाँ पहुँचकर उन्होने उमडते हुए क्रोध से, अप्सराओ का सौदर्य देखा और सुदर स्त्रियो का स्निग्ध सगीत, उनकी वीणा, वेणु एव मृदगो की ध्वनि, तथा उनके गहनो की मधुर ध्वनि सुनी। वे यम के समान अत्यधिक क्रुद्ध होकर अंतःपुर के द्वार पर आकर खडे हुए।

उनके आगमन का वृत्तात सुनकर, सुग्रीव अकेले ही न आकर, तारा को भी अपने साथ लिये हुए शीघ्र वहाँ आया। अत्यधिक भय के साथ उनका क्रोध तथा उनका रूप देखकर वडी भक्ति से उनके चरणो पर गिरकर उचित अर्घ्य-पाद्य देने का उपक्रम किया। इतने में ही उसे देखकर लक्ष्मण गरज उठे—'हे रामद्रोही, हे कृतघ्न, क्या यह उचित है कि तुम मेरी पूजा-अर्चना करो। तुमने सत्यात्मा जानकीनाथ को वचन दिया था कि वर्षा-काल के समाप्त होते ही आऊँगा। किन्तु तुम नहीं आये। तुमने अपने वचन का भग किया। रघुराम की आज्ञा का तुमने विचार नही किया। तुम पशुबुद्धिवाले हो। राम के जिस शर ने वालि का वध किया था, वह कालाग्नि उगल रहा है। वह तुम्हारा सर्वनाश किये विना नही रहेगा। हे नीच वनचर, मूर्ख बनकर तुम स्वय अपना नाश कर रहे हो।'

तब तारा ने अत्यत भयभीत होकर कहा—'हे अनघ, यह सूर्य-पुत्र आपका दास है। यह राज्य-सपत्ति, यह ऐश्वर्य आप ही के दिये हुए है। ये रविसुत आपके ही लगाये हुए पौधे के समान है। ये सूर्य-पुत्र, रण-विशारद राम की आज्ञा का पालन नही कर रहे हैं, सो वात नही है। इस कार्त्तिक-पूर्णिमा तक सारी कपि-सेना को एकत्र करने के लिए उन्होने सेनापति नील को भेज दिया है और स्वय युद्ध में जाने के लिए सन्नद्ध होकर बैठे हैं। ये न राम-द्रोही है, न असत्यभाषी, न कृतघ्न ही है। अत आप इनपर कृपा कीजिए।'

इन वातो को सुनकर लक्ष्मण का क्रोध शान्त हुआ और उन्होने सुग्रीव की पूजा-अर्चना स्वीकार की। उसके पश्चात् सुग्रीव ने राजकुमार को एक स्वर्ण-पीठ पर आसीन

कराया और उनकी आज्ञा लेकर मृदु-मधुर वचन कहने लगा—'हे सौमित्र, क्या मैं प्रभु राघव के कार्य का विस्मरण करूँगा । मैं अभी सभी वानरों को एकत्र करूँगा और वैदेही के अन्वेषण के लिए सभी दिशाओं में आदमी भेजूँगा । चलिए, मैं अभी आपके पीछे-पीछे चलता हूँ । जिस शर से वालि पृथ्वी पर गिरा, जिस शर से सातों ताल-वृक्ष पृथ्वी पर गिरे, वही शर सभी दानवों का नाश करने के लिए तथा साध्वी को मुक्त करने के लिए पर्याप्त है । फिर भी मैं अत्यंत भक्ति के साथ प्रभु राम की सेवा करूँगा और यश प्राप्त करूँगा ।'

१३. सुग्रीव का माल्यवंत पर पहुँचना

इतना कहकर सुग्रीव ने नीतिवान् हनुमान् को देखकर कहा—'अब विलंब करना उचित नहीं है । वचन-पालन के निमित्त यत्न करो । हमारे राज्य के सभी वानरों को सूचित करके, उनको रवाना करने का प्रयत्न करो । अब हमें प्रभु राम के दर्शनार्थ जाना है ।' यों कहकर अत्यधिक उत्साह से सूर्यनंदन ने तारा आदि पत्नियों को विदा किया और सब दिशाओं में रहनेवाले वानर-सेनापतियों को बुलाकर, उन्हें प्रस्थान करने की आज्ञा दी ।

उस समय प्रस्थान की भेरी की जो ध्वनि हुई, वह पृथ्वी, आकाश तथा दिशाओं को विदीर्ण करने लगी । सुग्रीव ने स्वर्ण तथा रत्नों से निर्मित एक रम्य शिविका में लक्ष्मण को बड़े आदर के साथ बिठाया, श्वेत छत्र तथा चामर उस महात्मा के निकट सजाये, और स्वयं एक शिविका पर आरूढ़ होकर लक्ष्मण के पीछे-पीछे चला । (लक्ष्मण के) आगे मंगल-वाद्य बज रहे थे और बंदी-मागधों की स्तुतियों की गंभीर ध्वनि हो रही थी । कपियों के नेता आ-आकर सुग्रीव के दर्शन कर रहे थे । नक्षत्रों के मध्य में विलसित होनेवाले चन्द्र के समान वह सुग्रीव, सभी वानर-वीरों की सेना को साथ लिये हुए, समस्त पृथ्वी को कँपाते हुए, लक्ष्मण की सेवा में निरत होकर वहाँ से चला ।

माल्यवंत पर रामचन्द्र ने जब सेना का कोलाहल सुना तब मन-ही-मन कहने लगे—'लो कपि-सेना आ गई ।' अब उनका क्रोध शान्त हुआ और रवि-पुत्र के प्रति उनका हृदय कोमल बन गया । सुग्रीव कुछ दूर पर ही सुंदर तथा स्वर्ण-मणिमय शिविका से उतरकर, सौमित्र के साथ राम के पास आया और बड़ी भक्ति के साथ हाथ जोड़कर राम से कहा—'हे देव, सेनाओं को एकत्र करने में मैंने अपने वीरों को भेजा था । उनके एकत्र होते-होते इतना समय लग गया है । इसलिए आपके यहाँ आने में विलंब हुआ; अन्य किसी कारण से नहीं ।' तब राम ने सुग्रीव को कृपा की दृष्टि से देखकर उसको आदर से अपनाया ।

तब कैलास-पर्वत, मेरु-पर्वत, नीलाचल, निषधाद्रि, द्रोणाचल, ऋक्षाद्रि, पारियात्र, उदयाद्रि, रत्नगिरि, अस्ताद्रि, मलयाचल, सह्याद्रि आदि पर्वतों पर रहनेवाले महान् बाहुबली (वानर), पवनसुत (हनुमान्), पनस, अंगद, गवय, नील, गंधमादन, पावकाक्ष, कालपाश, प्रधन, वेगदर्शी, गवाक्ष, नल, मैन्द, महानाथ, धूम्र, जंघ, गिरिभेदी, सुमुख, केसरी, ज्योतिर्मुख, विमुख, तार, विनत, गज, जाम्बवान्, संपाति, रंभ, समुद्र-पुत्र सुषेण, शतबली, शरभ, सर्वार्थ

आदि श्रेष्ठ वीर अपने पुत्र, मित्र, सहोदर, तथा सगे-सबधी सब एकत्र होकर क्रमश दस, सौ, सहस्र, लाख, करोड, सौ करोड, पद्म, महापद्म और अत में शख की सख्या में ऐसे आ जुटे, मानो धरती ने ही इन सबको उत्पन्न कर दिया हो। जिस दिशा में देखें, कपि-ही-कपि दीखते थे। उन कपियो का समूह पृथ्वी से लेकर आकाश तक व्याप्त था। अति-भयकर काल-दड के समान दीखनेवाले भुज-दड, सब दिशाओ में व्याप्त होनेवाली बडवानल की अग्नि-शिखाओ के समान आकाश से टकरानेवाले लागूल, प्रलयकाल के मेघो की काति (बिजली) के सदृश दीखनेवाले भयकर दष्ट्र, प्रलय-काल के सूर्यबिब की समता करनेवाले मुँह के गह्वर, चचल समुद्र के विपुल कल्लोलो के घोष के समान सुनाई पडनेवाले गर्जन आदि से युक्त वानर-सेना को लिये हुए आनेवाले वानर-राजाओं को देखकर राम मन-ही-मन आश्चर्य करते हुए प्रसन्न हुए।

तब सुग्रीव ने राम को देखकर कहा—'हे देव, मेरी सेना के आगमन की रीति आपने देखी ? इनमें प्रत्येक बडे यत्न से आपका कार्य साधने की क्षमता रखता है।' यो कहकर उसने उनकी शक्ति, उनके नाम, उनके जन्म-वृत्तात, उनकी जाति, उनका सामर्थ्य, उनके रग-ढग, उनके भोजन तथा निवास आदि का समग्र वर्णन करके कहा—'हे देव, इन वानर-राजाओ में प्रत्येक आपकी पत्नी वैदेही को लाने की क्षमता रखता है। आप आज्ञा दें।' तब राम ने सूर्य-पुत्र को बडे आदर से गले लगाया और कहा—'हे भानु-पुत्र, बल-सपत्ति में तुम्हारे लिए कोई भी अलभ्य नही है। तुम्हारे पौरुष को देखकर ही तो मैंने तुम्हें अपनाया था ? अब तुम वैदेही का पता लगाने के लिए (अपने वीरो को) भेजो।'

१४. सीता के अन्वेषण के लिए सुग्रीव का वानरों को भेजना

एक शुभ मुहूर्त्त में सुग्रीव ने 'विनत' नामक एक वानर वीर को देखकर कहा—'तुम अपनी सेना को साथ लेकर बड़ी सावधानी के साथ, पूर्व दिशा की ओर सीता की खोज में जाओ। तुम पहले यमुना नदी के तट पर तथा यमुना गिरि में उनको ढूँढो और उसके पश्चात् गगा नदी तथा शोण नदी के आसपास ढूँढो। वहाँ से निकलकर कौशिकी, और सरस्वती नदियो में देखो। फिर समुद्र में ढूँढो और पौण्ड्र तथा विदेह के प्रदेशो में सीता का अन्वेषण करो। वहाँ से तुम मालव, कोसल, मगध, ब्रह्म देश, आदि में भी मैथिली की खोज करना। तदनतर समुद्र के तटो पर देखते हुए मदर पर्वत पर चले जाना और वहाँ के किरातो के निवास-स्थानो में उनकी खोज करते हुए तत्परता के साथ यव-द्वीप तथा जबूद्वीप को पार करके शिशिराद्रि पर पहुँच जाना। वहाँ कालोद नामक सरोवर के तट पर ढूँढना। तदनतर लोहित समुद्र पार करके शाल्मलि वृक्ष की छाया में उन्हें ढूँढना। वहाँ से गरुडाश्रम में जाना। फिर गोश्रृग पर्वत पर ढूँढकर, उस पर्वत के शिखरो पर रहनेवाले मदमत्त राक्षसो के मध्य सीताजी का अन्वेषण करना। उसके पश्चात् क्षीर सागर को सहज ही पार करके सुदर्शन नामक पर्वत पर उन्हें ढूँढना। वहाँ से निकलकर शुद्धार्णव पार करना और महानुजात-रूप शिलाद्रि में सीताजी का अन्वेषण करना। वहाँ तुम सहस्र सिरोवाले, इदुवर्ण (आदि शेष को) बैठे हुए देखोगे। उनको प्रणाम करना और

वहाँ से चौदह योजन से अधिक की दूरी पर स्थित मेरु पर्वत पर ढूँढना। उस मेरु पर्वत के चारो ओर चक्कर काटनेवाले सूर्य के चरणो में वन्दना करना और उसी प्रकार वाल-खिल्य आदि को भी प्रणाम करना। उसके पश्चात् उदयाद्रि में भी सीताजी का अन्वेषण करके रावण के निवास का पता लगाकर हमें समाचार देना। (उदयाद्रि के) उस पार की भूमि पर रवि का प्रकाश न पड़ने के कारण, वहाँ सदा अधकार व्याप्त रहता है। अत: मै वहाँ के प्रदेशो के सबध में नही जानता। तुम तुरन्त यहाँ से प्रस्थान करो और एक मास के भीतर वापस लौट आओ। ऐसा न करने से तुम्हें अपमानित होना पड़ेगा।'

तब विनत ने वालि के भाई सूर्य-पुत्र को अत्यन्त विनम्र होकर प्रणाम किया और एक लाख वानरो को साथ लेकर पूर्व की दिशा में प्रस्थान कर गया। इसके पश्चात् सूर्य-पुत्र ने सुशीर, नील, हनुमान्, अगद, जाबवान्, गज, गधमादन, गवाक्ष, विजय, मैन्द, द्विविद और तार आदि वानरो को बुलाकर कहा—'अब तुम योग्य वानरो को साथ लेकर शीघ्र दक्षिण दिशा में चल पडो। विंध्याचल से प्रारभ करके तुम नर्मदा तथा दशार्ण नगर में ढूँढना। फिर दण्डकवन में अवश्य उनकी खोज करना। वहाँ से चलकर गोदावरी के तट पर ढूँढना, फिर वेत्रवती के निकट देखना। तदनंतर तुम कलिंग तथा निषध देशो में अन्वेषण करना। फिर कर्णाटक, आध्र, चोल, चेर, केरल, तथा पाण्ड्य देशो में ढूँढना। तत्पश्चात् मलय-पर्वत तथा कावेरी के किनारे देखना; फिर अगस्त्य के आश्रम में जाना और उस महात्मा की आज्ञा प्राप्त करके ताम्रपर्णी नदी को पार करना। उसके बाद समुद्र के तट पर स्थित वनो में ढूँढना, और फिर स्वर्णपुरी में उनकी खोज करना। वहाँ से बड़ी तत्परता से महेन्द्र पर्वत पर जाकर देखना; उसके उस पार रहनेवाले विषमाद्रि में ढूँढना, फिर पुष्पाद्रि में देखना और क्रैव कुंजर नामक पहाड़ पर अन्वेषण करना। वहाँ विश्वकर्मा द्वारा निर्मित अगस्त्य का आश्रम है। वहाँ भी सीता को ढूँढना। उसके पश्चात् अजना नदी को पार करना। अंजना नदी के उस पार भोगवती नामक नगर है, जो मणियो से पूर्ण तथा फणियो से रक्षित है। तुम अवश्य उस नगर में प्रवेश करके वहाँ सीता का अन्वेषण करना। वहाँ से चलकर तुम वृषभाद्रि पर जाना। उस पर्वत पर गधर्व, अप्सराएँ तथा सुर रहते हैं। वहाँ भी तुम सीताजी को ढूँढना और बिना विचलित हुए वैतरणी पार करके वैवस्वत नगर में चले जाना। वहाँ यम की अनुमति प्राप्त करके समस्त पितृ-लोक में सीताजी की खोज करना और उनका समाचार जानकर एक महीने के भीतर अवश्य लौट आना। वैवस्वत नगर के उस पार का प्रदेश अधकारावृत है। वहाँ देवता भी नही जा सकते।

१५. हनुमान् को मुद्रिका देना

तब वे सब कपिश्रेष्ठ, आनद के समुद्र में गोते लगाते हुए, सूर्य के तेज से भी अधिक दीप्तिमान् राम-भूपति को अपनी शक्ति का परिचय देते हुए कहने लगे—"हे राजन्, किसी भी प्रकार से क्यो न हो, हम जानकी का पता लगाये बिना वापस नही लौटेंगे। तब राम, भावी कार्यो का निश्चय करते हुए बड़ी कृपापूर्ण दृष्टि से हनुमान् की ओर देखकर तथा उन्हें अपने निकट बुलाकर कहा—हे पवनसुत, तुम मेरे निकट आओ। तुम

अवश्य ही जानकी को देख सकोगे । हे अनघ, तुम्हारे द्वारा कार्य की सिद्धि होगी । तुम कार्य करने की शक्ति रखते हो । तुम्हारा बाहुबल भी वैसा है । यह मेरी मुद्रिका लो । इसे सीता को देना और उस रमणी के चित्त का दुःख दूर करना । सीता से हमारे कुशल-समाचार कहना और उसका कुशल सुनाने के लिए तुम शीघ्र यहाँ लौट आना ।' इस प्रकार कहकर राम ने अगूठी हनुमान् को दी, तो उसने उसे अपने सिर पर इस प्रकार रख लिया, मानो उदयाचल ने अपने शिखर पर सूर्य को धारण कर लिया हो ।

तब हनुमान् अत्यधिक हर्ष से उछल पडा और हाथ जोडकर बोला—'हे सूर्य-कुल के अधीश्वर, चाहे जितनी भी दूर जाना पडे, मै अवश्य जाकर सीताजी का पता लगाकर आऊँगा । आवश्यकता हुई तो सूर्य तथा चद्र को भी रोककर पृथ्वी, समुद्र तथा आकाश में भी प्रवेश करके सीता की खोज करूँगा । रावण के निवास में इस प्रकार प्रविष्ट होऊँगा कि मेरी अनुपम शक्ति की सब लोग प्रशसा करेंगे । अब मैं जाता हूँ ।' ऐसा कहकर वायु-पुत्र ने अगद आदि के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान किया ।

उसके पश्चात् वानरेश्वर ने सुषेण से कहा—'तुम एक लाख वानरो को साथ लेकर सौराष्ट्र में जाकर वहाँ सीताजी का अन्वेषण करो । वहाँ से निकलकर धैर्य के साथ बाह्लीक देश में प्रवेश करो और वहाँ ढूंढने के पश्चात् श्रीसपन्न सिंधु, सौवीर, तथा कैकय देश में जाकर देखो । तत्पश्चात् अच्छी तरह पुन्नाग वन में ढूँढो और पश्चिमी सागर में ढूँढो । तदनतर ललित नारिकेल वनो में देखो और बिना क्लान्त हुए वज्राद्रि पर पहुँच जाओ । वहाँ से निकलकर पारियात्रक (पर्वत के) वन में पहुँचो और वहाँ रहनेवाले गधर्वों का परिचय प्राप्त करके सीताजी का अन्वेषण करो । उसके पश्चात् तुम उस चक्रवन्त पर्वत पर चले जाओ, जहाँ विष्णु ने हयग्रीव तथा पचजन्य नामक राक्षसो का वध करके शख तथा चक्र प्राप्त किये थे । वहाँ से तुम मेघाद्रि पर चले जाना और वहाँ पर स्थित साठ कचनाद्रियो में सीताजी को ढूँढना । फिर जिस स्थान पर सूर्य अस्त होता है, उस अस्ताद्रि में जाकर सौवर्ण नामक पर्वत पर ढूँढो और फिर वरुण की राजधानी में देखो । तदनतर वहाँ पर रहनेवाले मेरु सावर्णि नामक मुनि के दर्शन करके एक महीने के अदर सीताजी का समाचार लेकर वापस आओ । उसके बाद की पृथ्वी सूर्य-रहित तथा सीमाहीन होने के कारण, मै उसके सबध में कुछ नही जानता ।' इस आदेश को मानकर सुषेण पश्चिम की ओर चल पड़ा ।

फिर सूर्य-पुत्र ने शतवली को बुलाकर कहा—"तुम एक लाख सैनिको को लेकर पुलिंदो के देश में प्रवेश कर वहाँ सीताजी को ढूँढो । फिर शौरसेन प्रदेश में देखो और वहाँ से समस्त भरत भूमि में ढूँढते हुए यवनराजा के देशो में जाओ । वहाँ ढूढकर, काभोज तथा कोकण प्रदेशो को देखते हुए हेमत पर्वत पर चले जाओ । वहाँ के सोमाश्रमो में ढूँढकर, श्रीसमन्वित कालाख्य शिखर पर पहुँच जाओ । वहाँ देखने के पश्चात् तुम सुदर्शन नामक पर्वत पर ढूँढो और फिर कनकाद्रि पर पहुँच जाओ । वहाँ से कैलास पर्वत पर चले जाओ और कौबेर वन में देखो । फिर कुबेर के नगर में तथा उसके सरोवर के तट पर देखो । उसके पश्चात् कुबेर की आज्ञा प्राप्त करके क्रौचाद्रि में जाकर सीताजी का अन्वेषण करो ।

वहाँ से मैनाक पर्वत पर पहुँच जाओ और वहाँ वैखानस नामक सरोवर में ढूँढो। उस सरोवर के पार जो शैलोदया नामक नदी बहती है, उसे लाँघकर उत्तर कुरुभूमि में अन्वेषण करो। उन प्रदेशो में गधर्व तथा अप्सराएँ अपनी इच्छा स विचरण करती रहती है। उन प्रदेशो में तुम सीताजी का अन्वेषण करो और वहाँ न ठहरकर उत्तर समुद्र को पार करके सोमाद्रि पर पहुँच जाओ। वहाँ ब्रह्मा तथा शिव अविचल समाधि में रहते है। तब तुम वहाँ से लौटकर एक महीने में समाचार ले आओ।' इस आदेश के अनुसार शतवली रामचन्द्र की आज्ञा लेकर उत्तर दिशा की ओर चल पडा।

उसके पश्चात् रघुराम ने सूर्य-पुत्र को देखकर कहा—'हे सुग्रीव, तुमने इन सब प्रदेशो को कब देखा ?' तब सुग्रीव ने कहा—'हे देव, जिस दिन मै वालि से भयभीत होकर भागा था और वालि मेरा पीछा करने लगा था, उस दिन मैने पृथ्वी के चारो ओर चक्कर काटकर इन सब प्रदेशो को देखा था।'

इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। राम की आज्ञा के अनुसार पूर्व तथा पश्चिम दिशाओ में गये हुए वानर सीता का अन्वेषण करते हुए पृथ्वी के उस भाग तक गये, जहाँ तक सूर्य की किरणें पहुँचती है और वहाँ से लौटकर राम से निवेदन किया कि हम कही भी सीताजी का पता नही लगा सके। तब राम तथा सुग्रीव बडी उत्कठा से प्रतीक्षा करते हुए सोचते रहे कि न जाने अगद आदि वानर-वीर क्या समाचार लायेंगे।

अगद आदि वानर-वीर एक दूसरे से स्पर्धा करते हुए बडे हर्ष के साथ अपनी शक्ति तथा प्रताप का प्रदर्शन करते हुए, सुग्रीव के आदेश का अक्षरश पालन करते हुए, पहले विध्याचल पर गये। वहाँ की गुफाओ तथा वनो में उन्होने सीताजी को ढूँढा। वहाँ से वे दक्षिण की ओर चले। मार्ग में पडनेवाली पुष्प-लता-समूहो में, पेडो में, नदियो में पहाड़ो में, तथा नगरो में सीताजी को ढूँढते हुए, वे आगे बढते जाते थे। किन्तु कही भी सीता का पता न लगने से वे बहुत चिंतित थे। वे उस वन में से होकर जाने लगे, जो महामुनि कडु की शापाग्नि से निर्जन, छायाहीन तथा जल-रहित हो गया था। अपने दस वर्ष की अवस्था के पुत्र की मृत्यु के तीव्र दुख से अभिभूत होकर कडु मुनि ने अपने शाप से उस वन को ऐसा बना दिया था।

१६. महर्षि कंडु के आश्रम में

वानर अत्यत क्लात हो, पानी ढूँढते हुए उस वन में फिर रहे थे। तब एक राक्षस ने उनका मार्ग रोककर भयकर गर्जन करके कहा—'मेरे हाथो मरे बिना अब तुम कहाँ जाओगे ? तब अगद ने क्रुद्ध होकर उस पर ऐसा प्रहार किया कि वह राक्षस मुँह से रक्त उगलते हुए पृथ्वी पर गिर पडा। तब सब वानर थककर एक महान् वृक्ष की छाया में बैठ गये और प्यास से व्याकुल होते हुए सोचने लगे कि यहाँ जल कहाँ मिलेगा ? वहाँ उन्होने एक गुफा के द्वार से कुछ जल-पक्षियो को उडते हुए देखा और निश्चय किया कि अवश्य वहाँ जल मिल सकता है। यो सोचकर उन्होने उस गुफा में प्रवेश किया। गुफा में अधकार व्याप्त रहने के कारण उन्हें मार्ग न दीखता था। फिर भी धैर्य के साथ, एक दूसरे का आधार लेते हुए वे आगे बढते गये। कुछ दूर जाने पर मार्ग का अधकार

दूर हो गया और वहाँ उन्होंने ससार-भर में अद्भुत तथा अनुपम नगर देखा । वे खड़े होकर उस नगर के स्वर्ण-गोपुरो, स्वर्ण-सौधो, स्वर्ण-अट्टालिकाओ, स्वर्ण-दुर्गो, स्वर्ण-वृक्षो तथा स्वर्ण के पुष्प-लता-समूहो के देखकर आश्चर्यचकित हो गये । वे सोचने लगे—'यह कितने आश्चर्य की बात है । ऐसे ऐश्वर्य से परिपूर्ण यह नगर जन-रहित क्यो है ? यह नगर ऐसा क्यो बन गया ? उनकी समझ में नही आता था कि उस नगर से बाहर कैसे निकला जाय । चिंता में पडे हुए वे कुछ देर तक वही भटकते रहे । एक दिन उन्होंने उस नगर के मध्य में स्थित सब सौधो में श्रेष्ठ, एक गगनचुंबी सौध को देखा । तुरत सभी वानर उस सौध पर चढ गये और वहाँ मृगछाला पहनी हुई, तरुण इदु की काति के समान दीप्त एक पुण्यात्मा स्त्री को तपस्या में निरत देखा । हनुमान् ने उसे प्रणाम किया और अकलक मन से कहा—'हे साध्वी, तुम कौन हो ? अकेली यहाँ किस कारण से तपस्या में लीन रहती हो ? यह पुण्य नगर किस महात्मा का है ? हमने तो ऐसा अनोखा नगर कही भी नही देखा ।'

१७. स्वयंप्रभा का सत्कार

तब वह कोमलागी, हनुमान् को देखकर अपना पूर्व वृत्तात यो कहने लगी—'पूर्व-काल में मय नामक राक्षस राजा ने ब्रह्मा की बडी तपस्या की और वास्तु-कला में अद्भुत कुशलता प्राप्त की । तत्पश्चात् उसने यह नगर बनाया और हेमा नामक एक दिव्य रमणी के साथ बहुत वर्ष तक अबाध गति से यहाँ जीवन व्यतीत करता रहा । अमरवल्लभ (इन्द्र) वज्रायुध से उस राक्षस राजा का वध करके उसकी स्त्री को उठा ले गया । उसी चचल नेत्रवाली (देव-स्त्री) की मै सखी हूँ । मेरे पति महान् आत्मा सौवर्णी है । मेरा नाम स्वयप्रभा है और उस देव-स्त्री की आज्ञा से तप में निरत होकर मै यहाँ रहती हूँ ।' इतना कहकर उसने कद-मूल-फल दकर सब वानरो का सत्कार किया, जल देकर उनकी प्यास बुझाई और फिर पूछने लगी—'हे अनघ, तुम कौन हो और यहाँ क्यो आये हो ? यहाँ पहुँचना देवताओ के लिए भी कठिन है । तुम लोग यहाँ किस प्रकार आये ?'

तब हनुमान् ने उस स्त्री से कहा—'हे साध्वी, अपने पिता की आज्ञा से जब राम मुनि-वेश धारण कर दण्डक-वन में निवास करते थे, तब उनकी पत्नी कमलाक्षी सीता को (रावण) चुरा ले गया । राम की आज्ञा से हम उनके (सीता के) अन्वेषण में निकले है । मार्ग में प्यास के कारण अत्यत क्लात हो हमने एक गुफा में प्रवेश किया और उस गुफा के अधकार से विचलित न होकर हम आगे बढते गये और सयोग से तुम्हारे इस आश्रम में आ पहुँचे । यहाँ से निकलकर जाने का मार्ग न जानकर विवश हो हम कई दिनो से यही भटक रहे है ।'

तब उसने बडी भक्ति से उन्हें देखकर कहा—'तुम लोग राम के कार्य के लिए आये हो । तुम पुण्यात्मा हो । तुम लोग जो चाहो, सो मुझ से माँगो ।' तब उन्होंने कहा—'तुम हमें यहाँ से बाहर जाने का मार्ग बताओ । हम शीघ्र यहाँ से सीता के अन्वेषण में जाना चाहते हैं ।' तब उस स्त्री ने अत्यत आनद से कहा—'तुम सब अपनी आँखें बद कर लो ।' उसके पश्चात् वह अपनी तपस्या की शक्ति से सहज ही एक क्षण-मात्र में उन्हें

गुफा के बाहर पहुँचा दिया और स्वयं फिर उस गुफा में चली गई। सभी वानर-पुगव उस स्त्री की प्रशसा करते हुए आगे बढ़े। वे श्रेष्ठ वीर-वानर, मार्ग में पड़नेवाले एक विशाल सरोवर में जल पीकर फिर महेन्द्राद्रि पर पहुँचे।

१८. वानरों की व्याकुलता

तब अगद इस प्रकार दुख करने लगा—'सूर्य-पुत्र की दी हुई अवधि समाप्त हो गई', किन्तु अबतक सूर्यवशी (राम) की पत्नी का पता हम नही लगा सके। आज्ञा-पालन को विशेष महत्त्व देनेवाले सुग्रीव, यह कहकर हमारा वध कर देंगे कि इन्होने मेरी आज्ञा का उल्लघन किया। इसलिए कपिराज के दर्शनार्थ हमारा जाना उचित नही है। हम जिस गुफा से अभी बाहर आये, उसी में प्रवेश करके, वही सुख से रहेंगे। वहाँ का मार्ग अष्ट-दिक्पालो के लिए भी अभेद्य है। वहाँ के वन विविध प्रकार के पके हुए फलो से भरे हुए है। वहाँ कोई भी प्रवेश नही कर पायेगा।' कुछ वानरो ने अगद की बातो का समर्थन किया।

तब मारुति ने क्रुद्ध होकर कहा—'तुम बडे बुद्धिमान् हो! काका की आज्ञा से बडे वीर के समान राम का कार्य करने चले। अब चचल-चित्त हो कपियो के साथ उस गुफा में प्रवेश करने का जो प्रस्ताव तुम करते हो, क्या यह सूर्य-पुत्र की आज्ञा का तिरस्कार नही हुआ? मै, नील, तार और नल—चारो इसके लिए किसी भी प्रकार सहमत नही हो सकते। अन्य वानर भी अपने सगे-सबधियो को छोड़कर तुम्हारी सेवा में नही रह सकेंगे। इतना ही नही, पूर्वकाल में इन्द्र ने अपने वज्र के आघात से उस गुफा का निर्माण किया था। लक्ष्मण के पास उनके वज्र की समता करनेवाले पैने अस्त्रो की कमी नही है। क्या वे बात-की-बात में तुम्हें और तुम्हारे सैनिक-बल का सर्वनाश नही कर देंगे? इसलिए यह दुर्बुद्धि छोड दो। हम सूर्य-पुत्र की सेवा में पहुँचकर कहेंगे कि हम सीता को नही देख सके। वे तुम्हें और हमें अवश्य ही क्षमा करेंगे। सौजन्य के कारण मुझ पर, और तुम्हारी माता पर अनुरक्त होने के कारण तुम पर, वे क्रोध नही करेंगे। तुम उनके पुत्र हो, इसलिए वे तुमको ही राज्य देंगे।'

तब वालि-पुत्र ने कहा—'मेरे काका पितृ-तुल्य वालि का वध कराके, उनकी स्त्री के साथ विवाह करके, उपकार करनेवाले राम के कार्य को भूलकर, भोग-विलास में निमग्न रहे। लक्ष्मण के क्रोध करने पर ही तो वे राम के पास आये। क्या, तुम उनका नीच व्यवहार नही जानते? ऐसे कृतघ्न तथा कामांध का विश्वास कैसे किया जाय? इतना ही क्यो? श्रीराम का कार्य किये बिना वहाँ पहुँचकर उस रवि-पुत्र के हाथों मरने की अपेक्षा यही मर जाना अच्छा है। अब प्रायोपवेश के लिए तत्पर हो जाओ।'

ऐसा कहकर अगद तथा अन्य कपि दर्भ-शय्या पर लेट गये। अपना प्रयत्न विफल होने से वे मन-ही-मन दुखी होने लगे। प्रायोपवेश करते रहने से तथा मानसिक पीडा से परितप्त होते रहने से वे बहुत ही निर्बल हो गये। कभी वे उठकर बैठते, कभी लेट जाते, कभी चारो दिशाओ में शून्य दृष्टियो से देखते, कभी अपने पुत्र तथा सगे-सबधियो का स्मरण करते और कहते—'हे भगवान्, आप इस प्रकार हमारे प्राण क्यो लेना चाहते है?

फिर सभी वानर अलग-अलग समूहों में एकत्र होकर आपस में कहते—'हाय ! सूर्यकुलसंभव (राम) वन में आये ही क्यों ? अपनी पत्नी को राक्षसों के हाथ में खोया ही क्यों ? उस राक्षस ने जटायु का वध ही क्यों किया ? राम ने उसको देखा ही क्यों? उस जटायु ने सीता का समाचार उनसे कहा ही क्यों ? राम पंपा सरोवर के तट पर आये ही क्यों ? वहाँ उन्होंने सुग्रीव से भेंट ही क्यों की ? सुग्रीव उनके मित्र ही क्यों बने ? राजकुमार ने वालि का वध ही क्यों किया ? इतनी बड़ी कपि-सेना एकत्र ही क्यों हुई ? सूर्य-पुत्र ने हमें यहाँ भेजा ही क्यों ? हमारी ऐसी दुर्गति ही क्यों हुई ? हमारे प्राण व्यर्थ क्यों जायें ? हाय, कैकेयी के वर ने सूर्यवंश के साथ ही हमारे वंश का भी सर्वनाश कर दिया ।' इस प्रकार सभी वानर विलाप करने लगे ।

१९. संपाति से भेंट

तब एक विशालकाय, यौवन तथा पंखों से हीन एवं अत्यंत वृद्ध संपाति नामक पक्षिराज उस पहाड़ की गुफा से बाहर निकला और मृत्यु की इच्छा करते हुए धरती पर पड़े हुए वानर-समूह को देखकर धीरे-धीरे उनके समीप आया । वह सोचने लगा कि भगवान् ने बड़ी कृपा करके मुझे आहार भेजा है । उसे देखकर सभी चपल वानर अपने निश्चय पर पश्चात्ताप करने लगे । तब अंगद ने हनुमान् से कहा—'यह पक्षी नहीं है । स्वयं यम निर्दयी होकर हमारे प्राण लेने के लिए इस रूप में आया है । उस दिन जटायु ने, राम की पत्नी को चुराकर ले जानेवाले रावण के साथ युद्ध करके उसके प्रखर खड्ग के प्रहार से मृत्यु प्राप्त की और फलतः सहज ही स्वर्ग का लाभ कर लिया । अब राम के कार्य के लिए आये हुए हम भी इस महापक्षी के हाथों में अपने प्राण खो दें, तो अच्छा ही होगा ।' उनकी बातों को सुनते ही अरुण-पुत्र (संपाति) का कंठ शोक से गद्गद हो गया । वह उन कपि-वीरों के निकट जाकर पूछने लगा—'हे वानरो, तुम कहाँ से आये हो ? वह जटायु मेरा प्रिय अनुज है । हम दोनों अरुण के पुत्र हैं । वह पैने तथा भयंकर नखवाला, गुफा के समान मुखवाला, दशरथ का मित्र, सतत सुखी मृत्यु को कैसे प्राप्त हुआ ?' तब वालि-पुत्र ने उसे सारा समाचार कह सुनाया । उस समाचार को सुनकर संपाति अत्यधिक शोक से संतप्त हुआ । दुःखी होनेवाले उस पक्षी को वानरों ने उठाकर समीप ही रहनेवाले समुद्र के पास पहुँचा दिया, तो उसने समुद्र में स्नान किया और उसके पश्चात् बड़े दुःख से पीड़ित होते हुए अपनी पूर्व-कथा उन वानरों से कहने लगा ।

उसने कहा—'मैं और जटायु, हम दोनों किसी समय कैलास पर्वत पर एक साथ रहते थे । अपने यौवन तथा शक्ति के गर्व से प्रेरित होकर एक दिन प्रभात के समय हम दोनों साथ-साथ आकाश में उड़ते-उड़ते बहुत दूर चले गये । मध्याह्न के समय हम सूर्य-मंडल के समीप पहुँचे । जटायु सूर्य की किरणों के लगने से जलने लगा । तब मैंने उसे अपने पंखों के नीचे छिपा लिया । तब मेरे पंख भी जल गये । पंखों के जल जाने से, अपनी सारी शक्ति खोकर, मैं इस आश्रम-भूमि में गिर पड़ा । पता नहीं, जटायु कहाँ चला गया । तुम लोगों ने यह समाचार सुनकर भी मैं आज चुप बैठा हुआ हूँ । यदि पहले की तरह मेरे पंख होते, तो मैं अपनी शक्ति से अपने भाई का प्रतिशोध लेता और राम

के पास पहुँचकर उनसे अपने पौरुष की प्रशंसा प्राप्त करता । लेकिन अब उन बातों से क्या प्रयोजन है ?'

तब जाबवान् ने हनुमान् तथा अंगद को अत्यंत हर्षित करते हुए उस पक्षी से कहा—'ऐसे शक्तिशाली जटायु के अग्रज तुम्हारा इस संसार में कौन सामना कर सकता है ? कोई ऐसा स्थान नहीं होगा, जिसे तुमने नहीं देखा हो । तुम कृपया हमें बताओ कि रावण ने रघुराम की पत्नी को कहाँ छिपा रखा है ?'

२०. सीता का पता बताना

संपाति का सदेह दूर हुआ । उसने कहा—'मेरा पुत्र सुपार्श्व, दुर्दम पराक्रमी तथा महान् पितृभक्त है । पखों के जलने से असमर्थ हो यहाँ पर पड़े हुए मुझे वह प्रति दिन बड़ी भक्ति के साथ भोजन लाकर दिया करता है । एक दिन की बात है कि वह बहुत विलब से, बिना भोजन लाये ही यहाँ आया । जब मैंने उससे विलब का कारण पूछा तब उसने उत्तर दिया—'पिताजी, आपके लिए आहार प्राप्त करने के उद्देश्य से मैं हेमेन्द्र गिरि के समीप समुद्र-तट पर बैठा था । उसी समय काजल के पर्वत के सदृश एक राक्षस, सूर्य-प्रभा के समान एक रमणी को साथ लिये हुए आया और मुझसे मीठी-मीठी बातें करने लगा । मेरे मार्ग देने पर वह शीघ्र वहाँ से चला गया । तब वहाँ रहनेवाले मुनि मुझे देखकर हर्ष से कहने लगे कि आज तुम मृत्यु के मुख से बच गये । वह (काला पुरुष) यम रूपी रावण था । श्रीराम की पत्नी को चुराकर वह लंका को ले जा रहा था । इसी कारण से मुझे यहाँ आने में विलंब हुआ है । अब इसमें कोई सदेह नहीं है कि जानकी, बादलों में घिरी हुई चद्रिका की तरह, राक्षस-रमणियों से परिवृत हो लका में रहती है । मेरी दृष्टि इस पृथ्वी पर शत योजन तक देख सकती है । सभी पक्षियों की अपेक्षा मेरी दृष्टि तथा गमन-शक्ति अधिक है ।'

संपाति ने आगे कहा—'जब मेरे दोनों पंख जल गये और मैं मृत्यु से बचकर, मूर्च्छित होकर यहाँ गिर पड़ा, तब कई वर्ष तक प्यास से व्याकुल हो, कराहते हुए यहाँ पड़ा रहा । एक दिन मेरे सौभाग्य से सकल जनों का ताप हरण करनेवाले, साक्षात् निशाकर (चद्रमा) के समान गुणवाले निशाकर (नामक मुनि) को मैंने देखा । सूर्य-तेज से दग्ध अपने पखों का वृत्तात मैंने उनसे कहा । वे मुनि-शिरोमणि पहले से ही मुझे जानते थे । इसलिए दयार्द्र होकर बोले—'आश्रितवत्सल, परात्पर विष्णु महाराज दशरथ के यहाँ जन्म लेंगे । वह सूर्य-वंश-तिलक वनवास के लिए भयंकर वनों में आयेंगे, उनकी पत्नी को रावण चुराकर ले जायगा । उस रमणी को अमृतांशु (चन्द्र) अमृतान्न देंगे, जिससे वह क्षुधा तथा तृषा से मुक्त होकर रहेगी । तब राम शीघ्र आकर इन्द्र-पुत्र (वालि) का सहार करके सूर्य-पुत्र की रक्षा करेंगे और सीता के अन्वेषणार्थ वानरों को चारों दिशाओं में भेजेंगे । जिस दिन तुम राम के उन भटों को यह वृत्तात सुनाओगे, उसी दिन तुम्हारे पख तुम्हें मिल जायेंगे । उनके आदेशानुसार मैंने तुम लोगों से यह वृत्तात सुनाया । लो, देखो, मुझे अपने पख भी मिल गये ।' इतना कहकर वह एकदम उछलकर आकाश में उड़ा और कहने लगा—'देखा मैंने सीता को । लंका के समीप एक वन में मैंने सीता को देखा ।

देख लो, यहाँ से शतयोजन की दूरी पर, लका में, वह पवित्र साध्वी बैठी है। तुम प्रायोपवेश छोडो। अब उठो। पौलस्त्यपति (रावण) की लका में जाकर सीता के दर्शन करो।'

इतना कहकर वह वानरो को लका का मार्ग बताकर बडे हर्ष से महेन्द्र गिरि पर चला गया। तब सभी वानर-वीर प्रसन्नचित्त हो, शीघ्र गति से महासागर के पास पहुँचे। उस सागर की शब्दमयी तरगे, प्रचड वायु के आघात से, अत्यधिक उद्धत होकर विहार कर रही थी। उनसे उत्पन्न झाग दिगतो तक फैल गया था और ऐसा लग रहा था, मानो वह समुद्र का गडूष (कुल्ली) हो, उस समुद्र में भयकर मगर अपनी पूँछ-रूपी तलवारो से बडे आवेग से लड रहे थे। ऐसे समुद्र के निकट पहुँचकर सभी वानर (मन-ही-मन) अत्यत व्याकुल हो, थोडी देर तक निश्चेष्ट बैठे रहे और चिन्ता करने लगे कि इस समुद्र को कौन पार कर सकता है? ऐसी शक्ति किसमें है?'

२१. वानरों का अपनी शक्ति का परिचय देना

अगद ने वह रात उस समुद्र-तट पर बिताई और दूसरे दिन अलग-अलग सभी वानरो को सबोधित करके कहा—'यदि तुम वीर वानर अपने पौरुष को खोकर, सौ योजन की जलराशि को पार करने के लिए इतना झिझकते हो, तो अपयश-रूपी विशाल समुद्र को किस प्रकार पार कर सकोगे? तुम सब अलग-अलग अपनी-अपनी शक्ति का परिचय मुझे दो।'

तब व्याकुल-चित्त सभी वानर सावधान हो गये और अपनी शक्ति का विचार कर अपने-अपने बल का परिचय देने लगे। गज ने कहा—'मैं दस योजन लाँघ सकता हूँ।' गवाक्ष ने कहा—'मैं बीस योजन बिना किसी कठिनाई के लाँघ सकता हूँ।' शरभ ने कहा—'अपनी शक्ति के प्रताप से मैं चालीस योजन पार कर सकता हूँ।' गधमादन ने अपना पराक्रम प्रकट करते हुए कहा—'मैं पचास योजन की दूरी लाँघ सकता हूँ।' मैन्द ने कहा—'मैं अपनी शक्ति को हानि पहुँचाये बिना साठ योजन पार कर सकता हूँ। द्विविद ने कहा—'बिना विशेष प्रयत्न के मैं सत्तर योजन की दूरी लाँघकर जा सकता हूँ।' तार ने अपनी शक्ति को प्रकट करते हुए कहा—'मैं अस्सी योजन लाँघ सकता हूँ।' इस प्रकार सभी वानर निशक होकर अपनी-अपनी शक्ति का सही-सही परिचय देने लगे।

तब अत्यत वृद्ध तथा समस्त ससार में पराक्रमी, भल्लूकनाथ (जाबवान्) ने कहा—"यदि मैं अपने लडकपन (या यौवन) की बात कहूँ, तो वह उपहास का विषय होगा, फिर भी कहता हूँ, सुनो। पहले जब अमृत के लिए सुर तथा दानवो ने युद्ध किया था, तब मैंने सुरो की सहायता की थी और बडे प्रेम से उनका दिया हुआ अमृत पान किया था। मैं सप्त समुद्रो को पार करने की क्षमता रखता हूँ। उदयाचल पर खडे होकर अपना दूसरा चरण अस्ताचल पर रख सकता हूँ। सभी लोकों में मेरी समता कर सकनेवाला कोई नही है। जब त्रिविक्रम ने महाबली बलि महाराज का दर्प तोडा था, उस दिन मैंने समग्र पृथ्वी की इक्कीस बार परिक्रमा की और त्रिविक्रम की प्रार्थना की। उस समय मेरी टाँग टूट गई, मेरा दर्प तथा शक्ति नष्ट हो गई। ऊपर से वृद्धावस्था ने भी मुझे आ घेरा।

अब मैं बहुत वृद्ध हो गया हूँ। मेरी अवस्था नब्बे वर्ष की है। अब मैं ऐसा कार्य करने योग्य नही रहा। तब नील ने कहा—'मैं सौ योजन की जलधि को पार कर सकता हूँ'। मारुति अपनी शक्ति का परिचय दिये बिना चुपचाप बैठा रहा। तब अंगद ने कहा—'मैं अत्यधिक प्रयत्न से शत योजन पार कर सकता हूँ, किन्तु कदाचित् लौटकर आ नही सकता।'

तब जाबवान् ने अंगद से कहा—'हे अनघ, तुम हमारे नेता हो। तुम इस समुद्र को पार भी कर सकते हो और लौट भी सकते हो। तुम सुग्रीव के समान इस वानर-सेना के राजा हो। अत तुम्हारे लिए उचित नही है कि तुम स्वयं से काम लो। इतनी दीनता क्यो व्यक्त करते हो? राम के कार्य में सहायता करनेवाले, रवि-पुत्र के मंत्री, इस वानर-समूह के लिए प्राण-सम, पवन-कुमार के रहते, भला तुम्हारे लिए कौन-सा कार्य असाध्य है? तुम निश्चिन्त रहो।"

२२. समुद्र लाँघने के लिए हनुमान् को प्रेरित करना

इसके पश्चात् जाबवान् ने हनुमान् को बुलाकर बड़े स्नेह से कहा—"हे पवन-सुत, यह क्या उचित है कि अपना काम हम पर छोड़कर स्वयं चुपचाप बैठे रहो? शक्ति लावण्य-विलास से परिपूर्ण अप्सरा स्त्रियो में श्रेष्ठ 'पुंजिक-स्थल' नाम से विख्यात तुम्हारी माता ने अग्निदेव के शाप से अजना के नाम से वानर-युवती होकर जन्म लिया और इस पृथ्वी पर केसरी की पत्नी होकर रही। एक दिन जब वह वन में विचरण कर रही थी, तब वायुदेव उस युवती के मद गमन, सुडौल जघा, भारी नितब, चद्र-मुख, सुदर अधर, क्षीण कटि, उन्नत कुच और विशाल आँखें देखकर उस पर मोहित हो गया। मन्मथ के बाणो से आहत होकर उसने अजना के वस्त्रो को उड़ा दिया और उसके समीप पहुँचकर उसका आलिंगन किया। तब अजना ने क्रुद्ध होकर कहा—'किस दुर्मति ने मेरा शील बिगाड़ने का यह साहस किया है?' तब वायुदेव ने कहा—'हे सुदरी, क्रुद्ध मत होओ। मै पवन हूँ। हे कमलाक्षी, मैंने तुम्हारे साथ केवल हृदय-सगम किया है, जिसमे तुम्हारा शील खडित न हो। इससे तुम्हें ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा, जो बल, तेज, विक्रम, पौरुष तथा धैर्य से सपन्न होगा।' इतना कहकर वायुदेव चले गये। उस नारी-रत्न ने वायुदेव की विमल कृपा से अत्यन्त हर्ष से तुम्हें जन्म दिया। तुम इस पृथ्वी पर वायु के समान शक्तिशाली हो। यही नही, किसी भी आयुध से तुम्हारी मृत्यु नही हो सकती। सभी लोको में तुम्हारी समता करनेवाला कोई नही है। मै तुम्हारी शक्ति से भली भाँति परिचित हूँ। अत, तुम समुद्र को पार करो, सीता के दर्शन करो और यत्नपूर्वक राम का कार्य सपन्न करके, कपियो के, दशरथ-पुत्रो के तथा वानर-राजा के प्राणो की रक्षा करो। हे जगत्प्राण-नदन, तुम इस प्रकार उत्तम लोको की गति प्राप्त करो।"

तब हनुमान् ने कहा—"ऐसा ही हो। मै तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगा। हे वानरो, आज तुम मेरी शक्ति देखो। मैं समस्त लोक के हितार्थ समुद्र को पार करूँगा। भले ही देवता भी मुझे रोकें, मै उन्हें भी जीत लूँगा। (आवश्यकता पड़े तो) समस्त लोको का नाश भी कर दूँगा। सब को आश्चर्यचकित करनेवाली अपनी शक्ति से

लका में प्रविष्ट होऊँगा । अथक परिश्रम करके ढूँढूँगा और भूमि-सुता को देखकर ही वापस आऊँगा । अथवा उस लका को भी उखाडकर यहाँ ले आऊँगा तथा सीता को अवश्य ही राम के चरणो में पहुँचा दूँगा । नही तो सभी समुद्रो का मथन करूँगा, उद्धत गति से अमराद्रि को नष्ट-भ्रष्ट करूँगा, पृथ्वी को चूर-चूर कर दूँगा, मृत्यु का भी सहार करूँगा, समस्त द्वीपो को छान डालूँगा, देवेन्द्र को त्रास दूँगा, सभी दुष्ट राक्षसो का सहार करूँगा, और समस्त ससार में अधकार फैला दूँगा, किन्तु विना कार्य सपन्न किये तुम्हारे निकट नही आऊँगा ।'

२३. समुद्र पार करना--मैनाक से भेंट

इतना कहकर हनुमान् महेन्द्रगिरि पर चढ गया और त्रिविक्रम विष्णु के समान ऐसा अद्वितीय शरीर धारण किया, मानो प्रलयकालीन काल सभी समुद्रो के साथ सारी सृष्टि को निगलने के लिए प्रस्तुत हुआ हो। उसके पश्चात् उसने अगद आदि वानरो की अनुमति ली। मन-ही-मन अपने पिता वायुदेव का स्मरण किया, श्रीराम के चरण-कमलो को अपने हृदय में प्रतिष्ठित किया । दृढता के साथ अपने पैरो को पहाड पर जमाया, कठ ऊपर को उठाया, देह को झुकाया और भौहें उठाकर विशाल जल-राशि को चारो ओर से देखा । उसके उपरान्त उसने रावण की नगरी पर दृष्टि डाली, अपना लागूल जोर से घुमाया, दोनो कान खड़े किये, शिलाओ पर अपने हाथ टेके और आकाश की ओर बडे वेग से ऐसे उछला, जैसे पूर्वकाल में अमृत को छीनने के उद्देश्य से गरुड पृथ्वी से आकाश की ओर उडा था । उस वेग के प्रभाव से पर्वत-श्रृग चूर-चूर हो गये, मानो रावण ने अवतक जो अत्यधिक महत्त्व और यश प्राप्त किया था, वे सब चूर-चूर हो गये हो । (उस पर्वत पर के) वृक्ष उसके वेग के कारण उसके साथ ही आकाश की ओर उड चले और खड-खड होकर उस सागर में ऐसे गिरे, मानो पवन-पुत्र ने स्वय ही भावी सेतु का शकु-स्थापन किया हो ।

उस समय उत्पन्न प्रचड वायु के कारण वादल चारो ओर ऐसे भागे, मानो वे पवन-पुत्र के लका में आगमन की सूचना इद्र आदि देवताओ को देने के लिए जा रहे हो। समुद्र का सारा जल एक ओर हट गया और जल के भीतर पाताल-लोक ऐसा दीखने लगा, मानो समुद्र हनुमान् को यह दिखा रहा हो कि रावण ने मेरे जल में जानकी को नही छिपाया है । हनुमान् की स्वामिभक्ति, धैर्य, साहस, तेज, चातुर्य, और उदात्त शक्ति को देखकर इन्द्रादि देवता उनकी प्रशसा करने लगे ।

इस प्रकार जानेवाले हनुमान् को देखकर समुद्र मन-ही-मन सोचने लगा—'यह पुण्यात्मा, जगत् के कल्याण के लिए बहुत दूर जा रहा है । उसका श्रम दूर करने के निमित्त, मै मैनाक को भेजूँगा।' यो सोचकर उसने मैनाक को बुलाकर कहा—'अभी हनु-मान् यहाँ आया है । उचित रीति से उसके अतिथि-सत्कार की व्यवस्था करो ।'

शोभा-समन्वित, स्वर्ण-शिखरो से विलसित, स्वर्ग-सम सुदर वह मैनाक पर्वत तुरन्त अपने विशाल पखो को फैलाते हुए उडा और समुद्र के मध्य भाग से ऊपर आया और हनुमान् के सामने आ पहुँचा । हनुमान् ने अपने सामने उस विशाल पर्वत को देखकर

सोचा—'यह दैत्यों की माया है। यह कदाचित् मेरे कार्य में विघ्न डालना चाहता है। पर कोई चिंता की बात नहीं है। मैं अपनी शक्ति से इसका नाश करूँगा। यों सोचकर हनुमान् ने वज्र के समान कठोर अपने वक्षःस्थल से उस पर्वत को धक्का दिया। तुरत वह पर्वत, ववडर में फँसे हुए सूखे पत्ते की तरह शक्तिहीन होकर चक्कर खाने लगा। फिर वह मनुष्य का रूप धारण करके हनुमान् से बोला—'हे अनिलकुमार, मैं तुम्हारा शत्रु नहीं हूँ। समुद्र की आज्ञा से मैं तुम्हारे पास आया हूँ। उस महानुभाव ने तुम्हें आतिथ्य देने के निमित्त, मुझे तुम्हारे पास भेजा है। इसलिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ। प्राचीन काल में सभी पर्वतों के पख थे। अपने इन पखों के कारण जब वे गर्व करने लगे, तब इन्द्र क्रोध में आकर वज्रायुध से सभी पर्वतों के पख एक-एक करके काटने लगा। तब यह देखकर तुम्हारे पिता पवन सहज ही मुझे इस लवण-समुद्र में ले आये और मेरे पखों की तथा मेरी रक्षा की। इसलिए मैं तुम्हारा अपना ही व्यक्ति हूँ, पराया नहीं हूँ। मैं पर्वतश्रेष्ठ शीताचल का पुत्र हूँ। मेरा नाम मैनाक है। मेरे पेडों पर जो फल लगे हैं, उनको ग्रहण करके, अपनी क्षुधा तथा क्लान्ति दूर करो। हे पवन-पुत्र, उसके पश्चात् तुम लकापुर को जा सकते हो।' तब उस महावली हनुमान् ने कहा—'अब विश्राम करना उचित नहीं है। मैंने प्रतिज्ञा की है कि मैं समुद्र के मध्य में कहीं नहीं ठहरूँगा। अतः, हे पर्वतराज, मुझे यहाँ कहीं ठहरना नहीं चाहिए।' इस प्रकार कहकर उसने अपने करतल से उस पर्वत की मूर्धा का स्पर्श किया और कहा—'हे अनघ, तुम्हारी पूजा फलवती हुई। अब तुम जाओ।'

इस प्रकार कहकर शीघ्र गति से जानेवाले अनिलकुमार की शक्ति को देखकर देवता आश्चर्य तथा हर्ष से भर गये। देवेन्द्र ने भी मैनाक पर्वत को देखकर बड़े प्रेम से कहा—'श्रीराम के कार्य के लिए जानेवाले हनुमान् के प्रति तुमने उचित व्यवहार किया। अतः, मैं तुम्हें अभय-दान देता हूँ। तुम सुख से यहीं रहो।'

तब गधर्व, अमर तथा मुनियों ने हनुमान् की शक्ति की परीक्षा लेने का विचार करके सुरसा नामक नाग-माता को हनुमान् का मार्ग रोकने के लिए भेजा। तब वह एक राक्षसी का रूप धारण करके हनुमान् के मार्ग में आ खड़ी हुई और बोली—'इस समुद्र के ऊपर से होकर जानेवाले तुम्हें मैंने देखा, दैवयोग से अब मेरे प्राण बच गये, मैं बहुत भूखी हूँ। अतः, तुम अब मुझसे बचने की चेष्टा न करके, मेरे मुँह में प्रवेश करो। तब हनुमान् ने कहा—हे नारी, तुम मेरा मार्ग मत रोको। मैं राम का कार्य पूरा करके लौटते समय तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा। अब मैं जाता हूँ। मैं असत्य वचन नहीं कहता।'

तब वह स्त्री क्रुद्ध होकर हनुमान् का मार्ग रोककर खड़ी हो गई और बोली,—'मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगी; मैं अवश्य तुम्हारा वध करूँगी।' यों कहती हुई उसने अपना मुँह खोल दिया। तब अनिलकुमार ने अपना शरीर दस योजन तक बढा लिया। तब उस स्त्री ने अपना मुँह उसके दुगुना चौड़ा कर लिया। हनुमान् ने अपना शरीर तीस योजन तक बढाया, तो उस स्त्री ने अपना मुँह चालीस योजन विशाल बना लिया। इस प्रकार एक-दूसरे से स्पर्धा करते हुए क्रमशः अपने शरीर तथा मुँह को शत योजन तक

बढा दिया । तब हनुमान् ने बडी चतुरता से एक अगुष्ठ प्रमाण-मात्र का अपना शरीर बनाकर, सूक्ष्म रूप से उस स्त्री के मुँह में प्रवेश करके सहज ही इस प्रकार बाहर निकल आया जैसे कोई ज्ञानी ससार के जटिल बधनो से अपने-आपको मुक्त करके निकल आता है । उसके पश्चात् उसने उस स्त्री को देखकर कहा—'हे नारी, मैंने तुम्हारी इच्छा पूरी कर दी, अब मै समुद्र पार जाऊँगा ।' उस स्त्री ने भी उस कपिकुलोत्तम हनुमान् की बुद्धि की प्रशसा करती हुई दिव्य रूप धारण करके बडे स्नेह से आशीर्वाद दिया और कहा—'शीघ्र ही तुम्हारा कार्य सिद्ध हो ।'

तब हनुमान् समझ गया कि यह छायाग्राहिणी है और बिना भय के तुरत सूक्ष्म रूप धारण करके उसके उदर में प्रवेश किया । फिर उसने उसका उदर चीरकर उस दुष्ट राक्षसी को समुद्र में फेंक दिया । इन्द्रादि देवता इसे देखकर अत्यत हर्षित हुए और पुष्प-वृष्टि करने लगे । इस प्रकार हनुमान् सहज ही समुद्र पार करके सुवेल (त्रिकूट) पर्वत पर पहुँच गया ।

इस प्रकार, आध्र-भाषा का सम्राट्, श्रेष्ठ काव्यागमो के ज्ञाता, पवित्रात्मा, आचारवान्, अपार धीमान्, तथा भूलोक का निधि, गोन वुद्ध नरेश ने, गुणवान, धीर, शत्रुओ में भय उत्पन्न करनेवाले, महात्मा, श्रेष्ठ वीर, अपने पिता विट्ठलनरेश के नाम पर समस्त ससार में पूज्य, अनुपम शब्दार्थो से परिपूर्ण तथा लोकप्रिय रामायण के किष्किधाकाड की रचना इस प्रकार की कि वह अलकार तथा भावो से युक्त हो और जबतक सूर्य तथा चद्र इस ससार में रहें, तबतक इसकी प्रशसा होती रहे ।

किष्किंधाकांड समाप्त

श्रीरंगनाथ रामायण

(सुन्दरकांड)

१ः हनुमान् का लंका में प्रवेश

श्रीराम का कार्य संपन्न करने का निश्चय करके हनुमान् ने विशाल सागर को ऐसा पार किया, मानो वह एक छोटी-सी नहर हो और उस सुवेल पर्वत पर चढ गया, जो लंकापुरी के निकट था। वह लंकापुरी सुंदर शृंगो से, पहाडी तराइयो से, प्रचुर वृक्षो तथा लता-समूहो से, कैरव, बंधूक, कल्हार एव कुमुद आदि पुष्पों से, सारस आदि जलचर पक्षियो से, विलास गति से विहरण करनेवाले हंसो के कलरव से, क्रौंच पक्षियों के निनादों से तथा कमल का मकरंद पान करने से मत्त होकर झंकार करनेवाले भ्रमरो की पंक्तियो से युक्त तड़ागो से परिपूर्ण था।

उस पर्वत पर चढकर हनुमान् ने दक्षिण दिशा में दृष्टि दौड़ाई और लंका नगरी को देखा। वह नगरी त्रिकूटाद्रि पर सुशोभित थी, और धर्म, अर्थ तथा काम इन तीनो को एकत्र किये बैठी लक्ष्मी के समान सुशोभित थी। अपनी उज्ज्वल कान्ति के कारण वह ताराद्रि की समता करती थी और आकाश-मार्ग से स्पर्धा करती हुई दिखाई पड़ती थी। वह अपने रत्नो की कान्ति से सुशोभित होकर ऐसी दीखती थी, मानो देवताओ से युक्त अमरावती ही समुद्र के मध्य में सुदर ढंग से शोभायमान हो रही हो। अथवा सुंदर

मकर, कच्छप तथा पद्मनिधियो से युक्त अलकापुरी ही मानो कुबेर से रूठकर वहाँ आ गई हो, या चिरकाल से समुद्र के नीचे रहने के कारण ऊबकर भोगवती नगरी ही समुद्र-तल से ऊपर उठकर त्रिकूट पर्वत पर आ गई हो। उस नगरी का प्रभा-समन्वित स्वर्ण-दुर्ग, समुद्र को ही अपनी परिखा बनाकर, ब्रह्माण्ड के समान सुशोभित था और ब्रह्मादि देवताओ को भी अभेद्य दीखता था। वह लकापुरी दुर्वार गज, रथ, तुरग तथा भयकर एवं श्रेष्ठ वीरो से युक्त थी और अलौकिक ऐश्वर्य से सपन्न हो बहुत सुदर दीखती थी। ऐसी लका नगरी को देखकर हनुमान् आश्चर्य-चकित हो गया और निर्निमेष नेत्रो से जहाँ-तहाँ देखता ही रह गया। वह सोचने लगा—'अकेले समस्त लोको को जीतकर, अपने पराक्रम से सभी लोको में अपनी श्रेष्ठता स्थापित करनेवाला दशकधर ऐसे ऐश्वर्य से सपन्न लका का राजा बना हुआ है। फिर भी, उसके भाग्य में जीवित रहना नही लिखा है। सर्वेश्वर रामचद्र की पत्नी को ले आकर इस मूर्ख ने क्यो मृत्यु को आमत्रित किया है?' इस प्रकार रावण की निंदा करते हुए वह शक्तिशाली हनुमान् लका में प्रवेश करने का उपाय सोचने लगा। वह नगर के उत्तर द्वार पर पहुँचा और सारी परिस्थिति तथा अपने कर्त्तव्य का विचार किया। उसके पश्चात् वह सोचने लगा—'भला, इस विशाल सागर को वानर कैसे पार कर सकेंगे? यदि पार भी करेंगे, तो इन्द्रादि देवताओ के लिए भी दुर्भेद्य इस लका को जीतना क्या किसी भी रीति से उनके लिए सभव होगा? युद्ध-भूमि में भयंकर साहसी रावण को राम कैसे जीत सकेंगे?'

एक मुहूर्त्त काल तक इस प्रकार सोचने के पश्चात् हनुमान् ने मन-ही-मन विचार किया—यदि मै अपने इस विशालकाय के साथ, दिन को ही इस नगर में प्रवेश करूँगा, तो राक्षस भटो से मेरा सामना हो जायगा। उस प्रकार मै सीताजी का पता नही लगा सकूँगा। अत. मै सूक्ष्म रूप धारण करके इस नगर में प्रवेश करूँगा और दैत्यो की आँखो में धूल झोककर अवश्य ही सीताजी के दर्शन करूँगा। इस प्रकार मन में विचार करके वह सूर्यास्त की प्रतीक्षा में बैठा रहा। निदान सूर्य-बिंब इस तरह तिरोहित होने लगा, मानो सूर्य यह सोच रहा हो कि विशाल शक्तिशाली राम की पत्नी सीता देवी का पता लगाने के लिए जो यह (हनुमान्) आया है, मेरे आकाश में रहते समय उसके लिए लंका में प्रवेश करना कठिन होगा। दिशाओ में घोर अधकार ऐसा व्याप्त हो गया, मानो अनिल-पुत्र के आगमन से भयभीत हो राक्षस (रावण) के घोर पाप चारो ओर भाग रहे हो। क्रमश दैत्यो की कलकल ध्वनि मंद पडने लगी। यह देखकर पवन-पुत्र ने सारी बातें मन-ही-मन विचार करके एक बिल्ली के समान छोटा रूप धारण किया और फिर राघवो का स्मरण करके लका में प्रवेश करने का उपक्रम करने लगे।

२. लंकिणी का हनुमान् को रोकना

उस समय भयंकर आकारवाली लकिणी हनुमान् के मार्ग को रोककर ऐसे खड़ी हो गई, जैसे किसी निधि को बाहर लाते समय उस प्रयत्न में बाधा डालने के लिए कोई भूत उत्पन्न होकर खड़ा हो जाता है। उसने अट्टहास करके पवनकुमार को डाँटते हुए कहा—'तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है? इस नगर में तुम क्यो प्रवेश कर रहे हो? किसने तुम्हें यहाँ भेजा है?'

तब हनुमान् अविचल खडा होकर बोला—'तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? तुम क्यो मेरे मार्ग को रोककर खडी हो ? पहले तुम अपना परिचय दो, तो फिर मैं अपने बारे में कहूँगा ।' तब वह बोली—'मैं दशकठ की आज्ञा से, बड़े यत्न से इस नगर की रक्षा करती रहती हूँ । मेरा नाम लकिणी है । जब मैं पराये व्यक्तियों को देखती हूँ, तब उन्हें नगर के भीतर प्रवेश करने नही देती और उन्हें तुरत मार डालती हूँ । तब हनुमान् ने उस स्त्री से कहा—'हे नारी, मैं इस नगर को देखने के उद्देश्य से आया हूँ; मुझे जाने दो ।' तब वह राक्षसी आँखो से क्रोध प्रकट करती हुई बोली—'अब तुम कहाँ जाओगे ? अब तो तुम मेरे हाथ में पड गये हो । तुम्हें पकडकर तुम्हारे शरीर के टुकडे-टुकड़े कर दूँगी और तुम्हारा रक्त पी जाऊँगी ।' यों कहती हुई उसने बडे क्रोध मे उस श्रेष्ठ वानर के वक्ष पर एक घूँसा मारा । हनुमान् ने सोचा कि स्त्री का वध करना पाप है । इसलिए उसने लकिणी के वक्ष पर ऐसा घूँसा जमाया कि वह अपनी सारी शक्ति खोकर पृथ्वी पर गिर पडी और हनुमान् को देखकर क्षीण स्वर में प्रार्थना करने लगी—'हे कपि-कुलोत्तम, मुझपर कृपा करो । जिस दिन इस नगर का निर्माण हुआ, उस दिन निपुण ब्रह्मा ने कहा था कि जिस दिन एक वानर यहाँ आकर तुम्हें दुख पहुँचायेगा, उसी दिन से राक्षसो का नाश प्रारंभ हो जायगा । इसलिए मुझे विश्वास है कि तुम्हारी मनस्कामना सफल होगी ।' इस प्रकार कहती हुई वह स्त्री चली गई । उस स्त्री की बातों से हनुमान् अत्यत हर्षित हुआ और मन-ही-मन यह निश्चय करके कि अब राक्षसो का नाश निश्चित है, पहली बार लका की धरती पर अपना वाम चरण प्रतिष्ठित किया ।

३· हनुमान् का लंका में सीता का अन्वेषण

फिर हनुमान् ने सूक्ष्म रूप धारण किया और किले की भित्तियो पर चढकर इस प्रकार लका में प्रवेश किया कि किले के द्वार-रक्षक तथा सैनिक उनको देख न सके । फिर गुप्त रूप से मार्गों, बाजारो तथा चौपालो को देखते हुए वह आगे बढा । उसके पश्चात् बडे-बड़े गोपुरो पर चढा और गज-शालाओ से लेकर श्रेष्ठ सौधो के सभी स्थान देखे । फिर उसने मदिरो में देखा, घर-घर में ढूँढा, तथा अंत पुरो में ढूँढा, मडपो और वीथो में देखा । फिर अश्वशालाओ, रथशालाओ तथा शस्त्रागारो में देखा और मणिमय भवनो में सीता का अन्वेषण किया । तत्पश्चात् विभीषण, अतिकाय, देवातक और त्रिशिर के घरो में, कुंभकर्ण के विशाल भवन में, कुभ के घर में, निकुभ के निवास में, शोभा-समन्वित इन्द्रजीत के अत पुर में, महोदर के भवन में और सभी दनुज-नायको के घरो में क्रमशः सीता की खोज की । दैत्यो के इन निवासो को देखकर हनुमान् आश्चर्य-चकित हो गया । फिर उसने सभी अतं पुरो में सीता को ढूँढा, सभी स्त्री-जनो में देखा, और एक-एक करके राक्षसो के सभी घर देख डाले । किसी-किसी स्थान पर एक आँख, एक कान, एक हाथ-वाले विकृत रूपो को देखकर वह चकित रह गया । कही-कही उसने बहुत-से चरण, अनेक भुजाओ तथा कई शिरोवाले राक्षसो को देखा । फिर वह जप-तप तथा स्वाध्याय में तत्पर, सत्कर्मी तथा निष्ठावान् तपस्वीश्रेष्ठ दानवो को देखते हुए आगे बढ गया ।

उसके पश्चात् हनुमान् रावण के अंतःपुर के निकट पहुँचा । वह (अंतःपुर) मकर-तोरणो (मकर के आकार में बँधा हुआ वंदनवार) पुष्प-मालिकाओ, विविध धूपो की सुगंधि, रत्न तथा मोतियो से पूरे गये चौको, चंद्रकांत-शिलाओ से निर्मित चबूतरो, स्वर्ण तथा मणियो से बनाये गये कपाटो, प्रशसा के योग्य मंडपो, प्रवाल के बने ऊँचे स्तंभो, अनेक अट्टालिकाओ तथा सौधो की पंक्तियो से अलंकृत था तथा सशस्त्र राक्षसो के द्वारा सतत रक्षित था । उस अंतःपुर के पास पहुँचकर हनुमान् ने अंतःपुर के पहरेदारो के निकट जाकर देखा, फिर कई द्वारो को निर्भय गति से पार करता हुआ आगे बढा और सभा-मंडपो में सीता को ढूंढा । वह रनिवास के निकट पहुँचा ही था कि इतने में, समुद्र में ज्वार उत्पन्न करते हुए, कमल-समूह की कांति को मलिन करके उन्हें मुकुलित करते हुए, मदमत्त चक्रवाल पक्षियो को विरहाग्नि से पीडित करते हुए, मन्मथ के प्रताप को बढाते हुए, मुरझाई हुई कमलिनियो के समूह को विकसित करते हुए, मुग्धा-जारिणियो के चित्तो में चंचलता उत्पन्न करते हुए, घने अंधकार के प्रताप को नष्ट करते हुए, चंद्रकांत-शिलाओ को गलाते हुए, चकोर पक्षियो को प्रेम से अघाते हुए, प्रेमी-प्रेमिकाओ का मिलन संपन्न करते हुए, अपनी संपूर्ण राका से दिशाओ को भी उज्ज्वल बनाते हुए, मन्मथ का ससुर, उत्तम शोभा की सीमा, कुमुदिनियो का प्रेमी, नक्षत्रो के अधिपति चंद्र का उदय आकाश में ऐसे हुआ, मानो लंकापुरी में सीताजी का अन्वेषण करनेवाले हनुमान की सहायता करने के हेतु देवताओ ने मशाल जला दी हो ।

४ हनुमान् का रावण के अंतःपुर में प्रवेश करना

ऐसे चन्द्र को देखकर हनुमान् मन-ही-मन हर्षित हुआ और सारे अंतःपुर में देखते हुए जाने लगा । एक स्थान पर उसने कांतिमान्, विश्वकर्मा से रचित, अपनी इच्छा से चलने की शक्ति रखनेवाला, विचित्र कला-कौशल से संपन्न सूर्य-चंद्र के समान प्रकाशमान मणि-पुष्पक नामक विमान को देखा, जिसे देवलोक के शत्रु (रावण) ने युद्ध में कुबेर को पराजित करके छीन लिया था ।

उस विमान में पवन-पुत्र ने उन सुंदरियो को देखा, जिन्होने रावण को सुख के समुद्र में उतारकर, मद्यपान तथा भोग-विलास के मधुर रसास्वादन के कारण शिथिल हो सोई पड़ी थी । उनकी शरीर-रूपी लताएँ अवश हो पड़ी हुई थी; उनकी स्निग्ध जाँघो का सौंदर्य प्रकट दीख रहा था, उनकी नीवियो की गाँठें ढीली हो गई थी, उनके मुख मुरझाये हुए थे; उनकी सुगंधित साँसें चल रही थी, अधर एक विचित्र सुंदरता के साथ एक ओर झुके हुए थे और उनपर मंद हास नृत्य कर रहा था; उनके अर्द्ध-निमीलित नयन उनकी रति-क्रीडा की मुग्ध परवशता प्रकट कर रहे थे, उनके नूपुर निःशब्द होकर उनके चरणो में लिपटे हुए थे, उनका चंदन-तिलक श्रम-जल से गल रहा था, उनकी वेणियाँ खुली हुई थी, पुष्प-मालाएँ टूटी पडी थी, श्रेष्ठ मुक्ताओ की मालाएँ उनके दोनो कठोर कुच-पर्वतो के बीच दबी हुई थी और उनके चित्त मदिरा-पान से मत्त थे । अपने कटि-रूपी सैकत, केश-रूपी शैवाल, नाभि-रूपी सरोवर, भ्रू-रूपी तरंगो, कुच-रूपी भँवर तथा नयन-रूपी मीनो से युक्त वे सुंदरियाँ सुख-निद्रा में सोनेवाली नदियो के समान दीख रही थी ।

परस्त्रियो के शरीर के विविध अगो को देखने मे पुण्यात्मा हनुमान् मन-ही-मन अत्यत दुखी था। वह सोचने लगा कि स्वामी के कार्य में निरत रहने के कारण मुझे इस प्रकार परस्त्रियो के शरीर के अगो को देखना पडा है। पाप-बुद्धि से मैने ऐसा नहीं किया है। इन स्त्रियो के झुड में ही सीताजी को ढूँढना है, अन्य स्त्रियो में नहीं।

इस प्रकार मन में सोचते हुए दबे पाँव वह आगे बढ़ा। वहाँ उसने एक विशाल रत्न-वेदी पर पुष्प-शय्या पर सोनेवाले इन्द्र के भोग-विलास को भी मात करनेवाले, सान्ध्य-राग से युक्त जलद की भाँति चदन तथा अगराग से दीप्त शरीरवाले सुदर झरनो से युक्त नीलाद्रि के समान मोतियो की मालाओ से सुशोभित देहवाले, पचशिरवाले भयकर सर्पो की भाँति सुपोषित उँगलियो से युक्त भुजाओवाले, स्वच्छ चाँदनी के साथ रहनेवाले अधकार के समान अपने शरीर को स्वच्छ चादर मे ढककर सोनेवाले, अपने विशाल वक्ष पर ऐरावत के दाँतो के आघातो को बडे साहस के साथ वहन करनेवाले, अपने दोनो पार्श्वो में रखे मणिमय दीपो की शिखाओ को अपनी उसाँसो से हिलानेवाले, मुकुट तथा कुडलो की दीप्ति से सुशोभित रूपवाले तथा सभी शत्रुओ का गर्व निचोडनेवाले रावण को देखा और अनुमान कर लिया कि यही राक्षस राजा है। उसके पार्श्वो में गधर्व, देव तथा दैत्य कामिनियो को देखा। उनमें से कुछ पानदान, कुछ पीकदान और कुछ अपने हाथो में पखे लिये हुई थीं। कुछ कामिनियाँ अपने कर-ककणो से शब्द करती हुई चामर डुलाने, कुछ मधुर-मधुर गीत गाने, कुछ नृत्य करने, कुछ वीणा बजाने और कुछ मृदग बजाने के पश्चात् अब थककर अपने-अपने उपकरणो से लिपटी हुई सोई पडी थीं।

उसके पश्चात् परम पावन हनुमान् ने रावण की शय्या पर सोई हुई, नव यौवनवती देव-स्त्रियो के सदृश दीखनेवाली और गगन-मडल के मध्य रहनेवाली चद्रकला के समान प्रकाशित होनेवाली, मदोदरी को देखा। हनुमान् ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि मैने सीताजी को देख लिया और वह आनदविभोर हो उठा। उस आनद में कभी उछलता, कभी कूदता, कभी वहाँ के स्तभो पर चढता और कभी अपने लागूल का चुबन करता। इस प्रकार वह थोडी देर तक अपनी जाति-सहज विकृत चेष्टाएँ करता रहा। फिर वह मन-ही-मन अपने विवेक को जाग्रत करके सोचने लगा—'मनुकुलेश्वर की पत्नी, पति-व्रताओ में शिरोमणि, परमपावनी, तथा महाराज जनक की पुत्री, भला, देवाधिदेव राम को छोडकर, रावण के साथ रहने की इच्छा करेंगी ? कही आसक्त हो मधुपान करेंगी ? हाय, मेरी बुद्धि को ऐसा भ्रम क्यो हुआ ? कैसे भी विचार करूँ, यह चचलाक्षी अवश्य ही कोई दानवी है, सीता नही है।'

इस प्रकार निश्चय करके वह उस स्थान को छोड़कर आगे बढा और आसव, रक्त, मधु एवं मास-युक्त मधुशालाओ को देखकर उन भवनो में सीता को ढूँढा, जिनमें गरुड़, उरग, अमर, गंधर्व तथा सिद्धो की स्त्रियाँ बदी थी। फिर उसने जहाँ-तहाँ छाया में खड़े होकर, एकात में वार्त्तालाप करनेवालो का सभाषण ध्यान से सुना। बिना इस बात का विचार किये ही कि मै अमुक स्थान में प्रवेश कर सकता हूँ, अमुक स्थान में नही, अमुक स्थान में जाना मेरे लिए उचित है, अमुक स्थान में नही, हनुमान् ने सारी लकापुरी में

ढूढ डाला, किन्तु मानव-रूप में रहनेवाली सीता को कही भी और किसी भी प्रकार से देख न पाने के कारण अत्यत दुखी हुआ ।

५. हनुमान् का रावण के उद्यान में जाना

इसके पश्चात् हनुमान् ने नगर के समीप रहनेवाले और सोने की चहारदीवारी से घिरे हुए एक उद्यान को देखा । धीरे-धीरे वह उस उद्यान के निकट पहुँचा । चारो ओर भली भाँति देखकर वह उसकी दीवार पर चढ गया और उस सुदर उद्यान के भीतर देखने लगा । वह उद्यान चदन, पुन्नाग, सहकार, मदार, खर्जूर, कटहल, पीपल, नीबू, विजौरा, पाटली, बकुल, घनसार, सौवीर, कर्णिकार, कुरवक, जवीर, ताल, तमाल, हिताल, साल, नारिकेल, अशोक, सप्तपर्णी, दाडिम, नारगी, केतकी और पुगीफल, आदि के वृक्षो से, मल्लिका, मालती, माधवी, नागवल्ली, एला, लवग आदि लताओ से, पके हुए द्राक्षाफल के गुच्छो से और पके हुए फलो तथा पुष्पो की सुगधि से युक्त वायु से परिपूर्ण था । वह (उपवन) पिक, शुक, नीलकठ एव सारिकाओ तथा भ्रमरो से शोभायमान था । वह सुदर सरोवरो से, कुमुद-समूहो से, चद्रकात-मणियो की वेदिकाओ से, स्वच्छ चाँदनी से तथा सैकत स्थलो से अत्यत मनोहर था । वह सभी ऋतुओ में विहार करने योग्य था और उसकी शोभा चैत्ररथ (कुबेर का उपवन) को भी मात करती थी । अमरेन्द्र के नदन-वन की समता करनेवाली रावण की उस उद्यान-वाटिका को देखकर हनुमान् आश्चर्यचकित हो गया और उस उपवन में प्रवेश करके दवे पाँव सरोवरो में, खड्डो में, उनके तटो पर, निकुजो में, पेडो के नीचे तथा सुरक्षित स्थानो में बडी सावधानी से सीताजी की खोज करने लगा । उसके पश्चात् उस उपवन के मध्य भाग में स्थित, रात-दिन पहरा देनेवाले राक्षस-वीरो से रक्षित, गगनचुवी अट्टालिकाओ से सुशोभित मेरु पर्वत के शिखरो के समान स्वर्ण-कलशो से शोभायमान, स्वर्ण-स्तभो तथा श्रेष्ठ रत्नो के वदनवारो से भासमान एक विशाल भवन को हनुमान् ने देखा । हनुमान् ने उस भवन में भी सीता को ढूँढा, किन्तु वहाँ भी उनका पता नही चला ।

तब हनुमान् मन-ही-मन अत्यत दुखी हुआ और सोचने लगा—'हाय, सूर्यकुल-तिलक राम ने मुझे एकात में बुलाकर, बडे प्रेम से कहा था कि तुम अवश्य सीता का पता लगा सकोगे और मेरे हाथ में अपनी मुद्रिका दी थी । उनका आदेश स्वीकार करके मैं यहाँ आया हूँ । किन्तु उस कमल लोचनी का पता कही नही मिल रहा है । उस दुरात्मा रावण के ले आते समय कदाचित् उस साध्वी ने अपने प्राण त्याग दिये हो या आकाश-मार्ग से अत्यधिक वेग से आते समय भयभीत हो सीताजी, राक्षस के हाथो से मुक्त होकर समुद्र में गिर गई हो, अथवा यहाँ के राक्षसो को देखकर भय से प्राण छोड़ दिये हो, अथवा विरहाग्नि में जलकर भस्म हो गई हो, या राक्षस ने किसी ऐसी माया की रचना की हो, जिससे सीता किसी को दीख नही पडती हो, या रावण ने उन्हें विदेशो में रख दिया हो, या उस राक्षस ने उस चचलाक्षी को दण्ड देकर उसके प्राण ले लिये हो । हाय, मैं किस मुँह से लौट जाऊँगा और राम से क्या कहूँगा ? अब मैं क्या करूँ ? ज्यो ही मैं यह कहूँगा कि मैंने सीता को नही देखा, त्यो ही राम अपने प्राण त्याग देंगे । अपने भाई

के लिए लक्ष्मण भी शरीर छोड देंगे । यह समाचार सुनकर भरत भी अपने प्राण-त्याग करेंगे, उनके लिए शत्रुघ्न तथा अन्य सगे-सबधी अपने-अपने प्राण तज देंगे । इस प्रकार समस्त सूर्य-वश का नाश हो जायगा । यह देख सुग्रीव, अगद आदि सभी वानरो के वश भी नष्ट हो जायेंगे । इसलिए मैं एक वानप्रस्थ की भाँति वनो में ही निवास करूँगा, या चिता रचकर अग्नि में प्रवेश करूँगा, या प्राणो का मोह छोडकर समुद्र में डूब मरूँगा। हाय, सपाति के वचनो को सत्य मानकर, अकेले मेरा यहाँ आना व्यर्थ हुआ । ठीक है, चिंता की कोई बात नही है । मैं साहस करके देवताओ मे भिड जाऊँगा और देवेन्द्र को पकडकर उसे त्रास दूँगा, अथवा ज्वालाओ से युक्त अग्नि को पानी में डुबोकर उसे पृथ्वी पर रगड दूँगा और उसकी प्रभा को नष्ट कर दूँगा, अथवा यम को उसके भटो के साथ ऐसा दण्ड दूँगा कि उसका हृदय फट जाय, अथवा नैऋत को सभी राक्षसो के साथ भय से तडपाकर उसे अत्यधिक दु ख दूँगा, अथवा जल-राशियो के साथ वरुण को परास्त करके उसे जीत लूँगा या वायु के सप्त पवनो को घेरकर उन्हें दण्ड दूँगा, या कुबेर को किन्नरियो के साथ कैद करके उन्हें इस तरह तड़पाऊँगा कि उनकी सारी सुदरता नष्ट हो जायगी या अपने अतुल पराक्रम से ईशान को उसके सेनापति के साथ पकडकर उनके साथ युद्ध करके उन्हें जीत लूँगा, पृथ्वी को सभी पहाडो के साथ, कुम्हार के चक्र के समान घुमाकर उसके गर्भ की सभी चीजो को उगलवा दूँगा या इस लका के राक्षसो को समुद्र में डुबोकर सबका नाश करके सारी लका को छान डालूँगा । जब मैं इतना सब करूँगा, तभी सभी देवता (मेरे सामने) झुककर, सीताजी को दिखायेंगे, या राघव स्वय दया करके ससार का नाश करने से मुझे रोकेंगे ।

६. हनुमान् की सीता से भेंट

इस प्रकार निश्चय करके हनुमान् उस भवन के शिखर पर चढ गया । उसने निकट ही स्थित वायु तथा सूर्य-किरणो के लिए भी अभेद्य अशोकवन के एक प्रातर भाग में अत्यत समृद्ध हेम-वर्ण के अशोक-वृक्ष के नीचे एक स्त्री को देखा । वह व्रतो के अनुष्ठान के कारण क्लान्त हो गई थी, शोक से कृश हो गई थी, अत्यधिक दु ख से दबी हुई थी, वेदना से दग्ध थी, अनवरत झरनेवाले अश्रुजल में डूबी हुई थी, विरहाग्नि में तप्त थी, कपट आचरण का शिकार बनने से मर्माहित होकर सूख-सी गई थी, जीवन के प्रति विरक्त-सी हो गई थी और उसके चीर मैले हो गये थे । वह भगवान् को मन-ही-मन कोसती हुई, दु खो का सहन करती हुई, अपने को असहाय समझकर धैर्य त्यागी हुई, सूर्य की प्रचड रश्मि से सूखी नव-लता के समान, धुएँ से घिरी हुई दीप-शिखा के समान, बादलो की पक्ति के मध्य दीखनेवाली चद्र-रेखा के समान, पाले से आहत पद्मिनी के समान, मार्जारो के मध्य रहनेवाले तोता पक्षी के समान और व्याघ्रो के मध्य फँसी हुई गाय के समान, दुर्वार घोर राक्षसो के मध्य बडे उदास भाव से एक हथेली पर कपोल रखे बैठी हुई थी। ऐसी मुद्रा में बैठी हुई आभूषणो से युक्त वेणी से आच्छादित जघावाली, मलिन अगोवाली, गद्गद कठवाली, उष्ण निश्वास छोडती रहनेवाली, सतत उपवास करनेवाली विशालाक्षी, जनक की पुत्री तथा जगन्माता सीता को हनुमान् ने देखा । उसने तुरत सोचा कि ये कदाचित् सीता ही हो ।

इस प्रकार सोचकर उसने मन-ही-मन राम तथा लक्ष्मण को बडी भक्ति के साथ प्रणाम किया, बडे उत्साह से देवताओ की प्रार्थना की और बडे हर्ष से उस भवन से नीचे उतर आया। उसके पश्चात् उसने एक अगुष्ठ-मात्र का आकार ग्रहण किया और उस अशोक-वृक्ष के पास पहुँचकर उसपर चढ गया। बालक के रूप में वट-वृक्ष के पत्रो में शयन करने-वाले विष्णु के समान, वह श्रेष्ठ वानर उस वृक्ष की घनी शाखाओ में बडी कुशलता के साथ छिपकर बैठ गया और (उस पुण्यात्मा ने) बडे ध्यान से उस विशालाक्षी को बार-बार देखने और सोचने लगा—'ऋष्यमूक पर्वत पर जिन आभूषणो को मैंने देखा था, उनमें और इनके शरीर पर दीखनेवाले आभूषणो में समानता दीखती है। अत, यह पद्मगधी, काकुत्स्थवशी राम की पत्नी ही होगी।' इस प्रकार सोचकर वायु-नदन ने और एक बार सीता को ध्यानपूर्वक देखा और पाया कि उस रमणी के अग, कर्ण-भूषण, मणिमय ककण तथा सुनहले वस्त्र, ठीक उसी प्रकार के थे, जैसे कि राम ने बताया था। उसके अतिरिक्त उसने उस नारी-रत्न में विरह-व्यथा से पीडित होनेवाली स्त्रियो के लक्षण, पतिव्रता नारियो के शुभ चिह्न और निपुण मानव-स्त्रियो के सभी चिह्न देखे। साथ-ही-साथ उसने यह भी देखा कि वह साध्वी राम का नाम लेकर कुछ प्रलाप कर रही है। इन सब बातो पर कुछ समय तक विचार करने के पश्चात् उसने निश्चय किया कि ये सीता ही है। फिर उनका विवर्ण मुख, कृश गात्र, बिखरे हुए केश, उनकी दुर्दशा, उनका विलाप तथा उनकी दीनता देखकर वह मन-ही-मन बहुत दु खी हुआ और विचार करने लगा—'चद्र से बिछुडी हुई चद्रिका की भाँति यह चद्रमुखी रामचद्र से विलग होकर क्या रह सकती है? क्या इस रमणी से बिछुडकर राम रह सकते है? यह बडे ही आश्चर्य की बात है कि इन दोनो के कुल, शील, दाक्षिण्य, गुण, वय, धर्म, तथा सुदर रूप एक समान है। अत राम के लिए यह रमणी तथा इस युवती के लिए राजा राम सर्वथा उपयुक्त है। इस काता के लिए ही तो सूर्यकुलाधिप ने शिव का धनुष ईख की तरह तोडा था। जब ये पीडित हुई, तब बडी कठोरता के साथ उन्होने उस कपटी कौए को दण्ड दिया था। जिस विराध ने पहले इनपर आक्रमण किया था, उसका वध किया था। इन्ही के लिए उन्होने शूर्पणखा के नाक और कान कटवाये, खर और दूषण आदि राक्षसो का सहार किया, मारीच को मृत्यु के मुँह में भेजा, बालि को एक ही शर से मार डाला और कपियो को चारो दिशाओ में भिजवा दिया। मै उन कपियो में अपने को बडा बलवान् समझकर, उस पुण्यात्मा काकुत्स्थवशी राम के सामने यह कार्य-भार अपने ऊपर लेकर, अगद आदि वानरो के साथ मै यहाँ आया। अपने पुण्य-फल के प्रताप से और अपनी इच्छा के अनुसार ही इस पुण्य सती को मै यहाँ आकर देख सका। भयकर असुर-स्त्रियो के मध्य, यातनाओ में पडी हुई इस स्त्री-रत्न को मै अपना रूप किस प्रकार दिखाऊँ? किस प्रकार मै इसमे वार्त्तालाप करूँ? इस पुण्य साध्वी को कैसे सात्वना दूँ? किस प्रकार प्रभु को यहाँ की दशा सुनाऊँ?'

७ सीता से रावण का प्रलाप

हनुमान् मन-ही-मन इस प्रकार की चिंताओ से व्याकुल होता रहा। वहाँ रावण जानकी

के सबध में सोचते-सोचते सतप्त हो उठा । वह बडे तडके ही उठा, तो उसका चित्त कामदेव के प्रभाव से उद्विग्न होने लगा । उसने सुन्दर ढग से दिव्य मालाएँ धारण की, शरीर पर दिव्य गध का लेप किया । दिव्य आभूषणो से अपने शरीर को सजाया । चारो दिशाओ में अपनी शोभा को विकीर्ण करनेवाला मुकुट मस्तक पर रखा और चन्द्रहास (खड्ग) को भी साथ लेकर वह अशोक-वन की ओर चल पडा । उसके पार्श्व-भाग में अप्सराएँ, अपने मणिमय ककणो को क्वणित करती हुई चामर डुला रही थी, गधर्व-युवतियाँ अपने घन-कुचो पर के हारो को चचल करती हुई पखे झल रही थी, किन्नर-रमणियाँ छत्र पकड़े हुए अपने कुच-मूलो की शोभा प्रकट कर रही थी, यक्ष-युवतियाँ अपनी बाहुओ तथा पार्श्व-भागो को प्रकट करती हुई हस्त-वाहिकाओ के रूप में जा रही थी । दोनो ओर गरुड की स्त्रियाँ परिमल जल तथा मद्य के पात्र लिये हुए चल रही थी । भीड में कुचल न जायँ, इस भय से नाग-कन्याएँ आगे-आगे जा रही थी । विद्याधरो की स्त्रियाँ वीणा आदि वाद्यो के साथ कर्णमधुर स्वर में गान कर रही थी । रावण के गुण तथा औन्नत्य के अनुसार सिद्धो तथा साध्यो की रमणियाँ एकत्र होकर उसका गुणगान कर रही थी, खड्गपाणि राक्षस-स्त्रियाँ बडे उत्साह से उसके पीछे-पीछे चल रही थीं । इस प्रकार परिजनो को साथ लेकर सहस्रो मशालो के प्रकाश में बादलो के पीछे चलनेवाली विद्युल्लता के समान मदोदरी को साथ लिये हुए रावण चला । उसकी अन्य स्त्रियाँ भी उसकी सेवा में लगी हुईं, उसके पीछे-पीछे जाने लगी । उसके बलिष्ठ पदाघात से पृथ्वी काँपने लगी । भीड के परिहास की ध्वनि से आकाश गूँजने लगा । स्त्रियो की मेखलाओ, नूपुरो तथा मणिमय आभूषणो का कलनाद कर्णपुटो को मधुर लग रहा था । इस प्रकार, उनीदी दृष्टि से, कनक-केयूरो से अलकृत बाहुओ से, पृथ्वी पर लोटनेवाले वस्त्रो से, अत्यधिक मुरझाये हुए वदन से तथा अत्यत भीषण आकार में रावण सीता के सामने आकर खडा हुआ । उसे देखते ही सीता दिग्भ्रान्त-सी हो गई । अपने मन में उन्होने रघुराम का स्मरण किया और अपनी जाँघें, उदर, कुच-द्वय, और सुदर हाथो को अपने वस्त्रो से अच्छी तरह ढक लिया और बाघ द्वारा देखी हुई हिरणी की भाँति सिकुडकर बैठ गईं । ऐसी साध्वी को देखकर अपने मद के प्रभाव में आकर रावण बोला—'हे सुदरी, तुम अपनी क्षीण कटि को क्यो छिपा रही हो ? अपना सुदर मुख क्यो नीचे झुका रही हो ? हे अबले, मन्मथ की पीड़ा से त्रस्त हुए मुझे तुम अपने कृपा-कटाक्ष से बचाओ । परस्त्रियो को बलात् अपने वश में कर लेना हमारी जाति के धर्म के अनुकूल ही है । फिर भी मैं केवल तुम्हारी कृपा-दृष्टि का आकाक्षी हूँ । मेरी बातें ध्यान से सुनो । इस हीन दशा में तुम क्यो रहती हो ? कदाचित् तुम सोचती हो कि राम अपने भाई के साथ भयकर वन को पार करके यहाँ आयगा और समुद्र पर पुल बाँधकर अपने अतुल पराक्रम से मुझे जीतकर, तुम्हें छुडाकर ले जायगा । यह असभव है । इन्द्र, यम, वरुण आदि देवताओ के लिए भी युद्ध में मुझपर विजय पाना असभव है । हे कमललोचनी, अब तुम इस पागलपन को छोडो । मेरी भुज-शक्ति के सामने मनुष्य की शक्ति ही क्या है ? अनाथो की भाँति पर्वतो तथा जगलो में भटकते हुए, कष्ट सहनेवाले एक शक्तिहीन मानव का सहवास क्यो चाहती हो ?

हे सुंदरी, तुम मुझे अपनाकर राज्य-सुख क्यो नही भोगती ? चाहे इन्द्र हो, यम हो, वरुण हो या कुबेर हो, अग्नि, नैऋत, वायु या ईशान ही क्यो न हो, कोई भी मेरी लका को जीत नही सकता। क्या किसी मानव के लिए लका की ओर दृष्टि डालना भी सभव है ? अब राम कहाँ है ? वह यहाँ कैसे आयगा ? आकर लका में प्रवेश करेगा किस ढग से ? प्रवेश करके भी विना भयकपित हुए मेरा सामना करेगा कैसे ? सामना करके भी मेरे साथ लडेगा कैसे ? लडेगा भी, तो मेरी शक्ति को किस प्रकार सहन कर सकेगा ? सहन करेगा भी, तो कबतक कर सकेगा ? इसलिए, ये सब बातें असभव हैं। उन बातो को छोड दो।' रावण इस प्रकार राम की निंदा करते हुए कर्णकटु शब्द कहता रहा।

८ सीता का रावण की निंदा करना

तब सीता ने अत्यत क्रुद्ध होकर एक तिनका ऐसा तोडा, मानो वे इसकी घोषणा कर रही हो कि तुम अवश्य राम के हाथो से नाश को प्राप्त होगे। फिर वे उस तृण को हाथ में लेकर उसे सबोधित करके कहने लगी—'हे पापी, मेरे पति को धोखा देकर तुम मुझे अपनी लका नगरी में ले आये हो। इसे बहुत बडा पराक्रम मानकर तुम क्यो गर्व कर रहे हो ? इसे महान् कार्य समझकर क्यो प्रलाप कर रहे हो ? पराई स्त्रियो के साथ समागम चाहनेवालो का ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है और उनकी आयु भी क्षीण होती है। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो, तो औचित्य तथा धर्म का विचार करके मुझे राम के पास पहुँचा दो। इसके विपरीत यदि दुर्बुद्धि के वश में पडकर तुम मुझे ग्रहण करना चाहोगे, तो कोदण्ड-दीक्षा-गुरु राजा राम के हाथो से मारे जाओगे। यह निश्चित है। तुम अपने मन में यह मत समझो कि वे वनवास के कारण कृश-गात्र, दुर्बल, अनाथ, राज्यहीन, असहाय हो गये है और वे मनुज-मात्र हैं। क्या उन्होने दडकवन में चौदह सहस्र भयकर राक्षसो को नही मारा ? दण्डधर के उद्दण्ड दण्ड के प्रताप को मात करनेवाले तथा सूर्य-किरणो के भयकर गर्व को भी परास्त करनेवाले राम के असख्य रण-भीषण-बाण जिस दिन तुम्हारी लका में व्याप्त होगे, जिस दिन वे बाण तुम्हारे वक्षस्थल में गडेंगे, उसी दिन तुम अपनी तथा राम की शक्ति का अनुभव कर सकोगे। मैं अब उसके सबध में क्यो कहूँ ? जैसे कुहरा सूर्य का सामना करने पर नष्ट हो जाता है, जैसे भेडा पहाड से टक्कर लेने से नष्ट हो जाता है, जैसे मच्छर मत्त गज का सामना करने से पिस जाता है, जैसे नाला समुद्र का सामना करके अपना अस्तित्व खो देता है, वैसे ही तुम भी यदि अपनी और उनकी शक्ति की तुलना किये विना ही राजा राम के साथ भिड जाओगे तो तुम भस्म हो जाओगे। भला, तुम क्या देखकर इठला रहे हो ? सूर्यवश के तिलक (राम) इस प्रकार तुम्हें इस पृथ्वी पर थोडे ही रहने देंगे ?'

इन बातो को सुनकर रावण अत्यत रोष से जानकी को देखकर बोला—'मैंने तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न करके उनसे श्रेष्ठ शक्ति का वर प्राप्त किया है, इन्द्र से लेकर सभी देवताओ को परास्त किया है, शिवजी के साथ समस्त कैलास पर्वत को उठाया है, बड़े साहस के साथ सभी ऊर्ध्व लोको को जीता है, पाताल के निवासियो को परास्त किया है

और ससार में महान् उन्नति प्राप्त की है । अपने पिताजी द्वारा निर्वासित एक मूर्ख, निरुपाय तथा तपस्वी का जीवन व्यतीत करनेवाला एक साधारण मानव क्या मेरे-जैसे व्यक्ति के सामने टिक सकता है ?'

इस प्रकार जब रावण राम की निंदा करने लगा, तब सीता उमड़ते हुए क्षेम से, व्याकुल एव दुःखी होकर, गद्गद कठ से विलाप करने लगी। जानकी का दुःख देखकर देव तथा गधर्व-स्त्रियो का भी धैर्य जाता रहा और वे भी रोने लगी। रावण का घमंड तथा सीता का दुःख देख अनिलकुमार हनुमान् क्रोधाग्नि में सतप्त होने लगा और तुरत मन-ही-मन उस दुष्ट राक्षस पर झपटने का विचार करने लगा । उसने सोचा—'यदि मैं इसका वध करने में समर्थ होऊँ तो मैं अपने प्रभु को भूमिसुता (सीता) का कुशल-समाचार सुना सकता हूँ । किन्तु यदि मैं अपनी समस्त शक्ति खोकर, युद्ध में, देवताओ के शत्रु (रावण) के हाथो मारा जाऊँ, तो राम को किस प्रकार लका का पता लगेगा ? लका का पता न जानने से वे स्त्री के वियोग में अत्यधिक पीडित होंगे, लका में सीता की उपस्थिति तथा मेरी मृत्यु, इन दोनो का समाचार वे जान नही पायेंगे, तो वे निदान अपने प्राण-त्याग कर देंगे । मेरे सारे किये-कराये पर पानी फिर जायगा । साथ-ही-साथ इससे मेरे प्रभु के कार्य की हानि ही होगी । इसलिए ऐसा कार्य मुझे अब नही करना चाहिए ।' यो सोचकर धैर्य के साथ हनुमान् उसी पेड पर बैठा रहा । रावण ने काम, क्रोध, भय तथा दृढता के साथ जो बातें कही, उनसे भयभीत न होकर सीता ने सब स्त्रियो के सामने ही अत्यत कठोर वचनो से रावण की निंदा की । उनकी बातें सुनकर दनुजेश्वर दुष्ट भावनाओ से अभिभूत-सा हो गया । उसकी भृकुटियाँ कुटिल हो गईं, उसके चचल नेत्र रक्तवर्ण के हो गये । प्रज्वलित, चचल एव भयकर प्रलयकालीन लोक-सहारक अग्नि की भाँति वह क्रोध से भभक उठा । उसने भयकर हुकार किया और क्रूर तथा नीति-रहित हो साध्वी सीता को त्रास देने के लिए सन्नद्ध हो गया ।

९. मन्दोदरी का रावण को उपदेश

तब धन्यात्मा मदोदरी रावण के पास पहुँचकर बोली—'हे नाथ, ऐसा अन्यायपूर्ण कार्य आप क्यो करते हैं ? सीता अबला है, मानिनी है, मानव की स्त्री है, इसके ऊपर मोहित होकर ऐसा क्रोध क्यो करते हैं ? हमारे अंतःपुर में जो सुदरियाँ हैं, उनमें से यह किसकी बराबरी कर सकती है ? आप मेरे साथ सुख भोगिए। आपका यह कार्य आप-जैसे व्यक्ति के लिए नीतिसगत नही है ।'

मदोदरी की बातें सुनकर रावण लज्जित तथा क्षुब्ध हो गया । फिर भी उसने सीता के निकट रहनेवाली दीर्घकाया, भयंकर आकृतिवाली, निष्ठुर वचन कहनेवाली, सतत झगड़ा करनेवाली, क्रूर स्वभाववाली और विकृत शरीरवाली भयकर हयास्या, हरिजटा, त्रिजटा तथा महोदरी नामक राक्षसियो को बुलाया और उनसे निर्लज्ज होकर कहा—'दो महीनो के भीतर तुम इसे प्रिय वचनो से, या धमकियों से, या भयभीत करके अथवा त्रास देकर ऐसा बनाओ कि यह मेरी बात मान ले । यदि यह न माने, तो तुम सब इसका वध करके प्रीतिपूर्वक इसका मास खा लेना ।' यह कहकर वह राक्षसराज अशोक-वन से अपने अतःपुर को चला गया ।

१०. राक्षसियों का सीता को दुःख देना

इसके पश्चात् दानव-स्त्रियाँ अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से जानकी को समझाने लगी—'हे सीते, तुम रावण को अपना लो।' एक राक्षसी हाथ में शूल लिये उन्हें धमकी देने लगी—'राम इस लका की ओर ताक भी नही सकेगा, इसलिए तुम उसकी आशा छोड दो।' एक नीचबुद्धिवाली कहने लगी – 'इस प्रकार क्यो कष्ट भोग रही हो? दानवेश्वर को वर लो, अन्यथा मै तुम्हारा वध कर डालूँगी।' एक राक्षसी बीच ही में रोककर बोली—'खड्ग लाओ, हम अभी इसका सिर काट डालें और इसका मास मधु में डुबोकर चखें।' उसका समर्थन करती हुई एक दूसरी राक्षसी ने कहा—'ठीक है, यही करो।'

इस प्रकार धमकी देनेवाली राक्षसियो को देखकर भूमिसुता, कुमुदनयनी सीता मन-ही-मन क्रोधित एव दुखी हुई और आँसू बहाती हुई गद्गद कठ से धमकानेवाली उन स्त्रियो को देखकर बोली—'क्या दानव और मानव में कही दापत्य निभ सकता है, तुम सब मिलकर ऐसे अपशब्द कह रही हो, क्या यह तुम्हारे लिए उचित है? जैसे चद्रिका, चद्र से बिछुडकर नही रह सकती, जैसे प्रभा सूर्य से बिछुडकर नही रह सकती, वैसे ही मैं राम से बिछुडकर नही रह सकती। मेरे प्रभु भले ही दीन रहें, राज्यहीन रहें तो भी वे मेरे इष्ट देवता है। मै भी जलधि (लक्ष्मी) के समान, पार्वती के समान, वाणी के के समान, पौलोमी के समान, सावित्री के समान तथा रति के समान पतिव्रता की निष्ठा से अपने पति राम की ही आराधना करूँगी। तुम चाहो, तो मेरा वध कर डालो, तेज खड्ग से मेरा सिर काटना चाहो, तो काट दो। मैं केवल राम के सिवा और किसी को स्वीकार नही कर सकती। मै भ्रम में डालनेवाली तुम्हारी बातो में कभी नही आऊँगी। अब तुम इन बातो को छोड दो।'

सीता की बातें सुनकर सभी राक्षसियाँ क्रोध से भभक उठी और मदमत्त हो सीता को विविध प्रकार से पीडा देने लगी। तब सीता धूलि-धूसरित हो पृथ्वी पर लोट गई और उनकी काली नागिन की-सी वेणी बिखर गई। वह उत्तम स्त्री पृथ्वी पर पडी हुई, उसासें भरने लगी। वे ऊँचे स्वर में बार-बार, 'हाय लक्ष्मण', 'हाय राम', 'हाय माता कौसल्या', कहकर रोने लगी।

११ त्रिजटा का स्वप्न

त्रिजटा सीता का सताप न देख सकने के कारण वहाँ से उठकर चली गई और किसी एकात स्थान में जाकर सो गई। सोते-सोते एक स्वप्न देखकर वह जाग पडी। उसने सभी राक्षस-स्त्रियो को देखकर कहा—'हे नारियो, मैने एक स्वप्न देखा है, उसे मै तुम लोगो को सुनाऊँगी, ध्यान से सुनो। मैंने स्वप्न में देखा कि राम एक हाथी पर चढकर आ रहे है, उनके पीछे-पीछे लक्ष्मण, उनके सेवक के रूप में आ रहे हैं। फिर मैंने देखा कि वह पृथ्वीपति इस कोमलागी को उस गज पर बैठाकर ले जा रहे हैं। फिर मैंने देखा कि रामचद्र का राजतिलक हो रहा है और ब्रह्मा आदि देवता उनकी सेवा कर रहे हैं। इतना ही नही, मैंने यह भी देखा कि रावण सुदर पुष्पक विमान से चकराकर पृथ्वी पर गिर गये है। तब नीलाबर धारण किये हुई एक युवती एक भयकर खड्ग लेकर

गिरे हुए रावण के निकट पहुँची और उसने उनके सिर काट डाले है । फिर उसने बड़े बड़े गधे जुते हुए रथ में उन्हें रख दिया और उस रथ को दक्षिण दिशा की ओर ले गई। उसके पश्चात् मैंने देखा कि कुंभकर्ण एक ऊँट पर चढकर दक्षिण की ओर जा रहा है । सुंदर ढग से विलसित होनेवाले अपने तोरणो के साथ, लंका समुद्र में डूब गई है । सभी राक्षस तैल-धाराओ में डूबे हुए पड़े है । विभीषण धवल छत्र धारण करके एक हाथी पर विनय से बैठा हुआ है । इसलिए हे दानवियो, अब रावण का मरण, और रघुराम की विजय निश्चित ही समझो । अत, तुम इस भूमिसुता को न अपशब्द कहो, न उन्हें सताओ ही । तुम सब अब यहाँ से हट जाओ ।" उसकी बातें सुनकर सभी दानवियाँ वहाँ से हट गईं और थकी रहने कारण जाकर सो गईं ।

उस समय सीता भय तथा दु ख से कांपती हुई, दो मास में उन्हें मार डालने की जो आज्ञा रावण ने दी थी, उसके बार-बार स्मरण से ही भयभीत हो उठी । वे अशोक-वृक्ष की शाखा के सहारे उठकर खड़ी हुई, और अपनी चचलता के कारण वन में मार्ग खोई हुई बालिका के समान विलाप करने लगी । वे कहने लगी—'हाय भगवान्, क्रूरता के साथ यहाँ बदी बनाकर मुझे इस प्रकार दु खी बनाना, क्या तुम्हारे लिए उचित है? क्या ब्रह्मा ने मेरे भाग्य में यही लिखा है कि मै इस पापी दैत्य के हाथो मरूँ ? ऐसा न होता, तो राम दण्डक वन में क्यो आते ? स्वर्ण-मृग मुझे भ्रम में क्यो डालता ? यह रावण मुझे बंदी बनाकर दु ख ही क्यो देता ? किन्तु मै अपने बारे में क्यो सोचूँ ? चंद्र के समान मुख-वाले, लोक-रक्षण-कार्य में तत्पर रहनेवाले, मेरे प्रभु रामचद्र न जाने घोर वन में सौमित्र के साथ किस प्रकार दु ख से पीडित होते होगे और कैसी दुरवस्था भोग रहे होगे ? पता नही, उनकी क्या दशा होगी ? न जाने, वे शूर यहाँ कब आयेंगे, कब इस नीच राक्षस का गर्व चूर करेंगे, और कब मुझे अपने साथ ले जायेंगे । ये सब कार्य कब सिद्ध होगे ? और कैसे सिद्ध होगे ? इस दुरात्मा के हाथो मरने से स्वय मर जाना मै अच्छा समझती हूँ ; किन्तु मुझ पर दया करके विष लाकर देनेवाला भी यहाँ कोई नही है । हे राम, हे धर्म-निरत, मेरा पातिव्रत्य आज खिन्न हो गया है । मै अब आत्मघात कर लूँगी ।' इस प्रकार कहती हुई वे अपने केशो को कठ में बाँधकर अपने प्राण देने का उपक्रम करने लगी । इतने में उनका वाम-नेत्र मछलियो के स्पर्श से हिलनेवाले कमलो के समान फड़कने लगा । मलयानिल से चचल होनेवाली वन-लता के समान उनकी वाम भुजा फड़क उठी । मत्त गज की सूँड़ की भाँति उस रमणी की बाईं जाँघ भी फडक गई । भयंकर राहु से मुक्त कुमुद-बधु (चद्र) के समान उनका मुखचद्र दीप्त हो उठा । जब इस प्रकार शुभ शकुन दीखने लगे, तब गजगामिनी सीता ने अपने दु साहसपूर्ण निश्चय का त्याग कर दिया । वे रामचद्र का, उनके भाइयो का, तथा अपनी सासो का स्मरण करने लगी । राक्षसो के द्वारा दिये गये कष्टो से बहुत ही क्लान्त होकर वे अपनी दयनीय स्थिति का विचार करके दु:खी होने लगी ।

१२. हनुमान् का सीता को राघवों का वृत्तांत सुनाना

हनुमान् ने सोचा कि इस साध्वी का दु:ख शात करने का यही अच्छा अवसर है ।

यों सोचकर वह वृक्ष पर बैठे-बैठे ही रविकुल की रीति तथा राम के पौरुष की भूरि-भूरि प्रशसा करने लगा। उसके पश्चात्, यह सोचकर कि यह साध्वी वानरो की भाषा तथा गीर्वाण (सस्कृत)-भाषा कदाचित् जानती न हो, उसने मानवो की भाषा में उनको सबोधित करके कहा—'हे भूमिसुते, हे पुण्यसाध्वी, इस प्रकार आप दु:ख क्यो कर रही है? आपके प्रभु सकुशल हैं। जगदीश्वर, राजा राम समुद्र पार करेंगे और रावण का सहार करके अपने साथ आपको ले जायेंगे। यह सत्य है। अपने अनुज लक्ष्मण के साथ अपनी महान् महिमा प्रकट करते हुए रामचद्र माल्यवत में रहते है और अनेक वानर-सेनाएँ उनकी सेवा में लगी है।'

इन वचनो को सुनकर सीता ने सोचा कि यह कोई आकाशवाणी है। उन्होंने तुरन्त अशोक-वृक्ष की ओर सिर उठाकर देखा। तब उन्होंने सुन्दर नील मेघो के भीतर दीखनेवाले बालचद्र के समान तथा विद्युत् के समान, उस वृक्ष की शाखाओ के मध्य, लघुरूप धारण किये बैठे एक वानर को देखा। तुरत वे दु:खी होकर कहने लगी—'हाय मैंने स्वप्न में एक बंदर को देखा है। भगवान् करे कि इस स्वप्न का अशुभ फल काकुत्स्थ-वशजो को न मिले।' फिर, उन्होंने इन्द्र आदि सभी देवताओ, बृहस्पति, अग्नि तथा सभी लोक-पालको की बड़ी भक्ति से प्रार्थना की।

इसके बाद वे सोचने लगी—'हम जिसके सबध में बार-बार सोचते रहते है, या जिसके विषय में प्राय: सुनते रहते है, वे ही स्वप्न में हमें दिखाई देते हैं। मैं अपने मन में राघव के सिवा और किसी विषय के सबध में सोचती ही नही हूँ। पुण्यात्मा मेरे प्रिय प्रभु, सूर्यवशज, विमल चरित्रवान् राम से बिछुड़कर विरहाग्नि में तप्त रहने तथा भयकर राक्षसियो के द्वारा प्राप्त दु:खो से पीडित होने के कारण मैं दिन-रात निद्रा से वचित रहती हूँ। किन्तु बिना निद्रा के यह स्वप्न कैसे हुआ? मैं और एक बार ध्यान से अशोक-वृक्ष की ओर देखूँ।'

इस प्रकार, विचार करके उन्होंने अपने मुख-कमल को धीरे से ऊपर उठाया और बार-बार हनुमान् को देखा। फिर सोचने लगी—'यह कैसे आश्चर्य की बात है कि कोई बंदर इस वृक्ष पर कही से आकर बैठा है। मानव के समान सुदर ढग से इसने मेरे पतिदेव का कुशल-समाचार सुनाया है और बार-बार प्रिय वचन बोल रहा है। भला, कही वानरो में ऐसी बातें सभव है। कई प्रकार से विचार करने पर ऐसा लगता है कि यह कदाचित् राक्षस की माया ही है। ऐसा सोचकर वे प्रत्युत्तर दिये बिना चुप रही।

१३ हनुमान् का सीता को राम की अँगूठी देना

तब पवनकुमार समझ गया कि सीता मेरा विश्वास नही कर रही हैं। इसलिए वह पेड से उतर आया और बड़ी भक्ति के साथ सीता को प्रणाम किया और हाथ जोडकर कहने लगा—'हे कल्याणी, आप मेरा विश्वास कीजिए। मैं आपको आपके पति से मिलाने के लिए आया हुआ सेवक हूँ। आपको मुझ पर विश्वास हो जाय, इसी उद्देश्य से राम ने यह अँगूठी देकर मुझे भेजा है।' इतना कहकर हनुमान् ने राम की अँगूठी उन्हें दिखाकर प्रणाम किया। तब सीता हनुमान् को देखकर बोली—'हे अनघ, निशाचरो की मायाओ से

सदा संतप्त रहने के कारण रघुराम की अँगूठी देखकर भी मुझे विश्वास नही हो रहा है। तुम कौन हो ? सूर्यकुलाधिप का रूप कैसा है ? उनके अनुज सौमित्र का रूप कैसा है ? मेरे प्रभु अब कहाँ रहते है ? उन्होने तुम्हें कौन-सा सदेश सुनाने के लिए भेजा है ? तुम किस प्रकार समुद्र पार करके यहाँ आये ? तुम इन सब बातो का उत्तर दो, ताकि मुझे विश्वास हो जाय।'

तब हनुमान् सीता से इस प्रकार कहने लगा—'हे देवी, वायुदेव के वर-प्रसाद से केसरी नामक एक कपि-श्रेष्ठ तथा अजना देवी के पुत्र के रूप में मेरा जन्म हुआ। मेरा नाम हनुमान् है। इस पृथ्वी पर सुग्रीव नामक वानर-राजा का मै विश्वस्त मंत्री हूँ। उनके भाई वालि ने उनके राज्य तथा पत्नी को उनसे छीन लिया था। तब से वे अपने चार मत्रियो के साथ ऋष्यमूक पर्वत पर रहते थे। दशकंठ जब कपट रूप से आपको लिये जा रहा था, तब मैंने आपका विलाप सुना और सिर उठाकर आपकी ओर देखते रहे। आपने भी हमें देखा और एक वस्त्र में बाँधकर अपने कुछ आभूषण पृथ्वी पर गिरा दिये। उन आभूषणो को सुग्रीव ने सुरक्षित रखा। उसके पश्चात् रघुराम आपका अन्वेषण करते हुए अपने भाई के साथ पपा सरोवर के तट पर पहुँचे। उनको वहाँ देखकर सूर्य-पुत्र ने उनका समाचार जानने के लिए मुझे भेजा। मैंने जाकर उनकी सभी बातें जान ली और सुग्रीव की राम से भेंट करा दी। तब सूर्य-पुत्र ने राम को बडी भक्ति से आपके आभूषण दिखाये। उन्हें देख राम बहुत प्रसन्न हुए। उसके पश्चात् उन्होंने सुग्रीव के शत्रु वालि का सहार किया, और उपकार के भार से दबे सुग्रीव को कपियो का राजा अभिषिक्त किया। सुग्रीव राम को अपना प्रभु मानते हुए बडी भक्ति के साथ एक सेवक की भाँति रहने लगे। उन्होंने अनुपम बली दो लाख वानरो की सेना एकत्रित की और उनसे कहा—'तुम लोग जाकर सीताजी का पता लगाकर आओ और साथ-साथ घमडी राक्षसो के सैन्य-बल का भी पता लगाकर एक महीने के भीतर लौट आओ।' उनका आदेश मानकर सभी कपि सब दिशाओ में निकल पडे। आपका अन्वेषण करने के लिए अगद आदि कुछ लोग दक्षिण दिशा में आये। हमने बहुत देशो में आपको ढूँढा, पर कही आपका पता नहीं चला। तब हम अत्यंत दु:खी हुए। उस समय अरुण-पुत्र संपाति ने हमें लकापुरी का मार्ग बताया। आपके दर्शनार्थ मैंने अपने पराक्रम से समुद्र को पार किया और आज सूर्यास्त के समय दूसरो की आँखें बचाकर इस नगर में प्रवेश किया। मैंने अपना विशाल रूप छोड़कर लघु रूप धारण करके सब स्थानो में आपको ढूँढा; पर कही भी आपको मैं देख न सका। निदान मैं यहाँ आ पहुँचा, जहाँ आपके दर्शन हुए। फिर भी, मुझे सदेह था कि आप रविकुलाधिप की पत्नी है या नही। किन्तु जगदीश राम ने आपकी जो आकृति मुझे बतलाई थी, वह आपसे मिलती-जुलती है, इसलिए मेरा सदेह दूर हो गया। अभी-अभी जब रावण यहाँ आकर आपसे वार्त्तालाप कर रहा था, तब मै यही था। मैंने यह भी सोचा कि मैं अपनी अपार शक्ति से उससे युद्ध करूँ और उसका वध कर डालूँ। किन्तु, मैंने यही उचित समझा कि पहले आपसे भेंट कर लूँ, और आपके प्राणनाथ का कुशल-समाचार आपको सुना दूँ। उसके बाद रावण से भिडूँ। मुझे अपने प्राणो का मोह तिल-भर भी नही है।

इतना कहने के पश्चात् हनुमान् ने राम का कद, उनकी अवस्था, उनकी आँखो का सौदर्य, कठ का माधुर्य, मद हँसी से युक्त मुख की शोभा, नखो की आकृति, उन्नत स्कधो की सुदरता, कसी हुई कमर की मनोज्ञता, विशाल वक्ष की शोभा, कानो का रग, चलने का ढग, नाभि की सुघडता, जाँघो की विशालता, करो की लालिमा आदि शरीर के सभी लक्षणो का वर्णन किया। तत्पश्चात् उसने उनके शौर्य, धैर्य, ब्रह्मचर्य, उनकी शक्ति दाति, सयम और क्षाति (क्षमा) उनकी शक्ति, युक्ति, और पितृ-भक्ति तथा उनके शील और वर्त्ताव आदि का वर्णन किया। फिर उस पुण्यात्मा ने लक्ष्मण के रूप का भी वर्णन किया और तब राम की अँगूठी सीता को दी।

सीता ने अँगूठी ली और उसे देखकर ऐसी आश्वस्त हुई, मानो उनके खोये हुए प्राण लौट आये हो। राम के दर्शनो से भी अधिक उस अँगूठी को देखकर वह रमणी आनदित हुई। उन्होने उसे अपने वक्ष से ऐसे लगाया, मानो उसे अपने हृदय-रूपी सिंहासन पर बिठा रही हो, उनकी आँखो से आनद के अश्रु ऐसे बहने लगे, मानो वे उस अँगूठी को अर्घ्य-पाद्य आदि दे रही हो। वे पुलकित गात्र से उसे देखकर ऐसी मूच्छित हो गई, मानो धूप-दीप आदि दिखाने के पश्चात् वे उसके (उस अँगूठी के) सामने साष्टाग प्रणाम कर रही हो।

कुछ समय के पश्चात् वे सँभल गई और हनुमान् को देखकर कहने लगी—'हे कपिकुलोत्तम, हे राम-कार्य-तत्पर, हे उपकार-निरत, हे लोकोन्नत-चरित्रवान्, हे पवनकुमार, तुमने मुझे प्राण-दान किया है। मै तुम्हारा प्रत्युपकार कर नही सकती। काकुत्स्थतिलक की कृपा से तुम कल्पात तक जीवित रहो।' इस प्रकार आशीर्वाद देनेवाली जानकी को देखकर, महान् पराक्रमी वायुपुत्र ने हाथ जोडकर कहा—'हे देवी, मैने आपकी वह कृपा प्राप्त की है, जो ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र आदि देवताओ के लिए भी दुर्लभ है। मैने आपके दर्शन भी कर लिये। मेरे लिए यही क्या कम है?'

तब सीता अपने प्राणनाथ तथा देवर का कुशल-समाचार पूछती हुई बोली—'हे अनघ, अनुपम बलशाली रघुराम मुझसे बिछुडकर क्या धैर्य के साथ रह रहे है? व तथा उनके अनुज क्या कभी मेरा स्मरण करते है? क्या वे युद्ध करने के लिए शीघ्र यहाँ आनेवाले है? तब हनुमान् ने कहा—"हे माता, अपने प्राणनाथ का वृत्तात सुनिए। जिस दिन से वे आपसे जुदा हुए है, वे सतत वेदना से पीडित रहते है, धरती पर सोते है, निद्रा को तो वे जानते ही नही। मासाहार भी उन्होने छोड दिया है। वे सदा दण्डक-वन में आपके खो जाने की बात सोचते रहते है। सिर किंचित् झुका लेते है, लबी साँस खीचते है, आँखो में आँसू भर लेते है, मूच्छित हो जाते है, धरती पर गिर पडते है और चेतना लौटते ही उठकर चारो ओर शून्य दृष्टियो से देखने लगते है और व्यथा से पीडित तथा व्याकुल होते है। कभी-कभी हाय सीता! हाय सीता! कहकर पुकारते है। सुमित्रा-नदन जब उनकी यह दशा देखते है, तब वे भी दुखी हो जाते है। जब वे दोनो आपके यहाँ रहने का समाचार सुनेंगे, तब तुरत वहाँ से चल पडेंगे। वे मुझसे भी श्रेष्ठ, भयकर आकारवाले; अभेद्य पराक्रमवाले; नग, शृग, तरु, नख तथा दाँतो को आयुधो के रूप में प्रयोग करनेवाले; सुग्रीव, नल, अगद आदि भयकर वीरो को साथ लेकर, समुद्र को लाँघकर

किसी भी प्रकार यहाँ आयेंगे और आपको साथ लेकर अयोध्या जायेंगे। रावण रामके द्वारा युद्ध में मारा जायगा। आपकी इच्छा पूर्ण होगी। पर हे माता, इतना विलव क्यो ? चलिए, स्वय आपको अपनी पीठ पर लेकर, बडे यत्न से समुद्र को लाँघकर प्रात काल होते-होते प्रभु के पास पहुँच जाऊँगा।"

वायु-पुत्र के सद्‌गुणो से प्रसन्न होकर सीता बोली—"हे पवनसुत, तुम अवश्य ही इस प्रकार करने की क्षमता रखते हो। सचमुच तुम्हारी शक्ति वैसी ही है। किन्तु, हे अनघ, विवाह के दिन से अवतक लोकप्रभु, रामचद्र के सिवा अन्य पुरुष का स्पर्श स्वप्न में भी मैंने नही किया। यह नीच रावण मुझे यहाँ उठा लाया है, उसके स्पर्श का दुःख ही मुझे सतत सालता रहता है। उसने दुस्साहस के साथ वलात् मेरा स्पर्श किया। मै अन्य किसी पुरुषो के स्पर्श की कल्पना भी नही करती। तुम मेरे प्राणनाथ के विश्वास-पात्र अनुचर हो। फिर भी, मै तुम्हारी पीठ पर बैठकर चलना नही चाहती। लोग कहेंगे कि राम की पत्नी को धोखे से दैत्य उठा ले गया था और राम भी उसी प्रकार उसे वापस ले आये, इसलिए यह उचित नही है। पहले एक बार चित्रकूट में रहते समय राम मेरी गोद में सिर रखकर सो रहे थे। उस समय आरे के जैसे तीक्ष्ण नखोवाला एक कौआ वहाँ आया और अवसर देखकर मेरे कुच के मध्य में चोच मारी। जब (मेरे शरीर से) रक्त प्रवाहित होने लगा, तब सूर्यवश-तिलक की निद्रा खुल गई। उन्होने कौए पर एक बाण चला दिया। वह बाण ब्रह्मास्त्र बनकर बडी भयकर शक्ति के साथ उस कौए का पीछा करने लगा। तब वह कौआ दुहाई देते हुए सारे ससार में चक्कर काटने लगा। किन्तु कही, कोई भी उसे शरण देनेवाला नही मिला। तब वह फिर रामचद्र की शरण में आया, तो शरणागतवत्सल होने के कारण उन्होने उसे शरण दी और उसकी एक आँख अपने चलाये अस्त्र के लिए दिला दी। उस सूर्यवश-तिलक ने मेरे लिए यह सब किया।"

१४. सीता का संदेह

"हे पवनकुमार, मेरा प्राणनाथ को स्मरण दिलाना कि उस दिन का वह प्रेम और उस दिन का वह अस्त्र, वे क्यो भूल गये है ? आज पति से विछुडकर दस सहस्र प्रकार के कष्टो का सहन करते हुए मुझे दस महीने व्यतीत हो गये है। तुमने मेरी दशा देखी, मेरे कष्ट देखे। किसी भी प्रकार अब ये सहे नही जाते। कभी कम न होने-वाले दुःखो को सहते हुए एक दिन विताना मेरे लिए एक समुद्र को पार करने के समान है। तुम मेरे प्राणनाथ से ऐसी नम्रता के साथ मेरी ओर से यह निवेदन करना कि उनके मन में मेरे प्रति दया उत्पन्न हो। तुम उनसे कहना कि मेरे पिता जनक ने यह विश्वास करके कि आप (राम) अपने वचन का भग नही करेंगे, मुझे उनके हाथो में सौंपा था। अब मेरा हाथ छोडना उनके लिए उचित नही है। विवाह की वेदी पर, अग्नि-देवता को साक्षी बनाकर सदा मेरी रक्षा करने का वचन देकर वे मुझे ले आये। किन्तु, अब मेरी उपेक्षा करके उन्होने मुझे असहाय बना दिया है। अपनी स्त्री को दूसरे के हाथ में खोकर चुप बैठे रहना पौरुष नही कहलाता। इससे उनकी कीर्ति में कलक लगेगा। इसका मुझे बड़ा दुःख है। मेरे मन और प्राण उन्ही पर केन्द्रित है।

"हे हनुमान्, तुम सौमित्र से मेरी ओर से ये बातें कहना—'तुम मुझे अपनी माता के समान मानते थे। अब मुझको इस प्रकार भूल जाना और मेरी दशा का विचार नहीं करना क्या तुम्हारे लिए उचित है? मैंने तुम्हारे जैसे पुण्यात्मा को दण्डक वन में अपशब्द कहे थे, उसका फल मैं अब भुगत रही हूँ। अब विलंब मत करो, दया दिखाओ।' हे पवनकुमार, तुम अगद, रविपुत्र तथा अन्य वानरनायकों से अवसर के अनुकूल मेरे विनीत वचन कहना, और किसी भी प्रकार उन्हें रामचंद्र तथा लक्ष्मण के साथ यहाँ ले आना। मैं बड़े साहस के साथ एक मास तक तुम्हारे, आगमन की प्रतीक्षा करूँगी। उसके पश्चात् मैं जीवित नहीं रह सकूँगी। इस अवधि के भीतर तुम अवश्य रघुराम को किसी भी प्रकार से यहाँ ले आना। अब तुम शीघ्र यहाँ से जाओ।"

सीता के इन वचनों को सुनकर हनुमान् विनम्र होकर बोले—'हे माता, ऐसा ही होगा। मैं आपकी सभी बातें उनसे कह दूँगा। अब आप आश्वस्त हो जाँय। हे देवी, मैंने आपको रघुराम की अँगूठी ला दी थी। अब मैं रिक्त हाथों यहाँ से जाऊँ, यह दूत के लिए उचित नहीं है। अत, आप अपने चिह्न के स्वरूप में कोई रत्न दीजिए।' तब सीता बोली—'तुम देखने में इतने छोटे हो, तब इस विशाल समुद्र को किस प्रकार पार कर सकोगे? महान् बल तथा पराक्रम से पूर्ण अपना सच्चा रूप तुम मुझे दिखाओ। तुम्हारा निज रूप देखे बिना मैं तुम्हें अपनी चूडामणि नहीं दूँगी।'

तब हनुमान् ने अपना रूप इतना ऊँचा बनाया कि सारा आकाश उनके शरीर पर व्याप्त हो गया। चमकनेवाले नक्षत्रों का समूह पहले उनके कंठ का मालती-मल्लिका का हार बना, फिर वक्षःस्थल पर शोभित होनेवाले रजत का हार बना और उसके पश्चात् उसके कटि-प्रदेश को अलंकृत करनेवाली चाँदी की क्षुद्र घंटिकाओं की मेखला बन गया। ऐसा अत्यंत भयंकर रूप धारण करके जब हनुमान् सीताजी के समक्ष खड़ा हुआ, तब वे मन ही मन भयभीत हो गई और कहने लगी—'हे अनुपम गात्रवाले, हे अंजनासुत, तुम्हारा यह रूप आश्चर्यजनक है। शीघ्र ही इस रूप का उपसंहार करो।' यों कहकर उन्होंने हनुमान् की प्रशंसा की और उसे आशीर्वाद दिया। उसका विश्व-रूप देखकर देवता भी उसकी प्रशंसा करने लगे। फिर पवनपुत्र ने विष्णु के समान, उस विशाल आकार को छोड़कर लघु रूप धारण कर लिया। तब सीता ने बड़े स्नेह से हनुमान् को अपने निकट बुलाया, अपनी साडी के छोर में बँधी हुई चूडामणि निकाली और बड़ी प्रीति से उसे हनुमान् के हाथों में रखा। हनुमान् ने बड़ी भक्ति के साथ उसे ग्रहण किया और प्रणाम करके, उनकी आज्ञा लेकर वहाँ से विदा हुआ।

१५. अशोक-वन का ध्वंस

हनुमान् ने सोचा—मैं अब रावण को अपने आगमन का समाचार बताता हूँ। फिर, उसने शरीर बढ़ाया थोड़ी देर तक सोचने के पश्चात् वन का नाश करने के उद्देश्य से उस वन के वृक्षों को तोड़कर और अपने उरु से उत्पन्न बवंडर (प्रचंड वायु) के धक्कों से उस वन के वृक्षों को तोड़कर इस प्रकार गिरा दिया, मानो वे (कपडे के) ताने-बाने हों। फिर, नित्य अलंकृत उस अशोक-वन में रहनेवाली रमणीय अट्टालिकाओं को पृथ्वी पर गिरा दिया, क्रीडा-गृहों को चूर-चूर

कर दिया, वृक्ष की शाखाओ को तोड दिया, फूलो को झाड़ दिया और उनके सुगंधित मकरद को बिखेर दिया; नालो को नष्ट कर दिया; पुष्प-लताओं को तोड दिया; निकुंजो को छिन्न-भिन्न कर दिया और तालावो के जल को आलोड़ित करते हुए उसमें अच्छी तरह तैरने लगा। हनुमान् के इस भयकर कृत्य के कारण पिक, वक, सारस, क्रौंच, कलहंस, शुक, शारिका, मयूर आदि सभी पक्षी आर्त्तध्वनि करते हुए उडने लगे। तव वन के माली जाग पड़े और हनुमान् से युद्ध करने के लिए तैयार हुए। आकाश तथा दिगंतो को अपने गर्जनो से गुंजायमान करते हुए वे हाथ में अनुपम करवाल लेकर हनुमान् पर झपटे। हनुमान् अपने नाम, अपने आगमन-कारण तथा अपनी शक्ति का परिचय देकर बड़ी भयकर गति से एक-एक राक्षस का सहार करने लगा। इस प्रकार, अनिलकुमार ने प्रथम युद्ध का प्रारंभ किया और अत्यधिक शक्ति से सपन्न आठ सहस्र घोर राक्षसो का सहज ही वध कर दिया तथा पृथ्वी पर शवो का ढेर लगा दिया। उसके पश्चात् जब हनुमान् ने गर्जन किया, तब सीता की रखवाली में नियुक्त राक्षसियाँ भी भयभीत हो गईं। उनका धैर्य जाता रहा। वे भागती हुई लोक-कंटक रावण के पास गईं और कहने लगी—'हे देव, आज एक वानर बड़े साहस के साथ अशोक-वन में आया है। उसने कुछ समय तक वैदेही से बातचीत की और उसके पश्चात् वह सारे वन को उजाड़ने लगा। उसने उद्यान की रक्षा करनेवाले आठ सहस्र राक्षसो का वध कर दिया है। वह राघव का भेजा हुआ लगता है। अन्यथा, जिस वृक्ष के नीचे सीता वैठी हुई है, केवल उस वृक्ष को छोडकर सारे वन को उखाड फेंकने का दूसरा कारण क्या हो सकता है? उसके सबध में वैदेही से हमने पूछा भी, किन्तु उन्होंने अपनी अनभिज्ञता प्रकट करके सत्य को छिपा रखा। इसमें कोई सदेह नही है कि वह वानर राघव का दूत ही है। अब आप अवश्य अपनी शक्ति तथा पराक्रम से उसे पकड़कर दण्ड दीजिए।'

१६. हनुमान् का राक्षसों का वध करना

इन बातो को सुनकर दानव-लोक-प्रभु रावण आग-बबूला हो गया। उसकी दृष्टि भयकर हो गई। उसकी आँखो से दीपशिखा-सी, दीप्त लौ की भाँति अग्नि-ज्वाला निकलने लगी। उसने तुरन्त अपने अस्सी हजार अत्यंत पराक्रमी राक्षस-वीरो को भेजा। वे बडे उत्साह से, अपना प्रताप दिखाते हुए धनुष, अस्त्र, शूल, मुद्गर, गदा, तलवार आदि आयुधो से युक्त हो, युद्ध के लिए सन्नद्ध हो, गर्जन करते हुए निकले।

इतने में सूर्योदय हुआ। पर्वताकार हनुमान् का उत्साह और भी बढ़ गया। वह मकर-तोरण पर चढ गया और चारो ओर से घेरकर आनेवाले तथा शस्त्रो के प्रहार से कष्ट पहुँचानेवाले राक्षस-वीरो को देखकर बडे दर्प के साथ बोला—'हे राक्षसो, मैं महान् शूर सुग्रीव का अनुचर हूँ। राम का दूत हूँ। रामचद्र का कुशल-समाचार, सीताजी से कहकर वापस जा रहा हूँ। मेरा नाम हनुमान् है। मैं अत्यधिक बलवान् हूँ। प्रशंसनीय पराक्रम तथा चातुर्य के वैभव से सपन्न वीर हूँ। लकापुरी में रहनेवाले पुरुषो के लिए मैं काल बनकर आया हूँ। अब तुम लोग मुझे छेड़कर क्यो मरना चाहते हो?'

इतना कहकर वह अपने रण-कौशल तथा शौर्य को प्रकट करते हुए सहस्रो राक्षस-सैनिको को अपने भयकर लांगूल में बाँधकर उन्हें तोरण के स्तंभो से मारने लगा।

इस प्रकार, उसने एक भी राक्षस को जीवित लौटने नहीं दिया और युद्ध में आये हुए वीरों को नि:शेष कर दिया। उद्यान के रक्षक भयभीत होकर भागे-भागे रावण के निकट पहुँचे और कहने लगे—'हे दनुजेश, अपना भीषण रण-कौशल प्रदर्शित करते हुए उस वानर ने अपनी पूँछ से अस्सी सहस्र राक्षस वीरों का नाश कर दिया और अब मकर-तोरण पर इठलाता हुआ बैठा है।

रावण कालातक (शिव) की भांति क्रोध से अभिभूत हुआ और पिंगलाक्ष, दीर्घ-जिह्व, वक्रनास, अश्मवक्ष, तथा शत्रुओं के लिए भयकर रूपवाले शार्दूलमुख को बुलाकर कहा—'तुम शीघ्र जाकर उस वानर का वध करके आओ।' रावण की आज्ञा सिर पर रखकर वे प्रबल सेना के साथ रथों पर बैठकर चल पड़े और भयकर गर्जन करते हुए पवनपुत्र के निकट पहुँचकर उस पर आक्रमण करने लगे। उनकी बाण-वृष्टि से विचलित न होकर अपनी सारी शक्ति एकत्रित करके हनुमान् ने अपनी पूँछ घुमाकर उन राक्षसों के रथों को तोड़ डाला, सारथियों को मार डाला, रथ के घोड़ों को मार डाला, हाथियों को मार गिराया और तुरगों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इस प्रकार, सारी राक्षस-सेना को धूल में मिलाकर हनुमान् तोरण से नीचे पृथ्वी पर कूद पड़ा और अपनी पूँछ को फदे के समान बनाकर वक्रनास के कठ में लपेट दिया और उसका गला घोटकर उसे मार डाला। इससे सतुष्ट न होकर हनुमान् ने बढ़ते हुए क्रोध, साहस तथा शौर्य से दीप्त होते हुए, भयकर गर्जन करते हुए, वज्र से भी कठोर दीखनेवाली अपनी मुट्ठी से अश्मवक्ष पर ऐसा प्रहार किया कि वह रक्त उगलते हुए पृथ्वी पर लुढ़क गया। तब अनुपम भुज-बल से झूमनेवाले उस हनुमान् को घेरकर अन्य राक्षस-वीर युद्ध करने लगे, तो हनुमान् ने उन सब का भी सहार कर दिया। फिर, शार्दूलमुख को वेग से घुमाकर पृथ्वी पर ऐसा पटका कि उसका सिर चूर-चूर हो गया। उसके पश्चात् उमड़ते हुए क्रोध से समस्त राक्षसों को व्याकुल करते हुए हनुमान् ने अत्यत क्रूरता के साथ अपनी पूँछ से बाँधकर पिंगलाक्ष को ऐसा घुमाया, जैसे बवडर सूखे पत्ते को घुमाता है, और फिर उसको तोरण के स्तभ से दे मारा।

इस प्रकार, अपने अद्वितीय पराक्रम से उसका वध करके, हनुमान् ने दानव-सेना में प्रवेश किया। उसने बड़े वेग से दीर्घजिह्व पर आक्रमण किया और अपनी कठोर मुष्टि के आघात से उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। फिर हनुमान् ने उसकी जीभ खींचकर उसका सहार कर डाला और फिर तोरण पर जा बैठा। हनुमान् के इस घोर कृत्य को देखकर बचे हुए दैत्य भयभीत होकर भाग गये और सारा वृत्तान्त दनुजेंद्र को जा सुनाया। तब दशकठ ने क्रोधावेश में आकर अपने मत्री के पुत्र रक्तरोम, शतजिह्व, रुधिरलोचन, स्तनित-हास, शूलदष्ट्र, दुर्मुख तथा महान् शक्तिशाली व्याघ्रकबल नामक राक्षसों को बुलाया और कहा—'एक वानर उद्दण्ड होकर राक्षसों का सहार कर रहा है। तुम जाकर उसका वध कर डालो।'

तब वे महाबली राक्षस गर्जन करते हुए, अनुपम रथों पर बैठकर, चतुरगिणी सेना को साथ लेकर चल पड़े। मकर-तोरण पर अप्रतिहत शौर्य के साथ उपस्थित हनुमान् को

यम के समान आँखो से अग्निवर्षा करते हुए (हनुमान् के प्रत्याघात की प्रतीक्षा में) खडा रहा। इतने में हनुमान् ने उस दैत्य के रथ को अपने पदाघात से पृथ्वी पर गिरा दिया, अपने दाँतो से उसे पकडकर उसके खड-खड कर दिये। फिर एक विशाल सालवृक्ष के प्रहार से उसके रथ के अश्वो तथा सारथी को चूर-चूर कर दिया और सिंहसम गर्जन किया। तब जबुमाली रथ-हीन हो ढाल तथा खड्ग हाथ में लिये, अपनी प्रचड शक्ति प्रदर्शित करते हुए, पवनसुत के भालपर प्रहार किया, तो वह मूर्च्छित हो गया, किन्तु शीघ्र ही वह सँभलकर उठा और अपनी वज्रसम मुष्टि के आघात से उसके ढाल के टुकडे-टुकडे कर दिये। फिर, उस दैत्य को पकडकर हनुमान् ने बलात् उसका खड्ग छीन लिया और भयकर गति से उस राक्षस के सिर पर ऐसा प्रहार किया कि वह राक्षस पृथ्वी पर गिर पडा। उसके पश्चात् हनुमान् ने बची हुई सेना पर आक्रमण करके उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। इस प्रकार, हनुमान् बडी चतुरता तथा पराक्रम से विजय प्राप्त करके तोरण पर जा बैठा। अपने प्राण बचाकर जो लोग भाग गये थे, उन्होने हनुमान् के पराक्रम का सारा वृत्तात रावण को जाकर सुनाया।

उनकी बातें सुनकर रावण को महान् आश्चर्य हुआ। उसने अपने मत्रियो को बुला भेजा और कुछ समय तक उनके साथ परामर्श करने के पश्चात् इन्द्र को भी युद्ध में परास्त करनेवाले, घोर पराक्रमी तथा क्रूर, विरूपाक्ष, उपाक्ष, कलहदुर्दर, भासवर्ण तथा प्रघस नामक पाँच प्रचड योद्धा तथा अग्र-सेनापतियो को देखकर कहा—'किसी भी लोक में वानरो की ऐसी शक्ति हमने न देखी, न सुनी है। हमें पता नही कि यह कौन है। तुम पाँचो वीर, अगणित सेना को साथ लेकर जाओ और अपना भीषण बल तथा युद्ध-कौशल प्रकट करते हुए, सावधान होकर उस वानर को बदी बनाकर मेरे सामने उपस्थित करो।'

रावण की आज्ञा को सिर पर धारण करके, अग्नि तथा सूर्य की-सी प्रभा से दीप्त होते हुए, वे पाँचो राक्षसवीर, असख्य रथ, गज, तुरग, तथा पदचर सेना को साथ लेकर शीघ्र चल पडे और उदयाद्रि पर प्रकाशमान होनेवाले सूर्य के समान, तोरण पर विराजमान होकर दिगतो तक अपने तेज को व्याप्त करनेवाले तथा दैत्य-वीरो के साथ रण करने के लिए उद्यत, पवनसुत को घेर लिया। फिर, उन्होने पृथ्वी तथा आकाश को अपने भयकर सिंहनादो से विदीर्ण करते हुए हनुमान् पर दिव्य शस्त्रो की घोर वृष्टि आरभ की। उन राक्षसवीरो में, दुर्दर नामक राक्षस हनुमान् का शिरच्छेदन करने के उद्देश्य से, उस पर एक साथ पाँच बाण चलाये। तब हनुमान् भयकर क्रोध के साथ गर्जन करके आकाश की ओर उडा। दुर्दर भी उसके साथ उडा और धनुष पर तीर चढ़ाकर प्रलयकाल के भयकर मेघ की भाँति शरवृष्टि करने लगा। पवनकुमार ने उस भयकर शर-वृष्टि को असफल करते हुए, आकाश में और भी ऊँचा उडकर बडे वेग के साथ दुर्दर के ऊपर कूदा, जिससे वह राक्षस, चूर-चूर होकर पृथ्वी पर गिर पडा।

इसे देखकर, विरूपाक्ष तथा उपाक्ष नामक राक्षस अति भयकर ढग से मुद्गरो से सज्जित होकर आकाश में उडकर खडे हुए और सिंहनाद करने लगे। तब हनुमान् भी उनकी ओर लपका और उनसे भिड गया। उन्होने हनुमान् पर अपने घोर मुद्गरो का

प्रहार किया, तो हनुमान् पृथ्वी पर गिर पडा। फिर तुरंत वह उठा और एक विशाल साल-वृक्ष को उखाडकर हुंकार करते हुए उनकी ओर लपका और बड़े वेग से उस वृक्ष को घुमाकर उन राक्षसो पर प्रहार किया और एक ही प्रहार से उन्हें पृथ्वी पर गिरा दिया।

तब भासकर्ण तथा प्रघस नामक राक्षसो ने अनिलपुत्र पर आक्रमण किया और अपने शूल तथा मुद्गरो की चोट से उसे व्याकुल कर दिया। उनके प्रहारो से हनुमान् घायल हो गया और उसके अगो से रक्त वहने लगा। तब वायुपुत्र अत्यधिक क्रोधावेश में आकर कुलपर्वत-सदृश एक विशाल पर्वत को उखाडकर उन राक्षसो पर फेंका कि राक्षस ऐसे चूर-चूर होकर गिर गये, जैसे घूस के द्वारा भीतर से खोखला बना दिये जाने पर, ऊपर की धरती गिर जाती है।

इसके पश्चात् वायुपुत्र यमराज की भाँति राक्षस-सेना का सर्वनाश करने लगा। हाथियो का हनन हुआ, तुरग तहस-नहस हुए, पदाति-सेना परास्त हुई, रथ ध्वस्त हुए, शूर गिरे, महारथी मरे, सारथी दब गये, शस्त्रास्त्र चूर-चूर हो गये, महावत मारे गये, घुड-सवार गिर गये, छत्र झुक गये, ध्वजाएँ ध्वस्त हुई और रक्त की नदियाँ वह चली तथा मास-खडो मे आकृष्ट हो वहुत-से भूत वहाँ एकत्रित हो गये। इस प्रकार पवन-कुमार ने एक ही क्षण में सारी सेना का ध्वस किया और रण की आकाक्षा करते हुए तोरण पर जा वैठा।

१७. अक्षयकुमार का हनुमान् पर आक्रमण करना

हतशेष राक्षस भागते हुए रावण के पास पहुँचे और उसे पाँचो अग्र सेनापतियों की मृत्यु का समाचार सुनाया। तब राक्षसराज ने, रण-कौशल में निपुण, मन्मथाकार, परिष्कृत विचारवाले, अक्षीण शौर्यवाले, भयंकर शूर तथा महावीर अक्षयकुमार को बुलाकर कहा—'तुम जाकर बड़े यत्न के साथ उस वानर को युद्ध में मार डालो और उसका सिर काटकर तोरण के स्तभ पर लटका दो।'

पिता का आदेश मानकर अक्षयकुमार, शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित तथा अपनी पताका से अलकृत हो, उदित होनेवाले सूर्य की-सी काति से शोभायमान होते हुए, आठ घोड़े जुते हुए रथ पर बैठकर शीघ्र गति से चला। उसके चलते समय पृथ्वी काँपने लगी, रथ के चलने से उत्पन्न ध्वनि, घोड़ो की हिनहिनाहट, हाथियो की चिघाड़, राक्षसो के हुंकार, तथा उस (अक्षयकुमार) के धनुष के टकार, इन सबकी सम्मिलित ध्वनियो से समस्त आकाश गूँजने लगा। वहाँ पहुँचकर अक्षयकुमार ने तोरण पर आरूढ पवनपुत्र को घेर लिया, और तीनो लोको को, कँपाते हुए, दिशाओ को हिलाते हुए, अपने बाहुबल को प्रकट करते हुए, हनुमान् पर असख्य बाणो की ऐसी वर्षा की कि दर्शको को आश्चर्य होने लगा। हनुमान् ने निश्चय किया कि मुझे यह नही सोचना चाहिए कि यह बालक है। यह शौर्यनिधि दिखाई देता है। यो सोचकर उन्होने अविचलित भाव से उन बाणो को अपने लागूल से तोड डाला। अक्षयकुमार ने भी हनुमान् की प्रशसा करते हुए उसके सिर पर तीन बाण ऐसे चलाये कि उसके सिर से रक्त की धाराएँ बह चली। रक्त की धाराओ से युक्त हनुमान् लाल किरणो से युक्त बालसूर्य की तरह दीखने लगा। राक्षसकुमार के बाणो से आहत होते ही

हनुमान् क्रोध से प्रलयकालाग्नि की भाँति भभक उठा और एक ताल-वृक्ष लेकर उससे उसके रथ के अश्वो को मार डाला । तब वह (राक्षसकुमार) पृथ्वी पर खडे होकर हनुमान् के भाल पर दस शर ऐसे चलाये कि हनुमान् मूर्च्छित होकर गिर पडा । किंतु वह शीघ्र ही सँभल गया और अपनी पूँछ से अक्षयकुमार पर ऐसा प्रहार किया कि वह विचलित हो उठा । तब उसने अपनी गदा को अनिलकुमार के वक्ष पर ऐसा चलाया कि वह मूर्च्छित हो गया । किन्तु, शीघ्र ही उसकी चेतना लौट आई और वह अक्षयकुमार पर झपटकर उसकी गदा छीन ली और उसी को उस पर पूरी शक्ति से चलाया । तब अक्षयकुमार ने एक बाण चलाकर उस गदा को रोक लिया और अपने को बचा लिया । फिर, वह करवाल तथा ढाल लेकर आकाश की ओर उडा । वायुपुत्र भी उसके साथ-साथ आकाश में उडा । हनुमान् ने तब अपने शत्रु पर गदा चलाई । लेकिन, अक्षयकुमार ने अपने खड्ग से उस गदा के दो टुकडे कर दिये और तुरत अपने खड्ग से हनुमान् की जाँघो पर प्रहार किया । उस खड्ग की चोट खाकर वायुनदन पृथ्वी पर गिर पडा । लेकिन, वह तुरत ऊपर की ओर उछला और अक्षयकुमार की दोनो टाँगें पकडकर उसे ऐसे खीच लिया, जैसे गरुड़ सर्प को अपने वश में कर लेता है । फिर, उसने अक्षयकुमार को कुम्हार के चाक के समान बडे वेग से चारो ओर घुमाकर पृथ्वी पर पटक दिया, तो उसका सारा प्रताप जाता रहा । उसके सिर का मुकुट छिन्न-भिन्न हो गया और उस मुकुट के सभी रत्न बिखर गये, उसका हृदय-पिंड फट गया, आँतें निकल आईं; मास-पेशियाँ छिन्न-भिन्न होकर गिर पड़ी । आँख की पुतलियाँ कुचल गई, सारा शरीर विदीर्ण हो गया और रक्त की धारा उगलते हुए उस राक्षस ने अपने प्राण छोड दिये । उसकी वैसी मृत्यु देखकर इन्द्र आदि देवता आनद से फूल उठे और वायुपुत्र की प्रशसा करने लगे । ऐसी अनुपम विजय को साधकर हनुमान् हर्षध्वनि करने लगा ।

भयभीत होकर भागे हुए राक्षस-सैनिको ने देवताओ के शत्रु रावण की सभा में पहुँचकर निवेदन किया—'हे दानवेन्द्र, उस वानराधिप का बाहुबल आश्चर्यजनक है । अशोक-वन के रक्षक समाप्त हुए, अत्यत पराक्रमी राक्षस-सैनिक मृत्यु का ग्रास बने, शतजिह्व नष्ट हो गया, शार्दूलमुख प्राण खो बैठा, पिंगलनेत्र की मृत्यु हुई, स्तनितहास मर गया; शार्दूलकबल युद्ध में मारा गया, जबुमाली नष्ट हुआ, वक्रनास समाप्त हो गया, रक्तरोम की मृत्यु हो गई; रुधिराक्ष की जीवन-लीला समाप्त हो गई, सेना के साथ शूलदष्ट्र कुचल दिया गया, प्रतापी दीर्घजिह्व कट मरा; दुर्मुख का नाम ही शेष रह गया, दुर्धर मृत्यु को प्राप्त हुआ, प्रघस गिर गया, भासकर्ण चूर-चूर हो गया, उपाक्ष का नाश हुआ; विरूपाक्ष ने अपने प्राण गँवा दिये, अश्मवक्ष का वध हो गया और अक्षयकुमार भी मारा गया । हमारी दुर्वार सेना भी नष्ट हो गई । निस्सदेह उस वानर को इन्द्र आदि देवता भी युद्ध में परास्त नही कर सकेंगे । ऐसा लगता है कि वह प्रलयातक (रुद्र) को भी परास्त करने की क्षमता रखता है । सच पूछा जाय, तो वह राक्षसो को निगल जाने के निमित्त वानर-रूप धारण करके आया हुआ मृत्यु-देवता ही है ।' इन बातो को सुनकर स्वर्गलोक का शत्रु रावण अक्षयकुमार की मृत्यु के लिए विलाप करने लगा—

'हे कुमार, हे प्रिय अक्ष, हे वीर, एक कपि के हाथों तुम्हें मरना पड़ा ! हाय, यह कैसी विपरीत बात हुई !'

१५. इन्द्रजीत का हनुमान् को बन्दी बनाना

इस प्रकार, शोक-संतप्त होनेवाले पिता को देखकर इन्द्रजीत ने कहा—'हे देव, आप इस प्रकार धैर्य खोकर दुःखी क्यों होते हैं। मैं अभी उस नीच वानर पर आक्रमण करता हूँ। या तो उसे युद्ध में अवश्य मार ही डालूँगा, या बड़े पराक्रम के साथ उसे बंदी बनाकर आपके समक्ष उपस्थित करूँगा। आप शोक मत कीजिए।'

अपने ज्येष्ठ पुत्र की इन बातों को सुनकर रावण को धीरज हुआ और वह कहने लगा—'हे पुत्र, तुमने चिरकाल तक इन्द्र को बंदी बनाकर रखा था। माया तथा शक्ति में तुम प्रौढ़ हो, तुम्हारा पराक्रम मुझसे भी श्रेष्ठ है। इस पृथ्वी पर तुम्हारी समता कौन कर सकता है ? फिर भी, उस वानरश्रेष्ठ को साधारण वीर मत समझो। सतत सावधान रहते हुए अपने दिव्य बाणों के प्रभाव से तथा अपनी सहज शक्ति के प्रताप से विजय प्राप्त करके लौटो।'

पिता की आज्ञा पाकर मेघनाद अग्नि तथा सूर्य के समान दीप्तिमान् रथ पर आरूढ होकर चला। उसके धनुष के अगणित टंकारों से दिग्गजों के कर्णपुट विदीर्ण हो गये। अपने गर्जन से सभी लोकों को भयभीत करते हुए दिगंतों की संधियों को शिथिल बनाते हुए, उसने हनुमान् पर आक्रमण किया। उस समय देवता, मुनि, इन्द्र आदि दिक्पाल, तथा किन्नर स्वर्ग से बड़े कौतूहल से यह दृश्य देखने लगे। इन्द्रजीत ने हनुमान् पर अद्भुत तथा तीक्ष्ण बाणों की ऐसी वृष्टि की कि हनुमान् के शरीर पर तिल धरने के लिए भी स्थान न रहा; किन्तु पवनपुत्र ने उन शरों को अपनी पूँछ से छिन्न-भिन्न करके अपने को बचा लिया और अपने विशाल बाहु-बल तथा पराक्रम का परिचय दिया। ऐरावत को जीतनेवाला इन्द्रजीत पवनपुत्र के इस अनुपम बल पराक्रम को देखकर आश्चर्य-चकित हो गया और कई दिव्यास्त्र उस पर चलाये। पवनपुत्र ने उन अस्त्रों को नष्ट-भ्रष्ट करके विशाल वृक्ष तथा पर्वतों को उठाकर इन्द्रजीत पर फेंका। मेघनाद ने अपने तीक्ष्ण शरों से उन्हें छिन्न-भिन्न कर डाला। इस पर पवनपुत्र क्रोध से इन्द्रजीत पर झपटा और उसके रथ तथा उसके घोड़ों को अपने पदाघात से चूर-चूर कर दिया। इन्द्रजीत रथ से वंचित हो गया। हनुमान् के शौर्य को देखकर आश्चर्यचकित होते हुए उसने उन पर वायव्यास्त्र चलाया। हनुमान् तो वायुपुत्र ही था, इसलिए उस अस्त्र का कोई प्रभाव उन पर नहीं हुआ और वह अविचल खड़ा रहा। तब मेघनाद ने उन पर रौद्रास्त्र चलाया। हनुमान् में रुद्र का अंश भी था, इसलिए उसका भी कोई प्रभाव हनुमान् पर नहीं हुआ और वह अटल खड़ा रहा। यह देखकर इन्द्रजीत के क्रोध की सीमा नहीं रही। उसने अत्यधिक क्रोध से हनुमान् पर दुर्जेय ब्रह्मास्त्र चलाया। उसे देखकर सभी देव, सिद्ध तथा साधक भीत हुए। वह अस्त्र पृथ्वी तथा आकाश को [illegible] करते हुए बड़े वेग से हनुमान् की ओर आने लगा। हनुमान् को ब्रह्मा ने वर दे रखा था कि ब्रह्मास्त्र से उनके प्राणों की हानि नहीं होगी। फिर, वह उस अस्त्र को देखकर [illegible] हुए, ब्रह्मास्त्र का [illegible] करते हुए,

खडा रहा । ब्रह्मास्त्र उसके प्राण नही ले सकता था, इसलिए उसने हनुमान् को बांध-कर पृथ्वी पर गिरा दिया । मारुति को गिरा हुआ देखकर समस्त राक्षसो ने, 'मारो, मारो, पकडो, बांधो,' कहकर चिल्लाते हुए उसे घेर लिया और उमडते हुए क्रोध से हनुमान् को मजबूत रस्सियो से बांध दिया । अवश होकर गिरे हुए हनुमान् के पास पहुँचकर इन्द्रजीत ने सोचा कि यह महावली ब्रह्मास्त्र के लगने पर भी प्राण खोये बिना, बँधा हुआ पडा है । न जाने यह वानर कौन है ? इसका वध नही करना चाहिए ।

इस प्रकार निश्चय करके वह शक्तिशाली शीघ्र ही हनुमान् को अपने पिता के समक्ष उपस्थित किया । रावण तथा उसके मत्री इद्रजीत की शक्ति तथा निपुणता को देख-कर अत्यधिक हर्षित हुए । हनुमान् को देखकर रावण अपनी आँखो से अग्निवर्षा करते हुए बोला—'हे वानर, तुम मेरे नगर में अकेले कैसे प्रविष्ट हो सके ? तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? तुम किस उपाय से समुद्र पार करके यहाँ आये ? तुम्हें किसने भेजा ? शिव ने ? हरि ने या ब्रह्मा ने ? सुर, गरुड, उरग, सिद्ध, साध्य, नर तथा खेचर मेरा नाम सुनते ही भय से काँप उठते है । ऐसी दशा में तुम निर्भय होकर मेरे ऐसे नगर में कैसे आये, जिसमें आने से इन्द्र भी डरता है ? तुमने धोखे से इस नगर में प्रवेश किया और मेरे उपवन का सर्वनाश करके अपने पराक्रम का परिचय दिया। बडी वीरता दिखाकर कुछ बूढे तथा दुर्बल राक्षसो का वध किया । तुम्हारे दीप्तिमान् तेज को देखने से अनुमान होता है कि तुम साधारण कपि नही हो । यदि तुम अपने आगमन का सही-सही कारण बताओ, तो मै तुम्हारे सभी अपराध क्षमा कर दूँ ।'

१९. हनुमान् का रावण को अपने आगमन का कारण बताना

तब हनुमान् ने उस दशकठ को देखकर बडे क्रोध से कहा—"हे राक्षस, हे नीचात्मा, हे पापकर्मी, हे दुष्ट, मै उस राक्षसकुलातक, जगदीश्वर राम का दूत हूँ, जिनकी कीर्ति समस्त ससार में व्याप्त है, और जिन्होने दशरथ के पुत्र के रूप में जन्म लेकर विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की, शिव-धनुष को तोडा, अपनी महान् शक्ति से परशुराम का गर्वभग किया, खर-दूषण आदि राक्षसो का नाश किया, तुम्हें अपनी पूँछ से बाँधकर समुद्रो में डुबोनेवाले वालि का एक ही वाण से सहार किया, सुग्रीव का राजतिलक किया, और जो अपनी अक्षय शक्ति के कारण कोदण्ड-दीक्षा-गुरु के नाम से विख्यात है । मेरा नाम हनुमान् है, मै सुग्रीव का मत्री हूँ । सूर्यकुल-निधि राम के भेजने पर मै वहे हर्ष से उनकी अँगूठी लेकर, सीताजी का अन्वेषण करते हुए समुद्र पार करके तुम्हारे नगर में आया । सब स्थानो में ढूँढने पर भी सीताजी का पता नही पा सका । इससे मै अत्यत दुखी हुआ, आखिर उन्हें उस उपवन में देखा और अपने प्रभु की अँगूठी देकर उन्हें राम का कुशल-समाचार सुना दिया । फिर, उनकी दशा का वृत्तात राम को सुनाने के लिए मै लौटने लगा । जाने से पहले मै अपने आगमन का समाचार तुम्हें बता देना चाहता था, इसलिए मैंने तुम्हारे वन को उजाडा, उसके रक्षको का वध किया, अस्सी सहस्र राक्षसो का नाश किया, तुम्हारे मत्रिकुमारो तथा अक्षयकुमार का सहार किया और तुम्हारा रूप-रग देखकर यहाँ से लौटने के विचार से वदी बना । राम के अनुयायी सुग्रीव की सेना में घुसने की

अधिक पराक्रमी तथा बाहु-बल में श्रेष्ठ करोड़ो वीर है । ऐसे बलवान् भी है, जो ब्रह्मादि देवताओ को भी जीत सकते हैं और जो तुम्हारे नाम से ही जलते हैं । ऐसे करोड़ो वीरो के साथ राम समुद्र को पार करके लका पर आक्रमण करेंगे, हठ तथा क्रोध से राक्षसो का सहार करने के पश्चात् तुम्हारे सिर काटकर तुम्हारा अत कर देंगे और सीता को साथ लेकर वापस जायेंगे । यह सत्य हैं । यदि तुम बुद्धिमान् हो और नीति के पथ पर चलना चाहते हो, तो सुनो । तुम शीघ्र सीताजी को उन्हें सौप दो और उस आश्रित लोक-रक्षक रघुराम की शरण में जाओ । शत्रुता करने से कोई लाभ नही; इसलिए तुम उसे (शत्रुता को) तज दो । मृत्यु का शिकार न बनकर अपने प्राणो की रक्षा करो ।"

ऐसे हित वचन कहनेवाले हनुमान् को देखकर क्रोध, गर्व और मात्सर्य से अभिभूत होकर घनघोर बादलो के समान गरजते हुए दशकठ ने प्रहस्त को आज्ञा दी—'यह नीच निर्भय होकर मेरे सामने ऐसे अपशब्द कह रहा है । इस नीच कपि को ले जाकर तुरन्त इसका वध कर दो ।' तब विनय-भाषण तथा विवेक-भूषण से सपन्न अनघो का पोषण करनेवाले, शत्रुओ के लिए भीषण दीखनेवाले विभीषण ने, रावण की आज्ञा के परिणाम के सबध में सोच-विचार करके बड़ी नम्रता के साथ रावण से निवेदन किया—'अपने प्रभु के द्वारा भेजे गये दूत, सदा कोई-न-कोई ऐसी बात कहते ही है । यह उनका सहज गुण होता है, इसलिए आप अपना क्रोध शात कीजिए । इतना ही नही, दूत अवध्य होता है । अत., इस कपि को मारना उचित नही है । आप अपने हठ और क्रोध राम तथा लक्ष्मण पर दिखाइए । इसे मुक्त कर दीजिए । यदि आपका क्रोध शात नही होता हो, तो इसे कोई छोटा दड देकर भज दीजिए ।'

२०. लंका-दहन

उसके नीति-वचन सुनकर रावण ने दैत्य-वीरो को देखकर कहा—'कपियो को अपनी पूँछ बहुत प्रिय होती है, और वह उसका चिह्न भी होता है । इसलिए सब लोगो के समक्ष तुम इसकी पूँछ जला दो और नगर-मार्ग में घुमाकर इसे छोड़ दो । तब राक्षसो ने मोटे-मोटे रस्सो से पवनपुत्र के हाथ और पैर बाँध दिये और कहने लगे—'अच्छा हुआ कि हमारे कितने ही बधुओ को मारनेवाला यह दुष्ट कीड़ा हमारे हाथो में फँस गया है । फिर वे तूर्य-घोष के साथ उसे नगर के मार्ग में घुमाने लगे । तब वायुपुत्र ऐसा बहाना किये बैठा रहा, मानो वह इन राक्षसो के अत्याचारो से पीड़ित तथा निर्बल बन गया हो और उन दुष्ट राक्षसो को तथा लका नगर को अपनी कनखियो से देखने लगा । सभी दानव-वृंद आबाल-वृद्ध उसके पीछे हँसते हुए और उसका उपहास करते हुए चलने लगे । उन दुश्चर्याओ को देखकर सज्जन पुरुष मन-ही-मन दुखी होते थे । कुछ दानव जिद करके असख्य वस्त्र ले आये; उन्हें कालसर्पो के आकार में बँटा और तेल में डुबोकर कहने लगे—'इसने सारा अशोक-वन नष्ट किया है; कितने ही दानव-वीरो का संहार किया है, दानवेश्वर ने इसको उचित दड दिया है । चलो, हम इसे 'जला डालें ।' यो कहते हुए उन्होंने तेल में भीगे हुए कपड़े उसकी पूँछ में लपेट दिये और उसमें आग लगा दी । कपड़े आश्चर्य-जनक ढंग से जलने लगे । ऐसा लगता था, मानो लका में कोई उत्पात-सूचक चिह्न दिखाई पड़ रहा हो । राक्षस सिंहनाद करते हुए हनुमान् के पीछे-पीछे जाने लगे ।

राक्षस-स्त्रियो ने यह दृश्य देखा, तो जाकर सीता से सारी बातें कही । सीता यह समाचार सुनकर बहुत दु खी हुई और कहने लगी—'हे तात, कितने दु.ख की बात है कि तुम्हारे जैसे पुण्यात्मा को ऐसे सकट भोगने पड रहे है ।' फिर, उन्होने जल का स्पर्श करके एक पवित्र स्थान में खडी हुई और हाथ जोडकर अग्निदेव से प्रार्थना करने लगी—'हे पवनमित्र, हे परम पवित्र, हे वैश्वानर, हे वरद, यदि मेरे प्रभु राम धर्मात्मा है, यदि वे मेरे लिए समुद्र पार करनेवाले है, यदि वे रावण का वध करनेवाले है, यदि मै पतिव्रता हूँ, यदि महाराज जनक सब प्राणियो के प्रति समान भाव रखते है, और यदि वेद सत्य है, तो आप परम शीतल होकर उस श्रेष्ठ वानर की रक्षा कीजिए।'

इस प्रकार, जब सीता ने प्रार्थना की, तब अनल 'धलवाल' नामक कालसर्प के सिर पर रहनेवाले माणिक्य की ज्वाला के समान दीप्त होते हुए भी शीतल हो गया । इस विचित्र बात को देखकर हनुमान् आश्चर्यचकित होकर सोचने लगा –'यह कैसा आश्चर्य है कि अग्नि आज शीतल लग रही है । कदाचित् मेरे पिता अग्नि के मित्र है, इसलिए उन्होने मुझ पर दया की है, अथवा सभी देवताओ ने प्रार्थना की होगी, या राम के प्रताप के कारण ही ऐसा हुआ होगा । नही नही, यह तो सीताजी के आशीर्वाद का ही पुण्य-प्रभाव है ।' उसके पश्चात् हनुमान् के सतत ब्रह्ममत्रो का उच्चारण करने के फलस्वरूप ब्रह्म-पाश ऐसे छूट गये, जैसे परमात्मा का एकनिष्ठ हो ध्यान लगानेवाले नरो के भव-बधन छूट जाते है ।

तब हनुमान् उस असुरेश की लका का दहन करने के उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगा । इतने में पश्चिम समुद्र में सूर्यास्त हुआ, मानो सूर्य समुद्र में स्नान करके 'अग्नि-सूक्त' का जप करने के उद्देश्य से चला गया हो । तब हनुमान् ने मेरु पर्वत के समान अपने शरीर को छोटा बना लिया । सभी बधनो को तोड दिया और दु:ख देते, तथा उपहास करते हुए बडे कौतुक के साथ अपने पीछे-पीछे आनेवाले राक्षसो को अपनी पूँछ से मार डाला । फिर, एक ऊँचे सौध पर उछलकर, अपनी पूँछ की अग्नि चारो ओर लगा दी । देखते-देखते भयकर धुआँ तीव्र गति से चारो ओर व्याप्त हो गया । धुएँ के व्याप्त होने के पहले ही अग्नि-ज्वालाएँ आकाश में फैल गई । आकाश में ज्वालाओ के व्याप्त होने के पहले जहाँ-तहाँ उल्काएँ गिरने लगी । उससे भी पहले (देवताओ के) श्रेष्ठ विमान सब दिशाओ में बिखर गये ।

तब हनुमान् बडे वेग से एक स्थान से दूसरे स्थान पर उछलते हुए नगर में आग लगाने लगा । उसने राजसभा-भवनो को जला दिया, शस्त्रागारो को ध्वस्त कर दिया, भडार-घरो की पक्तियो को नष्ट कर दिया और बडे-बडे सौधो को भस्मसात् कर दिया । फिर क्रम से मडपो को जला डाला, मणिमय चद्र-शालाओ को राख कर दिया, प्रशसनीय शयनागारो की श्रेणियो का दहन कर डाला, और रमणीय गज, तुरग तथा रथ-शालाओ को अग्निसात् कर दिया ।

तब लाल-लाल अग्निशिखाएँ अविरल गति से आकाश में व्याप्त होने लगी । खेचर, उरग, तथा अमर-गणो के विमान वेग से (आकाश में) ऐसे चक्कर काटने लगे, मानो

रावणासुर के नाश की सूचना देने के निमित्त उल्कापात होने लगा हो। अग्नि अपनी प्रचंड गति से समस्त ब्रह्माण्ड में ऐसे व्याप्त होने लगी, मानो राजाओं में श्रेष्ठ रामचंद्र के लंका पर आक्रमण करने का उपक्रम करते ही उनका प्रताप-रूपी अग्नि पहले ही सर्वत्र व्याप्त हो गई हो। रावण ने इसके पूर्व अपना भयंकर रण-कौशल दिखाकर समस्त दिक्-पालों को युद्ध में परास्त कर दिया था। उस पराजय को भूले बिना आज अग्नि ने, अपनी समस्त शक्ति को दिखाते हुए, एक ही क्षण में एक मात्र विभीषण के भवन को छोड़कर, सारे नगर को जलाकर भस्म कर दिया। उस समय राक्षसों की ऐसी दुर्गति हुई कि कुछ राक्षस भय से काँपने लगे, वस्त्र तथा केशों में आग लग जाने से कुछ राक्षस हाहाकार करते हुए चारों ओर भागने लगे, कुछ अपने सगे-संबंधियों को नष्ट होते देख कुछ राक्षस शोक करने लगे; कुछ हाहाकार करने लगे, कुछ हनुमान् पर क्रोध दिखाने लगे। ऐसे भी राक्षस थे, जो कह रहे थे कि इस पापी रावण ने उस महाविष्णु के अवतार राम का अहित किया है; ऐसा अहित करनेवाले रावण के लिए इस प्रकार ही विपत्ति का आना कोई अनहोनी बात नहीं है।

तब वानरवीर हनुमान् अत्यंत भयंकर रूप धारण करके नगर का कोई भी स्थान बिना छोड़े, समस्त लंका में आग लगा दी। उस कपिश्रेष्ठ की पूँछ के स्पर्श से उत्पन्न भीषण अग्नि-ज्वालाएँ जहाँ-तहाँ फैलने लगीं। सुरापान से सुप्त कुछ राक्षस बिना जाने ही जलने लगे। मृदुल शय्याओं पर सोनेवाले राक्षस तीव्र अग्नि-ज्वालाओं के मध्य फँसकर, छटपटाते हुए मरने लगे। कुछ राक्षस अपने सगे-संबंधियों, स्त्री तथा बच्चों, प्राणाधिक मित्रों को एकत्र करके भागते समय, बीच ही में अग्नि में फँसकर जलने लगे। अपने घर की वस्तुओं को बाहर निकालने के लिए गये हुए लोग फिर लौटकर नहीं आ सके और वहीं जल गये। कुछ राक्षस अपनी-अपनी पत्नियों को छाती से लगाये बाहर आने लगे, तो देहली के पास आते-आते जल गये। इस प्रकार, वायु-पुत्र की पूँछ से निकली हुई अग्नि भयंकर गति से समस्त लंका नगर में व्याप्त होने लगी और श्रेष्ठ सिंहों की भाँति उग्र रूप धारण करके, हाथियों के कुंभ-स्थलों को विदीर्ण करने लगी। तेज से युक्त घुड़सवारों के समान वह अश्वों पर आक्रमण करने लगी; लम्पटों की भाँति, कामिनियों के कुचों पर हाथ रखने लगी; दूसरों की निंदा करनेवालों की भाँति अपनी जिह्वा को चारों ओर फैलाने लगी; अत्यधिक आनंद से फूल उठनेवाले की भाँति आकाश तक बढ़ने लगी और भयभीत होकर भागनेवाले कायरों की भाँति वह गलियों में प्रवेश करने लगी। इस प्रकार, वह अग्नि लंका को चारों ओर से घेरकर शीघ्रता से उसका ध्वंस करने लगी। सभी देवता आनंद से फूल उठे और हनुमान् को अपने आप्त बंधु मानकर उनकी प्रशंसा करने लगे।

तब हनुमान् मन-ही-मन जानकी की मृत्यु की आशंका से पीड़ित होकर सोचने लगा—'हाय! यह मैंने क्या कर डाला! मदान्ध होकर मैंने लंका के साथ-साथ राम की पत्नी को भी जला डाला। अब मैं किस मुँह से राम के पास जाऊँगा? जानकी का कुशल-समाचार मैं राम को कैसे सुनाऊँगा? हाय! मेरे सारे प्रयत्नों पर पानी फिर गया!' इस प्रकार, थोड़ी देर तक चिंतित रहने के पश्चात् उसका विवेक जागा और वह सोचने

लगा—'मैं भी कैसा मूर्ख हूँ ? इसी माता के आशीर्वाद का फल था कि यह भयकर अग्नि मेरी पूँछ को जलाने का साहस नहीं कर सकी । भला, अग्नि साध्वी का क्या बिगाड़ सकती है ?' यों सोचकर उसने अपनी पूँछ समुद्र में ऐसे बुझा दी, मानो वह सीताजी की दुःखाग्नि को ही बुझा रहा हो । फिर, वह सीता के दर्शनार्थ अशोक-वन में गया । सीता पहले ही राक्षस-स्त्रियों के मुँह से हनुमान् के कुशल का समाचार सुनकर आनन्द से गद्‌गद होकर बैठी थी । हनुमान् ने उन्हें प्रणाम किया, अपने साहसपूर्ण कृत्यों का सारा वृत्तांत उन्हें कह सुनाया और फिर कहा—'हे माता, मैं अभी जाकर रामचंद्रजी को साथ लेकर आता हूँ, जिससे आपके मन का दुःख दूर हो जाय ।' इतना कहकर उसने सीता को भक्ति से प्रणाम किया और उनकी आज्ञा लेकर वहाँ से चल पड़ा । वहाँ से चलकर वह नगर के पश्चिम द्वार के पास आया और उसके किवाड़ों पर इस जोर से पदाघात किया कि वे टूटकर पृथ्वी पर गिर गये । यह देखकर सभी राक्षस भय-विह्वल हो गये ।

२१. अंगद आदि वानरों से हनुमान् की भेंट

वहाँ से चलकर, फिर एक बार अपना पराक्रम दिखाते हुए हनुमान् ने साहस के साथ परकोटे के ऊपर के महलों को अपने पदाघात से गिरा दिया और सहज ही सुवेलाद्रि पर चढ़ गया । वह आकाश की ओर ऐसा उछला कि लंकापुरी में रहनेवाले समस्त दैत्य झोंका खाकर भयभीत हो उठे; पहाड़ के शिखर भग्न होकर समुद्र में गिरने लगे, बड़ी-बड़ी चट्टानें लुढ़कने लगीं; दक्षिण दिशा को वहन करनेवाली अंगद नामक हथिनी का शरीर दब गया, पहाड़ों के शृङ्ग गिर गये और पृथ्वी नीचे को धँस गई । फिर, उसने अपने अनुपम भुजबल की सहायता से आकाश-मार्ग से जाते हुए समुद्र के मध्य भाग में स्थित मैनाक पर्वत पर उतरकर अपनी थकावट दूर की । फिर, उस पर्वत की आज्ञा लेकर अपने असमान वेग तथा प्रताप का प्रदर्शन करते हुए समुद्र के उत्तरी किनारे पर उतर पड़ा ।

हनुमान् के मुख पर स्पष्ट रूप से दीखनेवाले हर्ष के चिह्नों को देखकर अंगद आदि श्रेष्ठ वानर उसकी अगवानी करने गये और उसे गले से लगा लिया । फिर, वे सब एक स्थान पर बैठ गये और हनुमान् से उसके कार्य के परिणाम के संबंध में प्रश्न किये । तब हनुमान् ने कहा—'हे वानरो, आपकी कृपा से मैंने अनुपम समुद्र को पार किया, अगणित वैभवों से संपन्न लंका में प्रवेश किया, और बहुत समय तक अन्वेषण करने के बाद सीताजी के दर्शन भी कर लिये । फिर, मैंने राम की आज्ञा के अनुसार जानकी से उनका सारा वृत्तांत कह सुनाया और उनकी दी हुई अंगूठी भी सीताजी को दे दी । फिर, उनकी चूड़ामणि लेकर यहाँ लौट आया हूँ ।'

हनुमान् की बातें सुनकर सभी वानर अत्यंत हर्षित हुए और हनुमान् की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे । तब अत्यधिक उत्साह से भरे हुए श्रेष्ठ वीर अंगद कहने लगा—'अब यही उचित होगा कि किसी भी प्रकार हम जानकी को लंका से जीतकर ले आवें और उन्हें रघुराम के पास पहुँचा दें । चलो, हम अभी समुद्र पार करें और पुत्र, मित्र तथा परिवार-सहित दशकंठ का वध करके सीताजी को छुड़ा लावें ।'

तब जांबवान् ने वालिपुत्र को देखकर कहा—'सुग्रीव ने हमें जानकी के अन्वेषणार्थ भेजा है; उस परम पवित्र सीता की कृपा से हमारा प्रयत्न सफल हुआ । अब हमारे लिए उचित यही है कि हम जाकर रामचंद्रजी से यह समाचार कह दें।, तब सबने परस्पर परामर्श कर, वैसा ही करने का निश्चय किया । उस दिन वायुपुत्र तथा दूसरे वानर समुद्र के किनारे ही कद-मूल-फलो से अपनी क्षुधा शांत करके रहे । वे परम शक्तिशाली वानर दूसरे दिन वहाँ से रवाना हुए और मेरु, मदर-पर्वतो से भी विशाल दर्दुर नामक पर्वत के निकट पहुँच गये । उस पर्वत की तराइयो में विचरण करते हुए उन्होंने फल, मूल, आदि खाकर वही रात्रि बिताई।

२२. वानरों का मधुवन में विचरण करना

प्रातःकाल होते ही उन बाहुबली वानरवीरो ने सोचा—'हमें अब सुग्रीव के मधुवन में जाकर, वहाँ जी भरकर मधु (शहद) का पान करना चाहिए, अन्यथा हमारी प्यास शांत नही होगी । हमने रामचंद्र का कार्य सपन्न किया है । अतः, सुग्रीव क्रुद्ध होकर हमें दंड नही देंगे।' यों निश्चय करके सभी वानरों ने अगद तथा हनुमान् से प्रार्थना करके उनकी भी सम्मति प्राप्त कर ली और मधुवन के लिए रवाना हो गये । मध्याह्न होते-होते वे मधुवन में पहुँच गये । चारों दिशाओ में झरनेवाली मधु-धाराओ को देखकर उनके मुंह में पानी भर आया । विभिन्न प्रकार के हाव-भाव करते हुए, वे अपने कान खड़े करके, एक दूसरे को अपने दाँत दिखाते हुए, एक दूसरे से तर्क-वितर्क करते हुए, बडे कौतुक के साथ अपने इष्टानुसार उस वन के विभिन्न दिशाओ में विचरण करने और पुष्पो से झरनेवाला मकरद, छत्तो में एकत्रित मधु आदि का पान करने लगे। फिर, उन्होंने कई प्रकार के फल खाये । कच्चे फलो तथा फूलो को तोडकर नीचे गिरा दिया। अत्यधिक उल्लास के आवेश में आकर उन्होने पेड़ की शाखाओ को तोड दिया और पेड़ो को झुकाकर एक पेड से दूसरे पेड़ पर छलाँग मारकर जाने लगे । फिर, वे पुष्प-लताओ को झूला बनाकर झूलने लगे तथा सरोवरो में स्नान करते हुए नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ करने लगे ।

जब मधुवन की रक्षा करनेवाले वानर (दधिमुख) ने इन वानरों की करतूत देखी, तब क्रोध में आकर उसने सभी वानरो को डाँटकर उन्हें तुरंत वहाँ से निकल जाने का आदेश दिया । जब उसके अनुचर सभी वानरो को धक्का देकर बाहर निकालने लगे, तब अगद तथा हनुमान् ने भागनेवाले अपने साथी वानरो को रोका और वन-रक्षक दधिमुख को मुँह के बल नीचे गिराकर, उसे पृथ्वी पर घसीटकर, मुष्टियो का प्रहार करके भगा दिया । बेचारा दधिमुख क्रोध तथा दुःख से व्याकुल होकर भगवान् की दुहाई देते हुए भागा और राजा राम तथा लक्ष्मण के श्रीचरणो में बडी भक्ति के साथ प्रणाम करके, फिर सूर्य-पुत्र के चरणो में सिर झुकाकर कहने लगा—'हे देव, आपका मधुवन देव-दानवो के लिए भी अभेद्य है । आज वायु-पुत्र तथा वालि-पुत्र, दोनो ने अपने बहुत-से साथियो को लेकर ऐसे मधुवन में प्रवेश किया है और वृक्षो पर चढकर शाखाओ पर विचरण करते हुए अपने इच्छानुसार फल खाये है और जी भरकर मधु पिया है । इसका किंचित्

भी विचार न करके कि यह उपवन राजा का है, वे मनमानी कर रहे हैं। मैंने उन्हें डाँट-डपटकर बाहर निकालने का प्रयत्न किया, तो उन्होंने मुझे मुष्टियो से मारकर भगा दिया है।'

दधिमुख का विलाप सुनकर सुग्रीव अत्यत क्रुद्ध हो गया और उन वानरो को उचित दंड देने का विचार करने लगा। तब सारी परिस्थिति समझकर सतत-विजयी लक्ष्मण ने सुग्रीव से कहा—'यदि अगद आदि महावीर तुम्हारी आज्ञा विना प्राप्त किये ही, निर्भय होकर तुम्हारे वन में प्रवेश करके शहद पी रहे हैं, तो कदाचित् उन बाहुवलियो के द्वारा रामचद्रजी का कार्य सपन्न हुआ होगा। अन्यथा, वे इस प्रकार तुम्हारी आज्ञा की अवहेलना करने का साहस कभी नहीं करेंगे। इसलिए तुम उन्हें शीघ्र यहाँ बुलाओ।'

तब सूर्यपुत्र ने दधिमुख को देखकर कहा—'वे रामचद्रजी का कार्य सपन्न करके आये दीखते हैं, इसलिए उनके सभी अपराध क्षम्य है। तुम अपना दु ख सहन कर जाओ और उन्हें यहाँ बुला लाओ।' सुग्रीव का आदेश पाकर वह उन वानरो के समीप पहुँचा और हनुमान्, अगद तथा जाबवान् आदि वानर-वीरो को प्रणाम करके कहा—'हे श्रेष्ठ वानरो, मेरा अपराध क्षमा करो और शीघ्र यहाँ से प्रस्थान करो। तुम्हें लिवा लाने के लिये सूर्यपुत्र ने मुझे भेजा है।

यह समाचार सुनकर सब वानर बहुत हर्षित हुए। वे रविपुत्र के आदेश को सिर आँखो पर धारण करके, सुग्रीव के दड की कल्पना करके भयभीत होनेवाले अगद को धैर्य बँधाकर, बडे उत्साह के साथ वहाँ से चले। उनकी हर्ष-ध्वनि बादलो की ध्वनि के समान सुनाई पडने लगी। बहुत अधिक मोद-मग्न हो जानेवाले उन वानरो को दूर से ही देखकर सुग्रीव ने उनकी अगवानी के लिए कपि-सेना भेजी और बडी प्रीति से उनका स्वागत किया।

२३. राम को सीता का कुशल-समाचार सुनाना

तब सभी वानरो ने जगदीश्वर रामचंद्र के चरणो में दण्ड-प्रणाम किया, और फिर सुमित्रानदन तथा सूर्यपुत्र को बडे प्रेम से प्रणाम किया और हनुमान् को आगे करके रामचद्र के आसन के समीप एक झुड में बैठ गये। तब हनुमान् अपनी यात्रा का वृत्तांत सुनने की रामचद्र की उत्सुकता को समझ गया और अत्यधिक भक्ति स हाथ जोडकर कहने लगा—"हे सूर्यवश के नाथ, देखा मैंने उस वैदेही को, जो स्त्रियो में शिरोमणि, तथा परम कल्याणी है। हे राजन्, मैंने उनका अन्वेषण किया और फिर सपाति के द्वारा मार्ग जानकर (दक्षिण दिशा में) गया, सहज ही समुद्र को पार किया, और दक्षिण समुद्र के तट पर अपार शोभा से विलसित त्रिकूट पर्वत पर स्थित दानव-समूहो से रक्षित लका में अकेले प्रवेश किया। वहाँ सब स्थानो में ढूंढने पर भी सीता को न देख सकने के कारण मैं अत्यत दु खी हुआ, फिर मैंने रावण के उद्यान में प्रवेश किया और वहाँ मैंने आपकी धर्म-पत्नी को राक्षस-स्त्रियो से घिरे हुए देखा। वे कई दिनो के उपवास के कारण बहुत ही क्लात हो गई थी। वे एक वृक्ष के नीचे विपुल दु ख की बाढ में डूबी हुई अपने हाथ पर कपोल टेककर चिताक्रात हृदय से आपका ही स्मरण करती हुई बैठी थी। उस समय राक्षस रावण वहाँ आया और उन्हें विभिन्न प्रकार से भय दिखाने लगा। तब वे अपनी विवशता

तथा दीन दशा का विचार करती हुई अविरल गति से अश्रुधारा बहाने तथा आहें भरने लगी। मलिन वस्त्र तथा धूलि-धूसरित शरीर से युक्त वे, उमड़ते हुए शोक से बार-बार विलाप करने लगी। आपने अपनी पत्नी की जो रूप-रेखा मुझे बताई थी, वह उनकी रूप-रेखा से सर्वथा मिलती थी, इसलिए मैंने निश्चय किया कि वे ही सीता है। फिर, मैंने उनके समीप जाकर प्रणाम किया, उनसे उचित वार्त्तालाप करके आपकी अगूठी उन्हें दी। फिर, उनकी चूडामणि लेकर मै समुद्र लाँघकर यहाँ पहुँच गया हूँ।" इतना कहकर हनुमान् ने राम को सीता की चूडामणि दी, जो उनके वियोग की अग्निशिखाओ के प्रतीक के समान दीप्तिमान् थी।

राम ने उस शिरोरत्न को बडे अनुराग से लिया और उसे अपने हृदय से लगाकर थोड़ी देर तक मूर्च्छित-से हो रहे। फिर, अपने धैर्य को संचित करके वे सँभल गये और बाष्पपूरित नयनो से वानर-राजा को देखकर बोले—'हे सूर्यनदन, मेरे प्राण-समान देवी की शिरोमणि को देखकर मेरा हृदय लाख के समान पिघल रहा है। इन्द्र ने यज्ञ से सतुष्ट होकर यह रत्न मेरे श्वशुर को दिया था। उस गुणनिधि जनक महाराज ने इसे सीता के सिर में पहनाकर बडे सम्मान के साथ सीता का विवाह मेरे साथ किया। यह रत्न लतागी सीता से तथा मुझसे कभी अलग नही रहता। आज मेरी तथा सीता की भेंट कराने के हेतु यह रत्न आया है।' इस प्रकार कहते हुए राम उस मणि को बार-बार अपने हृदय से लगाने लगे।

उसके पश्चात् राम हनुमान् को देखकर बोले—'हे पुण्यात्मा, तुम्हारे लौटते समय सीता ने तुम से क्या कहा था? सुनाओ।' तब शक्तिसपन्न हनुमान् राम को देखकर कहने लगा—"हे देव, उन्होने कहा, 'सूर्यवशतिलक के वियोग में गत दस महीने मैंने असख्य दुखो को झेलते हुए बिताये है। दो महीने के पश्चात् रावण मुझे मार डालने का निश्चय कर चुका है। इसलिए तुम राम भूपाल से निवेदन करो कि मेरे प्राण अब नही बचेंगे। उन्हें सत्यनिष्ठ मानकर ही मेरे पिता ने मेरा पाणिग्रहण उनसे कराया। विवाह-वेदी पर उन्होने (मेरे पति ने) अग्निदेव के समक्ष सदा मेरी रक्षा करने की प्रतिज्ञा की और मुझे अपने साथ अपने घर ले आये। आज उन्होने मेरी उपेक्षा कर दी और मुझे अनाथ बना दिया। इस पर विचार करने के लिए प्रभु राम से निवेदन करो। उनसे यह भी निवेदन करो कि अपनी धर्मपत्नी को कोई चुराकर ले जाय, तो चुपचाप बैठे रहना वीरो का धर्म नही है। औचित्य का विचार करके मैंने इन बातो की चर्चा की है। मेरा शरीर चाहे जहाँ भी रहे, मेरे मन, वचन और कर्म उन्ही में रमण करते रहेंगे।' इतना कहने के पश्चात् उन्होने यह भी बताया कि चित्रकूट पर्वत पर, उन पर कौए ने कैसे आक्रमण किया था; कैसे आपने गैरिक से उनके कपोलो पर सुदर मकराकृति की रचना की थी। (ये बातें उन्होने इसलिए बताई थी कि) मेरे वचनो पर आपका विश्वास हो जाय।" रामचद्र से इतना कहने के पश्चात् हनुमान् ने लक्ष्मण तथा सुग्रीव को भी सीताजी का सदेश सुना दिया। सभी वानरवीर मन-ही-मन हर्षित हुए।

यह सुदरकाड ससार में व्याप्त होकर सभी काव्यो में सुदर सिद्ध हुआ है। इसका विचार करके आध्र-भाषा का सम्राट्, काव्य-आगम आदि के ज्ञाता, आचारवान्, धीर, भूलोक-

निधि, गोनबुद्ध भूपाल ने सुदर गुणो से संपन्न, धैर्यवान्, शत्रुओ के लिए भयकर स्वरूप, महात्मा, अपने पिता विट्ठल-नरेश के नाम पर रसिक जनो के लिए प्रिय, अनुपम तथा ललित शब्द तथा अर्थो से सपन्न रामायण के इस सुदरकाड की, श्रेष्ठ अलकार तथा सुदर भावो से परिपूर्ण बनाकर इस प्रकार रचना की कि वह आचद्रार्क, परमपूज्य हो शोभायमान होता रहे। प्रसिद्ध, आर्ष, रसिको के लिए सतत आनददायक इस आदिकाव्य का पठन जो कोई भी करेगा, या जो इसका श्रवण करेगा, उसे सामवेद आदि विविध वेदो का आधार राम-नाम-रूपी चिंतामणि के द्वारा नये भोग, परोपकार-बुद्धि, उदात्त विचार, परिपूर्ण शक्ति, राज्य-सुख, निर्मलकीर्त्ति, नित्य सुख, धर्मनिष्ठा, दान-पुण्य में अनुरक्ति, चिरायु, स्वास्थ्य, ऐश्वर्य, अक्षय शुभ, पाप-क्षय, श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति, शत्रुओ का नाश, और धन-धान्य-समृद्धि, आदि सुलभ होगे। उनका जीवन निर्विघ्न होगा, घरो में लावण्यवती स्त्रियो का अनुराग तथा पुत्रो के साथ जीवन सिद्ध होगा। सब प्रकार के सकट दूर होगे, सगे-सबधियो से मिलन, इच्छित कार्यो की सिद्धि, देवताओ की प्रीति, और पितरो की तृप्ति सुलभ होगी। इसके रचयिता की श्रेष्ठ तथा शुभ उन्नति होगी तथा उसे इन्द्रभोग की प्राप्ति होगी। जबतक कुलपर्वत, सूर्य, चंद्र, दिशाएँ, वेद, पृथ्वी, तथा सभी भुवन सुशोभित रहेंगे, तबतक यह कथा अक्षय आनद-समूह का आगार सिद्ध होगी।

सुन्दरकांड समाप्त

श्रीरंगनाथ रामायण

(युद्धकांड)

१. श्रीराम का हनुमान् की प्रशंसा करना

आश्रितो के हिताकाक्षी, सूर्यवश के सवर्द्धक रामचन्द्र ने जब प्राणाधिका प्रिया के इन प्रिय वचनो को हनुमान् के द्वारा सुना और उनका पता जान लिया, तब उन्होंने वडे प्रेम से कहा—"हनुमान् ने जैसा कार्य किया है, क्या, वैसा कार्य करना देवताओ के लिए भी सभव है ? ऐसा प्रतीत होता है कि शक्ति में या तो हनुमान् ही श्रेष्ठ है, या पवन श्रेष्ठ है या गरुड ही श्रेष्ठ है। समुद्र को पार करना उनके सिवा और किसके लिए सभव है ? देव, गधर्व, दैत्य तथा किन्नरो के लिए भी दुर्गम, राक्षस-सेना के प्रचड वाहुवल से दिन-रात सुरक्षित लका में प्रवेश करके वहाँ से जीवित लौट आना क्या शशिधर (शिव) के लिए भी सभव है ? अपने प्रभु का महान् कार्य वडे आनन्द के साथ जो शीघ्र ही सपन्न करता है, वही उत्तम पुरुष है। प्रभु के कार्य में विघ्न पडने पर, विलव के साथ उसे पूरा करनेवाला मध्यम श्रेणी का पुरुष है। प्रभु के वताये हुए कार्य से वचने की चेष्टा करनेवाला तथा हीला-हवाला करनेवाला व्यक्ति दुस्सेवक है। इन तीनो में हनुमान् निम्सदेह श्रेष्ठ व्यक्ति ही सिद्ध हुआ है। अनिलकुमार ने एक महान् कार्य को वडे हर्ष तथा तत्परता से सपन्न किया है। अव उसका प्रत्युपकार, मै किस प्रकार से कर सकूँगा। अव (प्रेम से)

उसका आलिंगन करना ही इस समय मेरे वश की बात है।" यो कहकर प्रभु ने हनुमान् को अपने हृदय से लगा लिया ।

इस प्रकार, सुग्रीव के समक्ष राम ने हनुमान् की प्रशसा करके कहा—'हे पवनपुत्र, मुझे बडी प्रसन्नता है कि तुम जानकी का पता लगाकर आये हो। मुझे अत्यन्त आनन्द का अनुभव हो रहा है । पता नही, इस कार्य की समाप्ति कैसे होगी । मेरा मन यह सोचकर व्याकुल हो रहा है कि इस विशाल समुद्र को लाँघकर जाने की क्षमता वानर-सेना को कैसे प्राप्त होगी ।' इतना कहकर राम अपना सिर झुकाकर चुप हो रहे । रविपुत्र, राम के मन की चिंता को दूर करने के उद्देश्य से कहने लगा—'हे देव ! आप साधारण लोगो की भाँति इस प्रकार क्यो दुखी हो रहे है ? आप क्यो कहते है कि हम समुद्र को पार नही कर सकते ? हम अवश्य समुद्र को पार करेंगे, सुवेलाद्रि को पार करके लका को जीतेंगे और रावण का सहार करके ससार का दुख दूर करेंगे । हे राजन्, आप विचार कीजिए। मेरे सभी वानर परिश्रमशील है , बाहुबल से सपन्न है, और दुर्जय है । हे राघव, इनके रहते हुए आप इस प्रकार क्यो चिंतित होते है ? आप तैयार हो जाइए । उद्योगी पुरुष के लिए सभी अर्थ सद्य फल-प्रद सिद्ध होते है । शत्रु सदा उत्साही व्यक्ति से भयभीत रहते हैं, उत्साहहीन व्यक्ति से नही ।'

सुग्रीव के इन वचनो को सुनकर प्रभु ने हनुमान् से कहा—'ठीक है । मै पहले समुद्र से (मार्ग देने की) प्रार्थना करूँगा । यदि उसने नही दिया, तो अपने बाणो की अग्नि से समुद्र को ही सुखा दूँगा, या उस पर पुल बाँधूँगा । हे पवनपुत्र, समुद्र पार करना मेरे लिए कौन बड़ा कार्य है ? अब तुम यह तो बताओ कि उस दशकठ के नगर में कितने किले है, उसकी सेना कितनी बडी है ? उसके नगर के कितने द्वार है ? कितने राक्षस उन द्वारो की रक्षा करते है ? उस नगर के सौधो की पक्तियाँ कैसी है ? तुम तो इन सबका पता लगाकर आये हो, इसलिए मैं तुमसे इन सब बातो का विवरण सुनना चाहता हूँ ।'

२. लंका के वैभव का वर्णन

तब हनुमान् हाथ जोडकर बडे विनय के साथ प्रभु से इस प्रकार निवेदन करने लगा—"हे दाशरथि, उस नगर में सतत (गड-स्थलो से) मधु-धारा बहानेवाले, मुख से रौद्र भाव प्रकट करनेवाले, पर्वताकार भद्र गजो के असख्य समूह हैं । बहुत-से आयुधो से सज्जित, आश्चर्यजनक तथा भयकर दीखनेवाले, छत्रो, पताकाओ तथा विविध चिह्नो एव ध्वजाओं से युक्त सूर्य-बिंब की प्रभा के समान मणियो से दीप्तिमान्, अश्वो एव सारथियो से युक्त असख्य रथ हैं । वीर रस के समुद्र की लहरो के समान दिखाई देनेवाले विविध रगो से युक्त, (दर्शको की) दृष्टियो को चौंधिया देनेवाले, अपनी हिनहिनाहट से सबको आश्चर्य-चकित करनेवाले, अपने वेग में पवनदेव के अश्वो को भी मात करने की दिव्य शक्ति रखनेवाले तथा मनोहर आकारवाले, अश्व अनगिनत सख्या में हैं । हे देव, हे राघव, वहाँ के राक्षसवीरो की तो गिनती ही नही हो सकती है, वे ऐसे दिखाई देते हैं, मानो बिजलियो से युक्त काले बादलो ने ही दानवो का रूप ले लिया हो, यो काले पर्वत ही मूर्तिमान् रौद्र का-सा रूप धारण किये हुए हो, या जिस गरल का पान शिव ने किया था,

उसी ने मानो दैत्यो का रूप धारण कर लिया हो, या प्रलय-काल की अग्नि के धुएँ ने ही मानो राक्षसो का रूप धर लिया हो। वाहुवल में उन राक्षसो की समता ब्रह्मा आदि देवता भी नही कर सकते। हे राजन्, लंका में समस्त ससार में अनुपम सात उन्नत तथा श्रेष्ठ दुर्ग हैं। एक ईंटो का दुर्ग है, जिसके चारो ओर के कगूरे सुदर दिखाई पडते है। उसके भीतर शिलाओ से निर्मित एक विशाल दुर्ग है, जिसके भीतर फौलाद का दुर्ग है। उसके मध्य में गवाक्षो से युक्त एक ताँबे का दुर्ग है, जिसके भीतर (वडी-वडी तोपो की समता करनेवाले) शिला-यंत्रो से युक्त एक विशाल काँसे का दुर्ग है। उसके मध्य ब्रह्मा तथा शिव के लिए भी अभेद्य एक रजत-दुर्ग है, जिसके मध्य में मणियो के प्रकाश की किरणो से सुशोभित तथा प्रशसनीय एक स्वर्ण-दुर्ग है।

"हे राजन्, उन सात किलो में से प्रत्येक किले में, असख्य दीप्तियो को विकीर्ण करने-वाली मणियो से खचित चार द्वार हैं, जिनके दरवाजे यम धर्मराज के वक्षस्थल के समान विशाल हैं। उन दुर्गो में तत्र-विधियो से अभिमन्त्रित असख्य शर-चाप रखे हुए हैं। उस किले के चारो ओर पाताल के समान गहरी, मकरो से भरी चार परिखाएँ है, जिनके मध्य में चार पुल वने हैं।

"उन चारो पुलो पर वहुत-से राक्षस किले की रक्षा के लिए नियुक्त है। वहाँ ऐसी असख्य शिलाएँ, वाण तथा यत्र-समूह है, जो अपने-आप शत्रुओ का नाश कर देते हैं। अव उन सवका वर्णन ही मैं क्यो करूँ? महान् वैभव से सपन्न हो रावण, प्रति दिन अपनी सेना के साथ भ्रमण के लिए निकलता है और सवका निरीक्षण करता है। अपने उद्धत गर्व से प्रेरित होकर वह सतत दूसरो को युद्ध के लिए चुनौती देता रहता है। पराक्रम तथा शक्ति से सपन्न शत्रुओ के लिए भी लका को वश में करना दुष्कर है। इसके अलावा समुद्र में जल, वन, (कृत्रिम) स्थल, तथा पर्वत के चार दुर्ग और है। वे सतत दिखाई तो देते हैं, किन्तु उनको घेरने का उपक्रम करने जायें, तो उनका पता ही नही लगता।

"हे राजन्, इस लका नगर की रक्षा करनेवाले भयकर राक्षस मृत्यु की जिह्वा की समता करनेवाले, शूल धारण किये हुए सतत रक्षण-कार्य में तत्पर रहते है। ऐसे रक्षक पश्चिम द्वार पर दस सहस्र रहते है। पूर्व द्वार पर स्वय रावण चतुरगिणी सेना के साथ रहता है। दक्षिण द्वार पर एक लाख राक्षस रक्षा करते रहते हैं। उत्तर द्वार पर अगणित अस्त्रो से सुसज्जित एक लाख राक्षस रहते है। नगर के मध्य में एक लाख पच्चीस हजार राक्षस रहते हैं। हे सूर्यवशतिलक, ऐसी लका में, विना अन्य किसी का ध्यान किये मैं आपकी कृपा से प्रवेश कर सका, उन पुलो को अपने पदाघात से चूर-चूर कर दिया, दुर्गो को गिराकर उदको में भर दिया, सारी लका को जला दिया और आपके श्रीचरणो में लौट आया। आपने वहाँ की सारी वातें जान ली है। अव विलव क्यो? हम शीघ्र समुद्र को पार करेंगे। समुद्र पार करने की देर है कि वानर-सेना दशकठ की लका को क्षण भर में उड़ा देगी।"

तव रघुराम ने सुग्रीव को देखकर कहा—"हे सूर्यपुत्र, अव विलव क्यो करें? यही शुभ मुहूर्त है। इसी मुहूर्त में प्रस्थान कर जाना ही हमारे लिए उचित है। अव उस राक्षस

के लिए मेरे अस्त्र के सिवाय (मुक्ति का) और कोई उपाय नही है । वह छिप कहाँ सकता है ?' फिर उन्होंने नील को देखकर कहा—'तुम सेना के आगे-आगे ऐसे मार्ग से चलो, जो बहुत ही मनोहर हो तथा जिसमें स्वच्छ एव मीठा जल, पके हुए फल, तथा पेडो की छाया का प्राचुर्य हो । साथ-ही-साथ शत्रुजनो का भी पूरा ध्यान रखते हुए आगे बढना ।' नल उनकी आज्ञा का पालन करने के लिए चल पडा । सुग्रीव ने सभी वानरो को युद्ध-यात्रा पर चलने की आज्ञा दी ।

३. कपि-सेनाओं की युद्ध-यात्रा

तब वानर-सेना जहाँ-तहाँ की गुफाओ से बडे उत्साह के साथ चली । उनके पदाघातो की घोर ध्वनि से सब गुफाएँ गूँजने लगी । उनके घोर हुकार, तथा विकट अट्टहास के निनाद आकाश तक व्याप्त हो गये । कुछ वानर भयकर गर्जन करते हुए, अपनी शक्ति के गर्व में झूमते हुए जा रहे थे । कुछ पके हुए फल-वृक्षो को ही अपने कधो पर रखे हुए उनके फलो को चबाते हुए जा रहे थे । कुछ वानर राम के समक्ष खडे होकर कह रहे थे कि—'हे राम भूपाल, हम अवश्य युद्ध में राक्षस-समूह के साथ रावण का वध करेंगे ।' इस प्रकार, सभी वानरवीर अत्यधिक उत्साह से उछलते, हर्ष-निनाद करते, अपनी पूँछो को हिलाते, पर्वत-शिखरो पर चढकर अपनी इच्छा से भयकर गर्जन करने लगे । उस ध्वनि से आकाश गूँजने लगा, पृथ्वी डोलने लगी, पहाड काँपने लगे, अष्ट दिग्गज धँस-से गये, आदिशेष अत्यधिक भार का अनुभव करने लगा, कच्छप ने अपना सिर झुका लिया । उस विशाल सेना के चलने से जो धूलि उडी, वह कई रगो से आकाश में व्याप्त होकर ऐसी दीखने लगी, मानो उस ध्वनि के आधिक्य के कारण पृथ्वी से नि श्वास का धुआँ इस रूप में निकल रहा हो ।

वानरो की उस विशाल सेना के अग्र भाग में नील के नेतृत्व में चलनेवाली सेना (गरुड के) भयकर मुख के समान थी, दोनो पार्श्व भागो में चलनेवाली सेनाएँ दो पखो की भाँति थी, मध्य भाग में आनेवाले रामचद्र आत्मा के समान थे, पीछे बडे आटोप के साथ आनेवाली सेना पूँछ की तरह प्रकट होती थी । इस तरह वह विशाल सेना ऐसी दीख रही थी, मानो नागपाश से पीडित होनेवाले सूर्यवशी राजकुमारो के सकट दूर करने के निमित्त, गरुड पृथ्वी पर चल रहा हो । प्रजघ, केसरी तथा दधिमुख आदि वानर-वीर भीड को हटाकर मार्ग बनाते हुए जा रहे थे । उनके पीछे अत्यधिक हर्षोल्लास से भरे हुए हृदयो से गवय, तार, गधमादन, हनुमान्, अगद, शरभ, नल, जाबवान्, हर, मैन्द आदि वानर जा रहे थे । उनके पीछे रामचद्र, अनुज लक्ष्मण के साथ चल रहे थे । इस प्रकार, सह्याद्रि पर पहुँचकर वही उन्होने पडाव डाला । सुग्रीव ने वहाँ के विशाल वनो में, तडागो के किनारे, तथा वृक्षो की छाया में सेना को ठहरने का आदेश दिया ।

दूसरे दिन पूर्ववत् सेना को रवाना करके लक्ष्मण स्वय भी अपने प्रभु राम के साथ चले । वानरो के चलने से धरती हिलने लगी । उस सेना-समुद्र में वीर रस का उफान-सा उठ रहा था, उसकी शक्ति चारो ओर व्याप्त हो रही थी, (सैनिको की) शरीर-कांति की तरगें उठ रही थी, हर्ष-ध्वनियो का घोष आकाश का स्पर्श कर रहा था,

मनुवशचन्द्र, (रामचन्द्र) के सान्निध्य से वह सेना-समुद्र उद्वेलित हो रहा था। इस प्रकार वह वानर-सेना-समुद्र (दक्षिण के) महासागर के गर्व को चूर करने के लिए निकल पडा। (उस सेना-समुद्र के बीच में) धीर राम-लक्ष्मण आकाश के मध्य भाग में प्रकाशमान होनेवाले सूर्य तथा चन्द्र की भाँति सुशोभित थे। जब नदियो में उतरकर सेना चलने लगी, तब नदी का पानी उमडने लगा। जब वह सेना सह्याद्रि पर्वत तथा मलय पर्वत के मध्य भाग से होकर जाने लगी, तब मद पवन के चलने से वृक्षो की शाखाएँ आपस में रगड खाकर उन वानरो पर पुष्प बरसाने लगी। यह उचित ही तो था! वन-लक्ष्मी प्रभु राम के आगमन से हर्षित होकर पुष्पाजलि दिये बिना कैसे रह सकती थी?

वानर-वीर उस पर्वत-प्रदेश में स्थित सरोवरो में उतरकर उनका निर्मल जल पानकर सतुष्ट होते। उन सरोवरो में पाये जानेवाले कमल-समूहो को वे अपने कर-कमल-युग्मो से इस प्रकार तोडते, मानो कह रहे हो कि हे कमलाकर, (सरोवर) जैसे कमलो का शत्रु (चद्रमा) क्रोध में कमलो को जैसे तोड डालेगा, वैसे ही हमारे कमलाप्त-कुल-तिलक (सूर्यवशतिलक) दशकठ के वदन-कमलो को भी तोड देगा। वे इस प्रकार कुमुदो* को कुचल डालते थे, मानो कह रहे हो कि हम दुष्ट-शत्रु की स्त्रियो को दु.ख* देकर, जानकी के दुखो* को भी इसी प्रकार* कुचल डालेंगे। सरोवरो के गर्भ से दीर्घ मृणालो को वे इस प्रकार उखाडते थे, मानो कह रहे हो कि हम राक्षसो के उदरस्थ आँतो को इसी प्रकार चीरकर बाहर निकालेंगे। इस प्रकार के विनोदो में मग्न होते हुए सभी वानर सरोवरो के किनारे लाँघकर जाते और फिर पहाडो पर चढकर वहाँ प्राप्त होनेवाला मधु छककर खाते और फिर जल पीकर बडे उत्साह के साथ आगे बढते जाते थे।

४ महेन्द्र पर्वत से राम का समुद्र का देखना

तब रामचन्द्र ने महेन्द्र पर्वत पर चढकर वहाँ से अनतिदूर पर दीखनेवाले समुद्र का अवलोकन किया। वह समुद्र विविध क्रूर प्राणियो को अपने गर्भ में एकत्र किये हुए बडा प्रचड रूप धारण करके ऐसा कहते हुए-से दिखाई दे रहा था कि जो रावण दीर्घ-काय मगर-रूपी हाथियो के झुडो से, उत्तुग तरग-रूपी घोडो से, कछुए तथा केंकडे-रूपी रथ-समूह से, असख्य मत्स्य-रूपी सैनिको से, सर्पो के फन-रूपी पताकाओ से, उनकी सुदर तथा चटुल पूँछ-रूपी खड्गो से, मीनावली-रूपी चामरो से, ऊपर तैरनेवाले झाग-रूपी छत्रो से, घनघोष-रूपी भेरी-निनाद से तथा जल-रूपी वीर रस से, मेरी शरण में आया हुआ है, उसका वध मैं कैसे करने दूँगा?

ऐसे विशाल समुद्र को देखकर राघव आश्चर्यचकित हुए और निदान उस समुद्र के निकट पहुँचे। समुद्र के किनारे समस्त सेना को एकत्र करने लायक चद्रकात शिलाओ से पूर्ण एक विशाल प्रदेश में रामचन्द्र इस प्रकार बैठ गये, मानो वे अपने शर-रूपी बसी से समुद्र के आश्रय में विचरनेवाले रावण-रूपी मोटे पाठीन (मछली विशेष) को पकडने के लिए बैठे हो। तब वे अपने पास ही बैठे हुए सूर्यपुत्र सुग्रीव को देखकर बोले—

*इन सभी शब्दो के लिए तेलुगु में एक ही शब्द (तोग) का उपयोग होता है। कवि ने यहाँ इस शब्द का प्रयोग करके यमक अलंकार सिद्ध किया है। —लेखक

'हे सुग्रीव, हम तो समुद्र के किनारे पहुँच ही गये । अब कहाँ से और कैसे इस समुद्र को पार किया जाय, इसका उपाय तुम सोचो । पहले एक सुदर स्थान में इस वानर-सेना को ठहरने की आज्ञा दो ।' सुग्रीव ने इस कार्य के लिए नील को नियुक्त किया । नील ने शीघ्र ही सारी सेना को एक सुन्दर स्थान में ठहराने का प्रबध किया । वानरो के, शिविरो में आने तथा वहाँ उनके ठहराते समय जो तुमुल शब्द हो रहा था, वह सूर्यमडल तक व्याप्त होकर ऐसा लगता था, मानो वह समुद्र को डाँट रहा हो कि ऐ समुद्र, मैं स्वय तो वनचरो (वानर) से उत्पन्न हूँ; भला मैं तुम्हारे वनचरो से (जल-चर) उत्पन्न घोष को कैसे सहन कर सकता हूँ और वह समुद्र के घोष को दबा देता था । सारी वानर-सेना, तीन सैनिक-शिविरो में, समुद्र-तट पर स्थित वनो में ठहर गई ।

तब रामचद्र ने लक्ष्मण से एकात में कहा—'हे सौमित्र, इस समुद्र की विशालता तो देखो, इसके अत का पता कोई कैसे पा सकेगा ? इसी प्रकार दु ख-समुद का भी अत नही होगा ।'

५. संध्या-वर्णन

इस प्रकार कहते हुए प्रभु रामचद्र जब दु ख-समुद्र में डूब गये, तब सूर्य भी पश्चिम समुद्र में ऐसा डूब गया, मानो उसने ऐसा विचार किया हो कि रामचन्द्र का जीवन ही मेरा जीवन है । सूर्यास्त होते ही समस्त लोक मणिहीन मजूषा की भाँति कातिहीन हो गये । सध्या-राग चारो ओर इस प्रकार व्याप्त हो गया, मानो मनसिज के बाणो की अग्नि से तप्त मनवाले राम का शीतलोपचार करने के निमित्त पश्चिम समुद्र राग-रजित वस्त्र लेकर आया हो । कमल-दलो का यौवन ढल जाने से, कमल अपने शेष सौदर्य को लिये हुए मुकुलित हो गये, मानो यह बता रहे हो कि राम के प्रताप के आगे इद्र के शत्रु रावण का मुँह भी ऐसा ही कुम्हला जायगा । चारो ओर अधकार ऐसा व्याप्त होने लगा, मानो राम का शीतलोपचार करने के लिए दिग्वधुएँ ललित तमाल-पल्लव-राशियो को उछाल रही हो । जहाँ-तहाँ कुमुद ऐसे विकसित हुए, मानो वे यह सोचकर हँस रहे हो कि सूर्यवश-तिलक राम की वधू को बदी बनाकर हर्षित होनेवाले दनुजेन्द्र का हर्ष भग हो जायगा । सारा आकाश इस प्रकार नक्षत्र समूह से अलकृत था, मानो वह इस बात की सूचना दे रहा हो कि रामचन्द्र के पैने शरो से सारा समुद्र सूख जायगा और उसके गर्भ में स्थित रत्न-राशियाँ इस प्रकार दिखाई पड़ेंगी । आकाश के सारे नक्षत्र समुद्र के जल में इस प्रकार प्रतिबिंबित हो रहे थे, मानो रामचन्द्र के विरह-ताप का शमन करने के लिए निशासुदरी ने सुगधित मल्लिका-पुष्पो की शय्या का प्रबध कर दिया हो । चक्रवाक एक दूसरे से अलग होकर शीघ्र गति से चारो दिशाओ में चले गये, जिससे सब दिशाओ में इस बात की घोषणा करें कि श्रीरामचन्द्र विरह-व्यथा से पीडित हो रहे हैं, यदि हम भी विरह मे पीडित हो, तो क्या, आश्चर्य है । चन्द्र अपनी किरणो को आकाश में व्याप्त करते हुए ऐसा उदित होने लगा, मानो वह श्रीराम की निदा यो कर रहा हो कि हे राजन्, मैं राजा (नक्षत्रो का) होकर समुद्र को प्रसन्नता से प्रफुल्ल कर देता हूँ और आप राजा होकर उसको सुखा देना चाहते है । आप पूर्णकला से समन्वित है, क्या आपके लिए यह उचित है ? यदि आप

ऐसा करेंगे, तो आपको भी (मेरे समान) कलक लग जायगा । चन्द्रिका समस्त दिशाओ में ऐसे व्याप्त हो गई, मानो चन्द्र विकट अट्टहास कर रहा हो कि हे राजा राम, जिस शिव ने मुझे अपने सिर पर धारण करके मेरा सम्मान किया है, ऐसे शिवजी के धनुष को तोडने के कारण ही आपको विरह-दुःख हुआ है। उज्वल चाँदनी चारो दिशाओ में ऐसे व्याप्त हो गई, मानो चन्द्रमा ने समुद्र के फेन-रूपी चदन को अपनी किरणो के द्वारा लहरो से आकृष्ट करके, दिग्वधुओ के शरीर पर मल दिया हो । तब चकोर-चकोरी अत्यधिक आनद से एक दूसरे का आलिगन करते बार-बार अपनी चोचो को पसारकर छककर चद्रिका-रस का पान करते, बडे अनुराग से अपनी प्रियाओ को पिलाते, उनके पीने पर स्वय पीते और इसी प्रकार बडे मोद-मग्न हो चन्द्रिका में खेलते-कूदते । इस प्रकार, जब वे अपनी प्रियाओ से अलग होते, फिर उनको ढूँढकर उनके साथ बडे आनद से रहने लगते थे । इन पक्षियो को देखकर वियोग-दुःख से पीडित राम, सीताजी का स्मरण करके मन-ही-मन अत्यधिक व्यथा का अनुभव करने लगते ।

अपने अग्रज को इस प्रकार सतप्त होते देख लक्ष्मण उन्हें शाति पहुँचाने के उद्देश्य से बोले—'हे देव, आप अनुपम वीर हैं, उदात्त चित्तवाले हैं । आप इसके लिए क्यो दुःखी हैं । अभी हम समुद्र को पार करके लका पहुँचेंगे, युद्ध में दशकठ का सहार करेंगे, और मिथिलेश की प्रिय पुत्री, कमलवदनी सीता को मुक्त करेंगे । आप खिन्न न होइए ।' अनुज के इन नम्र वचनों को सुनकर राम प्रसन्नचित्त हुए ।

सैनिक-शिविरो में, वानर उस आनदप्रद चाँदनी में मुदित मन से रामचन्द्र के गुणो का गान करते, खेलते तथा कूदते रहे । कुछ लोग समुद्र के किनारे बडे आह्लाद से विचरण कर रहे थे । कुछ लोग विष्णु के सभी अवतारो की कथाएँ दूसरो को सुना रहे थे, तो कुछ वानर पिघलनेवाली उन चन्द्रकात शिलाओ पर बडे आनद से सोने का यत्न कर रहे थे । इस प्रकार, वे बडी देर तक विविध क्रीडाओ में मग्न रहे ।

शीघ्र ही पूर्व दिशा में अरुणिमा का ऐसा आभास हुआ, मानो वडवानल ही इस भय से कुपित होते हुए कि, जब राघव समुद्र पर अपने पैने बाणो का प्रयोग करेंगे, तब उनका लक्ष्य बन जाऊँगा, उदयाचल पर चढ गया हो । सभी नक्षत्र इस भय से व्याकुल हो छिपने लगे कि समुद्र का दहन करने के लिए राम के बाणो से उत्पन्न अग्नि की शिखाएँ कहीं आकाश तक न व्याप्त हो जायें । धीरे-धीरे सूर्य का उदय होने लगा, मानो वे अपने पौत्र (राम) को सचेत करने के लिए आ रहे हो कि हे राघव, अभी विलब क्यो करते हो, समुद्र को पार करके शीघ्र ही रावण का सहार करो । सभी कमल एक साथ ऐसे विकसित हुए, मानो [illegible] (सर्वदर्शी) राघव का विजय-कमल, साम्राज्य-कमल, तथा कीर्ति-कमल एक साथ ही विकसित हो रहे हो । तब वानरवीर जगकर प्रातःकालीन सध्या-[illegible] आदि क्रियाओं से निवृत्त हुए ।

६ मंत्रियों के साथ रावण की मंत्रणा

[illegible] में रावण ने अपने मंत्रियों की सभा बुलाई और उनसे कहा—"हे मंत्रिवरो, [illegible] वानर ने, [illegible] निशा की भाँति, मेरे नगर में

प्रवेश किया, लकिनी का वध किया, सीता के लिए लका को शोध डाला, मेरे पुत्र का वध किया, मेरी शक्ति का तिरस्कार करते हुए मेरी नगरी को जलाकर भस्म किया और बहुत-से राक्षसो का वध किया। वह हमारे हाथ में फँसकर भी हमारे हाथ से बचकर चला गया। वही राघवो को समुद्र के किनारे ले आया है। यदि सूर्यवशतिलक समुद्र को सुखाकर या समुद्र पर पुल बाँधकर इस पार चला आया, तो हमारा सब किया-कराया मिट्टी में मिल जायगा। उसके समुद्र पार करने के पहले हम क्या उपाय करें, जिससे वह लका में नही आ सके। तुम अच्छी तरह सोच-विचारकर कहो कि हमारा अब क्या कर्त्तव्य है। यदि तुम्हारा बताया हुआ उपाय उपयोगी होगा, तो वैसा ही करेंगे।"

तब उन मूर्ख मत्रियो ने राक्षसेश्वर से कहा—"हे देव, आपके वश में बहुत-से ऐसे दिव्यास्त्र है, जो देवताओ के लिए भी अजेय है। आप ने सर्पराज को बाँधा, उसका विष उगलवाकर गर्व-भग किया। रुद्र के मित्र कुबेर का गर्व चूर करके आपने उसका पुष्पक विमान ले लिया। मय की ख्याति को नष्ट करके उसकी प्रिय पुत्री से विवाह कर लिया। मृत्यु-देवता अतक (यम) को बदी बनाकर उस अतक के लिए आप अतक बन गये। अनुपम बलशाली वरुण को कँपा दिया और उसे अपने वश में कर लिया। हे सम्राट्, आपने सभी चक्रवर्तियो के राज्य बात-की-बात में हस्तगत कर लिये। क्या आपने शूलपाणि (शिव) के निकट अपने बाहुबल का प्रदर्शन करके उनको नीचा नही दिखाया? क्या, स्वर्ग के देवताओ के साथ उस इन्द्र का गर्व आपने नही तोडा? क्या, आपने अग्नि को अपनी प्रतापाग्नि का ताप दिखाकर उसका ताप नष्ट नही किया? क्या, दैत्यनाथ नैऋत पर क्रुद्ध होकर अपने पराक्रम से उसका गर्व-भग नही किया? आपने पवन को एक स्थान पर स्थिर रहने नही दिया और अपने बाहुबल से उसे विचलित कर दिया। राम तो एक मानवमात्र है और आप मनुष्य-भक्षी है। यह कैसे सभव है कि वह आपके हाथो से बचकर जीवित रहे? आपके पुत्र ने ईश्वर की प्रीति के लिए महेश्वर-यज्ञ करके शाश्वत कीर्त्ति तथा पूर्ण सफलता प्राप्त की; इन्द्र को जीतकर उसने इद्रजीत का नाम प्राप्त किया। उसने इद्र को भी बदी बनाया था, किन्तु ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर उन्होने उसे ब्रह्मा को दे दिया। क्या, युद्ध में विजय पाने के लिए वह अकेला ही पर्याप्त नही है? हे दैत्यराज, आपको चिंता करने की कोई आवश्यकता नही है।"

७. दानव-वीरों के दर्पपूर्ण वचन

इस प्रकार, जब मत्री रावण को समझा रहे थे, तब महान् बलशाली एव प्रलय-काल के रुद्र को भी परास्त करनेवाले शूर, ब्रह्मास्त, इद्रजीत, शतमाय, दुर्मुख, अतिकाय, मकराक्ष, खड्गरोम, वृश्चिकरोम, सर्परोम, अग्निवर्ण, विरूपाक्ष, अक्षीणबल धूम्राक्ष, अक्षतविजयी उपाक्ष, अनुपम बली रश्मिकेतन, अमित पराक्रमी अग्निकेतन, वज्रदष्ट्र, सप्तघ्न, शोणिताक्ष, प्रबलशूर महापार्श्व, कुभ, निकुभ, सूर्यशत्रु, अग्निकोपन, महोदर, देवताओ को जीतनेवाला देवातक, अद्वितीय पराक्रमी तथा नरो का नाश करनेवाला एव भयकर आकारवाला महाकाय, विद्युज्जिह्व, कपन तथा अकपन आदि अभेद्य विक्रमी एव श्रेष्ठ दैत्यवीर, राक्षस राजा रावण के सामने क्रोधाभिभूत होकर खडे रहे। उनकी लाल-लाल आँखो से क्रोध की भयकर

ज्वालाएँ निकल रही थी । प्रलय-काल के प्रचड प्रभजन से मुक्त, कुलपर्वतो की भाँति वे परस्पर देख रहे थे, फुफकारनेवाले सर्पो की भाँति उनकी साँस वेग से चल रही थी । वे बड़े गर्व से शूल उठाते, खड्गो को खीचते, करवालो को आकाश में घुमाते, लाठियों को ऊँचा करते, चक्रो को घुमाते, प्रवल मुद्गरो को सँभालते, दीर्घ खड्गो को दिखाते, भालो को घुमाते और धनुष का टकार करते हुए अपने क्रोध को प्रकट कर रहे थे । उनके इस क्रोध-प्रदर्शन के समय, उनके करवाल एक दूसरे से टकराकर स्फुलिंग उगलते थे, परस्पर उनके केयूर तथा मुकुटो के रगड खाने से मोती विखर जाते थे और आभूषण चूर-चूर हो जाते थे । वे क्रोधोन्मत्त हो आकाश को कँपा देनेवाली गभीर ध्वनि से रावण से कहने लगे—'हे देव, देवता गधर्व, दैतेय तथा किन्नर आपको देखने का भी साहस नही करते; इन्द्र भी तो आपको देखकर भय से सिकुड जाता है । तव नर तथा वानरो का साहस ही कितना है कि वे आपका सामना कर सकें ? उस दिन हम कुछ आसावधान से रहे, इसलिए उस नीच वानर ने अपनी दुष्टता से आतक फैला दिया था । अव हमारे सामने किसकी शक्ति है कि लका में प्रवेश करने का साहस करे । हे दानव-नाथ, इतना क्यो, आप हमें शीघ्र आदेश दीजिए । हम तुरत जाकर उन वानरो का नामो-निशान मिटा देंगे और राजकुमारो का सहार करके वापस आयेंगे ।'

८. राक्षसवीरों को विभीषण का उपदेश

इस प्रकार की दुर्वार गर्वोक्तियाँ कहनेवाले राक्षसो को देखकर विभीषण, समस्त इन्द्रियो को अपने वश में किये हुए योगीन्द्र की भाँति, गरजनेवाले उद्दण्ड मेघो को शात रखनेवाले इन्द्र की भाँति उन सव को अपने-अपने आसनो पर बैठ जाने का आदेश देकर बोला—"हे वीरो, तुम उतावले मत वनो । किंचित् विचार करके देखो । किसी भी कार्य को साधने के लिए पहले साम, दान, तथा भेद के उपायो का आश्रय लेना चाहिए । यदि उनमे कार्य सिद्ध न हो, तभी दण्ड-विधान का आश्रय लेना पड़ता है । पहले ही दण्ड-नीति को अपनाना नीति-विरुद्ध है । शत्रु के असावधान रहते समय ही, उसको जीतना सुलभ है, या उस समय उसको जीता जा सकता है, जव कोई अन्य शत्रु उस पर आक्रमण करने आता है और वह भगवान् की कृपा से वचित रहता है । राम कभी असावधान नही रहते; उनका पराक्रम दुर्वार है, उन पर कोई आक्रमण करने नही आता । और तो और, वे स्वय भगवान् है । शिव-धनुप का भग उन्ही ने तो किया था ? वे परम विवेकी हैं, अनुपम वाहुवल-सपन्न, तथा विजयी है । तुम चाहे जितना भी डीग हाँको, उस सूर्यकुल-तिलक को जीतना क्या, तुम्हारे लिए सभव है ? उस वायुपुत्र की शक्ति का किंचित् विचार करो, जिसने विशाल समुद्र को एक छोटी नहर की भाँति पार कर लिया है । तुम नही जानते कि उसने तुम्हारे देखते-देखते लका में कैसा उत्पात मचा दिया ? उस वानर ने राम की सेना के शौर्य का आभासमात्र दिखाया है । ऐसे अनेक वानर और उनसे भी अधिक शक्तिशाली असख्य वानर उनकी (राम की) सेवा में है । तुम लोग राम के पराक्रम के आगे कैसे टिक सकते हो ? हे दानववीरो, क्रोधोन्मत्त हो अपने तथा दूसरो के बल का अनुमान किये विना, ऐसे वचन कहना क्या बुद्धिमानी है ? सुदरियो में

श्रेष्ठ सुदरी राम की पत्नी सीता जब भयभीत होकर रामचन्द्र को पुकारने लगी, तब राक्षसेश्वर अत्यंत वेग से उन्हें उठा लाये। हम स्वय सोचें, उन्होने हमें कौन-सी हानि पहुँचाई है ? तुम लोग इस बात का तो विचार करते हो कि उन्होंने खर-दूषण आदि राक्षसो को खड-खड कर दिया, किन्तु तुम यह नही सोचते कि पहले उन राक्षसो ने ही उनको घेरा था। क्या, राम-लक्ष्मण पर आक्रमण करना उनको उचित था ? अपने किये हुए कर्मों के फल भोगकर वे नष्ट हो गये और अमर-लोक को प्राप्त हो गये। अब उनकी चिंता क्यो करें ? हमारी भलाई इसी में है कि वीर वानरो के लका में प्रविष्ट होने के पहले, हमारे दुर्गों के उनके पदाघात से नष्ट होने के पहले ही, सौमित्र के बाण-रूपी वज्र के गिरने के पहले, रामचन्द्र के क्रोध से उत्तेजित होने के पहले ही और उनकी क्रोधाग्नि से लका के भस्म होने के पहले ही, हम सीता को श्रीरामचन्द्र के पास पहुँचा दें। सीता को ले आने के दोष का यही परिहार है। राम-भूपाल धर्मात्मा हैं और धर्म की सदा विजय होती है।"

इस प्रकार विभीषण ने कई प्रकार से राक्षसवीरो को समझाया और फिर दशकठ को देखकर कहा—'हे प्रभु, दुर्व्यसन सुख तथा धर्म में बाधा डालनेवाले होते हैं। अतएव आप उनका त्याग कीजिए। धर्म-पालन सुख तथा कीर्त्ति प्रदान करनेवाला होता है। इसलिए आप धर्म के पथ का अनुसरण कीजिए और नीतिज्ञ कहलाइए। हठ छोडिए, और प्रसन्न-चित्त होइए। यदि आप अपने समस्त कुल की रक्षा करना चाहते हैं, तो जानकी को मुक्त कर दीजिए। उस राम से हम शत्रुता क्यो करें ?' इस प्रकार के नीतियुक्त वचन सुनना रावण को अप्रिय लगा। इसलिए वह तुरत सभा-भवन छोडकर अत पुर में चला गया।

९. रावण को विभीषण का हितोपदेश

दूसरे दिन प्रात काल ही विभीषण सध्यावदन आदि प्रात काल के नित्य कर्मो से निवृत्त होकर अपने रथ पर सवार हो रावण के अत पुर को चला। उसके चारो ओर राक्षस सैनिक उसकी सेवा में चल रहे थे। वह रमणीय तथा चित्र-विचित्र तोरणो से अलकृत राज-मार्ग से होकर सुदर शिल्पो को देखते हुए रावण के उस अत पुर के सिंह-द्वार पर पहुँचा, जहाँ (अश्वो की) हिनहिनाहट, (गजो की) चिंघाड, पटह तथा शखो के निनाद, सेवा-कार्यों में प्रवृत्त परिचारिकारिओ की पायलो का झकार, अत पुर के रक्षको के हुकार, सूत-मागध वदी-जनो की स्तुति, परिचारको के वार्त्तालाप की ध्वनि, तथा गजो की नि श्वास-वायु के कारण बडे वेग से फडफडानेवाली पताकाओ की ध्वनि, समुद्र की तरगो के घोष के समान समस्त दिशाओ को वधिर बना रही थी। वह अत पुर विश्वस्त राक्षस-वीरो से ऐसा रक्षित था, मानो नक्षत्रो से परिवृत हो। उस सौध के सिंहद्वार पर असख्य, गज-रथ तथ अश्वो का समूह था। ऐसे सिंहद्वार के निकट विभीषण अपने रथ से उतरा और अंत पुर में प्रवेश किया। वहाँ यज्ञ आदि सत्कर्मो से अनुरक्त पूजनीय ब्राह्मणो को पुण्याहवाचन तथा शान्ति-पाठ करते हुए देखा। विभीषण उन्हें देखते हुए बडी प्रीति से आगे बढा और सभा-भवन में पहुँकर अपने अग्रज को अत्यत भक्ति के साथ प्रणाम किया। फिर, रावण का आदेश पाकर एक उचित आसन पर बैठा।

उसके पश्चात् मंत्रणा-कुशल विभीषण सभी मंत्रियों के समक्ष कहने लगा—"हे देव, हे दैत्यनाथ, आप ध्यान देकर मेरा निवेदन सुनिए। जिस दिन से आप सीता को ले आये हैं, उसी दिन से दुःशकुन दिखाई देने लगे हैं। आजकल होम-कुंडों में त्रेताग्नियाँ प्रदीप्त नहीं होती। उन कुंडों को घेरकर बहुत-से साँप पड़े रहते हैं। सतत मदजल बहानेवाले जिन हाथियों के गंडस्थल पर भ्रमरों का गुंजार होता रहता था, वे मत्तगज आज शुष्क शरीरों से, गर्दनों को ऊपर उठाये, चुपचाप खड़े रहते हैं। अत्यधिक शक्ति तथा स्फूर्ति से संपन्न उत्तम अश्व, आज आँखों से पानी गिराते हुए चारा-पानी छोड़कर, शक्तिहीन हो पड़े हुए हैं। हे असुराधिपति, इन सब के निराकरण का एक ही मार्ग है। आप सीता को ले जाकर श्रीराम को सौंप दीजिए। वे आपके अपराध पर ध्यान नहीं देंगे (वे आपको क्षमा कर देंगे)। यही नीतिवान् के लिए उचित कार्य है। 'यही कार्य उचित है', इस बात को सब लोग समझते हैं, किन्तु आपको इस धर्म का उपदेश देने से वे डरते हैं। मैं भी विवश होकर ही आपसे निवेदन कर रहा हूँ।"

विभीषण के ये आप्त वचन रावण के कानों में प्रवेश ही नहीं कर पाये। उसने कहा—'मैं किसी से भी किसी भी प्रकार का भय नहीं रखता। चाहे कुछ भी हो जाय, मैं सीता को राम के पास नहीं भेजूँगा। चाहे देवता भी उसकी सहायता के लिए आ जाय, फिर भी युद्ध में मुझ दुर्जयी के सामने वह टिक नहीं सकेगा।' इस प्रकार कहते हुए वह अत्यंत क्रोध से सभा-भवन छोड़कर भीतर चला गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही उठकर रावण संध्यावंदन तथा ध्यान आदि से निवृत्त हुआ और अपने अनुज के वचनों पर मन-ही-मन विचार करके अपने मंत्रियों के साथ उन वचनों के बारे में मंत्रणा करने का निश्चय किया। फिर, वह सूर्य-मंडल के समान प्रभा से युक्त दिव्य विमान पर आरूढ़ हुआ। उस विमान का स्वर्ण-कलश बहुत-से सुन्दर रत्नों से खचित था। उसका ऊँचा छत्र, चंद्रिका के फन से विरचित-से अत्यधिक धवल दिखाई पड़ रहा था। सुंदरियाँ अपने कंकणों को झनझनाती हुई चामर डुला रही थीं। असंख्य तुरहियाँ बज रही थीं और बहुत-से सैनिक रावण की सेवा में लगे हुए उसका अनुगमन कर रहे थे। वेत्रधर-कंचुकी, सेवक-समूह को अनुशासन में रखने में तत्पर थे। इस प्रकार, अखंड वैभव से सुशोभित उस रावण ने अपने सभी मंत्रियों के साथ सभा-मंडप में इस प्रकार प्रवेश किया, मानो यह कह रहा हो कि सूर्यवंशी (राम) के शरों से आहत होने के पश्चात् मैं सूर्य-बिंब में प्रवेश करूँगा। फिर, सिंहासन पर आरूढ़ होकर सेनापतियों तथा गुप्तचरों को बुलाया। वे भी अपने रथों, गजों तथा अश्वों पर बैठकर तुरहियों के निनादों के साथ आये और सभा-मंडप के आँगन में पहुँचकर अपने वाहनों पर से उतरकर उस सभा-मंडप में प्रवेश किया, जैसे सिंह गिरि-गुफा में प्रवेश करते हैं। फिर, दानवेंद्र से उचित आदर प्राप्त करके प्रसन्नचित्त से अपने आसनों पर बैठ गये।

उचित कार्यों के संबंध में निवेदन करने का अच्छा अवसर जानकर मंत्रियों ने रावण से निवेदन किया, 'हे देव, आपके अनुज, प्रचंड बलशाली कुंभकर्ण आज जागे हुए हैं।' यह सुनकर रावण ने आदेश दिया कि उसे बुला लाओ। तुरंत वे कुंभकर्ण के यहाँ

गये और उससे कहा—'हे देव, आज प्रभु, सभा में विराजमान है और आपको वुला लाने के लिए हमें भेजा है ।' यह आदेश सुनकर कुभकर्ण अपने पुत्र कुभ तथा निकुभ के साथ शीघ्र सभा-मडप में पहुँचा । मणिमय, महिमा-समन्वित तथा नर्त्तकियो के सगीत की मधुर ध्वनि से सपन्न उस सभा-मडप में सिहासनस्थ अपने अग्रज को उसने प्रणाम किया और वडी नम्रता से एक उन्नत आसन पर बैठ गया । अपने भाई के साथ ही विभीषण भी आ गया और स्वर्ण के आसन पर उपविष्ट हुआ । तव रावण सुरेश (इद्र) के समान प्रभाव उत्पन्न करते हुए प्रहस्त को देखकर वोला—'लका नगर की रक्षा के लिए और भी अधिक सैनिको को नियुक्त करो, सभी मार्गो में, किले के द्वारो पर, भीतर तथा वाहर, राक्षस-वीरो को सावधान रहने की चेतावनी देकर नियुक्त करो ।'

१०. कुंभकर्ण को सीतापहरण का वृत्तांत सुनाना

उसके पश्चात् दानवेश्वर कुभकर्ण को देखकर अत्यधिक व्यग्रता से कहने लगा—"हे कुभकर्ण, मैं तुम्हें एक ऐसी वात सुनाता हूँ, जिसे तुमने अवतक नही सुना होगा । मैं एक दिन जनपद में गया और वहाँ राम की पत्नी, भूमि-सुता कमलाक्षी सीता पर मुग्ध होकर उसे यहाँ ले आया । कुछ दिन पहले हनुमान् नामक एक वानर यहाँ आया और सीता से मिलकर उसे प्रणाम किया और कहा—'हे देवी, आपके पति राम यहाँ अवश्य आयेंगे।' सीता उन वातो पर विश्वास किये बैठी है । वह मानव (राम) अत्यधिक साहस के साथ समुद्र के उस पार शिविर डाले पडा हुआ है । वह अपने साथ, वनो में पाये जानेवाले वानरो की एक वडी सेना एकत्र करके लाया है । शीघ्र मुझसे युद्ध करके सीता को ले जाने के निमित्त वह आ रहा है । वह भले ही यहाँ आवे । मैंने इन्द्र आदि देवताओ को परास्त किया है । जिस कैलास पर्वत पर शिव रहते है, उसे मैंने उठाया है । शभु से मैंने चद्रहास (नामक खड्ग) प्राप्त किया है । कमलसभव ब्रह्मा का वर मुझे प्राप्त है । तिस पर मुझे तुम्हारी शक्ति की सहायता प्राप्त है । तव, क्या एक साधारण मानव मुझे परास्त कर सकता है ? राम कैसे मुझे युद्ध में जीत सकेगा, और कैसे उस सुदरी को यहाँ से ले जा सकेगा ?"

इन वातो को सुनकर कुभकर्ण ने क्रोध में आकर सव लोगो के समक्ष रावण से कहा—'हे रावण, राम को धोखा देकर, उनकी पत्नी को इतनी क्रूरता के साथ तुम कैसे लाये ? क्या इस प्रकार उसे ले आना उचित था ? तुमने अपने मन में नीति का विचार ही नही किया । धर्म-मार्ग का स्मरण ही नही किया । काम के पीछे तुमने सारे कुल को कलकित किया । जिस दिन तुम सीता को ले आये, उसी दिन लका का सर्वनाश हो गया ? इसका नाश तो अव निश्चित ही है, चाहे कैसे भी हो । तुम उस सूर्यवशज राम के अप्रति-हत वाणो का लक्ष्य हुए विना अपने भाग्य से वचकर चले आये, यही वडी गनीमत है । अव मैं जाता हूँ । हे रावण, इतना वडा कार्य सँभालने का भार मुझ पर पडा है । अव तुम वानर तथा राघवो का किंचित् भी भय किये विना सुख भोगते रहो ।'

इन वातों को सुनकर महापार्श्व ने कहा—'हे राक्षसाधीश, आप तो समस्त लोकों के अधिपति है । क्या आप सीता के साथ वलपूर्वक रति-क्रीडा नही कर सकते ?' यह

सुनकर मन-ही-मन अत्यत प्रसन्न होते हुए राक्षसराज ने कहा—'हे महापार्श्व, सुनो। एक बार मै ब्रह्मा की सभा में जाते समय पुजिकस्थली नामक एक सुदरी को देखकर उस पर मुग्ध हुआ और वासना से प्रेरित होकर वलपूर्वक उसके साथ रति-क्रीड़ा की। यह बात जानकर ब्रह्मा मुझ पर क्रुद्ध हुए और शाप दिया कि हे राक्षस, स्त्रियो के प्रति आदर दिखाये विना, अनुचित रीति से यदि तुम भविष्य में किसी भी स्त्री के साथ वलात् रति-क्रीडा करोगे, तो अवश्य तुम्हारे सिर के सौ टुकडे हो जायँगे। यही कारण है कि मै किसी भी स्त्री की स्वीकृति प्राप्त किये विना उसके साथ वलात्कार नही करता। मेरी शक्ति का विचार किये विना वानर-सेना के साथ राम का लका पर चढ आना उसी प्रकार है, जैसे भद्रगजो के समूह का सोनेवाले सिंह को जगाना।'

तव विभीषण ने हँसकर रावण से विनयपूर्वक निवेदन किया—'हे भाई, तुम्हारे लिए सीता एक भयकर कालसर्पिणी है। उनकी उसासें ही (नागिन का) फुफकार है और उनका दुख ही गरल है। वह (काली नागिन) किसी भी प्रकार तुम्हें नही छोडेगी। इस कार्य से तुम्हें अपयश मिलेगा, पाप होगा, और तुम्हारा सुख नष्ट हो जायगा। इसलिए इस अनीति को तुम छोड दो।' उसके पश्चात् प्रहस्त को देखकर विभीषण ने प्रखर वाणी से कहा—"आज तुम क्यो इतना इतरा रहे हो? जिस दिन राम के वज्र-जैसे वाण तुम्हारे वक्ष में गडेंगे, उस दिन तुम जानोगे, परुष वचन कहना तो आसान है। क्या यह कुभकर्ण, यह निकुभ, यह कुभ, यह महोदर, यह महापार्श्व, यह इन्द्रजीत युद्ध में राम को जीत सकेंगे? युद्ध में वे भी अपनी शक्ति दिखायेंगे ही; युद्ध में तुम सभी रक्षक होकर रावण की रक्षा में तत्पर रहना। एक वात स्मरण रखो, चाहे इन्द्र ही रावण की रक्षा करे, देवता ही उनको वचाने का प्रयत्न करें, कालाग्नि-सम भयकर रुद्र ही उनकी रक्षा करने आवें, यहाँ तक कि मृत्यु ही स्वय उन्हें वचाना चाहे, तो भी रामचद्र रावण का सहार किये विना नही रहेंगे। जव मनुकुल-तिलक दनुजेश्वर को जीतने के लिए धनुष हाथ में धारण करे, तो क्या, हम उनकी शक्ति का सामना कर सकते है? प्रलय-काल की अग्नि कही मुट्ठी में समा सकती है? उमडनेवाली जलराशि क्या, छोटे-से मुँह में समा सकती है? क्या, पाताल को अपने क्रोड के भीतर सीमित कर सकते है? क्या, गगन को पार करना सभव है? क्या दिङ्मडल के वितान को तोडना सभव है? क्या, शिवजी के करवाल को खड-खड करना सहज है? क्या, सूर्य को हथेली से ढक सकते हैं? तुम जैसे अज्ञान लोगो से वात करना भी वृथा है। तुम्हारे जैसे मन्त्रियो के रहते मूर्ख तथा कामातुर रावण मरेंगे क्यो नही? क्या, वे मेरे हित वचनो को सुनेंगे? वे मदाध होकर तुम्हारी मत्रणा से अवश्य ही नष्ट होगे।" इस प्रकार, सौजन्य का विचार किये विना जव विभीषण ने स्पष्ट वचन कहे, तो प्रहस्त ने उसकी वातो की उपेक्षा करते हुए कहा—'हम उरगो से युद्ध करके कभी परास्त नही हुए। सुरो से भिड़कर भी हम कभी नही हारे। यक्षो का सामना करके हम कभी विजित नही हुए। राक्षसो से जूझकर हम संतप्त नही हुए। हे विभीषण, तव क्या, मानवमात्र राम से, युद्ध में हम हार जायेंगे? न जाने, उनके सवध में तुम इतनी वातें कैसे जान पाये? आज पहले-पहल हम तुम्हारे

मुँह से ऐसी विचित्र बातें सुन रहे है । क्या, तुम समझते हो कि राक्षस उतने शक्ति हीन है ?'

११ इन्द्रजीत का विभीषण को अपने पराक्रम का परिचय देना

रामानुज की बाणाग्नि से दग्ध होना इन्द्रजीत के भाग्य में लिखा हुआ था। इसलिए वह अत्यधिक मद से उन्मत्त हो, किसी भी प्रकार की नीति का खयाल किये बिना कहने लगा—"हे विभीषण सुनो । राक्षसो की शक्ति तथा प्रताप का विचार करके देखो, तो यह निश्चय है कि हम में से अल्पशक्तिमान् भी राम तथा लक्ष्मण को जीत सकता है । तीनो लोको पर बडे वैभव से राज्य करनेवाले इन्द्र को क्या मैंने पकडकर बदी नही बनाया ? उसके ऐरावत को पकडकर उसके दाँत मैंने नही तोडे ? ये सब मेरे लिए कौन बडी बात थी ? मैंने अग्नि को अपमानित किया, यम को दबा दिया, नैऋत की शक्ति को नष्ट किया तथा वरुण को परास्त किया । दिक्पालो को इस प्रकार निष्ठुर होकर त्रास देनेवाले मेरे प्रबल हाथो से क्या, ये मानव नष्ट नही होगे ? तुम तो बहुत बढा-चढाकर उनकी महिमा का राग अलाप रहे हो । हे विभीषण, सप्त समुद्रो में प्रविष्ट होकर मै उन्हें आलोडित करूँगा, मेरु तथा मदर पर्वतो को नचा दूँगा, समस्त पृथ्वी को लाँघ जाऊँगा, इस पृथ्वी को ऐसे उछालूँगा कि वह जाकर आकाश से टकरा जायगी, मै समस्त लोको को झुका दूँगा, सारे वनचर समूह को इस प्रकार समुद्र में डुबो दूँगा कि वे थर-थर काँप उठेंगे, पृथ्वी का भार वहन करनेवाले उस शेष नाग को पकडकर, उसका विष निचोड दूँगा । अपने भुज-बल से सूर्य तथा चद्र को पकडकर उन्हें पृथ्वी पर रगड दूँगा । वनचर-समूह को पकडकर उन्हें सूर्य तथा दिशाओ के उस पार फेंक दूँगा, युद्ध में वानरो का रक्त भूतो को पिलाऊँगा, अपने शर-समूह से आकाश, दिशाएँ तथा पृथ्वी को ढक दूँगा । सूर्य के रथ का जुआ पकडकर आकाश में घुमाऊँगा और उसे पृथ्वी में दबा दूँगा। अपने दायें और बायें हाथो में पृथ्वी तथा आकाश को ग्रहण कर उनको ऐसा मसल दूँगा कि वे चूर-चूर हो जायँ । हे विभीषण, तुम दनुजेश्वर के भाई हो, इसलिए मै तुम्हें कुछ कहे बिना क्षमा करता हूँ । यदि दूसरा कोई होता, तो मै कदापि ऐसी बातें नही सहता। ऐसी व्यर्थ की बातें क्यो करते हो ?"

१२. विभीषण द्वारा इन्द्रजीत के दंभ की निंदा

इन दर्पपूर्ण वचनो को सुनकर विभीषण अत्यत क्रुद्ध हुआ और इद्रजीत को देखकर इस प्रकार कहने लगा—"तुमने सूर्यवशज राम को क्या समझ रखा है कि ऐसे मात्सर्य-युक्त अनुचित वचन कह रहे हो ? तुम्हारे हाथो से पराजित होने के लिए वे इन्द्र नही है, वे तो युद्ध में भयकर बननेवाले राम है । तुम्हारे द्वारा परास्त होने के लिए वे अग्नि-देव नही है; वे तो रणनीति-कुशल राम है । तुमसे हार जाने के लिए वे यम नही है, वे तो रण में प्रचण्ड रूप धारण करनेवाले राम है । तुमसे परास्त होने के लिए, वे नैऋत नही है; वे तो युद्ध में भयोत्पादक रूप धारण करनेवाले राम है । तुम्हारे द्वारा विजित होने के लिए वे वरुण नही है, वे तो रण में अत्यधिक सावधान रहनेवाले राम है । वे तुमसे हार जानेवाला पवन नही है; वे युद्ध-निपुण राम है । तुमसे परास्त होने वाले कुबेर नही है;

वे तो युद्ध में वज्रसम शत्रुओ का नाश करनेवाले राम है । तुम्हारे हाथो से पराजित होने के लिए वे पशुपति नही है, वे तो रण में अवश्य विजय प्राप्त करनेवाले रामचद्र है । युद्ध में उनका सामना करना इतना सहज मत समझो, जितना दिक्पालो का सामना करना है । मदाध होकर असभव कार्यो को साधने का विचार करोगे, तो मुँह की खाकर गिरोगे । तुम पुत्र नही हो, कुलनाशक हो । तुम ही रावण के शत्रु हो । रामचन्द्र के अग्निसम वाणो के प्रहार के सामने क्या रावण टिक सकता है ? उचित यही है कि रावण मणियो, गज-मणियो तथा अश्व-मणियो साथ उस मानिनी-मणि (सीता) को रामचन्द्र के पास पहुँचा दे ।

१३. रावण का विभीषण को नगर से निर्वासित करना

तव रावण ने विभीषण को रोषपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—'शत्रु के साथ भी सतत (युद्ध करते हुए) रह सकते है, विष उगलनेवाले सर्प के साथ भी निर्भय होकर रह सकते है, किन्तु शत्रु से मिले हुए पर अपना वनकर रहनेवाले लोगो के साथ जीवन विताना कठिन है । तुम ऐसे ही व्यक्ति हो । इसीलिए मेरे सामने तुम वडे गर्व से शत्रु की प्रशसा करते रहते हो । तुम मेरे अनुज हो, इसलिए अवध्य हो ? (क्रोध से) क्या, तुम सचमुच मेरे अनुज हो ? तुम तो मेरे ज्ञाति (गोतिया) हो ।'

कुभकर्ण ने देखा कि ब्रह्मा का शाप प्रवल है, (अर्थात्, रावण का अत निश्चित है), न तो वह अपने अनुज की वातो को अनुचित कह सका, न अपने अग्रज को अनुचित कहने से रोक ही सका । इसलिए वह वडे आदर के साथ अपने अग्रज को प्रणाम करके सोने के लिए अपनी गुफा में चला गया । उसके चले जाने के पश्चात् विभीषण ने रावण को देखकर कहा—'हे भाई, तुम मेरे अग्रज हो, इसलिए तुम पर आनेवाली विपत्ति की कल्पना से भयभीत होकर मैंने तुमको उचित परामर्श दिया है । हे असुरेन्द्र, आप्त वधुओ के हित-वचन तुमको बुरे लगते है । ऐसे मत्री वहुत कम होगे, जो अच्छा परामर्श देते है और ऐसे राजा भी वहुत कम होगे, जो उन वचनो को सुनते है । मेरा धर्म है कि मैं आपके हित का विचार करके उचित परामर्श दूँ और आपका धर्म है कि आप उसे स्वीकार करें । सीता को लौटा देना तुम्हारे लिए नीतिसगत होगा । यदि ईश्वर स्वय प्रतिकूल हो, तो शक्ति तथा पराक्रम आदि किस काम आयँगे ? दशरथ के पुत्र स्वय ईश्वर है, भला उनके अतिरिक्त और कोई ईश्वर भी है ?'

विभीषण के इन वचनो को सुनकर रावण की भौहें तन गई, मुख विकृत हो उठा, क्रोध के कारण आँखो से अग्नि निकलने लगी और होठ फडकने लगे । उसने गरजकर कहा—'तुम मेरे सम्मुख राम को ईश्वर कहते हो ? एक साधारण मानव कही ईश्वर हो सकता है ? अविवेकी पिता के द्वारा राज से निर्वासित होकर, वनो में भटकते हुए कद-मूल तथा पत्तो पर जीवन व्यतीत करनेवाले को कही ईश्वर कहते है । यदि वह ईश्वर होता, तो जव मैं उसकी पत्नी को चुराकर लाया, तभी वह मुझ पर आक्रमण करता । इसके विपरीत, वह अपने भाई के साथ जगलो में रोते-कलपते फिरता रहा और भटककर सुग्रीव नामक एक वानर के आश्रम में रह रहा है । क्या, यह सव ईश्वर के ढग है ? एक कायर मानव को मेरे समान कहकर, क्यो वार-वार मेरे सामने उसकी प्रशसा करते हो ?'

तब विभीषण ने मन-ही-मन हँसते हुए रावण से कहा—"हे राक्षसाधीश, देवताओ की वृद्धि करने, ऋषियो की रक्षा करने, तथा असुरो को दंड देकर पृथ्वी का पालन करने के लिए आदिनारायण ने सूर्यवंश में दशरथ का पुत्र होकर जन्म लिया है । उस महा महिमा-संपन्न आदि देव की महिमा का वर्णन ब्रह्मा भी नही कर सकता। सनकादि मुनि भी उसका बखान नही कर सकते । भला, तुम उनकी महिमा कैसे जान सकोगे । राम साधारण मानव नही है । इसलिए यदि तुम जीवित रहना चाहते हो, तो राम के दर्शन करके कमलमुखी सीता को उन्हें सौंप दो । विचार करके देखो, अर्थ तथा काम मात्र की प्राप्ति से धर्म की सिद्धि नही हो सकती । तुम तो कभी नीतिमार्ग का अनुसरण करना नही चाहते । तुमसे भी अधिक तुम्हारे मित्र तथा अनुयायी उसे नही चाहते । हे दानवेन्द्र, कार्य तथा अकार्य का विवेक नही रखनेवाले तुम्हारे लिए धर्म का क्या मूल्य हो सकता है ? वानर अवश्य समुद्र पार करके यहाँ आयेंगे । हाथ जोड़कर (दया की भिक्षा माँगने-वाली) राक्षस-स्त्रियो के केश पकड़कर उन्हें घसीटेंगे । ऐसा करने के पहले ही तुम सीता को रामचन्द्र के पास पहुँचा दो । यही मेरा तुम से अनुरोध है । मै तुम्हें राज करते हुए देखना चाहता हूँ; अग्नि-ज्वालाओ के सदृश राघव के असंख्य शरो को उद्दण्डता से तुम्हारे वक्ष पर लगते हुए मै देखना नही चाहता । प्रलय-काल की अग्नि किस प्रकार कुलपर्वतो के शिखरो को गिरा देती है, वैसे ही राम युद्ध में तुम्हारे सिर गिराने लगेंगे । उस दृश्य को मै कैसे देख सकूँगा ?"

विभीषण की इन बातो को सुनते ही रावण के दसो मुख क्रोध से लाल हो गये, कनपटी की शिराएँ फूल गई और प्रचंड गति से निःश्वास चलने लगा, मानो धूम से युक्त अनल ही हो । अपने पदाघात से पृथ्वी को चूर-चूर करते हुए, तथा गर्जन से आकाश को कँपाते हुए, अपने क्रोध का पूर्ण स्वरूप प्रकट करते हुए तुरत वह सिंहासन से उतरकर विभीषण की ओर लपका और उस पर प्रहार करने के लिए अपना खड्ग उठाया। फिर, अपने-आप को रोककर उसने विभीषण पर पदाघात किया । तब वज्रपात से गिरनेवाले पर्वत के उन्नत शिखर के समान विभीषण पृथ्वी पर गिर पड़ा । गिरे हुए विभीषण पर जब रावण खड्ग का प्रहार करने का उपक्रम करने लगा, तब प्रहस्त ने उसे रोका । सभा के सभी लोग कहने लगे—'हाय, यह कैसा अनर्थ है ?'

रावण की आँखो से क्रोध की ज्वालाएँ निकल रही थी । उसने प्रहस्त को देखकर कहा—'हे प्रहस्त, तुमने इसके दुर्वचन सुने ? इसे अनुज मानकर इस पर कौन विश्वास कर सकता है । इसको तुरत बाहर निकालो । सौजन्य के कारण विलंब करो, तो मेरी सौगंध है।'

तब प्रहस्त ने क्रोध प्रकट करते हुए विभीषण को देखकर कहा—'अब तुम यहाँ मत रहो । यहाँ से तुम अपनी इच्छा से कही भी जाकर रहो।' तब विभीषण अत्यधिक क्रुद्ध हुआ । उसने अनल, नल, हर, संपाति नामक अपने साथियो को साथ लेकर हाथ में गदा लिये हुए वहाँ से चल पड़ा और चलने समय उसने रावण को देखकर कहा—'हे राक्षसेन्द्र, तुम कामातुर हो, समस्त पापो का भांडार हो और क्रूर कर्म करनेवाले हो । मैं पहले से ही तुम से दूर रहना चाहता था । तुम्हारा यह आचरण मेरे लिए नया नही है ।

मैं उस आर्त्त-रक्षक, कृपानिधि, दिव्य मूर्त्ति, जगद्विख्यात, सत्यनिष्ठ, नित्य यशोनिधि और निर्मलात्मा रामचन्द्र भूपाल की शरण में जाऊँगा। वे सदा शरणागत की रक्षा करते हैं। मैं तो जा ही रहा हूँ। कम-से-कम भविष्य में तुम नीतिसंपन्न होकर अपना जीवन व्यतीत करना। ऐसा नहीं करोगे, तो जब सुग्रीव लंका पर आक्रमण करेगा, तब तुम्हें मेरे हित-वचन का स्मरण होगा; या जब वानर लंका को घेर लेंगे, तब तुम मेरी मंत्रणा का स्मरण करोगे; या रघुराम के भयंकर बाण तुम्हारा नाश करने लगेंगे, तब तो अवश्य मेरी बातों को याद करोगे।'

१४. विभीषण का अपनी माता के भवन में जाना

ऐसा कहकर विभीषण ने अपने अग्रज को प्रणाम किया और बड़े वेग से अपनी माता के अंतःपुर की ओर चला। वह क्रुद्ध सिंह के आक्रमण से आहत होकर, उससे बचकर जानेवाले मत्त हाथी के समान तथा भयंकर रव के साथ गिरनेवाले वज्रपात से गड़ित पर्वत के समान दीखते हुए अपनी माता के घर में पहुँचा। वह अंतःपुर विश्वकर्मा से निर्मित था और कैलास पर्वत के सदृश शोभायमान था। अंतःपुर में पहुँचकर विभीषण ने अपनी माता को प्रणाम किया, जो अत्यंत निर्मल प्रभा से दीप्तिमान् थी, पर रावण की दुष्टता का स्मरण करके अत्यधिक दुःखित हो रही थी। वह श्वेत तथा मोटे वस्त्र धारण किये हुए थी। उसकी भौंहें तथा केश, चंद्रिका में घुलकर, आकाश-गंगा के झाग का रोगन चढ़ाये हुए के समान अत्यधिक धवल दिखाई पड़ते थे और दर्शकों में आदर का भाव उत्पन्न करते थे। सहारा लेकर चलने के लिए उनके हाथ में एक डंडा था। असंख्य वृद्ध ब्राह्मण, उनके समीप उनकी सेवा में लगे हुए थे। करुणा-रूपी जल-प्रवाह सरस वाग्विलास-रूपी लहरें, शम तथा दम-रूपी दोनों तट, धवल केश-रूपी झाग, निकटवर्त्ती ब्राह्मणों के वेदोच्चारण की ध्वनि-रूपी जल-घोष असंख्य श्रेष्ठ ब्राह्मण-रूपी पक्षियों के साथ विलसित होती हुई वह वृद्धा जाह्नवी के समान दीख रही थी। उसके निकट (बैठे हुए) कितने ही ब्रह्मराक्षस वेद-पुराण तथा शास्त्र आदि पढ़कर उसे सुना रहे थे।

अपनी वृद्धा माता को प्रणाम करके विभीषण आँखों में आँसू भरकर खड़ा रहा। उसे इस प्रकार दुःखी देखकर माता कैकसी संभ्रमित हुई और बड़े स्नेह से उसे अपने क्रोड़ में भरकर बार-बार कहने लगी—'हे वत्स, तुम इस प्रकार दुःखी क्यों हो? क्या अंतःपुर पर कोई ऐसी विपत्ति आई है, जिसका निवारण करना कठिन है? या किसी ब्राह्मण का वध हो गया है? या ब्रह्मा ने शाप दिया है? या शिव रुष्ट हो गये हैं? या विष्णु क्रुद्ध हो गये हैं? या रामचन्द्रजी लंका पर चढ़ आये हैं? शीघ्र बताओ कि तुम्हारे दुःख का क्या कारण है, अन्यथा मेरे प्राण मेरे शरीर में नहीं रह सकेंगे।'

तब विभीषण ने हाथ जोड़कर कहा—'हे माता, सुनिए। आज आपका ज्येष्ठ पुत्र, रविकुलभूषण राम के समुद्र-तट पर पहुँचने के संबंध में अपने मन्त्रियों के साथ परामर्श कर रहे थे। तब मैंने उनसे सादर निवेदन किया कि किसी भी प्रकार से सोचा जाय, उत्तम यही है कि सीता को राम की सेवा में पहुँचा दिया जाय। यदि हम ऐसा न करें, तो अवश्य ही राम समुद्र पार करके आयेंगे और हमारे कुल का नाश करेंगे। इस पर रावण अग्नि

समान जल उठे और मुझ पर ऐसा पदाघात किया कि आसन के साथ मै पृथ्वी पर गिर पडा । इतने से सतुष्ट न होकर उन्होने मुझपर खड्ग चलाना भी चाहा। किन्तु, मै किसी तरह वहाँ से बचकर यहाँ आ गया हूँ । अब मै उसी राम भूपाल की शरण में जाऊँगा और उनकी कृपा प्राप्त करके वही रहूँगा । अब यहाँ पर मेरे आप्त बधु और कौन है कि मै यहाँ रहूँ ।'

इन बातो को सुनकर कैकसी भय से मूर्च्छित हो गई और थोडी देर के बाद सँभलकर अपने पुत्र से कहने लगी—"हे वत्स, मै पूर्व से ही यह बात जानती हूँ । जिस समय देवता, देवेन्द्र तथा ब्रह्मा ने अमृत सागर के निकट पहुँचकर भगवान् विष्णु को अपनी विपत्तियों का वृत्तात सुनाया, तब उन्होने कहा 'बडी निर्दयता से तुम्हें त्रास देनेवाले क्रूर रावण तथा कुभकर्ण का वध करने के लिए मै सूर्यवश में जन्म लूँगा ।' तुम्हारे पिता ने यह वृत्तात मुझे विस्तार से सुनाया था । तब मैंने भयभीत होकर अपने पति से पूछा—'हे देव, आपके पुत्रो में कौन ऐसा पुण्यवान् है, जो आपके वश का उद्धार करेगा ?' तब उन्होने कहा—'सत्य, धर्म, तथा पवित्रता से सपन्न, नित्य यशस्वी तुम्हारा कनिष्ठ पुत्र ही राम की कृपा प्राप्त करके इस लका का पालन करेगा ।' इस प्रकार, कहकर तुम्हारे पिता तपस्या करने के निमित्त मेरु पर्वत पर चले गये । हे पुत्र, सूर्यवशतिलक राम ही विष्णु है, मानिनी सीता ही महालक्ष्मी है । क्या, तुम्हारे पिता विश्रवसु की बात मिथ्या हो सकती है ? तुम अवश्य राम की शरण में रहते हुए सुखी रहो और राक्षस-कुल को बचाने का प्रयत्न करो ।"

इतना कहकर उसने अपने पुत्र को आशीर्वाद दिया और उसे मत्राक्षत देकर विदा किया । विभीषण ने भी अपनी माता को बार-बार प्रणाम किया, और मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए, अपने मन्त्रियो के साथ आकाश की ओर इस प्रकार उडा, मानो यह बता रहा हो कि रावण के पच-प्राण उसका शरीर छोडकर इसी प्रकार उड जायेंगे । उस गुणनिधि विभीषण को देखकर लका के लोग अपने-अपने आँगनो में तथा गलियो में एकत्र होकर आपस में कहने लगे—'रावण ने धर्म का त्याग करके, भाई के प्रेम को भी ठुकराकर, विभीषण को निर्वासित किया है । नीति-रीति तथा कुशलता को उसने तिलाजलि दे दी है। रावण का नाश तो होगा ही, अब लका की क्या दशा होगी ?' कुछ लोग मन-ही-मन सोचने लगे कि विभीषण ही अब लका का राजा होगा । कुछ अन्य यह सोचने लगे, क्या विभीषण के राम से मिल जाने मात्र से रावण का नाश हो सकेगा ? ऐसे भी लोग थे, जो सोच रहे थे कि भले ही यह (विभीषण) राम के पास जाय, क्या राम इसका विश्वास करेंगे ?

१५. विभीषण की शरणागति

विभीषण अपने मन्त्रियो के साथ बडे हर्ष से, आकाश-मार्ग से, रामचन्द्र के निकट आ रहा था । तब सभी वानरो ने अत्यत आश्चर्य से उसकी ओर अपने सिर ऐसे उठाये मानो वे देवताओ को यह बता रहे हो कि हे देवताओ, रामचन्द्र (रावण पर) आक्रमण करने जा रहे है, परन्तु रावण अब अपने सिर नही उठा सकेगा, उसका कुल नष्ट होगा ।

तुम लोग भय को त्यागकर अपने सिर उठाओ । तब सुग्रीव ने उन्हें देखकर कहा—'हे वानरो, वह देखो, कोई अक्खड़ विक्रमी पर्वताकार दीर्घकाय, शस्त्रों से सुसज्जित होकर इसी ओर आ रहा है । देखो, वह कौन है ? तब सभी वानर बड़े-बड़े वृक्षों तथा पर्वतों को हाथ में उठाकर कहने लगे—'हे सुग्रीव, हे देव, हमें उससे युद्ध करने के लिए भेजिए; हम युद्ध में उस दैत्य का संहार करेंगे ।'

उनकी बातें सुनकर विभीषण ने कहा—'हे वानरो, मैं तुम्हारे पक्ष का ही व्यक्ति हूँ । इस प्रकार उतावले मत बनो । मैं रावण का भाई हूँ, किन्तु मैं उत्तम राक्षस तथा निष्कलंक मन का हूँ । श्रीराम की शरण पाने के निमित्त मैं लंका से यहाँ उनकी सेवा में आया हूँ । मैंने रावण को विविध रीति से समझाया कि तुम सीताजी को राम की सेवा में पहुँचा दो, किन्तु रावण ने मेरी बातों से क्रुद्ध होकर भरी सभा में मुझ पर पद-प्रहार किया । उससे सन्तुष्ट न होकर उसने निर्दय होकर मुझसे कहा कि यदि तुम मेरे राज्य में रहोगे, तो मैं तुम्हारा वध कर दूँगा, इसलिए मैं रामचन्द्र के दर्शनार्थ आया हूँ । मैं कपटी नहीं हूँ । मेरे मन में कोई पाप नहीं है । मैं भयभीत होकर आया हूँ । अतः तुम लोग मुझे राम भूपाल की शरण दिला दो ।'

तब सुग्रीव राम के दर्शनार्थ गया और बड़े विनय से उनसे निवेदन किया—'हे देव, रावण से क्रुद्ध होकर, उससे वैर ठानकर एक राक्षस आया है । अपने बंधुओं के साथ वह आकाश-मार्ग में ठहरा हुआ है और अपना मन आप पर लगाये हुए है । कहता है कि मैं रावण का भाई हूँ । वह मिष्टभाषी है और प्रार्थना कर रहा है कि, हे सूर्यवंशतिलक, मुझे अभयदान दीजिए । न जाने आप की कृपा किस ओर है । मेरा विचार है कि इस पर विश्वास नहीं करना चाहिए । हे राजन्, राक्षसों के समान कपटों का भांडार और कौन हो सकता है ? भला, दनुजेश्वर रावण का भाई यहाँ किसलिए आयगा ? अवश्य ही इस नीच का वध कर देना चाहिए ।'

१६ हनुमान् का विभीषण की योग्यता राम को समझाना

इतने में हनुमान् ने बड़ी नम्रता से प्रभु राम से कहा—'हे देव, इस राक्षस ने सारी बातें प्रकट रूप से कह दीं कि किस प्रकार रावण ने प्रचंड क्रोध से उस पर भरी सभा में पद-प्रहार किया । यह कथन सत्य प्रतीत होता है । हमारे लिए उचित बात कहना, और जिसने उसे देश से निर्वासित किया, उसे त्याग कर चले जाना, यह सत्य हो सकता है । इस में कपट नहीं दीखता । कपटी आदमी कितना भी बहाना करे, उसका कपट प्रकट हो जाता है । इसकी बातों में कोई भी बनावटीपन नहीं दीखता । न कोई बुराई ही दीखती है । हे राजन्, यह राक्षसों के भेदों को जानता होगा । इसका हमारे पक्ष में रहना ही उचित है । उस दिन जब रावण मुझे बाँधकर कई प्रकार के दुःख देने लगा था, तब इसने मेरे पक्ष में बहुत-सी बातें रावण को समझाई थीं । इसलिए मैं इसके मन की दशा का थोड़ा-सा परिचय रखता हूँ ।'

हनुमान् की बातें रामचन्द्र के मन को प्रिय लगीं । उन्होंने सुग्रीव को देखकर कहा—'हे सुग्रीव, हमें इस बात पर तर्क-वितर्क करने की आवश्यकता ही क्या है कि यह

रक्षस भला है या बुरा । क्षत्रिय का धर्म यही है कि चाहे शत्रु ही क्यो न हो, यदि वह शरणार्थी होकर आये, तो उसकी रक्षा करनी चाहिए । वाज के द्वारा पीछा किये जाने पर एक कपोत ने व्याकुल होकर राजा शिबि की शरण ली थी और शिवि ने अपना शरीर भी त्यागकर कबूतर की रक्षा की थी । जो व्यक्ति आर्त्त व्यक्ति को शरण देता है, वह अश्वमेध यज्ञ करने से प्राप्त होनेवाले पुण्य का भागी बनता है । हे सुग्रीव, विभीषण ही क्यो, यदि रावण ही स्वय अपना गर्व तजकर मेरी शरण में आये, तो मै उसकी भी रक्षा करूँगा । यही हमारे वश की रीति है । हे भानुपुत्र, मै उस विभीषण को शरण दूँगा । तुम तुरत जाकर उस भय-विह्वल विभीषण को ले आओ ।'

राम की कृपा-बुद्धि का विचार करके, सुग्रीव आँखें मुकुलित करके तथा सिर कँपाकर कहने लगा—'हे प्रभु, अपने परम शत्रु के अनुज के शरण माँगते ही, उमे अभयदान देकर उसकी रक्षा के लिए तत्पर होना इस ससार में आपके सिवा अन्य किस राजा के वश की बात है ।' इतना कहकर सुग्रीव अपनी सेना के साथ आकाश-पथ की ओर उडा और विभीषण को देखकर बोला—'हे विभीषण, श्रीराम ने तुम्हें अभयदान दिया है । यह सत्य-वचन है । अब तुम उनके पास चलो ।' यो कहकर उसने राक्षसराज विभीषण को अपने हृदय से लगा लिया और बडे हर्ष मे उसे राम के समक्ष ले आया ।

१७ विभीषण की स्तुति

विभीषण ने रामचद्र को देखकर उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुनि करने लगा—
"हे नित्य सत्यरक्षक, हे नित्य कल्याण-रूप, हे नित्य जगद्रक्षक, हे नित्य देव, हे जगत्कारक,
हे जगत् के आदिवीर, हे सृष्टिकर्त्ता, हे सर्वमगातीत, हे सर्वानुभूत, हे सर्वजगत् में पवित्र,
हे जगद्विधाता, हे गुरु-लघु रूप, हे गुरुज्ञान-रूप, हे मधुरभाषी, हे श्रेष्ठ धनुर्धर, हे पद्म-
सम-नेत्रवाले, पद्माकलित शरीरवाले, हे समस्त जीवाधार, परम पवित्र-स्वरूप, कविजनो
के लिए वेद्य, करुणासिधु, विविध शास्त्रो के आधार, वेदातवेदी, तुम ही परमात्मा हो, तुम
ही मोक्ष हो, तुम ही परमविद्या हो, तुम ही ससार के कर्त्ता हो, तुम ही ससार हो, और तुम ही ससार के
हर्त्ता हो। तुम ही यज्ञ-भोक्ता हो, यज्ञ भी तुम ही हो, और यज्ञ-फल के प्रदाता तुम ही हो,
तुम ही सूर्य-चन्द्र हो, तुम ही जलधि हो, तुम ही इद्र आदि देवता हो और पृथ्वी भी तुम ही हो।
तुम ही त्रिमूर्त्ति हो और त्रिमूर्त्तियो के परे जो रूप है, वह भी तुम ही हो ।
क्षर तथा अक्षर तुम ही हो, क्षर तथा अक्षर के ज्ञाता भी तुम ही हो । हे शतकोटि
सूर्यसम तेजस्वी, तुम्हारी जय हो ! हे ससार-सर्प-सुपर्ण (ससार-रूपी साँप के लिए गरुड
पक्षी के समान दीखनेवाले) तुम्हारी जय हो । हे ललित आगमो से प्रशसित, हे लक्ष्मीपति,
हे दयासमुद्र, हे विबुध-शत्रुनाशक, श्रेष्ठ मुनिवद्य, आद्यतरहित, हे शत्रुनाशक, हे दशरथ-
राम, दिनकर-शशि-नेत्रवाले, दिव्य चरित्रवान्, अनुपम शुभ गात्रवाले, अखिलाधार, सहस्र-
मुख आदिशेष भी क्या, तुम्हारी महिमा का वर्णन कर सकेगा ? क्या पद्मसभव ब्रह्मा
भी तुम्हारी महिमा की स्तुति करने में समर्थ है ? फिर मेरी क्या शक्ति है कि मै तुम्हारी
प्रशसा करूँ ? तुम्हारी महिमा को जानने की शक्ति मुझमें कहाँ है ? तुम्हारी स्तुति
करने की क्षमता ही मुझमें कहाँ है । मै दानव हूँ, चचल चित्तवाला हूँ । हे राजन्,

तुम आदि पुरुषोत्तम हो। हे प्रभु, मैं शरणागत हूँ, तुम मेरी रक्षा करो। उस परम दुष्ट दैत्यनाथ का संहार करो। तुम्हें अखिल-लोक-शरण्य जानकर, तुम्हारे आश्रय में सुख से रहने की अभिलाषा से मैं आया हूँ।"

तब राम ने उस पर अपनी कृपा-दृष्टि करते हुए उससे कहा—'हे विभीषण, तुम मेरी बातों पर विश्वास करो। तुम देव-वैरी रावण के भाई नहीं हो, बल्कि मेरे भाई हो। व्याकुल मत होओ। लक्ष्मण की अपेक्षा अधिक मैं तुम्हें अपना भाई मानता हूँ। इस प्रकार, आश्वासनपूर्ण वचनों से राम ने विभीषण का भय दूर किया। इसके पश्चात् राम विभीषण के स्कंध पर हाथ टेककर समुद्र के तट पर गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने विभीषण से कहा—'हे विभीषण, तुम हमें सच-सच बतलाओ कि रावण की तथा उसकी सेना की शक्ति कितनी है ?'

१८ त्रिकूट पर्वत की उत्पत्ति की कथा

तब विभीषण ने रामचन्द्र को प्रणाम करके इस प्रकार निवेदन किया—"हे कमलदल-लोचन, पूर्वकाल में एक बार नारद ने वायु के समक्ष नागराज की शक्ति की प्रशंसा की और नागराज के समक्ष वायुदेव की शक्ति की प्रशंसा की और इस प्रकार उन दोनों में शत्रुता उत्पन्न कर दी। मात्सर्य से प्रेरित होकर वे दोनों अपनी-अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने की इच्छा करने लगे। वायु ने कहा—'नागराज उज्ज्वल हेमाद्रि को घेरकर पड़ा रहे, तो भी मैं उसे उड़ा दूँगा।' तब आदिशेष अपनी सारी शक्ति लगाकर उस पर्वत को घेरकर, अनुपम रीति से, अपने सहस्र फणों से उस पर्वत के सहस्र शिखरों को दृढ़ता के साथ पकड़कर पड़ा रहा। तब पवन अपने सप्त प्राणों को उद्रिक्त करके प्रचंड गति से चलने लगा। पवन के प्रकोप से सभी पर्वत खंड-खंड होकर गिर पड़े; समस्त भुवन कंपित होने लगे, सभी समुद्र आलोड़ित हो गये, सभी भूत आक्रंदन करने लगे। उस पवन ने सूर्य के रथ को भी विचलित कर दिया और समस्त दिशाओं को चूर-चूर कर दिया। लोक में व्याप्त इस संकट को देखकर सब देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि आप इस महा विपत्ति से संसार की रक्षा कीजिए। तब ब्रह्मा आदि देवता हेमाद्रि के पास आये और पवन से अनुरोध किया कि वह अपनी शक्ति का उपसंहार करे। किन्तु जब पवन ने उनकी बात नहीं मानी, तब उन्होंने नागराज को समझाया कि हे नागेन्द्र, तुमको तो अवश्य ही इस कार्य से विरत हो जाना चाहिए। तुम दोनों की इस स्पर्धा के कारण सूर्य डिग गया है, पृथ्वी धँस गई है, समुद्र ने मर्यादा छोड़ दी है। हमारा अनुरोध मानकर तुम पवन की विजय स्वीकार कर लो और हमारी रक्षा करने की कृपा करो।

देवताओं की प्रार्थना मान करके नागराज शान्त हुआ और पवन को विजय दिलाने के निमित्त अपना एक फण ऊपर उठाया। पवन और अधिक वेग से बहने लगा, तो उस हेमाद्रि का एक-एक शिखर टूटकर बड़े वेग से बहुत दूर तक उड़ गया और समुद्र के मध्य आ गिरा। हे राघव, वही त्रिकूट पर्वत के नाम से विख्यात है।"

१९. विभीषण का राम को रावण के वैभव का परिचय देना

"हे देव, उस द्वीप (त्रिकूट पर्वत) पर देवेन्द्र की आज्ञा से देवलोक के शिल्पी ने लंकापुर नामक एक नगर का निर्माण किया। उस नगर के सात दुर्ग हैं और प्रत्येक दुर्ग

के चार द्वार है । बाहर का दुर्ग कई कगूरो से युक्त है और ईंटो का बना हुआ है । अस्सी करोड सैनिक उसके पश्चिमी द्वार की रक्षा करते रहते है । सात सौ सतहत्तर करोड सैनिक उत्तर द्वार की रक्षा करते है । पूर्व के द्वार पर सतत एक सौ करोड मदमत्त सैनिक दुर्ग-रक्षण में तत्पर रहते है । दक्षिण द्वार पर साठ करोड बलवान् सैनिक रहते है । उस दुर्ग के भीतर के छहों दुर्गो के कुल चौबीस द्वार है, जिनकी रक्षा भी उतनी ही सख्या के राक्षस-सैनिक करते रहते है । प्रत्येक गुप्त द्वार के पास एक-एक करोड शक्तिशाली राक्षस रहते है। नगर के मध्य में नगर की रक्षा में बीस लाख सात सौ करोड राक्षस तत्पर रहते है । कुभकर्ण की शयन-गुफा की रक्षा सात करोड राक्षस करते रहते है । रावण के महल के आगन की रक्षा करने में एक लाख करोड राक्षस लगे रहते है । उसके द्वार पर बीस करोड राक्षस रहते है । इद्रजीत के भवन के द्वार पर दस सहस्र करोड राक्षसवीर रहते है । विशालकाय श्रेष्ठ राक्षसवीरो के गृहो के पास दस सहस्र करोड सैनिक रहते है । हे सूर्यकुलाधीश, उस सेना की गिनती असभव है, वह बहुत ही विशाल है । स्वय रावण की शक्ति का वर्णन करना भी कहाँ सभव है ? उसने ईर्ष्या से कैलास पर्वत को उठाया था, ब्रह्मा ने उसे ऐसा वरदान दिया कि वह दनुज, गधर्व, अमर, तथा यक्षो से युद्ध में नही मरेगा । युद्ध में ही क्यो, किसी भी प्रकार से वे उस राक्षसराज को मार नही सकेंगे । हे राजन्, यदि वह युद्ध में मरेगा भी, तो केवल आपके हाथो, अन्य किसी के द्वारा उसकी मृत्यु नही हो सकती । कुभकर्ण तो युद्ध में इन्द्र को एक तृणवत् भी नही मानता । शक्ति-मद से भरा इन्द्रजीत भय का नाम भी नही जानता । उसने शिवजी की तपस्या करके उनकी कृपा से वज्र-कवच प्राप्त किया है । माया-रूप धारण करके वह आकाश में रहते हुए अपने शत्रुओ को जीत लेता है । रावण का सेनापति प्रहस्त बडा ही चतुर तथा शक्तिशाली है । उसने (शिव के मित्र) कुबेर के सामत मणिभद्र को युद्ध में जीत लिया था । महोदर, महापार्श्व तथा अतिकाय नामक राक्षस प्रचण्ड योद्धा है । ये तीनो वीर दिक्पालो की भी परवाह नही करते, और युद्ध में आने पर उन्हें सहज ही जीत लेते है । दनुजेन्द्र रावण के एक लाख पुत्र है, जो महाबली तथा देवो के शत्रु है । उसके सगे सबधियो की गिनती करना ब्रह्मा के लिए भी दुष्कर है । जब कुबेर आदि उसके सामत है, तब उसके वैभव का वर्णन करना कैसे सभव है ? इसके अतिरिक्त रावण के पास दस सहस्र करोड ऐसे श्रेष्ठ राक्षसवीर है, जो सदा शत्रु-रक्त को पीकर तृप्त तथा रण-मद से भरे रहते है । उन्ही के बल की सहायता से रावण ने समस्त दिशाओ को जीत लिया है ।"

विभीषण की बातें सुनकर राघव ने कहा—'हे विभीषण, मैंने इसके पूर्व ही तुम्हारे भाई के सबध में सुन रखा है । निश्चय ही वह महान् शूर है । उसकी शक्ति भी वैसी ही है । किंतु चाहे वह कैसा ही शूर क्यो नही हो, उसमें इतनी शक्ति कहाँ कि वह मेरे समक्ष अपना प्रताप दिखावे । हे दानवराज, चाहे हरि, हर, ब्रह्मादि देवता भी मेरी गति रोके, तो भी मैं मारकर टुकडे-टुकडे कर दूँगा, और तुम्हें लका के सिंहासन पर बिठाऊँगा ।' तब विभीषण ने बडे विनय से राम को प्रणाम किया और कहा—'हे राम, देव, जब आपके बाणो की अग्नि-ज्वाला प्रचण्ड गति से निकलेगी, तब रावण में तथा उस लका

में इतनी शक्ति कहाँ है कि वे उसके सामने टिक सकें ? हे नरनाथ, जिस दिन वानरो की सेना, लका के दुर्ग की दीवारो पर चढकर अत्यत क्रोध से राक्षसो से जूझेगी, उस दिन आप मेरी शक्ति देखेंगे। (मैं रावण की सेना को) प्रलयकाल के रुद्र के समान भस्म करूँगा।'

२०. राम का विभीषण को लंका का राजा बनाना

तब प्रभु राम ने विभीषण को गले से लगा लिया और फिर लक्ष्मण को देखकर बोले—'हे लक्ष्मण, तुम और सूर्यपुत्र दोनो तुरत विभीषण को समुद्र-जल से अभिषिक्त करके रावण के बदले उसे लका का राजा बनाओ। राम की आज्ञा के अनुसार वानर समुद्र से जल ले आये और लक्ष्मण ने उस जल से विभीषण का अभिषेक किया और घोषित किया कि हे विभीषण, आज से तुम सभी दानवो के प्रभु होकर रहोगे और जब-तक सूर्य और चन्द्र रहेंगे, जबतक श्रीरामचन्द्र की कीर्ति इस पृथ्वी पर सुशोभित होती रहेगी, तबतक तुम राज्य करते रहोगे।

यह देखकर वानरो की सेना अत्यन्त हर्षित हुई। इसके पश्चात् राघव ने विभीषण को देखकर कहा—'विभीषण, कहो, हम इस समुद्र को पार करने के लिए क्या उपाय करें ?' तब विभीषण ने हाथ जोडकर कहा—'हे देव, सेतु का निर्माण किये बिना इस समुद्र को पार करना इन्द्रादि देवो के लिए भी दुष्कर है। अत, इसको वश में लाने के लिए समुद्र से प्रार्थना करनी चाहिए।'

इसी समय दशकठ के आदेश से शार्दूल नामक एक राक्षस गुप्तचर वहाँ आया और उसने वानर-सेना की सख्या, उनका परस्पर-सभाषण, तथा राम और वानरो का वार्त्तालाप आदि को (गुप्त रूप से) जान लिया। वह तुरत असुरेन्द्र की सेवा में लौटकर, हाथ जोडकर कहने लगा—'हे दैत्यनाथ, उत्तुग गात्र, उत्तुग बाहु, उत्तुग शक्ति तथा उत्तुग मति से सपन्न राम-लक्ष्मण समुद्र के तट पर श्रेष्ठ वानरो के साथ शिविर डाले हुए हैं। (उनकी सेना इतनी विशाल है कि) आकाश के नक्षत्र भी गिने जा सकते है, समुद्र की लहरो को भी गिन सकते है, किन्तु उस वानर-सेना की गणना करना असंभव है। अब उचित यही है कि आप साम आदि उपायो से कार्य को सिद्ध करें।

२१. शुक का संदेश

शार्दूल की बातें सुनकर दैत्यराज ने शुक को देखकर कहा—'तुम शीघ्र वानर-सेना में जाओ और सूर्य-पुत्र से बडे स्नेह से मेरा प्रेमपूर्ण सदेश कहो और उसे मेरी मित्रता का आश्वासन दिलाकर युद्ध से विरत करके लौट आओ।'

रावण की आज्ञा सिर पर धरे, वह सुग्रीव के पास गया और रावण का संदेश सुनाकर बोला—'हे सूर्यनंदन, तुम मुझसे कहो कि तुम किस कारण से रावण से शत्रुता कर रहे हो ? वालि तथा तुम में शत्रुता थी, वालि दानवेन्द्र का शत्रु था, इसलिए तुम्हारी तो रावण के साथ मित्रता ही उचित है। यदि रावण इस राम की पत्नी को ले गये हैं तो क्या तुम्हारा इस प्रकार उनका साथ देना उचित है ? कुबेर को जीतकर पुष्पक विमान प्राप्त करनेवाले रावण को समझाना क्या अच्छा नहीं है ? यही क्यों शिव

के साथ कैलास पर्वत को उठानेवाले रावण क्या, कोई साधारण व्यक्ति है ? हे वानरेन्द्र, क्या देवेन्द्र आदि समस्त देवताओ को रावण ने नही जीता ? क्या उन्होंने हवन-कुंड में अपने शिर की आहुति देकर ब्रह्मा को प्रसन्न करके त्रिलोक-विजय का वरदान नही प्राप्त किया है ? एक शक्ति-हीन मानव (राम) से तुम्हारी मित्रता क्यो हुई ? तुम्हारे लिए उचित यही है कि तुम दानवेश्वर से मित्रता करो।'

उसकी बातें सुनकर सभी वानर बड़े क्रुद्ध हुए। वे आकाश की ओर उड़े, बलात् उसे पकड़ा और अपनी मुष्टि के आघातो से उसको चूर चूर-कर दिया। फिर उसके पंखो को तोड़कर, उसके नाक-कान काट लिये। तब राघव ने कहा—'दूत को इतना त्रास क्यो देते हो ? अब इसे दुःख न देकर, जाने दो।' रघुराम की आज्ञा से प्रभावित होकर वानरो ने उसे छोड़ दिया। उसने आकाश में उड़कर सूर्य-पुत्र से कहा—'हे कपिराज, तुम रावण को क्या सदेश देते हो ?' तब सुग्रीव ने क्रोध से कहा—'तुम जाकर उससे कहो कि उसने रघुराम के साथ दुर्व्यवहार किया है। ऐसे नीच को मैं सहन नही कर सकता। वह चाहे किसी भी लोक में छिपकर अपने प्राण बचाने की चेष्टा करे, मै अवश्य उसका वध करूँगा, उसे कदापि नही छोड़ूँगा। सोमयाजी राघव देवताओ को प्रसन्न करने के लिए अवश्य समर-भूमि-रूपी यज्ञ-वेदी में सग्राम-रूपी महायज्ञ संपन्न करेंगे। उसमें श्रेष्ठ धनुष, यूप-काष्ठ होगा, चटुल अस्त्र परिस्तरण (हवन-कुंड के चारो ओर के कुश) होगे, लाल धूलि (अग्नि की) प्रभा होगी, वानर-सेना स्त्रुक वा स्त्रुवा (यज्ञपात्र विशेष) होगे, वीरो के अगो से बहनेवाला रक्त ही घृत होगा, धनुष का टकार मत्रघोष होगा; असंख्य राक्षस, यज्ञ-पशु होगे; वानर-वीरो का सिहनाद देवताओ को आमन्त्रित करनेवाली ध्वनि होगी, युद्ध-वाद्यो का सतत निनाद ही साम-गान होगा, राम-लक्ष्मण का भयकर क्रोध तथा मेरा क्रोध त्रेताग्नियो का रूप धारण करेगा, रावण के प्राण ही आहुति होगे, उस रावण का दर्प-दलन ही सोम-पान होगा और राक्षसवीर-रूपी पशुओ का मास ही समस्त भूत-समूह की सतुष्टि का साधन बनेगा। रावण से कहना कि ऐसे सग्राम-यज्ञ के सपन्न होने के पहले ही सीताजी को राम के पास पहुँचाकर प्राण बचा लेना उसके लिए शुभप्रद होगा।' इन बातो को सुनकर शुक वहाँ से शीघ्र रावण के पास चला गया और उसे सारा वृत्तात कह सुनाया।

२२. राम का दर्भ-शयन

उस समुद्र के तट पर प्रभु राम अपनी दक्षिण भुजा को तकिया बनाकर, दर्भ-शय्या पर ऐसे लेटे हुए थे, जैसे आदिदेव अमृत-सागर में, शेष-शय्या पर आनद से पूर्ण ही विमल-चित्त से लेटे हुए हो। उन्होने निश्चय किया कि मै समुद्र से प्रार्थना करूँगा कि वह मुझे समुद्र पार करके जाने के लिए मार्ग दे। इस प्रकार का निश्चय करके वे तीन दिन तक निर्जल उपवास करते हुए वही लेटे रहे और बड़ी निष्ठा के साथ अपने मन में वरुण देवता से प्रार्थना करने लगे—'हे समुद्र, तुम्हारे विशाल तथा दुर्गम हृदय के पार जाने के लिए मै यहाँ पड़ा हुआ हूँ। तुम्हारे लिए मै मान्य हूँ। स्वर्ग-विरोधी रावण का सहार करने के निमित्त तुम मुझे मार्ग दो।'

२३ राम का समुद्र पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना

इस प्रकार राम के प्रार्थना करने पर समुद्र, गर्व से फूलकर, उत्तुंग तरंग-रूपी अपनी बाहुओं को हिलाते हुए, अपने धवल फेन-रूपी हँसी को बिखेरते हुए, विशाल मीन-रूपी जिह्वा को फैलाते हुए, अपने गंभीर घोष से अट्टहास करते हुए, अपने वेला-जल से दिशाओं को यह वृत्तांत सुनाते हुए तथा अपने मध्य भाग के भँवरों से अपनी वक्रता दिखाते हुए, राम की बातों की उपेक्षा करने लगा। यह सत्य ही तो है कि मूर्ख, दुर्जन, क्रूर-कर्मी, तथा कुल-नाशक, कभी प्रार्थना करने से नहीं झुकते। प्रार्थना सुनकर वे और भी भड़क उठते हैं। प्रेम से उनसे मिलने जाइए, तो वे मन को अशान्त बनानेवाली विष-वृष्टि करने लगते हैं।

समुद्र को अपनी प्रार्थना अस्वीकार करते हुए देखकर राघव के विशाल नेत्रों से अग्नि-कण छिटकने लगे और उनकी भौंहें तन गईं। वे अत्यंत क्रोध से बार-बार समुद्र और फिर लक्ष्मण की ओर देखकर बोले—"हे लक्ष्मण, इस समुद्र का गर्व तो देखो। मैं इससे कितनी बार प्रार्थना करता हूँ। फिर भी, यह मेरी प्रार्थना को स्वीकार नहीं करता। स्वीकार कराये बिना मैं थोड़े ही इसे छोड़ दूँगा? क्या, इसका बड़वानल इतना तेजस्वी है कि मेरी बाणाग्नि उसे निस्तेज न बना सकती। समुद्र भी देख ले कि मेरे बाणों में कितनी शक्ति है। मैं अपने बाणों की अग्नि-ज्वालाओं से सारे समुद्र के जल को इस प्रकार ढक दूँगा कि मानो वे उस समुद्र की हड्डियाँ हों। उन बाणों के तीक्ष्ण ताप के कारण, बड़े-बड़े मकर, सर्प, मीन, गैंडा, कच्छप, कर्कट, मेंढक, जल-मानुष आदि का समूह परस्पर एक दूसरे से टकराते हुए प्राण-रक्षा के लिए भाग खड़े होंगे और तिमिंगिल, बलवान् जल-राक्षस, जल-ग्रह तथा पर्वत आदि का भी सर्वनाश हो जायगा। मैं उस समुद्र की ऐसी धूल उड़ाऊँगा कि समस्त जलचरों का सचलन बंद हो जायगा और सीप तथा घोंघे बाहर निकल आयेंगे। मैं इसको लक्ष्मी का पिता, हरि का श्वशुर समझकर ही अबतक चुप रहा। हे सौमित्र, मैं इसके लिए समुद्र से प्रार्थना ही क्यों करूँ? अपने-आपको मैं इसके सामने शक्तिहीन क्यों समझूँ? लाओ मेरे धनुष-बाण और देखो कि यह समुद्र मेरे बाणों से कैसे सूखता है। मैं अभी समुद्र में रहनेवाले प्राणियों को चूर-चूर कर देता हूँ।

इस प्रकार कहते हुए जब राघव ने धनुष हाथ में लिया, तब तुरत इन्द्र कंपित हुआ, आकाश थरथराने लगा, समुद्र आलोडित हुए, दिग्गज स्तंभित हो रह गये, पृथ्वी धँस गई, पर्वत-शिखर टूटकर गिरने लगे, ब्रह्मा चकित रह गया, नक्षत्र गिरने लगे और दिशाएँ थरथराने लगीं। सूर्यवंशतिलक राम ने अपने शौर्य का प्रदर्शन करते हुए, पवन के समान प्रयुक्त होनेवाले यम के काल-दण्ड के समान, उज्ज्वल तथा प्रलयकाल की अग्नि के समान दीप्त होनेवाले बाणों का अपने धनुष पर संधान किया और उन्हें समुद्र पर चलाया। तब समुद्र की लहरें पर्वतों का आकार धारण करके आकाश का ऐसे स्पर्श करने लगीं, मानो समुद्र यह कहते हुए बाणों से बच रहा हो कि मैंने अत्यधिक घमंड किया, मुझ पर दया करो। उन उत्तुंग लहरों पर इतना अधिक फेन दिखाई पड़ने लगा,

मानो राम के शक्तिशाली वाणो के लग जाने से समुद्र के मुँह से झाग निकल रहा हो। सारा समुद्र इस प्रकार आलोडित होने लगा, मानो यह सोचकर वह व्याकुल हो रहा हो, कि अब मुझे शरण कहाँ मिलेगी ? चारो दिशाओ में धुआँ इस प्रकार छा गया, मानो मेघ-समूह समुद्र के जल का आस्वादन करने के निमित्त आने के पश्चात्, राम के शस्त्रो के प्रताप से भीत होकर तुरत लौटे जा रहे हो। जलचर इस प्रकार छटपटाने लगे, मानो वे दिखा रहे हो कि (भविष्य में) राक्षस इसी प्रकार छटपटायेंगे। सभी दैत्य पाताल छोडकर चारो ओर ऐसे भागने लगे, मानो मनुकुल-वल्लभ राम के वाणो की अग्नि से संभ्रमित समुद्र के चित्त से अहकार आदि भाव भागे जा रहे हो। उद्धत गति से प्रज्वलित होनेवाली वाणाग्नि के साथ मिलकर समुद्र का वडवानल भी समुद्र के ऊपर ऐसे जलने लगा, मानो वडवानल यह सोचकर कि मेरे रहते हुए भी जो समुद्र सूखा नही, उसे सोखने के लिए यह वाणाग्नि आ रही है, उसे वडे प्रेम से आलिगन कर रहा हो।

तब लक्ष्मण यम के समान क्रोधाभिभूत अपने अग्रज को देखकर, भयभीत हो, समुद्र के किनारे आया और हाथ जोडकर वोला—'हे मानवेन्द्र, यह कोई रुद्र का रोष-रूपी समुद्र नही, जिसका मथन करना असभव हो। यह कोई यम का क्रोध-रूपी समुद्र नही है, जिसको मथ देना दुष्कर हो। इस जल को सोखने के लिए ऐसा प्रयत्न क्यो ? आपके वाणो की अग्नि इस समुद्र को जला देने के पश्चात् वाहर निकलकर समस्त दिशाओ के साथ सभी लोको को जला दे, तो कोई आश्चर्य नही। अपना चरित्र समस्त जगत् में विख्यात करते हुए आप अपने क्रोध का उपसहार कर लीजिए। आप के कोध के सामने यह समुद्र क्या शक्ति रखता है ? इसका नाश मत कीजिए, वह धनुष मेरे हाथ में दीजिए, यो कहते हुए उन्होने राम के धनुष को पकड़ लिया।

किन्तु राम ने धनुष लक्ष्मण को नही दिया। उनका क्रोध द्विगुणित हुआ और सौमित्र को टालते हुए, होठ चवाते हुए क्रोधपूर्ण दृष्टियो से समुद्र की ओर देखकर वे कहने लगे—'रे समुद्र, तुम मेरे हाथो से परास्त नही होओगे ? तुम्हारे जल को अभी सोखता हूँ और तुम्हारे जल के अतर्गत रहनेवाले समस्त प्राणियो का नाश करता हूँ। तुम अब मेरा सेवक होकर खडे रहोगे। तुमने मेरा सामना करने की दुष्टता की। लो, मै अभी धनुष की डोरी पर वाण चढाता हूँ।' इस प्रकार समुद्र को त्रस्त वनाते हुए उन्होने धनुष पर ब्रह्मास्त्र चढाया।

यह देखकर इन्द्र तथा ब्रह्मा दिग्भ्रान्त हुए, सारा ब्रह्माण्ड विदीर्ण-सा हो गया। त्रिभुवनो में रहनेवाले प्राणी आर्त्तनाद करने लगे। सारा भुवन परितप्त-सा होने लगा। दिशाओ में अधकार व्याप्त होने लगा। रवि तथा चद्रविंव कांति-रहित हो गये। वज्र-पात होने लगा। महापवन भयभीत हुआ। आकाशवाणी कपित होने लगी। मिथ्याग्नियाँ प्रज्वलित होने लगी और अविरल गति से एक भयकर निनाद गूँजने लगा।

तब समुद्र अपने मकर-समूह के साथ विचलित हुआ। उसका सारा उफान जाता रहा, उसकी उत्तुग लहरें कही दव गई, उसका घोर निनाद जाने कही अतर्धान हो गया; उसका भयकर विष न जाने कही लुप्त हो गया, उसका गर्व कही चूर-चूर हो गया

और उसके हाव-भाव नष्ट-से हो गये। अबतक पराजय का नाम न जाननेवाला समुद्र आज पराजय के निवास के समान, सत्त्व-संपन्न होते हुए भी सत्त्वहीन के समान व्याकुल होने लगा। स्थैर्य रखते हुए भी वह अस्थिर तथा अधीर हो बडे वेग से राम के हाथ के ब्रह्मास्त्र के अग्र भाग में एक बिंदु के रूप में आकर ऐसे खड़ा रहा, मानो वरदान के प्रभाव से पल-पल बढनेवाले रावण के मस्तकों को एक साथ काट डालने के उद्देश्य से राम ने अपने बाण को पैना बनाने के लिए वडवानल में उसे तपाया हो और फिर समुद्र में उसे डुबोने पर सारा समुद्र खिंचकर उस शर के अग्र भाग में बूंद के रूप में खड़ा हुआ हो और (इस प्रकार) कह रहा हो—'हे देव, मेरा अस्तित्व इतना ही तो है।'

२४. समुद्र का राम से प्रार्थना करना

तब समुद्र सब देवताओं के समक्ष दीप्तिमान् रत्न-प्रभा से विलसित हो, असंख्य मंगल पुष्प-मालाओं से अलंकृत हो, उज्ज्वल तथा विशाल फणवाले कोटि सर्प तथा असंख्य जलचरों के साथ, गंगा आदि नदियों की सेवाओं को प्राप्त करते हुए, रामचंद्र के समक्ष आया, साष्टांग प्रणाम किया और कर-कमलों को मुकुलित करके अत्यन्त भक्तियुक्त हो निवेदन करने लगा—'हे नरनाथ, आपके क्रोध के सम्मुख मेरी क्या शक्ति है कि मैं खड़ा भी रह सकूं? आप आदि पुरुषोत्तम हैं, आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी आपकी आज्ञा के वशवर्त्ती है। आपमें जो प्राणि विलसित है, उनकी गणना ही नहीं हो सकती। समस्त लोक आपके अधीन है। मुझे अपराधी जानकर आप मुझे दंड मत दीजिए। आप जो भी कार्य कहें, आपकी आज्ञा को सिर आँखों पर धारण करके उसे संपन्न करूँगा।

इसके पश्चात् गंगा आदि नदियों ने रामचन्द्र को सिर नवाकर प्रणाम किया और ललाट पर हाथ जोड़कर कहा—'हे जगदभिराम राम, हम आपकी शरण में आई हैं। हे करुणानिधि, आप हम पर कृपा कीजिए। हम सब आपसे अभयदान की याचना करती हैं। अनिर्वाच्य रीति से इस सागरेश्वर को क्षमा करके आप हमारे सौभाग्य की रक्षा कीजिए। हे त्रिभुवनाधार, हे दीन-मन्दार, अपराधियों को क्षमा करना ही आपका लोकोत्तर गुण है। हे देवराय, हम पर कृपा करके हमारी रक्षा कीजिए। हे शिवधनुभंजक, हे राम, आपकी महिमा का वर्णन श्रुति भी गा नहीं सकते। आप देव-देव हैं। रक्षा तथा पालन करने में आप ही समर्थ हैं। हे भूमीश, हे लोकेश, हे प्रकाश-संपन्न, हे सीतापति, हे पुण्य-स्वरूप, आप हमारी रक्षा कीजिए।'

इस प्रकार की नदियों की विनती सुनकर राम ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करते हुए कहा—'तुम भय छोड़ो।' तब समुद्र ने राम से निवेदन किया—'हे कमलगर्भ, हे मुनिजन-वंद्य, हे शरणागतवत्सल, हे दिव्य मूर्ति, आप चाहें, तो अपनी वानर-सेना को ले जाने के लिए दीर्घतम मार्गों के मन्थन से [illegible] उत्पन्न लहरों में फैल जानेवाले, ऊष्मावान को [illegible] करनेवाले, भँवरों से युक्त हो मेरे सौंदर्य की वृद्धि करनेवाले मेरे इस अगाध तथा अपार जल पर सेतु बाँधिए या चाहें तो पैरों ही चले जाइए।"

समुद्र के इन विनयपूर्ण वचनों को सुनकर राम संतुष्ट हुए और जनाकीर्ण के सुझाव के अनुसार उस अमोघ अस्त्र को मरुकान्तार नामक प्रदेश पर चला दिया। उस बाण के

ताप से उस प्रदेश का सारा जल सूख गया। तब राम ने उस देश को सब प्रकार से समृद्ध रहने का वर दिया, तब से वह प्रदेश उसी प्रकार सुशोभित रहता है। इसके पश्चात् राम का शर फिर उनके तूणीर में लौट आया और समुद्र पूर्ववत् शात हो गया।

तब समुद्र ने अत्यत विनय के साथ राघव से कहा—'हे भूपाल, पूर्वकाल में आपके वश के सगर-पुत्रो के द्वारा निर्मित होने के कारण मै सागर नाम से विख्यात हुआ। इतना ही नही, मैं आपके वश के लिए मान्य रहा हूँ। देव-दानव-युद्ध के समय आपके पिता मुझे अयोघ्या ले गये थे और बडे आदर-सत्कार के साथ वहाँ से विदा किया था। इस प्रकार, मेरा और आपका सबध (बहुत पुराना) है। इसलिए हे राघवेन्द्र, आप सेतु बाँधिए और वानर सेना को उस पार ले जाइए।"

२५. सेतु-बंधन के लिए राम का सुग्रीव को आज्ञा देना

तब रघुराम सूर्यनदन को देखकर बोले—'हे सुग्रीव, सेतु बनाने के लिए शीघ्र श्रेष्ठ वानरो को भेजो।' सुग्रीव ने बडे उत्साह से योग्य वानरो को इस कार्य के लिए नियुक्त किया। अगद, जाबवान्, नील, गज, गवाक्ष, पनस, नल, पावकनेत्र, तपन, तारु, गवय, ऋषभ, गधमादन, शरभ, द्विविद, शतवलि, हरिरोमवक्ष, सुषेण, केसरी, ज्योतिर्मुख, दधिमुख, वेगदर्शी आदि श्रेष्ठ वानर-वीर समुद्र के निकट गये और शीघ्र गति से वडे-बडे वृक्षो तथा पर्वतो को ले जाकर समुद्र में डालने लगे। लेकिन, उनमें कोई भी जल पर तैरता नही था, सब जल में डूब जाते थे। तब सब वानर आश्चर्यचकित होकर राम के पास लौट आये और सारा वृत्तात कह सुनाया। रामचद्र भी आश्चर्यचकित होकर समुद्र से बोले—हे समुद्र, यह कैसी बात है कि इन कपि-वीरो के द्वारा फेंके गये वृक्ष तथा पर्वत पानी पर तैरते नही है? यह सुनकर समुद्र बोला—'हे परमेश, वानर जिन वृक्षो को जल में फेंकते है, उनके समुद्र-तल में पहुँचते ही जलचर उन्हें शीघ्र निगल जाते है। समुद्र के तल में शतयोजन विशाल आकारवाला तिमि नामक मत्स्य रहता है, जो सभी जलचरो को खा जाता है। उस मत्स्य को तिमिंगिल निगल जाता है। हे देव, इस प्रकार एक दूसरे को निगल जानेवाले दीर्घ आकारवाले असख्य मत्स्य समुद्र में रहते है।"

इन बातो को सुनकर राम बोले—'हे समुद्र, ऐसी दशा में समुद्र पर सेतु बाँधने का क्या उपाय हो सकता है, बताओ।' तब समुद्र बोला—'हे सूर्यवश-तिलक, आप सेतु बाँधने के लिए नल को भेजिए। यह महान् विश्वकर्मा का पुत्र है। इसका उपाय वही जानता है। अपने पिता से उसने यह कला जान ली है। उसके सिवा और किसी से यह सेतु बाँधा नही जा सकेगा। इसका एक और कारण भी है, सुनिए। बहुत पहले की बात है कि यह अपनी बाल्यावस्था में विंध्याचल के निकटवर्त्ती वन में पशुकण्व नामक मुनि के समीप खेल रहा था। मुनि स्नान आदि अनुष्ठान करने के लिए चले गये, तो इसने मुनि की सभी पूजा-मूर्त्तियो को अपने मुँह से धक्का देकर समुद्र में फेंक दिया। जब मुनि वहाँ लौटकर आये, तब सारा वृत्तात उन्हें मालूम हुआ। इस पर वे बहुत ही क्रुद्ध हुए, किन्तु बालक होने के कारण उसे दण्ड नही देना चाहते थे। मुनि अपनी खोई हुई वस्तुओं को पुन प्राप्त करने का उपाय सोचने लगे। उस तपोधन ने अच्छी तरह सोच-विचारकर, अपनी

तपस्या की महिमा से इसको एक ऐसा वर दिया कि तृण से लेकर कोई भी वस्तु, जिसे यह बालक समुद्र में फेंकेगा, वह जल के ऊपर ही तैरने लगेगी। इस वरदान के फल-स्वरूप उस मुनि की देव-मूर्त्तियाँ जल के ऊपर तैरने लगी। यही कारण है कि इसके हाथो से फेंके जाने पर पहाड भी जल पर तैरने लगेंगे। इस प्रकार मेरे जल पर सेतु बँध जायगा। हे धरणीश, आप शीघ्र ही नल को बुला भेजिए।'

२६. सेतु-बन्धन

तब रघुकुलोत्तम राम ने नल को बुलाया और बड़े आदर के साथ उसे देखकर बोले—'हे वानरवीर, हे धीर, समुद्र ने तुम्हारे पराक्रम का वृत्तांत मुझे सुनाया है। अब तुम अपने शौर्य का प्रदर्शन करते हुए समुद्र पर सेतु बाँधने में दत्तचित्त हो जाओ।' राम का आदेश सुनकर उसने हाथ जोड़कर राम भूपाल से कहा—'हे देव, इस ससार में जन्म लेने का फल आज मुझे प्राप्त हुआ। आप मुझे आज्ञा दीजिए। मैंने अपने पिता से सेतु बाँधने की कला जान ली है। मैं अपनी निपुणता का वर्णन आपके सामने क्या करूँ? आप मुझे आज्ञामात्र दीजिए। मैं तुरत समुद्र पर सेतु बाँधकर आपकी प्रशंसा प्राप्त करूँगा। आप मुझे अनुमति दीजिए।'

राम की आज्ञा प्राप्त करके नल सेतु बाँधने के लिए निकल पडा। उसके साथ ही सारी वानर-सेना पृथ्वी, आकाश तथा दिशाओ को अपने गर्जन की ध्वनि से गुंजायमान करते हुए, पर्वत तथा वृक्ष-समूह को लाकर सेतु बाँधने का उपक्रम करने लगी। सुग्रीव आधा योजन लबा एक विशाल पर्वत को, पृथ्वी को कँपाते हुए उठा लाया, तो राम ने मन ही मन गणेश का स्मरण तथा वदन करके उसे नल के हाथ में दिया। उस विशाल-पर्वत को नल ने समुद्र में ऐसा प्रतिष्ठित किया मानो वह पर्वत उसके सेतु-बधन-शक्ति का, राम की अनुपम कीर्त्ति का तथा विभीषण के राज्य का कीर्त्ति-स्तभ हो।

तब वानर-समूह सभी दिशाओ में व्याप्त होकर पर्वतो तथा वृक्षो को सहज ही उखाडकर आवश्यकता के अनुसार नल के हाथो में देने लगे। वे एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर बडे वेग से कूद जाते, गरजते, एक साथ कई पहाडो को उखाड़कर नीचे गिरा देते, पहाडो को सिर पर रखे हुए हाव-भाव दिखाते, पहाडो को शीघ्र ले आने के लिए दूसरो को अपशब्द कहते, हँसते, लाये हुए पहाडो को एक दूसरे पर ऐसे सजाकर रखते कि वे लुढक न जायँ, दोनो हाथो से पहाडो को नारगियो के समान उछालते, परिहास के लिए दूसरो के लाये हुए पहाडो को नीचे गिराकर हँसते, और पहाडो तथा वृक्षो को दूर से ही नल के पास तक फेंकने में स्पर्धा करते। इस प्रकार, वे विविध रीतियो से पहाडो तथा वृक्षो को ला-लाकर नल के हाथो में सौपते थे। नल भी बड़ी तत्परता के साथ सेतु बाँधने में लगा हुआ था। एक भी पहाड या वृक्ष समुद्र में डूबता नही था। इस प्रकार, पहले दिन ही चौदह योजन लबा पुल तैयार हो गया। समुद्र भी ऐसा क्षुब्ध हुआ, मानो वह सोच रहा हो कि हाय, मुझे यह कैसी विपत्ति का सामना करना पड रहा है।

२७. चन्द्रोदय का वर्णन

सूर्य अस्त हुआ। सेतु की रक्षा के लिए कुछ बलवान् वानरो को नियुक्त करके

सभी वानर समुद्र-तट पर स्थित अपने निवासो में लौट आये। आकाश में नक्षत्र ऐसे दिखाई पडने लगे, मानो सफल-मनोरथ राम के कीर्त्ति-पुष्प ही बिखर गये हो। तब पूर्ण कलानिधि, मन्मथ का श्वशुर, विकसित कुमुदो का बधु, चक्रवाक-मिथुनो के साहचर्य को भग करनेवाला, क्षीर-सागर का मथन करने से प्राप्त नवनीत, शिवजी का शिरो-पुष्प, नक्षत्रो का निर्मल हास्य, चकोरो को आनन्द देनेवाला, विरही प्रेमियो के हृदयो को उत्तप्त करनेवाली ज्वाला, आकाश का आभूषण, चोरो के हृदय का शूल, समुद्र को उत्तेजित करनेवाला, हरि-हर-ब्रह्मा की आनदपूर्ण सृष्टि तथा कमलो के शत्रु चन्द्र का उदय हुआ। चारो ओर चद्रिका ऐसे व्याप्त हो गई, मानो क्षीर सागर ही उफनकर ससार में व्याप्त हो गया हो। सभी वानर निद्राहीन होकर सोचते रहे कि कब हम सेतु बाँधेंगे? कब हम लका में पहुँचेंगे? दानवेन्द्र की मृत्यु कब होगी? सीताजी राम को कब प्राप्त होगी? न जाने यह रात्रि कब बीतेगी? हाय, हम बहुत शीघ्र ही थककर अपने निवास लौट आये। हम काम से लौटे ही क्यो? हमें रात भर वही रहकर पुल बाँधने के कार्य में लगे रहना चाहिए था।

इस प्रकार सोचते हुए उन्होने रात्रि बिताई और प्रात काल ही सध्या आदि नित्य-कर्मों से निवृत्त हो, सभी वानर एक दूसरे को पुकारते तथा एक दूसरे को उत्साहित करते हुए काम में लग गये। वे बडे वेग से बडे-बडे पर्वतो तथा वृक्षो को अपनी अनुपम शक्ति से उखाडकर ले आते थे और उन्हें समुद्र में डालते थे। सुग्रीव आकाश-पथ से उडते हुए गया और विंध्याचल का अर्द्ध-योजन लबा एक शिखर तोड लाया और सुषेण के हाथो में सुपुर्द किया। सुषेण ने उसे नल के हाथो में दिया। अगद ने अद्वितीय गति से जाकर दर्दुर नामक पर्वत को उठा लाया और उसे समुद्र में फेंका। नील ने मलय-पर्वत का शिखर, वृक्षो-सहित ले आकर नल के हाथो में दिया। द्विविद तथा मैन्द ने एक साथ बडे-बडे पर्वतो को ले आकर उस समुद्र में फेंका। गज, गवाक्ष, गधमादन, शरभ तथा गवय आदि बाहुबली वीरो ने समस्त पृथ्वी को कँपाते हुए महेन्द्र पर्वत के शिखर ले आकर समुद्र में डाले। नल अपने हाथ से उन सब पर्वतो का स्पर्श कर देता, जिससे कि वे डूब न जायँ और बडी तत्परता से पुल बनता जाता था।

इस प्रकार, वानरो के लाये हुए वृक्षो तथा पर्वतो को नल एक हाथ से ग्रहण करके दूसरे हाथ से समुद्र में रखते हुए सेतु का निर्माण करता जाता था। यह देखकर हनुमान् को क्रोध आ गया। वह अपनी सारी शक्ति लगाकर सात योजन लबा एक पर्वत उठा लाया। रामचन्द्र ने समझ लिया कि हनुमान् के क्रोध का कारण क्या है। उन्होने नल को आज्ञा दी कि वह हनुमान् के लाये हुए उस पर्वत को दोनो हाथो से ग्रहण करें। नल ने वैसा ही किया। उस समय वानरो के गर्जनो की ध्वनि, उफननेवाले समुद्र का गभीर घोष, पर्वतो तथा वृक्षो के परस्पर टकराने की ध्वनि, कपियो के एक दूसरे को बुलाने का शब्द, (पर्वतो के नीचे) दबने से निकलनेवाले प्राणियो का चीत्कार और विचलित दिग्गजो की चिंघाड, इन सब की सम्मिलित ध्वनि आकाश तथा समस्त ब्रह्माण्ड की दिशाओ तक व्याप्त हो गई। वह ध्वनि क्षीर सागर की उस गभीर ध्वनि के समान थी, जो मदर पर्वत को मथानी बनाकर देवासुरो के (क्षीर सागर) मथने के समय उत्पन्न हुई थी।

जब मध्याह्न हुआ, तब वानर अपनी थकावट मिटाने के लिए वृक्षो की छाया में गये और मीठे फल खाते तथा ठडा जल पीते हुए थोड़ी देर वहाँ विश्राम करते रहे। उसके पश्चात् वे अत्यधिक उत्साह से काम में लग गये। वे एक दूसरे से कहते—'तुम इन पहाडो को ले आओ, तुम उन पर्वतो को उखाड़कर ले आओ।' इस प्रकार, एक दूसरे को बढावा देते हुए असख्य वृक्षो, तथा पर्वतो को ला-लाकर वे नल को देते थे। कुछ वानर पर्वतो को सीधे समुद्र में ही गिरा देते थे, कुछ बीच रास्ते में ही दूसरो का बोझ अपने सिर पर ले लेते और कुछ अपना बोझ ले आकर नल के निकट रख देते थे। इस प्रकार, दूसरे दिन उन्होंने छब्बीस योजन लबा पुल बनाया। तब सूर्यास्त हुआ।

तब सुग्रीव आदि वानर, रामचन्द्र को अपने कार्य की प्रगति का वृत्तांत सुनाकर समुद्र-तट पर अपने निवासो में लौट आये और रात को बड़ी शान्ति के साथ सो गये। दूसरे दिन प्रातः-काल ही उठकर वे बडे उत्साह से सेतु बाँधने चले। वे एक दूसरे से स्पर्धा करके कहते जाते थे कि हम अकेले सभी पर्वतो को उठा लायेंगे। हम ही सब वृक्षो को उखाड़कर लायेंगे। इस प्रकार, होड़ लगाकर वे चारो दिशाओ में बिखर गये। कुछ लोग वृक्षो तथा पर्वतो को ले आकर समुद्र में डालते थे, कुछ निरीक्षण करते थे, कुछ पेड़ो की छाया में बैठकर सुस्ताते थे, कुछ लोग बने हुए सेतु की लबाई नापते थे, कुछ लोग जहाँ-तहाँ बैठकर ऊँघते थे, कुछ लोग ठडे जल से अपनी प्यास बुझाते थे। इस प्रकार, वे सब अत्यधिक क्लान्ति का अनुभव करने लगे। तब सूर्य, चन्द्र के समान शीतल प्रकाशित होने लगा। इन्द्र अमृत का फुहारा बरसाने लगा। पवन शीतल होकर चलने लगा। पुष्प-सौरभ आनद पहुँचाने लगा। तब वानर अत्यत उत्साह से वृक्षो तथा शैलो को लाकर समुद्र में डालने लगे। उनकी उद्धत गति से भीत होकर समुद्र के सभी जीव, अपने प्राण बचाने के लिए जहाँ-तहाँ भागते, पुन-पुन पानी के ऊपर सिर उठाकर देखते और मन ही मन सोचते कि कदाचित् पहले के समान ही कोई अमोघ अस्त्र हमारा सहार करने के लिए आ रहा है। फिर तुरन्त यह जानकर कि वानर समुद्र में सेतु बाँध रहे है, मन-ही-मन प्रसन्न होकर अपनी इच्छा से विचरण करने लगते। इस प्रकार, वानर-वीरो ने बडी तत्परता से उस दिन पचास योजन तक पुल बाँधा। इतने में सूर्यास्त हुआ।

तब सभी वानर-वीर भक्तियुक्त हो, सध्या-वदन आदि कार्य से निवृत्त हो विचार करने लगे कि अब तो हमें केवल दस ही योजन लबा पुल बाँधना शेष रह गया है। कल यह भी पूरा कर लेंगे। इस प्रकार, वार्त्तालाप करते हुए वे समुद्र-तट पर लौट आये और रात को सुख की नीद सोये। प्रात काल होते ही सभी वानर-नेता रामचन्द्र के पास गये और उन्हें बडी भक्ति से प्रणाम करके अपने कार्य की प्रगति सुनाई। फिर, वे मोदमग्न मन से फिर वृक्षो तथा महाशैलो को बड़ी शीघ्र गति से ला-लाकर नल के हाथो में देने लगे।

२८. गिलहरी की भक्ति

तब राम सेतु का निरीक्षण करने के उद्देश्य से सागरेश्वर, वानरेश्वर तथा दैत्य-नायक के साथ वहाँ गये और लक्ष्मण के कंधे पर अपना वाम कर टेके हुए, मद-मंद

मुस्कान-रूपी चद्रिका से दीप्त होनेवाले मुँह से विलसित होते हुए पुल पर खडे होकर सेतु के निर्माण का कार्य देखते रहे । कपि सब वडे-वडे वृक्षो तथा पहाडो को वडे साहस के साथ उखाडकर ले आते थे और नल के हाथ में देते थे, नल उन्हें लेकर पुल में लगा देता था । इसी समय एक गिलहरी ने सोचा—'सेतु का निर्माण शीघ्र ही पूरा होना चाहिए इसलिए मै भी इन बलवानो की सहायता करूँगी ।' यो सोचकर उसने राम के चरण-कमलो का मन-ही-मन स्मरण करके, उनके समक्ष ही बडी भक्ति के साथ समुद्र में गोता लगाया, फिर वह समुद्र-तट पर वालू में लोट गई, उसके पश्चात् पुल पर आकर अपने शरीर पर लगी रेत को झटका देकर गिराने लगी । इसी प्रकार, वह बार-बार समुद्र में गोता लगाती, वालू में लोटती और तुरत आकर पुल पर अपने शरीर पर लगी रेत को गिरा देती । राम बडी देर तक गिलहरी का यह कार्य देखते रहे । फिर, उन्होने अपने अनुज को देखकर कहा—'हे लक्ष्मण, वहाँ देखो, एक गिलहरी मेरी भक्ति से प्रेरित होकर अपना शरीर जल से भिगो रही है । फिर, तट पर पहुँचकर रेत में लोटती है और फिर अपने शरीर में लगी रेत को पुल पर गिरा देती है । जहाँ श्रेष्ठ बलशाली वानरवीर वृक्षो तथा पर्वतो को लाकर गिराते है, वहाँ अपनी अल्प शक्ति का विचार किये विना ही वह वडे प्रेम से अपनी शक्ति के अनुरूप सहायता कर रही है ।' तब लक्ष्मण ने कहा—'हे सूर्यवश-तिलक, मैने जान लिया कि जो आपके चरण-कमलो में अपना मन स्थापित करके एक तृण भी अर्पित करता है, आप उसे मेरु पर्वत के समान ही मान प्रदान करते हैं। इसलिए हे अनघ, आपकी भक्ति ही प्रधान है ।' तब राम ने सुग्रीव से कहा—'उस गिलहरी को देखने के लिए मेरी बडी इच्छा हो रही है । उसे प्रेम से यहाँ ले आओ ।' तब सुग्रीव उस गिलहरी को पकड़कर ले आया और राम के हाथो में दे दिया । राम ने कई प्रकार से उसकी प्रशसा की और बडे हर्ष से अपना सुदर दाहिना हाथ उसकी पीठ पर फेरा । उसके पश्चात् उन्होने लक्ष्मण, सागरेश्वर, विभीषण तथा सुग्रीव के समक्ष उसे छोड दिया। वह गिलहरी थोडी देर तक वही इधर-उधर विचरती रही । फिर, राम ने उसे चदन, मदार, चपक, पूगीफल, पुन्नाग, सहकार आदि वृक्षो से युक्त सुदर प्रदेश में छोड देने का आदेश दिया ।

२९. सेतु को देखकर राम का हर्षित होना

तदनतर हनुमान्, अगद, नील, हरिरोम, आदि वानरश्रेष्ठो के साथ राम आश्चर्य-चकित करनेवाले उस विशाल सेतु पर खड़े होकर कहने लगे—'वाह ! नल कितना निपुण है ! उसने समुद्र के दूसरे छोर तक एक विशाल चबूतरे के समान इस पुल का निर्माण किया है । अपनी कला-निपुणता तथा अपने बाहुबल को प्रदर्शित करके उसने इस दीर्घ सेतु को बाँधा ।'

नल द्वारा निर्मित वह सेतु शत योजन लबा और दस योजन चौड़ा था और मलय पर्वत तथा सुवेलाद्रि का स्पर्श करता हुआ बहुत सुदर दीख रहा था । समुद्र में उछल-कूद करनेवाले बडे-बड़े मत्स्य-समूह-रूपी दीप्त नक्षत्रो तथा दोनो ओर व्याप्त नील समुद्र-रूपी नील गगन के साथ वह सेतु आकाश-गगा के समान सुशोभित हो रहा था ।

'राम भूपाल ने दया करके मुझे अभयदान दिया है'—ऐसा सोचकर मानो फूल उठनेवाले उस विशाल समुद्र को देखकर कपि भी (अपने कार्य की सफलता देख) आनंद से फूलने लगे। आकाश से देवता (रामचन्द्र के) पराक्रम के परिणाम को देखकर मन-ही-मन यह विचार करके हर्षित होने लगे कि, सच ही तो है, नीच व्यक्ति कभी मृदुवचनों से बात नहीं मानता। वह केवल दंड के भय से, वश में लाया जा सकता है। रामचन्द्र ने जब समुद्र से विनय के साथ प्रार्थना की, तब समुद्र ने उनकी उपेक्षा की। फिर, सूर्यवंश-तिलक ऐसा क्यों नहीं करें? जो व्यक्ति इस सेतु का स्मरण-मात्र करेगा, जो इस सेतु का दर्शन करेगा, उसे विजय, यश तथा पुण्य की प्राप्ति होगी। जबतक यह सेतु स्थिर रहेगा, जबतक यह समुद्र रहेगा, तबतक राघव की कीर्त्ति स्थिर रहेगी और दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई वह आनंद प्रदान करती रहेगी।

इस प्रकार, मन-ही-मन हर्ष-पुलकित होते हुए उन्होंने फूलों की वृष्टि की और देव-दुंदुभियाँ बजाईं। तब रघुराम आनंदित होकर सेतु को देखते हुए बोले—'यह सेतु अनंतकाल तक नल के नाम पर विख्यात होते हुए सुशोभित रहेगा।' प्रभु के वचन सुनकर सभी कपिवीरों ने नल की प्रशंसा की। तब समुद्र, सेना के साथ राम को अपने निवास स्थान ले गया और अत्यंत भक्ति के साथ उन्हें दिव्यास्त्र, दिव्य वस्त्र, दिव्य भूषण तथा वज्र-कवच प्रदान किये और निष्कलंक चित्त से रामचंद्र को देखकर कहा—'हे राम भूपाल, आप राजपुत्र हैं। युद्ध के समय आपका यह मुनि-वेश क्यों? अब उचित यही है कि आप इन दिव्य-वस्त्र तथा आभरणों को धारण करें।'

३०. राघवों का सुवेलाद्रि पर पहुँचना

तब राम-लक्ष्मण ने दिव्य वस्त्राभरणों, चंदन तथा पुष्प-मालाओं को धारण किया और रविचंद्र के समान दीप्तिमान् होने लगे। समुद्र ने उन्हें आशीर्वाद देकर विदा किया। तब राम-लक्ष्मण हनुमान् तथा नील के कंधों पर बैठकर (सुवेलाद्रि के लिए) रवाना हुए। सभी देवता उनकी स्तुति करने लगे, समस्त लोक उनकी जयजयकार करने लगा। रामचंद्र ने समुद्र को अनुमति देकर उसको घर भेज दिया और अपने अनुज के साथ लंका की ओर मुँह करके सेतु के मार्ग से ऐसे रवाना हुए, मानो रमणीय राक्षस-लक्ष्मी के सीमंत पर ही चरण धरकर चल रहे हों। विभीषण गदा हाथ में लिये हुए कपि-सेना के आगे-आगे चलने लगा। निदान पराक्रमी राम अपने मंत्रियों के साथ सुवेलाद्रि पर पहुँच गये और वहाँ शिविर डाल दिये। राम के पीछे-पीछे उनकी विशाल वानर-सेना चली। कुछ लोग सेतु के किनारे-किनारे चल रहे थे, तो कुछ सेतु के बीचोबीच जा रहे थे; कुछ वानर बड़े कौतुक के साथ आकाश-मार्ग से जा रहे थे, तो कुछ झुंड बनाकर जा रहे थे; कुछ समुद्र में तैरते हुए जा रहे थे, तो कुछ अपने समूह से बिछुड़कर आगे पीछे-दौड़ रहे थे। उस सेना के हुंकार तथा गर्जनों की ध्वनि ने समुद्र-घोष को भी दबा दिया। उस ध्वनि के प्रभाव से आकाश-पाताल तथा दिशाएँ कंपायमान होने लगीं। इस प्रकार, राघव ने अपनी सेना के साथ सेतु की यात्रा पूरी करके सुवेलाद्रि पर पड़ाव डाल दिया। अपने गुप्तचरों के द्वारा राम के आगमन का वृत्तांत जानकर रावण ने समस्त दानवों को अपनी राज-सभा में बुलाया और स्वयं नवरत्न-खचित सिंहासन पर आसीन हुआ।

३१. कैकसी का हितोपदेश

उस समय कैकसी सभा में आई। उसे देखकर रावण ने बड़े आदर के साथ उठकर उसे प्रणाम किया और योग्य आसन पर उसे बिठाकर स्वय भी बैठा। फिर, अत्यत विनय से उससे कहा—'हे माता, आप तो कभी राज-सभा में नही आती। आज आपके आगमन का क्या कारण है? कृपा करके बतलाइए।'

तब उसने कहा—"हे पुत्र, मै जितना जानती हूँ उसे कहूँगी। ध्यान से सुनो। राम की पत्नी पर आसक्त होकर तुम उन्हें धोखे से हरकर ले आये हो। इसीलिए, आज ऐसी भयकर घटनाएँ घट रही है। स्वय विष्णु ने आर्यो के रक्षणार्थ दशरथ का पुत्र होकर जन्म लिया, ताडका का सहार किया, कौशिक के यज्ञ की रक्षा की, अपने चरणो की धूलि से शिला को स्त्री के रूप में बदल दिया, बडे हर्ष से शिव-धनु का भग किया, जानकी से विवाह किया, परशुराम के गर्व को तोडा, अपने पिता की आज्ञा मानकर लक्ष्मण तथा जानकी के साथ वनवास के लिए आया, वनो में रहनेवाले मुनियो को अभयदान दिया, तुम्हारी बहन के नाक-कान काट दिये, खर-दूषण का सहार किया, मारीच का वध किया, अपने भयकर अस्त्र से वालि को गिरा दिया, सूर्यनदन को अपना सेवक बना लिया, अपने बाण के अग भाग पर उपस्थित होने के लिए समुद्र को विवश किया, कपियो से समुद्र पर पुल बँधवाया और अब देवताओ की रक्षा करने तथा असुरो को दण्ड देने के उद्देश्य से सुवेलाद्रि पर आकर ठहरा हुआ है। उस दानवातक (राम) ने इस पृथ्वी पर मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंह, वटु, (भार्गव) राम, तथा (दशरथ-पुत्र) राम के रूप धारण किये है। वे स्वय आदिनारायण है। उनकी महिमा का वर्णन करना किसी के लिए सभव नही है। उनकी आज्ञा से ही वायुपुत्र ने समुद्र पार किया, जानकी को राम का सदेश सुनाया, यक्ष आदि राक्षसवीरो का सहार किया और लका-दहन करके अपने प्रभु के पास लौट गया। तुम उस पवनपुत्र को ही जीत नही सके। तब उसके प्रभु को जीतना क्या, तुम्हारे वश की बात है? तुम्हारे पिता ने एक दिव्य रहस्य मुझसे कहा था। उसे मै तुम्हें सुनाती हूँ। ध्यान से सुनो।

"एक बार ब्रह्मा तथा इन्द्र, मुनि, यक्ष तथा गधर्व-नेताओ को साथ लेकर विष्णु भगवान् के दर्शनार्थ गये और उनसे निवेदन किया—'हे प्रभो, रावण तथा कुभकर्ण के अत्याचार असह्य हो गये है। कृपया उनसे आप हमारी रक्षा करें।' तब उन्हें देखकर कमलनाभ ने कहा—'मै सूर्यवश में जन्म लेकर युद्ध में सहज ही इन राक्षसो का सहार करूँगा।' फिर, उन्होने सभी देवताओ को देखकर कहा—'तुम वानरो का रूप धारण कर पृथ्वी पर जन्म धारण करना और युद्ध में मेरी सहायता करना।'

"यह वृत्तात तुम्हारे पिता ने मुझे बताया था। वह विष्णु ही ये राम है। लक्ष्मी ही उनकी पत्नी है। देवता ही वानर है। उन्हें तुम युद्ध में जीत नही सकोगे। अत, तुम अपनी दुर्बुद्धि तज दो और उस भूसुता, जगन्माता, निगमो द्वारा प्रशसित, निखिल-लोक-विख्यात, अमित-गुणोपेत, पवित्र सीता को राम के चरणो में सौप दो। पापशोषक, धीर, सतत सुभाषी तथा आर्य-पक्षपाती विभीषण को लका का राज-तिलक कर दो और राम

की शरण की याचना करो । वे शरणागत शत्रु की भी उसी प्रकार रक्षा करते हैं, जैसे (उन्होंने) गजेन्द्र की रक्षा की थी ।"

कैकसी के हितोपदेश को सुनकर रावण क्रुद्ध होकर बोला—'हे माता, मैंने पचास लाख वर्ष तक अबाध-गति से राज्य किया है और सब प्रकार के सुखो का अनुभव किया है। मै स्वप्न में भी किसी से नही डरता । इन नर और वानरो की शक्ति ही कितनी है ? क्या, ये देवताओ से भी अधिक शक्तिशाली है ? मै अवश्य इन्हें जीत लूँगा । यदि मै उन्हें जीत नही सका, तो राम के बाणो से मारा जाऊँगा। किन्तु, इन नीच मानवो के सामने अपना सिर नही झुकाऊँगा । यह सत्य है । हे माता, आप ऐसा उपदेश मत दीजिए आप रनवास में लौट जाइए । आप लाख कहें, तो भी मै सीता को नही लौटा सकता ।' कैकसी इस प्रकार कहनेवाले अपने पुत्र की निंदा करती हुई अपने अतपुर में चली गई और विचार करने लगी, 'होनहार बलवान् है, वह किसी भी प्रकार से टाला नही जा सकता ।' यो विचार करके वह सतत धर्माचरण में लीन रहती हुई अपना समय व्यतीत करने लगी ।

रावण ने भेरियो तथा नगाडो के अत्यधिक निनाद के द्वारा सारी राक्षस-सेना को एकत्रित किया और आयुधो से सज्जित अपने प्रताप से दीप्त, मत्रियो को देखकर अत्यत भयकर रूप धारण करके, आँखो मे अग्नि-वर्षा करते हुए कहने लगा—'रामचन्द्र सेतु को बाँधकर अत्यधिक शौर्य के साथ सुवेलाद्रि पर आकर ठहरा हुआ है । जब मेरा शत्रु मेरे ऊपर आक्रमण करने के लिए आ रहा है, तब तुम्हारा इस प्रकार उपेक्षा करके सोते रहना, क्या उचित है ? पर तुम्हें क्यो दोष दूँ ? तुम मत्री हो, ऐसा सोचकर तुम पर विश्वास करना मेरी ही भूल है । क्या, तुम सोचते हो कि तुम्हारे उपेक्षा करने से मेरी हानि होगी। ऐसा कभी नही होगा । साम, दान, भेद आदि उपायो मे यदि मै उसे अपने वश में ला नही सकता, तो मै राम के साथ घोर युद्ध करूँगा ।'

रावण ने जब ऐसा कहा, तब सभी राक्षस लज्जित होकर सिर झुकाये चुप हो रहे । जब रावण ने उन्हें डाँटकर कहा कि तुम लोग चुप क्यो हो, तब इद्रजीत अपना शौर्य दिखाते हुए कहने लगा—"हे देव, समस्त देवताओ पर विजय पानेवाले आपको इन राम-लक्ष्मण जैसे अकिचनो के द्वारा कौन-सी हानि पहुँच सकती है ? आप चिंता मत कीजिए । मै बल, साहस तथा शौर्य मे सपन्न हूँ । क्या, आप नही जानते कि मैंने इन्द्र को नाग-पाश से बाँधकर उसकी कैसी दुर्गति कर दी थी ? भीषण रण में कालकेय आदि राक्षसवीरो को क्या मैंने पराम्त नही किया था ? तब हे दनुजेश, साधारण मानव, कृश, तपस्वी तथा दुर्बल दशरथ-पुत्रो को युद्ध में मार डालना मेरे लिए कौन बडी बात है ? आप सदेह मत कीजिए, मै अवश्य उन्हें युद्ध में मार डालूँगा ।"

तब अतिकाय नामक राक्षस ने राक्षसराज से कहा—'हे दानवनाथ, जो राजा नीतिवान् होकर, दूसरो की सपत्ति की अभिलाषा किये बिना समस्त ससार की प्रशसा प्राप्त करते हुए, जीवन-यापन करता है, वही सदा राज्य-पालन करेगा । हे दनुजेश्वर, सूर्य-कुल-तिलक राम ने तुम्हारा क्या अपकार किया है ? उनकी स्त्री पर आपकी आसक्ति

क्यो हुई ? आपका तथा आपकी लका का सर्वनाश करने के लिए इन राक्षसो ने निश्चय किया है । उचित यही है कि आप सीता को राघव के हाथो में सौप दें और बुद्धिमान् होकर इस ससार में सम्मान प्राप्त करते रहें ।'

इस प्रकार, कई रीतियो से अतिकाय ने रावण से हित-वचन कहे, किन्तु रावण ने उसकी बातो की जरा भी परवाह नही की । उसने बडे साहस के साथ शुक तथा सारण को देखकर अपना शौर्य दरसाते हुए कहा—'यह बडी विचित्र बात है कि एक मानव समुद्र पर पुल बाँधे । तुम लोग कहते हो कि राम ने ऐसे पुल का निर्माण किया है । इसलिए तुम दोनो उसकी सेना में प्रवेश करके उसकी शक्ति का पता लगाकर आओ ।'

३२. शुक तथा सारण का राम की सैन्य-शक्ति का परिचय पाना

तब उन दोनो ने वानरो का वेश धारण करके जगलो, उपवनो तथा पर्वतो में सेतु के निकट और समुद्र के उस पार के प्रदेशो तथा गुफाओ में विचरण किया और सब स्थानो में व्याप्त वानर-सेना को देख आश्चर्य से अपने सिर कँपाने लगे । फिर, वे आश्चर्य-पुलकित गात्र से वानर-सेना के भीतर प्रवेश करने लगे । उस समय विभीषण ने उन्हें पहचान लिया और उन्हें बदी बनाकर रामचद्र के सम्मुख उपस्थित करके कहा—'हे राजन्, ये दोनो रावण के मत्री है । वानरो के वेश में यहाँ आये है । इनके नाम शुक तथा सारण है । वे हमारी सेना में प्रवेश करके हमारी सभी बातों का परिचय प्राप्त करके जाना चाहते हैं ।'

तब उन गुप्तचरों ने भय से अत्यधिक आक्रान्त होकर हाथ जोडकर प्रणाम किया और कहा—'हे देव, हम रावण के भेजे हुए गुप्तचर हैं । विभीषण ने जो कहा, वह सत्य है । रावण ने आज्ञा दी है कि हम आपकी सेना का पता लगाकर आयें । इसलिए हम आये है ।'

तब राघव ने हँसते हुए कहा—'तुम रावण के मत्री हो, इसलिए तुम्हें मार डालना ही उचित है । किन्तु मै तुम्हें मारना नही चाहता । तुम्हें मारने से हमारा क्या हित हो सकता है ? तुम यहाँ की सभी बातें बिना किसी अपवाद के देख लो और शीघ्र जाकर अपने प्रभु रावण से सारी बातें कहो । उससे यह भी कहना कि जिस शक्ति के भरोसे वह सीता को चुराकर लाया है, उस शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए यहाँ आये । उससे कहना कि मै युद्ध में लका के सभी राक्षसो का तथा गर्व से फूलनेवाले उसका भी वध करूँगा । अब तुम जाओ ।'

तब उन दोनो ने विभीषण के साथ जाकर समस्त वानर-सैन्य की शक्ति का पता लगा लिया और तुरत रावण के पास जाकर बोले—'हे देव, आपकी आज्ञा के अनुसार हम वानर-सेना के निकट जाकर उसको देखने लगे, तो आपके अनुज विभीषण ने हमें पहचान लिया और हमारा वध करने के उद्देश्य से हमें बदी बनाकर राम के सामने उपस्थित किया । लेकिन रामचन्द्र दयानिधि हैं, इसलिए उन्होने हमारे वध की आज्ञा नही दी । हे लकेश्वर, आपका, आपकी लका का तथा समस्त राक्षसो का नाश करने के लिए एक सौमित्र ही पर्याप्त है । अब राम के शौर्य का वर्णन क्या करें ? हे देव, हमने सेतु को देखा । वह शत योजन लबा और दस योजन चौडा है । ऐसे विशाल सेतु-भर में वानर

सेना ठहरी हुई है। उस सेना की गणना करना असभव है। जहाँ देखो वहाँ वानर-सेना ही है। कुछ सेना पर्वतो पर ठहरी हुई है, कुछ सेना अभी ठहरने की व्यवस्था में ही लगी है, कुछ सेना ठहने के लिए स्थान खोज रही है, कुछ सेना समुद्र के उस पार है और कुछ सेना वहाँ से निकलकर इस पार आ रही है। हे प्रभो, इतनी विशाल सेना को देखकर मन में भय उत्पन्न होता है। एक एक स्थान पर ठहरी हुई सेना की गणना करके लिखना ब्रह्मा के लिए भी असभव है। इसलिए हे दानवेन्द्र, आप राम के दर्शन करके उन्हें सीता को लौटा दीजिए और आनद से रहिए।"

उनकी ऐसी वातो को सुनने की इच्छा न रखनेवाला रावण अत्यधिक रोष से बोला—'चाहे देवता तथा गधर्व ही मेरे ऊपर आक्रमण करने आवें, तो भी मैं सीता को नही छोड़ूँगा। तुम ऐसे कायर क्यो बनते हो? कदाचित् वानरो ने तुम्हें पकडकर अच्छी तरह पीटा है, इसलिए तुम भयभीत होकर भाग आये हो। डरो मत, वे कपि तुम्हारा पीछा करते हुए नही आ सकेंगे।' इस प्रकार कहते हुए रावण शुक तथा सारण के साथ अपने ऊँचे सौध पर चढकर उस विशाल कपि-सेना को देखकर आश्चर्यचकित हुआ।

उसके पश्चात् उसने शुक-सारण को देखकर पूछा—'इस विशाल कपि-सेना का सचालन करते हुए कौन आगे-आगे चलेगा? सावधानी के साथ उसके पीछे-पीछे कौन चलेगा? इनमें कौन शूर है? कौन चतुर है? सूर्यवशी राम किसके परामर्श से काम करता है? किसके साथ राम अपने मन की वात करता है? सेना किसकी आज्ञा के अधीन है? दिन-रात इस सेना की रक्षा करनेवाला कौन है? इस सेना में सामत कौन है? इसमें सुग्रीव कौन है? राम कौन है? लक्ष्मण कौन है? और, अगद कौन है? उन्हें दिखाने के पश्चात् उनके शौर्य के बारे में कहो। मुझे क्रोध नही आयगा।'

३३. सारण का रावण को कपियों का परिचय देना

तब सारण बड़ी कुशलता के साथ इस प्रकार कहने लगा—"हे देव, पुलिंद नदी-तटवर्ती सूर्यपुत्र, इस पृथ्वी पर महान् वली है। उसीने इस लका को उखाड दिया था और यहाँ भयकर चीत्कार व्याप्त कर दिया था। वही एक लाख श्रेष्ठ कपि-वीरो के साथ वानर-सेना के अग्र भाग में रहता है। हे देव, नील एक अतिबलशाली है और वही राम का सेनाध्यक्ष है। अपनी पूँछ को वडे गर्व से हिलाते हुए समस्त दिशाओ को कपित करने-वाला हजार पद्म तथा एक शख उत्तम वानर-सेना के साथ, पर्वत के समान दिखाई पड़ने वाला वालिपुत्र अगद है। वह वालि की अपेक्षा अधिक वलवान् है। वालि-पुत्र के उस ओर रहनेवाला नल है, जो चन्दनाद्रि का स्वामी है और विख्यात विश्वकर्मा का पुत्र है। उसीने एक सहस्र करोड़ और अस्सी लाख वानरो की सहायता से समुद्र पर पुल का निर्माण किया है और समस्त वानर-सेना को समुद्र पार कराया है। वह अकेले ही अपनी विशाल सेना के साथ समस्त लका को जीतना चाहता है। हे राक्षसराज, रविपुत्र के सामने ही रमणीय काति से रजताद्रि की समता करनेवाले श्वेत नामक वानर को देखिए। वही समस्त सेना की व्यवस्था करता है। हे लकेश वह देखिए, सहस्र करोड वानर-वीरो को साथ लिये हुए वेगवान् नामक वानर हमारी ओर देख रहा है। वह सुग्रीव का मित्र है

और विंध्य, सह्य तथा सुदर्शन आदि मुख्य पर्वतों का स्वामी है। हे देव, उस रंभ नामक कपिलवर्ण तथा दीर्घ केशवाले वानर को देखिए, जो सिंह-शावक के समान दीख रहा है। वह गंभीरता का समुद्र है और उसकी सेवा में एक सौ तीस लाख वानरों की सेना है। हे अमरवैरी, उस कुमुद नामक वानर को देखिए, जो मकोचनाचल का अधिपति है और दस करोड़ वानर-सेना की सेवा प्राप्त करते हुए अपने बल के मद में फूल रहा है। हे देव, उस शरभ नामक वानर को देखिए, जो रम्य शैल (सालेय पर्वत) का राजा है, जो विशाल वक्ष तथा उरु-प्रदेश से सुशोभित हो रहा है और जो चालीस लाख तथा चार सहस्र वानरों के साथ लंका पर आक्रमण करने की प्रतीक्षा कर रहा है।

"हे दानवेन्द्र, वह देखिए पारियात्राचल का अधिपति, भयंकर-रण-कुशल पनस है, जिसकी सेवा में सतत पचास लाख वानर रहते हैं। सिंदूर की लालिमा को भी मात करनेवाली शरीर की कांति से विलसित महा शक्तिशाली क्रोधन नामक उस वानर को देखिए, जो लंका की ओर दृष्टि गड़ाये सोच रहा है कि इस लंका का नाश करने के लिए मैं अकेले पर्याप्त हूँ। उसकी सेवा में साठ लाख कपि रहते हैं। हे देव, उस गवय नामक वानर को देखिए, जो विविध शौर्यों से युक्त हो अपने सत्तर लाख बलवान् कपि-श्रेष्ठों की सेना के साथ शोभा दे रहा है। ये सभी वानर कामरूपी हैं, भयंकर शक्ति से संपन्न हैं, युद्ध में निपुण हैं और देव-दानवों के लिए असाध्य हैं। ये सभी सेना के अग्र-भाग के वीर हैं। हे दानवनाथ, अब सेना के मध्य भाग में रहने वाले वीरों का विवरण सुनिए।

"हे दैत्यनाथ, वहाँ पर उस हर नामक वानर को देखिए। विशाल बाहु, तथा विविध वर्णवाले असंख्य सहस्र वानर उसकी सेवा में लगे हुए हैं। वह अकेले आपके साथ युद्ध करने की प्रतीक्षा करता है। उसके निकट ही जांबवान् के अनुज धूम्र को देखिए। अत्यंत नील मेघों के बीच में इन्द्र के समान शोभायमान होनेवाला वह नर्मदा नदी के तट पर स्थित ऋक्षनग का अधिपति है। वह महान् बलशाली तथा शूर है और असंख्य समर्थ भालू उसकी सेवा में रहते हैं। उस जांबवान् को देखिए। नीले पर्वत के समान शरीर धारण किये हुए एक करोड़ भालू उसकी सेवा में लगे हुए हैं। पूर्व काल में देवासुर युद्ध के समय अपने युद्ध-कौशल का परिचय देकर उसीने इन्द्र से कितने ही वर प्राप्त किये थे। युद्ध में वह धूर्जटि (शिव) से भी परास्त नहीं होता। उस धुरंधर योद्धा सनादन को देखिए। उसका एक-एक पार्श्व भाग एक-एक योजन लंबा है और उसका शरीर भी उतना ही दीर्घ है। हे देव-शत्रु, उसकी सेवा में एक पद्म वानर हैं। वह वानरों के पिता-मह-जैसा है और युद्ध में उसने इन्द्र को भी जीत लिया है। उस इन्द्रजालक नामक वानर को देखिए। वह नील का अनुज है। उसने अग्निदेव से एक गंधर्व-युवती के गर्भ से जन्म लिया है और जंबु नदी-तीर पर स्थित द्रोण पर्वत का अधिपति है। उसकी सेना में एक सहस्र करोड़ कपि हैं और वह महान् शूर है। वहाँ देखिए, प्रथन नामक वीर वानर अपनी एक सहस्र करोड़ वानर-सेना के साथ ठहरा हुआ है। वह अति बलशाली है और गंगा नदी-तट पर विचरण करते हुए शिशिराद्रि का पालन करता है। हे देव, वहाँ पर गज नामक वानर को देखिए, जो दस करोड़ कपियों की सेना के साथ दीख रहा है।

हे इन्द्रारि, यम के सदृश करोड़ो वानरो की सेवा प्राप्त करते हुए रहनेवाले उस गवाक्ष को देखिए, वह युद्ध करने के लिए अत्यधिक उत्साह प्रकट कर रहा है। उस केसरी नामक वानर को देखिए, जो उत्तुग काचन पर्वत का स्वामी है । उसके पास, धवल वर्णवाले, उद्दण्ड पराक्रमी, सूर्य-सम तेजस्वी, तथा रण में भयकर रूप धारण करनेवाले विविध रूपो के दस सहस्र प्रख्यात वानर है । हे देवताओ के शत्रु, उस अद्वितीय पराक्रमी, महान् बल-शाली, शतबली को देखिए, जो राम की कृपा प्राप्त करके उनके लिए अपने प्राण त्यागने के लिए सतत सन्नद्ध रहता है । उसकी सेवा में सिंह-शावक को मात करनेवाले विशाल पिगल-नेत्रवाले सहस्र करोड वानर है । वही सुषेण है, जो अपने समान सहस्र करोड़ वानरो को साथ लिये हुए युद्ध के लिए तैयार खड़ा है । वह उल्कामुख है, जो दस करोड़ वानरो के साथ ठहरा हुआ है । यहाँ देखिए, यह ऋषभ है, और इसकी वानर-सेना दस करोड़ की है । वह देखिए, वही विशाल भुजाओवाला गधमादन है, जिसके अधीन सौ करोड़ वानर है । हे देव, आप ध्यान रखें कि सुग्रीव की निजी सेना ही इक्कीस सहस्र शख और दो हजार एक सौ सैनिको की है । ऐसे वानर-वीरो की सेना किष्किधा में रहती थी और ये सभी वानर देव तथा गधर्वो से उत्पन्न हुए है । ये कामरूपी है और सतत समर करने की प्रबल इच्छा से प्रेरित रहते है । उन्होंने ब्रह्मा से अमृत-दान प्राप्त किया है, अत. देवताओ से भी श्रेष्ठ है । इनके अतिरिक्त मैन्द तथा द्विविद नामक अद्वितीय वीर दस सहस्र करोड़ सेना के साथ समुद्र के उस पार ठहरे हुए है । हे लकेन्द्र, वहाँ सुमुख तथा विमुख नामक वीरो को देखिए । ये मृत्यु के ही पुत्र है और मृत्यु से भी अधिक शक्तिशाली है । हे दनुजेन्द्र, उस अद्वितीय वीर वानर को देखिए, जिसकी सेवा असख्य वानर भृत्यो के समान करते है । उसी ने समुद्र को लाँघकर, आपकी तथा आपकी सेना की उपेक्षा करके जानकी के दर्शन करके अशोक-वन को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था और आपके प्रिय पुत्र को मारकर लकिनी को परास्त किया था । आप जानते ही हैं कि वही वायुपुत्र हनुमान् है । एक और विचित्र बात सुनिए । बाल्यावस्था में उसने एक दिन पूर्वदिशा में उदित होनेवाले सूर्यबिंब को देखकर, अत्यधिक भूखा रहने के कारण उसे फल समझकर, उसे पकड़ने के उद्देश्य से आकाश में तीन सहस्र योजन तक उडा था और बडी तीव्र गति के साथ उदयाद्रि पर गिर पडा था । उस समय उसकी हनु (दाढ की हड्डी) टूट गई, इसलिए उसका नाम हनुमान् पड गया है । हे देव, ये सभी वानर समस्त ससार को बहुत ही शीघ्र जीतने में समर्थ है । ऐसे श्रेष्ठ कपियो की सख्या की गणना ही असंभव है ।"

३४. शुक का रावण को राम का पराक्रम सुनाना

इस प्रकार सारण के कहने के पश्चात् विवेक-संपन्न शुक ने रावण से कहा—"हे असुरेन्द्र, इस विशाल सेना के प्राण स्वरूप राम के तेज का वर्णन करूँगा, आप सुनिए । रामचन्द्र नील मणियो की काति से विलसित है; कमलो के सदृश नयनवाले है, विमल कीर्ति से सपन्न है, सत्य के आकार है, सतत धर्माचरण करनेवाले है, शस्त्रास्त्र-विद्या-विशारद है, अखिल शास्त्रज्ञ है, सुकीर्ति-श्री से सपन्न है, सूर्य उनके पितामह है, इसका भी विचार किये बिना उनको भी उत्तप्त करने का प्रताप रखनेवाले वीर है, अपने शरो से

आकाश को भी चूर-चूर कर देनेवाले है तथा पृथ्वी को भी टुकडे-टुकडे करने की क्षमता रखते है । हे दशकठ, उनका (क्रोध) शत्रुओ के लिए साक्षात् मृत्यु है । चूंकि, आप सीता को ले आये, इसलिए वे युद्ध करने के लिए आये है, अन्यथा वे शरणागतो के, वज्र के पिंजडे के समान, रक्षक है, वे शूरो के भी शूर है । शरण की याचना किये विना उनके क्रोध का अत नही होता । आपके ऊपर क्रोध करने के कारण ही उनकी आँखो में लालिमा छाई हुई है । वे ही त्रिभुवनो के शासक सूर्यकुल-तिलक (राम) है ।

"वह देखिए, उनके भाई और शुद्ध स्वर्ण-वर्णवाले राम के अनुज लक्ष्मण धनुष धारण किये खडे है, अत्यत आग्रह के साथ सप्त भुवनो को परास्त करने की शक्ति से सपन्न है । वे राम के प्राणाधार के समान है और उद्दण्ड पराक्रमी है । हे असुरेन्द्र, उस राजा राम के पीछे आपके अनुज है, जो आपको युद्ध में परास्त करके लका पर राज्य करने के उद्देश्य से राम भूपाल के द्वारा राज्याभिषिक्त होकर बडे आनद से फूल रहे है । वे परम धर्मानुसरण करनेवाले तथा नीतिवान् विभीषण है । हे देव, लक्ष्मण तथा विभीषण के निकट ही जो खड़ा है, वह सुग्रीव है, जो सर्वमान्य गुणो से सपन्न हो किष्किन्धा का राज्य-भार वहन कर रहा है । वह महनीय लक्ष्मी से सपन्न होकर स्वर्ण-माला धारण किये हुए है । वह विशालबाहु तथा अत्यत भयंकर शौर्य से विलसित है । उसकी सेना के बारे में सुनिए । (कहते है कि) शतकोटि सहस्र सख्या का एक शख होता है । ऐसे लाख शखो का एक महावृंद होता है और ऐसे लाख महावृंदो का एक पद्म होता है । एक लाख पद्मो का महापद्म होता है और लाख महापद्मो का एक खर्व होता है । लाख खर्वो का एक महाखर्व होता है, लाख महाखर्व एक समुद्र कहलाते है और लाख समुद्र महासमुद्र कहलाते है । लाख महासमुद्र, महदास्य कहलाते है । वालि के अनुज के पास एक करोड महदास्य सेना है । अब आप ही स्वय विचार करके देख लें कि उसकी सेना कितनी बडी है । उसकी सेना का आदि तथा अत जानना असभव है । उसके सामर्थ्य की समता और कोई सेना नहीं कर सकती । वह सेना दुर्वार है । इसलिए हे देव, उस सेना से भिडकर युद्ध करना असभव है।"

शुक ने जब इस प्रकार कहा, तब रावण ने एक बार फिर सारी वानर-सेना का पर्यवेक्षण किया और गर्भ में बडवानल प्रज्ज्वलित होनेवाले समुद्र की भाँति मन-ही-मन भयभीत हुआ, किन्तु अपने भय को दबाकर, निर्भीक की भाँति रोष प्रकट करते हुए [illegible]— 'अपने स्वामी की इच्छा के विरुद्ध, कोई मत्री मत्रणा देकर उसको [illegible], यह कैसी नीति है ? तुम विना विचार किये, मेरे सामने मेरे विरुद्ध [illegible] कह रहे हो । क्या, यह तुम्हारे लिए उचित है ?' रावण के इतना कहते ही [illegible] सारण भयभीत हो, अपना सिर नीचा किये वहाँ से चले गये ।

३५ राम के माया-धनुष तथा सिर दिखाकर सीता को भयभीत करना

उनके चले जाने के पश्चात् रावण अपने अतरग मत्रियो [illegible] मत्रणा करता रहा और फिर उन्हें विदा करके दुर्वार हो, विद्युज्जिह्व नामक [illegible] को बुलाकर कहा—'तुम अपनी माया से राम के सिर तथा धनुष [illegible] ले आओ ।' वह तुरत गया और अपनी [illegible] निपुणता तथा माया से [illegible]

धनुष का निर्माण करके ले आया। रावण ने उसे अच्छा पुरस्कार दिया। वहाँ से रमणीय अशोकवन में जाकर दनुजेश्वर ने सीता को देखा। उस समय सीता सिर झुकाये अत्यंत चिंता में पड़ी, कातर दृष्टि से पृथ्वी को इस प्रकार देख रही थी, मानो वसुधरा को कोस रही हो कि हे माता, तुम मुझे इतना अधिक दुख क्यों दे रही हो? उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा इस प्रकार बह रही थी, मानो उनके चित्त का क्रोध भीतर न रह सकने के कारण धाराओं के रूप में बह रहा हो। उनका शरीर ऐसा धूलि-धूसरित था, मानो पृथ्वी यह कहती हुई उनसे लिपट गई हो कि हे पुत्री, यह कैसा दुर्भाग्य है कि तुम ऐसी दुरवस्था को प्राप्त हुई हो। वे इस प्रकार बैठी हुई थी, मानो रावण के क्रूर कर्म ही देवता का रूप धारण कर यह निश्चय करके बैठा हो कि हे रावण, मैं तुम्हारे तथा तुम्हारे राक्षस-कुल का सर्वनाश करके ही यहाँ से उठूँगा। वे बार-बार ऐसे दीर्घ नि.श्वास छोड़ रही थी, मानो राक्षस-रूपी नीरस वृक्षों को विध्वस्त करने में प्रयत्नशील प्रलय-काल की अग्नि हो।

अपनी ओर ध्यान दिये बिना बैठी हुई सीता को देखकर, सर्वनाश के लिए उद्यत रावण ने कहा—'हे जानकी, मूर्ख तथा अविवेकी खरदूषण आदि राक्षसों का वध करने मात्र से तुम राम के शौर्य का विश्वास करती हो और मेरे शौर्य को कभी अपने मन में भी नहीं लाती। जब राम बड़े दर्प से अपनी सेना के साथ समुद्र को पार करके, वानरों के साथ सुवेलाद्रि पर सो रहा था, तब मेरे एक प्रिय सेवक ने उसका वध करके उसके धनुष तथा सिर ले आया है। राम का प्रिय अनुज, तथा वानर परास्त होकर भाग गये हैं। इसलिए हे कमलमुखी, तुम अब राघव की आशा छोड़ दो और मेरी तथा मेरी स्त्रियों के लिए अधीश्वरी बनकर रहो।'

इस प्रकार कहने के पश्चात् उसने विद्युज्जिह्व को बुलाकर, राम के सिर तथा धनुष को सीता के सामने लाने की आज्ञा दी। तब उसने कहा—'हे सुंदरी, यह लो, राम के सिर तथा धनुष।' इतना कहकर वह उन दोनों को सीता के सामने फेंककर हँसते हुए चला गया। उसी समय आकाशवाणी हुई—'राम भूपाल युद्धभूमि में असुर (रावण) का सिर काटेंगे, यह तुम्हारे पति का सिर नहीं है। तुम विचलित मत होओ। तुम्हारे धर्माचरण के प्रभाव से रामचंद्र अवश्य विजयी होंगे।' (फिर भी) उस चंचलाक्षी सीता ने उस सिर को देखा और राम की आँखें, मुँह, ललाट, मौलि-रत्न की प्रभा, दंत-पंक्ति और कर्ण-पुटों का सौंदर्य तथा अधरों की कांति का स्मरण करके उस सिर को राम का ही सिर समझकर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर ऐसे गिर पड़ी, मानो पृथ्वी माता ही उस लतांगी को अपने हृदय पर लिटाकर उन्हें सांत्वना दे रही हो कि 'यह मिथ्या है। तुम्हारे पति का कोई अहित हो नहीं सकता। हे सुंदरी, यह माया है; इसकी ओर तुम्हें देखना नहीं चाहिए।'

थोड़ी ही देर में सीता सँभल गई और शोकाग्नि से संतप्त होती हुई बोली—'हाय, हे कैकेयी, कलह को जन्म देकर तुमने इस प्रकार इक्ष्वाकु-वंश का सर्वनाश किया है। राघवेन्द्र ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था कि तुमने उन्हें अनावश्यक ही वन में जाने की आज्ञा दी? हे पृथ्वीपति, मैंने पूर्ण विश्वास किया था कि आपने समुद्र पर सेतु बाँधा है, और आप अवश्य मुझे छुड़ाकर ले जायेंगे, किन्तु मैं यह नहीं समझती थी कि भगवान्

३७ सुवेलाद्रि पर से राम-लक्ष्मण का लंका को देखना

इतना कहने के पश्चात् राम ने अपने अनुज तथा सुग्रीव आदि वानरो के साथ सुवेलाचल का आरोहण इस प्रकार किया, मानो कह रहे हो कि गुणवान् आदमी अपने वश में इसी प्रकार उन्नति के शिखर पर चढना है। वहाँ से उन्होने अपने हाथो से नष्ट होनेवाली उस लका को देखा। उस नगर के गोपुरो पर जडी हुई मणियो की प्रभा इतनी उज्ज्वल थी, मानो हनुमान् ने जो अग्नि लगाई थी, वह उस दिन तक वैसे ही दीप्त हो रही हो। बडे-बडे कगूरो से युक्त उस नगर का प्राकार ऐसा दीख रहा था, मानो राम के बाणो के प्रहारो से सम्भ्रमित एव परितप्त होनेवाले रावण-रूपी मृग को भाग जाने मे रोकने के लिए ही प्रलयकाल के यम-रूपी शिकारी ने चारो ओर से घेरा लगा दिया हो।

उस दुर्ग की मीनारो पर दीखनेवाली चित्र-विचित्र ध्वजाएँ तथा तोरण ऐसे दीख रहे थे, मानो मीनारें-रूपी स्त्रियाँ सूर्य के प्रकाश में उज्ज्वल दीखनेवाले सुदर तोरण-रूपी मगल-सूत्रो से अलकृत हो, सुदर ध्वजाएँ-रूपी अपने हाथो को हिलाती हुई, (राम का) स्वागत कर रही हो—'हे राम, रावण का सहार करने के लिए शीघ्र चले आओ।' उस दुर्ग की परिखाएँ इतनी विशाल एव गहरी थी, मानो रावण-रूपी जगली भैसे को पकडने के लिए यम ने अनुकूल खड्डे खोद रखे हो। नगर के उज्ज्वल सौध आकाश का स्पर्श करते थे और ऐसे दीख रहे थे, मानो रावण ने कैलास पर्वत को उखाडकर और उसे यहाँ लाकर सुदर ढग से फिर से उसका निर्माण किया हो। उस नगर से तुरही की ऐसी ध्वनि निकल रही थी, मानों लक्ष्मी राम के स्वागतार्थ आ रही हो। उस नगर में कितने ही ऐसे उपवन थे, जिसके असख्य वृक्ष शुको की बोली से हर्षित होते, भ्रमरो के गुजन से आनदित होते, कोयलो के कल-कूजन से सतुष्ट होते, मुखर सारिकाओ के सचालन से दीप्त होते, शाखाओ और मन-रूपी पल्लवो को राग-रजित करते तथा सतत व्याप्त होनेवाले पुष्पो के सुगध-भार से महक रहे थे। उस नगर के कमलाकर कमला (लक्ष्मी) के मन-कमल के समान थे। ऐसे नगर को आश्चर्य से देखनेवाले राघव को अपने प्रताप का ताप प्रदान करके भगवान् सूर्य पश्चिम समुद्र में डूबने लगे। तब राम ने उन्हें प्रणाम किया और सुवेलाद्रि पर ही उन्होने रात्रि बिताई।

प्रातःकाल होते ही सभी कपि अत्यधिक हर्ष से विनोद करते हुए उस पर्वत के जगल में शीघ्र गति से चले गये और वहाँ अपने भयकर निनादो से सिह तथा हाथियो को भगाने लगे। उनके निनाद राक्षसो की अस्थियो को कँपाते हुए सारी लका में व्याप्त हो गये।

इस ध्वनि को सुनकर रावण यह जानने की इच्छा से कि वह कैसी ध्वनि है, अपने सौध के कगूरे पर चढ़कर देखने लगा। उस समय उसके साथ उस कगूरे की शोभा अत्यत उज्ज्वल दीख रही थी। परिचारक-गण उसके ऊपर धवल छत्रो की छाया कर रहा था, धवल चँवर डुला रहा था। ऐरावत के दाँतो के प्रहार का सहन किये हुए उसके वक्ष पर मणिमय हार डोल रहे थे। इस प्रकार के वैभव से युक्त वह विविध राक्षसो से

परिवृत हो विशाल रत्न-सिंहासन पर आरुढ था तथा आयुधो की उज्ज्वल प्रभा से दीप्तिमान् होता हुआ, अस्ताद्रि पर विलसित होनेवाले सूर्य की समता करता था । बिजली से युक्त नील मेघो के समान अपना हर्ष प्रकट करता हुआ वह अद्वितीय रूप से उस कंगूरे पर शोभायमान हो रहा था । रावण की महिमा के कारण प्रभा-समन्वित उस कंगूरे को देखकर रामचन्द्र आश्चर्य के साथ (विभीषण) से बोले—'हे विभीषण, प्रलय-काल के सूर्य-मंडल के समान भासमान होनेवाला यह कौन है ?' तब विभीषण ने राम से कहा—'हे देव, वही मेरा अग्रज रावण है, जिसने इन्द्र आदि देवताओ को परास्त करके देव-कामिनियो को बदी बनाया है और जो तीनो लोको को अपने शौर्य के प्रताप से जीतनेवाले बाहुबल से सपन्न है ।'

३८. रावण तथा सुग्रीव का द्वंद्व-युद्ध

तब सुग्रीव ने राम से कहा—'हे प्रभो, यह राक्षस मदान्ध हो आपके समक्ष अपने वैभव का ऐसा प्रदर्शन कर रहा है । मै अभी इस का गर्व भग करता हूँ ।' इतना कहकर वह अत्यधिक क्रोध से, अलघु शौर्य-सपन्न गरुड के समान, मुकुट-रूपी शृंगो तथा विशाल वक्ष-रूपी सानुओ से युक्त पर्वत-रूपी रावण पर अत्यत वेग से गिरनेवाले वज्र के समान, सुवेलाद्रि से उस रावण की ओर उडा । फिर, देवताओ के शत्रु उस रावण को तृणवत् मानकर कहा—'हे रावण, सुनो, मै राम का सेवक हूँ । क्या, तुम अपना वैभव हमें दिखाने का साहस करते हो ।' इतना कहकर उसने बडे दर्प के साथ उसके सभी मुकुटो को नीचे गिरा दिया । तब नीचे लुढकनेवाली उसकी मुकुट-पक्ति ऐसे दीखने लगी, जैसे पूर्वकाल में काल-रुद्र के प्रहार से नक्षत्र-पक्ति नीचे गिरने लगी थी । इससे अत्यंत क्रुद्ध हो, दशकंठ ने वालि के अनुज को पकडकर नीचे पटक दिया; किन्तु सूर्यपुत्र शीघ्र ही उठकर अपने प्रचड बाहु-बल का प्रदर्शन करता हुए उस राक्षस को उसके सभी हाथो के साथ पकड़कर इस प्रकार नीचे पटक दिया कि सभी दिशाएँ काँप उठी । इसके पश्चात् सुग्रीव ने उस राक्षस की कनपटियो, ललाटो और स्कधो पर अधाधुध तमाचे लगाये, उसकी पीठ को नखो से नोच दिया, और उसकी गर्दन को अपने टखनो के बीच दबाकर उसे कगूरे से दे मारा । इस प्रकार, मल्ल-युद्ध करते हुए वे दोनो बहुत थक गये और पृथ्वी पर गिरने लगे; किन्तु दोनो फिर से सँभलकर कगूरे पर ही युद्ध करने लगे । अत्यधिक शक्ति से, प्रतिक्षण पैंतरा बदलते हुए, एक दूसरे को ढकेलते हुए, फिर एक दूसरे के निकट आकर ताल ठोककर अलग होते हुए और शीघ्र ही एक दूसरे से भिडकर अपनी शक्ति दिखाते हुए, वे एक दूसरे के वक्षो पर पदाघात करते, लिपटकर अपनी केहुनियो से एक दूसरे के अगो को दबाते और अपने हाथो से एक दूसरे के सिरो को पकडकर इस तरह टकराते कि रक्त की धाराएँ निकल पड़ती, फिर लडखडाते हुए कई प्रकार से कशम-कश करने के पश्चात् एक दूसरे से हटकर अपने-अपने स्थान पर आ जाते और फूलती हुई साँसो से थोडी देर तक चुप खडे रहते । इस प्रकार, युद्ध करते हुए दोनो के शरीरो से रक्त की धाराएँ ऐसी बहने लगी, मानो पर्वतो से लाल रंग की नदियाँ बह रही हो । तब रावण अपनी माया से सुग्रीव को बाँधने का यत्न करने लगा । यह देखकर सुग्रीव आकाश की ओर उड़ा और

'क्या तुम इतने शीघ्र उस इन्द्र-पुत्र वालि को भूल गये, जिसने तुम्हें समुद्र में डुबो दिया था। मै उसी वालि का पुत्र हूँ। मेरा नाम अगद है। हे असुरेश, तुम युद्ध-भूमि में मेरे बारे में बहुत कुछ जान जाओगे। क्या, तुम उस काकुत्स्थ-वशज राम को नही जानते, जिन्होने मोहित होकर उनके पास जानेवाली शूर्पणखा की नाक और कान काटकर उसके रक्त में भीगे हुए अपने खड्ग को खर तथा दूषण के अगो के रक्त में धोया था। तुम क्यो प्रलाप करते हो ? तुम अब जाओगे कहाँ ? बचोगे कैसे ? गर्वांध हो तीनो लोको को झुलसानेवाले तुम्हें राम अवश्य मारेंगे। तुम शूर होकर बिना विचलित हुए उनका सामना करो, यही उचित है। सुनो, अब लका पर शासन करना तुम्हारे भाग्य में नही है। लका का राजा अब विभीषण ही है। तुम इतनी विपत्ति क्यो भोगना चाहते हो ? तुम उदार मन से सीता को रामचन्द्रजी के पास पहुँचा दो और अपने प्राण बचा लो। अपने से बलवान् राजाओ से सधि कर लेना इस पृथ्वी पर सभी राजाओ का उचित धर्म है।'

इन बातो को सुनकर रावण ने क्रुद्ध होकर उस महाबली अगद को पकडने की आज्ञा दी। कुछ बलवान् राक्षस तुरत उसे पकडने का प्रयत्न करने लगे। अगद भी अपनी शक्ति दिखाने के उद्देश्य से अपने-आप उनके हाथो बदी बन गया और उसके पश्चात् अपनी समस्त शक्ति के साथ आकाश की ओर उछलकर ऐसा झटका दिया कि दस सहस्र राक्षस-वीर नीचे गिरकर चूर-चूर हो गये। इससे सतुष्ट न होकर अगद ने राक्षसो के उस सभा-मडप पर ऐसा पद-प्रहार किया कि वज्रपात से गिरनेवाले हिमाचल के शिखर के समान वह मडप टुकडे-टुकडे होकर गिर गया। रावण ने फिर से राक्षसो को आज्ञा दी कि छोडो मत, अगद को अवश्य पकड लो। तब राक्षसो ने आकाश की ओर उडकर अगद पर परशु, शूल, करवाल, गदा आदि कई आयुधो का प्रहार करके उसे पीडित करने लगे। तब अगद ने अपने मुक्को से उन राक्षसो पर ऐसा प्रहार किया कि उनकी आँतें निकल आई और वे पृथ्वी पर गिर पडे। तब खर के पुत्र सूकर ने अगद को देखकर कहा—'ठहरो अगद, अब तुम कहाँ जा सकते हो ?' इस प्रकार, घोर गर्जन करते हुए उसने अपना धनुष उठाया और पाँच तेज बाण अगद के मस्तक पर चलाये और उसकी बाहुओ पर दस बाण चलाये। इससे क्रुद्ध होकर अगद ने उस असुर पर अपनी मुष्टि से ऐसा प्रहार किया कि उसके सिर के कई टुकडे हो गये और वह पृथ्वी पर गिर पडा। यह देखकर सभी राक्षस भय से छटपटाने लगे और रावण भी बडी चिंता में पड गया।

तारा-पुत्र अगद शीघ्र राम के पास पहुँचा, और प्रणाम करके हाथ जोडकर कहा—'हे देव, आपकी आज्ञा के अनुसार मैंने रावण के पास जाकर उसे सारी बातें समझाई। किन्तु, उसने मेरी बातो की अवहेलना कर दी। हे राजन्, आपने नीति के अनुसार उसे समझाने की चेष्टा की है, किन्तु वह तो आपके बाणो को अपने प्राणो की आहुति देना चाहता है। वह मरने का दृढ निश्चय किये बैठा है। उसका अत आसन्न है, इसलिए हे देव, आप युद्ध में उस दशकठ का वध कर डालिए। हे अनघ, आप (रावण को मार कर) देवताओ को प्रसन्न कीजिए।' इस प्रकार उसने लका में घटी हुई सभी बातो का वर्णन करके राम को सुनाया। अगद की शक्ति का परिचय प्राप्त करके राम भी हर्षित हुए।

वहाँ सभी राक्षस रावण को देखकर कहने लगे--'हे देव, आप इस प्रकार चुप बैठे रहेंगे, तो कार्य कैसे चलेगा । वह देखिए, राघव कपि-सेना के साथ लका को घेरे हुए है । अब आप अपना प्रताप कब दिखायेंगे ? हमें भेजिए । हम युद्ध में राम-लक्ष्मण को जीतकर आयेंगे ।'

४०. रावण का अपना वैभव प्रदर्शित करना

इन बातो को बडे चाव से सुनकर रावण ने सोचा कि मैं अपना वैभव रामचन्द्र को दिखाऊँगा, जिसमे सुग्रीव आदि भयभीत हो जायँ । इसके पश्चात् उसने उन सभी वस्तुओ को मँगाया, जिन्हें उसने अपने भयकर प्रताप के प्रदर्शन से इन्द्र, धनेन्द्र तथा नागेन्द्र को जीतकर प्राप्त किया था । उसने उज्ज्वल कातियुक्त पीताबर धारण किये, चारो ओर सौरभ विकीर्ण करनेवाले मृगमद, घनसार आदि सुगध-मिश्रित मनोज्ञ चदन का लेप किया; सरस, मजुल पारिजात-पुष्प-रचित मालाएँ धारण की, पद्मराग आदि बहुरत्न-खचित कंकण, मुद्रिका, केयूर, भुजाभरण, कठाभरण आदि धारण किये; अपनी मणियो की प्रभा से गडस्थलो को दीप्त करनेवाले कुडल पहने, सूर्य-मडल के समान उज्ज्वल तथा अपनी प्रभा से समस्त दिशाओ को प्रकाशित करनेवाले मुकुट अपने दसो सिरो पर धारण किये, इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण, मरुत्, कुबेर एव ईशान का दर्प चूर करके, उन पर प्राप्त विजय की सूचना देनेवाला तोडर अपने पैर में पहना, धनुष. बाण, चक्र, परशु, त्रिशूल, करवाल, पाश, मुद्गर, चद्रहास आदि बीस आयुध अपने बीसो हाथो में धारण किये, और परिचारको के साथ लेकर उत्तर दिशा के बुर्ज की ओर रवाना हुआ । उसके आप्तजन शूलो से सज्जित हो उसके चारो ओर चलने लगे । भूषण तथा वस्त्रो से अलकृत होकर उसके मत्री उसके दोनो ओर चल रहे थे । कई हजार राक्षस असख्य स्वर्ण-टोपो से विलसित अस्सी हजार धवल-छत्र लिये हुए थे । अस्सी हजार कामिनियाँ शेषनाग के फन के समान दीखनेवाले सुदर व्यजन (पखा) लिये हुए चल रही थी । चद्र-किरणो के सदृश दीखनेवाली अस्सी हजार अप्सराएँ दोनो ओर चन्द्रिका की भाँति उज्ज्वल चामर धीरे-धीरे झुलाती हुई अपने ककणो का मृदु शिजन सुना रही थी । बदी-मागधो का समूह देवताओ पर (दानवो की) विजय का स्फूर्तिदायक स्तुति-पाठ कर रहा था। उसके आगे मद, मध्यम, उच्च आदि स्वर-भेदो के साथ चद्रवदनी स्त्रियाँ गीत गा रही थी । ऐसी ठाट-बाट से सज्जित हो रावण दुर्ग के उत्तरी बुर्ज पर अपने वैभव का प्रदर्शन करते हुए मणिमय प्रभा-समन्वित सिंहासन पर आरूढ होकर ऐसा दीख रहा था, मानो पश्चिम पर्वत पर सूर्य-बिंब दिखाई पड़ रहा हो । राक्षसो के आतपत्रो ने सूर्य को ढक दिया था, इसलिए चारो ओर अधकार फैलने लगा ।

उस समय राम माया-मृग के चर्म पर, इन्द्रनील मणि के समान प्रकाशमान अपनी देह का बाम भाग टेके हुए, वाम-भुजाग्र को अपने कपोल का आधार बनाकर, सूर्य-बिंब के समान उज्ज्वल सुग्रीव की जाँघो पर, राजसी ठाठ से, अपना अतुल सौदर्य को प्रकट करते हुए लेटे थे और अपने प्रिय-भक्त पवन-पुत्र के जाँघो पर पैर पसारकर आराम कर रहे थे । पवन-पुत्र उनके चरण कमलो को धीरे-धीरे दबा रहा था । अगद उनके दक्षिण-हस्त

की अँगुलियो को दोनो हाथो से दबा रहा था । बंदी-मागधो की तरह उनके चारो ओर नल-नील तथा जाबवान् आदि प्रमुख सेनापति उनकी स्तुति कर रहे थे—'हे सकल लोकाराध्यचरण, हे जानकी-हृदयाबुज-षट्चरण, हे दीनार्तिहरण, हे स्तवनीयकृपाभरण, हे हर-वद्य नाम, हे सूर्यकुलाब्धिसोम, हे शत्रुनाशक, हे रघुराम आदि ।' तब रामचद्र पूर्णचन्द्र के समान शोभायमान होनेवाले अपने मंदहास-युक्त तथा अविरल करुणामृत से परिपूर्ण मुख-मडल में विलसित धवल अरविंद की सुदरता को भी परास्त करनेवाले नेत्रो की काति को, चारो ओर विकीर्ण करते हुए, अपने ललित कटाक्ष-रूपी चद्रिका की वृष्टि करते हुए, अपने दोनो हाथो के समीप बैठे हुए, राक्षसो के भेदो के ज्ञाता विभीषण के साथ अत्यन रहस्यपूर्ण वार्त्तालाप कर रहे थे । उस समय उनका मुँह दक्षिण की ओर था । इसलिए उन्होने रावण को देखकर कहा—'हे विभीषण वहाँ देखो । उस दुर्ग के उन्नत शिखर पर कोई सिंहासन पर आसीन है । उस पर तने हुए शरत्काल के बादलो के सदृश दीखनेवाले छत्र-समूहो के कारण पृथ्वी पर छाया पडी हुई है । इस ढग से वहाँ बैठा हुआ वह व्यक्ति कौन है ?'

तब राम को देखकर विभीषण ने निवेदन किया—'हे देव, वही देवताओ का शत्रु रावण है; युद्ध में अमरो के पैर उखाडनेवाला वही है । समस्त देवताओ से प्राप्त दिव्य-आभूषणो को धारण किये हुए, अपने आप्त दनुज-वीरो की सेवाएँ ग्रहण करते हुए, अस्सी सहस्र छत्रो, चामरो तथा व्यजनो से सुसज्जित हो, अपना वैभव तथा ठाठ-बाट आपके समक्ष प्रदर्शित करने के निमित्त वह दुर्ग के बुर्ज के ऊपर सिंहासन पर बैठा हुआ है ।'

४१. राम का रावण के छत्र-चामरों पर अस्त्र चलाना

इन बातो को सुनकर राम हँसे और रावण का गर्व-भग करने का निश्चय करके लक्ष्मण से धनुष लाने के लिए कहा । फिर अपने पीछे बैठे हुए लक्ष्मण के हाथ से धनुष लेकर दायें पैर तथा दायें हाथ के अगूठे से उस पर प्रत्यचा चढाई । फिर लक्ष्य साधकर, अर्द्धचन्द्र शर को चढ़ाया और प्रत्यचा को अच्छी तरह खीचकर आधे लेटे-लेटे ही रावण के छत्र-चामर तथा व्यजनो पर बाण छोड दिया । राम का वह एक शर क्रमश' दसो सैकडो, हजारो, लाखो तथा करोडो की संख्या में बढकर रावण के निकट पहुँच गया और तालवृतो को धारण करनेवाली सुन्दरियो, चामरो को डुलानेवाली स्त्रियो, सगीत गाने वाली कमलमुखियो, कीर्त्तिगान करनेवाली रमणियो, धवल छत्रो को धारण करनेवाली दैत्य-बालाओ और सेवा में खडे हुए भटो के हाथो को बिना काटे ही बिना उनके कठो का विच्छेद किये ही, बिना उनके हृदयो में प्रवेश किये, रावण के मुकुटो को नीचे गिराये बिना ही, उसके सिरो को काटे बिना ही, उन छत्र, चामर, व्यजन आदि के ऊपरी भागो को काटता हुआ चला गया । यह देखकर सभी राक्षस सभ्रम तथा आश्चर्य में चकित रह गये । इस प्रकार, कटे हुए छत्र, चामर, तथा व्यजन उडकर समस्त आकाश में व्याप्त हो गये, फिर वे जहाँ-तहाँ, उस सभा में, कुछ राक्षसो पर, कुछ लका में, कुछ लवण-समुद्र में, और कुछ उस लकेश्वर पर गिरने लगे । इस प्रकार, अद्वितीय ढग से अपना कार्य पूरा करके वह दिव्य शर फिर राम के तूणीर में आकर प्रविष्ट हो गया । छत्र, चामर

तथा व्यजनो से रहित हो, केवल दण्डो को अपने हाथों में थामे खड़े रहनेवाले उन असुर-पक्तियो के मध्य रावण सभ्रमित हो, अपना समस्त गर्व खोकर बड़ी देर तक बैठा रहा, क्योंकि उसे ऐसा लग रहा था; मानों खड़े हुए राक्षस उसे ले जाने के लिए आये हुए यमदूत हो। रघुराम के धनुर्विद्या-कौशल का बार-बार विचार करके उसका सिर कांपने लगा, और मन-ही-मन वह उनके (राम के) पटुत्व को स्वीकार करने लगा। फिर, प्रकट रूप से वह रघुराम की प्रशसा करने लगा।

४२. रावण का राम की धनुर्विद्या की प्रशंसा करना

उसने कहा—'हे श्यामवर्ण रघुराम, हे नयनाभिराम, हे कोदंड-दीक्षा-गुरु, हे वीरावतार, हे शर-सधान-कला-निपुण हे श्रेष्ठ चाप के कर्षण में कृपण, हे दृढबाहु, हे विख्यात मुष्टि-सपन्न, हे विजित शत्रुओ के भाग्य-विधाता, हे विजय-सपन्न, हे श्रेष्ठ मानव-राजकुमार, हे नव्य-दिव्य-अस्त्र-सपन्न, हे चंचल तथा घोर शरो से पूर्ण अक्षय तूणीरधारी, हे वीराग्रगण्य, हे विश्वशरण, हे राम भूपाल, तुम्हारे समान इस ससार में और कौन धनुर्धर हो सकता है? त्रिपुरो का नाश करने में (निपुण) अकेले एक शिव ही है और बाणो को चलाने में निपुण तुम एक ही हो।' इस प्रकार, रावण अपने दसो मुँहो से रामचन्द्र की प्रशसा करने लगा।

यह देखकर (उसके) मत्रियो ने उस दैत्यनाथ से कहा—'हे दैत्य-पुगव, शत्रुता का विचार किये बिना, कही शत्रु की ऐसी प्रशसा कोई कर सकता है? यदि आप ऐसी प्रशंसा करेंगे, तो शत्रु तथा मित्र, यह सोचकर कि आप भयभीत हो गये है, आपको उपेक्षा की दृष्टि से देखेंगे। यह राजनीति नही है।' तब रावण ने हँसकर उनसे कहा—'धनुर्विद्या की निपुणता, महान् पराक्रम, सौंदर्य तथा बाहुबल आदि गुणो में श्रेष्ठ, कोदंड-दीक्षा-गुरु, राम-भूपाल की समता इन तीनो भुवनो में कौन कर सकता है? हरिहर तथा ब्रह्मा भी उसकी समता नही कर सकते। क्या. श्रेष्ठ शूरो की महत्ता को स्वीकार नही करनी चाहिए?' इस प्रकार, नीति-पूर्ण वचनो को कहने के पश्चात् दनुजेश्वर वहाँ से चला गया। तब राक्षस-नेताओ ने कटकर गिरे हुए छत्र-चामर आदि को देखकर अत्यन भयविह्वल हो वहाँ से चले गये और कई प्रकार से राम के पराक्रम तथा शौर्य की प्रशसा करते हुए कहने लगे—'राघव करुणा-समुद्र हैं, इसलिए उनके भयकर बाण ने केवल छत्रों को ही काटा। यदि वे उसी प्रकार और एक बाण चलायें, तो हमारे सिर भी उड़ने लगेंगे।'

४३. वानरों का लंका ध्वंस करना

यहाँ पर राघवेन्द्र ने आगे के कार्य के सबंध में अच्छी तरह मन-ही-मन विचार किया और फिर अपने अनुज विभीषण तथा सूर्य-पुत्र आदि आप्त-वर्ग की सम्मति लेकर शुभ मुहूर्त्त में वानरो को लका पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। वानर-सेना उसी क्षण, भयकर गर्जन करते हुए—'हे देव, हमारा शौर्य देखिए। आपके लिए हम किस प्रकार प्राण देते है, देखिए।' यो कहते हुए पर्वतों तथा वृक्षो को कँपाते हुए, करोड़ों वानरो ने एक साथ मिलकर लका के दुर्ग को चारो ओर से घेर लिया।' 'राम की अदम्य जय

होगी'—ऐसा घोष करते हुए, वानर-वीर अपनी महान् शक्ति को प्रकट करते हुए पर्वतो तथा वृक्षो को जहाँ-तहाँ से जमा करके परिखा को पाटने लगे । उस समय वे ऐसे दीख रहे थे, मानो वध्य भूमि पर स्थित वधिक हो ।

तब कुमुद दस करोड वानरो की सेना लेकर पूर्व द्वार की ओर गया । बाहुबली शतवली अस्सी करोड़ की सहायक सेना लेकर आनेवाले राक्षसो के आक्रमण को रोकने के उद्देश्य से दक्षिण के द्वार पर जाकर ठहर गया । सुषेण दस करोड सैनिको को लेकर पश्चिम के द्वार पर चला गया। राम, लक्ष्मण, विभीषण तथा सुग्रीव उत्तर के द्वार पर ही रहे । गज, गवय, गधमादन तथा शरभ, दुर्ग के चारो ओर बार-बार भ्रमण करते हुए वानरो को दुर्ग पर चढ जाने के लिए उत्साहित कर रहे थे । तब वानर उद्धत गति से एक दूसरे से स्पर्धा करते हुए, एक दूसरे को धक्का देते हुए, दुर्ग पर ऐसे चढ गये कि, मालूम नही होता था कि कौन बुर्ज है, और कौन कगूरा । फिर, स्तूपो पर चढकर वे भयकर गर्जन करते हुए, अपनी पूँछो का फदा बनाकर पत्थरो को किले के भीतर फेंकने लगे। फिर बडे-बडे वृक्षो को नने मे उखाडकर बडे वेग से उन्हें अदर फेंककर किले के भीतर स्थित घरो को तोडने लगे । फिर उन्होने भीतर के कितने ही भवनो, मडपो और कगूरो को अपने पदाघात से चूर-चूर कर दिया, बड़े-बडे पहाडो को फेंककर दुर्ग को गिराते और उसके नीचे दबकर मरनेवाले राक्षसो को देखकर हँसने लगे । वानर, राक्षसो को ललकारते हुए बडी-बडी शिलाओ को किले के ऊपर फेंककर उसकी ऊँची दीवारो को गिरा देते । दुर्ग के बहिर्द्वारो, राक्षसो, उनके आयुधो, पताकाओ, ध्वजाओ तथा छत्रो को गिरते हुए देखकर वानर-वीर दिशाओ को कपित करनेवाले भयकर गर्जन करते और अत्यधिक मात्सर्य से पुन पर्वतो को लाकर दुर्ग पर फेंकने लगते । उनके कठोर प्रहारो के कारण लकापुर की ऊँची अट्टालिकाएँ गिरने लगी, वीथियाँ नष्ट होने लगी, दीवारें गिरने लगी, ऊँचे सौध टूटकर गिरने लगे, घर चूर-चूर होने लगे, और असख्य मदिर नष्ट-भ्रष्ट हो गये । सारा दृश्य राक्षसो के नाश की सूचना देनेवाले अपशकुन के समान बडा भयावह दीख पडता था ।

४४. राक्षसों तथा वानरों का भीषण संग्राम

तब भयभीत हो राक्षस कहने लगे—'हमने ऐसा उत्पात कभी नही देखा ।' फिर, वे विकट अट्टहास करते हुए, भयकर गर्जन करने लगे । उसके पश्चात् सभी राक्षस एक साथ एकत्रित हो, बडे क्रोध से वानरो पर शूल फेंके, खड्ग चलाये, और गदाओ से प्रहार किये । वे वानरो के समूह में घुस गये और उनपर प्रहार करने, परशुओ से उन्हें मारने और भाले चुभोकर उन्हें परिखाओ में गिराने लगे । फिर बडी-बडी शिला-यन्त्रो के द्वारा गोले फेंककर दुर्ग की दीवारो के ऊपर चढनेवाले वानरो को आगे बढने से रोकते तथा भयकर गर्जन करते । उनके गर्जनो की ध्वनि तथा कपियो के विकट गर्जनो की ध्वनियो के कारण पृथ्वी तथा सभी दिशाएँ कपित हो गई । व्याकुल होकर दिग्गज चिंघाडने लगे । भय से कपित होने से पृथ्वी में दरारें पड गई । अदहन के समान समुद्र का पानी खौलने लगा । सारा ससार तप्त हो गया और भूत भयमीत हो गये । कुल-पर्वत गोलियो के समान

उछल-उछलकर गिरने लगे। शेषनाग विष उगलने लगा; कूर्म और पर्वत एक दूसरे से टकरा गये।

तब रावण ने (कपि-सेना से) घिरी हुई भयंकर राक्षस-सेना को अपने पास बुलाया और उसे उत्साहित करते हुए कहने लगा—'कपि-सेना का पीछा करके उसे किले के बाहर भगा दो।' तुरत दुर्ग के चारो द्वारो से राक्षस-सेना इस प्रकार बाहर निकली, जैसे प्रलय-काल में रुद्र के मुख से ज्वालाएँ निकलती है। उस समय, भेरी, डंका, पटह, शंख, तुरही आदि वाद्यो के भयकर निनादो, घोडो की हिनहिनाहट, वलिष्ठ हाथियो की चिंघाड, रथो के चक्रो की ध्वनि तथा मन को विचलित करनेवाले सैनिको के सिंहनादो के कारण समस्त ब्रह्माण्ड कंपित होने लगा और सभी देवता भयभीत हो गये।

वानर-सेना तुरंत राक्षस-सेना से भिड गई। द्वंद्व-युद्ध होने लगा। इन्द्रजीत ने अगद पर गदा का ऐसा घोर प्रहार किया, जैसे इन्द्र ने दुर्वार गति से अपने वज्रायुध को कुल-पर्वत पर चलाया था। अगद ने भी इन्द्रजीत की समता करनेवाला अपना युद्ध-कौशल प्रकट करते हुए एक विशाल पर्वत-शृग को उठाकर फेंका और इन्द्रजीत के रथ, सारथी तथा रथ के अश्वो को चूर-चूर कर दिया। प्रजघ ने दुर्वार गति से सपाति पर तीन अस्त्र चलाये। उसके आघात को बचाकर सपाति ने अश्वकर्ण वृक्ष को उस पर फेंका। अतिकाय ने विनत तथा रंभ नामक वानरो को घेरकर उन पर शरवृष्टि की। किन्तु उन दोनो ने बड़े-बड़े पर्वतो को फेंककर उसकी सेना का ध्वस कर दिया। महोदर ने सुषेण को घेरकर उसके विशाल वक्ष तथा प्रशस्त ललाट पर क्रमश पाँच तथा तीन बाण चलाये। तब सिंह-गर्जन करते हुए उसने एक बड़ा पहाड़ उठाकर उस पर ऐसा फेंका कि महोदर का रथ अश्व तथा सारथी के साथ चूर-चूर हो गया। जाबवान् ने एक विशाल वृक्ष घुमाकर मकराक्ष पर फेंका; किन्तु उसने उसको बीच में ही काटकर, जाबवान् के ललाट, वक्ष तथा कंधो पर कई बाण मारे। इससे क्रुद्ध होकर जाबवान् ने उस पर एक विशाल पर्वत फेंका। देखते-देखते मकराक्ष का रथ सारथी तथा अश्वो के साथ नष्ट-भ्रष्ट हो गया। विद्युज्जिह्व ने शतबली को घेर लिया और उसके वक्ष पर शरवृष्टि की; किन्तु शतबली ने अत्यत वेग से उस पर एक बड़ा वृक्ष फेंका। गज को कई राक्षसो का सहार करते हुए देखकर प्रमद ने क्रोध से उस बली वानर के वक्ष पर अपना शूल चलाया। तब गज ने एक साल-वृक्ष से उस राक्षस पर ऐसा प्रहार किया कि वह राक्षस वही ढेर हो गया। (उसे मरते देख) सभी वानरो ने हर्षनाद किया। कुम्भकर्ण का ज्येष्ठ पुत्र कुंभ नामक वीर वानरो को पकड-पकडकर निगलने लगा, तो उसे देखकर धूम्र ने एक वृक्ष से मारा। क्रूर देवांनक ने गवाक्ष के विशाल वक्ष पर पाँच शर चलाकर उसे अत्यत पीडित किया, तो उसने बडे वेग से एक साल-वृक्ष उस पर फेंका। तब उस राक्षस ने सात बाणो से उस वृक्ष के खड-खंड कर दिये और गवाक्ष पर नौ अस्त्र चलाये। तब गवाक्ष ने एक पहाड़ उस राक्षस पर फेंकते हुए कहा—'लो, इसे सँभालो।' सारण ने ऋषभ पर एक मूसल चलाया, तो ऋषभ ने उसके वक्ष पर एक बड़ा वृक्ष फेंका। इससे उसके धनुष-बाण टूट गये और वह मूर्च्छित हो गया। पहाड़ जैसे हाथी पर आसीन हो जब त्रिशिर ने शरभ के सिर पर तोमर चलाया,

तब उसने क्रोध में आकर उस राक्षस पर सप्त-पर्ण वृक्ष का ऐसा प्रहार किया, जैसे इन्द्र ने कुल-पर्वत पर (वज्र से) प्रहार किया था और उस राक्षस के हाथी को गिरा दिया। नरातक ने क्रूर गति से पनस पर तीव्र बाणो की वर्षा की, तो पनस ने भी अपनी भयकर शक्ति प्रकट करते हुए उस पर वृक्षो की वर्षा कर दी। अकपन ने एक बड़े लट्ठ से कुमुद पर प्रहार किया, तो कुमुद ने झुककर उस प्रहार से अपने को बचा लिया और उस अकंपन पर मुष्टि का ऐसा प्रहार किया कि अकपन मूच्छित हो गया। जब धूम्राक्ष ने क्रुद्ध होकर केसरी पर बाणो की घोर वर्षा की, तब उसने धूम्राक्ष पर पर्वतो की वर्षा की और उसे गिरा दिया। महापार्श्व ने बडे रोष से महाबाहुबली गधमादन पर आक्रमण किया, तो उसने पर्वतो, वृक्षो तथा अपने दाँतो के प्रयोग से उस राक्षस को पीडित किया। शुक ने वेगदर्शी के वक्ष पर अस्त्र चलाये, तो वेगदर्शी ने अपने दुर्वार विक्रम से उसके रथ को अपने पैरो से कुचलकर चूर-चूर कर दिया। जब तपन ने नल का सामना किया, तब नल ने अपना शरीर इतना बढाया कि देखनेवाले सभ्रमित हो गये और फिर विशाल पर्वत को उस राक्षस पर फेंका। तपन ने नल पर तेज बाण चलाये, तो नल ने एक साल-वृक्ष से उस पर प्रहार किया। जबुमाली ने अपनी गुरुतर शक्ति से हनुमान् पर घोर प्रहार किया, तो हनुमान् क्रुद्ध हो उसके रथ पर कूदा और जबुमाली के सिर पर अपनी हथेली का ऐसा प्रहार किया कि उसका सिर फूट गया। मित्रघ्न ने विभीषण पर शरवृष्टि की, तो विभीषण के शरीर से रक्त के फौव्वारे छूटने लगे। तब उग्र क्रोध से विभीषण ने उस पर गदा चलाई, तो मित्रघ्न मूच्छित होकर गिर पडा। प्रहस्त नामक राक्षस को वानरो को पकडकर निगलते देख सुग्रीव की आँखें क्रोध मे लाल हो गईं। उसने तुरत एक सप्त-पर्ण वृक्ष से उस पर प्रहार किया और उसे गिरा दिया। वज्रमुष्टि नामक राक्षस पर मैन्द ने अपनी मुष्टि से प्रहार किया, तो वह राक्षस पृथ्वी पर ऐसा गिरा, मानो लका का बुर्ज ही गिर पडा हो। अशनिप्रभु नामक राक्षस को द्विविद ने एक पर्वत के प्रहार से ऐसा गिरा दिया कि स्वर्ग के देवता हर्ष-ध्वनियाँ करने लगे। विशाल बाहुबली निकुभ ने अपने प्रताप का प्रदर्शन करते हुए अपने दिव्य अस्त्रो से नील को ऐसा ढक लिया, जैसे काले-काले मेघ सूर्य को आच्छादित कर लेते है। तब नील ने इसकी उपेक्षा करते हुए सहज ही निकुभ के रथ के चक्र को निकालकर उसे बडे वेग से ऐसे चलाया कि सारथी का सिर भूमि पर लोटने लगा और निकुभ स्वय भयाक्रात होकर देखता रह गया। विरूपाक्ष सौमित्र पर शर-वृष्टि करने लगा, तो सौमित्र ने उसकी उपेक्षा करके एक ऐसा बाण उस राक्षस पर चलाया कि उसकी शक्ति जाती रही और वह मूच्छित हो पृथ्वी पर लुढक गया। उस समय सप्तघ्न, रश्मिकेतु, अग्निकेतु तथा कोपाग्निकेतु नामक चार भयकर प्रतापी राक्षस बार-बार गर्जन तथा धनुष का घोर टकार करते हुए उमडकर आनेवाले मेघो के समान शर-वृष्टि करने लगे। तब सूर्य-वश-तिलक राम ने सहज ही चार बाणो से उन चारो राक्षसो के सिर उडा दिये।

४५. युद्ध-भूमि का वर्णन

इस प्रकार, घोर द्वद्व-युद्ध के अविराम गति से चलते रहने से, सारी युद्ध-भूमि में टूटे हुए असख्य धनुष, खडित शर, चूर-चूर हुई गदाएँ, खडित करवाल, टूटे हुए भाले तथा

मुद्‌गर, धूलि के समान बने हुए परिघ तथा खड्ग, खड-खंड बने हुए चक्र तथा शूल, चूर्ण के समान बने हुए लट्ठ, खडित रथ-चक्र, छटपटाते हुए अश्व, गिरकर मिट्टी चाटनेवाले सारथी, सभी दिशाओ में बिखरकर पड़े हुए आभूषण, टूटकर गिरे हुए रत्न, कटे हुए हाथ तथा मरकर गिरे हुए असुर भयोत्पादक ढग से स्थान-स्थान पर पडे हुए दिखाई दे रहे थे। वह युद्ध-क्षेत्र राम के वशीभूत उस कृश-समुद्र की समता करता था, जिसका गर्व राम ने अपने दुर्दमनीय शरो के प्रहार से भग कर दिया था और फलस्वरूप उसके समस्त जल के सूख जाने से जल में निवास करनेवाले वृहदाकार मीन, मकर तथा उरग छटपटाने लगे थे। उस युद्ध-भूमि में धड इस प्रकार हिल रहे थे, मानो कह रहे हो कि जो रावण गर्वांध होकर सीता को ले आया है, उसकी धड पर सिर कैसे रह सकेगा ? (कट-कटकर मरे हुए लोगो की) मज्जा रूपी कीचड, केश-समूह-रूपी सेंवार, खोपडी-रूपी सीप, खडित होकर गिरे हुए शिला-खड-रूपी कमठ-समूह; टूटकर गिरे हुए खड्ग-रूपी मछलियाँ, चामर-रूपी हस, श्वेत छत्र-रूपी झाग, आभूषणो का चूर्ण-रूपी बालुका, ढाल-रूपी जल-ग्रह, विशालकाय हाथियो के शव-रूपी पर्वत-खड, वानर-तथा राक्षसो के शरीर-रूपी वृक्ष, आँत-रूपी दुष्ट सर्प, मरणासन्न राक्षसो की कराह-रूपी घोष, व्याकुल अश्व-रूपी मकर, तथा गिरनेवाली पताकाएँ-रूपी लहरें, इन सब से युक्त हो सब नदियो का उपहास करती हुई रक्त की नदी युद्ध-भूमि में बहने लगी। वह सारी रण-भूमि जाह्नवी के समान ऐसी आश्चर्यजनक दीख रही थी कि मानो वह कह रही हो कि भले ही रावण पापात्मा हो, राम का द्रोही हो, लोक-कटक हो, नीच हो, तपस्वियो को मारनेवाला पापी हो, सतियो का नाश करनेवाला दुरात्मा हो, मै उसे शरीर से मुक्ति प्रदान करूँगी, अपने में लीन कर लूँगी और उस पापी को स्वर्ग में भेजूँगी।

उस समय लका में दैत्य-स्त्रियाँ उमड़ते हुए शोक-समुद्र में डूबी हुई बार-बार कह रही थी—'क्या, राघव सूर्यास्त होने से पहले इस भीषण युद्ध को स्थगित करके अपने निवास को नही लौटेंगे ? न जाने कब सूर्यास्त होगा।' निदान सूर्य अपने दीर्घ करो को समेटकर पश्चिम समुद्र में डूबने लगा, मानो उसने निश्चय कर लिया था कि तीक्ष्ण-शर-किरण-समूह से रावण के तमोगुण को नष्ट करने के लिए भयकर-प्रताप-सपन्न राम ही पर्याप्त है। चारो ओर अधकार ऐसे व्याप्त होने लगा, मानो उस पापी दशकठ के नाश को सूचित करने के लिए निशा का केश-समूह चारो ओर फैल गया हो।

सूर्यास्त होने पर भी युद्ध को बिना स्थगित किये राक्षस, भयकर गर्जन करते हुए वानरो से युद्ध करते रहे। उनके अट्टहासो, ताल ठोकने की ध्वनियो, एक दूसरे को कोसने के शब्दो, दीर्घ हुकारो, एक दूसरे को बुलाने या एक दूसरे की प्रशसा करने के शब्दो, रथ-चक्रो की ध्वनियो, रथिक तथा सारथियो के भयकर गर्जनो, धनुष के टकारो, हाथियो के घटे की ध्वनियो, उनकी चिघाडो, तुरही-निनादो तथा अश्वो की हिनहिनाहटो से युद्ध-भूमि गूँजने लगी। उस निविड़ अधकार में कई प्रकार के शब्द सुनाई पड़ रहे थे। कोई कह रहा था—'मारो, मारो,' तो कोई कहता था—'भागो मत, भागो मत।' कहीं से सुनाई पडता था—'छोड़ो, छोड़ो', तो कहीं से 'मारो, मारो' की ध्वनि आ रही थी।

कोई कह रहा था 'छोडो मत, मारो', तो कोई कहता था, 'सिर काट लो, सिर काट लो।' कोई पूछ रहा था—'कहाँ है ?' तो कोई कहता था—'यहाँ आने दो, यहाँ।' इस प्रकार, की विविध ध्वनियो के साथ हुकार तथा अट्टहास की ध्वनि करते हुए जब राक्षस तथा वानर युद्ध करने लगे, तब सारा आकाश धूलि से व्याप्त हो गया। क्रमश अधकार बढ जाने से राक्षस-सैनिक भ्रम से अपने ही पक्ष के लोगो पर अस्त्र चलाकर मार डालते थे। वानर भी अत्यधिक क्रोध से उन पापी राक्षसो से जूझकर रथिको को मार डालते थे, सारथियो को चीर डालते थे, रथ के अश्वो को नष्ट-भ्रष्ट कर देते थे और रथो को ऊपर उठाकर पृथ्वी पर ऐसे पटकते थे कि उनके टुकडे-टुकडे हो जाते थे। फिर, वे गजो पर बैठे योद्धाओ का गर्व तोडकर, मत्त गजो को पैरो से पकडकर उन्हें ऊपर उठाकर, नीचे पटककर मार डालते। तितर-बितर होकर दौडनेवाले अश्वो को पकडकर ऊपर उठाते, और उन्हें वेग से घुमाकर नीचे ऐसे पटक देते थे कि खून बहने लगता। पदचर-सैनिको को ऐसा मारते कि उनकी रीढें, वक्ष, पसलियाँ, भुजाएँ, मुँह, दाँत, सिर तथा भेजा छिन्न-भिन्न होकर चारो ओर बिखर जाते। रथो के सतत सचलन से उत्पन्न तथा अश्वो के खुरो से उठी हुई धूलि आकाश की ओर इस प्रकार उड रही थी, मानो राक्षसो के मन की कालिमा चारो ओर व्याप्त हो गई हो। धूलि के अधकार से मिलकर आकाश भर में व्याप्त होने से वह रात्रि राक्षसो तथा वानरो के प्राणो को हरनेवाली प्रलय-काल की रात्रि के समान दीख रही थी।

अपने लिए रात्रि अनुकूल होने से सभी राक्षसो ने अपने गर्जनो से त्रिकूटाचल को गुजायमान करते हुए युद्ध-सन्नद्ध होकर एक साथ राम को घेर लिया और उन पर बाण-वृष्टि करने लगे। तब राम ने अग्नि-बाण चलाकर अधकार को दूर कर दिया और अपने साथ युद्ध करनेवाले महोदर, महापार्श्व, सारण, शुक, वज्रदत तथा महाकाय पर बडे वेग से बाण चलाये। उनसे पीडित हो वे छहो भय-त्रस्त राक्षस भाग खडे हुए। बचे हुए अन्य राक्षस-सैनिक राम के तीव्र शरो से नष्ट हो गये।

४६. इन्द्रजीत का माया-युद्ध

अगद के हाथो से फेंके हुए गिरि-शृग के कठोर प्रहार से रथ, सारथी तथा अश्वो को खोकर इद्रजीत शीघ्र यज्ञ-शाला की ओर गया। राक्षस आवश्यक हवन-सामग्री ले आये। तब उसने, रक्तवर्ण के अधोवस्त्र, उत्तरीय तथा शिरोवस्त्र तथा पुष्प-मालाएँ पहनी। फिर, उसने अग्नि के योग्य परिस्तरण (होमकुड के चारो ओर रखे जानेवाले कुश) के रूप में भाले, भयकर शस्त्र तथा शर रखे और क्रमश काले बकरे के कठ के रक्त तथा ताल की समिधाओ से होम करने लगा। तब अग्नि, बिना धुआँ छोडे विजय की सूचना देनेवाली अपनी चचल शिखाओ को व्याप्त करते हुए जलने लगी और इद्रजीत से प्रस्तुत आहुतियो को ग्रहण किया। इस प्रकार, इन्द्रजीत ने अत्यत भक्ति से यथाविधि हवन पूर्ण किया और अग्निदेव से चार घोडो तथा विविध शस्त्रास्त्रो से युक्त एक स्वर्ण-रथ प्राप्त किया।

इसके पश्चात् वह उस रथ पर आरूढ होकर, ब्रह्माण्ड को विदीर्ण करनेवाले अपने भयकर गर्जनो से इन्द्रादि देवताओ को भयभीत करते हुए राक्षस-सेनाओ के साथ

आया और अदृश्य होकर, आकाश से ही,. राम-लक्ष्मण पर घोर अस्त्रो की वर्षा करने लगा। राम तथा लक्ष्मण ने भी असख्य शर आकाश की ओर चलाये, किन्तु उनमें से एक भी इन्द्रजीत को नही लगा। वह राक्षस आकाश में अदृश्य रहकर बडे गर्व से सभी दिशाओ में घूमते हुए श्रेष्ठ वानर-वीरो का सहज ही नाश करने लगा। सूर्य-किरणो के समान आकाश से आनेवाले उसके क्रूर अस्त्र, वानरो तथा रामचन्द्र को दिखाई पडते थे; किन्तु उसके रथ की ध्वनि, घोडों के खुरो की ध्वनि, धनुष का टकार, सारथी की बातें, कोड़े की ध्वनि, रथिक (इद्रजीत) का गर्जन तथा उसका रूप, रथ तथा उसकी ध्वजाएँ कही भी दिखाई नही देती थी। यह विचित्र युद्ध उस कपि-सेना को ऐसा लग रहा था, मानो वालि का सहार करनेवाले राम पर क्रुद्ध होकर इन्द्र अपने पुत्र के वध का प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से भयंकर वाणो की वर्षा कर रहा हो। कपि-सैनिको के अगो को खडित होते हुए देखकर रामचन्द्र से लक्ष्मण बोले—'हे देव, आकाश में छिपकर युद्ध करनेवाले इस राक्षस के प्रताप से, हमारी सहायता करनेवाले ये वानर इस प्रकार कटकर मर रहे हैं। अब मै उस पर ब्रह्मास्त्र चलाकर, उसको तथा उसके वश को भस्म कर दूँगा।'

तब राघव अपने अनुज से बोले—'हे लक्ष्मण, एक व्यक्ति के लिए क्या कही बहुतों का सहार करना उचित है? क्या, तुम युद्ध-नीति नही जानते? भय से छिपनेवालों को, पीठ दिखाकर भागनेवालो को, हाथ जोडकर प्रणाम करनेवालो को, शरणार्थियो को, पराजितो को, शस्त्रहीन लोगो को तथा सोनेवालो को मारना कल्याण-कामी तथा पुण्यात्मा क्षत्रियों का धर्म नहीं है। मायावी इद्रजीत का वध करने में समर्थ काल-रूपी वानरो को भेजना हीं अब उचित है; ब्रह्मास्त्र चलाने का यह समय नही है।'

इस प्रकार कहने के पश्चात् उन्होंने नील, अगद, हनुमान्, शतघ्न, गज, गवाक्ष, विक्रमी, पनस, केसरी, शरभ, ऋषभ, सन्नाथ, प्रथन, गवय, नल, मैन्द तथा द्विविद नामक वानरो को इन्द्रजीत पर आक्रमण करने के लिए भेजा। तब वानर-वीर अत्यधिक वेग से आकाश में उड गये और वृक्षो तथा पर्वतो को फेंकने लगे; किन्तु बडे दर्प के साथ उस राक्षस-राजकुमार ने उन पर भयकर शर-वृष्टि करके उन्हें अत्यत पीडित कर दिया। वे उस दैत्य को आकाश में कही भी न देख सकने के कारण राम-भूपाल के निकट लौट आये। प्रलय-काल के मेघ के समान काला तथा विशाल शरीर एव क्रोध से भरी अरुण नेत्रों से युक्त अपना भयकर रूप (दूसरों की) दृष्टि से बचाकर मेघनाद कहने लगा—'हे राजकुमारो, युद्ध में मेरे रूप को देखना सहस्राक्ष इन्द्र के लिए भी असभव है। तुम किस गिनती में हो?' इस प्रकार कहते हुए उसने आकाश को कँपाते हुए धनुष का भयंकर टकार किया, वज्रसम घोर वाणो को दाशरथियो पर चलाया और कवचो को छिन्न-भिन्न करने की शक्ति रखनेवाले कितने ही अस्त्र चलाये। इससे सतुष्ट न होकर इन्द्रजीत ने यम के समान भयकर रूप धारण करके अत्यधिक क्रोध से वज्रपात के सदृश भयंकर तथा क्रूर सर्प-बाणो को राम-लक्ष्मण पर चलाया। तब उन्होने अपने शक्तिसंपन्न बाणो से उस राक्षस पर कई श्रेष्ठ बाण चलाये; किन्तु इन्द्रजीत ने उन्हें चूर-चूर कर दिया और फिर असंख्य बाणो की वृष्टि कर दी। तब राम-लक्ष्मण उसी ओर बाण चलाने लगे, जिस

ओर से उसके शर आते थे। यह देखकर इन्द्रजीत ने उन दोनों सूर्यवंशियों को नागपाश से ऐसे बाँध दिया, मानो कह रहा हो कि सर्प के साथ रहना तुम्हारे लिए पहले से ही सहज रहा है; अब भी उनके साथ ही रहो। राम-लक्ष्मण ने भी (इन्द्रजीत को प्राप्त) ब्रह्मा के वर का सम्मान करने का निश्चय किया और वे आदिनारायण के वंशज, उन राक्षस-राजकुमार के द्वारा प्रयुक्त नाग-पाश से बँध गये। 'ये आज राम का रूप धारण किये हुए हैं; किन्तु विचार कर देखा जाय, तो इन्हीं ने वामन का रूप धारण करके तीन पग भूमि माँगी थी और कृतघ्न हो बलि को बाँधा था। भला उसका फल, मनुष्य का जन्म लेने के पश्चात् मिले बिना कैसे रहेगा'—इस प्रकार के लोक-कथन के अनुकूल ही रामचन्द्र अपने द्वारा उत्पन्न माया से आप बँध गये।

माया के बंधनों में बँधे हुए राम सुध-बुध खोये-से पड़े रहे। यह देखकर देवता दिग्भ्रांत हुए और वानर खिन्न हुए। तब दुःखी सुग्रीव को देखकर विभीषण ने कहा—'हे सुग्रीव, ऐसे क्यों दुःखी हो रहे हो? चाहे कैसा भी व्यक्ति क्यों न हो, उसके जीवन में विपत्तियाँ तो आती ही हैं। यदि सूर्यवंशज नाग-पाश से बँधे हुए हैं, तो क्या हुआ?' यों कहकर उसने अपनी माया की दृष्टि से रावण के पुत्र को आकाश-वीथी में देखा और जल को अभिमन्त्रित करके उससे राम-लक्ष्मण की आँखों को पोंछकर, उन्हें मेघनाद को दिखाया। उसके बाद सुग्रीव ने तुरन्त एक विशाल पर्वत को उखाड़कर इंद्रजीत पर फेंका, किन्तु उसने उसे बीच में ही खंड-खंड कर दिया और तीव्र शर-वृष्टि से सुग्रीव को ऐसे त्रस्त एवं व्याकुल कर दिया कि सुग्रीव को समर में पीठ दिखानी पड़ी। जो राक्षस सुग्रीव के प्रताप से भयभीत थे, वे इसे देखकर बहुत हर्षित हुए। इंद्रजीत इस विजय से अत्यधिक मोद-मग्न हो, अपने सैनिकों के साथ लंका में वापस चला गया और रावण से कहने लगा—'मैंने सर्प-बाणों से कपियों का नाश किया और इक्ष्वाकु-वंशजों को व्याकुल कर दिया है।'

अपने पुत्र की वीरता पर मन-ही-मन हर्षित होते हुए रावण ने शीघ्र ही त्रिजटा को बुलाकर कहा—'राम को प्राप्त करने का दृढ़ विश्वास अपने मन में धारण किये रहने से भूमिसुता मेरा तिरस्कार कर रही है। आज इन्द्रजीत के हाथों में राम की जो दुर्गति हुई है, उसे सीता को दिखाओ। सीता को शीघ्र पुष्पक-विमान पर बैठाकर ले जाओ और राम की दशा दिखा लाओ, जिससे वह राम की आशा छोड़कर मुझे स्वीकार करे।'

४७. नाग-पाशबद्ध दाशरथियों को देख सीता का दुःखी होना

रावण की आज्ञा मानकर त्रिजटा दानवियों के साथ सीता को पुष्पक-विमान पर बैठाकर ले आई और युद्ध-क्षेत्र में गिरे हुए वानरों तथा राम-लक्ष्मणों को दिखाया। वह कमल-लोचनी उनकी दशा देखकर अत्यंत दुःखी होकर अविरत अश्रुधारा बहाती हुई विलाप करने लगी। वे कहने लगी—"हाय राम, आपकी धनुर्विद्या कहाँ लुप्त हो गई? आपमें ही [illegible] तथा हर आदि देवों को भी भयभीत करनेवाली आपकी बाण-शक्ति आज कैसे नष्ट हो गई? इस संसार में आप ही अकेले परशुराम की भी उपेक्षा करने की शक्ति रखते हैं। राम, [illegible] सभी मुनि तथा नाग, आपकी सहायता के लिए सतत तत्पर रहते हैं। नाग आज आपको बाँधनेवाले पाश बन गये हैं। सामुद्रिकों ने मुझे देखकर कहा था कि

तुम्हारे शरीर में सब प्रकार के शुभ चिह्न हैं; तुम्हारे चरणतलो में रेखाएँ तथा कमल है; इसलिए पति के साथ तुम्हारा राजतिलक होगा; तुम्हें योग्य पुत्र उत्पन्न होंगे और तुम चिरसुहागिन रहोगी। हे सूर्यवशतिलक, उनकी सभी बातें आज मिथ्या हो गईं। उन्होंने मुझे देखकर यह भी कहा था कि 'तुम्हारे (सीता के) चिकुर भ्रमर-समूह के समान नीले तथा सुदर हैं, कटि क्षीण है, एक दूसरे से मिलनेवाली टेढी भौहें हैं, बिजली की-सी कांति से युक्त दाँत हैं; विकृतिहीन स्थूल तथा वर्त्तुलाकार जाँघें हैं; हाय, ललाट, नेत्र, मुँह तथा चरण सुदर लक्षणो से समन्वित हैं, कातियुक्त तथा स्निग्ध नखो से युक्त सुदर अगुलियाँ हैं, वर्त्तुलाकार, विवर्द्धित तथा सूक्ष्म अग्रभाग से युक्त दो कुच हैं, स्निग्ध एवं विशाल वक्ष तथा पार्श्वभाग है, नाभि गभीर तथा सुदर है तथा तुम्हारा शरीर दिव्य तथा कमनीय काति से समन्वित है, अत तुम्हारे समान भाग्यशालिनी कोई नही है।' हे राजन्, मेरा वह भाग्य आज ऐसा फूट गया है ? आर्यों की यह उक्ति कि ऐसे षोड़श लक्षणो से सपन्न रमणी अत्यत भाग्यशालिनी होगी, आज मिथ्या साबित हुई। हे राजन्, यह सब मेरे दुर्भाग्य का फल है। आर्यों का कथन है कि जिस कन्या के, लाल कमल की-सी सुदर हथेलियाँ हो, पल्लव के समान अरुण कातिवाले चरण हो, क्षीण कटि हो, मदहास से युक्त मुख-कमल हो, वह चिर सौभाग्यवती होती है। यह कथन भी झूठ ही साबित हुआ। हे राजन्, मेरी साधना का यही परिणाम हुआ। मुझे चुराकर ले आनेवाले भयकर राक्षस की खोज करके मेरा पता आपने जान लिया, समुद्र को बाँधकर कपि-सेना के साथ इस पार चले भी आये, पर हाय, एक 'गोपद' में आप डूब गये ! हे राजन्, भयंकर याम्य शर, वरुणास्त्र, आग्नेयास्त्र तथा ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना आप भूल तो नही गये ? कोई भी शत्रु, आपके दृष्टि-पथ में पड़ जाने मात्र से वह प्राणो से हाथ धो बैठता था; अब आपकी ऐसी दशा हो गई है ! दैव-योग से ही ऐसा हुआ है, अन्यथा किसकी शक्ति है कि आपका सामना करे। यदि मेघनाद अपनी माया के बल से युद्ध में आपको ऐसे भयंकर पाशो से बाँध सका, तो स्पष्ट है कि विधि-विधान का अतिक्रमण करना किसी के लिए सभव नही है। हे नाथ, हे वीर, हे रामचन्द्र, मैं अपने लिए नही रोती; आपके लिए नही रोती; आपके लिए अपने प्राण त्यागनेवाले काकुत्स्थ-वशज लक्ष्मण के लिए भी मैं दुखी नहीं होती, मेरे दुःख को देख द्रवीभूत हृदय से शोक करनेवाली अपनी माँ के लिए भी दुखी नही होती; किन्तु सतत केवल आपका ही ध्यान अपने मन में धारण किये रहनेवाली माता कौसल्या के लिए विलाप करती हूँ। कब चौदह वर्ष समाप्त होंगे, कब राम अयोध्या में आयेंगे— ऐसी प्रतीक्षा करनेवाली आपकी माता की आशाएँ आज मिट्टी में मिल गईं।"

इस प्रकार, विलाप करनेवाली जानकी को सात्वना देते हुए अत्यंत दयार्द्र चित्त से त्रिजटा सीता से बोली—'हे कमल-लोचनी, राम पर कोई विपत्ति आ नही सकती। आप क्यो इस प्रकार शोक कर रही है ? यदि वानर-सेना ऐसी निर्बल है, तो वे इतना बडा कार्य-भार उठाते ही कैसे ? वहाँ देखिए; वानर, बडी सावधानी से आपके प्रभु की रक्षा कैसे कर रहे हैं ? हे भूपुत्री, आप निश्चिंत रहिए। यदि ऐसा नही होता (यदि राम पर कोई विपत्ति आनेवाली है), तो वह पुष्पक-विमान पृथ्वी पर गिरे बिना कैसे रहता ?

(क्योंकि, इसका गुण है कि यह विधवाओं का वाहन नहीं बनता), इसलिए आप राम के लिए विलाप मत कीजिए। मेरी बात का विश्वास कीजिए। हे कमलमुखी, सूर्यवंश-तिलक राम अवश्य ही लंकेश्वर का वध करके लंका पर विजय प्राप्त करेंगे और आपको ग्रहण करेंगे। हे कल्याणी, अब दुख मत कीजिए। मेरी बातों का विश्वास कीजिए।' तब सीता ने सोचा कि कदाचित् माया-सिर के समान यह भी कोई माया होगी और त्रिजटा की बातों पर विश्वास करके शांत हुई। इसके पश्चात् त्रिजटा ने उन्हें अशोक-वन में पहुँचा दिया।

४८. लक्ष्मण के लिए राम का विलाप करना

यहाँ मनुवंशतिलक राम की चेतना लौट आई। पार्श्व में पड़े हुए अपने अनुज को देखकर उमड़ते हुए शोक से वे कहने लगे—"हे सुग्रीव, मेरे अनुज की ओर देखो, उसकी कैसी दुर्गति हुई है। हम सीता को खो बैठे। उसे रावण के कारागार से मुक्त नहीं कर सके। अब मुझे इसे भी खोना पड़ रहा है। सौमित्र को खोने के पश्चात् अब मुझे सीता की ही क्या आवश्यकता है? अब मेरा जीवित रहना भी किस काम का? यत्न करूँ, तो सीता के समान दूसरी पत्नी को मैं कदाचित् प्राप्त कर सकूँगा। पृथ्वी पर पत्नियाँ मिल सकती हैं, पुत्र प्राप्त हो सकते हैं, बंधु-बांधव मिल सकते हैं, किन्तु सहोदर भाई नहीं मिल सकता। मैं इसे केवल भाई समझकर दुखी नहीं होता। यह महाबली सतत मेरी सेवा में तत्पर रहता है। यह कौसल्या तथा सुमित्रा, इन दोनों की एक-समान भक्ति करता है। सुमित्रा, इससे भी बढ़कर मुझसे स्नेह करती है। ऐसी पुत्र-वत्सला, माता सुमित्रा को आज मेरे कारण दुख भोगना पड़ रहा है। यदि मैं अयोध्या जाऊँ, तो भ्रातृ-वत्सल भरत तथा शत्रुघ्न पूछेंगे कि लक्ष्मण कहाँ है? वे क्यों नहीं आये? तो मैं अपने भाइयों से क्या कहूँगा? मुझे वन से अकेले आते हुए देखकर माताएँ पूछेंगी कि, हे पुत्र, सौमित्र क्यों नहीं आया है? हमारा मन व्याकुल हो रहा है। तो मैं उनका क्या प्रत्युत्तर दे सकूँगा? मैं कौन-सा मुँह लेकर उनको आश्वासन दूँगा। इस शरीर के साथ मैं वहाँ जाऊँगा भी कैसे? भले ही हिमाचल फट जाय, सूर्य पृथ्वी पर गिर पड़े, पानी स्थिर रह जाय, समुद्र सूख जाय, हवा की गति बंद हो जाय, अग्नि शीतल हो जाय, लक्ष्मण कभी मेरी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता। कभी इसने मुझसे अप्रिय बातें नहीं की। इसका चित्त मुझ पर एक निष्ठा से केंद्रित है। इसकी समता करनेवाला भाई और कहाँ मिल सकता है। यही मेरा प्राण है, और यही मेरा बंधु है। इसे छोड़कर मैं अकेले नहीं रह सकता। यह जहाँ जायगा, मैं भी वहीं जाऊँगा। यही मेरा संसार है। मैं अन्य कोई संसार नहीं चाहता। उस दिन सौमित्र मेरे साथ आया था, आज मैं सौमित्र के साथ जाऊँगा। हे पराक्रमी सुग्रीव, तुमने मेरे हित के लिए बहुत-से कार्य किये हैं। अब तुम वालि-पुत्र को लेकर वानर-सेना के साथ किष्किंधा को लौट जाओ। लक्ष्मण के साथ मेरे चले जाने के पश्चात्, रावण तुम्हें तंग करेगा। जयशील सौमित्र के बिना, मेरी विजय का भी वही मूल्य होगा, जो अंधे के लिए चंद्रोदय का मूल्य होता है। मेरे प्रति श्रद्धा रखने के कारण वायु-पुत्र ने कई अद्भुत कार्य किये हैं; उसने समुद्र लाँघकर जानकी को देखा और

अनेक राक्षसों का संहार किया। यह अंगद, यह सुषेण, ये धीमान् द्विविद, मैन्द, ये गवय, गवाक्ष, गज, ये शक्तिशाली नील, सपाति, केसरी आदि अन्य वानरो ने मेरे लिए महान् कार्य किये। आज हम पर जो विधि का प्रवल आघात हुआ है, उसे टालना किसी के लिए सभव नही है। लक्ष्मण ने युद्ध-भूमि में बहुत-से राक्षसो का तृणवत् संहार किया; पर इस समय शत्रु के तीव्र बाणो से बँधकर, आँखें वद किये हुए धूलि में लोट रहा है। श्रेष्ठ शय्या पर सोनेवाला आज युद्ध-भूमि में, शर-शय्या पर पडा हुआ है। विशाल रविकुल-रूपी समुद्र की ज्वार को शात करके लक्ष्मण-रूपी कुमुदप्रिय (चंद्र) अस्त हो गया है।"

४९. विभीषण तथा अंगद का वानरों को धैर्य देना

इस प्रकार, राम को विलाप करते हुए देखकर सभी वानर शोक-समुद्र में डूब गये उसी समय मेघनाद फिर से युद्ध करने के लिए आ पहुँचा। अजन-शैल के सदृश आकार-वाले उसे देखकर सभी वानर सुध-बुध खोकर संभ्रमित हो रहे। तब विभीषण हाथ में गदा लिये वानर-सेना के मध्य में घूमते हुए उनको धैर्य देने लगा। फिर उसने रवि-पुत्र सुग्रीव को देखकर कहा—'हे सुग्रीव, इस प्रकार तुम शोक क्यो कर रहे हो? यह युद्ध का समय है। यह समय शोक में डूबे रहने का नही है? दुर्निवार तरगो से पूर्ण समुद्र के मध्य फँसी हुई नाव के समान हमारी सेना कर्णधार-रहित हो गई है। अब हमारा कर्त्तव्य है कि हम युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जायँ।'

इसे सुनकर अंगद ने कहा—'तुम्हारा कथन सर्वथा उत्तम है। नाग-पाशो से बँधे हुए राजकुमार, पृथ्वी पर गिरे हुए हैं और क्षतो से अविरत बहनेवाली रक्त-धारा के कारण मूच्छित-से पडे है। तुम लोग इनकी रक्षा सावधानी से करते रहो। उदयाद्रि पर सूर्य का आगमन होने से पहले, मैं समस्त राक्षसो को जीतकर जानकी को यहाँ ले आऊँगा। हनुमान् आदि वानरो के साथ जाकर, लका के दुर्ग के द्वार, दीवार, तोरण आदि को अपनी मुष्टियो के प्रहार से चूर-चूर कर दूँगा। बधु-बाधवो के साथ दशकंधर को भस्म कर दूँगा। समस्त भूत-समूह आज मेरा पराक्रम, मेरा बाहुबल और राम के प्रति मेरी भक्ति देखेंगे। रघुनाथ का कार्य करने के लिए, चदन तथा केयूर से अलकृत मेरी भुजाएँ बड़े दर्प के साथ फडक रही है। रावण को जीतकर विभीषण को इस लका के सिंहासन पर प्रतिष्ठित करूँगा, ताकि रघुवीर प्रसन्न हो; अन्यथा मैं युद्ध में उस राक्षस के हाथो से मरकर लक्ष्मण के चरण-चिह्नों का अनुसरण करूँगा।'

तब सुग्रीव ने अंगद को देखकर कहा—'हे पुत्र, तुम अब इन दाशरथियो को शीघ्र किष्किधा ले जाओ। मैं इन्द्रजीत तथा रावण को समस्त राक्षसो के साथ मारकर रघुराम की पत्नी को शीघ्र वहाँ ले आऊँगा।' सुग्रीव को तथा रामचन्द्र को देखकर सभी वानर भयभीत हो शोक-समुद्र में डूब गये। तब सुषेण ने सबको देखकर कहा—'हे वानर-वीरो, इस नाग-पाश से मुक्त होने का मैं एक उपाय जानता हूँ। पूर्वकाल में देवताओ और असुरो के बीच भीषण सग्राम में सभी देवता इसी प्रकार नाग-पाशो से बँध गये थे। तब देवताओ ने दिव्य औषधियो से, इन बधनो से मुक्ति प्राप्त की। वे सभी औषधियाँ क्षीर-

सागर के उस पार द्रोण पर्वत पर मिलती है। हनुमान् को भेजो, तो वह अवश्य उन औषधियो को ले आयगा। तुम लोग दुख मत करो।

५०. नारद का आगमन

उसी समय परम योगीन्द्र, पर-तत्व-वेत्ता, परम पावन मूर्त्ति तथा परम-वैष्णव नारद मुनि वहाँ आये। सहस्र सूर्य-सदृश काति से युक्त उनकी देह पर कृष्ण-मृग-चर्म था। उस पर उनका पिंगल वर्ण जटा-समूह ऐसा शोभायमान था, जैसे काले-काले बादलो पर बिजली हो। उनके ललाट पर ऊर्द्ध्व-पुड्र था और वे कौपीन-विलसित दण्ड धारण किये हुए थे। उनकी वीणा से रमणीय नारायण-मत्र का अनुरणन हो रहा था। उन्होने अपने साथी योगीन्द्र-समूह को आकाश में ठहरा दिया और स्वय बड़े हर्ष से राम के निकट पहुँचकर बडे आदर के साथ हाथ जोडकर उनकी प्रदक्षिणा की और अत्यत भक्ति के साथ निवेदन किया—"हे देव, ब्रह्मादि देवताओ ने, क्षीर-सागर में शयन करनेवाले आपके समक्ष पहुँचकर रावण आदि राक्षसो के अत्याचारो के सबध में निवेदन किया, तो उन पर कृपा करके, उनकी रक्षा करने के निमित्त आप दशरथ के पुत्र होकर जन्मे। अत, आपका इस प्रकार दुखी होना उचित नही है। आपके नाम-मात्र का स्मरण करने से अज्ञान दूर हो जाता है। तब आपको अज्ञान छू भी कैसे सकता है? आप स्वयं विचार करके देखें। आप स्वय नारायण हैं; पूर्णज्ञान-निधि है, चारु-कौस्तुभ-रत्न विलसित वक्षवाले है, सतत लक्ष्मी के निवास-योग्य विशाल अगो से विलसित है, आदिदेव है, सर्वातर्यामी है, वेद-वेद्य हैं; विश्व-रूप हैं; स्मरण करनेवाले योगीश्वरो के ध्यान में दिखाई पडनेवाले सच्चिदानद-रूप हैं। यह पृथ्वी ही आपका चरण है, आकाश ही मस्तक है, ब्रह्मा आपका ललाट है, सूर्य-चद्र नेत्र है, पवन ही आपका श्वास है, अग्नि ही आपका मुँह है, सरस्वती जिह्वा है, वेद-राशि आपका दत-समूह है, गायत्री ही शिखा है, प्रणव ही हृदय है, दिशाएँ ही कान है, महनीय धर्म ही मन है, असख्य विजयो से सपन्न देवता ही आपकी बाहुएँ है, ब्राह्मण-समूह ही आपका उदर है; मित्र तथा वरुण आपकी जाँघें है, अश्विनी-देवता आपके जानु है, और समस्त विश्व आपका रोम-समूह है। हे पृथ्वी-नाथ, वह देखिए, सभी देवता, किन्नर, यक्ष, गधर्व आदि आपकी विजय की अभिलाषा करते हुए आकाश में खड़े है। आप अपना भ्रम छोड दीजिए, निष्कलक धीमान् बन जाइए और शीघ्र राक्षसो का सहार कीजिए। कदाचित् आप ससार को यह दिखाना चाहते है कि मानव मोहवश इच्छा-रूपी पाश से बँध जाय, तो वह इसी प्रकार ससार-सागर को पार नही कर सकता। अन्यथा हे श्रीराम, आप कैसे नाग-पाशो से बँधने लगे? आप आदिदेव है। आप अपने निज रूप का स्मरण कीजिए। आपका वाहन तथा आपके पताके का चिह्न गरुड यहाँ आयगा। उसके आते ही ये सभी नाग-पाश खुल जायँगे।" इतना कहकर नारद आशीर्वाद देकर क्षीर-सागर को चले गये।

५१. राघवों का नाग-पाश से मुक्त होना

नारद के वचनो को सुनकर राघव ने अपने आदिदेव होने की बात का विचार किया और गरुड़ का स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही गरुड़ क्षीर-सागर के उत्तर

तट पर से आकाश की ओर उछला। जिस वेग से वह उछला, उस वेग के कारण पृथ्वी के नीचे रहनेवाला आदिशेष चौंक पड़ा। उसके पंखों से उत्पन्न अत्यधिक वायु से आकाश आलोडित-सा हो गया और नक्षत्र गिरने लगे। पंखों की फड़फड़ाहट के कारण उत्पन्न ध्वनि से समस्त लोक भयाक्रांत-से हो गये और समस्त आकाश धूलि से व्याप्त हो गया। उसकी तीव्र गति के कारण शैल-शृंग लुढकने लगे और समुद्र आलोडित होने लगा। वह दस सहस्र सूर्यो की संयुक्त प्रभा के समान दीप्त हो रहा था और प्रभा-समन्वित पक्षों से युक्त मेरु पर्वत के समान दीख रहा था। इस प्रकार, आकाश-मार्ग से आनेवाले गरुड़ को देखकर राम-लक्ष्मण को आवद्ध किये हुए सभी नाग उन्हें छोड़कर चले गये। यथार्थ तो यह है कि जो कोई उस गरुड़ का स्मरण करता है, वह सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त हो जाता है। फिर, राम स्वयं भी यदि चाहते, तो वे अपने बंधनों को काट देने में समर्थ थे।

सुग्रीव आदि वानर आश्चर्य-चकित हो देखते रहे। गरुड़ ने राम की परिक्रमा की और राम-लक्ष्मण को बार-बार प्रणाम किया; अपने कांतियुक्त पक्षों को उन दोनों के शरीरों पर फेरा, और उनके समक्ष खड़े होकर, हाथ जोड़कर निवेदन किया—'हे देव आपके ये नाग-पाश-बंधन छूट गये। अब आप इन्द्र-वैरी रावण का संहार करके सीता को साथ लेकर अयोध्या लौट जाइए। हे राजन्, असुरों को दण्ड देते समय आप उनकी मायाओं से सावधान रहिए। उनकी किसी भी माया से धोखा मत खाइए।' इतना कहकर उसने फिर उनकी प्रदक्षिणा की, उनकी प्रशंसा करके, उन्हें आशीर्वाद दिया। फिर, कश्यप-पुत्र (गरुड़) ने उन्हें हृदय से लगाया, प्रणाम किया और शीघ्र क्षीर-सागर को रवाना हो गया।

नाग-पाशों से मुक्त होने से राम-लक्ष्मण प्रसन्नचित्त हुए। सभी वानर आनंद-सागर में निमग्न-से हो गये। वे सिंहनाद करते हुए तथा पूँछें हिलाते हुए नृत्य करने लगे। कुछ वानर हर्ष से उछल-कूद करते हुए, अट्टहास करते हुए, इधर-उधर दौड़ते हुए, पर्वतों और वृक्षों को फेंककर समस्त लंका का सर्वनाश करने की कल्पना करते हुए अत्यधिक हर्ष-नाद करने लगे। उनके कोलाहल से लंका हिल-सी गई, आकाश विदीर्ण-सा हो गया। इतने में सूर्योदय हुआ और रावण ने युद्ध-भूमि का वृत्तांत जानने के लिए अपने दूतों को भेजा।

दूतों ने दुर्ग की दीवारों पर से इक्ष्वाकु-वंशज राम-लक्ष्मण को नाग-पाश से मुक्त होकर बैठे देखा। उनकी सेवा में सुग्रीव बैठा था। विभीषण सविनय खड़ा था, और सारी कपि-सेना उनके समक्ष बड़ी भक्तियुक्त हो खड़ी थी। वे दोनों राज-पुत्र युद्ध के लिए अपनी सेना को उत्साहित कर रहे थे और देखने में विशृंखल मत्त गजों के समान लग रहे थे। जब दूतों ने यह दृश्य देखा, तब उन्होंने शीघ्र जाकर दनुजेश्वर से सारा समाचार कह सुनाया। यह सुनकर रावण खिन्न तथा आश्चर्य-चकित हुआ और मंत्रियों से कहा—'नाग-पाशों से मुक्त होने की क्षमता रखनेवाले राम-लक्ष्मण के द्वारा लंका का सर्वनाश निश्चित ही है। भला, कहीं नाग-पाश भी छूटते हैं? अब मेरी विजय की आशा नहीं है। राक्षस-लक्ष्मी अब इस युद्ध में नष्ट हो जायगी। कदाचित् गरुड़ ही आया हो, अन्यथा नाग-पाश कैसे छूटते? अवश्य ही गरुड़ ने मुझ पर विजय पाई है। नहीं तो नर और वानरों में इतनी शक्ति कहाँ है?'

५२. धूम्राक्ष का युद्ध

इस प्रकार कहने के पश्चात् उसने एक मत्त गज के हुंकार की भाँति लबी साँस छोड़ी और धूम्राक्ष को आज्ञा दी कि तुम एक विशाल सेना लेकर शीघ्र राम-लक्ष्मण पर आक्रमण करो। तब दैत्यपति को प्रणाम करके धूम्राक्ष युद्ध के लिए चल पड़ा। उसकी सेना भी चारो ओर से चली। भेड़ियो तथा सिंहो के मुखवाले फुर्तीले घोड़ो से युक्त उसका रथ, कर्ण-पुटो को विदीर्ण करनेवाली तथा दिशाओ को कंपित करनेवाली भयकर ध्वनि करता हुआ तथा अपनी अनुपम दीप्ति फैलाता हुआ निकल पड़ा। भेरी, शख, डका, आदि विविध वाद्यो का निनाद करते हुए युद्ध के लिए आनेवाले धूम्राक्ष को कई दुश्शकुन दिखाई दिये। तब रथ के आगे जानेवाले राक्षस भयकर गर्जन करके भयभीत हो निश्चेष्ट-से हो गये। इस पर भी बिना रुके बड़ी तत्परता दिखाते हुए धूम्राक्ष ने समुद्र के समान विशाल वानर-सेना पर आक्रमण किया। असुर तथा वानर आकाश का स्पर्श करनेवाले निनाद करते हुए आपस में जूझ गये। दानव खड्ग फेंकते थे, तो वानर उन पर वृक्षो का प्रहार करते थे। राक्षस भाले भोकते थे, तो वानर मुष्टियो से आघात करते थे। राक्षस हठ करके (वानरो पर) घोड़े दौड़ाते थे, तो वानर उन घोड़ो को अपने नखो से चीर डालते थे। दानव उन पर रथ चलाते थे, तो वानर उनको चूर-चूर कर देते थे। दानव मत्त गजो को उनसे टकराते थे, तो वानर क्रोध से उन्हें पृथ्वी पर पटक देते थे।

इस प्रकार, दोनो पक्षों के योद्धाओ में भयकर युद्ध होने लगा। वानर-वीर यम के सदृश भयकर आकार धारण करके असुरो को पैरो से कुचलकर, हाथियो को पृथ्वी पर रगड़कर मार डालते थे और उन्ही (मृत) हाथियो को असुरों पर फेंककर उनका दर्प-दलन कर देते थे। फिर, रथो के कूबर पकड़कर उन्हें (रथों को) आकाश में तेजी से घुमाकर पृथ्वी पर पटक देते थे और उन्ही टूटे हुए रथो को उठाकर राक्षसों पर फेंककर उनको पृथ्वी पर गिरा देते थे। फिर, वानर घोड़ो के पैरों को पकड़कर ऊपर उठाते और उन्हें पृथ्वी पर पटककर मार डालते, और उन्ही मरे हुए घोड़ों को राक्षसों पर फेंककर उन्हें मार डालते थे। शत्रु के पदचर सैनिको पर पद-प्रहार करके उनकी पसलियो को चूर-चूर करके मार डालते थे और उनके शवो को राक्षस-सेना पर फेंककर उन्हें नीचे गिरा देते थे। वे राक्षस-सेना में घुस जाते और अपने भयकर दाँतो से राक्षस-समूह को काटकर उन्हें तितर-बितर कर देते, उनके अस्त्रो को तोड़ देते, कुहनियो से उनके मुखो पर प्रहार करते, नीचे गिराते और उनके गले घोट देते। फिर, उनके पैरो को दबाकर अपने टखनो से ऐसा प्रहार करते कि उनकी पसलियाँ चूर-चूर हो जाती। फिर, वे कुछ राक्षसो के कठ में अपनी पूँछो को फदे की तरह डाल देते और उन्हें इस प्रकार कस देते कि बेचारे राक्षसो की पुतलियाँ घूम जाती और वे जहाँ के तहाँ ढेर हो जाते। इस प्रकार, सारी युद्ध-भूमि राक्षसो के शवो से ऐसी पट गई कि पता नही लगता था कि यह सिर है, यह आँख है, यह मुँह है, यह कान है, यह नाक है, यह कधा है, ये हाथ हैं, यह शरीर है, यह कमर है, यह जाँघ है, यह घुटना है और यह पैर हैं। मज्जा, मास, मेदा, रक्त, आँतें, हड्डियाँ, चर्म तथा खोपड़ियो के तो ढेर ही लग गये थे।

तब धूम्राक्ष ने बड़े उपेक्षा-भाव से उस कपि-सेना पर आक्रमण किया और अपने प्रताप का प्रदर्शन करते हुए मुद्गरो के प्रहारो से वानरो के सिर विदीर्ण करते हुए, क्रोध से भाले चलाते हुए, विविध अस्त्रो से भयकर युद्ध करने लगा। उसके भयकर प्रहारो से कई वानर-सैनिक रक्त उगलते हुए गिर पडे। कुछ धैर्य खोकर, उसके प्रहारो से अपने को बचाकर भागने लगे। यह देखकर हनुमान् ने बडे क्रोध से एक विशाल पर्वत उस राक्षस पर फेंका; लेकिन उसने अपनी गदा से उस पर्वत को रोककर अपने को बचा लिया; किन्तु वह पर्वत उसके रथ पर गिरा और रथ चूर-चूर हो गया। तब पवन-कुमार ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए तरु, शैल तथा पाषाणो के प्रहारो मे राक्षसो के सिर ऐसे चूर-चूर करने लगा, जैसे यम समस्त ब्रह्माण्ड को विदीर्ण करके चूर-चूर करता हो। फिर, वह सिंह-सदृश पराक्रमी हनुमान् एक पर्वत-शृग को उठाकर धूम्राक्ष की ओर बढा। तब उसने 'लो, अब मरो' कहते हुए अपनी गदा हनुमान् के सिर पर चलाई। किन्तु, हनुमान् ने उस धूम्राक्ष की शक्ति, शौर्य, क्रोध तथा साहस की उपेक्षा करते हुए, भयकर गर्जन करके अपने हाथ के उस शैल-शृग को धूम्राक्ष पर ऐसा फेंका कि उस राक्षस के सिर के दो टुकडे हो गये और वह ढेर होकर वही गिर गया। उस समय चारो ओर ऐसी ध्वनि फैल गई, मानो वज्रपात होने से कई पहाड गिर रहे हो। धूम्राक्ष को इस प्रकार मरे हुए देखकर हतशेष कुटिल राक्षस पवन-पुत्र के प्रताप से भयभीत हो उठे और शीघ्र ही लका की ओर भागने लगे। उनके भागते समय पृथ्वी भी कांपने लगी।

५३. अकंपन का युद्ध

धूम्राक्ष की मृत्यु का समाचार सुनकर रावण का हृदय क्रोध से जलने लगा। तब उसने देवताओ को कपित करने की क्षमता रखनेवाले, दिव्यास्त्र शस्त्रो से संपन्न तथा दिव्य रथ से विलसित अकपन नामक राक्षस को, एक बड़ी सेना के साथ वानरो से युद्ध करने के लिए भेजा। प्रलय-काल के मेघ के समान आकारवाला वह राक्षस अपने आभूषणो की दीप्ति तथा मणियो की काति से सूर्य-मडल के समान देदीप्यमान होते हुए स्वर्ण-रथ पर चढकर युद्ध के लिए चल पडा। उसके रथ की पताका ऐसे फहरने लगी, मानो कह रही हो कि लो, अब अकपन युद्ध करने आ गया है। राक्षस-वीरो के भयकर हुकारो तथा भेरी, पटह आदि के निनादो के मध्य, अपने साथ असख्य चतुरगिणी सेना लिये हुए गगन को भी भेदनेवाले भयकर गर्जन करते हुए, उसने वानर-सेना पर आक्रमण किया। दोनो पक्षो की सेनाएँ आपस में भिड़ गई और बड़ी भयकर गति से युद्ध करने लगी। उस घोर सग्राम के कारण उत्पन्न लाल धूलि सभी दिशाओ तथा आकाश में व्याप्त हो गईं और कपि-सेना तथा असुर-सेना के बीच अंधकार-सा छा गया।

उस समय कुछ सैनिक तो अपने पक्ष के लोगो को पहचान कर युद्ध करते थे। कुछ उनकी बोली तथा चेष्टाओ से उन्हें पराया समझकर युद्ध करते थे और कुछ तो किसी प्रकार का विचार किये बिना, जो कोई भी सामने पड जाता, उससे भयकर गति से युद्ध करते जाते थे। वानरो के द्वारा फेंके जानेवाले वृक्ष तथा पर्वत एव दैत्यो के द्वारा चलाये जानेवाले भयकर शस्त्र चारो ओर फैलकर धूलि-रूपी तिमिर समुद्र में जलचरो के

समान दीखते थे । राक्षसो तथा वानरो के बड़े उत्साह से युद्ध करते समय, सैनिको के शरीरो से उमडनेवाली रक्त-धाराओ के कारण सारी पृथ्वी की धूलि सिंच गई । युद्ध में वानरो का युद्ध, दुस्सह होते देखकर अकपन अग्नि के समान क्रुद्ध हुआ । तब धनुष पर प्रत्यचा चढाकर बड़े उत्साह से उस महाबली ने अपने सारथी से कहा—'वानर-सेना वृक्षो तथा पर्वतो की सहायता से राक्षस-समूह को नष्ट कर रही है । शीघ्र ही मेरा रथ उनकी ओर ले चलो ।'

उसका सारथी रथ को उसी ओर ले गया । अकपन ने उस वानर-सेना पर अपने तीक्ष्ण बाणो की वृष्टि-सी कर दी, तो सभी वानर धैर्य खोकर निश्चेष्ट-से हो गये । तब हनुमान् ने बडे साहस के साथ उस राक्षस का सामना किया । तब उसके साथ वानरो ने भी दानव-सेना पर आक्रमण किया । अकपन अपनी अद्वितीय वीरता का परिचय देते हुए, भयंकर गर्जन-रूपी निर्घोष करते हुए, मेरु पर्वत के समान आकारवाले पवन-पुत्र पर प्रलय-काल के मेघ की भाँति शर-वृष्टि करने लगा । किन्तु हनुमान् ने उनकी उपेक्षा करके अट्टहास किया और प्रलय-काल के रुद्र के समान अपनी क्रुद्ध दृष्टियो से रौद्र रस उगलते हुए, निर्भय हो एक विशाल पर्वत को समूल उखाडकर उसे अकपन पर ऐसा फेंका, जैसे इन्द्र ने नमुचि पर वज्र गिरा दिया था; पर उस दानव ने उस पहाड को अर्द्ध-चन्द्रास्त्र से चूर-चूर कर दिया । तब हनुमान् और भी उद्धत हो, अपनी महनीय शक्ति को प्रकट करते हुए तथा आँखो से स्फुलिगो को गिराते हुए शीघ्रता से एक दूसरा पर्वत उखाडकर ले आया और भयकर गर्जन करके उसे बडी क्रूरता से उस राक्षस पर फेंका । किन्तु, राक्षस ने शीघ्र ही उस पर्वत के टुकडे-टुकडे कर दिये । इस पर मारुति और भी क्रुद्ध हो उठा और बडे वेग से एक पर्वताकार वृक्ष को उखाड़ा और अपने पैरो के आघात से पृथ्वी को कँपाते हुए स्फुलिगो से युक्त आँखो से उस वृक्ष को घुमाकर अन्य वृक्षो को तोडते हुए दैत्य-समूह पर पिल पड़ा । उसने रथिको को मार डाला, रथो तथा उसके अश्वो को मिट्टी में मिला दिया, तथा राक्षसो का सहार कर दिया । फिर हाथियो के समूह पर आक्रमण करके, उनके दाँतो, हड्डियो, उनके कुंभो पर बैठे महावतो, उनके अकुशो, उनकी घटियो तथा आभूषणो आदि को चूर-चूर करके एक पिंड-जैसा बना दिया और कुछ हाथियो को चूर-चूर करके मिट्टी में मिला दिया । उसके पश्चात् उसने घुडसवारो के साथ घोडो को मार डाला और पदचर सेना को दल दिया । यम के समान अत्यधिक भयकर गति से युद्ध करनेवाले हनुमान् को देखकर अकपन मन-ही-मन बहुत क्रुद्ध हुआ । उसने एक साथ चौदह तीव्र बाणो को चलाकर (हनुमान् के) हाथ में रहनेवाले अश्वकर्ण वृक्ष के टुकडे-टुकडे कर दिये और अत्यंत हर्ष से सिंहनाद किया । हनुमान् के शरीर से रक्त-धाराएँ छूटने लगीं और तब वह पुष्पित अशोक के समान दीखने लगा । फिर, हनुमान् ने सहज ही एक और वृक्ष को उखाड लिया और उससे अकंपन के सिर पर प्रहार किया । उस राक्षस का सिर विदीर्ण हो गया और उसने एक पर्वत के समान पृथ्वी पर गिरकर अपने प्राण छोड़ दिये । उसके गिरते ही वानरो के तीक्ष्ण प्रहारो को सहना असभव जानकर तथा हनुमान् को समक्ष देखकर, सभी राक्षस-वीर भयभीत हो गये और प्राण लेकर लका की हनुमान् के साहस की प्रशसा करने लगे ।
ओर भाग गये । सभी वानर-वीर

५४. महाकाय का युद्ध

शत्रुओ के हाथ में अकंपन को मरा हुआ जानकर दशकंठ बहुत खिन्न हुआ और उसने महाकाय को बुलाकर कहा—'अपने शौर्य को प्रकट करते हुए नरो तथा वानरो का सहार करो।' तब वह पराक्रमी शीघ्र युद्ध की सज्जा से सज्जित हो, रमणीय मयूर-ध्वजा से अलकृत, मणियो की प्रभा से विलसित शस्त्रास्त्रो से परिपूर्ण तथा पिशाच-मुखवाले गधे जुते हुए रथ पर बैठकर, दक्षिण द्वार से बड़े वेग के साथ निकला। उसके साथ ही विविध शस्त्रास्त्रो से युक्त उसकी सेना, भेरी, डका तथा तुरहियो का गंभीर शब्द करती हुई चलने लगी। उस समय उनपर हड्डियो की वर्षा हुई, बिजलियाँ गिरी; छत्र तथा ध्वजाएँ टूटकर गिर पड़ी। किन्तु, महाकाय इन अपशकुनो की उपेक्षा करते हुए आगे बढा और बड़ी क्रूरता से वानर-सेना पर आक्रमण किया। तब वानर भी उन पर तरु-शैल-समूह की वर्षा करते हुए उनसे भिड़ गये।

दानव उस वानर-सेना पर अपना पराक्रम दिखाने लगे। उन्होने अत्यत चचल गति से कपि-सेना के मध्य रथ चलाये, गज-समूह को वानर-सेना से टकरा दिया, अश्वो को उनके ऊपर चलाया और पदाति-सेना उनपर टूट पड़ी। फिर, उन्होने वानर-सैनिकों को अपने करवालो से काटते हुए गदा के प्रहारो से उन्हें व्याकुल करते हुए, भालो से बेधते हुए, शूलो से चीरते हुए, लाठियो से पीटते हुए, बरछियो से भोकते हुए, शरवृष्टि करते हुए, चक्रो को चलाते हुए, परशुओ से काटते हुए अत्यंत क्रोध के साथ अपने मुद्गरों के प्रहार से वानरो को दण्ड देने लगे। इधर वानर भी उन वीर राक्षसो पर शैल-वृक्षो की वर्षा करने लगे। उस घोर युद्ध के कारण धूलि उड़कर रवि-मडल तक व्याप्त हो गई। उस धूलि के कारण अविरत युद्ध करनेवाली दोनो पक्षो की सेनाएँ एक दूसरे को नही देख पाती थी। भयकर राक्षस लगातार अपने ऊपर गिरनेवाले तरु-शैलो को लक्ष्य करके असख्य बाण चलाकर आकाश को ढक देते थे। वानर-वीर राक्षसो के चलाये हुए शस्त्र, बाण तथा लाठियो को अपनी ओर आते देखकर उनको लक्ष्य करके, पर्वतों तथा वृक्षों को फेंकते थे। युद्ध-भूमि में उड़नेवाली धूलि उनके कर्णपुटो में भी भर गई थी और उनको इसका पता नही चलता था कि कौन राक्षस है, और कौन वानर है। जो कोई उनके समक्ष पड़ जाता था, वे उस पर प्रहार करके उसको मार डालते थे। दनुजो के शरीर मे बहनेवाले रक्त, नदियो के समान बहकर धूलि को भिगो देता था। धूलि-जनित अंधकार के व्याप्त रहने पर भी दानवो को अपने दीप्त तेज से युद्ध करते देखकर, देवता भी आश्चर्य-चकित हो गये। तब दैत्यो के प्रताप से नष्ट-भ्रष्ट हो वानर भयभीत हो गये और युद्ध-भूमि से भागने लगे।

उन्हें भागते हुए देखकर अगद ने कहा—'हे कपियो, मेरे रहते हुए तुम ऐसे क्यों भागे जा रहे हो?' इस प्रकार के उत्साहपूर्ण वचनो से अंगद ने उनको धैर्य देकर फिर उन्हें युद्ध में प्रवृत्त किया। वह स्वयं एक महापर्वत को उठाकर राक्षस-सेना पर आक्रमण करने लगा। उसके पीछे भयकर गर्जन करते हुए वानर-वीर भी चल पड़े। अंगद ने क्रुद्ध होकर पर्वतो तथा वृक्षो को राक्षसो की सेना पर फेंका। वह बायें हाथ से राक्षसो को

नीचे गिराकर उन पर मुष्टियो से प्रहार करता, हाथो से पीटता, कुहनियो से उनके मुँह पर प्रहार करके फोड देता और उनके शस्त्रास्त्रो को चूर-चूर कर देता । अगद के सामने क्रूर राक्षस टिक न सके । वे विवश हो चारो दिशाओ में भागने लगे ।

५५. अंगद के द्वारा महाकाय का संहार

इस प्रकार, भागनेवाले राक्षसो को मतिमान् रुधिराशन, वज्रनाभ, कालदष्ट्र, कालकल्प, वपाश, शतमाय, धूम्र तथा दुर्धर नामक महाकाय के प्रख्यात मत्रियो ने रोका, और अपने समस्त पराक्रम को प्रकट करते हुए वानर-सेना को पीडित करने लगे । यह देखकर पनस, मेघपुष्पक, गवाक्ष, ऋषभ, गज, क्रोधन, शतवली तथा तार नामक श्रेष्ठ वानर उन राक्षस-वीरो के सम्मुख आकर युद्ध करने लगे । उस समय रुधिराशन ने क्रोधोन्मत्त हो गवाक्ष पर असंख्य वाण चलाये, तो गवाक्ष ने वडे वेग से वृक्ष तथा पर्वतो को उस पर फेंका; पर रुधिराशन ने उन्हें बीच में ही चूर-चूर कर दिया और गवाक्ष पर ऐसा प्रहार किया कि गवाक्ष मूच्छित होकर गिर पड़ा। गवाक्ष को मूच्छित होते देखकर तार ने क्रोध से एक विशाल साल-वृक्ष को उखाडकर रुधिराशन के रथ पर फेंका । किन्तु, रुधिराशन ने उस वृक्ष को बीच में ही चूर-चूर करके दस वाण चलाकर तार को गिरा दिया। उसके पश्चात् वह प्रलय-काल के यम के समान वडा ही उग्र रूप धारण करके कपि-सेना पर टूट पडा। इतने में गवाक्ष तथा तार सचेत हुए और चारो ओर दृष्टि दौड़ाकर देखा । फिर, गवाक्ष ने यम के समान भयकर रूप धारण करके एक गदा से रुधिराशन के सिर पर प्रहार किया, तो वह राक्षस विकृताग होकर पृथ्वी पर गिर पडा और उसके प्राण शरीर को छोड़कर उड़ गये ।

वज्रनाभ नामक राक्षस उद्धत होकर पृथु पर कई वाण चलाये, तो पृथु ने उस राक्षस पर एक पर्वत फेंका, किन्तु उस राक्षस ने उसके दस टुकडे कर दिये। तब क्रोधोन्मत्त हो पृथु ने वडे वेग से उसके रथ पर आक्रमण किया, उसके धनुष को खडित किया, घोडो को मार डाला, रथ को चूर-चूर कर दिया और अपने अनुपम वाहु-बल से उसकी टाँगें पकड़कर उसे ऊपर उठाया और वडे वेग से उसे घुमाकर पृथ्वी पर पटककर सिंह-गर्जन किया ।

इसके पश्चात् कालदष्ट्र ने ऋषभ पर अपने उद्दण्ड मत्त गज को चलाया। सामने से आनेवाले उस हाथी के मार्ग से विचलित न होकर ऋषभ आकाश की ओर उछला, और एक साथ दोनो पैरो से उस हाथी के कुभ-स्थल पर प्रहार किया, तो वह हाथी चिंघाडता हुआ बहुत दूर पीछे हट गया । किन्तु, ऋषभ ने इससे सतुष्ट नही होकर, उसका पीछा किया और उसके दाँतो को उखाडकर उसी से उस पर प्रहार करके उसे मार डाला। फिर, अपना शौर्य प्रकट करते हुए उसने कालदष्ट्र की टाँगो को पकडकर उसे नीचे पटक दिया और उसका वध कर दिया । असुरो की सेना में हाहाकार मच गया और वानर-सेना दर्प से हुकार करने लगी । तब कालकल्प ने पनस से भिडकर उस पर अग्निकल्प-वाण चलाया, तो पनस कालकल्प के रथ पर कूद गया और पहले उसके अश्वो को कुचल दिया, फिर पदाघात से सारथी को गिराकर रथ को चूर-चूर कर दिया । उसके पश्चात् उसने

उस राक्षस के जबड़े पर ऐसा घूसा मारा कि वह राक्षस छटपटाकर गिर पड़ा, उसके दाँत टूट गये और रक्त उगलते हुए वह मर गया। सभी राक्षस आश्चर्य-चकित हो गये।

इसके पश्चात् वपाश नामक राक्षस ने कपियो पर आक्रमण किया और उनको जर्जरित करने लगा। तब गज ने उस पर ऐसी बाण-वृष्टि की कि सारा आकाश बाणों से आच्छादित हो गया। किन्तु, वपाश ने उन सब बाणो को बीच में ही काट डाला और गज का वध करने के लिए अग्नि-सम सात बाण उस पर चलाये और इससे संतुष्ट न होकर फिर उस पर पच्चीस बाण चलाये और उसके पश्चात् एक सौ ऐसे बाण चलाये, जो उसके शरीर को पार कर गये। उन बाणो से गज अत्यधिक पीडित हुआ और वपाश के रथ को चूर-चूर करते हुए उस पर आक्रमण किया और गरुड पक्षी जिस प्रकार किसी कंगूरे को नीचे गिरा देता है, वैसे ही उसका सिर धड़ से नीचे गिरा दिया। इस पर क्रुद्ध होकर धूम्र तथा दुर्धर नामक राक्षसो ने भयकर अस्त्रो के प्रयोग से वानरो को पीडित करते हुए उनके पैर उखाड़ दिये। तब क्रोधन तथा मेघपुष्प नामक वीर वानरो ने उनके रथो पर कूदकर अपने करतलो से उनके मस्तक पर प्रहार किया और युद्ध करके उन्हें मार डाला। उनको आहत देखकर सभी राक्षस भयभीत हो तुरत भाग खड़े हुए।

इस प्रकार राक्षसो को भागते हुए देखकर शतमाय अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए गज से भिड गया। तब गज ने एक लट्ठ लेकर उसका सामना किया। इतने में बड़े वेग से ऋषभ, शतवली, पनस, गवाक्ष तथा अंगद एक साथ उस पर वृक्षो तथा पर्वतो की अविरत वृष्टि करने लगे; किन्तु शतमाय ने शर, तोमर, भाले, चक्र, गदा, खड्ग आदि श्रेष्ठ शस्त्रो की वर्षा करके वीरो को क्रूर गति से त्रस्त कर दिया। उसके हाथो से यो पीडित होकर वानर-नायक रोषोद्दीप्त हो शतमाय पर पिल पडे। गवाक्ष ने उसके रथ के घोड़ो को मार डाला, अगद ने उसका झंडा काट डाला, पनस ने उसके रथ को पैरो तले कुचल डाला, ऋषभ ने सारथी को मार डाला और नल ने उसके शस्त्रास्त्रो को काट डाला और शतवली ने अपनी मुष्टियो से उस पर प्रहार किया। किन्तु, शतमाय ने उन मुष्टि के आघातो की उपेक्षा करके तलवार और ढाल लेकर गरुड़ के समान बड़े लाघव से आकाश की ओर उछला। तब बड़ी तत्परता के साथ (युद्ध-भूमि में) पडे हुए खड्ग, ढाल आदि लेकर शतवली भी उसके पीछे आकाश की ओर उछला। आकाश में वे दोनो भेरुंड पक्षियो (दो सिरवाले पक्षी) के समान एक दूसरे पर वार करने लगे। वे कभी पैंतरें बदलते, कभी निकट आते, फिर शीघ्र ही दूर हट जाते; कभी गिरते तो कभी उठते और एक दूसरे को गिराने की चेष्टा करते हुए लडने लगे। तब शतमाय ने अपने खड्ग को चमकाकर शतवली के विशाल वक्ष पर प्रहार किया; किन्तु शतवली ने अपनी ढाल को आगे करके उस वार से अपने को बचा लिया और अपने तीक्ष्ण कृपाण से शतमाय की जाँघो को काट डाला, तो वह राक्षस सिर के बल पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसका सिर पर्वत-शिखर के समान छिन्न-भिन्न होकर छितरा गया। शतमाय की मृत्यु को देखकर शतवली के साथ सभी वानरो ने हर्ष का गभीर निनाद किया।

तब महानाद ने अपने धनुष के टकार से पृथ्वी तथा आकाश को कँपाते हुए अपना रथ अंगद की ओर दौडाया और अगद पर तीन पैने वाण चलाये। तब कपिराज अगद बड़े क्रोध से उससे भिड गया और एक योजनाकार पर्वत को उसके रथ पर फेंका। किन्तु, उस राक्षस ने बडे वेग से अपनी गदा से उस पर्वत को बीच में ही चूर-चूर कर दिया। तब वालि-पुत्र क्रुद्ध होकर सहज ही उसके रथ पर कूद गया और अपनी अनुपम शक्ति से उसका धनुष तोड डाला, उसे रथ पर गिराकर उसके वक्ष को ऐसे दबाया कि उसकी आँखें निकल आईं और वह हाँफने लगा। फिर, अगद ने उसके कंठ को मरोडकर उसे काट डाला और रक्त-सिक्त मुंड को पृथ्वी पर गिरा दिया।

अपने अनुज को मृत देखकर महाकाय अपार शोक से पीडित हो, भयकर ध्वनि से हाहाकार करते हुए, अपनी काति-किरणो को चारो ओर विकीर्ण करनेवाले अपने महान् रथ पर बैठे उद्धत सिंह के समान झूमते हुए निकला। उसने क्रूर बाण चलाते हुए वानरो पर आक्रमण किया और कई वानरो को पृथ्वी पर गिरा दिया। उसके समक्ष खड़े रहने में असमर्थ हो वानर-सेना हनुमान् की ओट में चली गई। तब महाकाय ने अपने सारथी से कहा—'अब मेरे समक्ष खडे होकर युद्ध करने की क्षमता रखनेवाला कोई नही है। तुम रथ को सीधे राम के निकट ले चलो।' तब उसने घोडो के रास ढीले किये और वेग से रथ को राम की ओर चलाया। रथ की क्रूर गति के समक्ष खडे होने में असमर्थ हो वानर-सेना भागने लगी। तब महाकाय ऊँचे स्वर में कहने लगा—'हे वानरो, तुम क्यो भयभीत हो रहे हो ? मेरा क्रोध केवल उस राजकुमार पर है, जिसने शिव-धनुष का भग करके सीता के साथ विवाह किया है। जिसने परशुराम का गर्व-भग किया है, वही मेरे जोड का है, अन्य कोई नही। जिसने युद्ध में खर का वध किया था, उसी पर मेरा वाण चलेगा, दूसरो पर नही। जिसने अपने वाण के अग्र भाग के समक्ष समुद्र को आने के लिए विवश किया था, केवल उसीसे मै युद्ध करूँगा, दूसरो से नही। मै त्रिभुवन को अपने शौर्य से दीप्त करनेवाले, कैलास पर्वत को उठानेवाले रावण का पुत्र हूँ, इन्द्रजीत का भाई हूँ, मेरा नाम महाकाय है। मै अब युद्ध करने के निमित्त आया हूँ।'

तब अगद ने अत्यत क्रुद्ध होकर कहा—'हे महाकाय, युद्ध-भूमि में ऐसा प्रलाप क्यो कर रहे हो ? तुम्हारे पिता ने कैलास पर्वत को उठाया था, इसलिए हम दोनो में युद्ध होना उचित है। इसके लिए न राम की आवश्यकता है, न अन्य कपि-वीरो की। इतना कहकर उसने एक विशाल वृक्ष से उस पर प्रहार किया, तो महाकाय ने अपने दारुण शरो से अगद का शरीर ढक-सा दिया। इसके पश्चात् महाकाय ने बडे क्रोध से अगद पर अपनी गदा से प्रहार किया, तो अगद विवश होकर गिर पडा। उसको गिरते हुए देखकर सभी दैत्यो ने समस्त पृथ्वी को विदीर्ण करते हुए सिंहनाद किया और सभी वानर-वीरो ने एक साथ महाकाय पर आक्रमण किया और उस पर शिलाओ तथा वृक्षो को फेंकने लगे; किन्तु महाकाय ने अपने वाणो से उन शिलाओ तथा वृक्षो को खडित कर दिया। फिर, उसने गवाक्ष पर दस बाण, पृथु पर पाँच वाण, महावली गज पर सौ वाण, शतवली पर तीस वाण, ऋषभ पर अस्सी वाण, क्रोधन और मेघपुष्पक पर साठ वाण चलाकर इनका दर्प-दलन किया।

इतने में मूर्च्छित अंगद ने आँखें खोली। अपने मुँह से बहनेवाले रक्त को वार-वार पोछते हुए, एक विशाल गदा लिये हुए वह उस महाकाय के रथ पर कूद पडा और अपनी उद्दण्ड शक्ति को प्रकट करते हुए उसके सारथी को मार डाला। फिर, उसके धनुष के खड-खड कर दिये, सभी अश्वो को मार गिराया और उसके पश्चात् उस राक्षस-वीर पर गदा का ऐसा प्रहार किया कि महाकाय का मुकुट पृथ्वी पर लोटने लगा। तव महाकाय भी रथ से नीचे उतरकर भयंकर गदा से अंगद पर प्रहार किया; किन्तु अंगद ने प्रतिघात किया। महाकाय ने अगद का वार वचाकर उद्धत गति से अंगद के सिर पर गदा-दड से प्रहार किया। उस प्रहार के कारण अगद के सिर से रक्त फूट निकला। किन्तु, अगद ने विना धैर्य खोये, अपनी गदा से महाकाय पर ऐसा प्रकार किया कि महाकाय का सिर फूट गया। तव भी महाकाय ने भयकर आघात करके उसे रक्त की वाढ़ में ऐसा डुवोया, मानो उसने सोच लिया कि इसके पिता ने मेरे पिता को एक सहस्र वार समुद्र में डुवोया था और उसका प्रतिशोध मुझे लेना चाहिए। इस प्रकार, इन्द्र का पोता तथा महाकाय दोनो भयकर युद्ध करते हुए रक्त-सिक्त होकर ऐसे दीखने लगे, मानो रक्त-वर्ण की नदियो से विलसित दो महापर्वत हो। दोनो की गदाओ के आपस में टकराकर छिन्न-भिन्न होने से, वे दोनो वीर इस प्रकार मल्लयुद्ध करने लगे, जैसे पूर्वकाल में इन्द्र तथा वल नामक राक्षस ने आपस में द्वद्व-युद्ध किया था। उनके पदाघात से धूलि उड़-उडकर आकाश में व्याप्त हो गई। वे वालि-सुग्रीव के द्वद्व-युद्ध का स्मरण दिलाते हुए परस्पर ऐसे भिड गये थे कि मालूम नही होता था कि यह वानर है, और यह राक्षस है।

तव सभी वानर अगद को उत्साह देते हुए कहने लगे—'हे वीर, इस दुष्ट राक्षस की उपेक्षा क्यो करते हो ? तुम वालि के पुत्र हो। वालि के समान तुम्हारा वाहुवल भी श्रेष्ठ है। जव वालि ने दुदुभी से युद्ध किया था, तव उसने दुदुभी को इतनी देर तक ठहरने नही दिया था। तुम अपने पराक्रम का प्रदर्शन करके इस देवताओ के शत्रु का सहार शीघ्र कर डालो।' इस प्रकार, जव वानरो ने उत्साहवर्द्धक जय-निनाद किया, तव अगद ने उस राक्षस पर अपनी मुष्टि से तीव्र प्रहार किया। वह उस आघात से चकराकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। पृथ्वी पर गिरे हुए उस राक्षस के वक्ष को पैरो से दवाकर अंगद ने उसका कठ मरोड़कर सिर को धड से अलग कर दिया और उसे ऊपर उछालकर विजय-गर्जन किया। अगद को देखकर सभी वानरो ने विपुल हर्ष-नाद किया। यह देखकर सभी दानव तितर-वितर हो गये। कुछ समुद्र में कूद पड़े, कुछ लंका में घुस गये और शेष राक्षस चारो दिशाओ में भाग गये। सभी वानरो ने अगद की प्रशसा की और उसे सीता-पति के समक्ष ले जाकर सारा वृत्तात उन्हें कह सुनाया। रघुपति यह समाचार सुनकर अत्यत प्रसन्न हुए और वडे हर्ष से हृदय से लगाकर और कृपा-पूर्ण दृष्टि से देखकर मदहास करने लगे।

हतशेष राक्षसों ने जव यह वृत्तात रावण को सुनाया, तव राक्षस-कुलाधीश ने वड़ी प्रीति से मृत महाकाय का स्मरण किया। वह दु:ख से, आँखो में आँसू भरे, सिर झुकाये खड़ा रहा और फिर सभ्रमचित्त से अत पुर में चला गया। रात-भर चिंता में निमग्न

रहने से वह सो भी नही सका । प्रातःकाल होते ही वह अपने सामन्तो के साथ, अपने उज्ज्वल रथ पर बैठकर अतःपुर से निकला और दुर्ग के स्तूप पर चढकर अपने विशाल दुर्ग को ध्यान से देखा । फिर, वहाँ के सैनिको के शिविरो का निरीक्षण किया और दुर्ग की रक्षा के लिए और अधिक सैनिको को नियुक्त किया । उसके पश्चात् रावण ने प्रहस्त से कहा—'यह प्रसिद्ध दुर्ग अभेद्य है । यह किसी भी पराक्रमी शत्रु के वश में आनेवाला नही है । आज वानर-समूह ने इसे भेद डाला है, यह देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा है । इतना ही नही, श्रीराम के बाहुबल का विक्रम दुर्वार प्रतीत हो रहा है । युद्ध करने योग्य या तो तुम हो, या मैं हूँ या मेरा भाई कुभकर्ण है । निद्रा में मग्न हो, मेरा भाई जाग नही रहा है । इसलिए या तो तुम युद्ध करने के लिए जाओ या मैं जाऊँ ।'

तब प्रहस्त ने राक्षसेश्वर से कहा—"हे देव, मै अभी जाता हूँ और उन नरो का ऐसा सहार करता हूँ कि देवता भी मेरे बाहुबल की प्रशसा करेंगे । मैं अपने प्रताप का ऐसा प्रदर्शन करूँगा कि भूत, प्रेत तथा डाकिनी छककर रक्त-पान करेंगे और मोद-मग्न होकर कह उठेंगे, 'लो देखो, प्रहस्त उन वन्दरो की कैसी दुर्गति कर रहा है ।' आपने मुझे युद्ध में जाने का आदेश दिया, तो ऐसे समय में, मेरा आपको हितोपदेश देना उचित तो नही है । फिर भी, एक बात सुन लीजिए । मेरा विचार है यह कार्य आपके लिए उचित नही है । अब आप मानें या न मानें । आप स्वय विचार करके देख लें । मैं आपकी आज्ञा का उल्लघन नही करता । पहले आपने अपने बुद्धिमान् मत्रियो के हित-वचन नही सुने । अब तो सुनिए और सीता को भूपाल के पास पहुँचा दीजिए । यह युद्ध अनावश्यक है ।"

५६. प्रहस्त का युद्ध

इतना कहने के पश्चात् प्रहस्त रावण की आज्ञा लेकर युद्ध के लिए रवाना हुआ । उसने अपने वेत्रधरो को भेजकर अपनी चतुरगिणी सेना को एकत्रित किया और मणिमय किंकिणी के रणन से मुखरित होनेवाले ऐसे रथ पर सवार होकर चला, जिसका मेघ-समान घोष तबतक सुनाई पडनेवाला था, जबतक वानरो के श्रेष्ठ अगो के पवन उसका स्पर्श नही करे, और जिसके ऊपर की सर्प-ध्वजा तबतक लहरानेवाली थी, जबतक वानर-रूपी गरुड़ उस पर उतर नही आवे । उसके निकलते समय तुरहियो की जो ध्वनि हुई, उससे दिशाएँ चक्कर काटने लगी, आकाश विचलित हो गया, नक्षत्र टूटकर गिरे और वसुधरा विदीर्ण-सी हो गई । इस प्रकार, प्रहस्त पूर्व के द्वार से कालातक के समान युद्ध करने के लिए निकला ।

दैत्यो के सिंह-गर्जनो के साथ निकलनेवाले प्रहस्त की उग्र मूर्ति को देखकर राम-चन्द्र आश्चर्य करने लगे और उसे विभीषण को दिखाकर बोले,—'हे विभीषण, तेज, बल, तथा शौर्य से विलसित होनेवाले इस राक्षस-नेता का नाम क्या है ? विपुल साहस के साथ उसका वानरो पर आक्रमण करना देखकर मुझे आश्चर्य होता है ।'

तब विभीषण ने कहा—'हे देव, यह रावण की समस्त सेना का सेनापति है । इसकी अपनी सेना रावण की सेना की तीन चौथाई है । अपने साहस के लिए तीनो

लोकों में यह् प्रख्यात है। यह अत्यधिक बलवान् है तथा रावण का मामा लगता है। यह महान् पराक्रमी है और इसका नाम प्रहस्त है। (रावण के द्वारा) चन्द्रशेखर के मित्र (कुबेर) के सामंत को पराजित होते समय इसने मणिभद्र को परास्त किया था। हे रवि-कुलोत्तम, इसके साथ वानर-नायकों को घोर युद्ध करना होगा।'

इस प्रकार विभीषण के कहते समय ही वानर-वीर पर्वतों तथा वृक्षो को उठाये सिंहनाद करते हुए दानवो का सामना करने लगे। असुर-सेना ने भी भयंकर गर्जन करते हुए वानरो पर आक्रमण किया। प्रलय-काल की अग्नि तथा वडवानल आपस में कभी संघर्ष नही करते; पृथ्वी और आकाश का एक दूसरे से टकराकर चूर-चूर होना संभव नही; भिन्न-भिन्न ब्रह्माण्डो का आपस में टकराना संभव नही। यदि ऐसा कभी हुआ होता, तो इन राक्षस तथा वानर-सेनाओं के युद्ध की उपमा उनसे दी जा सकती थी। राक्षस अग्नि-सम बाण-समूह को वानरो पर चलाते थे। कुछ राक्षस खड्ग, गदा, भाले, मूसल तथा भयकर चक्र आदि शस्त्रो को भी चलाते थे। तब वानर-सेना राक्षसों पर बड़े वेग से वृक्षो तथा पर्वतो को फेंकती थी। इस घोर युद्ध में पृथ्वी पर लुढकने-वाले सिर, विदीर्ण होनेवाले वक्ष, चूर-चूर होनेवाले कंधे, बाहर निकल पड़नेवाली आँतें, फूटनेवाले सिर, टूटनेवाली पसलियाँ, उमड़नेवाला रक्त, छितरानेवाला भेजा, छिन्न-भिन्न होनेवाले पैर, उछलकर गिरनेवाले हाथ, पिंडाकृति धारण कर सड़नेवाले शव, आधा कटकर गिरे हुए शरीर, घूम जानेवाली पुतलियाँ, ये सब अत्यत भयंकर दीखने लगे। युद्ध-भूमि में राक्षस और वानर निर्भय होकर बड़े उत्साह से लड़ते थे। सहसा कपि-वीरो ने राक्षसो पर बडा भयंकर धावा बोल दिया। द्विविद ने नरांतक पर एक पर्वत-शिखर उठाकर फेंका। तार ने एक वट-वृक्ष को वेग से चलाकर कुंभ हनु को गिरा दिया। जाबवान् ने महानद पर एक विशाल पर्वत को गिरा दिया। दुर्मुख ने समुन्नत को एक विशाल वृक्ष से मार गिराया।

इस प्रकार, राक्षसो को वानरो के प्रहारो से बुरी तरह मरते हुए देखकर प्रहस्त ने अपने प्रमुख साथियो की मृत्यु निश्चित जान और अत्यंत क्रुद्ध होकर अपने रथ को विचित्र वेग से चलाकर एक-एक प्रहार से एक साथ दस, बीस, तीस तथा चालीस वानरो का संहार किया। तब वानर भी पर्वतो तथा वृक्षो को गिराकर प्रहस्त की सेना का नाश करने लगे। रक्त की नदियाँ उमड़-उड़कर आकाश का स्पर्श करती हुई-सी बहने लगी; रक्त की उस धारा में ही जहाँ-तहाँ वानर तथा असुर घोर गर्जन करते हुए युद्ध करते थे। उनके पराक्रम को देखकर देवता भी उनकी प्रशंसा करने लगे।

तब प्रहस्त कालातक के समान अपने अद्वितीय प्रताप का प्रदर्शन करते हुए वानरो के करो तथा चरणो को काटते हुए, उनके वक्ष-स्थलो को विदीर्ण करते हुए, सिर तथा बाहुओ को पृथ्वी पर गिराते हुए, हड्डियो तथा दाँतों को चूर-चूर करते हुए, चक्रों से खंड-खंड करके, अंकुशों से चीरकर, भालो से चुभोकर, विशाल पाशो से बाँधकर, परशु से काटकर, शूलो को भोंककर बरछियो से उछालकर तथा शक्तियों से पीटकर वानरों के मांस तथा भेजा के ढेर-सा लगा दिया और अपनी शर-वृष्टि से वानरो को मारकर सभी भूतों

को बलि चढाई । इस प्रकार, प्रहस्त ने अपने दुर्वार विक्रम से वानरो का सहार करने में सफल होकर सभी दिशाओ को विदीर्ण करते हुए भयकर गर्जन किया ।

५७. नील के द्वारा प्रहस्त का वध

वानर-सेना को इस प्रकार नष्ट होते हुए देखकर, उद्भट-रण-कुशल नील भयकर हुकार करते हुए प्रहस्त पर आक्रमण करने के लिए ऐसी अद्भुत गति से चला कि सारी पृथ्वी काँप गई । उसने एक विशाल वृक्ष को उखाड लिया और सहज ही उस राक्षस के रथ पर जा चढा । उसने सारथी को मार डाला, अश्वो का नाश कर दिया, और देखते-देखते प्रहस्त के धनुष को खडित कर दिया । तब भयकर गर्जन करते हुए प्रहस्त एक मूसल लेकर रथ से उतर पडा और नील के सामने डट गया । नील ने निर्भीक होकर उसका सामना किया, मानो वह अपनी विजय में पूरा विश्वास रखता हो । फिर, दोनो युद्ध करते हुए एक दूसरे को परास्त करने का प्रयत्न करने लगे, जैसे वृत्रासुर तथा कौशिक ने (पहले) किया था । प्रहस्त ने अच्छी तरह लक्ष्य करके मूसल से नील के ललाट पर ऐसा तुला हुआ प्रहार किया कि उसका ललाट फूट गया । उससे छूटनेवाली रक्त-धारा को पोछते हुए नील ने अत्यधिक क्रोध से उस प्रहस्त पर वृक्षो से प्रबल प्रहार किया । किन्तु, उस राक्षस ने फिर से उसी मूसल से नील पर प्रहार किया । इस आघात से नील लडखडाने लगा, फिर भी उसने वृक्ष को छोडकर उसी समय भयकर गर्जन करके एक विशाल पहाड उठाकर लक्ष्य करके उस राक्षस के सिर पर फेंका । नील के उस प्रहार से प्रहस्त का शरीर, सिर तथा आभूषण छिन्न-भिन्न हो गये और इन्द्र के प्रहार से सिकुडकर गिरनेवाले पर्वत के समान वह राक्षस पृथ्वी पर गिर पडा । उसके गिरते ही सभी कपियो ने विजय-घोष किया और राक्षस-सेना लका की ओर भागने लगी ।

उस समय सारी युद्ध-भूमि, अमृत-सागर-सुता (लक्ष्मी) के समान हरि* (विष्णु अथवा अश्व) युत अगो से, दानशील के निवास के समान मार्गणो * (पातक अथवा बाण) के समूह से, जबूद्वीप के समान नवखडो * (द्वीप अथवा खड) से, प्रेमी पति के निकट वनिता की भाँति राग-रस * (प्रेम रस अथवा रक्त) से, दुर्गम वन के सदृश पुडरीको * (व्याघ्र अथवा गज) से, सुदर मधु-मास की भाँति आरक्त, फुल्ल, पलाशो * (पलाश वृक्ष अथवा राक्षस) से, शिव के निवास की नाई भूत-गण *(शिव के सेवक अथवा प्रेत) से, सूर्य-प्रकाश से विलसित गगन के समान अस्त-व्यस्त तारको * (नक्षत्र अथवा आँख के तारे) से, तीव्र निदाघ के समान अबर-मणियो * (सूर्य अथवा वस्त्राभरण) से, अर्द्ध-नारीश्वर के समान अर्द्ध-शरीरो से युक्त हो, अनेक प्रकार से आश्चर्य उत्पन्न करती थी ।

तब नील शीघ्र ही राघवाधीश के समक्ष गया और उनके चरणो को प्रणाम किया। वानरो ने बार-बार नील की प्रशसा की । हतशेष राक्षस भयभीत हो भागकर रावण के निकट पहुँचे और उसे सारा वृत्तात कह सुनाया । तब रावण ने शोक-विह्वल हो अपने मत्रियो से कहा—'युद्ध करने गये हुए सभी वीर लौटने का नाम तक नही ले रहे हैं और वानरो के हाथो मर रहे हैं। अब वैरियो का गर्व चूर करने के लिए मैं स्वय ही जाऊँगा।'

*इस प्रसंग में हरि, मार्गण, नवखंड आदि शब्दो में श्लेष है ।—ले०

५८. मंदोदरी के हित-वचन

रावण की सभी बातें सुनकर, मंदोदरी शीघ्र माल्यवान् के पीछे, दैत्य-स्त्रियों के साथ रावण की सभा की ओर चली। उसके पीछे-पीछे अतिकाय तथा प्रतीहारी चलने लगे। आयुधों से अलंकृत अन्य सैनिक भी उनका अनुसरण करने लगे। चामरिक-समूह चामर डुला रहे थे और सभी मंत्री भी उसके साथ चल रहे थे। अपने समस्त आभूषणों की शोभा को चारों ओर विकीर्ण करती हुई उसने रावण की सभा में ऐसे प्रवेश किया, मानो नील-मेघों के मध्य विलसित होनेवाली बिजली हो।

रावण ने मंदोदरी को अपने सिंहासन के अर्द्ध भाग पर आसीन कराया और प्रिय वचन कहते हुए बुद्धिमान् मंत्रियों को उचित आसनों पर बिठाया। प्रणाम करनेवाले अतिकाय को प्रसन्नता से अपने निकट ही एक आसन पर बिठाया? उसके पश्चात् दानवेश्वर ने अपनी स्त्री से कहा—'हे कुवलयनेत्री, तुम तो इस प्रकार कभी सभा में नहीं आती। आज तुमको कंपित शरीर से इस प्रकार सभा में आते देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा है! तुम्हारे आगमन का क्या कारण है?'

तब मंदोदरी ने अपने पति को देखकर कहा—"हे दनुजेश, आज मुझे यहाँ आने की आवश्यकता पड़ी, इसलिए मैं आई हूँ। आप मेरे आगमन को बुरा न मानिए। हे देव, आपने देखा कि धूम्राक्ष आदि हमारे सेनापति युद्ध में कैसे मारे गये? राम ने जन्म-स्थान में चौदह सहस्र राक्षसों का संहार किया था और खर तथा त्रिशिर का वध किया था। मैं कहती हूँ कि ऐसा वीर एक साधारण मनुष्य नहीं हो सकता। इतना ही नहीं, राम ने दण्डक-वन में महान् बलशाली कबंध का संहार किया। मारीच की मायाओं की उपेक्षा करके उन्होंने उसका वध किया। एक भयंकर अस्त्र से वालि का संहार किया। राघव ने देवताओं के हित के लिए इस संसार में जन्म लिया है। वे स्वयं आदिनारायण हैं अन्यथा इस पृथ्वी पर ऐसा पराक्रमी नर कहाँ मिलेगा? उन्होंने ही तो नीलकंठ के धनुष को भंग किया था? अपने पिता की आज्ञा से जिस समय वे वन में तपस्वी का जीवन व्यतीत करते थे, उसी समय आप सीता को हर लाये। रामचन्द्र ने आपका क्या अहित किया था। राम-लक्ष्मण से युद्ध करने की क्षमता तीनों लोकों में कौन रखता है? यदि साम, दान तथा भेद से शत्रु वश में आ जाय, तो दण्ड का उपाय अपनाना उचित नहीं। यदि आप दण्ड देना भी चाहें, तो क्या राम-लक्ष्मण आपसे दण्ड भोगेंगे? हे देव, राम परमात्मा हैं; अतः आप उनके समक्ष नतमस्तक हों, तो इसमें कोई दोष नहीं। यदि आप उनसे शरण माँगें, तो वे आपको अवश्य अपनायेंगे। शरण माँगने से आपका शुभ ही होगा, हानि नहीं। काकुत्स्थवंशी राम के गुण, रूप, कृपा आदि गुण-गण का वर्णन करना कैसे संभव है? यदि वे क्रोध में आ जायें, तो इन्द्रादि देवता भी ठहर नहीं सकते, तब आपके लिए (उनका सामना करना) कैसे संभव है? अब आप इस प्रयत्न को छोड़ दीजिए। व्यर्थ ही दर्प की अग्नि में नाश मत होइए। हठ छोड़िए और संताप त्यागकर सीता को लौटा दीजिए। इसी में आपका हित होगा। हे लंकेश, आप अपने कुल तथा लंका की रक्षा कीजिए। ऊँचे वाहनों तथा मणि-भूषणों के साथ आप जानकी को लौटा दीजिए और उपाक्ष, अतिकाय

तथा माल्यवान् के द्वारा संधि का प्रस्ताव भेजिए। बहुत क्यों ? क्या, आपने कार्त्तवीर्य के साथ संधि नही की थी ? तब उस कार्त्तवीर्य को जीतनेवाले भार्गव राम को परास्त करने-वाले यशस्वी राम क्या संधि करने के योग्य नही है।"

५९. मंदोदरी की मंत्रणा की उपेक्षा करना

मंदोदरी के इन दीन वचनों को सुनकर रावण क्रोध से दीर्घ श्वास लेने लगा। उसकी लाल आँखों से क्रोधाग्नि की चिनगारियाँ छूटने लगी। उसने मंदोदरी को देखकर कहा—'हे नारी, हित-बुद्धि से तुमने मुझे उपदेश दिया है, किन्तु तुम्हारी बातो में एक भी मुझे अच्छी नही लगती। दानव, यक्ष, गधर्व देव आदि की सेवाएँ प्राप्त करने-वाले मुझे तुम वानरों के आश्रय में जीनेवाले नर को प्रणाम करने का उपदेश देती हो। ऐसी बात तुम इस सभा में कैसे कह सकी ? क्या, तुम्हारे लिए यह उचित है ? उस इक्ष्वाकुवशी ने जान-बूझकर पहले हमारा अहित किया था, तभी तो मै उसकी स्त्री को ले आया। खर-दूषण आदि के सहार तथा तुम्हारी ननद के अपमान को भुलाकर मूर्ख के समान मैं कैसे राम से संधि कर लूँ ? यह असभव है। अपने भयकर बाणो से विभीषण, सुग्रीव तथा राम-लक्ष्मण के साथ सभी वानरो को मारकर मै विजय पाऊँगा। यदि विजय नही प्राप्त करूँगा, तो युद्ध-भूमि में ही अपने प्राण दे दूँगा, किन्तु उस राम के साथ न संधि करूँगा, न जानकी को ही लौटाऊँगा। यही मेरा दृढ निश्चय है। तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र, उदात्त पराक्रमी, इन्द्रजीत के रहते तुम्हें किस बात का भय है ? मेरे पुत्र भयकर आकारवाले तथा दुर्वार पराक्रमी है, मेरा सामना कौन कर सकता है ?'

इन बातो को सुनकर मंदोदरी चिंताक्रांत मन से सिर झुकाकर सभा से ऐसे चली गई, मानो रावण की लक्ष्मी ही यो सोचती हुई रावण से अलग हो रही हो कि यह नीच तथा निकृष्ट नीति का अनुसरण करते हुए अपना बुरा-भला आप ही नही पहचान पा रहा है।

६०. रावण का प्रथम युद्ध

तब रावण ने अपने गुप्तचरो से कहा—'चिर काल से मेरे मन में जो क्रोध था, उसका आज परिहार करूँगा। मै उस (राम) के लिए कालरुद्र हूँ और वह मेरे लिए अंधकासुर है। मेरे तूणीरो से निकलनेवाले अस्त्र, केंचुली से मुक्त होनेवाले क्रूर सर्पों के समान राघव को लगेंगे। राम मृत्यु से प्रेरित होकर, कपि-सेना का विश्वास करके यहाँ आया है। तुम शीघ्र मेरे युद्ध करने के लिए दिव्य शस्त्रास्त्रो से सज्जित करके रथ ले आओ।'

उसके आदेशानुसार वे गुप्तचर सूर्य-प्रभा के समान दीप्तिमान् श्रेष्ठ रथ ले आये। फिर, अपने नीच मनोरथ पर आरूढ होने की भाँति रावण उस रथ पर आरूढ हुआ। अपने दीप्तिमान् आभूषणो से अलंकृत रावण के उस रथ पर बैठते ही, उसके आभूषणो की प्रभा दिशाओ तथा आकाश में आश्चर्यजनक ढग से व्याप्त हो गई, मानो युद्ध में राम के बाणो की अग्नि-ज्वालाओ में रथ-समेत स्वयं रावण दग्ध हो रहा हो। निसानो का विपुल निनाद, पटह, भेरी तथा शख का भयकर घोष, हाथियो की चिंघाड़, अश्वो की हिनहिनाहट, बन्दी

मागधो के स्तुति-गान की गंभीर ध्वनि, रथो के चलने की ध्वनि, सैनिको के हुंकार, तथा पृथ्वी को विदीर्ण करनेवाले उनके पदाघात की सम्मिलित ध्वनि भयकर गति से समस्त ब्रह्माण्ड में ऐसे व्याप्त हो गई, मानों लका के समुद्र के सभी जलचर एक साथ आर्त्त-ध्वनि कर रहे हो कि रामचंद्र जैसे पहले समुद्र पर क्रुद्ध हुए थे, वैसे ही वे आज क्रुद्ध हो गये है। (राक्षसो के) बृहदाकार रथ, रामचद्र के मनोरथो के समान ऐसे चलने लगे, मानो कह रहे हो कि हे राम, हम दैत्य-समूह को ले आये है; आप इन्हें ग्रहण कीजिए। असख्य गज-समूह पृथ्वी को कँपाते हुए चलने लगे। उनके कर (सूँड) रामचद्र के करो (हाथ) के लिए दुर्जय न होने पर भी भयकर दीख रहे थे और उन सूँड़ो के चारो ओर शिलीमुख (भ्रमर) ऐसे झकार कर रहे थे, मानो कह रहे हो कि इनमें रामचन्द्र के शिलीमुख (वाण)-समूह लगकर इनका (गजो का) मद गिराने के पहले हम अब इनकी मद-धाराओ का पान कर लें। घोडे ऐसे झूमते हुए चल रहे थे, मानो कह रहे हो कि सारे उपाय नष्ट हो गये है, हमारे द्वारा रावण को युद्ध में विजय कहाँ मिलेगी, रावण तो अवश्य ही युद्ध में गिरेगा। प्यादो की सेना ऐसे हुकार भरती हुई जा रही थी, मानो आर्त्त-ध्वनि कर रही हो कि राघव की आसन्न वाणाग्नि से सम्रमित सेना का सारा बल दग्ध हो जायगा। प्रलय-काल के घने वादलों के समान तथा पहाड़ो का भ्रम उत्पन्न करनेवाले राक्षस, प्रलय-काल के सूर्यबिंब के सदृश दीखनेवाली उभरी हुई आँखो से तथा विशाल कनपटियो, घोर दंष्ट्रो एव विपुल केश-समूह से युक्त होकर, प्रलयातक को भी भय देनेवाले विकृत वेष, विविध आयुध तथा विभिन्न मायाओ से सज्जित थे। राक्षस-वीर तथा राक्षस-नेताओ ने राक्षसेश्वर के समक्ष, अपना शौर्य प्रकट करते हुए प्रतिज्ञा की कि युद्ध में हम ही राम को जीतेंगे। फिर, वे घोर गर्जन करते हुए, पटहो का विपुल निनाद करते हुए युद्ध के लिए चल पडे। रावण भी अपने प्रताप से सूर्य को भी निस्तेज करते हुए, अपने साहस को अपने मुख की दीप्ति के द्वारा प्रकट करते हुए, शौर्य तथा विजय-लक्ष्मी से युक्त हो, भयकर ध्वनि एव ठाट-वाट के साथ, युद्ध के लिए निकल पडा, मानो सूर्यवशज को मार्ग देने के कारण समुद पर क्रुद्ध होकर उसे सुखा डालने के लिए ही जा रहा हो अथवा यह कहते हुए सूर्य को निगलने के लिए जा रहा हो कि हे सूर्य, तुम्हारा पुत्र राम से मिल गया है। राक्षस-सेना के असख्य आयुधो की काति आँखो को चकाचौध करती थी और नगाडो के ताड़न से उत्पन्न वायु से ध्वजा-पताकाएँ आकाश में फडफड़ा रही थी। अत्यत भयकर रूप से वार-वार गर्जन करते हुए, राम की वाणाग्नि में दग्व हो जानेवाले प्राणो को तृणवत् मानते हुए, दुर्वार गति से आनेवाली दारुण राक्षस-सेना को देखकर रघुराम ने अपने अनुज से कहा—'हे लक्ष्मण, पता नही कि यह कौन आ रहा है? यह अत्यधिक शक्ति-सपन्न तथा महान् साहसी दीखता है।'

६१. विभीषण का राम को राक्षस-वीरों का परिचय देना

तव विभीपण ने राम से कहा—'हे रघुराम, मैं इन दनुज-नायको का अलग-अलग परिचय आपको सुनाता हूँ, सुनिए।' फिर, वह इस प्रकार कहने लगा—'वह जो मदमत्त हाथी पर चढ़कर, उज्ज्वल दीप्ति से दीप्त हो रहा है, जिसके उदयार्कबिंब के समान

समुज्ज्वल मुँह पर अत्यधिक रोष दिखाई पड रहा है, बार-बार अपने अंकुश की प्रेरणा से हाथी की चाल को तीव्र करने का प्रयत्न करते हुए बडे वेग से आ रहा है, वही उपाक्ष है। भीषण घटा-रव करनेवाले रथ पर चढकर आनेवाला, महोदर है। उसने युद्ध में बहुत-से लोगो का संहार किया था। रत्न-प्रभा-संपन्न अरुण कवच धारण किये, अश्व पर आरूढ जो उद्धत होकर गरुड के समान वेग से आ रहा है, वह पिशाचो का नायक है। युद्ध में इसका सामना करनेवाला कोई नही है। सिंह पर चढकर शूल हाथ में लिये जो आ रहा है, वह युद्ध-प्रिय त्रिशिर है। विपुल घटारव करनेवाले तथा सर्प-ध्वजा से युक्त रथ पर बैठकर धनुष का टंकार करनेवाला, काले शरीर का वह राक्षस, कुंभ है। स्वर्ण-मणि-खचित ध्वजा से युक्त इस चित्ररथ पर बैठकर आनेवाला, वह विशालबाहु राक्षस, निकुंभ कहलाता है। अग्निसम उज्ज्वल रथ पर आरूढ हो, बडे दर्प के साथ युद्ध करने की तीव्र लालसा से विष-दृष्टियो से कपि-सेना की ओर देखते हुए, धनुष पर बाण चढाते हुए आनेवाला नरांतक नामक राक्षस है। जैसे भूत-गण कालनेत्र की (शिवजी) सेवा में रहते है, वैसे ही गज-मुख, अश्व-मुख, सिंह-मुख, व्याघ्र-मुख, सर्प-मुख तथा उष्ट्र-मुख-वाले भयंकर राक्षस जिसकी सेवा में लगे हुए हैं, और जो भयंकर गर्जन कर रहा है, वह उभरी हुई आँखोवाला राक्षस देवांतक है। हे देव, वहाँ जो स्वर्ण-रथ पर आरूढ है, जो एक विशाल धनुष को एक तृण के सदृश सँभाले हुए भयंकर टंकार कर रहा है, जो कभी पराजय का नाम तक नही जानता, जो नरभोज का पुत्र है, जो अपने शरीर पर अरुण चंदन का लेप किये हुए हैं, जो तीक्ष्ण तथा क्रुद्ध दृष्टियो से युक्त है, जिसका शरीर साध्य-मेघो के समान है, जो विंध्याचल के सदृश विशालकाय है, और जो करोडो छत्र-चामरो से विलसित है, वही युद्ध का श्रेष्ठ शूर, अतिकाय है। वहाँ जो दस सहस्र श्वेत छत्रो तथा स्वर्ण-चामरो से विलसित है, जो सिंह-ध्वज से युक्त तथा बलिष्ठ अश्व जुते हुए रथ पर आरूढ हो, विपुल शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित हो, धनुष का टंकार करते हुए, हम पर दृष्टि गडाये आ रहा है, वह इन्द्रजीत है। उसने ब्रह्मा के वर से अपार बाहुबल प्राप्त करके अखिल देवताओ को युद्ध में जीत लिया था और इन्द्र को बंदी बनाकर बडे गर्व से घूम-रहा है। हे सूर्यकुलतिलक, अब मैं उस प्रतापी लंकानाथ को दिखाऊँगा, जो कनक-रत्न-प्रभा-कलित दण्डो से युक्त चामरो से विलसित है, जिसके सिरो पर शोभायमान होनेवाले विचित्र रत्नो की आभा से दीप्त दस किरीट ऐसे दीख रहे हैं, मानो (वे किरीट) बारहो सूर्य-बिंबो को गलाकर बनाये गये हों, जिसके कर्णो को अलंकृत करनेवाले महनीय मणिकुंडलो की प्रभा सभी दिशाओ में व्याप्त हो रही है, जो अपनी क्रोधपूर्ण दृष्टियो से बहुत भयंकर दीख रहा है, जिसने हर के निवास-स्थान कैलास पर्वत को उठाया था और देवांगनाओ को बंदी बनाया था, जिसके वक्षःस्थल ने ऐरावत के दाँतो के प्रहारो को सहन किया था, जिसने समस्त लोको पर विजय प्राप्त की थी और जिसने इन्द्र को भी युद्ध में परास्त किया था, वही रावण वहाँ सेना के मध्य में घूमता हुआ आ रहा है।"

विभीषण के इस प्रकार सभी वीरो का परिचय देने के पश्चात् राघव ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'हे विभीषण, यह बड़ी विचित्र बात है कि यह दानवेश्वर ऐसे महान्

तेज तथा सुदंर आकार से विलसित है । भला, राक्षसो में ऐसा तेजस्वी कौन है ? यदि यह क्रूरकर्मी नही होता, तो वह समस्त ससार के लिए पूज्य होता । इसके सभी राक्षस-वीर सैनिक, पर्वताकारवाले, अपार शक्तिशाली, योद्धा, क्रूर-चरित्र तथा भयकर हैं। इसके पश्चात् उग्रलोचन (शिव) के पिनाक को वश में लाने में निपुण राम तथा लक्ष्मण ने धनुष तथा बाण धारण किये मानो (ससार को) बता रहे हो कि क्रुद्ध होने पर भी धर्म-मार्ग का ही अनुसरण करनेवाले इन राजकुमारो की समता कौन कर सकता है ।'

तब रावण ने अपने सभी राक्षस-वीरो को देखकर कहा—'नगर के द्वारो पर तथा बडे-बड़े आँगनो में असख्य सैनिक लका के रक्षणार्थ रहें । जब हम और तुम युद्ध के लिए चले जायेंगे, उस समय यदि वानर लका में प्रवेश करें, तो हमारी शक्ति किस काम की होगी ? इसलिए इसका ध्यान रहे ।' तब असख्य राक्षस इस रक्षण-कार्य के लिए चले गये। इसके पश्चात् रावण ने धनुष तथा बाण धारण किये हुए बड़े वेग से वानरो की सेना पर ऐसे आक्रमण किया, जैसे दावाग्नि वनो को घेर लेती हो और पृथ्वी आकाश से भिड जाती हो । उसने अत्यत तीक्ष्ण बाणो की ऐसी तीव्र वर्षा की कि यह विदित नही होता था कि यह आकाश है, यह पृथ्वी है और ये दिशाएँ हैं । अपने उद्दण्ड बल को प्रकट करते हुए उस राक्षस ने झुड-के-झुड वानरो को सहज ही खडित करके चूर-चूर कर दिया, अस्थि, मज्जा, मास तथा रक्त से सारी युद्ध-भूमि को भर दिया और अपने धनुष के टकारो से दिशाओ को प्रतिध्वनित करने लगा। गिरनेवाले, भ्रमित होनेवाले, मरनेवाले, चकरानेवाले, भयभीत होनेवाले, आर्त्तनाद करनेवाले तथा विकृताग होनेवाले वानरो से रण-भूमि को पूर्ण देखकर देवता सभ्रमित तथा व्याकुल हो गये ।

उस समय क्रूर कालानल की दुर्वार लीला के समान भयकर दशानन को अत्यत भयानक रूप धारण करके गरजते हुए देखकर सुग्रीव ने उसका सामना किया और एक पर्वत उठाकर उस पर फेंका, किन्तु रावण ने उसे बीच में ही अपने विपुल अस्त्रो से चूर-चूर कर दिया और अपनी दीप्ति-ज्वालाओ को आकाश में फैलाते हुए, जलनेवाले एक तीक्ष्ण शर को सुग्रीव के वक्ष पर चलाया, तो वह शर उसके शरीर के आर-पार निकल-कर पृथ्वी में गड गया । तुरत सुग्रीव लडखड़ाते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ा । यह देखकर दानव हर्षध्वनि करने लगे और वानर अश्रु-धाराएँ बहाने लगे । इस पर महान् बाहुबली ऋषभ, सुदष्ट्र, गज, गवाक्ष, गवय, नल तथा ज्योतिर्मुख नामक वानरो ने क्रोधोन्मत्त होकर रावण पर पर्वतो तथा वृक्षो से अविरत प्रहार किया । किन्तु, रावण ने उन सब को बीच में ही खडित कर दिया और उन सातों वानरो को एक ही बाण से मृत-सा कर दिया ।

६२. हनुमान् का रावण से युद्ध करके मूच्छित होना

अपनी सेना के नायको को इस प्रकार गिरते देखकर हनुमान् अत्यधिक क्रुद्ध हुआ और बडे दर्प से रावण के रथ पर कूदकर उससे कहने लगा—'हे रावण, कदाचित् तुम गर्व से फूलते रहे हो कि मैंने देवेन्द्र आदि देवताओ तथा राक्षसो पर विजय प्राप्त की है; किन्तु मेरे सामने तुम्हारी दाल नही गल सकती, मैं तुम्हारा तेल निकाल दूँगा । चिरकाल

मुकुटों को पैरों से कुचलने लगा। उसने एक मुकुट को दूसरे मुकुट पर फेंका, एक मुकुट पर से दूसरे मुकुट को गिराया, एक मुकुट से दूसरे मुकुट पर पद-प्रहार करके सभी मुकुटों को मिट्टी में मिला दिया। इससे सतुष्ट न होकर, वह सूक्ष्म रूप में रहनेवाले अपने को पकड़ने में रावण को असफल होते देखकर, हँसने लगा। फिर उसने रावण के छत्र फाड़कर फेंक दिये, उसके चामरों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, रथ पर प्रहार करके उसको खड-खंड कर दिया, क्रूरता के साथ दानवेश्वर की मुष्टि पर पद-प्रहार किया, उसके हारों को खींच-कर फेंक दिया और उसके विशाल वक्ष पर प्रहार करने लगा। इस प्रकार, बड़े उत्साह से युद्ध करनेवाले उस नील को देखकर राक्षस तथा वानर-सेनाएँ आश्चर्यचकित हो गईं। राम तथा लक्ष्मण भी विस्मित हुए। तब रावण अत्यन्त क्रोध से महान् अग्नि-बाण को अपने धनुष पर चढाकर उस अग्नि-पुत्र (नील) से कहा—'बलिहारी है तुम्हारे लाघव की। मै तुम्हारी प्रशसा करता हूँ। तुम अपनी लघुता ही मुझे दिखाते रहो। अब यह लो, अग्नि-बाण अपनी ज्वालाओं का प्रकाश फैलाता हुआ चला। इससे बचने का उपाय करो।' यों कहते हुए उसने बाण चलाया। अग्नि-बाण के प्रभाव से नील का सारा शरीर जलने लगा और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। अग्नि-पुत्र होने के कारण उसकी मृत्यु तो नहीं हुई; किन्तु वह अवश हो पृथ्वी पर पड़ा रहा।

६४. रावण का ब्रह्म-शक्ति से लक्ष्मण को गिराना

तब सौमित्र ने अपने धनुष का टंकार करते हुए भयंकर गति से उस दैत्य पर आक्रमण किया। उस टकार तथा लक्ष्मण की प्रशसा करते हुए रावण ने उनसे कहा—'हे लक्ष्मण, छोटी अवस्था के होते हुए भी तुम साहस के साथ युद्ध करने के लिए सन्नद्ध होकर आये हो, यह प्रशसनीय है। अब कुछ समय इसी प्रकार ठहरो; मैं तुम्हें यमपुर भेज दूँगा।' तब रामानुज ने कहा—'हे अधम राक्षस, व्यर्थ इतना गर्व क्यों करते हो? मै तो तुम्हारे निकट आ ही गया हूँ। बातें बनाना छोड़कर कार्य करके अपनी शक्ति दिखाओ।' इतना कहते ही रावण ने उनपर सात-बाण चलाये। किन्तु राक्षस के बाणों को लक्ष्मण ने बीच में ही खडित कर दिया। इस पर उद्दीप्त क्रोध से रावण धनुष का घोर टकार करते हुए अविरत बाण-वर्षा करने लगा। उन असंख्य बाणों को नष्ट करके लक्ष्मण ने शीघ्र (उस राक्षस पर) एक सहस्र शर चलाये। उनके बाणों का सामना करने में असमर्थ होकर रावण ने एक ब्रह्म-दत्त बाण लक्ष्मण के ललित वक्ष पर चलाया। लक्ष्मण अशक्त-से हो गये और वे धनुष को टेककर थोडी देर खड़े रहे। फिर, सँभलकर हुंकार भरते हुए लक्ष्मण ने एक प्रबल बाण से राक्षसेश्वर के धनुष को काट दिया। इतने से सतुष्ट न हो-कर उन्होंने त्रेताग्नि-सदृश शक्तिशाली तीन बाण उसके वक्ष पर चलाये। उनके लगने से रावण मूर्च्छित हो गया, किन्तु शीघ्र ही वह सँभल गया। उसे अपने धनुष के तोड़े जाने पर विस्मय हुआ और अपनी समस्त शक्ति को बटोरकर बड़ी क्रूरता के साथ, लक्ष्मण पर उसने उस ब्रह्म-शक्ति का प्रयोग किया, जो सदा गंध-पुष्पों से अर्चित थी, जो समस्त दिशाओं तथा ब्रह्माण्ड में अपनी उज्ज्वल ज्वालाओं को व्याप्त करने की क्षमता रखती थी, जो दस करोड़ अशनियों की-सी भयंकर ध्वनि करनेवाली थी और जो सूर्य की किरणों से भी

अधिक ताप से युक्त थी । यह देखकर सभी देवता चकित-से रह गये । प्रलय-काल के समान भयकर गति से तथा अशनि से भी अधिक तेज से उस शक्ति को अपनी ओर आते देखकर, लक्ष्मण ने उसका निवारण करने के लिए घोर शर-वृष्टि कर दी; किन्तु उन बाणो की उपेक्षा करते हुए वह शक्ति लक्ष्मण के निकट आई और उनकी भुजाओं के मध्य में लग गई । तुरन्त लक्ष्मण पृथ्वी पर गिर पडे ।

तब दशानन ने लक्ष्मण को अपने बीस हाथो से उठाने का प्रयत्न किया, किन्तु विष्णु का अश होने के कारण वह उन्हें उठाने में असमर्थ हुआ । वह आश्चर्यचकित होकर सोचने लगा कि मैं तो कैलास पर्वत को भी उखाडकर उठा सका था, और मेरु तथा मदर पर्वतो को उठाने की शक्ति भी रखता हूँ। कैसा आश्चर्य है कि यह लक्ष्मण इतना भारी है । ऐसा सोचते हुए, अपने बीस हाथो का सारा बल लगाकर रावण ने फिर एक बार लक्ष्मण को उठाने का प्रयत्न किया । इतने में हनुमान् अत्यत क्रोध से उसके निकट पहुँचा और सिंह-गर्जन करके उस क्रूर राक्षस के वक्ष पर वज्रसम अपनी मुष्टि से घोर प्रहार किया । उस प्रहार से रावण मूर्च्छित होकर घुटनो के बल गिर पडा । रावण की उस दशा को देखकर देवताओ ने हर्ष-ध्वनि की, कपियो ने सिंहनाद किया और राक्षस त्रस्त हो उठे । विष्णुभक्त होने के कारण हनुमान् ने, रावण के लिए दुर्वह लक्ष्मण को अपनी श्रेष्ठ शक्ति से सहज ही उठा लिया और शीघ्र ले जाकर उन्हें रामचद्र के समक्ष लिटा दिया । लक्ष्मण को लगी हुई शक्ति राम के तेज से निस्तेज हो उनसे छूटकर फिर रावण के रथ की ओर लौट गई । थोडी देर में लक्ष्मण सचेत हो गये ।

६५. राम-रावण का प्रथम युद्ध

वहाँ रावण भी मूर्च्छा से मुक्त हो अपने चचल धनुष को लेकर युद्ध के लिए सन्नद्ध हुआ । लक्ष्मण के मूर्च्छित होने से सभी वानर भयभीत होकर भाग आये थे । रावण को उद्धत गति से आक्रमण करने के लिए आते देखकर राम स्वय क्रुद्ध होकर उस देव-वैरी का सामना करने के लिए अपने धनुष का भयकर टकार करते हुए आगे बढे । तब पवन-पुत्र ने राम से कहा—'हे सूर्यकुल-तिलक, जब यह रावण रथ पर बैठकर आप से युद्ध करेगा, तब आप पैदल ही उसका सामना करें, यह कैसे उचित होगा ?' तब ऐरावत पर आरूढ होनेवाले इद्र की भाँति, राम हनुमान् के कधो पर बैठे और बडे रोष से धनुष का भयकर टकार करने लगे । रावण ने क्रोधोन्मत्त होकर राम को देखा और उन पर अग्नि-शिखाओ के सदृश बाणो की वर्षा आरभ की । राघव ने भी उस पर श्रेष्ठ बाण चलाये, किन्तु इन्द्र के शत्रु ने उन्हें बीच में ही काट डाला । तब राम ने उद्धत गति से अर्द्धचन्द्र बाण चलाकर राक्षसेश्वर का धनुष काट डाला और पाँच तेज बाण चलाकर उसे व्यथित कर दिया । तब रावण ने हुकार करके एक तीक्ष्ण बाण हनुमान् के ललाट पर चलाया । उस भयकर बाण को हनुमान् के ललाट पर लगते देखकर राम ने बडे क्रोध से अपना भाला सँभाला और उससे प्रहार करके रावण के सारथी को, अश्वो को, रथ को, ध्वजा को, छत्र को और चामरो को क्षणमात्र में नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और फिर सुभ्रक नामक शर रावण के वक्ष पर चलाया । उस शर के प्रहार से रावण अत्यत पीडित हुआ

और थर-थर काँपते हुए निश्चेष्ट हो गया। फिर, राम ने उद्दीप्त क्रोध से अर्द्ध-चन्द्र बाण का प्रयोग करके उसके दसो मुकुटो को नीचे ऐसे गिराया, मानो दसो दिशाओ में व्याप्त उस राक्षस के प्रताप को ही झटका देकर गिरा दिया हो। अपने उज्ज्वल मुकुटो की प्रभा से रहित हो रावण मन-ही-मन अत्यधिक दुखी हुआ और सुध-बुध खोकर खडा रहा। तब राघव ने रावण से कहा—'वानरो के साथ भयकर युद्ध करने के कारण तुम थके हुए हो। अत, मैं तुम्हारा वध किये बिना तुम्हें छोड़ देता हूँ। तुम शीघ्र लका को लौट जाओ।'

६६. रावण का खिन्न होकर लंका लौट जाना

तब रावण विरथ हो दु:खी मन, अकेले ही पैदल, लका की ओर चल पडा। वह उत्तप्त नि:श्वास छोड रहा था और उसका उद्दीप्त क्रोध बुझ गया था। उसका अत्यधिक गर्व चूर हो चुका था। उसकी शक्ति नष्ट-सी हो गई थी और उसका दर्प दलित-सा हो गया था। उसका मुख पीला पड गया था और वह बार-बार अपने सूखे हुए ओठों को आर्द्र करता हुआ जा रहा था और भय के कारण उसका कठ सूख रहा था। इस प्रकार जानेवाले रावण को देखकर सभी भूत तालियाँ पीटते हुए ठहाका मारकर हँसने लगे। सभी वानर जहाँ-तहाँ दौडते हुए, उछल-कूद करते हुए रावण का उपहास करने लगे। निदान रावण लका में पहुँच गया और अत्यधिक चिंता में डूबकर छटपटाने लगा। सिंह के हाथो में फँसकर भी, बचकर निकल आये हुए गज की भाँति, गरुड की पकड़ से छूटकर गिरे हुए त्रस्त सर्प की भाँति, रावण भयभीत हुआ। विद्युत् की-सी प्रभा से समन्वित, भयकर ज्वालाओ से युक्त तथा ब्रह्मास्त्र से भी अधिक शक्तिशाली राम के बाणो से अपने सहार की चिंता करते हुए वह बार-बार लू की-सी गरम साँसें छोड़ने लगा। लज्जित होने के कारण उसका साहस जाता रहा। वह सभा में स्थित दैत्यो को देखकर बोला—'हे दानववीरो, आज मेरा शौर्य और मेरी शक्ति मिट्टी में मिल गई। स्वाभाविक पराक्रम से सपन्न एक व्यक्ति राम-भूपाल, इस ससार में जन्मे है। मैं ने ब्रह्मा से वर प्राप्त किया था कि युद्ध में सुर, सिद्ध, साध्य, गरुड, गधर्व, राक्षस, पक्षी, यक्ष, किन्नर, उरग आदि किसी से भी मैं पराजित नही होऊँगा। तब मैंने नर तथा वानरो की उपेक्षा कर दी थी। मेरे दुष्कर्म ही मेरी विपत्ति का कारण बन गये है। मैं अपनी दुर्दशा का कैसे वर्णन करूँ? अब तुम लोग सावधानी से दुर्ग की रक्षा करो। द्वारो पर अधिक सख्या में रक्षको को नियुक्त करो। प्रहस्त आदि महान् वीर युद्ध करते हुए अपने प्राण खो चुके है। अब कौन ऐसा वीर है, जो राम-लक्ष्मण को जीतने की क्षमता रखता है? विविध युद्धो को करने में प्रवीण, सहज पराक्रमी राम-भूपाल पर आक्रमण कर सकने की क्षमता अब केवल मेरे अनुज कुभकर्ण के सिवा और किसमें है?'

६७. राक्षसों का कुंभकर्ण को जगाना

इसके पश्चात् दशकठ ने सबको देखकर कहा—'मेरा भाई छह मास तक लगातार सोने के पश्चात् जगा, सभा में आकर मेरे साथ मत्रणा की और फिर आज नौ दिन से सो रहा है। वह अवश्य शत्रुओ का सहार कर सकता है। उस अनुपम वीर को जगाकर किसी प्रकार यहाँ ले आओ।'

रावण के आदेशानुसार राक्षसो ने कई प्रकार के गंध-पुष्प और विविध मिष्टान्न आदि खाद्य पदार्थ लेकर कुभकर्ण की उस गुफा में प्रवेश किया, जो तीन योजन लबा था तथा सब प्रकार के सुख-सुविधाओ से पूर्ण होने के कारण भोगो का निवास, पाताल के समान महनीय, वज्रायुध की महिमा से समन्वित, इद्रलोक के समान ससार के श्रेष्ठ तेज से विलसित, अग्नि के निवास के समान, अत्यधिक भयकर यमलोक के समान, विविध मेदा, मांस आदि से युक्त होने के कारण (नैऋत) राक्षस के भवन के आँगन के समान, निरुपम वारुणी से युक्त होने से वरुणालय के समान, सुगधित वायु से युक्त पवन के निवास के समान, श्रेष्ठ निधियो से युक्त कुबेर के भवन के समान, श्रेष्ठ विभूति का आगार शिव के निवास के समान, तथा श्रेष्ठ पद्म-राग की प्रभा से समन्वित ब्रह्म-लोक के समान, सुशोभित थी। सोनेवाले कुभकर्ण के दीर्घ निःश्वासो से राक्षस कपित हो उठे, किन्तु जैसे-तैसे उसके निकट पहुँचे और निर्मल तथा विशाल स्वर्ण-पर्यंक पर, हस-तूलिका-तल्प पर शयन करनेवाले कुभकर्ण को देखा। वह अपने कधे पर कपोल टिकाये, सतत दीर्घ नि'श्वास छोडते हुए सो रहा था। उसके मुख पर श्रम-जल की बूँदें थी और उसके नेत्र किंचित् खुले हुए-से थे। उसके शरीर पर कर्पूर तथा चदन का लेप था और उसके वक्ष पर उज्ज्वल मणिमय हारो का समूह था। वह आनद में अपने आपको भूलकर निद्रा तथा कामिनियो के साथ रति-क्रीडा में सतत तल्लीन रहनेवाले के समान दीख रहा था और कदाचित् देवताओ पर कई बार विजय प्राप्त करने के संबध में स्वप्न देख रहा था। ऐसे कुभकर्ण को देखकर आगतुक राक्षस दुःखी होने लगे कि हाय, ब्रह्मा ने ऐसे महान् वीर को ऐसी निद्रा क्यो दी? उसके पश्चात् उन्होने उसके आगे भात की राशियाँ तथा महिष एवं वराह का पकाया माँस आदि सजाये, चदन तथा पुष्पो से उसकी पूजा की, धूप जलाया, दीपो से आरती उतारी और हाथ जोडकर उसकी स्तुति के पाठ किये। फिर, उन्होंने अशनि-घोष से भी अधिक भयकर ध्वनि की, निसानो का विपुल निनाद किया, भीषण भेरी-ध्वनि की, और सिंह के समान गर्जन किया। वह महाध्वनि पाताल-लोक में, नक्षत्र-पथ में सभी दिशाओ में तथा स्वर्ग में भी व्याप्त हो गई। इस पर भी कुभकर्ण नही जगा; इसके विपरीत वह और अधिक गभीर निद्रा में डूब गया। तब सभी राक्षसो ने गदा, मूसल, मुद् गर आदि से उसपर प्रहार किया। दस हजार भाले उसकी पसलियो में चुभोये। उस पर लगातार पहाड गिराये और उसकी छाती पर चढकर, हाथो तथा पैरो से ताडन किया। फिर भी कुभकर्ण नही जगा। तब उन्होने भीषण सिंहनाद करते हुए, शख बजाते हुए असख्य कुभ, पटह, भेरी, तुरही आदि का घोर निनाद किया। दस हजार भयकर राक्षस लगातार निसानो को बजाते ही रहे। इतनी ध्वनि होने पर भी कुभकर्ण नीलाद्रि के समान बिना हिले-डुले ही पडा रहा। तब राक्षसो ने उसे हाथी, घोडे, ऊँट, जगली भैंसे आदि जानवरो से रौंदवाया और बडे लट्ठो से उसका सारा शरीर चूर-चूर कर दिया और एक साथ सभी वाद्य बजाये। सारी लका इस ध्वनि से काँप उठी और वानर-सेना भी शकित होने लगी। इतना सब करने पर भी कुभकर्ण ऐसा सो रहा था, मानो उसके कान पर जूँ तक न रेंगी हो। तब कुछ राक्षस दिशाओ को कपायमान करते हुए भेरीनिनाद

करने लगे, कुछ पर्वत गुफाओ को प्रतिध्वनित करते हुए सिंह-सम गर्जन करने लगे, कुछ अपने हाथो में उसके केश लपेटकर नोचने लगे, कुछ उसके कर्ण-पुटो में प्रवेश करके उसके परदो को दाँतो से काटने लगे और कुछ अविराम गति से गदा, मुद्गर, खड्ग, मूसल आदि से उसके मुख तथा वक्ष पर प्रहार करने लगे। तब उस राक्षस की नीद थोडी उचटी। उसने एक जँभाई ली और फिर सोने लगा। तब राक्षसों ने उसे बडे-बडे रस्सो से बाँध दिया और एक सहस्र घट उबलता हुआ तेल उसके कानो में उडेल दिया; नथुनो में जलती हुई शलाकाएँ रखी, एक साथ भयकर गति से वे भेरियो का निनाद करने लगे और लगातार हाथी तथा घोडो से उसका वक्ष रौंदवाने लगे। तब कुभकर्ण किंचित् शकित-सा हुआ और सर्प के समान भयकर हाथो को फैलाया, थोडा-सा जगा, हुकार भरकर अँगडाई ली और अपने विशाल मुख को विकृत करते हुए जँभाई ली और आँखें खोलकर भयकर रूप धारण किये ऐसे बैठ गया, मानो उसने यह सोच लिया हो कि जब राम मुझे महान् सायुज्य पद ही देनेवाले हैं, तब मुझे इस निद्रा की क्या आवश्यकता है और अपनी निद्रा त्याग दी। उसका मुँह प्रलयकाल के सूर्य-बिंब के समान लाल था, और विंध्याचल की गुफाओ से निकलनेवाले पवन के समान उसकी उसासें चल रही थी और उसकी आँखें प्रलय-काल के अर्क-बिंब के समान लाल दीख रही थी।

इस प्रकार, उसके जगकर बैठने के पश्चात् सभी राक्षस दानवेश्वर के पास जाकर बोले—'हे देव, कई प्रकार से पीडा पहुँचाने के पश्चात् आपके अनुज जगे हैं, हम उनसे युद्ध में जाने की प्रार्थना करें या आपके सम्मुख उन्हें लिवा लायें? आप जो आज्ञा दें।' तब रावण ने बडी प्रीति से कहा—'उसको यहीं लिवा लाओ।'

६८. राघवों की युद्ध-यात्रा पर कुंभकर्ण का क्रुद्ध होना

रावण की आज्ञा के अनुसार राक्षस कुभकर्ण के पास गये। अपने समक्ष अडे हुए राक्षस-समूह को देखकर उसने कहा—'तुम लोगो ने मुझे क्यो जगाया? अब रावण के लिए कौन-सा कार्य आ पडा है? कहो, बात क्या है?' तब उन्होने कहा—'आप स्वय प्रभु रावण से ही सारी बातें जान लें? आपको लिवा लाने के लिए उन्होने हमें भेजा है। इससे अधिक हम और कुछ नही जानते।'

तब कुभकर्ण उठा, जी भरकर स्नान किया, सुदर वस्त्राभूषण पहने और प्रकाशमान किरीट धारण किया। उसके पश्चात् बडे मोद से राक्षसो ने कई प्रकार के मिष्टान्न, पकवान, मधु, महिष तथा सूकर का मास, भेजा तथा घी के बरतन लाकर उसके सामने रखे। कुभकर्ण ने पहले बडी प्रीति के साथ मेदा तथा मास खाया, छककर रक्त तथा मधु पिया और अत्यधिक सतुष्ट हुआ। तब सभी राक्षस प्रणाम करके उसके समक्ष खड़े हुए। तब कुभकर्ण ने उन्हें देखकर कहा—'दानवेश्वर अपने पुत्र तथा बधुजनो के साथ कुशल है? लका पर कोई विपत्ति तो नही आई? यदि उस पर कोई विपत्ति आ पड़ी है, तो मैं उस भय को दूर कर दूँगा। अमरेन्द्र से भी भिडकर उसे स्वर्ग से भगा दूँगा, प्रलय-काल की अग्नि को भी बुझा दूँगा, शत्रुओ के तीव्र दर्प को भग कर दूँगा।'

तब उपाक्ष ने हाथ जोड़कर कुभकर्ण से कहा—'हे राक्षसवीर, सुनिए, हमें देवता,

राक्षस तथा गधर्वो की ओर से कोई भय कभी नही हुआ । अभी मानवो ने हम में भय उत्पन्न किया है । देव-शत्रु रावण के जानकी को ले आने से क्रुद्ध होकर रविकुलोत्तम राम अत्यत पराक्रमी वानरो के साथ लका पर चढ आये है । इसके पहले अकेले एक वानर ने अक्षयकुमार का वध करने के पश्चात् लका को भस्म करके अपनी शक्ति को प्रकट किया था। अब इन महान् कपियो को जीतनेवाला कौन है ? राम देवो तथा असुरो से भी अधिक पराक्रमी है और रावण भी उनके साथ युद्ध करके हार गये है और त्रस्त होकर लका में लौट आये हैं ।'

इन वचनो को सुनकर उस निशाचर की आँखो से अग्नि-कण निकलने लगे । उसने भीषण क्रोध से उद्दीप्त होकर दाँत पीसते हुए कहा—'युद्ध में सभी वानरो तथा अत्यत पराक्रमी दाशरथियो को वध किये विना, वानरो के रक्त-मासो से राक्षस-समूह को तृप्त किये विना तथा स्वय राम-लक्ष्मण के रक्त का पान किये विना मैं कौन-सा मुँह लेकर रावण के सम्मुख आऊँ ? मै वैसा करने के पश्चात् ही वहाँ आऊँगा ।'

इस पर महोदर ने हाथ जोडकर प्रणाम किया और कहा—'हे वीर, दशकठ से मिलने के पश्चात्, आप ऐसा ही कीजिए । उनका आदेश लेकर आप शत्रुओ पर विजय प्राप्त कीजिए ।' तब उसने कहा—'ऐसा ही हो' और राक्षसो की ओर देखने लगा । तब उन राक्षसो ने इक्कीस मनुष्यो के मास का ढेर उसके सामने लगा दिया । फिर वे अस्सी महिष, सात सौ बकरियाँ, एक सहस्र सूकर, चार सहस्र मोटे मोटे खरगोश तथा छह सौ मृग ले आये और उनका वध करके अलग-अलग पकाया और उस मास को उसके सामने लाकर रखा । कुंभकर्ण सारे मांस को खाकर तृप्त हुआ । उसके पश्चात् उसने दो सहस्र घट मद्य पीकर ऐसी डकार ली कि सभी दिशाएँ विदीर्ण-सी हो गई । फिर अपनी मूँछो पर ताव देते हुए, आँखो को घुमाते हुए अपनी गति से सारी पृथ्वी को कँपाते हुए, अपनी गुफा से यो निकल पडा, मानो राहु के मुँह-गह्वर से मुक्त प्रलय-काल का सूर्य हो, या बलि-महाराज को दड देकर, सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त होनेवाले त्रिविक्रम हो ।

उस प्रकार दीर्घ तथा भीषण आकारवाले राक्षसवीर को आते देखकर किले के बाहर रहनेवाले सभी वानर त्रस्त हो उठे । कुछ वानर विस्मित हुए, कुछ जहाँ-तहाँ छिपने लगे, तो कुछ वानरो के पैर लडखडाने लगे, कुछ भयभीत हो उठे, तो कुछ मूर्च्छित होकर गिर पडे, कुछ समुद्र में कूद पडे, तो कुछ दाँतो-तले उँगली दबाये खडे रहे और कुछ राम की आड में जा खडे हुए । तब राम ने उन्हें देखकर लक्ष्मण को धनुष-बाण लाने की आज्ञा दी । तत्पश्चात् उन्होंने विभीषण को देखकर कहा—'हे विभीषण, पृथ्वी तथा आकाश का स्पर्श करनेवाले विशाल शरीर से सपन्न प्रलय-काल के मेघो के बीच चमकनेवाली बिजलियों के समान आभूषणो की काति से दीप्त तथा तीनो लोको को एक साथ निगलने योग्य मुँह से युक्त यह कौन है, जो वहाँ नगर के मार्ग से जा रहा है ? क्या, वह यमराज है, या प्रलय-काल का अनिल है, या प्रलय-काल का रुद्र है, या प्रलय-मारुत है, या प्रलय-काल का सूर्य है, या प्रलय-काल का शेष-नाग है, या प्रलय-मृत्यु है, या प्रलय-काल का वरुण है, या प्रलय-काल का यम है या प्रलय-काल का भैरव है या प्रलय-काल

के रुद्र के लिए प्रलय-रुद्र है ? ऐसा भीम-रूप हमने अबतक न कभी देखा, न उसके बारे में कभी सुना ही है । यह तो बताओ कि वह कौन है ? क्या वह दानव है या दैत्य है ? यह किस कुल का है ? वह कहाँ का रहनेवाला है ? इसका नाम क्या है ? इसे देखकर सभी वानर त्रस्त हैं, इसका आकार-प्रकार देखकर आश्चर्य हो रहा है ।'

६९. कुंभकर्ण का शाप-वृत्तांत

तब विभीषण ने राम को देखकर कहा—"हे देव, इस दैत्य का वृत्तांत सुनिए। यह विश्रवसु का पुत्र है और इसका नाम कुंभकर्ण है । रावण का भाई तथा महान् क्रूर है। देवताओ तथा दिक्पालो को पराजित करके उन्हें युद्धभूमि से भगा देनेवाला महान् बाहु-बली है । दीर्घशूल विविध आयुधो से युक्त तथा उद्धत शक्ति से संपन्न है । यह समस्त ब्रह्माण्ड को भी विदीर्ण करने की क्षमता रखता है । शक्ति में ब्रह्मा से कम नहीं है। जन्म के समय से ही यह अपने कुरूप मुँह से जीवधारियो को निगलने लग गया था । इस प्रकार, जीव-धारियो को निगलते देखकर इन्द्र ने अपना वज्रायुध इस पर चलाया, तब इसने क्रोध में आकर ऐरावत का दाँत उखाड़ लिया और उससे इन्द्र पर प्रहार किया। उस प्रहार से इन्द्र मूर्च्छित हो गया । उसके पश्चात् वह सभी देवताओ को साथ लेकर ब्रह्मा की सेवा में पहुँचा और उन्हें प्रणाम करके निवेदन किया—'हे देव, कुंभकर्ण नामक राक्षस पृथ्वी के जीवो का नाश कर रहा है और सुरो को पीडित कर रहा है । वह पर-स्त्रियो पर बलात्कार कर रहा है और हठ करके समस्त ससार का नाश कर रहा है । यदि वह ऐसे ही अत्याचार करता रहा, तो विश्व का सर्वनाश निश्चित है ।'

"उनकी बातें सुनकर कमलासन मन-ही-मन बहुत ही क्रुद्ध हुए और सभी राक्षसो को अपने समक्ष बुलाकर उनमें कुंभकर्ण का भयकर रूप देखा । उसका रूप देखकर स्वयं ब्रह्मा को भी आश्चर्य हुआ । उन्होने कहा—'ऐसा लगता है कि यह समस्त ब्रह्माण्ड को निगल जायगा । इसका आकार-प्रकार देखकर स्वय मुझे भी भय लग रहा है । जब इसका रूप इतना भयकर है, तो क्या, यह त्रिनयन शिवजी को भी युद्ध में हरा नही देगा ?' उसके पश्चात् ब्रह्मा ने ससार के प्राणियो का वध करने से उसे रोकने का विचार करके कहा—'क्या, तुम्हारा जन्म पुलस्त्य के उत्तम वंश में इसलिए हुआ कि तुम अपना शौर्य दिखाकर सभी लोको को त्रस्त करो और सभी प्राणियो का नाश करो ?' फिर, उन्होंने मृत्यु के समान शाप देते हुए कहा—'तुम निरतर सोते रहो । वर्फ के वज्र के-से इस शाप के लगते ही कुंभकर्ण खड़ा रह नही सका और तुरत निद्रा के वशीभूत हो गया ।'

"तब रावण ने ब्रह्मा को प्रणाम करके कहा—'हे देव, आप इस पर कृपा-दृष्टि कीजिए । स्वय पौधा लगाकर फिर स्वय उसको कहीं काटते । यदि अपने आकार के कारण यह दूसरो को कष्ट पहुँचाता है, तो उचित यही है कि उसे अच्छा उपदेश दिया जाय । ऐसे शाप से उसे दग्ध करना न्यायोचित नही है । इसके शाप का अंत कैसे होगा, इसकी भी व्यवस्था दीजिए ।' तब ब्रह्मा ने रावण से कहा—'यह लगातार छह मास तक सोता रहेगा (प्रत्येक छह मास के बाद) सिर्फ एक दिन यह जगा हुआ रहेगा ।' हे देव, उसी समय से वह निश्चित होकर सोता और जागता रहता है । आपके दिव्य बाणो की भयकर

अग्नि-ज्वालाओं के समक्ष न टिक सकने के कारण असमय ही रावण न इसे जगाने के लिए राक्षसो को भेजा । इसलिए यह युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर राजा के अतःपुर में जा रहा है । बहुत शीघ्र यह रावण की आज्ञा लेकर हम पर आक्रमण करने के लिए आयगा। उसके आने के पहले आप सारी कपि-सेना में यह घोषित करवाइए कि कोई इसके आकार को देखकर युद्ध-क्षेत्र से भाग न जाय, यह दनुज नही है, यह यत्र की सहायता से बना हुआ भयकर रूपवाला काठ का एक पुतला है । इस प्रकार घोषित कराकर आप वानरो का भय दूर कर दीजिए और उन्हें युद्ध के लिए सन्नद्ध कीजिए।" तब राम ने नील को ऐसी घोषणा करने की आज्ञा देकर भेजा ।

कुभकर्ण को आते देखकर नगर की स्त्रियाँ उस पर फूलो की वर्षा करने लगी। निदान, कुभकर्ण चद्रिका के निवास-सदृश सुशोभित होनेवाले उस सभा-मडप में ऐसे पहुँचा, जैसे उज्ज्वल किरणो से सुशोभित होनेवाला सूर्य धवल मेघ-समूह में प्रवेश करता हो । वहाँ पहुँचकर उसने अपने अग्रज को प्रणाम किया, तो रावण ने उसे बडे प्रेम से अपने हृदय से लगा लिया और उसे एक स्वर्णासन पर बिठाया । उसके पश्चात् कुभकर्ण ने अपने अग्रज को देखकर कहा—'हे असुरनाथ, आपका मुझे जगाने का क्या कारण है ? किसने आपका अपकार किया ? मै किसे मार डालूँ ? क्या आज्ञा है ?'

तब रावण ने कुभकर्ण से कहा—'अपनी निद्रा की अधिकता के कारण यहाँ के कार्यों की गति-विधि से तुम अनभिज्ञ हो । इसलिए मै तुम्हें सभी बातें समझाता हूँ, सुनो। दशरथ-नदन (राम) सुग्रीव को मित्र बनाकर समुद्र पर सेतु बाँधकर मुझ पर चढाई करने के लिए आया है और अपनी सेना के साथ लका को घेरे हुए पड़ा है । उससे युद्ध करने गये हुए प्रहस्त आदि वीर राक्षसो का उसने सहार किया है, किन्तु उस युद्ध में एक भी वानर-वीर मरा नही है । इसलिए तुम उन राम-लक्ष्मण को जीतकर वालि-पुत्र तथा सूर्य-नंदन का वध करो और लका के यश की रक्षा करो ।'

७०. कुंभकर्ण का हितोपदेश

रावण के ऐसे दीन वचनो को सुनकर कुभकर्ण ने रावण से कहा—"उस दिन एकात में सभी मत्रियो ने जिस विपत्ति की सभावना की थी, वही आज अचूक रूप से प्रत्यक्ष हुई है । यह किसी भी प्रकार टलनेवाली नही है । जो मदाध होकर, आगे-पीछे का विचार किये बिना कार्य करता है, वह सब प्रकार से हानि उठाता ही है; ऐसा व्यक्ति आपके सिवा और कौन हो सकता है ? जो राजा अपने बुद्धिमान् मत्रियो की मत्रणा के अनुसार कार्य करता है, उसे अपने तथा मत्री दोनो के उत्साह तथा शक्ति से अगणित फल प्राप्त होगा । राजा को चाहिए कि वह देश और काल का विचार करे, जन तथा धन को समृद्ध रखे, किसी कार्य के प्रारभ करने के पूर्व उसके सबध में सोच-विचार कर ले, उसमें पड़ने-वाले विघ्नो का निवारण करे और कार्य में कृत-कृत्य होकर सतत राज्य-सुख का आनद प्राप्त करते हुए पृथ्वी का पालन करे । उसे शत्रु के बल तथा शक्ति का मूल्याकन करके, यदि शत्रु अपने से बलवान् हो, तो उससे सधि का प्रस्ताव करना चाहिए। यदि शत्रु अपने समान बलशाली हो, तो उसके विरुद्ध अपना बल तथा पराक्रम प्रकट करके, उसे अपने वश में

कर लेना चाहिए। यदि शत्रु अपने में बलहीन है, तो उस पर सारी शक्ति से आक्रमण कर देना चाहिए। अवसर देखकर शत्रु-सेना पर आक्रमण करके शत्रुओ को जीतने का उपाय सोचना चाहिए। यदि शत्रु उद्दण्ड होकर आक्रमण करे, तो उनमें फूट डालने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि वह महान् शक्तिशाली होने के कारण अजेय हो, तो उसकी शरण में जाना चाहिए। इन छहो नीतियो को जानकर जो राजा व्यवहार करता है, वह अवश्य उन्नति करेगा। साम, दान, भेद तथा दड के चारो उपायो को जो सतत काम में लाता रहता है, उसके लिए अन्य नीति-शास्त्रो की आवश्यकता नही है। जो पर-धन, पर-स्त्री में अपना चित्त लगाता है, वह अपने सारे वश का नाश करता है।"

कुभकर्ण के इन वाक्यो को सुनकर रावण क्रोध-विवश हो कहने लगा--'मैं अग्रज हूँ, इसका विचार किये विना तुम यहाँ आकर मुझे उपदेश दे रहे हो ? अब यह प्रलाप क्यो ? चाहे कैसे भी हो, मैंने यह कार्य किया है। अव इसे सँभालना तुम्हारा धर्म है न? कहो।' तव कुभकर्ण ने कहा--"हे दानवेन्द्र, मैं अवश्य युद्ध करने के लिए जाऊँगा। किन्तु एक और वात सुन लीजिए। एक दिन की वात है। मै निद्रा से जगने के पश्चात् अत्यधिक प्राणियो को खाकर एकात में बैठा हुआ था। उसी समय अनघ नारद वहाँ आये। मैंने उनके निकट जाकर कहा—'हे अनघ, आप इतनी शीघ्रता से कहाँ से आ रहे है और कहाँ जा रहे है ? कृपया वतलायें।' तव उन्होने कहा--'मै कनकाद्रि से आ रहा हूँ। मै वहाँ की बातें तुम्हें सुनाऊँगा, सुनो। कनकाद्रि पर कमलासन (ब्रह्मा); फाल-लोचन (शिव); पकजनाभ (विष्णु); पाकशासन, अनल, यम, वरुण, अनिल, यक्षराज कुवेर, चद्र, सूर्य आदि ग्रह; सिद्ध, मुनि, किन्नर, गधर्व, गीर्वाण, गरुड, पन्नग तथा गुह्य-प्रमुख आदि लोगो की एक सभा एकत्रित हुई थी। उस सभा में सुर-गुरु बृहस्पति ने कहा—'दशकठ हमारी उपेक्षा करके अत्यधिक उद्दण्ड हो सारे ससार को त्रास दे रहा है। उसने अपनी प्रचड शक्ति से युद्ध में इन्द्र को परास्त किया है, यम को भगा दिया है, वरुण को जीत लिया है, अपने वल का प्रदर्शन करके कुबेर को अपने अधीन कर लिया है, उद्धत गर्व से कई धर्मात्माओ को वदी वनाकर पीड़ित किया है, रवि-चद्र का तेज मद करके उनको अपनी आज्ञा के अनुसार चलने के लिए बाध्य किया है, ग्रहो को पीडित किया है, मत्र-पूत यज्ञो को नष्ट किया है, महान् उद्यान-वाटिकाओ को उजाड़ दिया है और असख्य उत्तम स्त्रियो को कारागार में डाल दिया है। ऐसे भयकर कार्य करते हुए उसने सभी भुवनो को त्रस्त कर दिया है। अत, आप उस दशानन का नाश करने का कोई उपाय सोचें।'

"बृहस्पति के वचनो को सुनकर ब्रह्मा ने सभी देवताओ से कहा—'मैंने पहले उसे वर दिया था कि वह सुर, गरुड, उरग, असुर तथा यक्षो के हाथो से नही मरेगा। अब मैंने इसका प्रतीकार सोचा है, सुनो। उसने मुझसे मनुजो की चर्चा नही की थी और वरदान के समय मैंने भी इसकी चर्चा नही की। अत, युद्ध-क्षेत्र में केवल मानव उसे परास्त कर सकेंगे। इसलिए आप आदिविष्णु, कमलनाभ तथा लोकवद्य मुकुद से प्रार्थना कीजिए कि वे मर्त्य-लोक में जन्म लें।' इसके पश्चात् देवताओ तथा मुनियों ने वैसे ही किया।

हरि ने भी मर्त्यलोक में जन्म लिया है ।' इतना कहकर नारद चले गये । हे दैत्य-राज, सूर्य-वंश-तिलक आदि देव ही है, वे मनुज नही है । अत, सीता को उन्हें सौंप दीजिए। उनकी शरण लीजिए और सभी वानरो को देवता जानिए । हे दानवेन्द्र, मेरी बात सत्य मानिए ।"

७१. रावण का कुंभकर्ण के उपदेश का तिरस्कार करना

कुंभकर्ण के इन वचनो को सुनकर दशानन मन-ही-मन संताप की अग्नि में जल गया और थोडी देर तक मौन बैठा रहा । फिर, दीर्घ निश्वास छोडकर अत्यत चिंताक्रान्त हुआ और साथ-ही-साथ भयभीत भी, किन्तु अपने भय को प्रकट किये बिना उसने क्रुद्ध होकर अपने अनुज को देखकर कहा—"बार-बार 'विष्णु', 'विष्णु', कहकर क्या प्रलाप कर रहे हो ? इतना भय तुम्हें कैसे होने लगा। स्वय विष्णु से भी मैं नही डरता, तब मानव-वेशधारी विष्णु से मैं क्यो भयभीत होऊँगा ? मुझे बार-बार ऐसा भय क्यो दिखाते हो ? भले ही तुम भयभीत हो जाओ । चाहे राघव विष्णु ही क्यो न हो, उसका अनुज इन्द्र ही क्यो न हो, सुग्रीव हर ही क्यो न हो उन्हें मुझसे युद्ध करना ही पडेगा । समस्त नीतिशास्त्रो के ज्ञाता होते हुए भी तुम चाहते हो कि जिस राम से मैंने विरोध ठान लिया है, उसके साथ हीन मित्रता कर लूँ ? नीति-शास्त्र का तुम्हारा सारा ज्ञान आज निष्फल हुआ । युद्ध-भूमि में हमारा सहार करके, मुनियो तथा सुरो की रक्षा करने का विचार करके, जगदेकरक्षक तथा कमलनाभ ने अपने देवत्व को त्यागकर, धोखे से मानवत्व को धारण कर लिया है और इस जगत् पर राम होकर जन्म लिया है, भला, उससे हमारी सधि कैसे सभव है ? मैं अपने गर्व को छोडकर वानरो के आश्रय में रहने-वाले उस राम के पास कैसे जाऊँ ? यही कमलनाभ वामन का रूप धरकर वलि के यज्ञ में गया, तीन चरण पृथ्वी दान में ली और फिर उसे वदी बनाया । इसने तुरन्त उपकार करनेवाले का अपकार कर दिया । ऐसी दशा में हम विरोधियो का सहार किये बिना वह रहेगा क्यो ? हमारे और राम के मध्य सधि हो कैसे सकती है ? जब हम दोनो ने इन्द्र-लोक पर चढाई की थी और अपने बाहुबल का प्रदर्शन करते हुए महान् पराक्रमी इन्द्र आदि देवताओ को परास्त किया था, तब यह विष्णु कहाँ था ? क्या, तुमको इसलिए मैंने जगाया कि मैं तुमसे उपदेश सुनूँ ? भला, तुम्हें यह भय क्यो हुआ ? प्राणो के भय से इतनी बातें क्यो करते हो ? यदि तुम्हें प्राण प्रिय है, तो तुम कुशलपूर्वक रहो । मैंने तो दीर्घ आयु पाई है, तीनो लोको को जीता है, कई प्रकार के राज-सुखो का अनुभव किया है और अपना अनुपम तेज समस्त ससार में व्याप्त किया है । मैं और लोगो के समान हीन पराक्रमी राम को प्रणाम नही करूँगा । मैंने तुम्हें युद्ध में जाने का आदेश दिया, तो जाने की इच्छा नही रखते हुए ऐसे वचन तुम क्यो कहते हो ? अब तुम जाकर सुख से सो जाओ । शत्रु सोनेवाले को नही मारते । मैं स्वय राम-लक्ष्मण का, सुग्रीव का तथा अन्य भयकर-पराक्रमी वानरो का सहार करूँगा । सभी देवताओ का वध मैं स्वय करूँगा । विष्णु को भी मैं ही मार डालूँगा । उस विष्णु के अनुचर-शूरो को युद्ध में जहाँ भी मिलेंगे, मैं अपनी शक्ति दिखाते हुए मारूँगा । तुम कायर की भाँति चिरकाल तक जीवित रहो ।"

इतना कहने के पश्चात् रावण ने फिर कुंभकर्ण से कहा—'मैं जानता हूँ कि लक्ष्मी स्वयं सीता होकर इस पृथ्वी पर जन्मी है। मैं जानता हूँ कि विष्णु स्वयं रघुराम होकर जन्मे है। मैं यह भी जानता हूँ कि युद्ध में राम के हाथो मेरी मृत्यु अवश्य होगी। अब तुमसे मैं क्यों छिपाऊँ? मैं काम-वश हो सीता को नही लाया; क्रोधाभिभूत होकर बलात् मैं सीता को नही लाया, युद्ध में रघुराम के हाथो मरकर वंदनीय विष्णु का परम-धाम प्राप्त करने के निमित्त ही मैं सीता को लाया हूँ।'

इस प्रकार के वचन कहनेवाले रावण को देखकर कुंभकर्ण ने कहा—'हे दानवनाथ, जब मैं आपकी सेवा करने के लिए प्रस्तुत हूँ, तब आप व्याकुल क्यो होते है? आप आनंद से रहिए। मैं शत्रु का नाश करूँगा।' इसके पश्चात् उसने सारी सभा की ओर एक बार ध्यान से देखा और कहा—'हे इन्द्र के शत्रु, इस सभा में निर्मल चरित्रवान्, विभीषण नहीं दीख रहा है। वह कहाँ है?' तब रावण ने कहा—"राम-लक्ष्मण के लंका पर आक्रमण करने का समाचार सुनकर उस संबंध में परामर्श करने के लिए सभी लोग एकत्र हुए थे। निद्रा के वशीभूत होकर तुम तो शीघ्र यहाँ से चले गये। तब विभीषण ने राम के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करके उसकी प्रशंसा में ऐसे हृदय-विदारक शब्द मुझसे कहे कि क्रोध में आकर मैंने दृढता के साथ कहा—'यदि तुम यहाँ रहो तो मैं तुम्हारे प्राण ले लूँगा। तब वह मुझे छोड़कर राम की शरण में चला गया और अब वही है।"

७२ कुंभकर्ण की गर्वोक्तियाँ

तब कुंभकर्ण ने सोचा कि अब परिस्थिति बडी विकट हो गई है, मुझे अवश्य युद्ध में जाना ही चाहिए। अब मैं (अपनी गुफा में) लौट नही सकता। इस प्रकार, निश्चय करके उसने रावण के सामने दृढता से यह प्रतिज्ञा की—"मैं यमराज से भी भिड़कर उसका नाश करूँगा, ब्रह्मा को भी पकडकर उसका मर्दन करूँगा, आदिशेष को भी पकडकर उसे चारो ओर आकाश में घुमाऊँगा, विहगेन्द्र (गरुड़) को भी त्रस्त करूँगा; प्रलयाग्नि को भी निगल जाऊँगा। समुद्र का सारा जल पी जाऊँगा; विष्णु को भी युद्ध में परास्त कर दूँगा। रुद्र को भी नामावशिष्ट करूँगा, नैऋत को भी पकड़कर खड-खड कर दूँगा, मृत्यु का भी गला घोट दूँगा, वरुण का भी तेज नष्ट करूँगा, कुबेर का भी पेट चीर डालूँगा; सूर्यबिंब को भी अपनी मुष्टि में कस लूँगा और ब्रह्माण्ड को भी ठुकरा दूँगा। ऐसी दशा में मेरे उद्धत रण-कौशल के समक्ष, इन वानरो को निगल जाना कौन बड़ा काम है? हे असुरेन्द्र, मैं अवश्य इन कपियो को पहाड़ो पर भगाकर, उन मानवो का वध कर दूँगा, आप निश्चिंत रहिए। जब राम मेरे हाथ से मारे जायँगे, तब सीता अनाथा बन जायगी और आपकी कामना पूरी होगी।'

इन बातो को सुनकर महोदर ने बाहुबली कुंभकर्ण से कहा—'हे वीर, तुमने श्रेष्ठ कुल में जन्म लिया है और तुम्हारा यह उत्कट गर्व उचित ही है; किन्तु नीति तथा अनीति का विचार किये बिना क्या कोई वीर ऐसे शत्रु-वध की प्रतिज्ञा करता है? भयंकर सिंह की भाँति क्रोधोन्मत्त होकर प्रखर तेज से विलसित होनेवाला राम, केवल मानव नही है, स्वयं विष्णु इस रूप में आया हुआ है। एक ही बाण से वालि का संहार करने-

वाले उस श्रेष्ठ वीर को जीतना, क्या, तुम्हारे लिए सभव है ? उद्दण्ड पराक्रमी तथा महाबली राम पर तुम्हें अकेले आक्रमण करने की सलाह हम नही देते । तुम सेना के साथ जाओ और महाबली राम पर विजय प्राप्त करो ।'

इसके पश्चात् उसने दशकंठ से कहा—'हमारे रहते आप चिंता क्यो करते है ? क्या, हम आपका मनोरथ पूर्ण नही करेंगे ? जानकी को प्राप्त करने के लिए आप इतने व्याकुल क्यो है ? मै, सपाति, द्विजिह्व, तथा गभीर पराक्रम-सपन्न बाहुबली कुभकर्ण, सब एक साथ मिलकर जायँगे और राम पर विजय प्राप्त करेंगे । फिर तो, आपको वैदेही प्राप्त होगी ही । ऐसा नही भी हो सकता और हम राम के उग्र बाणो के आघात से क्षत-विक्षत हो जायँगे, तो भी हम आपके पास लौटकर आयेंगे और आपके चरणो में प्रणाम करके यो ही कहेंगे कि हे देव, हम भयकर वानर-सेना के साथ राम लक्ष्मण का वध करके उन्हें खा गये है । तब आप बडे मोद से हमें हृदय से लगाकर हमारे प्रति आदर दिखाते हुए, उस समाचार को सारे नगर में प्रकट करेंगे । उस वार्त्ता को सीता सत्य मानेगी और पति की आशा छोडकर आपकी बात मान लेगी ।'

तब कुभकर्ण ने क्रुद्ध होकर असुरेन्द्र को देखकर कहा—'इन सब झूठी बातो से क्या प्रयोजन है ? मेरे बाहुबल को देखिए । मै अवश्य ही राम को जीत लूंगा । आप निश्चिन्त रहिए ।' रावण भी बडे उत्साह से, अपने पुनर्जन्म की प्राप्ति को निकट देखकर बडे आनद से बोला—'मुझे विश्वास है कि तुम युद्ध में राम-लक्ष्मण को अवश्य जीत लोगे । अनुपम शक्ति तथा शौर्य में तुम्हारी समता कर सकनेवाला कोई वीर नही है । यह सत्य है । शूल आदि श्रेष्ठ आयुधो के साथ तुम युद्ध करो ।' इस प्रकार कहते हुए बड़ी प्रीति से उसने कुभकर्ण को अनुपम रत्नाभरण आदि भेंट किये ।

७३. कुंभकर्ण का युद्ध के लिए जाना

तब रावण का भाई उन आभूषणो को पहनकर उज्ज्वल आभा से दीप्त हो उठा । स्वर्ण-कवच धारण करके वह सध्या के मेघो से आवृत पर्वत की भाँति तथा बहु-रत्न-कलित मेखला धारण करके वह वासुकि से आवद्ध मदराचल के समान सुशोभित होने लगा । उस राक्षसपुगव ने रणोत्साह से भरे, अपने हाथ में तीनो लोको में अपनी भयकर दीप्ति व्याप्त करनेवाला, विजय-प्रदायिनी शिव के शूल से भी सुदर, अपनी नोक से निकलनेवाली ज्वालाओं के द्वारा अग्निकण बिखेरनेवाला, सदा पूजित, रत्न-प्रभा से भासमान तथा शत्रु-वीरो के रक्त से रजित अनुपम शूल धारण किया । उसके पश्चात् उसने अपने भाई को प्रणाम किया और उसके आशीर्वाद प्राप्त करके, उस सभा-मडप से अपने कार्य में तत्पर हो अत्यंत वेग से यो चल पडा, मानो उसके प्राण उससे यह कह रहे हो कि हे कुभकर्ण, इस दु:खद शरीर में हम रहना नही चाहते, शीघ्र इसे युद्ध-भूमि में त्याग दो, चलो, और उसे जैसे खीचे लिये जा रहे हो । तब राक्षस-वीरो का समूह भी उसके पीछे-पीछे युद्ध के लिए निकल पड़ा । वे सब घोडो पर, गजो पर, रथो पर, सिंहो पर चढकर काजल के पर्वतो के समान सुशोभित होते हुए, अपने विशाल दष्ट्रो की दीप्ति चारो ओर फैलाते हुए, इस प्रकार जा रहे थे, मानो क्रूरता ने ही एक स्थान पर एकत्रित हो पिंड-रूप धारण कर लिया हो

तथा शौर्य स्वयं रूप धारण करके चल रहा हो। युद्ध करना ही एकमात्र लक्ष्य बनाकर, बड़े गर्व से झूमते हुए, परिघ, भाले, गदा, कोदंड, करवाल, मूसल, मुद्गर, परशु, चक्र आदि आयुधों से सज्जित होकर पदाति-सेना उद्दण्ड गति से चलने लगी।

इस प्रकार की सेना से युक्त हो, दर्प से भरे हुए कुंभकर्ण युद्ध के लिए रवाना हुआ, तो नगर की स्त्रियों ने उस पर पुष्प-वर्षा की; उसके ऊपर चंद्र-मंडल-समान छत्र शोभायमान होने लगे और चंद्रमुखी स्त्रियाँ चामर डुलाने लगीं। उस समय घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिंघाड, रथों का विपुल रव, निसानों की घोर ध्वनि, पटह, भेरी, शंख तथा नगाडों का भीषण रव एवं घंटा, मृदंग और डंकों के विपुल नाद की सम्मिलित ध्वनि से पृथ्वी विदीर्ण-सी होने लगी, समुद्र आलोडित हुए, दिशाएँ फट गईं, आकाश काँप उठा, दिग्गज धँस गये, सभी जगत् त्रस्त हुए और पर्वत टूटकर गिरने लगे। उस समय काले-काले बादल ऐसे घोर गर्जन करते हुए बिजलियाँ गिराने लगे, मानो वे राघव के अनुचर बनकर आये हों और कुंभकर्ण को डाटकर कह रहे हों—'हे अत्याचारी दुष्ट दानव, तुमने संसार को जो दुःख दिया था, उसका फल अब भोगो।' तारे टूटकर पृथ्वी पर ऐसे गिरने लगे, मानो कह रहे हों—'हम इस बात के साक्षी हैं कि अत्यधिक दहाड़ते हुए इठलानेवाले इस राक्षस का अंग-भंग सुग्रीव ने किया था और वह राघव के हाथों से हत होनेवाला है।' प्रतिकूल पवन ऐसा चलने लगा, मानो वह अपने पूर्ववैर का प्रतिशोध लेने के लिए राम की आज्ञा से वेग से चल रहा हो। पृथ्वी इस प्रकार कंपित होने लगी, मानो वह भयभीत हो रही हो कि जब इस अधम राक्षस को राम मार डालेंगे, तब मुझ पर गिरेगा, उस समय न जाने मुझे कितनी पीड़ा होगी। खग ऐसे मँडराने लगे, मानो कह रहे हों—'हे नीच राक्षस, हमें पक्षपाती (पंखों से उड़नेवाले) मत समझो, तुम राघव के खगों से (बाणों से) अवश्य मरोगे।' किन्तु इन सबकी उपेक्षा करते हुए, दुगुने साहस तथा उत्साह के साथ, अपनी क्रुद्ध दृष्टियों से ही वानर-समूह को भस्मीभूत कर देने का संकल्प करके आनेवाले उस अनुपम वीर ने दुर्ग के बाहर रहनेवाले कपि-समूह को देखा। कपियों ने भी उस कुंभकर्ण को देखा और प्रचंड वायु के आघात से भागनेवाले मेघों के समान जहाँ-तहाँ भागने लगे। कुंभकर्ण ने शीघ्र दुर्ग के बाहर निकलकर सिंह-गर्जन किया। उस दहाड को सुनकर सभी वानर मूर्च्छित होकर गिर पड़े, समुद्र आलोडित हुआ और भूमि काँपने लगी तथा देवताओं के मन में भय प्रवेश कर गया।

७४ वानर-कुंभकर्ण का युद्ध

कुछ ही समय के पश्चात् वानर-वीर सचेत हो गये और यम-सदृश आकारवाले उस कुंभकर्ण से भिड गये। वे सिंह-गर्जन करते हुए, वृक्षों, पर्वतों और शृंगों को फेंकने लगे। दानव-सेना भी बड़े वेग और तत्परता से उनसे जूझ गई। जैसे प्रलयकाल में समुद्र आपस में भिड जाते हैं, वैसे ही दोनों सेनाएँ आपस में भिड गईं। राक्षसों ने रथ पर आरूढ होकर दनुओं के शरीरों, हड्डियों, जाँघों तथा पसलियों को चूर-चूर कर दिया; रथ के अश्वों से, उनकी आँखें कंठ, सिर आदि कुचलवा दिये और दिशाओं को भेदनेवाले अपने

खड्गो से वानरो के शरीरो के खड-खड कर दिये । इससे सतुष्ट न होकर उन्होने अपने तीक्ष्ण बाणो से पृथ्वी तथा आकाश को ढक दिया और इस प्रकार बडी भयकर रीति से वानरो का सहार किया । वानरो ने भी रथो पर कूदकर अपने पदाघातो से उनको पीछे की ओर ढकेल दिया, उनका जूआ पकडकर पृथ्वी पर गिरा दिया और उन्हें चूर-चूर करके दूर फेंक दिया, तीव्र वेग से सारथियो पर कूदकर, अपने पैरो से उन्हें कुचल दिया, उन्हें पृथ्वी की ओर घसीटकर उनके सिर काटकर फेंक दिये और बडी तीव्र गति से रथो पर कूदकर राक्षस-वीरो को विविध रीतियो से मारने लगे । यह देखकर राक्षस अत्यधिक रोष से वानरो को घेरकर अपने मदमत्त हाथियो को उन पर चलाकर, उनकी सूँडो से वानरो को नीचे पटकवाते थे और उनके कपाल तथा भेजा को हाथियो के पैरो के नीचे कुचलवाकर मिट्टी में मिला देते थे । गजो पर आरूढ राक्षस-सैनिक भयकर बाण चलाकर वानरो को खंड-खंड करके नीचे गिरा देते थे । तब कपि भी क्रोधोन्मत्त होकर हाथियो के दाँतो को पकडकर, उनको झकझोर कर, उनके गड-स्थलो पर पदाघात करके उन्हें फोड देते थे । फिर, उन हाथियो की टाँगें पकडकर उन्हें पृथ्वी पर ऐसे पटक देते कि उनका रक्त, मास और हड्डियाँ एक साथ मिलकर एक लोंदा बन जाता । उसके उपरान्त वे गजो पर आरूढ राक्षसो पर अत्यत रौद्र गति से आक्रमण करके, उनके धनुष, हाथ, सिर, धड, कवच आदि नीचे गिराकर उन्हें मार डालते । अश्वारोही राक्षस-सैनिक एक साथ मिलकर, डींग हाँकते हुए अश्वो को वानरो पर दौडाकर उन पर कई प्रकार से शर-वर्षा करते और अपने पैने खड्गो से शत्रु-सैनिको के खड्गो को काट देते थे । वानर भी क्रुद्ध होकर घोडो के पैर या पूँछ पकडकर या तो चारो दिशाओ में उछालकर फेंक देते थे, या आकाश की ओर उछाल देते थे, या पृथ्वी पर पटक देते थे या चीर डालते थे, या पदाघातो से चूर-चूर कर डालते थे । फिर, अश्वारोहियो को बडे साहस के साथ पृथ्वी पर पटककर मार डालते थे । तब पदचर राक्षस बडे दर्प के साथ आँखो से अग्नि-वर्षा करते हुए उद्दण्ड गति से वानरो पर बाण चलाने लगे । वे उन्हें भालो से चुभोते थे, बरछियो से भोकते थे, पैने खड्गो से काटते थे, मुद्गरो से चूर-चूर करते थे और अन्य अस्त्रो से भयकर प्रहार करके उनका सहार करते थे । वानर भी उन पदचर सैनिको पर टूट पडते और उनके विविध अस्त्रो को तोड देते थे । वे राक्षसो को चरणो तथा हथेलियो से मारकर उनके कवचो को फाड देते थे, दोनो हाथो से दो राक्षसो को पकडकर उन्हें एक दूसरे से टकराकर नीचे गिरा देते थे, उनके शिरो तथा धडो को काट देते थे और इस प्रकार वे असख्य राक्षसो को मार डालते थे ।

इस प्रकार, दोनो सेनाओ में जब घोर युद्ध चलने लगा, तब युद्ध-भूमि राक्षसो की मृत्यु-देवता के क्रीडा-सरोवर के समान भयकर दीखने लगी । उसमें रक्त जल की भाँति, मास-पेशियाँ विकसित लाल कमल के समान, मुख कमल के जैसे, नेत्र कुमुदो की पंक्ति की भाँति, आँतें मृणालो की भाँति, जमा हुआ भेजा फेन के समान, विपुल केश-समूह भ्रमरो के समूह की भाँति, असख्य शस्त्र लहरो की भाँति, चामर-समूह हसो की नाईं और धूलि पराग की भाँति दीखने लगी । सुर तथा खेचर बहुत ही आनदित दीखने लगे । युद्ध के

समय जब कपि-सैनिक राक्षसो के प्रहारो से अत्यधिक दु.खी होते थे, तब उनके नायक अत्यधिक क्रोध से राक्षसो पर पर्वतो और वृक्षो की ऐसी अविरल वर्षा करते कि दानव धैर्य खोकर कुंभकर्ण की आड में जाकर शरण लेते । तब कुभकर्ण ने उन दैत्य वीरो को आश्वस्त करके सिंह-नाद करते हुए, धैर्य बँधाया और कहा कि 'भागना मत, भागना मत।' उसके पश्चात् वह (शत्रुओ पर) आक्रमण करते हुए आनेवाले वानरो को अपनी क्रुद्ध दृष्टियो से ही मार डालनेवाले की भाँति अपना शूल लेकर, दहाड़ते हुए, उन पर टूट पड़ना । रावण का भाई, वह राक्षस-वीर कुभकर्ण, कपि-समूह के भाग्य-निर्णायक के समान अथवा क्रुद्ध होकर आनेवाले यम के समान उन वानरो को मारने लगा। उस क्रूर कुभकर्ण के समक्ष टिकना असभव हो गया। कुछ वानर मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े, कुछ रक्त उगलने लगे, कुछ भयभीत हो सेतु की दिशा में भागने लगे और कुछ बवडर की भाँति आकाश की ओर उड़ने लगे ।

वानरो को इस प्रकार भागते हुए देखकर अगद ने क्रुद्ध होकर कहा—'हे वानरो, धैर्य तजकर इस प्रकार क्यो भाग रहे हो ? अपने प्रभु के प्रति निष्ठा एव अपना औन्नत्य छोडकर भागना क्या तुम्हारे लिए उचित है ? तुम महान् वश में जन्म लिये हुए, श्रेष्ठ वानर हो । ऐसे तुम इस प्रकार साधारण जीवो की भाँति भाग सकते हो ? रामचद्र के समक्ष युद्ध में यदि तुम मारे जाओगे, तो तुम्हें सुन्दर स्वर्ग का राज्य मिल जायगा या यदि तुम विजय प्राप्त करोगे, तो यश प्राप्त करोगे । इसलिए तुम लौटो, भागो नही।' ऐसे उपदेश देते हुए अगद ने उनमें उत्साह का सचार किया और सभी वानरो को फिर लौटा लाया। अगद के उत्साहवर्द्धक उपदेशो को सुनकर वे कहने लगे—'हम राम के लिए अपने प्राणो की बलि देंगे, उनके प्राणो के आगे हमारे प्राणो का मूल्य ही क्या है ?' फिर, उन्होने पर्वतो को ले आकर, गर्जन करते हुए पर्वत के समान कुभकर्ण के विशाल वक्ष पर फेंका, तो उसने उन पर्वतो को देखते-देखते अपने शूल से चूर-चूर कर दिया । इससे सतुष्ट न होकर उसने रौद्र रूप धारण कर गदा हाथ में ली और उसे तेजी से घुमाकर वानरो पर ऐसा प्रहार किया कि दस करोड, सतहत्तर लाख, तीस हजार छह सौ वानर हुंकार करते हुए पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पडे। फिर, वह अपने हाथो से असख्य वानरो को पकडकर बडी क्रूरता से यो निगलने लगा, जैसे गरुड़ पक्षी जल्दी-जल्दी सर्पो को निगल जाता है । इस प्रकार, उसने देखते-देखते अम्सी लाख, बीस सहस्र, छह सौ वानरो को निगल लिया । इसके पश्चात् भी वह नर तथा वानर-भक्षक वहाँ से हटा नही, किन्तु उसी युद्ध-भूमि में बड़े दर्प के साथ झूमता रहा । उस समय उसके नथुनो तथा कर्ण-पुटो से वानर बाहर निकलने लगे ! किन्तु वह उन्हें तुरत पकडकर मसल देता और उनका लौंदा बनाकर चबा जाता । जो लोग उसके डाढ से छूटकर पृथ्वी पर गिर जाते, उन्हें पैरो से रौंदकर चूर-चूर कर देता । इतने में उसके गदा-प्रहार से आहत हो मूर्च्छित पडे हुए वानर सचेत हुए । वे भयकर सिंहनाद करते हुए पर्वतो तथा वृक्षो को ले आकर बडे दर्प के साथ उस राक्षस के समक्ष खडे हुए । क्रोध से जलते हुए, द्विविद ने एक विशाल पर्वत को उस राक्षस के वक्षस्थल को विदीर्ण करने के निमित्त फेंका । उसके लगते ही कुंभकर्ण उछलकर गिर पडा और एक बडी राक्षस-सेना उसके नीचे कुचलकर मर गई।

७५. कुंभकर्ण और हनुमान् का युद्ध

तब हनुमान् अत्यंत क्रोध से आँखो से अग्नि बरसाते हुए, पर्वतो तथा वृक्षो को को उखाडकर उस राक्षस पर गिराने लगा, किन्तु कुंभकर्ण अपने दारुण शूल से उनको चूर-चूर करते हुए हनुमान् पर आक्रमण करने के निमित्त आगे बढा । तब हनुमान् ने एक महान् पर्वत को उठाकर उसे कुंभकर्ण पर फेंका । यह देखकर असुर भी उसकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि यह अनुपम बली है । उस पर्वत के गिरने से कुंभकर्ण का सारा शरीर काँप उठा और उसके शरीर से रक्त की अजस्र धाराएँ बह निकली ।

उससे अत्यंत दु.खी होकर उस दानव-वीर ने प्रकाश एवं ज्वालाओ को व्याप्त करते हुए, पृथ्वी को विदीर्ण करते हुए, नभ को कँपाते हुए और देवताओ को भयभीत करते हुए भयंकर शूल को हाथ में धारण करके बड़े उल्लास के साथ उसे हनुमान् पर ऐसे चलाया, जैसे कुमार ने क्रौंचगिरि पर अपनी शक्ति चलाई थी । यह देखकर सभी वानर भय से व्याकुल हो गये । उसके लगते ही पवनकुमार का हृदय चरचराकर फट गया और रक्त की ऐसी धारा छूटी, मानो हनुमान् अपना समस्त क्रोध-रस उगल रहा हो। प्रलय-काल के घनघोर बादलो के गर्जन के समान हाँफते हुए कपिशेखर हनुमान् पृथ्वी पर गिर पड़ा। यह देखकर कपि-सेना काँप उठी और राक्षस हर्षित हुए ।

युद्धभूमि में अनिलकुमार की ऐसी दशा देखकर नील ने क्रोधाग्नि से जलते हुए उस कुंभकर्ण पर एक महापर्वत से प्रहार किया । अत्यधिक वेग से अपने ऊपर गिरनेवाले उस पर्वत पर कुंभकर्ण ने मुष्टि-घात करके उसे रोका । उसके मुष्टि-घात से वह पर्वत चिनगारियाँ बिखेरते हुए चूर-चूर हो गया । प्रचंड क्रोध से क्षुब्ध हो ऋषभ, शरभ, नील, गंधमादन, गवाक्ष आदि उद्दण्ड बली वानर-वीर, एक साथ भयंकर गर्जन करते हुए, उस कुंभकर्ण पर पर्वतो तथा वृक्षो को फेंकते हुए, मुष्टियो तथा चरणो से प्रहार करते हुए, नाखूनो से चीरते हुए तथा अन्य कई प्रकार से उसे दु ख देने लगे । तब भी कुंभकर्ण विचलित नही हुआ । उसने शरभ पर ऐसा प्रचण्ड मुष्टि-घात किया कि वह पृथ्वी पर गिर-कर छटपटाने लगा । उसके बाद उसने ऋषभ को पकडकर अपने हाथो से उसे मसलकर एक पिंड-जैसा बना दिया । उसके पश्चात् उसने अपने घुटने से वीर नील पर ऐसा प्रहार किया कि वह काँपकर गिर पडा और छटपटाने लगा । फिर, उसने गवाक्ष के निकट पहुँचकर अपनी हथेली से उस पर ऐसा प्रहार किया कि वह तिलमिला उठा । उसके बाद उस राक्षस ने बडे क्रोध से गंधमादन को अपने बायें हाथ से ऐसा मारा कि वह गिर पडा। इस प्रकार, पाँचो वानर-वीर रक्त उगलते हुए ऐसे गिर पड़े, मानो रण का राग-रस उगल रहे हो । शत्रुओ का वध करने के कारण, बडे दर्प के साथ वह राक्षस अपना शूल घुमाते हुए भयंकर वज्र से युक्त इन्द्र की भाँति, अनुपम दण्ड से युक्त उद्दण्ड यम की भाँति, युद्ध-भूमि में भीषण गर्जन करते हुए जहाँ-तहाँ घूमने लगा । तनी हुई भौंहो से युक्त उसके मुख से अग्नि-कण ऐसे झरने लगे, जैसे प्रलय के समय रुद्र के शूल से स्फुलिंग विकीर्ण होते है ।

७६. सुग्रीव तथा कुंभकर्ण का युद्ध

तब सुग्रीव ने मन-ही-मन सोचा कि मेरे युद्ध करने का यही अवसर है। फिर, उस अनुपम पराक्रमी ने, कुल पर्वतो के अधिपति पर आक्रमण करने के लिए आनेवाले इन्द्र की भाँति अपना शरीर बढाया, तथा प्रचण्ड क्रोध की अग्नि से दीप्त होते हुए सभी पर्वतो में श्रेष्ठ एक महान् पर्वत को उठाकर बडे वेग से, उस राक्षसेश्वर की ओर बढा, जिसके मुँह और शरीर वानरो के रक्त से भीगकर विचित्र भद्दापन लिये हुए थे। उसके पास पहुँचकर सुग्रीव ने कहा—'हे राक्षस क्या, तुम मुझे नही जानते? मैं सूर्य का पुत्र हूँ और प्रख्यात रामचद्र का भी पुत्र हूँ। तुम्हारे और मेरे बीच का ही युद्ध योग्य होगा। तुम व्यर्थ ही इन वानरो को क्यो मार रहे हो?'

सुग्रीव के इन वचनो को सुनकर कुभकर्ण ने क्रुद्ध होकर कहा—'हे सुग्रीव, लोग तुम्हें बडा ही शूर कहते है। क्या, कोई शूर युद्ध किये बिना ही क्रोध करता है? युद्ध में अपनी शूरता प्रदर्शित करना ही उचित होगा। इस प्रकार डीग हाँकना तुम्हें शोभा नही देता।' उसके इतना कहते ही सूर्य-पुत्र ने उस राक्षस पर क्रुद्ध होकर लाये हुए पर्वत को उस पर पटक दिया। वह पर्वत उस राक्षस के विशाल वक्ष से लग गया और चूर-चूर हो गया। दोनो पक्षो की सेना इस क्रूर आघात को देखकर हाहाकार करने लगी। उस महावली के प्रहार से राक्षस-वीर अत्यत सभ्रमित हुआ। फिर भी, बडे साहस के साथ उसने भयकर गर्जन किया और सुग्रीव पर उस विख्यात शूल को चलाया, जो बीस सहस्र सिर की आहुति के पश्चात् चदन-अक्षत से अर्चित था तथा सुरासुरो के वहन करने के लिए अशक्य था। तब वह शूल भयकर ज्वालाओ से प्रदीप्त होते हुए पृथ्वी, आकाश तथा दिशाओ तक अपनी ज्वालाओ को फैलाते हुए, दस हजार अशनियो के समान ध्वनि करते हुए सूर्य-पुत्र की ओर जाने लगा। उस शूल को ऐसी भयकर गति से आते देखकर हनुमान् ने बीच में आकर उसे इस प्रकार पकडकर खट-खड कर दिया जैसे गरुड़, घनी विष-ज्वालाओ को उगलनेवाले सर्पराज को पकड़कर उसको नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। उसके पश्चात् हनुमान् ने उछलकर सिंह-गर्जन किया, तो सभी वानर उसकी प्रशसा करने लगे। शूल के टूटने से कुभकर्ण क्रोध से जलते हुए लका के मलयाद्रि-शृग को उठाकर सूर्य-पुत्र पर फेंका। शृग के सुग्रीव के वक्ष पर लगते ही वह हाँफते हुए पृथ्वी पर गिर पडा।

७७. कुंभकर्ण का मूर्च्छित सुग्रीव को लंका ले जाना

सुग्रीव के गिरते ही राक्षस बडी हर्ष की ध्वनि करने लगे। तब कुंभकर्ण क्रूर रूप धारण किये पृथ्वी पर पडे हुए उस महावली सुग्रीव के निकट आया और उसे देखकर बोला—'समस्त वानर-सेना के लिए तथा सूर्यकुल-तिलक राम के लिए एकमात्र शक्ति-पुज यही है। अत, यह कहने की आवश्यकता नही है कि इसके गिरने से सभी वानर शीघ्र गिर जायेंगे। अब मेरे भाई भी इस सुग्रीव को देख लें।' इस प्रकार, सोचते हुए वह उसे उठाकर लका की ओर ऐसे ले चला, मानो कालानिल घनघोर बादल को गिराकर उसे अपनी गुफा में ले जा रहा हो। सभी देवता दुखी होने लगे—'हाय, सुग्रीव कहो

इस प्रकार वदी तो नही वनेगा ?' कुभकर्ण की शक्ति तथा पराक्रम की सभी दानव प्रशसा करने लगे और रवि-सुत को छुडाने में असमर्थ होकर वानर हाहाकार करने लगे।

तब हनुमान्, अगद, नील, शरभ, ऋषभ, जाबवान्, गिरिभेदी, सुतर, केसरी, पृथु, हरिरोम, पावकाक्ष, हर, द्विविद, मैन्द, वेगवान्, गवय, शतवली, गज, दुर्दम, समुख, बालपाद, गवाक्ष, कुमुद, ज्योतिर्मुख, सुषेण, दधिमुख, वेगदर्शी, रभ, ऋयन, धूम्र, गधमादन, तार, क्रोधन, तपन, प्रजघ, घोराक्ष, जघाल, गोमुख, विमुख, पनस, सन्नाथ, सपाती, इन्द्रजाल, विनुत, सुदष्ट्रक, श्वेत, दुर्मुख आदि भयकर आकारवाले उद्दण्ड पराक्रमी एव वीर वानर पर्वतो तथा वृक्षो को उठाये हुए ब्रह्माण्ड को विदीर्ण करनेवाले घोर गर्जन करते हुए किसी भी तरह से सूर्य-पुत्र को छुडाने का दृढ सकल्प करके उस राक्षस पर टूट पडने के लिए उतावले होने लगे। इतने में नीतिवान् वायुपुत्र ने अपने हस्त-सकेत से उन्हें रोककर उनसे कहा—'अद्भुत शूर सूर्य-पुत्र अभी मूर्च्छा में पडे हुए हैं। जब उनकी चेतना लौट आयगी, तब वह महान् वीर स्वय यहाँ चले आयँगे। यदि हम हठ करके उन्हें राक्षस के हाथ से छुडा लेंगे, तो कपिराज मन-ही-मन दुःखी होंगे। अत, हमें ऐसा नही करना चाहिए। थोडी देर प्रतीक्षा करो। यदि इस बीच में वे नही लौटे, तो कुटिल रावण एव कुभकर्ण को तथा प्रचड विक्रमी सभी राक्षसो को अपने मुष्टि-घातो से हम मार डालेंगे, स्वर्ण-दीप्तियो से सुशोभित होनेवाले सातो दुर्गों के साथ लका का सर्वनाश करके प्रलय मचा देंगे और सूर्य-पुत्र से मिलकर उन्हें ले आयेंगे।' हनुमान् के इन वचनो को सुनकर सभी कपि-वीर मन-ही-मन हर्षित हुए और आकाश-मार्ग में बडे वेग से उस राक्षस के पीछे-पीछे चलने लगे। कुभकर्ण ने इस बात से अनभिज्ञ हो, अपने ढग से सूर्य-पुत्र को लेकर लका में प्रवेश किया।

तब राजमार्गो राजात पुरो तथा ऊँची अट्टालिकाओ पर से नगर की स्त्रियाँ पुष्प-वृष्टि करने लगी। इससे सूर्य-पुत्र सचेत हुआ और नगर-मार्ग को चारो ओर आश्चर्य से देखा। फिर, मन-ही-मन आश्चर्य तथा दुःख का अनुभव करने लगा। वह सोचने लगा—'हाय, इतनी देर तक मूर्च्छित रहकर मैं इस राक्षस के हाथो में फँस गया। फिर, उसने अपने हाथो से उस राक्षस के कानो को पकड़कर ऐंठा और उन्हें जोर से खीचा। फिर उसके नथुनो के साथ नाक को काट डाला और तीव्र गति से आकाश की ओर उड गया, किन्तु राक्षस ने उसे छोड़ा नही। उसने सुग्रीव के पैर पकडकर उसे नीचे की ओर खीच लिया और नीचे पटक दिया, किन्तु सुग्रीव फिर से आकाश की ओर उडकर शीघ्र अपने प्रभु के पास पहुँच गया। स्वर्ग में सभी देवता आश्चर्यचकित हुए और वानर-समूह घेरकर उसे प्रणाम करने लगे। तब सभी वानरो के साथ सुग्रीव ने रामचन्द्र के चरणो में प्रणाम किया। श्रीराम ने बड़े हर्ष से सुग्रीव को हृदय से लगा लिया। सभी कपि आनदविभोर हो गये।

७८. कुंभकर्ण का वानर-सेना को तहस-नहस करना

वह असुरेश्वर अपने नाक तथा कान के नष्ट होने से मन-ही-मन बहुत क्षुब्ध हुआ और सोचने लगा—'अपनी बहन के अपमान से अत्यत लज्जित होकर उसका प्रतिकार

करने के उद्देश्य से अकारण ही सूर्यवंशज राम से वैर ठानकर अत्यधिक शौर्य के साथ युद्ध करनेवाले रावण के समक्ष मैं इस विकृत शरीर में कैसे जा सकूँगा ? अतएव, मेरे लिए उचित यही है कि मैं युद्ध-भूमि में वापस चला जाऊँ।' यों सोचकर वह उद्दण्ड राक्षस अत्यंत क्रुद्ध होकर, रक्त-सिक्त शरीर से इस प्रकार रण-भूमि की ओर चल पड़ा, मानो लाल रंग के झरनों से युक्त नीलाद्रि आ रहा हो अथवा युगांत के समय की प्रचंड अग्नि हो। रणभूमि में पहुँचकर वह क्रुद्ध राक्षस भयंकर गति से वानरों पर टूट पड़ा और विविध रीतियों से उनका संहार करने लगा। वह कुछ वानरों के पैर पकड़कर उन्हें तेज़ी से घुमाता और पृथ्वी पर पटक-पटककर मारता। कुछ वानरों पर मुष्टि-प्रहार करता, तो कुछ वानरों की आँतों को बाहर खींच लेता। कुछ लोगों पर पद-प्रहार करता और जब उनका कलेजा और मांस-खंड बाहर निकल आते, तब उन्हें पैरों से कुचल देता। कभी-कभी वज्र के समान अपनी विशाल बाहुओं को उठाकर शत्रुओं पर ऐसा प्रहार करता कि वे मिट्टी चाटने लगते। जो वानर उसके शरीर पर चढ जाते, उन्हें आश्चर्यजनक रीति से पकड लेता और सामने पडनेवाले राक्षस को भी अपनी ओर खींचकर उसके कंठ पर प्रहार करता था। इस प्रकार, उसने हुंकारों तथा दहाडों के साथ वानरों के प्राण ले-लेकर उनके शवों का ढेर-सा लगा दिया। फिर, वह कुछ वानरों को ऊपर उठाकर आकाश की ओर ऐसे उछाल देता कि युद्ध को देखने के लिए आये हुए देवताओं के विमान घबराकर लौट जाते। ऊपर फेंके हुए वानरों को नीचे गिरने के पहले ही उनसे टकराने के लिए दूसरे वानरों को लक्ष्य करके फेंक देता। कुछ वानरों को पकड़कर आकाश में ऐसा घुमाता कि उनकी हड्डी-पसली चूर-चूर हो जाती। कुछ वानरों को मार-मारकर मूर्च्छित कर देता। कुछ लोगों को दोनों हाथों से कसकर पकड़ लेता, फिर उन्हें जहाँ-तहाँ पटककर दूर फेंक देता। कुछ वानरों को पकडकर लंका में फेंक देता और कहता—'लो तुम भी इन वानरों को देखो।' कुछ कपियों को समुद्र में फेंककर कहता—'जिन्होंने तुम्हें बाँधा था, उन्हें अब तुम डुबो दो।' इस प्रकार, वह दानव अपना प्रताप प्रकट करते हुए उन वानरों को सभी दिशाओं में फेंकने लगा। पृथ्वी, आकाश तथा सभी दिशाओं में, जहाँ देखो वहाँ, मरनेवाले, लुढकनेवाले, लोटनेवाले, आर्त्तनाद करनेवाले, छटपटानेवाले, हाँफने-वाले गिरे हुए तथा गिरनेवाले कपि ही भरे थे। सारा रण-रंग इन वानरों के आक्रंदन से दुस्सह प्रतीत होने लगा। उस कुंभकर्ण का कालांतक के समान अत्युग्र तथा भीषण आकार देखकर, सुग्रीव दब गया, अंगद भयभीत हो गया, गवाक्ष काँप उठा, गज धैर्य खो बैठा; ऋषभ विचलित हो गया, नल शंकित हुआ, नील भय-विकंपित हो गया, पृथु विचलित हुआ, शरभ चकित हुआ, धूम्र भय-विह्वल हुआ, पनस थर-थर काँपने लगा, गंधमादन डर गया, अनिल-कुमार भी थरथराने लगा, ज्योतिर्मुख अत्यंत भयाकुल हुआ; जांबवान् मार्ग पकडकर भागने लगा और शेष सभी वानर अत्यंत भय-विह्वल हो उठे।

तब महान् बली लक्ष्मण ने कुंभकर्ण को सिर से पैर तक देखकर क्रोध से उसके वक्ष पर सात शर चलाये। उसके बाद भी उन्होंने कई शर चलाये, किन्तु उस क्रूर राक्षस ने

लक्ष्मण की उपेक्षा कर दी। अनेक कपि आपादमस्तक उसके शरीर पर रेंगते हुए, उसकी मूँछें पकडकर झूलते हुए, क्रोध से अपनी पूँछें उसके शरीर पर रगडते हुए, उसके शरीर के विविध अगो को पकडकर खीचते हुए, उसे विविध रीतियो से पीडित करने लगे। तब वह राक्षस अत्यधिक क्रुद्ध हो गया और अपने शरीर को ऐसे झटका देकर उन वानरो को नीचे गिरा दिया, जैसे चचल मत्तगज अपने शरीर को झटकाता है, या जल में डुबकी लगाने के पश्चात् मस्त सूकर अपने शरीर को झटकाकर (अपने शरीर पर लगे) जल-बिंदुओ को नीचे गिराता है या प्रलय-काल में ब्रह्मा नक्षत्रो को टप-टप नीचे गिरा देता है।

तब राम उस कुभकर्ण को देखकर विस्मित हुए। उनकी आँखो से अगारे छूटने लगे। उन्होंने शेष-नाग के आकारवाले अपने स्वर्ण-धनुष को उठाया, अनुपम तूणीरो को पीठ पर कसा और भयकर विक्रम से विलसित हो (युद्ध के लिए) चल पडे। ऐसी सज्जा से परिपूर्ण राम को युद्ध के लिए आते देखकर, युद्धारभ में उत्साही तथा उद्दण्ड पराक्रमी वानर भी अत्यधिक चचलता से पर्वतो, चट्टानो तथा वृक्षो को धारण किये, दुर्निवार क्रोध से, अपनी उछल-कूद से, सप्त पातालो को विदीर्ण करते हुए, कूर्म को व्याकुल करते हुए, समुद्रो को आलोडित करते हुए, दिग्गजो को विचलित करते हुए, आकाश को कँपाते हुए, उस राक्षस पर आक्रमण करने के लिए चल पडे। उनके उस रणोत्साह को देखकर सुर-सिद्ध-साध्य उनकी स्तुति करने लगे। विभीषण राम के आगे-आगे क्रोधाभिभूत होकर अपनी गदा लिये हुए जाने लगा।

७९. विभीषण-कुंभकर्ण का वार्त्तालाप

तब विभीषण को देखकर रावण का भाई (कुभकर्ण) हँसते हुए कहने लगा—
'हे विभीषण, सुनो। अपने प्रभु के समक्ष अपने पराक्रम के प्रदर्शन का यह अच्छा अवसर है।
भाई के सबध का विचार करके तुम झिझकना मत। तुम्हारे लिए इस नरनाथ का हृदय
ही आधार है। तुमने सूर्यवशज की कृपा प्राप्त की है, इसलिए कोई भी विपत्ति तुम्हें
छू नही सकेगी। उनकी अपार दया तुम पर है ही, साथ ही तुम प्रशसनीय एव दया-
परिपूर्ण चित्तवाले भी हो। तुम्हारे सिवाय और कौन ऐसा सद्गुणालकृत है, जो लका का राज्य
कर सके? इसलिए मै तुमसे कह रहा हूँ कि तुम अपने साहस, बल, विक्रम से मेरे साथ
मत भिडो। क्या, ब्रह्मा तथा रुद्र के लिए भी यह सभव है कि वे आज मेरे सम्मुख खडे
रह सकें? इसलिए हे भाई, तुम मेरे सामने से हट जाओ। तुम मरो नही, राक्षस-वश
का उद्धार करने के लिए तुम्हारा जीवित रहना आवश्यक है।'

तब विभीषण ने अपने भाई से कहा—'मैंने इस भय से कि सारा दानव-कुल
दग्ध हो जायगा, अपने भाई से, अपनी शक्ति-भर नीति-वचन कहे, किन्तु उन्होंने मेरी
बातो को नही माना। इसीलिए मैंने अग्रज तथा तुम्हें छोडकर श्रीराम की शरण ली।'
इतना कहकर उसने मन-ही-मन दानवेश्वर की दुर्नीति का विचार करके आँखो से आँसू
बहाते हुए अत्यत दुःख से, अपने भाई की दशा न देख सकने के कारण वहाँ से हट गया।

तब राघवेश्वर अपने अनुज लक्ष्मण के साथ रण के लिए उद्यत होकर उस कुभकर्ण
को देखकर मन-ही-मन आश्चर्य-चकित हुए, जो सुदर मुकुट तथा आभूषण पहने हुए था

वीर-रसावेश से अभिभूत था, वड़े साहस के साथ कपियों का संहार कर रहा था और अत्यधिक रक्त में भीगा हुआ ऐसा दीख रहा था, मानो रौद्र रस ही मूर्त्त होकर राक्षस के रूप में आ गया हो ।

तव सूर्यकुलोत्तम-राम भूपाल ने अत्यंत क्रोध से अपने धनुष की प्रत्यंचा का ऐसा टंकार किया, मानो कह रहे हो कि नारी के कारण उद्भुत अपना सारा क्रोध इस नारी* (प्रत्यंचा) के द्वारा प्रदर्शित करूँगा और दहाड़ते हुए आनेवाले इस राक्षस की क्रोधाग्नि को मै अपनी शर-वृष्टि से बुझा दूँगा। धनुष की ध्वनि सुनकर दिग्गज ऐसे चिंघाडने लगे, मानो कह रहे हो कि गज-गामिनी (सीता) अब अपने स्वाभाविक निवास को प्राप्त होगी। (उस ध्वनि से) लंका इस प्रकार गूँज उठी, मानो कह रही हो कि श्रीराम का क्रोध अब लंकेश्वर को भस्म कर देगा । उस ध्वनि से समस्त जग वहरे-मे हो गये ।

उस ध्वनि को सुनकर कुंभकर्ण रोष से भरकर, वड़े गर्व से अकडते हुए राम के समक्ष आया । तव सूर्यवंशज राम ने वडे दर्प के साथ उससे कहा—'हे राक्षस, अब तुम्हें पीछे हटना नही चाहिए। तुम धैर्य तथा साहस के साथ युद्ध करने के लिए ऐसे डट जाओ कि देवता भी तुम्हारी प्रशंसा करें । ऐसा नही करके यदि तुम माया रचकर कहीं छिप भी जाओगे, तो भी मै तुम्हें छोडूँगा नही । यदि तुम ब्रह्मा के निकट पहुँचकर उनकी शरण माँगोगे, तो भी ब्रह्म-लोक मेरे सामने टिक नहीं सकेगा । यदि तुम नीलकंठ की शरण में जाकर उनसे रक्षा करने की प्रार्थना करोगे, तो भी रुद्र-लोक मेरे समक्ष खडा नही रह सकेगा । यदि तुम विष्णु की शरण माँगोगे, तो विष्णु-लोक भी मेरा सामना नहीं कर सकेगा ।'

राम के इन दर्प-पूर्ण वचनो को सुनकर कुंभकर्ण अत्यधिक भयाक्रांत हुआ। फिर भी, उसने ऐसा अट्टहास किया कि वानरो के हृदय फट गये, खडे-खड़े उनके प्राण उड गये और समस्त पृथ्वी, आकाश तथा दिशाएँ विचलित हो गईं । फिर, वह अपनी युद्ध-कुशलता को प्रकट करते हुए, राम भूपाल को देखकर कहने लगा—"हे सूर्यकुलतिलक, विविध मायाओ को रचकर अंत में तुम्हारे हाथ से मरनेवाला मारीच मैं नही हूँ । तुम्हारे शर-प्रहारो से गिरनेवाला विराध मैं नही हूँ । युद्ध-क्षेत्र में एक ही वाण से पृथ्वी पर गिरनेवाला वालि भी मै नही हूँ । अपने हाथ का धनुष तुम्हारे हाथ में देकर तुम्हारे द्वारा गर्वभंग करा लेनेवाला भृगु-पुत्र नही हूँ, मै रावण का भाई हूँ, देवताओ का शत्रु हूँ और प्रदीप्त विक्रम मे विलसित हूँ । हे राम, क्या, तुम मुझे नही जानते ? वानर-समूह के सद्य रक्त का पान करनेवाला मै कुंभकर्ण हूँ । तुमने अज्ञान ब्रह्मा और इन्द्र की प्रेरणा से इस संसार में जन्म लिया और न जाने क्यों इस वानर-समूह के भरोसे मेरे साथ युद्ध करने के लिए आये हो ? राक्षसो के भयंकर वाण, सनक आदि योगीन्द्रो की स्तुतियाँ नही हैं । वेग से आनेवाले भयंकर शस्त्र, परिचारको का चामर-समूह नहीं है । भीषण आकारवाले राक्षस-सैनिक सुंदर गीत गानेवाले तुंबुरु तथा नारद नही है । मेरी जो वायु तुम पर चल रही है, वह पखो का पवन नही है। यह युद्ध-क्षेत्र है, अमृत-सागर नही। यह युद्ध-भूमि है, तुम्हारी देव-सभा नही है । हे राजन्, तुमने पृथ्वी पर जन्म क्यो लिया ? इस युद्ध में

* तेलुगु में 'नारी' शब्द के दो अर्थ हैं—स्त्री और प्रत्यंचा ।—ले०

तुम्हें स्वर्ग का वह सुख कहाँ मिलेगा ? यह सब मैं तुमसे क्यो कहूँ ? हे राम, मेरी यह गदा तो देखो । इसी से मैंने देवताओ को जीता । तुम्हारे दिव्यास्त्र कही इसकी समता कर सकते है ? यदि तुम में बाहुबल, शौर्य तथा पराक्रम है, तो मुझसे घोर युद्ध करो । हे राजन्, तुम्हारी शक्ति देखकर फिर मैं तुम्हारा वध करूँगा ।"

८०. श्रीराम के द्वारा कुंभकर्ण का संहार

तब राम ने क्रुद्ध होकर ऐसे सहस्रो भयकर बाण उस देवताओ के शत्रु पर चलाये, जैसे बाण उन्होने वालि पर चलाये थे, किन्तु उन सब बाणो को कुभकर्ण ऐसे पी गया, जैसे चातक पक्षी जल-बिंदुओ को पी जाता है। फिर, वह भयकर मुद्गर घुमाते हुए बडे त्रो से वानर-गोरो को भगाते हुए आगे बढा । उसको सामने आते हुए देखकर राम ने निर्भीक हो सहज ही एक अनिल-बाण चलाकर भयकर गदा से युक्त उसका हाथ काट डाला । उस हाथ को गिरते देखकर वानर चारो ओर बिखर गये, जो उस हाथ के गिरने से पहले भाग नही पाये, वे उसके नीचे दबकर मर गये । तब बचे हुए वाम हस्त से उस राक्षस ने एक विशाल वृक्ष को सहज ही उखाडकर उसे उठाकर राम की ओर आगे बढा। यह देख इन्द्र आदि देवता काँप उठे, किन्तु राम ने ऐन्द्र बाण से उस हाथ को भी काट डाला । वह विशाल बाहु अद्भुत गति से कटकर पृथ्वी पर ऐसे गिरी कि पृथ्वी विदीर्ण-सी हो गई और असख्य वानर उसके नीचे दबकर चूर-चूर हो गये । इस प्रकार, सूर्यवश-तिलक राम के घोर अस्त्रो से दोनो हाथ कट जाने पर वह राक्षस, वज्र के द्वारा पख कटे हुए पर्वत की भाँति भयकर हाहाकार करते हुए राम की ओर आने लगा । तब हाथ-नाक-कान-विहीन विकृत आकारवाले उस कुभकर्ण को देखकर राम ने सकल्प कर लिया कि मैं अब अवश्य इस नीच का वध करूँगा। फिर, उन्होने शीघ्र दो अर्द्धचन्द्र बाणो का सधान किया और उस राक्षस के दोनो चरण ऐसे काट दिये कि समस्त जग उनकी प्रशसा करने लगा । चरण तथा बाहुओ के कट जाने पर भी, वह राक्षस नही दबा, किन्तु क्रोधोन्मत्त हो वडवानल-चक्र की भाँति अपने मुँह को विकृत बनाकर, सूर्य को ग्रसने के निमित्त आनेवाले राहु की भाँति राम से भिड गया । तब राम ने अपने तूणीर के कठोर बाण उसके मुँह में ऐसे भर दिये, मानो वे एक तूणीर के बाण दूसरे तूणीर में भरते हो। इस प्रकार जब बाण-समूह से उस राक्षस का मुँह भर गया, तब उससे सिंहनाद करते नही बना, इसलिए वह विविध अपस्वरो से हुकार करते हुए अपनी दृष्टियो से डराने-धमकाने लगा । तब राम ने उस दैत्यनाथ के शरीर को लक्ष्य करके ऐन्द्रास्त्र चलाया । रघुवर के छोडते ही वह बाण ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न-सूर्य की भाँति, ब्रह्म-दण्ड की भाँति, प्रबल प्रभजन की भाँति, समस्त लोको को अपनी लाल-लाल ज्वालाओ से भरते हुए आया और कुभकर्ण के वक्षःस्थल में घुसकर पार निकल गया तथा पृथ्वी में गडकर सभी दिशाओ को अपने भीषण रव से प्रतिध्वनित करने लगा । इतने में राघवेन्द्र ने अत्यत शीघ्रता से अतक बाण का सधान करके चलाया । वह बाण अपनी भयावह ध्वनि से सभी दिशाओ को गुंजायमान करते हुए, ब्रह्माण्ड को कपित करते हुए, पृथ्वी को विदीर्ण करते हुए, समस्त भूत-राशि को मूर्च्छित करते हुए, सौ करोड़ काल-चक्रों के एक साथ चलकर आने की भाँति, वडवानल के

आगमन के समान, कालकूट विष ही बाण के रूप में आने के समान, दुर्वार गति के साथ अत्यंत वेग से आया और उस राक्षस के नीलाद्रि-सम दीखनेवाले सिर को काट दिया। वह सिर तुरंत नीचे नहीं गिरा; किन्तु वह लंका में बहुत ही ऊँची अट्टालिकाओं तथा सौधों से टकराकर उन्हें चूर-चूर करके अत्यधिक ध्वनि करते हुए आगे निकल गया और समुद्र के विविध प्राणि-समूह को कुचलते हुए समुद्र में गिरकर डूब गया। उस राक्षस का अर्द्ध-शरीर पृथ्वी पर दस करोड़ वानरों को कुचलते हुए तथा दूसरा अर्द्ध-शरीर समुद्र के जल-चर समूह को चूर-चूर करते हुए गिर पड़ा। उसके गिरने से जो ध्वनि हुई, उससे सभी समुद्र आलोडित हो उठे, पृथ्वी काँप उठी, दिशाएँ विदीर्ण हुईं और लंकाधीश का हृदय विदीर्ण हो गया। लंका में कोलाहल होने लगा, सभी जग हर्षित हुए और वानर-वीर आनंद-सागर में डूब गये। तब देवताओं ने रविकुलाधिप रघुरामचंद्र की विविध रीतियों से स्तुति की। रामचंद्र भी कुंभकर्ण की मृत्यु पर मंदहास करते हुए मन-ही-मन हर्षित होने लगे कि यह राक्षस देवताओं तथा दिक्पालों के लिए भी दुर्जेय था; अब सभी लोकों के लिए कभी किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा। राहु के प्रभाव से मुक्त होकर प्रभा से विलसित होनेवाले सूर्यबिंब की भाँति रामचंद्र विजयलक्ष्मी को प्राप्त करके भासमान होने लगे।

इसके पश्चात् राक्षस मन-ही-मन इस पराजय के कारण परितप्त होते हुए, कांति-हीन मुखों से शीघ्र रावण के समक्ष गये और निवेदन किया—'हे देव, देवताओं का शत्रु, आपके भाई ने समस्त वानर-समूह को भयभीत करके भगा दिया और आकाश से पृथ्वी तक व्याप्त होकर कपि-समूह-रूपी समुद्र को इस प्रकार मथ डाला, जैसे मंदराचल ने क्षीर-सागर का मथन किया था। फिर, उन्होंने दुर्वार विक्रम से भारी रण-क्षेत्र में युद्ध करते हुए, इन्द्रादि देवताओं में ईर्ष्या उत्पन्न की और निदान श्रीराम की त्रिपुल-बाणाग्नि में दग्ध हो गये।' जब राक्षसों ने इस प्रकार रण-क्षेत्र में कुंभकर्ण की मृत्यु का समाचार रावण को सुनाया, तब वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर इस प्रकार गिर पड़ा, मानों उसका पतन निश्चित ही है। अतिकाय अत्यंत शोकाकुल हुआ; देवांतक धैर्य तजकर शोक करने लगा। त्रिशिर दिङ्मूढ की भाँति पृथ्वी पर लोट गया। नरांतक काठ के पुतले के समान स्तंभित रह गया। महोदर तथा महापार्श्व आदि राक्षस-वीर शोक-विह्वल हो भूमि पर गिर गये।

८१. कुंभकर्ण की मृत्यु पर रावण का शोक

रावण शीघ्र ही सचेत होकर बार-बार अपने भाई का नाम लेकर यों प्रलाप करने लगा—'हे वीर, अब मैं राघव-वैर-रूपी समुद्र को किस नौका से पार करूँगा? मुझे विश्वास था कि तुम राम-लक्ष्मण का रण में संहार करोगे। ऐसे समय में तुम स्वयं राघव के प्रचंड शर-वह्नि की ज्वाला में भस्म हो गये! हे निद्रालु वीर, तुम सतत निद्रा-निरत रहनेवाले हो, आज तुम चिर निद्रा (मृत्यु) से क्यों अनुरक्त हुए? अविरत अशनि-पात से भी नष्ट नहीं होनेवाला तुम्हारा शरीर आज एक साधारण मानव के प्रहार से नष्ट हुआ! तुम तो अपनी अनुपम शक्ति के कारण अंतक (यम) के लिए अंतक सिद्ध हुए थे। ऐसे तुम्हारे लिए आज युद्ध-क्षेत्र में राघव अंतक कैसे सिद्ध हुआ? अरि, विद्राविण आदि

देवता इस भय से पीडित होकर सोते तक नही थे कि तुम नीद मे जगकर रौद्र रूप धारण करके क्रूरता के साथ उनका सर्वनाश कर दोगे। तुम युद्ध में गिर गये, अब, भला, देवता मेरी परवाह क्यो करने लगे ? सारे वश की रक्षा करने के उद्देश्य से भाई विभीषण ने, हठ करके बार-बार मुझे हित-वचन कहे, किन्तु मैंने उसकी बातें नही सुनी और पद-प्रहार करके उसे नगर से निर्वासित कर दिया। क्या, वह पाप मुझे यो ही छोड देगा ? तुम तथा अन्य बुद्धिमान् लोगो ने सतत जो नीतिपूर्ण वचन कहे, उन्हें मैंने नही माना, और तुम्हें खो बैठा। अब जिस विजय की मैंने आशा की थी, वह मुझे क्यो मिलेगी ? युद्ध-क्षेत्र में तुम मेरे दाहिने कधे की तरह रहे; किन्तु आज युद्ध में तुम अपने महान् बाहु-बल को खोकर नष्ट हो गये। अब मेरा सहारा कौन होगा ?'

इस प्रकार, रावण बार-बार कुभकर्ण का स्मरण करते हुए दीर्घ नि श्वास छोडते हुए, परिताप-रूपी वडवानल, उमडकर टपकनेवाली लार-रूपी फेन, अजस्र अश्रु-रूपी बाढ, अनत दुःख-रूपी तरगें, रुदन-रूपी घोष, भय-रूपी मचलन से युक्त शोक-समुद्र में डूबकर व्याकुल पडा रहा। तब रावण को देखकर त्रिशिर उसे धैर्य देते हुए बोला—'हे देव, आप साधारण लोगो की भाँति अपना धैर्य खोकर ऐसे क्यो शोक करते है ? ब्रह्मा से प्राप्त वर की महान् शक्ति रखते हुए, सतत मत्र-पूत अस्त्र तथा वज्र-कवच से सपन्न होते हुए, श्रेष्ठतम गतिशील उज्ज्वल रथ के रहते हुए, आप क्यो ऐसे शोक करते है ? मेरी ओर देखिए। हे अमरो के शत्रु, कौन है जो आपका सामना कर सके ? आप शीघ्र चलकर अपने अनुपम पराक्रम से राघव का सहार कीजिए। अब शोक तजिए। मैं अभी जाता हूँ और घोर युद्ध-क्षेत्र में अपने अनुपम पराक्रम एव प्रताप से वानरो को ऐसे काट डालता हूँ, जैसे गरुड़ साँपो को काट डालता है। जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर का सहार किया था, और जैसे शिव ने अधकासुर का नाश किया था, वैसे ही मैं भी युद्ध में राम का सहार करूँगा। मुझे आज्ञा दीजिए, मैं अभी जाता हूँ।'

तब अतिकाय ने रावण को देखकर कहा—'हे दानवेन्द्र, आप इतना शोक क्यो करते हैं ? मैं दैत्य-सेना के साथ जाऊँगा, मुझे आज्ञा दीजिए। जिस प्रकार दावानल काननो को जलाता है, वैसे ही, मैं अपने असख्य बाणो का प्रहार करके कपियो के साथ, राम-लक्ष्मण का वध करूँगा।' तब नरातक तथा महाबली देवातक दोनो ने मिलकर कहा-'हम इसी क्षण जाकर राम-लक्ष्मण तथा वानरो का वध करते है।' इनकी बातें सुनकर दैत्याधीश ने शोक छोड दिया और अपने पुत्रो के साथ मोदमग्न हो रहने लगा, जैसे देवताओ के साथ इन्द्र रहता है।

इसके पश्चात् रावण ने बड़े हर्ष से अपने चारो पुत्रो को आदेश दिया—'राम-लक्ष्मण को तथा वानर-सेना को अपने भयकर अस्त्रो की सहायता से मारकर आओ।' फिर, उसने अपने भाई महोदर तथा महापार्व को भी युद्ध करने के लिए भेजा।

८२. अतिकाय तथा महोदर आदि राक्षसों की युद्ध-यात्रा

वे छहो राक्षस ब्रह्माण्ड को विदीर्ण करनेवाले गर्जन करते हुए इस प्रकार युद्ध के लिए निकल पड़े, मानो (काम-क्रोध आदि) अरि-षड्वर्ग यह सोचकर राम से भिडने के लिए

आगे-आगे जा रहा हो कि हमारे कारण ही यह मनुजाशन (रावण) सीता के निमित्त श्रीराम का सामना कर रहा है। अस्तादि पर आरूढ सूर्य की भाँति महोदर शरत्-काल के मेघ की समता करनेवाले तथा ऐरावत के अंग से युक्त सुदर्शन नामक हाथी पर बैठकर निकला। निशित आयुधो से प्रकाशित होनेवाला शीघ्रगामी रथ, जिसमें बलिष्ठ तथा चंचल अश्व जुते हुए थे और जो सूर्य के समान भासमान था, उस पर, इन्द्रचाप के समान दीखनेवाले धनुष धारण किये हुए, नील मेघ के समान त्रिशिर निकला। तब धनुर्वेद का पंडित अतिकाय, अत्यंत तेजस्वी शर, चाप, खड्ग तथा विविध शस्त्रास्त्रों से युक्त तथा सूर्य-सम प्रकाश से भासमान, स्वर्ण-रथ पर आरूढ होकर रवाना हुआ। विविध आभूषणों से युक्त हो कनक पर्वत के समान दीप्त होते हुए नरांतक, देवताओं के अश्व का स्मरण दिलानेवाले विविध आभूषणो से अलंकृत श्रेष्ठ अश्व पर आरूढ हो, प्रविमल तेज से विलसित हो, बलिष्ठ बाहुओ में शक्ति धारण किये हुए, शक्तिपाणि (कुमार) की भाँति निकल पड़ा। दीप्त गदा धारण करके देवांतक, विष्णु के समान सुशोभित होते हुए रवाना हुआ। महापार्श्व विशाल गदा लिये हुए गुह्यकेश्वर (कुबेर) के समान निकला। कालचक्रों के वेग से असंख्य रथ भी साथ निकल पड़े। पर्वतों की भाँति दीखनेवाले करोड़ों श्रेष्ठ मदमत्त हाथी अपने उद्दंड दण्डो से (सूँड़ों से) सुशोभित होते हुए झुंडो में चलने लगे। अपनी हिनहिनाहट की गंभीर ध्वनि को चारों ओर प्रतिध्वनित करते हुए अश्व चलने लगे। यम-किंकरो के सदृश दीखनेवाले पदचर-सैनिक भयंकर गति से चलने लगे।

ऐसी अनुपम चतुरंगिणी सेना के मध्य भाग में प्रलय-काल के सूर्यों की भाँति, प्रकाश-मान होनेवाले छहों दैत्य-वीर, दीखने लगे। उनके श्वेत छत्र शरत्काल के मेघ की भाँति शोभायमान होने लगे। हम अवश्य विजय प्राप्त करेंगे या युद्ध में प्राण-त्याग करेंगे; किन्तु रण का उत्साह नहीं छोड़ेंगे, वे ऐसी विविध प्रतिज्ञाएँ करते हुए, एक दूसरे को पुकारते हुए युद्ध के लिए रवाना हुए। उनके विचित्र सिंहनाद, रथ-घोष, अश्वों की हिनहिनाहट, गजो की चिंघाड, सैनिकों के अत्यंत भयंकर पदाघात, अनुपम ध्वजाओ का किंकिनी-रव, पटह, भेरी तथा शंखो की भयावह ध्वनि तथा निसान-तुरहियों का घोर नाद आदि से समस्त दिशाएँ गूँजने लगी, आकाश हिल उठा, नक्षत्र गिरने लगे, वासुकि ने करवट ली, मेरु-पर्वत आमूल हिल गया, पृथ्वी कंपित हुई और दुर्वह भार से दिग्गज विचलित हुए।

इस प्रकार, जब राक्षस-सेना दुर्ग से बाहर निकली, तब वानर-वीर, भूमि तथा आकाश को चीरनेवाली भयंकर ध्वनियाँ तथा भयंकर हुंकार करते हुए बड़े उत्साह से पर्वतो तथा वृक्षो को राक्षस-सेना पर फेंकने लगे। दैत्यों ने वानरो पर अविरत गति से शर-वृष्टि आरंभ कर दी। वानरों द्वारा असुरो पर आक्रमण करने के पहले ही असुर वानरों पर आक्रमण कर देते और उनका सर्वनाश करने लगते। वे एक दूसरे से जूझते, एक दूसरे को गिराते, और असुरो के हाथो के शस्त्र छीनकर उन्हें तोड़ डालते। तब क्रूर राक्षस क्रुद्ध होकर वानरो के हाथो के पर्वतो तथा वृक्षो को तोड़ डालते। राक्षस कपियो के पैर पकड़कर उन्हें भयंकर गति से नीचे पटक देते, तो वानर तुरन्त उनके पैर पकड़कर उन्हें पृथ्वी पर गिरा देते। इस प्रकार, घोर युद्ध करते हुए वानरों तथा राक्षसो के

अंग जर्जर हो गये और वे रक्त उगलते हुए पृथ्वी पर गिरकर मूच्छित हो गये। फिर, वानर शीघ्र ही सचेत होकर एक राक्षस को उठाकर दूसरे राक्षस पर प्रहार करके गिराने लगे। इसी प्रकार, वे एक हाथी से दूसरे हाथी को, एक घोडे से दूसरे घोडे को, एक रथ से दूसरे रथ को, फिर रथ से हाथी को, हाथी से घोडे को, और घोडे से राक्षस-सैनिक को, मार-मारकर गिराने लगे। इस प्रकार, जब वानर सिंहनाद करते हुए अपनी अनुपम शक्ति का प्रदर्शन करके भयकर गति से असुरो का सहार करने लगे, तब राक्षस-वीर भी क्रोधोन्मत्त होकर वानरो पर टूट पडे। उन्होने वानरो पर बाण चलाये, उन्हें चक्रो से मारा, गदाओ का प्रहार किया, खड्गो से काटा, बर्छियो को मास में तथा शूलो को पसलियो में चुभोया और विविध रीतियो से उनको पीडित किया। फिर भी, वानरो ने धैर्य नही छोडा। वे और भी क्रुद्ध होकर बडी भयकर गति से पर्वत-शृगो तथा तरु-काडो से राक्षसो पर प्रहार करने लगे। कितने ही राक्षस आहत हो गिरने लगे, कुछ भागने लगे, कुछ वही लुढकने लगे, कुछ रक्त उगलने लगे, कुछ भूमि पर लोटने लगे, सिर कट जाने से कुछ के धड-मात्र झूलने लगे और कुछ मरकर अपने शत्रुओ को भूलने लगे। कही अश्वारोही सैनिक के गिर जाने पर भी उसकी उपेक्षा करते हुए घोडे घोर रूप से हिन-हिनाते थे; कुछ घोडे ऐसे दौडते थे कि उनकी झूलें फट जाती थी; कुछ घोडे ऐसे भागते थे कि दिशाएँ भी चकराने लगती; कुछ घोडो के अगो की सधियाँ उखड जाने से गिरकर मर जाते थे, कुछ गिरकर छटपटाते थे, कुछ अग-हीन होकर मुँह खोले गिर जाते थे और कुछ तो ऐसे जर्जर हो जाते थे कि उनका आकार ही मालूम नही होता था। सूँडो के कट जाने से कई हाथी कांपते थे; कई हाथियो के दाँत टूट गये थे, कुछ हाथी लका की ओर भाग रहे थे; तो कुछ वेग से चक्कर काट रहे थे। कुछ हाथी पर्वतो की भाँति गिर जाते थे, कुछ खड-खड होकर गिरते थे। कुछ हाथी मदजल बहाते हुए नष्ट हो जाते थे, तो कुछ कुचले जाने से मिट्टी में मिल जाते थे। युद्ध-भूमि में जहाँ देखो, वहाँ रथिक, सारथी, तथा अश्वो से रहित रथ, पृथ्वी पर गिरनेवाले रथ, एक ओर उलटकर गिरे हुए खडित रथ, पूरे उलटकर गिरे हुए रथ, जोड चटककर टूटे हुए रथ, रस्सो के टूट जाने से अस्त-व्यस्त हुए तथा चूर-चूर बने हुए रथ, प्रचुर मात्रा में दिखाई पड रहे थे। सुर-खेचर आदि का समूह इसे अत्यत अद्भुत दृश्य मानकर वानरो की प्रशसा करने लगे।

तब नरातक ने अमित क्रोध से गर्जन करते हुए अपना अश्व वेग से दौडाया और असुरो को धैर्य देते हुए कहने लगा—'भागो मत, भागो मत।' फिर, वह बडे दर्प के साथ वानरो पर आक्रमण करने और एक ही क्षण में एक साथ सात सौ वानरो को मारकर गिराने लगा। जिस मार्ग से वह जाता था, उस मार्ग में रहनेवाले वानर गिर जाते थे, और वह मार्ग उसी मार्ग के जैसा दीखने लगता था, जिस पर इन्द्र अपने अद्भुत शौर्य का प्रदर्शन तथा पर्वतो का खडन करते हुए गया था। जो कोई वानर क्रोध में आकर अपने मन में उसका वध करने का सकल्प मात्र करता था, उसके पहले ही वह उसका सहार कर देता था, मानो उसने उस वानर के अतरग में पैठकर उसके मन में उत्पन्न

होनेवाली बात जान ली हो। जो कोई कपि उसका नाश करने के निमित्त किसी पर्वत को उखाड़ने की चेष्टा करता, उसके पूर्व ही वह अत्यधिक क्रोध से उसका नाश कर देता था। जो कोई कपि उसका वध करने के लिए कोई वृक्ष उखाड़ने का प्रयत्न करता, उसके पहले ही वह उसका वध कर देता। इतना ही नही, वह अपने अश्वो को वानरों के समूह पर चलाकर कितने ही वानरो को कुचल दिया, जिससे उनकी आँतें, और मांस निकल पड़े। वह उन्हें एक दूसरे से ऐसा टकरा देता था कि उनका वक्ष फट जाता और हड्डियाँ चूर-चूर हो जाती। इस प्रकार, उसने भयंकर क्रोध से प्रलय-कालानल की भाँति सारे युद्ध-क्षेत्र में व्याप्त होकर वानर-सेना-रूपी वन को कई बार नष्ट कर दिया। वानर उसके शौर्य तथा उसकी शक्ति का सामना नही कर सकने के कारण चकित तथा व्याकुल-से हो रहे। सभी देवता विचलित हुए। अत्यधिक त्रस्त वानर-सेना को क्लेश पहुँचानेवाले नरांतक को देखकर कपिराज का पुत्र अंगद क्रोध में आकर वानर-सेना से यो बाहर निकल पड़ा, जैसे बादलो के समूह को चीरकर सूर्य बाहर निकलता है।

८३. अंगद तथा नरांतक का द्वंद्व-युद्ध

उसने नरांतक को देखकर कहा—'हे नरातक, इतनी क्रूरता के साथ तुम इन वानरो का संहार क्यो कर रहे हो ? ऐसा करने से क्या तुम शूर बन जाओगे ? यदि सचमुच तुम शूर हो, तो मेरे साथ युद्ध करो।' तब नरातक ने हँसकर कहा—'हे वनचर, मेरे सामने तुम्हारी हस्ती ही क्या है ? मैंने सभी दिक्पालो का दर्प-दलन किया है। समस्त देवताओ को पीड़ित किया है। मेरे जैसे पराक्रमी का सामना, क्या, तुम कर सकोगे ? मैं तुम्हारी दोनो जाँघो को चीरकर फेंक दूँगा। तुम अभी नादान दुधमुँहे बच्चे हो; किन्तु प्रतापी योद्धाओ के साथ युद्ध करना चाहते हो। अभी तुम मेरी शक्ति देख लोगे।' तब अंगद ने हँसकर कहा—'हे राक्षस, दशकंठ का दर्प चूर करने के पश्चात् खर के पुत्र का संहार करके जब मैं जाने लगा, तब क्या, तुमने मुझे नही देखा था ?'

इतना कहते ही वह राक्षस काल-सर्प की भाँति फुफकारते हुए अंगद के निकट आ पहुँचा और अत्यधिक स्फुलिंगो को विकीर्ण करनेवाली अपनी शक्ति से अंगद पर प्रहार किया। गरुड़ के मुँह का स्पर्श होते ही गिरनेवाले काले नाग की भाँति वह शक्ति अंगद के वज्र-सम वक्ष का स्पर्श करते ही खड-खड हो गई। अपने वज्रायुध से पर्वतराज को दबानेवाले इन्द्र की भाँति वालि-पुत्र ने अपनी हथेली से उसके घोड़े पर ऐसा दुर्भर प्रहार किया कि उसका मस्तक फूट गया और वह अश्व मुँह खोले, जीभ बाहर किये, पृथ्वी पर गिर पडा और छटपटाकर मर गया। अश्व के गिरते ही नरांतक क्रोधानल से आँखें लाल किये हुए अपनी मुष्टि से अंगद के सिर पर प्रहार किया और उसे मूर्च्छित कर दिया; किन्तु अंगद शीघ्र ही सचेत हो गया और चिल्लाया कि रे नरांतक, तुम्हारा ऐसा साहस ? फिर, उसने वज्र-सम अपनी मुष्टि से श्रेष्ठ पर्वत के समान दीखनेवाले उसके वक्ष पर प्रहार किया। चोट लगते ही वह रक्त उगलते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसका कपाल फूटकर चूर-चूर हो गया। इस प्रकार, नरातक ने उस घोर रण-क्षेत्र में गिरकर अपने प्राण छोड़ दिये। आकाश से देवता और पृथ्वी पर कपि हर्ष की ध्वनि करने लगे।

८४. देवांतक तथा त्रिशिर का अंगद पर आक्रमण करना

दानवेश्वर के पुत्र की यह दशा देखकर महोदर ने अपने भयकर गज को आगे बढाया। देवातक ने भी अपने अनुज की मृत्यु पर दुखी तथा वालि-पुत्र के साहस पर क्रुद्ध होकर अपना परिघ घुमाते हुए अगद पर आक्रमण किया। रवि-मडल-सदृश दीप्त होने-वाले रथ को उद्धत गति से चलाते हुए, पृथ्वी को कँपाते हुए, त्रिशिर अग्नि के समान भासमान होते हुए बड़े क्रोध के साथ अगद से भिड गया। तब अगद ने, शाखाओ से युक्त एक विशाल वृक्ष को उखाड़कर उसे देवातक पर फेंका, तो त्रिशिर ने उसे बीच में ही काट डाला। तब, अगद आकाश की ओर उछलकर क्रोध से पर्वतो तथा वृक्षो को उन पर गिराने लगा; किन्तु देवातक तथा त्रिशिर उन्हें तावड-तोड काटते गये। दोनो ने उस पर एक साथ असख्य तोमर चलाये। इससे सतुष्ट न होकर देवातक ने भयकर गर्जन करते हुए अंगद पर बड़े वेग से अपना परिघ चलाया। त्रिशिर ने सिंह-गर्जन करते हुए शर-वृष्टि की। महोदर ने अपने मत्त गज को उत्तेजित करके आगे बढाया और तोमर चलाया। इस प्रकार, जब तीनो एक साथ अपनी-अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने लगे, तब अगद अपना शरीर झुकाकर वज्र के समान महोदर के हाथी से ऐसे टकराया कि वह हाथी चिंघाडते हुए पर्वत-शृंग की भाँति नीचे गिर गया। उसकी आँखें बाहर निकल आईं और वह वही ढेर हो गया। उसका कुंभ-स्थल फूट गया और उससे अनुपम मोती ऐसे बिखर गये, मानों विजय-लक्ष्मी ने राघवेश्वर को प्राप्त करने की अभिलाषा से अपना अलकरण करने के लिए अपनी मंजूषा खोल दी हो। उसके पश्चात् वालि-पुत्र ने उसी हाथी का दाँत उखाड़-कर उससे देवातक पर प्रहार किया। उस प्रहार से, वह राक्षस, प्रबल वायु से झूलने-वाले घने साल-वृक्ष की भाँति कंपित हो उठा और रक्त उगलने लगा। फिर भी, उसने बड़े साहस के साथ अपना सारा बल एकत्र करके अगद के पर्वतसानु-सदृश वक्ष स्थल पर अपने परिघ से प्रहार किया। प्रहार से अगद भी पृथ्वी की ओर झुक गया, किन्तु उसने अपनी सारी शक्ति सचित करके अत्यधिक क्रोध से देवातक पर आक्रमण किया। तब त्रिशिर ने तीन प्रचण्ड शर उस वालि-पुत्र के ललाट पर छोडे।

८५. हनुमान् आदि वीरों के द्वारा त्रिशिर आदि राक्षसों का वध

इसी समय नील तथा हनुमान् अगद की सहायता के लिए आ पहुँचे। नील ने एक विशाल पर्वत को उठाकर दहाड़ते हुए त्रिशिर पर फेंका। तब, त्रिशिर ने वज्र-सम एक बाण का सधान करके उससे उस पर्वत को काट दिया। पवन-पुत्र ने देवातक को बड़े साहस के साथ एक विशाल परिघ को घुमाते हुए, प्रचड विक्रम प्रदर्शित करते हुए सामने आते देखकर अपनी मुष्टि से उस पर प्रहार किया। इस प्रहार से उसके दाँत टूट गये, पुतलियाँ घूम गईं, और वह मुँह खोले पृथ्वी पर लुढक गया। देवातक का यह पतन देखकर स्वर्ग-लोक के देवता हर्ष-ध्वनि करने लगे।

इस पर क्रुद्ध होकर त्रिशिर ने अशनि-वेग से एक तीव्र बाण नील पर चलाया। उसी समय महोदर भी एक हाथी पर आरूढ हो गर्जन करते हुए आ पहुँचा और उस पर ऐसी शर-वर्षा कर दी, जैसे घनघोर मेघ कुल-पर्वत पर वर्षा करता है। उनके अस्त्र-शस्त्र

स अत्यत पीडित होकर नील मूर्च्छित हो गया, किन्तु शीघ्र ही सँभलकर आकाश की ओर उछला और तरु-सहित एक विशाल पर्वत को उठाकर उसे महोदर पर दे मारा। उस पर्वत के प्रहार से महोदर का सिर फूट गया और वह अपने अस्त्रो के साथ नष्ट हो गया। महोदर को पृथ्वी पर गिरते देखकर त्रिशिर ने प्रचड पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए, साहस खोये विना पवन-पुत्र पर असख्य बाणो की वर्षा की। तब हनुमान् ने शीघ्र ही एक पर्वत-शृग को उखाड़कर उसे उस त्रिशिर पर फेंका। किन्तु त्रिशिर ने उसे बीच में ही ऐसे चूर-चूर कर दिया कि देवता भी देखकर चकित-से रह गये। तब हनुमान् सहज ही उसके रथ पर कूद गया और उसके अश्वो को ऐसा चीर डाला, जैसे सिह क्रुद्ध होकर हाथियो को चीर डालता है। तव, क्रोधोन्मत्त हो त्रिशिर ने उस पर शक्ति का प्रयोग किया। प्रचड ज्वालाओ से युक्त हो उस शक्ति को अते देखकर हनुमान् ने उसे पकड़कर तोड डाला। शक्ति को तोडने के हनुमान् के वाहु-बल का विचार करके त्रिशिर ने एक पैनी धारवाले खड्ग को लेकर बड़े वेग से हनुमान् पर आक्रमण करके उस खड्ग से हनुमान् के वक्ष पर प्रहार किया। तुरत हनुमान् ने अपनी हथेली से उस राक्षस के वक्ष पर आघात किया। तव, वह राक्षस अपने खड्ग को छोडकर पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पडा। तब, नीचे गिरे हुए खड्ग को हाथ में उठाकर अनिल-कुमार ने पृथ्वी को विदीर्ण करते हुए सिंहनाद किया। किंतु इतने में त्रिशिर सँभल गया और अपनी मुष्टि से हनुमान् के वक्ष पर प्रहार किया। तब हनुमान् की कनपटियाँ क्रोध से फूल उठी। उसने वडे दर्प के साथ खड्ग को चमकाते हुए उस राक्षस के तीनो सिर ऐसे काट डाले, जैसे सुरेन्द्र ने विश्वरूप के सिर काट डाले थे, अथवा हनुमान् ने त्रिशिर के कर्म-बधनो को ही काट डाला हो। तब पृथ्वी, आकाश, तथा दिशाओ को कँपाते हुए त्रिशिर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

उसके गिरते ही महापार्श्व अत्यधिक क्रोध से तेवर बदलते हुए, दिग्गज के समान भयकर, कनक-चक्र एव मणि-प्रभा से विलसित, यम के भीषण दड के सदृश दीप्त अरुण-पुष्प एव अरुण-चदन से अलकृत हो उदय-सूर्य की भाँति उज्ज्वल गदा-दड को धारण किये हुए बड़ी शीघ्र गति से हनुमान् पर आक्रमण करने चला। इतने में ऋषभ ने एक विशाल पर्वत को उठाकर उस राक्षस पर फेंका। किन्तु, उस राक्षस ने अपनी गदा से उस पर्वत को चूर-चूर कर दिया। फिर, उसने बडे दर्प से युक्त हो तेजी से अपनी गदा को घुमाकर ऋषभ के वक्ष पर प्रहार किया। गदा के प्रहार के कारण ऋषभ तुरत मूर्च्छित हो गया, किन्तु वह शीघ्र ही सँभल गया और अपनी मुष्टि से महापार्श्व के वक्ष पर भीषण प्रहार किया। चोट लगते ही वह राक्षस अपना गदा-दड छोडकर, शक्तिहीन हो पृथ्वी पर गिरने लगा। तुरत ऋषभ ने उस गदा-दण्ड को लेकर भयकर गर्जन करते हुए उससे उस राक्षस पर प्रहार किया। वज्र के गिरने से जैसे गिरि-शृग गिर जाता है, वैसे ही उस राक्षस का सिर चूर-चूर हो गया और वह भयकर ध्वनि के साथ पृथ्वी पर गिर पडा। पवन से डरनेवाले पीले पत्तो की भाँति दैत्य-सैनिक चक्कर काटते हुए तितर-वितर हो गये।

८६. अतिकाय का युद्ध

इस प्रकार, उन सब राक्षसो को गिरे हुए देखकर अतिकाय ने ऐसा गर्जन किया,

वह कौन है, उसे दिखाओ । उसके सिवाय और किसी पर मैं अपना अतुल शक्ति-संपन्न अस्त्र नही चलाऊँगा । देव, दानव, यक्ष तथा अन्य देवताओ से भी अधिक शक्तिशाली रावण को युद्ध में जीतने का सकल्प करके, इस प्रकार लका में आनेवाला वीर कौन है, उसे दिखाओ । उसके सिवाय और किसी पर मैं अपने अतुलित अस्त्र नही चलाऊँगा ।'

इस प्रकार गर्वोक्तियो को कहनेवाले उस दानवेश्वर के पुत्र पर कपि-वीर क्रोध से वृक्षो तथा पर्वतो की अविरल वर्षा करने लगे । तव अतिकाय ने अविरल वाण-वर्षा से उन सव को बीच में ही काट डाला । उसके पश्चात् तीन गुरुतर अस्त्रो से कुमुद को, पाँच भयकर शरो से द्विविद को, सात अद्वितीय वाणो से मैन्द को, नौ शरो से शरभ को, आठ घोर वाणो से गज को, चार तीव्र वाणो से गवाक्ष को, आठ वाणो से गवय को, दस वाणो से ज्योतिर्मुख को, पद्रह वाणो से शतवली को और पच्चीस वाणो से नील को, पृथ्वी पर गिराकर मूर्च्छित कर दिया । सभी देवता आकाश से चकित होकर यह दृश्य देखने लगे । तव प्रचड क्रोध से अतिकाय ने सभी वानरों को ऐसे भगाया, जैसे मृगराज मृगो को भगाता है । वह मन-ही-मन सोचने लगा कि विरोधी होते हुए भी यदि मैं परमेश्वर राम की भक्ति करूँ, तो मैं अवश्य मुक्ति प्राप्त करूँगा। यो सोचकर वह राम की ओर वढने लगा । जो वानर उसका मार्ग नही रोकता, वह उस पर हाथ नही उठाता। इस प्रकार, वह आगे वढते हुए राम के निकट पहुँचा और उस निगमवेद्य राम से हँसते हुए वोला—"हे राम, तुम इस रणभूमि में अपनी शूरता मुझे दिखाओ। तुम अनन्त हो। कोई भी यह नही जानता कि तुम्हारी शक्ति कितनी है । मेरे पिता के कारण तुमने मनुष्य का जन्म लिया है । उन्ही के कारण तुम पृथ्वी के राजा हुए हो। मेरा सामना करने के लिए, अमरेन्द्र, यम, वरुण आदि देवताओ के समूह से तुम कोई नही हो । अपना अत कर डालने के लिए जो कोई शूर मुझसे भिडे, उससे मैं लडूँगा ही । मैं तुम्हारा पराक्रम भली भाँति जानता हूँ । तुम्हें मान-अपमान का विचार ही नही है । तुम कदाचित् मुझे नही जानते । भला गुणहीनो में सत्त्वगुण कहाँ रहेगा ? तुम किस जाति के हो, मैं कैसे कहूँ ? क्या, तुम राजकुल के आचारो का पालन करनेवाले हो ? पुण्यात्मा तपस्वियो के मानस-काननो में भले ही तुम निवास करो । मेरे साथ लड़ने की क्षमता तुम नही रखते । वेदाद्रि-गुफाओ में तुम जाकर वास करो, युद्ध के लिए तुम मेरे जोड़ के नही हो। सनक आदि मुनि तथा योगियो के मानस-रूपी समुद्रो में भले ही तुम निवास करो, मेरे साथ युद्ध करने योग्य नही हो । गेरुए रग के वस्त्र धारण करके, पाप-रहित तथा ससार के दुखो से मुक्त, कद-मूल-फल जैसे नीरस आहार करते हुए, विविध आचार-निष्ठाओ के कारण क्लान्त, घोर काननो में विचरण करनेवालो के साथ तुम जाकर रहो। तुममें रण-कौशल नही है । तुम्हारी शक्ति की कल्पना मैंने कर ली है। इस ससार में तुम अकेले थे, ऐसे तुम्हें यह कपि-सेना मिल गई है। आश्रयहीन होकर घूमनेवाले तुम्हें अव सूर्य-पुत्र एक मात्र आधार मिल गया है । हाय, कही भी, किसी का जो गुरु नही वना, ऐसा विश्वामित्र तुम्हारा गुरु हुआ । तुम्हारा अपना कोई देश नही था, इसलिए

अकलक अयोध्या तुम्हें प्राप्त हुई । इनके गर्व में मत इठलाओ । तुम भले ही, मत्स्य का रूप धरकर सभी समुद्रो में प्रवेश करो, कूर्म का रूप धारण कर पर्वत के नीचे चले जाओ, पर मैं तुम्हें छोड़ूँगा नही । अवश्य मै तुम्हें ढूँढ लाऊँगा। तुम अपना वेश विकृत करके भले ही कही भी छिप जाओ, मै तुम्हें अवश्य पकड लाऊँगा, तुम्हें भूलूँगा नही । वामन का रूप धरकर, याचक-वृत्ति अपनाये हुए भले ही तुम कही चले जाओ; मै तुम्हें ढूँढकर पकड लाऊँगा, तुम्हारा विचार नही भुलाऊँगा । भूसुर का वेश धरकर, परशु को लिये हुए राजाओ के सहारक तुम भले ही बन जाओ, मै अवश्य तुम्हारा अन्वेषण करके तुम्हें पकड लूँगा । मेरा बाण अत्यत भीषण है । वह कोई वट-पत्र नही कि तुम्हें वहन किये हुए अद्वितीय रण-समुद्र में तैरता रहे । अत्यधिक शक्ति के मद से झूमनेवाले मेरे सामने यद्ध-क्षेत्र में ठहरना तुम्हारे लिए असभव है ।"

८७. लक्ष्मण तथा अतिकाय का द्वन्द्व-युद्ध

इस प्रकार, प्रलाप करनेवाले अतिकाय का दर्प देखकर लक्ष्मण हँसते हुए बोले—'हे राक्षस, मेरे रहते, राघव के साथ युद्ध करने का प्रयत्न क्यो करते हो ? सँभलकर मेरी ओर बढो, मै तुम्हें अपने बाणों से टुकडे-टुकडे कर दूँगा।' ऐसा कहकर वे अपने धनुष के टकार से दानवो के चित्त कपित करते हुए उस राक्षस पर टूट पडे । लक्ष्मण के साहस को देख वह आश्चर्यचकित हुआ और एक क्रूर अस्त्र का सधान करके, दहाडते हुए कहने लगा—'ठहरो, लक्ष्मण, ठहर जाओ । तुम अभी बालक हो, मेरे साथ मत भिडो । मै यम से भी अधिक क्रूर हूँ । मेरे तीव्र बाणो को सहने की क्षमता या तो इस वसुधरा में है, या हिमाचल में है, या रावण के उठाये कैलास पर्वत में है, या देवताओ के निवासभूत पर्वत में है, या अधकरिपु शिवजी के धनुष को भग करने के गर्व से फूलने-वाले तुम्हारे भाई राघव में है । उसके अलावा दूसरे किसी में मेरे साथ युद्ध करने की शक्ति नही है ? मेरे समक्ष खड़े रहना, क्या तुम्हारे लिए सभव है ? हे सौमित्र, यह श्रेष्ठ बाण अभी तुम्हें लगकर तुम्हारा रक्तपान कर लेगा ।'

ऐसे दुरहकार से भरे वचन सुनकर लक्ष्मण ने कहा—'हे राक्षस, इस प्रकार व्यर्थ गर्जन क्यो करते हो ? युद्ध में तुम अपनी शक्ति दिखाओ। मेरे समक्ष व्यर्थ प्रलाप क्यो करते हो ? हे निशाचर, तुम भी बडे वीर की भाँति, अपना औद्धत्य तजे बिना, शस्त्र-समूह से सज्जित हो, तथा रथ पर आरूढ हो, मेरे समक्ष खडे हो, यही एक महान् आश्चर्य है ।' यह सुनकर उस राक्षस ने बड़े क्रोध से अपने हाथ का बाण लक्ष्मण पर चलाकर गर्जन किया। तब, लक्ष्मण ने उस बाण को अर्द्धचन्द्र बाण से काट डाला । फिर, उन्होने एक तेज बाण अपने धनुष पर चढाकर उसे उस राक्षस के ललाट को लक्ष्य करके चलाया, मानो यह सकेत कर रहे हो कि ब्रह्मा का लेख भी अब मिटनेवाला है । तब, उस शर के प्रहार से अतिकाय ऐसे हिल उठा, जैसे रुद्र के प्रहार से भासुरासुर का प्रासाद कपित हो गया था । 'मेरे साथ यह युद्ध करने का साहस रखता है'—यह विचार आते ही अति-काय ने सिंहनाद किया और अपना रथ लक्ष्मण के निकट चलाकर, शीघ्र ही रामानुज पर एक ऐसा पैना शर चलाया, मानो उसी से उनका सहार कर डालने का सकल्प कर लिया हो।

उसके तुरत बाद ही उसने तीन ऐसे शक्ति-सपन्न बाण चलाये, मानो कह रहा हो कि भले ही त्रिनेत्र शिव भी रक्षा करें, तो भी तुम्हारा सुख छीन लूँगा। फिर, तुरत उसने पाँच बाण चलाये, मानो कह रहा हो कि तुम्हारे पंच प्राण अवश्य खीच लूँगा। उसके पश्चात् उसने अपने बाहु-बल के गर्व से फूलते हुए बड वेग स सात बाण चलाय, मानो कह रहा हो कि भले ही तुम सप्त समुद्रो में प्रवेश करके उन्हें पार कर जाओ, मैं तुम्हें अवश्य ही मार डालूँगा। किन्तु, लक्ष्मण ने शीघ्र ही उन सभी बाणो को खड-खड करके सिंह-गर्जन किया। उसके पश्चात् उन्होने आग्नेय अस्त्र चलाया, तो अतिकाय ने सौरास्त्र चलाया। दोनो शरो ने आपस में टकराकर युद्ध किया और दोनो चूर-चूर होकर नीचे गिर गये। फिर, राक्षस ने ऐषिक बाण चलाया, तो लक्ष्मण काँप उठे। फिर, उन्होने ऐन्द्र बाण से उसे काट डाला। यह देखकर दैत्य ने याम्यास्त्र चलाया, तो लक्ष्मण ने वायव्यास्त्र चलाकर उसे काट डाला। इतना ही नही, उन्होने कई और बाण भी उस राक्षस पर चलाये, किन्तु वे सभी बाण अतिकाय का स्पर्श करते ही टूटकर पृथ्वी पर गिर गये। लक्ष्मण यह देखकर सोचने लगे कि क्या कारण है कि कोई भी शर इसके शरीर में गड़ता नही? उनका इस प्रकार व्याकुल होते समय अनिल ने आकर कहा—'यह अनुपम रहस्य तुम्हें बताऊँगा। हे लक्ष्मण, इसने ब्रह्मा से वज्र-कवच प्राप्त किया है। अत., कोई भी शर इसके शरीर में नही गडता। तुम इस पर ब्रह्मास्त्र चलाकर इसके टुकडे-टुकड़े कर डालो।'

तब बडे हर्ष से लक्ष्मण ने ब्रह्मास्त्र को मत्र-पूत करके धनुष पर चढाया और उसे रावण के पुत्र पर चलाया। तुरत समस्त ब्रह्माण्ड को विदीर्ण करते हुए, इन्द्र को भयभीत करते तथा देवताओ को कँपाते हुए, दिशाओ को हिलाते हुए, समुद्रो को आलोडित करते हुए, पर्वतो को झकझोरते हुए, सूर्य-चद्र को पथ-भ्रष्ट करते हुए, नक्षत्रो को गिराते हुए, वह ब्रह्मास्त्र, रत्न-समूह की भाँति उज्ज्वल काति से युक्त हो, प्रलय-काल की अग्नि के समान सभी लोको में व्याप्त होकर जलते हुए, पवन के वेग से यम-दड के समान, अतिकाय की ओर आने लगा। तब अतिकाय ने उस पर तीव्र शर चलाये, किन्तु उस ब्रह्मास्त्र को निष्फल नही कर सका। फिर, राक्षस ने शक्ति चलाई, किन्तु ब्रह्मास्त्र ने उसकी भी उपेक्षा कर दी। फिर, अतिकाय ने उस पर शूल चलाया, किन्तु ब्रह्मास्त्र ने उसकी भी अवहेलना कर दी। उसके पश्चात् राक्षस ने गदा चलाई। उसे व्यर्थ होते देखकर, उसने खड्ग चलाया। किन्तु, उसकी भी परवाह किये बिना उसको अपनी ओर आते देखकर अतिकाय ने परशु चलाया। किन्तु, परशु की भी उपेक्षा करके उसे आते देखकर राक्षस ने भाला चलाया। इस पर भी ब्रह्मास्त्र की गति नही रुकी, तो उसने अपनी कमर से बरछी निकालकर उससे प्रहार किया।

८८. अतिकाय का वध

उसपर भी ब्रह्मास्त्र अप्रतिहत गति से अतिकाय की ओर बढना रहा। तब अतिकाय ने उन पर अपनी मुष्टि मे प्रहार किया। पर, उस अस्त्र ने मुकुट तथा कुडलो मे अलंकृत उस राक्षस का सिर काट डाला। वज्र के आघात स रोहणाद्रि का शृग जैसे गिरा था

वैसे जब उसका सिर पृथ्वी पर गिरा, तब उसके सिर को देखकर हतशेष राक्षस भयभीत होकर लंका की ओर भागने लगे। सभी वानर लक्ष्मण की प्रशसा करने लगे। रामानुज ने तब रामचन्द्र के चरणो में गिरकर प्रणाम किया, तो उन्होने बडे आनद से लक्ष्मण को हृदय से लगा लिया और वानरो के साथ अत्यधिक हर्ष प्रकट किया।

अतिकाय आदि छह वीरो की मृत्यु का समाचार सुनकर रावण मूर्च्छित हो गया। फिर सचेत होकर अविरल अश्रु बहाते हुए वह अत्यधिक शोक से सतप्त होने लगा। इस प्रकार दुःख से पीडित होनेवाले पति की सेवा में पहुँचकर मय-पुत्री मंदोदरी कहने लगी—'हे असुरेन्द्र, सभी लोको में अद्वितीय शक्ति से सपन्न आपका ऐसा दुःखी होना उचित नही है। उस दिन वीर की तरह आप राम की देवी को क्यो ले आये ? उन्हें फिर राम के पास पहुँचाना आप नही चाहते थे। अब उचित समय बीत गया। उस राम पर आक्रमण करने के लिए गये हुए राक्षस-वीर फिर लौटकर आयेंगे, यह आशा आप छोड दीजिए। हे नाथ, युद्ध में आप अपनी शक्ति दिखाइए।'

इन बातो पर रावण ने मन-ही-मन विचार किया। उसने अपनी स्त्री को अतःपुर में भेज दिया और दुःख की लबी साँस खीचकर अपने मन्त्रियो से कहा—'हाय, मेरे भाई तथा मेरे प्रिय पुत्र इस प्रकार मारे गये ? अब क्या कहा जाय ? श्रेष्ठ योद्धाओ के लिए भी अकाट्य नाग-पाशो को इन मानव-वीरो ने न जाने, माया से या शक्ति से, काट दिया है। अब मैं विजय की आशा करूँ, तो भी वह मेरे लिए असभव है। उस राम को युद्ध में जीतनेवाला अब ढूँढने पर भी मुझे नही मिलेगा। अबतक जो लका, बिना किसी भय के शोभायमान थी, वह आज इन शक्तिशाली लोगो के कारण त्रस्त हो रही है। उस राम के पराक्रम की सीमा ही नही है। इसलिए तुम लोग अब लका की रक्षा के लिए आवश्यक सेना प्रतिदिन भेजते रहो।' ऐसा आदेश देकर वह अतःपुर में चला गया और एकात में मन-ही-मन चिंता से पीडित रहने लगा।

८९. इंद्रजीत का द्वितीय युद्ध

उस समय मेघनाद वहाँ पहुँचकर दशकठ से कहने लगा—'हे दानवेन्द्र, मेरे रहते हुए आपका इस प्रकार चिंतित होना उचित नही है। शक्ति से सपन्न मेरे बाणो का आघात क्या ईश्वर भी सह सकता है ? लीजिए, मैं अभी जाता हूँ। उस राम के भाई को अपने उद्धत बाणो से अवश्य जर्जर करके उसे मार डालता हूँ और उस वानर-सेना को अपने पराक्रम से पृथ्वी पर सुलाकर आता हूँ। हे देवताओ के शत्रु, मेरी प्रतिज्ञा सुन लीजिए। जैसे महाराज बलि की यज्ञ-भूमि में त्रिविक्रम के बढते हुए रूप को त्रस्त होकर इन्द्र, विष्णु, यम, अग्नि, रुद्र, सूर्य, चन्द्र तथा साध्य देखते रहे, वैसे ही आज वे मेरे प्रताप को देखते रह जायेंगे।'

इतना कहने के पश्चात् वह राक्षस-राजकुमार वायुसम शीघ्रगामी रथ पर आरूढ हो युद्ध के लिए चल पडा। उसके चलते ही सब दिशाओ से एक साथ बडे वेग से असख्य रथ निकल पडे। अनगिनत गज निकल पडे, विपुल अश्व-सेना तथा पदाति-सेना निकल पड़ी। उस चतुरंगिणी सेना पडरीको (श्वेत छत्रो) से प्रकाशित होनेवाले, पडरीक (बाघ)

की-सी आँखोवाले, पुडरीक (श्वेत कमल) की कातिसम शरीरवाले, पुडरीक के (आग्नेय दिशा का दिग्गज) के औन्नत्य से विलसित होनेवाले, पुडरीक (बाघ) के समान भयंकर लगनेवाले और पुडरीक (बाघ) की शक्ति से संपन्न वीरो से पूर्ण थी । सिंहनादो, दहाड़ो, हुकारो, गर्वोक्तियो, रथ की नेमियो तथा निसानो की भयकर ध्वनि चारो ओर व्याप्त हो रही थी । धवल छत्र से युक्त वह राक्षस-कुमार सुधाकर से युक्त आकाश के समान दीख रहा था । सुदर कामिनियाँ अपने कमल-नेत्रो की दीप्ति को चारो ओर विकीर्ण करती हुई चामर डुला रही थी । ऐसी रण-सज्जा से युक्त हो, अपने आभूषणो की प्रभा से दीप्त होते हुए, सहज वैभव से उज्ज्वल इद्रजीत रण-स्थल के मध्य आकर खडा हुआ । उसके पश्चात् उसने रक्त-वर्ण के वस्त्र, चदन तथा पुष्प-मालाएँ धारण करके अग्निदेव का प्रतिष्ठापन किया, शर तथा तोमरो से उसकी परिधि बनाई और लोहे के स्रुक् तथा स्रुवा एकत्र किये । फिर, राक्षसेश्वर के पुत्र ने अथर्ववेद के उच्चारण के साथ घी, खील तथा ताल-समिधाओ का हवन किया । होम की समाप्ति के पहले, उसने कृष्ण-छाग (काला बकरा) के रक्त की पूर्णाहुति दी । तब अग्निदेव ने स्वयं प्रकट होकर हव्य ग्रहण किया । उनकी कृपा से मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र, रथ, धनुष तथा कवच प्राप्त किये ।

उसके पश्चात् वह राक्षस अपने सिंहनाद से दिशाओ को कँपाते हुए अपने रथ, अश्व, केतु तथा सारथियो के साथ, सूर्य, चद्र तथा नक्षत्रो को अपदस्थ करते हुए शीघ्रगति से आकाश-वीथी में जाकर छिप गया । फिर, अपनी सेना से अपने पराक्रम के अनुरूप वचन कहने लगा—'तुम बिना विचलित हुए युद्ध करते जाओ । मैं आकाश से घोर युद्ध करते हुए राम और लक्ष्मण का शीघ्र ही सहार कर दूँगा ।'

इन उत्साहवर्द्धक वचनो को सुनकर दानव अत्यत हर्षित हुए और सेना के साथ वानरो पर टूट पडे तथा विविध रीतियो से उनसे युद्ध करने लगे । उसी समय इद्रजीत अपनी छाया तक प्रकट किये बिना आकाश से दिव्य बाण चलाने लगा । तब वानर उठकर पर्वतो को उठा-उठाकर उस राक्षस की ओर फेंकने लगे । किन्तु इद्रजीत के शरो ने उन्हें तोडकर उन वानरो की छाती को विदीर्ण कर उन्हें पृथ्वी पर गिरा दिया। इसके पश्चात् उसने एक घोर अस्त्र चलाकर पाँच वानरो को तथा नौ अस्त्रो से सात वानरो को नीचे गिरा दिया । तब क्रुद्ध होकर कपि-वीरो ने पर्वतो तथा वृक्षो को उठाकर उस इद्रजीत पर फेंका । किन्तु, उसने बडी निपुणता से उन्हें अपने तीव्र बाणो से काटकर गधमादन पर अठारह बाण चलाकर उसका मद चूर-चूर कर दिया । उसके पश्चात् उसने नौ बाणो से नल के नाम-रूप मिटा दिये, सात बाणो से मैन्द को झुका दिया, पाँच बाणो से गज का सहार किया, दस बाणो से जाबवान् का शरीर चीर डाला, सौ बाणो से हनुमान् को अत्यधिक दु:ख पहुँचाया, तीन बाण गवाक्ष पर चलाये, तेरह बाणो से हरिरोम के प्राण हर लिये, छह बाणो से रभ को गिरा दिया, दस बाणो से सूर्यप्रभ को परास्त किया; तेरह बाणो से पनस के अगो को छेद डाला, आठ क्रूर बाणो से कुमुद को तथा पैंतीस बाणो से नील को छिन्न-भिन्न दिया । तत्पश्चात् बिना विश्राम लिये ही उसने कई बाणो से अंगद को, तीन पैने बाणो से सूर्य-नदन (सुग्रीव) को, पाँच बाणो से इन्द्रजाल को, दो शरो से गिरि-

भेदी को तथा वीस शरो से ऋषभ को मूर्च्छित कर पृथ्वी पर गिरा दिया । फिर, चौदह वाणो से केसरी को, पाँच भास्वर वाणो से दधिमुख को, छह-छह वाणो से सुमुख तथा ग्रथन को, छह शरो से विमुख को, सात वाणो से द्विविद को, उतने ही वाणो से शरभ को, दस शरो से शतवली को, आठ वाणो से हर को, तीन वाणो से सन्नाद को और श्रेष्ठ तथा दिव्य अस्त्रो की वर्षा से अन्य समस्त वानर-नायको को छिन्नगात्र तथा विगतप्राण करके पृथ्वी पर गिरा दिया ।

९०. ब्रह्मास्त्र से इन्द्रजीत का राम-लक्ष्मण आदि को मूर्च्छित करना

इन्द्रजीत ने कुछ वानरो पर वाण चलाये, कुछ कपियो को गदा से मार गिराया, कुछ को शूल से हत किया, कुछ पर शक्ति का प्रहार किया । इस प्रकार, सभी वानर-वीरो को पृथ्वी पर गिराकर, अपना अनुपम पराक्रम प्रदर्शित करता रहा । इन्द्रजीत के भयकर वाण सह नही सकने के कारण कुछ कपि तितर-वितर होकर भाग रहे थे, कुछ थर-थर काँप रहे थे; कुछ त्रस्त हो रहे थे, कुछ छिप रहे थे और कुछ को ऐसा लग रहा था, मानो कपि-सेना के लिए प्रलय-काल आसन्न हो गया हो । दानवेन्द्र के पुत्र ने तव अपने ब्रह्मास्त्र के मत्र-प्रभाव से हत-शेष वानर-सेना का सहार करके विजय-गर्व से सिह-गर्जन किया ।

कपि-समूह को इस प्रकार पीडित होते देखकर लक्ष्मण क्रुद्ध हुए और अपने अग्रज से कहने लगे—'हे देव, आप चिता क्यो करते है, आप मुझे आज्ञा दें, तो मै ब्रह्मास्त्र चलाकर रावण के साथ-साथ राक्षस-समूह को नष्ट कर दूँ ।' तव राम ने कहा—'जव यह राक्षस अपनी माया के कारण दिखाई नही देगा, तव ब्रह्मास्त्र अद्वितीय शक्ति का प्रदर्शन करते हुए सभी लोको को भस्म करता हुआ चला जायगा । एक के कारण तुम निष्ठुर होकर सभी लोको को भस्म क्यो करना चाहते हो ? ब्रह्मा के दिये वर की शक्ति से इस राक्षस ने कपि-सेना को मार डाला है । हमें तो ब्रह्मा के वर का आदर करना चाहिए ।'

उनका वार्त्तलाप चल ही रहा था कि इन्द्रजीत ने उन दोनो रघुवशियो पर ब्रह्मास्त्र का ऐसा प्रहार किया कि वे दोनो मूर्च्छित हो गये । तव गर्वित रावणपुत्र-रूपी व्याप्त नील-मेघ, धनुष की प्रत्यचा के टकार-रूपी मेघ-गर्जन, वेग के साथ राक्षस के द्वारा गिराई जानेवाली काति-रूपी विजली, वार-वार चलाये जानेवाले असख्य वाण-रूपी वर्षा, पखो से युक्त वाण-रूपी चातक, कनक रत्न-प्रभा-कलित धनुष-रूपी इद्रधनुष, अनुपम रीति से वानरो के शरीर से फूटकर निकलनेवाली रक्त-धारा-रूपी वाढ, हारो से छूटकर गिरे हुए मोती-रूपी ओले, टूटकर छितराये हुए मुकुटो की उज्ज्वल मणियाँ-रूपी इद्रगोप, काहल (चर्मवाद्य) का निनाद-रूपी केका तथा अत्यधिक भीषण पटह-नाद-रूपी मेंढको की टर-टर से युक्त हो, वह समय आषाढ की पहली वर्षा के समय के समान दीख रहा था, जव कि रघुपति-रूपी किसान, राक्षसो की विपुल देह-रूपी क्षेत्रो में वाण-रूपी वीजो को रोपने के लिए आया हो और अपने वाहु-वल का प्रदर्शन करके खलिहान में उस दशकधर को लाकर, उसके सिर-रूपी वालो को काटकर दँवरी कराना चाहता हो । इसी समय इद्रजीत ने वहत्तर वानर-सेना-समूह को तथा राघवो को जीतकर, अपने धनुष का घोर टकार करते हुए, युद्ध को स्थगित किया और हर्ष से हँसते हुए लका को लौट गया ।

उसी समय सूर्यास्त हुआ, मानो राघव की दुर्दशा के कारण मन-ही-मन दु.खी हो, उन्हें उस दशा में देख नही सकने के कारण सूर्य ने आँखें वद कर ली हो । वानरो के मुख-कमल मुरझा गये । अधकार चारो ओर ऐसा व्याप्त हो गया, मानो वता रहा हो कि वानरो के द्वारा लका का दहन होते समय, धुआँ इसी प्रकार व्याप्त होगा । वह ब्रह्मास्त्र का सधान करने के लिए आवश्यक मंत्र-पठन का उचित अवसर नही था, इसलिए विभीपण ने पृथ्वी पर गिरे हुए सुग्रीव आदि योद्धाओ को देखकर कहा—'हे वानर-वीरो, रावण के पुत्र ने ब्रह्मा के वर की शक्ति से अस्त्र चलाया था, और राघव ने ब्रह्मास्त्र की शक्ति का आदर करने के विचार से उसे सह लिया है। इतना ही है और कुछ नही।' ब्रह्मा के वर से आरक्षित होने के कारण वायु-पुत्र, इन्द्रजीत के दिव्य-अस्त्रो के प्रहार से मरा नही था। इसलिए उसने कहा—'अव हम देखें कि वाणो से आहत हो युद्ध-भूमि में गिरे हुए वीरो में से कितने अभी जीवित है ।' यो कहकर वे दोनो जलती हुई मशालें लेकर उस अधकार में युद्ध-भूमि में घूमने लगे। तव उस युद्ध-भूमि में लगातार नृत्य करनेवाले वड़, छककर मास खानेवाले भूत, भयकर रूप से गरजनेवाले वैताल, वहनेवाले रक्त का पान करनेवाली डाकिनियाँ मास-पेशियो को निगलनेवाले गृद्ध, उच्च स्वर में रव करनेवाले शृगाल, रक्त उगलनेवाले भालू, पृथ्वी पर लोटने, छटपटाने तथा दाँत पीसनेवाले वानर, शक्ति-हीन होकर गिरे हुए, रूप-विकृत, रक्त में भीगे हुए तथा धूलि से सने हुए कपि, एक ही वाण के आघात से एक साथ एक ही स्थान पर सटकर गिरे हुए कपि, खड-खड होकर गिरे हुए पर्वत, छिन्न-भिन्न होकर गिरे हुए वृक्ष, खडित होकर फैले हुए राक्षसो के शूल, असख्य खडो में टूटकर गिरी हुई गदाएँ, मरकर गिरे हुए असख्य हाथी आदि जहाँ-तहाँ दिखाई पड़ने लगे । इस दृश्य को देखकर विभीषण तथा हनुमान्, दोनो विस्मित तथा दु खी हुए, किन्तु तुरन्त उन्होने निश्चय किया कि अव हमें भविष्य के कार्य के सवध में जाववान् से परामर्श लेना चाहिए । वही जानता है कि अव क्या करना चाहिए । हम उसे पहले ढूँढे और उसके कथन के अनुसार कार्य करें ।

यो सोचकर वे युद्ध-भूमि में जाववान् को ढूँढते हुए गये और निदान एक विशाल शर-शय्या पर पडे हुए उसे देखा । तव विभीपण ने कातर-भाव से जाववान् को देखकर कहा—'हे ऋक्षराज, तुम अभी जीवित हो ? क्या, तुम वोल सकते हो ? तुम हमें पहचानते हो ?' राक्षस के शर-प्रहार से शक्तिहीन होने के कारण जाववान् ने क्षीण स्वर में कहा—'हे विभीपण, तुम्हारे कठ-स्वर को पहचानकर मैं तुम से वात कर रहा हूँ। वैसे तो मेरी आँखो में वाण चुभ गये है । अत, मेरी आँखें देख नही पाती। क्या पवन-पुत्र जीवित है ? उसके जीवित रहने की वार्ता सुनकर मेरे कानो को आनद पहुँचाओ ।' यह सुनकर विभीपण ने अत्यत आश्चर्य-चकित होकर जाववान् से पूछा—'हे ऋक्षराज, यह कैसे आश्चर्य की वात है कि तुम महात्मा रामचन्द्र के वारे में नही पूछते, लक्ष्मण के सबध में नही पूछते, सूर्य-पुत्र के सवध में जानने की इच्छा प्रकट नही करते, और अंगद के वारे में भी पूछना नही चाहते, किन्तु पवन-पुत्र के सवध में ही पहले जानना चाहते हो ? यह तुम्हारा कैसा विचार है ?' तव जाववान् ने कहा—'हे विभीपण, यदि अकेले

हनुमान् अपने प्राणो से जीवित है, तो सभी वानर जीवित हो जायेंगे। यदि वह जीवित नही है, तो जीवित रहकर भी, वानर जीवित नही रह पायेंगे।'

इन बातो को सुनकर वायु-पुत्र को अधिक हर्ष हुआ। उसने अपना नाम लेकर जाबवान् के चरणो में प्रणाम किया। ऋक्षराज अत्यत हर्षित हुआ और अपने को पुनर्जीवित-सा अनुभव करके कहा—'हे वायुनदन, अब इन वानरो के लिए तुम्हारे सिवाय और कौन आश्रय है, इसलिए तुम शीघ्र ही समुद्र को पार करके जाओ। हिमाचल को पार करके हेमकूट, ऋषभ-पर्वत, मेरु-पर्वत, रजताद्रि तथा श्वेताचल से आगे निकल जाओ। वहाँ (तुम्हें) लवण-समुद्र मिलेगा। उसे भी पार करो, तो शाक-द्वीप पहुँचोगे। उसको भी पार करो, तो तरगायमान अमृताब्धि को देखोगे। उसे पार करो, तो चद्र-शैल तथा द्रोण-शैल के मध्य भाग में उज्ज्वल प्रकाश से दीप्त ओषधी-शैल को देखोगे। उस पर्वत पर सजीवकरणी, विशल्यकरणी, सधानकरणी तथा सौवर्णकरणी नामक चार ओषधियाँ है। तुम उस पर्वत पर चढकर उन ओषधियो को ले आओ और इस वानर-समूह को प्राण-दान देकर राम-लक्ष्मण को आनद पहुँचाओ।'

९१. हनुमान् का ओषधी-शैल लाकर वानरों की मूर्च्छा दूर करना

वायुपुत्र, जाबवान् से आज्ञा लेकर सुवेलाचल पर चढ गया। अपने चरणो को समान रूप से पृथ्वी पर प्रतिष्ठित करके, अपनी दीप्तिमान् लागूल को ऊपर उठाये, कधो को उचकाकर, अपने शरीर को फुलाकर, राम का स्मरण करते हुए वह आकाश की ओर उछला। उस अनुपम वेग के कारण वह विशाल पर्वत भी पृथ्वी में धँस गया, दिशाएँ काँप गई और पृथ्वी चकराने लगी। इस प्रकार, आकाश मार्ग में उडकर हनुमान् ने अत्यत भयकर समुद्र को पार किया और विष्णु के चक्र के समान आकाश में जाते हुए, मार्ग में कई विचित्र दृश्यो को देखते हुए, घने फेन से युक्त अमृत-समुद्र को पार किया और चन्द्र-शैल तथा द्रोण-शैल के मध्य भाग में स्थित ओषधी-शैल पर चढ गया और ओषधियो का अन्वेषण करने लगा। किन्तु, वे ओषधियाँ काम-रूपिणी थी, इसलिए अपने-आपको उस कपि-शेखर की दृष्टि से छिपा लिया। ओषधियो के नही दीखने से अनिलकुमार मन-ही-मन विचार करने के पश्चात्, विनीत हो उस पर्वत से प्रार्थना करने लगा—'हे पर्वतराज, मैं प्रालेय, पर्जन्य तथा कैलास-पर्वतो की उपेक्षा करते हुए शीघ्रगति से तुम्हारी सेवा में आया हूँ। मैं कार्यातुर हूँ। देवताओ ने यहाँ जिन ओषधियो को छिपा रखा है, उन्हें कृपया मुझे दिखा दो। हमारे राघव को इनकी आवश्यकता पड गई है। किसी भी तरह उन्हें दे दो, तो अच्छा होगा।'

तब पर्वत ने अट्टहास करके गर्व से फूलते हुए, हनुमान् से कहा—'तुम्हारा कितना साहस है कि तुम मुझसे ऐसे वचन कह रहे हो? इन ओषधियो को मुझसे माँगने का तुम्हारा अधिकार ही क्या है? इन्हें लाने का आदेश देनेवाले तुम्हारे राम की शक्ति कितनी है? जिन ओषधियो को देवताओ ने यहाँ छिपा रखा है, उन्हें तुम्हें देने से अधिक कोई और अपराध हो सकता है?'

इन गर्वोक्तियो को सुनकर अनिल-कुमार ने अत्यत क्रुद्ध होकर उस पर्वत से कहा—

'मैं जब तुमसे ऐसी विनम्र प्रार्थना करता हूँ, तब क्या यह उचित नही कि तुम मेरी प्रार्थना पर विचार करो ? हे पर्वत, मैं अपनी विशाल भुज-शक्ति से समूल तुम्हें उखाडकर अभी यहाँ से ले जाता हूँ, अबतक जिन रामचन्द्र को तुम नही जानते हो, उन्हें तब तुम जानोगे।' इतना कहकर हनुमान् ने भयकर गति से गर्जन करते हुए उस पर्वत को जड से उखाड लिया, (पर्वत पर रहनेवाले) गधर्वो को भगा दिया और उसे उठाकर इतने वेग से जाने लगा कि कोई भी उसे पहचान न सके।

सहस्र धाराओ से अत्यधिक दीप्त होनेवाले चक्र से युक्त विष्णु की भाँति जब हनुमान् उस पर्वत को लिये हुए चलने लगा, तब राक्षस-वीरो के शर-प्रहार से घायल हो, मूर्च्छित पडे हुए कपियो ने श्रेष्ठ महौषधियो की वायु के स्पर्श-मात्र से ही अपनी आँखें खोल दी। उन्होने अत्यधिक उत्साह से सिंहनाद करते हुए युद्ध-भूमि में पडे हुए दैत्य-सैनिको को उठा-उठाकर समुद्र में फेंक दिया। सुवेलाद्रि को पारकर हनुमान् ने उस महनीय ओषधि-शैल को कपि-सेना के मध्य भाग में उतार दिया और अपने कुल के लोगो को तथा सूर्य-पुत्र आदि वानर-नायको पर उन ओषधियो का प्रयोग किया। उन ओषधियो की शक्ति से वे सब मूर्च्छा से मुक्त हो गये। फिर, उसने खडित देहो को सधानकरणी की सहायता से जोड दिया। विशल्यकरणी के प्रयोग से शर तथा शस्त्र-समूह घायलो के शरीर से निकल गये और उनके घाव भर गये। सौवर्णकरणी से उनके सभी अग सुवर्ण की काति के समान उज्ज्वल हो गये। सजीवकरणी की सहायता से उनके खोये हुए प्राण लौट आये और पूर्व की अपेक्षा अत्यधिक बल तथा उत्साह से सपन्न हो गये, मानो वे अभी सुख-निद्रा में जाग पड़े हो। तब, सभी कपि-वीरो ने बडे उत्साह से अनिलकुमार के प्रति आभार प्रकट किया। युद्ध-भूमि में मरे हुए राक्षसो को कपियो ने पहले ही समुद्र में फेंक दिया था, इसलिए उनमें से एक भी राक्षस उन ओषधियो के प्रभाव से जीवित नही हो सका।

तब सुग्रीव आदि वानरो ने बडे हर्ष से सूर्य-चन्द्र की भाँति सुशोभित होनेवाले राम-लक्ष्मण को प्रणाम किया और बडी प्रीति के साथ अनिल-कुमार की प्रशसा की। हनुमान् ने अत्यंत हर्ष से गद्गद होकर बडी भक्ति के साथ राम-लक्ष्मण को प्रणाम किया। तब राम ने हनुमान् को देखकर बडे आदर के साथ कहा—'हे वायुपुत्र, हमें इन्द्र की आज्ञा मान्य होनी चाहिए। अतः, इस ओषधी-शैल को यथास्थान प्रतिष्ठित करके लौट आओ।'

राघव का आदेश मानकर मारुतिनदन अनुपम वेग से उस पर्वत को यथास्थान प्रतिष्ठित करके शीघ्र युद्ध-क्षेत्र में लौट आया। इतने में सूर्योदय हुआ और राघव की चिंता के साथ-ही-साथ अधकार भी दूर हो गया। तब सुग्रीव ने रामचद्र को देखकर बडे उल्लास के साथ कहा—'हे वसुधेश, रावण की सारी सेना, अपने अद्वितीय साहस तथा बल को खोकर नष्ट हो गई है। कुभकर्ण आदि मुख्य राक्षस एक साथ मारे जा चुके है, इसलिए रावण की शक्ति समाप्त हो चुकी है। अब वह युद्ध करने की इच्छा भी नही करेगा, इसलिए हे देव, आज रात को आप लका को जलाने के लिए वानरो को भेजिए।'

१२. वानरों का लंका जलाना

इस वात को सुनकर सभी वानर सूर्यास्त की प्रतीक्षा करने लगे। शनै. शनै सूर्यास्त हुआ और अधकार क्रमश घना होता हुआ चारो ओर व्याप्त होने लगा। तब कपि-वीरो ने अत्यधिक रोष से भरे हुए बडे साहस के साथ लूकाओ को हाथ में लिये हुए वडे वेग से उछलते-कूदते लका को घेर लिया। द्वाररक्षक उन्हें देख भयभीत होकर भाग गये। तव वानरो ने लका में प्रवेश किया और लका को जलाने लगे। अग्नि क्रमश. प्रचड होकर दिशाओं तथा आकाश में व्याप्त हो गई। वह प्रचड अग्नि ऐसी लग रही थी कि रावण की लकापुरी को जलाने के लिए अब राम की क्रोधाग्नि की कोई आवश्यकता नहीं, यही अग्नि उसको जलाने के लिए पर्याप्त होगी।

बडवानल जैसे अपने धुएँ के साथ समुद्र-भर में व्याप्त होता है, वैसे ही यह अग्नि विपुल धुएँ के साथ आकाश तक पहुँच गई। इससे प्रासादो की पक्तियाँ अपनी मणि-राजियो को विखेरती हुई भस्मसात् हो गई, ऊँचे-ऊँचे गोपुर पृथ्वी को कँपाते हुए जलकर पृथ्वी पर गिर पडे और चूर-चूर हो गये। वडी-वडी अट्टालिकाएँ आश्चर्यजनक रीति से जलकर गिरने लगी और अग्नि-ज्वालाएँ लपलपाती हुई आकाश की ओर बढने लगी। महान् स्वर्ण-मडप, तथा रत्न-निर्मित गृह-पक्तियाँ जलकर राख हो गई। आभरणो से भरे भडार-घर जैसे थे, वैसे ही भस्म हो गये। विविध अमूल्य वस्त्र, सुगध-द्रव्य, कालीनें, मोती, तथा मरकत, अगर-चदन, कर्पूर, कस्तूरी आदि वस्तुएँ, विविध धान्यो की अक्षय राशियाँ तथा अन्य मूल्यवान् वस्तुएँ, हाथियो तथा घोडो की भूलें, स्थान-स्थान पर रखे हुए कवच-समूह आदि जलकर भस्म हो गये, जिससे राक्षसो के हृदय में पीडा उत्पन्न होने लगी। उस समय कुछ राक्षस सुवर्ण-कवच पहने हुए आयुधो से युक्त हो दुर्वार गति से वानरो का सहार करने का निश्चय करके घरो से निकल रहे थे, कुछ राक्षस विपुल रति-क्रीडा के आवेश से मस्त हो कामिनियो के सग-सुख की घडियाँ बिता रहे थे, शय्या को छोडने की अनिच्छा से कुछ लोग ऊँघ रहे थे, कुछ लोग अभी सुख की निद्रा में निमग्न थे, कुछ राक्षस अपने वच्चो को लेकर भाग रहे थे, कुछ भौंचक होकर चारो दिशाओ में दौड रहे थे, कुछ रुदन कर रहे थे, कुछ अपनी सपत्ति को घर के वाहर निकालकर उसे छोडकर जाने की इच्छा न होने से, वही चकित हो यह दृश्य देख रहे थे, धुएँ के कारण मार्ग न पाकर कुछ लोग जँभाइयाँ लेते हुए खडे थे, कुछ राक्षस अग्नि को वुझाने के लिए घर की छतो पर चढ गये, किन्तु वहाँ से नीचे उतरने में अपने को असमर्थ पा रहे थे, और जहाँ-तहाँ कुछ लोग इकट्ठे होकर घवराहट मे यह दृश्य देखकर दुखी हो रहे थे। अग्नि प्रलयानल के समान, अपनी लपलपाती शिखाओ को व्याप्त करती हुई, कई भवनो तथा कई राक्षसो को भस्मसात् करने लगी। रत्न-नूपुरो का मधुर शिंजन, वीणा की मृदु झकार, सुदर तथा मीठे वचनो की ध्वनि, अद्वितीय नृत्य-गीतो की ध्वनि, श्रुति-मधुर केका-रव, हसो का कल-कूजन तथा सुदर शुक-शारिकाओ की मधुर ध्वनि आदि मिट्टी में मिल गई। चद्रिका से भी धवल काति से युक्त तथा पद्मराग-मणियो की काति से उज्ज्वल, उस लका के सभी हर्म्य, जलने की ध्वनि, चारो ओर व्याप्त होनेवाले धुएँ

तथा छितरानेवाले स्फुलिंगो से युक्त हो भयकर रूप से भस्म होकर मिट्टी में मिल गये। सभी युवतियो का अभिमान चूर-चूर हो गया और वे कठपुतलियो की भाँति सन्न-सी खड़ी रह गई। प्रचड ध्वनि मे, जलती हुई अग्नि-ज्वालाओ से युक्त वहिर्द्वार-समूह ऐसा दीख रहा था, मानो विजलियो से युक्त मेघ हो। नगर की वधुओ की विपुल रोदन-ध्वनि श्रोताओ के हृदय तथा कानो को विदीर्ण करती हुई फैल रही थी। जले हुए तथा विना जले अपने बधनो को तोडने के प्रयत्न में विफल हो क्रदन करनेवाले हाथियो तथा घोडो की आर्त्त-ध्वनि से भरी लका ऐसी लग रही थी, जैसे इसके पूर्व राम की बाणाग्नि से जलनेवाले जलचर-समूह के आक्रदन से उद्वेलित समुद्र दीख पडा था। भागनेवाले, दौडकर आनेवाले, दुख से रोनेवाले, छिपनेवाले, धुएँ से व्याकुल होकर भागनेवाले, लाँघकर जानेवाले, विलाप करनेवाले, आग बुझाने के निमित्त पानी लाने-वाले राक्षसो को पकड-पकडकर वानर उस भयकर अग्नि-ज्वालाओ में फेंककर भयकर गर्जन करने लगे।

तब राघव अपने श्रेष्ठ कोदड को हाथ में लिये हुए इस प्रकार उस धनुष का टकार करने लगे, जैसे त्रिनयन ने क्रुद्ध होकर त्रिपुरो को जीतने के लिए अपने पिनाक का टकार किया था। उस धनुष का टकार करते ही नक्षत्र पृथ्वी पर गिरने लगे, पृथ्वी काँपने लगी, समुद्र आलोडित होने लगे, रवि-शशि पथ-भ्रष्ट हो गये, स्वर्ग हिल उठा, दिशाओ की सधियाँ चटक गई, दिग्गज डोल उठे, विरूपाक्ष विस्मित हुए, भूत-समूह चकरा गया, ब्रह्मा त्रस्त हो उठे, भूमि तथा आकाश उस ध्वनि से गूँज उठे और पौलस्त्य (पुलस्त्य के वशज रावण आदि) भयभीत हो गये। कोदड की ध्वनि, वीर वानरो का सिंहनाद तथा सैनिको के गर्जनो से एक साथ सभी दिशाएँ गूँजने लगी। तब राम ने कैलास-शिखर के समान विलसित होनेवाले लका के सिंहद्वार पर पाँच बाण ऐसे चलाये कि वह खड-खड होकर गिर पडा। फिर, उन्होने लका के सौधो पर, अट्टालिकाओ पर, तथा रथो पर कई बाण चलाकर उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। यह देखकर सभी राक्षस युद्ध के लिए तैयारी करने लगे। इस प्रकार, वह रात्रि घोर-रूप से व्यतीत हुई।

राक्षसो की रण-सज्जा देखकर सुग्रीव ने सभी वानरो से कहा—'लका के सभी द्वारो की तुम जागरूक होकर रक्षा करते रहो। यदि कोई राक्षस बाहर निकले, तो उसका वध कर डालो। यदि तुमने किसी को छोडा, तो उस अपराध को मैं कभी क्षमा नही करूँगा।' यह सुनकर सभी वानर भयकर गर्जन करते हुए विशाल पर्वतो तथा वृक्षो को लिये हुए अत्यधिक रणोत्साह से भरे दुर्ग के द्वारो की रक्षा करने लगे।

९३. कुंभ-निकुंभ का युद्ध के लिए प्रस्थान

वानरो का भयकर गर्जन असुरेन्द्र के लिए असह्य हो गया। उसने तुरत भयकर पराक्रमी, कुभकर्ण के पुत्र कुभ तथा निकुभ को युद्ध करने के लिए भेजा। उनकी सहायता के लिए रावण ने कपन, प्रजघ, शोणिताक्ष तथा उपाक्ष नामक राक्षसो को भी उनके साथ भेजा। वे राक्षस-वीर गज, अश्व तथा रथो पर आरूढ हो, परिघ, गदा, शूल, करवाल, कुन्त, मुद्गर, धनुष, बाण आदि आयुधो से सज्जित होकर चले। उनके पीछे अत्यत

शक्तिशाली दानव-सेना भी चली। उनकी सुदर पताकाएँ फहराने लगी और उनके आभूषणों की कांति दीप्त हो उठीं। तुरहियो की ध्वनि तथा भीषण सिहनाद से पृथ्वी को कँपाते हुए लका को जलाकर गर्व से झूमनेवाले वानरो पर राक्षसो ने ऐसा आक्रमण किया, जैसे प्रलय-काल का पवन-समूह प्रलय-काल के वादलो पर आक्रमण करता हो। पहले उन प्रचड पराक्रमी वीरो ने दुर्ग के द्वार पर दुर्वार गति से रहनेवाले कपि-सैनिको पर आक्रमण करके उन्हें भगा दिया। उन वानरो को भागते देखकर हरिरोम, केसरी आदि बाहु-बली योद्धाओ ने उन्हे रोका और रोष से भरे हुए दैत्य-वीरो से स्वय भिड गये और उन पर पर्वतो तथा वृक्षो को फेंकने लगे। किन्तु, राक्षसो ने अपने करवाल, गदा, शूल, परिघ, चक्र आदि श्रेष्ठ अस्त्रो से उन्हें रोक दिया। तब वानरो ने अपने नखो से उनका वक्षःस्थल चीर डाला, उनके कानो तथा नाको को खडित किया, दाँतो से काटा और सिरो पर मुष्टियो से प्रहार किया। एक वानर एक दैत्य पर मुष्टि से प्रहार करता था, तो दूसरा राक्षस उस वानर पर मुष्टि से प्रहार करता था। एक राक्षस किसी कपि को मार डालता, तो दूसरा कपि उस राक्षस का वध कर डालता था। एक दैत्य किसी कपि को पकड लेता, तो दूसरा दैत्य शीघ्र उस कपि को पकड लेता था। एक कपि किसी राक्षस को घेर लेता तो दूसरा दैत्य शीघ्र उस कपि को घेर लेता। एक राक्षस किसी कपि को युद्ध करने के लिए ललकारता, तो दूसरा कपि उससे युद्ध करने लगता। कही-कही सात-आठ योद्धा एक साथ अपने शत्रु को अकेले घेरकर उसको मुष्टि के प्रहारो से मार डालते, तब उसके फलस्वरूप दोनो पक्षो के कितने ही कपि तथा राक्षस लडकर मर जाते। इस प्रकार, दोनो पक्ष के योद्धा भयकर सिंहनाद करते हुए घोर युद्ध करने लगे। तब रण-भूमि पर्वत-शृगो, गज, हय तथा राक्षसो के विशाल शरीरो एव शस्त्रो से भरकर भयकर दीखने लगी।

युद्ध इस प्रकार चल ही रहा था कि कपन ने एक विशाल गदा उठाकर अगद पर प्रहार किया। इस प्रहार से अगद वहुत ही व्याकुल हुआ, किन्तु शीघ्र ही सँभलकर एक विशाल पर्वत से उस दैत्य पर प्रहार किया। तब वह राक्षस चूर-चूर होकर मिट्टी में मिल गया। यह देख कपिनायक अगद बडे दर्प से सिंहनाद करने लगा। कपन की मृत्यु को देख, शोणिताक्ष ने अत्यधिक क्रुद्ध होकर अपना रथ अगद के निकट ले जाकर अगद पर अक्षताम्र चलाने लगा। अगद उसकी वाण-वर्षा से विचलित हो उठा। वह तुरत उस राक्षस के रथ पर कूद गया और उसका धनुष तोड दिया, तो वह राक्षस शीघ्र ही खड्ग लेकर आकाश की ओर उछला। तब कपि-वीर भी उसके साथ ही आकाश की ओर उछला और उस राक्षस के हाथ का खड्ग छीनकर उसीसे उस राक्षस पर प्रहार किया। तब वह राक्षस मूर्च्छित हो गया। तब अगद यम के समान राक्षस-समूह का सहार करने लगा। इतने में शोणिताक्ष सचेत हुआ और गदा लेकर अगद पर आक्रमण किया। प्रजघ भी उसकी सहायता के लिए आ गया और गवाक्ष भी उसकी सहायता के लिए आ पहुँचा। यह देख-कर द्विविद तथा मैन्द अगद की सहायता के लिए आये। तब उन दोनो दलो में घोर युद्ध छिड गया। जब वानर राक्षसो पर पर्वतो की वर्षा-सी करने लगे, तब प्रजघ ने देखते-

देखते उन पर्वतो को तोड डाला । उसके बाद तीनो वानर-नेताओ ने गज तुरग तथा रथो पर लगातार पर्वतो तथा वृक्षो की वर्षा की, तो उपाक्ष ने अद्वितीय ढग से उन्हें बीच ही में काट डाला । उसके पश्चात् द्विविद तथा मैन्द आश्चर्यजनक रीति से वृक्षो को उखाडकर राक्षसो पर फेंकने लगे तो शोणिताक्ष ने अपनी गदा से उन्हें बीच में ही चूर-चूर कर दिया। तब प्रजघ ने अपनी तेज तलवार को चमकाते हुए वानरो से भिड गया, तो मैन्द ने एक काले साल-वृक्ष से उस पर प्रहार किया । इससे सतुष्ट न होकर मैन्द ने अपनी मुष्टि से उस राक्षस के वक्ष पर प्रहार किया, तो खड्ग को नीचे फेंककर उस राक्षस ने क्रोध से अपनी वज्र-सम मुष्टि से मैन्द पर प्रहार किया । इस प्रहार से मैन्द मूर्च्छित हो गया, किन्तु शीघ्र ही सँभलकर अपनी प्रबल मुष्टि से प्रजघ पर ऐसा प्रहार किया कि वह राक्षस पृथ्वी पर गिर पडा । अपने चाचा को इस प्रकार गिरते देखकर उपाक्ष रथ से उतर पडा और तलवार लेकर युद्ध करने के लिए निकला । तब द्विविद ने अत्यत क्रोध से उस पर आक्रमण किया, अपनी प्रबल मुष्टि से उस पर प्रहार करके अपने समस्त बल से उसे पकड लिया । तुरत उपाक्ष का अनुज शोणिताक्ष वहाँ पहुँच गया और द्विविद के वक्षस्थल पर मुष्टि का प्रबल प्रहार करके उसे मूर्च्छित कर दिया और अपने भाई को छुडाकर ले गया । द्विविद शीघ्र ही सचेत हो उठा और मैन्द को साथ लेकर उपाक्ष तथा शोणिताक्ष पर आक्रमण करके युद्ध करने लगा । युद्ध करते समय द्विविद ने आश्चर्यजनक ढग से शोणिताक्ष को पकडकर उसे अपने पैरो से ऐसा रौद दिया कि उसका रूप पहचानना भी कठिन हो गया । तभी मैन्द ने अपनी भीषण मुष्टियो के प्रहार से उपाक्ष को, उसके शरीर तथा हड्डियो को चूर-चूर करके, मार डाला ।

इस प्रकार, चारो राक्षस-नेताओ को मरे देखकर राक्षस-सेना प्राण लेकर भागने लगी । यह देखकर कुभ अत्यत क्रुद्ध हुआ और भागनेवालो को आश्वासन देकर सुरधनु-सदृश प्रकाशित होनेवाले अपने धनुष तथा चमकनेवाले बाण धारण करके एक पैर आगे करके धनुष चलाने की मुद्रा में खडे होकर क्रूर गति से वानरो पर बाण चलाने लगा । उसके बाणो के प्रहार से द्विविद एक पहाड की भाँति पृथ्वी पर भयंकर गति से गिर पड़ा । अपने सामने अपने प्रिय अनुज की यह दशा देखकर मैन्द ने अत्यत वेग से एक पर्वत कुभ पर फेंका, तो उसने सात बाणो से उस पर्वत को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । फिर, उसने मैन्द पर एक ऐसा अस्त्र चलाया कि वह वीर पृथ्वी पर लुढक गया । अपने दोनो मातुलो को इस प्रकार धराशायी होते देख, अगद ने एक विशाल पर्वत को उठाकर कुभ पर फेंका । किन्तु, उसने पाँच बाणो से उस पर्वत को तोड दिया और फिर लगातार अगद पर असख्य शर चलाये । क्रोध से जलते हुए अगद ने भयंकर गति से कुभ पर कई विशाल पर्वत फेंके, किन्तु कुभ ने उन सब पर्वतो को सहज ही काट डाला । उसके पश्चात् उसने दो पैने शर अगद के ललाट के मध्य भाग को लक्ष्य करके चलाये । इन शरो के प्रहार के कारण फूटनेवाली रक्त-धाराओ को पोछते हुए अगद ने एक पेड को उखाडकर उससे कुभ पर प्रहार किया, किन्तु उस राक्षस ने उस पेड को भी तोडकर अगद को बहुत भीषण बाणो से पीडित किया । इससे अगद मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडा । उसके गिरते ही

सभी वानर-सैनिक राम के पास भागे और उन्हें सारा वृत्तांत कह सुनाया। राम ने जाबवान् आदि श्रेष्ठ वानर-वीरो को कुभ के साथ युद्ध करने के लिए भेजा। वे वृक्षो तथा शिलाओ को फेंकते हुए राक्षस-सेना को भगाने लगे। तब कुभ ने अनेक पैने शरो को चलाकर वानर-वीरो के आक्रमण को रोका और अपनी सेना को आश्वस्त किया। कपि-वीरो तथा अगद को युद्ध-भूमि में मूच्छित गिरे देखकर सुग्रीव क्रोधोन्मत्त होकर असख्य विशाल पर्वत तथा अश्व-कर्ण वृक्षो को उखाडकर उनसे दानवो पर प्रहार करने लगा। किन्तु, देखते-ही-देखते कुभ ने उन सब को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और रवि-पुत्र पर कई बाण चलाकर उसे अत्यधिक पीडा पहुँचाई। फिर भी, विचलित न होकर सुग्रीव ने उस राक्षस के धनुष को छीनकर उसे खड-खड कर दिया। दाँत तोडने से जैसे हाथी क्रोध से अपने शत्रु पर झपटता है, वैसे ही कुभ क्रोधावेश से सुग्रीव को मार डालने का निश्चय करके, उसकी ओर लपककर उससे जूझ गया। उस समय वे दोनो ऐसे लगते थे, मानो दो हाथी आपस में भिडकर लड रहे हो। इस प्रकार, दोनो उद्धत हो, अपनी श्रेष्ठ भुज-शक्ति को प्रदर्शित करते हुए, अपने चरण-ताडनो से पृथ्वी को कँपाते हुए धुएँ के समान लबी साँस छोडते हुए, परस्पर ऐसे टकराते थे कि उनके आघातो से सारा आकाश विदीर्ण हो जाता था।

९४. सुग्रीव के द्वारा कुंभ का वध

निदान, सुग्रीव ने उस कुभ को उठाकर चारो ओर वेग से घुमाया और उसे समुद्र में फेंक दिया, तो सभी देवता हर्ष की ध्वनि करने लगे। वह राक्षस समुद्र में ऐसे जा गिरा, मानो मदराचल ही समुद्र-तल में गिर गया हो। किन्तु, वह राक्षस फिर अत्यधिक वेग से सूर्य-पुत्र के समक्ष पहुँच गया और अत्यत क्रोध से सुग्रीव के वक्षस्थल पर अपनी-मुष्टि से ऐसा प्रहार किया कि उसका प्रभाव सुग्रीव की हड्डियो पर भी पडा और अग्नि-कण ऐसे छितरा गये, जैसे वज्रपात होने से कनकाद्रि से अग्नि-कण निकलते हो। इससे क्रोधाग्नि से जलते हुए सूर्य-पुत्र ने उस नीच राक्षस के वक्षःस्थल को लक्ष्य करके अपनी मुष्टि से ऐसा तुला हुआ प्रहार किया कि राक्षस अपनी शक्ति खोकर पृथ्वी पर लुढककर मर गया। शात अग्नि के समान, प्रताप से हीन हो जब वह गिर गया, तब सभी राक्षस भयभीत हो, ऐसे भागने लगे कि सारी पृथ्वी हिल उठी और सभी समुद्र आलोडित हो उठे।

अपने अग्रज को इस प्रकार गिरते हुए देखकर निकुभ की आँखो से अग्नि-कण निकलने लगे। वह क्रोधावेश से सिंहनाद करके, कनक-रत्न-प्रभा से युक्त तथा सतत पुष्प-चदन से अर्चित अपने परिघ को ऐसे घुमाने लगा कि समस्त ब्रह्माण्ड टूटता हुआ-सा दीखने लगा, सभी दिशाएँ चटकती-सी दिखाई पडने लगी और वायु-पाश टूटते-से दीखने लगे। तब हनुमान् सुग्रीव की सहायता के लिए आ पहुँचा और गर्जन करते हुए स्वय उस राक्षस का सामना किया। तब राक्षस ने क्रोधोन्मत्त हो अपना परिघ मारुति के वक्षस्थल पर चलाया। उस प्रहार से चारो ओर अग्नि-कण छिटक पडे और परिघ आश्चर्यजनक ढग से चूर-चूर होकर हनुमान् के वक्ष की कठोरता को प्रकट करने लगा। उस आघात के कारण

हनुमान् स्वय ऐसा हिल गया, जैसे प्रचड वायु के कारण कोई विशाल वृक्ष डोलने लगता है। फिर भी, अत्यत धैर्य के साथ हनुमान् ने निकुभ के वक्ष पर अपनी मुष्टि का ऐसा प्रबल प्रहार किया कि उसका वक्ष विदीर्ण हो गया और रक्त की धारा फूट निकली। निकुभ भी प्रचण्ड वायु-वेग से आहत वृक्ष की भाँति काँप गया और शीघ्र ही सँभलकर उद्धत गति से हनुमान् को ऊपर उठा लिया। यह देखकर सभी दानव हर्ष की ऐसी ध्वनि करने लगे कि सारा आकाश काँप उठा। किन्तु, कपि-पुगव हनुमान् ने अपने-आपको शीघ्र ही उसके हाथों से छुड़ा लिया और युद्ध-भूमि पर कूद गया। उसने अपनी मुष्टि से निकुभ पर प्रबल प्रहार किया और उसे उठाकर पृथ्वी पर ऐसे पटका कि उसकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गई। फिर, उसने उस राक्षस की छाती पर चढकर उसका सिर काट डाला और ऐसा भयकर गर्जन किया कि सभी दिशाएँ हिल उठी और पृथ्वी, आकाश, समुद्र एव सारा दिङ्मण्डल उस ध्वनि से गूँजने लगा।

हतशेष राक्षस शीघ्र लका में रावण के निकट पहुँच गये और कुभ-निकुभ आदि छह शक्तिशाली वीरो की मृत्यु का समाचार कह सुनाया। तब रावण ने अत्यत क्रुद्ध होकर खर के योग्य पुत्र मकराक्ष को बुलाकर कहा—'तुम अपनी विशाल सेना को साथ लेकर अपने शौर्य का प्रदर्शन करते हुए राम-लक्ष्मण तथा उन वानरो का सहार करके आओ।'

९५. मकराक्ष का युद्ध

रावण का आदेश पाकर मकराक्ष अत्यधिक उत्साह से भर गया कि मुझे अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने का अवसर मिल गया। हर्ष से उसकी छाती फूल गई। उसने रावण को प्रणाम किया और उसकी आज्ञा लेकर रथ पर आरूढ होकर चल पडा। उसने रणोत्साह से फूलते हुए अपने निकट उपस्थित वीरो को देखकर कहा—'तुम उग्र रूप से कपियो से युद्ध करो। मै अपने भीषण शरो की अग्नि से राम-लक्ष्मण को तथा वानरो को छिन्न-भिन्न करके उनका नाश करूँगा।'

उसके आदेश को स्वीकार करके सभी दानव उसके पीछे-पीछे चलने लगे। चलते समय उन्हें कई दुशकुन दिखाई पडे। किन्तु, उन सबकी उपेक्षा करके तुरही-नाद तथा सिंहनाद करते हुए राक्षस-सेना कपि-सेना पर ऐसे टूट पडी कि पृथ्वी तथा आकाश विचलित हो गये। वानरो ने दैत्यो पर पर्वतो तथा वृक्षो की वर्षा की, तो दानवो ने गदा, दड, कोदड, खड्ग आदि महान् शस्त्रो की सहायता से उन सबको शीघ्र ही खडित कर दिया और अपने शस्त्रो के प्रहार से वानरो को व्याकुल करके सिंह-गर्जन किया। उस समय मकराक्ष ने सभी वानरो पर अपना रथ वेग से चलाते हुए उन पर कभी तीस, कभी सौ, कभी साठ, कभी पैसठ, कभी बीस, कभी छब्बीस, कभी छह, कभी बारह, कभी दो, कभी दस, कभी पन्द्रह, कभी अठारह, कभी तेरह, कभी चार, कभी चौदह, कभी तीन, कभी पाँच, कभी सात और कभी नौ बाण चलाकर उन्हें पीडित कर दिया।

उन अस्त्रो को सह न सकने के कारण सभी वानर इस वेग से भागने लगे कि पृथ्वी भी काँप उठी। तब राम ने धनुष उठाकर वानरो को आश्वासन देते हुए कहा—'भयभीत होकर भागो मत, मै अभी आता हूँ', यो कहते हुए राम राक्षसो की चतुरगिणी

सेना का सहार करने लगे । यह देखकर मकराक्ष क्रोध से दहाडते हुए अपना रथ राम के पास ले गया और उनसे कहने लगा—'हे राघव, मै खर का पुत्र हूँ। तुमने पहले मेरे पिता का वध किया है । इसी कारण मेरा हृदय इतने दिनो से जल रहा है । मैं सतत तुम्हारे साथ युद्ध करने के अवसर की प्रतीक्षा में था । आज वह अवसर मुझे मिल गया । तुम यहाँ से हटो मत । अपने पिता के वध का प्रतिशोध लेने के लिए आज मैंने तुम्हें प्राप्त किया हैं । तुम गदा, धनुष या खड्ग इन तीनो में से किसी को लेकर मेरे साथ युद्ध कर सकते हो ।'

तब राघव ने क्रुद्ध होकर उससे कहा—'हे नीच दानव, व्यर्थ का गर्व क्यो करते हो ? मै अपने भुज-बल का प्रदर्शन करके युद्ध में तुम्हारा वध करूँगा । इन बातो को सुनकर मकराक्ष ने राम पर कई पैने बाण चलाये । किंतु, बीच में ही राम ने उन्हें काट डाला । उन दोनो के कठोर धनुष के टकारो से समस्त ब्रह्माण्ड तथा दिशाएँ कपायमान होने लगी । मकराक्ष, राम के चलाये सभी अस्त्रो को शीघ्र ही काट डालने और उन पर अनुपम बाणो का प्रहार करने लगा । किंतु, राघव ने उसके बाणो को काटकर विविध भीषण शरो से उसे आहत करने की चेष्टा की । लेकिन, उस राक्षस ने शीघ्र ही सब अस्त्रो को खड-खड करके भयकर सिंहनाद किया। तब काकुत्स्थ-वशज ने एक बाण से उस राक्षस का धनुष काट डाला । आठ शरो से उसके सारथी का सहार किया और उतने ही बाणो से उसके रथ को छिन्न-भिन्न कर दिया ।

रथ से रहित होकर मकराक्ष ने एक शूल राम पर चलाया । किंतु, राम ने तीन बाणो से उसको चूर-चूर कर दिया । यह देखकर देवता राम की प्रशसा करने लगे । वह राक्षस क्रोधोन्मत्त दाशरथि पर मुष्टि से प्रहार करने के लिए वेग से उनकी ओर आने लगा । किंतु, राम ने इसी बीच उसके वक्ष पर अनलास्त्र का प्रहार किया, तो मकराक्ष तुरत पृथ्वी पर गिर पडा । उसी समय पश्चिम पर्वत पर कमल-बाधव (सूर्य) अपनी अरुण प्रभा से भासमान होने लगा । हतशेष राक्षस लका में भाग गये और रावण से मकराक्ष की मृत्यु का समाचार कह सुनाया । तब क्रोध एव चिंता से अभिभूत होकर रावण ने इद्रजीत से कहा—'हे तात, युद्ध में कपियो तथा राम-लक्ष्मण को क्षणमात्र में मार डालने की क्षमता रखनेवाला तुम्हारे सिवाय और कौन शूर रह गया है ? तुम शीघ्र अपनी सेना के साथ जाओ और उन दोनो का सहार करके लौट आओ, जैसे तुम देवताओं का सहार करके लौट आये थे ।'

९६. इन्द्रजीत का तृतीय युद्ध

तब इद्रजीत ने विनय से रावण को प्रणाम किया और उसकी आज्ञा लेकर युद्ध के लिए चल पडा । वायुवेग से जानेवाले अश्वो से जुते हुए विशाल रथ पर आरूढ होकर शरत्काल के बादलो से आच्छादित शैल की भाँति वह श्वेत छत्रो की छाया में बैठे हुए जाने लगा । उसके दोनो पार्श्वो में सुन्दरियाँ अपने रमणीय ककणो की मधुर ध्वनि करती हुई चामर डुला रही थी । अपने मुख पर रणोत्साह की दीप्ति को लिये हुए उसने अपनी माता को प्रणाम किया और माता से आशीर्वाद प्राप्त करके पत्नी तथा पुत्रो से

विदा लेकर अपने भाइयो की मृत्यु का स्मरण करके, अत्यंत क्रुद्ध हो, बडे दर्प के साथ वह आगे बढा । उसके पीछे असख्य दानव-सेना तथा काम-रूप मत्री उसकी सेवा करते हुए चले । उसी समय साठ करोड, चार दाँतवाले विशालकाय गज तथा भेरुण्ड पक्षी के समान बृहदाकार, तोते के रगवाले चार करोड घोडे उत्तर द्वार से निकले । ऐसी घोर युद्ध-सज्जा से युक्त हो इद्रजीत निसानो की भयावह ध्वनि के बीच लकापुर से निकला और वानर-वीरो के दुर्वार गर्जनो की ध्वनि से गुजायमान होनेवाली युद्ध-भूमि में जा पहुँचा ।

१७. इन्द्रजीत का होम करना तथा कृत्ति नामक शक्ति प्राप्त करना

युद्ध-भूमि में पहुँचकर इन्द्रजीत रथ से उतरा और चारो ओर दैत्यो को खडा किया । एक त्रिकोणाकार वेदी बनाई और, दक्षिण दिशा से श्मशान की सिद्ध-अग्नि ले आकर उसे वेदी पर प्रतिष्ठित किया । उसके पश्चात् उसने बडी भक्ति से रक्त वर्ण के वस्त्र, माला तथा चदन धारण किये, दण्ड, उपवीत तथा मौजी (मूँज की करधनी) धारण की और सपूर्ण मन से खट्वाग का ध्वज स्थापित किया महान् निष्ठा से कपाल पर आसीन होकर ककाल की परिधि बनाई और दक्षिण दिशा में लोहे के स्रुक् तथा स्रुवा सजाये । फिर, उसने कृष्ण वर्ण के यज्ञ-पशुओ के रक्त तथा मास अग्नि-कुड में डालकर मौन धारण किया । तत्पश्चात् अथर्ववेद की विधि के अनुसार अविराम मन्त्रोच्चारण करते हुए स्रुक्-स्रुवाओ को अपने हाथ में लेकर उस प्रज्वलित अग्नि में विधिवत् ताड की समिधाओ, तिल तथा सरसो का हवन किया और उस होम के धूम से समस्त ब्रह्माण्ड को भर दिया । उस समय उस अग्नि-कुड से एक विशाल रथ निकला । फिर, भयकर केश, भयावह रूप तथा कपाल, चमकनेवाली डाढें, अस्थि की मालाएँ तथा अग्नि-ज्वालाओ को उगलनेवाली आँखो से युक्त हो, निरतर अट्टहास करती हुई दहाडनेवाली एक (कृत्ति) देवी निकली । उस देवी ने कहा—'हे देव-वैरी, जो भी कार्य हो, मुझे सौपो । मैं उसे सपन्न करूँगी । उस देवी को पहचानकर, इन्द्रजीत अस्त्रो को तथा उसको लिये हुए, रथ पर बैठे, आकाश में चला गया और वानरो पर आक्रमण करने के लिए छिपा रहा । उसकी सारी सेना लका को लौट गई ।

इन्द्रजीत कपि-सेना पर घोर शर-वृष्टि करके उन्हें विवश कर दिया । शिलाओ की वर्षा के कारण चारो ओर उडनेवाले पक्षियो की भाँति कुछ वानर तितर-बितर होकर भाग गये । कुछ वानर अपना प्रताप खोये हुए रहे । कुछ घायल होकर लाल रग की नदियो से युक्त पर्वतो के ढहने की भाँति रक्त-धाराएँ बहाते हुए पृथ्वी पर गिरने लगे । उस राक्षस-कुमार के बाणो के कारण चारो ओर अधकार व्याप्त हो गया । वानर-वीर अतरिक्ष में छिपे हुए इद्रजीत को देख नही सकते थे । इसलिए, वे उन बाणो को रोकने का कोई उपाय भी नहीं कर सकते थे । किन्तु, इन्द्रजीत अविराम गति से भूमि तथा आकाश को अपने बाणो से भरने लगा । उन पैने बाणो से कुछ वानरो की कमरें कट गई, कुछ चूर-चूर हो गये, कुछ खड-खड होकर मिट्टी में मिल गये । कुछ इद्रजीत के बाण लगते ही, युद्ध करने के लिए लाये हुए वृक्षो को, पृथ्वी पर छोडकर भूमि पर लोट गये ।

कुछ लोगो के सिर पर बाण ऐसे लगते कि वे पृथ्वी से सट जाते और खड़े-ही-खड़े मर जाते थे, कुछ समस्त अगो में बाणो के लगने से, भूमि पर लोट जाते। कुछ गजो के शवो की आड में छिप जाते और कुछ अपने हाथो में पर्वत उठाये हुए राक्षस के बाणो को रोकते। कुछ वानर इद्रजीत के दृष्टिगोचर न होने से पुन-पुन आकाश की ओर देखते हुए दाँत पीसते थे। अविरल अस्त्र के प्रवाह के ऊपर से गिरते रहने से कुछ वानर उससे अपने मुखो की रक्षा करने के लिए अपनी हथेलियो को सेतु के समान बनाकर उसे रोकते थे। कुछ वानर अशनि-पिडो की भाँति गिरनेवाले उन बाणो को शीघ्र ही अपने हाथो से तोड डालते थे और कुछ पूँछो से उन पर प्रहार करके उन्हें तोड डालते थे, कुछ वानर बाणो के आघात से रक्त में सन गये थे और कुछ बाणो के प्रहार के बावजूद अचल खडे रहते थे। कुछ वानर आँतो के बाहर निकलने से पृथ्वी पर लोटते हुए और जँभाइयाँ लेते हुए अपनी आँखें बद कर लेते थे, कुछ कहते थे कि अत में हम श्रीराम के लिए युद्ध में अपने प्राण दे पाये और कुछ ब्रह्मा को कोसते हुए कहते थे कि यह दुर्जय है, आज इसको जीतना असभव है। कुछ वानर कहते थे कि यह ब्रह्मा की दी हुई शक्ति है, इसलिए यह ब्रह्माण्ड में कही भी दीख नही रहा है, किन्तु राम के आगे ब्रह्मा का वर ही क्या है और स्वय ब्रह्मा की ही क्या हस्ती है? पता नही कि रामचन्द्रजी अबतक क्रुद्ध क्यो नही हो रहे है?

इस प्रकार, सभी वानर जितने मुँह उतनी बातें कर रहे थे। इन्द्रजीत अपने अनुपम पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए एक स्थान पर धनुष का टकार करता, तो दूसरे स्थान पर शर-वृष्टि करता। एक स्थान पर अपना नाम कहता, तो दूसरे स्थान पर गर्जन करता, एक स्थान पर डाँट बताता, तो दूसरे स्थान पर हँसता और कही हुकार भरता। इस प्रकार, जब वह भयकर गति से विचरण करने लगा, तब श्रेष्ठ बलवान् हनुमान्, अगद, शरभ, ऋषभ, जाबवान्, गज, गवाक्ष, गधमादन, विजय, नील, सुषेण, पनस आदि योद्धा शीघ्र ही पर्वतो तथा वृक्षो को उठा-उठाकर समस्त आकाश में फेंकने लगे, किन्तु वे इन्द्रजीत के चलाये हुए बाणो से टकराकर खड-खड हो गये और वायु-वेग से तथा भयकर ध्वनि के साथ, जहाँ-तहाँ पृथ्वी पर गिर गये और उनकी चोट से कई वानर मृत्यु को प्राप्त हो गये। फिर, मेघनाद अत्यत क्रूरता से बाणो की अविराम वर्षा करने लगा, तो कुछ वानर खडित होकर गिर पडे और कुछ भयभीत होकर चारो दिशाओ में जाकर छिप गये। इस प्रकार, इन्द्रजीत ने बाणो के प्रहार से दस करोड वानर-वीरो को मिट्टी में मिला दिया। उसके पश्चात् भी उसका सामना करनेवाले कितने ही वानरो को अपने प्रचण्ड बाणो के प्रहार से खड-खड कर दिया। महान् पराक्रमी हनुमान्, अगद, जाबवान्, गवाक्ष, नील, नल, पनस, कुमुद, गधमादन तथा ऋक्ष एव असख्य वानरनायको को अपने उग्र बाणो से निश्चेष्ट कर दिया और ऐसा सिंहनाद किया कि देवताओ के हृदय भी दहल उठे।

९८. राम का आग्नेय अस्त्र से इन्द्रजीत की माया को दूर करना

इन्द्रजीत के दुर्वार विक्रम से मन-ही-मन भयभीत हो, गर्व त्यागकर [illegible] लक्ष्मण के पीछे आ-आकर शरण लेने लगे। तब सौमित्र ने रामचद्र को देखकर [illegible]—

'हे देव, अपनी माया के कारण गर्वांध होकर यह इस प्रकार कपि-सेना का सहार करने पर तुला हुआ है। हमें अब शीघ्र इसका वध कर डालना चाहिए ।' तब राम ने अनुज को देखकर कहा—'हे लक्ष्मण, ब्रह्मा के वर के प्रभाव से यह आकाश में दूसरो की दृष्टि में आये बिना गर्व से बहुत फूल रहा है । हम कितना भी क्रुद्ध होकर युद्ध करें, यह हमारे वश में नही आ सकेगा । आज यह हमारे लिए असाध्य है । इसके ऊपर कोई भी अस्त्र सफल सिद्ध नही होगा, केवल हमारे अस्त्र व्यर्थ जायेंगे ।' उसी समय अग्निदेव ने आकर मृदु वचनो में कहा—'हे नर-नाथ, इसकी माया को देखकर आप भयभीत मत होइए । यदि आप आग्नेय मत्र को जपकर बाण चलावें, तो उस देवी की शक्ति नष्ट हो जायगी और वह उस राक्षस को छोडकर चली जायगी ।'

इतना कहकर जब अग्निदेव चले गये, तब राम ने विधिवत् अग्नि-मत्र का जप करके बाण चलाया । तुरत वह माया-मूर्त्ति अद्भुत रीति से इन्द्रजीत को छोडकर कही चली गई । तब इन्द्रजीत पृथ्वी पर उतर आया और धनुष का भीषण टकार करने लगा। इतने में सभी वानरनायक मूर्च्छा से मुक्त हो शीघ्र एकत्र हुए और इन्द्रजीत से भिड गये । हनुमान् ने शैल-शृग से, अगद तथा मैन्द ने विशाल पर्वतो से, गज ने बडे पर्वत से, नील ने एक विशाल वृक्ष से, नल ने अश्वकर्ण नामक वृक्ष से, सूर्य-पुत्र ने एक विशाल वृक्ष से, पनस ने असख्य शाखाओवाले वृक्ष से, विभीषण ने भयकर गदा से, सपाति ने ताल-वृक्ष से, अन्य वानर तथा जाबवान् आदि वीरो ने असख्य वृक्षो तथा महाशैलो से इन्द्रजीत पर प्रहार किया । लक्ष्मण ने तीन बाण चलाये और राघव ने एक सौ तीर चलाये । किन्तु, उस राक्षस ने उन सब को अपने विविध शरो से चूर-चूर कर दिया और अपने घोर बाणो की वृष्टि से वानरो को विफल कर दिया । उसने अठारह परुष तथा उग्र बाणो से गध-मादन को, पाँच शरो से मैन्द को, सात तीरो से द्विविद को, सात बाणो से हनुमान् को, सात ही बाणो से कुमुद को, नौ बाणो से अगद को, उतने ही शरो से नल को, पाँच तीरो से नील को, सात बाणो से गवाक्ष को, पैंसठ बाणो से सुग्रीव को, बीस बाणो से पनस को, सात बाणो से दधिमुख को, सौ बाणो से राघव को, पचहत्तर बाणो से लक्ष्मण को, तीन ही बाणो से शतबली को, तथा सौ बाणो से विभीषण को व्याकुल कर दिया और अन्य वानर तथा ऋक्ष-वीरो को अपने शराघात से मरणासन्न कर दिया । तब हनु-मान् ने पर्वत-शृग को, अगद ने बृहदाकार शिलाओ को, पनस तथा विभीषण ने विशाल गदाओ को, सपाति ने उत्ताल ताल को, नल ने साल तथा अश्वकर्ण नामक वृक्षो को, सूर्य-पुत्र ने पर्वत-पक्तियो को, शक्ति-विक्रम-सपन्न नील ने शक्ति को, अनल ने सप्तपर्ण को, अन्य वानरो ने खदिर-वृक्षो को तथा शतबली ने बेर-वृक्ष को उस इन्द्रजीत पर फेंका । लक्ष्मण ने तीन उग्र बाण चलाये और राम ने एक सौ श्रेष्ठ शरो को चलाया । शरभ, ऋषभ, जाबवान्, गवय, सुषेण, गवाक्ष, गज, द्विविद, मैन्द तथा अन्य अनुपम शूर वानरो ने विशाल पर्वतो तथा वृक्षो को उस राक्षस-राजकुमार पर फेंका। किन्तु, इन्द्रजीत ने आश्चर्य-जनक ढंग से उन सबको अपने बाणो से चूर-चूर कर दिया और सूर्य-पुत्र के वक्ष पर एक शूल ऐसा चलाया कि वह प्रचण्ड वायु के आघात से कपित होनेवाले वृक्ष की भाँति

काँप गया। तुरत उसने ऋषभ, गवाक्ष, सुषेण, अगद, जावबान्, कुमुद, हनुमान्, गधमादन, नल आदि वीर वानरो को अपने अनुपम युद्ध-कौशल से विवश कर दिया। फिर, उसने राघव पर विविध बाण चलाये और लक्ष्मण के धनुष को खडित कर दिया और विभीषण को बाणो के प्रहार से झकझोर दिया। तब उसने प्रलय-काल के बादल की भाँति बार-बार गर्जन करते हुए राम से कहा—'हे रघुराम, देखा तुमने, मेरे क्रोध में आते ही सुग्रीव आदि वानर-वीर कैसे गिर गये? हे राजकुमार, तुम पर विश्वास करनेवाले इन वानरो की धज्जियाँ उड गई।' इस प्रकार कहने के पश्चात् भी उस राक्षस ने अनेक बाण उस कपि-सेना पर चलाये और तदनतर 'मैं विजयी हुआ', यो चिल्लाते हुए लका को लौट गया और अपने पिता से अपने युद्ध-कौशल का वृत्तात कह सुनाया।

अपने पुत्र के पराक्रम का वृत्तात सुनकर रावण अत्यत हर्षित हुआ और उसे निकट बुलाकर हृदय से लगा लिया और कहा—'हे वत्स, तुम्हारे जैसे पुत्र के रहने से ही तो मैं शत्रुओ के द्वारा मारे गये अपने बधु-बाधवो की मृत्यु का प्रतिशोध ले सका। आज मेरा दुख दूर हुआ। महान् वीर कुभकर्ण मारा गया, महाबली प्रहस्त मृत्यु को प्राप्त हुआ, अनुपम वीर त्रिशिर का अत हुआ, अतिकाय युद्ध में आहत हुआ, महापार्श्व तथा महोदर युद्ध में गिरे, नरातक तथा देवातक कट मरे, कुभकर्ण के पुत्र, घोर पराक्रमी कुभ तथा निकुभ नष्ट हुए, साथ-ही-साथ मकराक्ष भी युद्ध में काम आया और समस्त राक्षस-सेना का नाश हो गया। कपियो ने अपने प्रताप का प्रदर्शन करके लका को जला दिया। हे पुत्र, तुम इन बातो का स्मरण करके शीघ्र ही जाओ और अपने भयकर बाणो के प्रयोग से राम-लक्ष्मण का वध कर डालो। तुम रण-विद्या में दक्ष हो। पहले तुमने सहज ही देवेन्द्र को युद्ध में जीत लिया था। यदि तुम क्रुद्ध होकर युद्ध के लिए प्रस्थान करोगे, तो निखिल लोक उसी समय भस्म हो जायेंगे। तुम्हारे समक्ष इन नर तथा वानरो की शक्ति ही कितनी है?'

९९. इन्द्रजीत का यज्ञ करके रथ प्राप्त करना

इस प्रकार के उत्साहवर्द्धक वचन कहकर रावण ने अपने पुत्र को विदा किया। तब वह अपने पुरोहित को भी साथ लेकर युद्ध-भूमि में पहुँचा और वहीं यज्ञ करने का उपक्रम करने लगा। परिचारक लोग शीघ्र ही अस्थि, कपाल, आवश्यक पात्र, नाना [illegible] स्रुक्-स्रुवा, शस्त्र, ताल, समिधाएँ, रक्त-वस्त्र, रक्त-चदन आदि ले आये। तब उसने रक्त-वस्त्र, रक्त-माला तथा रक्त-चदन धारण किया, मारण-तंत्र-विधि से तोमर, प्रास तथा खड्गो को हवन-कुड की परिधि के रूप में सजाया और सजीव [illegible] का कठ काटकर उसका सिर ले लिया और भक्ति के साथ विधिवत् होम किया। अग्निदेव ने अपने धूम तथा शिखाओं को चारों ओर व्याप्त करते हुए प्रज्वलित होकर हव्यो को ग्रहण किया। उस जयशील निशाचर वीर ने विजय के [illegible] शकुन देखने के कारण अत्यत हर्ष से नियमपूर्वक होम समाप्त किया। उसके पश्चात् उसने चार [illegible] जुते हुए, भयकर तथा श्रेष्ठ बाणो से दीप्तिमान् होनेवाले, [illegible] तथा अर्द्ध-चन्द्र के चिह्नों से अंकित, मणियों की उज्ज्वल कांति से भास्वर [illegible]

ब्रह्मास्त्र-से रक्षित, तथा युद्ध-भूमि में अदृश्य रूप से विचरण करनेवाले एक रथ को प्राप्त किया। उस रथ पर आरूढ होकर वह युद्ध के लिए रवाना हुआ। जाते समय उसने राक्षस-सैनिकों से कहा—'अब मैं तुम्हारे समक्ष ही उन दाशरथियों को युद्ध-क्षेत्र में गिराकर उनसे प्रतिशोध लूँगा और अपने पिता दशकंधर के दुःख को दूर करके उन्हें विजयी बना दूँगा। मैं एक निमिष मात्र में सूर्य-पुत्र तथा अन्य वानर-पुंगवों का संहार कर डालूँगा और देखते-देखते ही युद्ध-क्षेत्र में, मैं अन्य वानर-वीरों का भी नाश कर दूँगा।'

इस प्रकार कहने के पश्चात् वह अदृश्य हो गया। राक्षसों से युद्ध करनेवाले राघवों को देखते ही उसकी भौंहें तन गईं। तुरंत धनुष का संधान करके उसने दुर्वार गति से उन पर ऐसी शर-वृष्टि की, जैसे प्रलय-काल में बादल जल-वृष्टि करते हैं। यह देखकर राघवों ने क्रोध से समस्त आकाश को उग्र बाणों से भर दिया। इंद्रजीत ने तब उन सबको खंडित करके ऐसी शर-वृष्टि कर दी कि सभी दिशाओं में अंधकार-सा छा गया। केवल उसके विशाल एवं प्रचंड कोदंड की भयंकर ध्वनि, रथ की नेमियों की ध्वनि, रथ के अश्वों की टापों की ध्वनि तथा प्रत्यंचा का टंकार-मात्र सुनाई पडता था, किन्तु उस राक्षस का रूप कहीं दिखाई नहीं पडता था। इससे दोनों राजकुमार आश्चर्य से आकाश की ओर देखने लगे। किन्तु, वह राक्षस शीघ्र उनके शरीरों के सभी अंगों में पैने बाणों से प्रहार करने लगा। तब राघवेंद्र ने क्रुद्ध होकर उसी दिशा में अपने बाण चलाकर उसके बाणों को जहाँ-के-तहाँ काट दिया। तब भुजबली इन्द्रजीत अपने रथ को भिन्न-भिन्न दिशाओं में चलाते हुए असंख्य शर चलाने लगा। तब उसके बाणों से क्षत-विक्षत अंगों से राम-लक्ष्मण पुष्पित किंशुक-वृक्षों के सदृश दीखने लगे। प्रलय-काल के बादल के सदृश अपने विशाल शरीर को छिपाये हुए दक्षिण-दिशा से इन्द्रजीत ने राघवों को देखकर कहा—'अब तुम कहाँ जाओगे और कहाँ छिपोगे? तुम मेरे हाथों में फँस गये हो। अब तुम्हारी रक्षा करनेवाला कौन है? देवता तो अब इस ओर अपना मुँह भी नहीं दिखा सकेंगे। दुबले-पतले बंदरों पर भरोसा करके बडे साहस के साथ तुम युद्ध में आकर धोखा खा गये। मेरे तीक्ष्ण बाणों की अग्नि-शिखाओं से बचकर तुम अब कहाँ जाओगे? उस विभीषण के वचनों पर अधिक विश्वास करके मेरी शक्ति को तुम पहचान नहीं सके। मैं अभी तुम्हारा वध करता हूँ और आज ही जाकर अयोध्या में रहनेवाले उन भरत-शत्रुघ्न का भी अंत करता हूँ।

यह सुनकर सभी वानर तथा देवता संभ्रमित-से हो गये। इन्द्रजीत क्रुद्ध होकर कभी पश्चिम दिशा से गर्व का प्रलाप करता, तो कभी उत्तर दिशा से धनुष का टंकार करता। फिर, पूर्व दिशा से घोर शर-वृष्टि करता और तुरंत दक्षिण दिशा से ऐसा घोर गर्जन करता कि पृथ्वी हिल उठती। इस प्रकार, वह भिन्न-भिन्न दिशाओं में संचार करते हुए वानरों पर बाण चलाने लगा। तब राम-लक्ष्मण धनुष पर बाण चढाये हुए शीघ्र ही, उस राक्षस के चलाये हुए बाणों को बीच में ही तोड़ देते। उसके इस युद्ध-कौशल को देखकर देवता तथा सूर्य-पुत्र आदि वानर-वीर आश्चर्य-चकित हो गये।

इन्द्रजीत के बाणो से सैंकडो कपियो को मरकर ढेर होते देखकर, सौमित्र ने क्रोध से अपने भाई से कहा—'हे देव, इस राक्षस के हाथो से वानरो का सर्वनाश हो गया है। तब भी आप ऐसे चुप साधे क्यो है? वहाँ देखिए, भालुओ के नेता सभी दिशाओ में गिर-कर लोट रहे है और अनेक वानरनायक नष्ट हो गये है। हे प्रभु, सभी वानर आपका भरोसा करके बडी भक्ति के साथ युद्ध में आये और इन्द्रजीत के दारुण अस्त्रो से आहत होकर गिरते हुए आपका ही नाम ले रहे है। शत्रु ने आपकी सारी सेना को समाप्त कर दिया है। अब आप यदि इसे नही रोकें, तो अनर्थ हो जायगा। हे सूर्यवशतिलक, शत्रुओ का सर्वनाश करने की क्षमता रखनेवाले आपके बाण चारो दिशाओ में व्याप्त होकर अपने दिव्य शरीर धारण किये हुए रहते है। आप उन्हें ग्रहण करके शत्रु का वध कर डालिए। इन शत्रुओ की शक्ति ही क्या है कि आपका सामना करके युद्ध कर सकें? ऐसे शात रहना क्षत्रिय के लिए उचित नही है। आप ऐसी चिंता में क्यो पडे है? हे सूर्य-सम तेजस्वी प्रभु, आप अपने भुज-बल तथा पराक्रम का विचार ही नही करते। हे नाथ, आपकी भक्ति करनेवाले मेरे जैसे सेवक के रहते हुए आप चिंता क्यो करते है? आपकी कृपा से मै स्वय इस नीच दानव का वध करने में समर्थ हूँ। मै अभी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके इस कुटिल राक्षस-वश का नाश करता हूँ।'

तब राघव ने अपने अनुज से कहा—'हे लक्ष्मण, केवल इस एक के कारण अनेक का सहार करना क्या उचित है? जो लोग युद्ध में भाग नही लेते है, क्या, उनका भी सहार करना ठीक है? उसे ब्रह्मा का यह वर प्राप्त है कि यह देव-दनुज तथा रुद्रादि देवो के द्वारा नही मरेगा, उस वर के गौरव की रक्षा करने के लिए ही मै अबतक इसके औद्धत्य का सहन कर रहा हूँ। अब भी यदि यह युद्ध-भूमि में रहा, तो मै स्वय इसका सहार करने की क्षमता रखनेवाले वीर-वानरो को भेजूँगा। वे ही बुरी तरह इसे पीडित कर सकेंगे। यदि ऐसा नही हो सका, तो भले ही यह मेघनाद, इन्द्रलोक में आश्रय ले, ब्रह्मलोक में शरण ले, रुद्र-लोक में छिप जाय, पृथ्वी में प्रवेश कर रसातल में पहुँच जाय, समुद्र में डूब जाय या चाहे यम ही इसकी रक्षा करे, अथवा इसका दादा पुलस्त्य स्वय इसे अपनी आड में छिपा ले, फिर भी मै इसका वध अवश्य करूँगा, मै इसे छोडूँगा नही।'

राम के इस प्रकार कहते ही उनके क्रोध की कल्पना करके इन्द्रजीत युद्ध करने की इच्छा छोडकर अपनी भयकर सेना को साथ लिये हुए लका को लौट गया और अपने पिता से कहने लगा—'हे दानवेन्द्र, मैने युद्ध में वानर-सेना का सर्वनाश और राम-लक्ष्मण का मान-हरण किया है।' उसकी बातें सुनकर रावण ने क्रुद्ध होकर कहा—'युद्ध के लिए तुम्हारा इस प्रकार जाना और फिर लौट आना किस प्रयोजन का है? तुम ने कौन बडा कार्य किया है कि मेरे सामने डीग हाँक रहे हो? राम-लक्ष्मण का वध किये बिना तुम लौट आये और कहते हो कि सब मर गये। यदि तुम अपने शौर्य का प्रदर्शन करते हुए युद्ध करते, तो समस्त लोक भस्म हो जाते। अबतक जो सफलता तुम्हें मिली है, उसे बहुत बडा मानकर तुम सतुष्ट मत होओ। अपने पराक्रम से राम लक्ष्मण को तथा वानरो को मारकर, फिर मुझे अपना मुख दिखाओ।'

१००. इन्द्रजीत का माया-सीता का सिर काटना

रावण के इन वचनो को सुनकर इद्रजीत ने कहा––'ऐसा ही होगा', और अपने पिता की आज्ञा लेकर वहाँ से चल पडा । उसने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि इस भयकर युद्ध में अतिकाय, कुभकर्ण आदि दैत्य-वीर अपने प्राण खो बैठे है, इसलिए मै किसी-न-किसी प्रकार से राम-लक्ष्मण को अवश्य परास्त करूँगा । यो सोचकर उसने अपनी माया से एक माया-सीता की सृष्टि की और उसे साथ लिये हुए अपनी सेना के साथ पश्चिम दिशा की ओर रवाना हुआ । उस राक्षस के प्रताप से भयभीत हो सभी वानर भिन्न-भिन्न दिशाओ में भागने लगे । तब हनुमान् एक महान् शैल-शृग को उठाकर उस राक्षस का सामना करने के लिए आया । वहाँ उसने इन्द्रजीत के रथ पर माया-सीता को देखा । वह (माया) सीता राम की अत्यधिक विरहाग्नि से पीडित आहार तथा निद्रा से रहित अत्यत दुःख से अभिभूत दिखाई पड रही थी। निःश्वास छोडनेवाली उस माया-सीता का शरीर नितात दुर्बल था, मुख पीला पड गया था और उसके कमल-दल-जैसे नेत्रो से आँसू वह रहे थे । उसके केश उलझे तथा मलिन थे । उसके सभी अग पृथ्वी पर लोटने के कारण धूलि-धूसरित थे । वह अपना कातिहीन मुख, कर-पल्लव पर टेके हुए इस प्रकार काँपती हुई बैठी थी, जैसे प्रचड वायु से लता कपित होती है । उस सीता को देखकर हनुमान् दुखी होने लगा, 'हाय भगवन्, यह राक्षस राम की पत्नी की न जाने और क्या दुर्गति करेगा । उनकी यह दीन दशा मुझे देखना पड रहा है।' फिर भी वायु-पुत्र घोर वानर-सेना के साथ दारुण रूप से उस राक्षस पर आक्रमण करने का उपक्रम करने लगा । यह देखकर दशकठ के पुत्र ने बड़ी क्रूरता से हनुमान् को देखकर कहा––'रे वानर, अब क्यो आगे बढ रहा है ? ले, सीता को यहाँ देख । इसी सीता के लिए तो तू इस प्रकार उतावला हो रहा है ? मै अभी इसका सिर काट डालता हूँ ।'

तब बाघ के सम्मुख पडी हुई हिरणी के समान दीखनेवाली सीता अपनी आँखों से अश्रु बहाते हुए, 'हाय राम, हाय राम' कहकर आर्त्तनाद करने लगी। वह क्रूर राक्षस सीता के केश पकडकर खीचने लगा । तब वायुपुत्र ने उस राक्षस से कहा––'रे दुरात्मा, क्या, यह तुम्हारे लिए उचित है ? तुम राक्षस हो तो क्या हुआ ? तुम विश्रवसु के पोते हो, क्या तुम्हारे लिए यह शोभा देता है कि तुम मनुकुलेश्वर राम की पत्नी को इस प्रकार केश पकडकर खीचो ?'

हनुमान् के इतना कहते ही इन्द्रजीत ने अपने खड्ग को उठाकर उस माया-सीता का सिर काट डाला और कहा––'अब तुम जाकर यह समाचार राम-लक्ष्मण से कहो ।' यह देखकर अनिलकुमार अत्यत शोक-सतप्त हुआ । खड्ग से कटकर, रक्त से लथपथ माया-सीता को दिखाकर इन्द्रजीत ने हनुमान् से कहा––'हे वानरोत्तम, राम की पत्नी इस सीता का वध मैने अपने खड्ग से कर डाला । अब तुम्हारा रणोत्साह शिथिल पड जायगा ।' इतना कहकर इन्द्रजीत युगात के घनघोर मेघ के गर्जन की भाँति सिंहनाद करके दिग्गजो के कर्ण-पुटो तथा दिशाओ को विदीर्ण करते हुए, शत्रु-सैनिकों के मन में भय उत्पन्न करते हुए, युद्ध-भूमि में आगे बढा । उस राक्षस को देखते ही सभी वानर भागने लगे । तब

हनुमान् ने उन्हें देखकर कहा—'हे कपि-वीरो, अपने पराक्रम का प्रदर्शन करना छोडकर भाग जाने का क्या यही समय है ? क्या, तुम युद्ध-धर्म को नही जानते ? क्या, युद्ध-क्षेत्र से भागना, अपने वश के लोगो को कलकित करना नही है ? मै आगे-आगे चलता हूँ, तुम मेरा अनुगमन करो ।'

हनुमान् के वचन सुनकर सभी वानर पर्वत-श्रृग तथा वृक्षो को उठाये हुए, गर्जन करते हुए हनुमान् के पीछे-पीछे चले और राक्षसो पर उन पर्वतो तथा वृक्ष को फेंकने लगे । पवन-कुमार ने भी क्रोध से एक महान् पर्वत को उखाडकर उस राक्षस पर फेंका । तब इन्द्रजीत के सारथी ने रथ को तुरत दूसरी ओर फिरा लिया, तो वह पर्वत भयकर ध्वनि के साथ पृथ्वी पर आ गिरा । इतने में वानर फिर से पर्वतो पथा वृक्षो को ला-लाकर राक्षस-सेना पर फेंकने लगे । वानरो के प्रहारो से अपनी सेना को नष्ट होते देख रावण का पुत्र क्रुद्ध होकर शूल, मुद्गर तथा खड्गो के प्रहार से वानरो का सहार करने लगा । तब मारुनि ने अत्यत क्रोधोन्मत्त हो अपने भयकर रण-कौशल का प्रदर्शन करते हुए राक्षसो पर शिलाओ तथा वृक्षो की वर्षा करके राक्षसो को भगा दिया । इसके पश्चात् उसने वानरो को देखकर कहा—'हे वानरो, इस अधम राक्षस ने राम की पत्नी सीता का वध कर दिया है । हमारा कार्य बिगड गया है । अब हमें युद्ध करने की आवश्यकता ही क्या है ? मै यह समाचार राघव को सुनाने के लिए जा रहा हूँ । उसके पश्चात् राम जो आज्ञा देंगे, वही हम करेंगे । अब तुम सावधान होकर रहो । यह राक्षस महान क्रूर है ।'

१०१. इन्द्रजीत का निकुंभिल-यज्ञ करना

इस प्रकार कहने के पश्चात् हनुमान् को जाते हुए देखकर रावण का पुत्र मन-ही-मन सोचने लगा—'यह बली यहाँ से चला गया, अब मेरे यज्ञ में विघ्न डालने की शक्ति किसी में नही है ।' यो सोचकर वह राक्षस रक्त-मासो से अनल को तृप्त करते हुए निकुभिल-यज्ञ करने का प्रयत्न करने लगा । इधर राम ने पश्चिम दिशा में अत्यधिक कोलाहल सुना, तो शीघ्र जाबवान् को बुलाकर कहा—'पश्चिम दिशा में विपुल घोष सुनाई पड़ रहा है । न जाने, हनुमान् पर कोई विपत्ति आ पडी हो । तुम शीघ्र ही सेना के साथ जाओ और वहाँ के विपुल घोष के सबध में पता लगाकर आओ ।'

राम का आदेश पाकर ऋक्षेश (भालुओ का राजा) शीघ्र ही अपने एक करोड़ रीछ-सैनिको के साथ पश्चिम द्वार की ओर चल पडा । मार्ग-मध्य में ही वायु-पुत्र उनसे मिला । वायु-पुत्र ने जाबवान् को देखकर इद्रजीत के कार्य के सबध में बताया और कहा—'मै यह समाचार रामचद्रजी को सुनाकर अभी आता हूँ, मेरे आने तक तुम इसी स्थान पर डटे रहो । शक्तिशाली शत्रु के सबध में असावधान नही रहना चाहिए ।' यो समझाकर पवन-पुत्र ने जाबवान् को भेज दिया और स्वय राघव के पास चला । राघव हनुमान् को दूर से ही देखकर सोचने लगे, 'क्या कारण है कि हनुमान् का मुखमण्डल अग्निवत् (तमतमाया हुआ) दीख रहा है ? न जाने क्या बात है ?' इतने में वायु-पुत्र राम के निकट आ पहुँचा और उन्हें प्रणाम करके कहा—'हे देव, मै आपसे क्या निवेदन करूँ ? हम सब अपने प्राण हथेली पर लिये राक्षसो से युद्ध कर रहे थे कि इन्द्रजीत भूमि-गत

सीता को युद्ध-भूमि में लेकर आया और निर्दय होकर हमारे समक्ष ही उनका सिर काट डाला। इसलिए मैं जाववान् को द्वार पर रक्षा करने के लिए नियुक्त करके आप से यह समाचार कहने को आया हूँ।'

यह समाचार कानो तक पहुँचने के पूर्व ही प्रचण्ड वात से आहत वृक्ष की भाँति अतुलित शोकाग्नि से जलते हुए, धैर्य खोकर रघुकुलेश्वर मूर्च्छित हो गये। पृथ्वी पर गिरे हुए राम को देखकर सभी वानरनायक विलाप करने लगे।

१०२ लक्ष्मण का शोक

तब लक्ष्मण ने अपने अग्रज के सिर को अपनी गोद में रखकर सभ्रमित चित्त से इस प्रकार आर्त्तनाद करने लगे—"हाय राम आप जैसे पुरुषोत्तम को आज यहाँ ऐसा कलंक लग गया। 'धर्ममेव जयते', यह कथन सत्य सिद्ध नही हुआ। यदि वह उक्ति सत्य होती, तो आप जैसे दयावान् के लिए ऐसा सताप क्यो कर होता ? आपके हाथो से रावण की मृत्यु क्यो प्राप्त नही होती ? इससे तो यही सिद्ध होता है कि धर्म से अधर्म ही श्रेष्ठ है। अयोध्या का राज्य त्याज्य नही है, ऐसा विचार किये बिना हम उस राज्य को छोडकर जगलो में भटकने आये। जगलो में भटकनेवाले हमें पुरुषार्थ कैसे सिद्ध होगे ?

"क्या हमने बुद्धिमानो का यह वचन नही सुना कि निर्धनो के सभी प्रयत्न उसी प्रकार निष्फल हो जाते है, जैसे निदाध में झरने नष्ट हो जाते है। हे राजन्, धन का अर्जन करने से धर्म तथा काम आदि अपने-आप सिद्ध हो जाते है। जिसके पास धन होता है, सभी उसके सगे-सबधी बन जाते है। अर्थ-सपन्न व्यक्ति ही पुरुषोत्तम होता है; धन ही विद्या है, धन ही कौशल है, धन ही कीर्त्ति है, वही महत्ता है, वही उच्चकुल तथा सद्‌गुण है। धन ही शील और बल है, वही पुण्य है, वही राज्य है। धन ही प्राण है, सौंदर्य है, ख्याति है, नीति है, सपत्ति है, बुद्धि है, ज्ञान है, सुख है और शुचित्व है। अर्थ से सपन्न व्यक्ति की सभी इच्छाएँ बात-की-बात में पूरी हो जाती है। महान् व्यक्ति, वेद-वेदाग-पारगत तथा विबुध-जन पुष्पाक्षतो से धनी व्यक्ति की बडी प्रीति से पूजा करते है। जगलो में रहनेवाले मोक्षार्थ मुनि-पुगव भी कद, मूल तथा फल की भेंट करते हुए धन-सपन्न व्यक्ति के दर्शन करते है। बदीजन तथा सगीतज्ञो का समाज धनवान् व्यक्ति की सतत प्रशसा करते रहते है। उन्नतकुच, गुरु नितब, क्षीण कटि, मदगमन, बिबाधर, चद्रमुख, कमल-नेत्र, भ्रमर के समान नीला जूडा, सुदर केश, नवोदित लज्जा, हाव-भाव, मधुर कटाक्ष, मीठे वचन, नव यौवन आदि से सपन्न रमणियाँ भोग-लालसा से प्रेरित होकर धनी-वृद्ध से भी प्रेम करेंगी, पर धन-हीन तरुण का अनादर करेंगी। धन का अभाव ही नरक है, वही श्मशान है, वही महान् शोक है। दरिद्रता ही रोग है, मृत्यु है, पाप है और कारावास है। धन का अभाव ही सकट है, अकाल है, दैन्य है और दु:ख है। निर्धनता ही सब प्रकार की कलुषता है। धनाभाव से सभी का अभाव होता है। अत, जिस दिन हम राज-पाट छोडकर आये, उसी दिन विपत्तियाँ भी हमारे साथ आई। मै जानकी की मृत्यु का दुख सहन नही कर सकता। हे राजन्,

मैं अपने भयकर बाणो की अग्नि से राक्षसो के साथ सारी लका को शीघ्र ही भस्म कर दूँगा ।"

१०३. इन्द्रजीत की माया को विभीषण का राघवों को समझाना

लक्ष्मण के इन वचनो को सुनते ही विभीषण ने राम की मूर्च्छा दूर करने का सफल प्रयत्न किया । जब उनकी चेतना लौट आई, तब वह कहने लगा—'हे देव, यह सब इन्द्रजीत की माया है । सीता पर कोई विपत्ति नही आई है । मेरी बातो पर विश्वास कीजिए । उस पापात्मा दशकठ के मन का भेद मै भली भाँति जानता हूँ । मैने उसे कितना समझाया कि तुम सीता को राम के चरणो में सौप दो । किन्तु, उसने मेरे हित-वचनो पर कान नही दिया । ऐसा रावण, भला, सीता का वध क्यो करायेगा ? हे राजन्, सभव है कि यह उसकी माया हो । यदि सीता का वध सत्य होता, तो क्या अवतक सभी लोक नष्ट-भ्रष्ट नही हो जाते ? यह असत्य ही है । आप चिंता क्यो करते है ? मै अभी जाता हूँ और सीता का कुशल जानकर आता हूँ ।'

उसके पश्चात् विभीषण ने राम की अनुमति पाकर, अपना विशाल रूप छोडकर सूक्ष्म रूप ग्रहण किया और राक्षसेश्वर के वन में निर्विघ्न चला गया, वहाँ सीता को देखकर तुरत लौटा और रामचद्र को प्रणाम करके बडी भक्ति के साथ सारा समाचार कह सुनाया । उसकी बातें सुनकर राम ने कहा—'हे विभीषण, इन्द्रजीत ने युद्ध-भूमि में ऐसा क्यो किया ?' तब विभीषण ने कहा—'हे देव, उसने आसुर होम करने का सकल्प किया है । हनुमान् आदि वानर-वीरो को निरुत्साह करके उन्हें आपकी सेवा में भेजने के निमित्त ही उसने यह उपाय किया है । उसकी योजना सफल हुई और उसके यज्ञ में विघ्न डालनेवाला वहाँ कोई नही रह गया । यह देखकर उसने निकुभिल में यज्ञ प्रारभ कर दिया है । हे देव, यदि वह निष्ठा तथा भक्ति-युक्त मन से विधिवत् यज्ञ को पूरा कर लेगा, तो देव तथा दानव कोई भी उस वीर को जीत नही सकेंगे। अत, हमें उस राक्षस के यज्ञ में विघ्न डालना चाहिए। हे राजन्, हम अभी अपनी सेना के साथ उसके यज्ञ में विघ्न डालने के निमित्त जायेंगे, आप लक्ष्मण को हमारे साथ भेजिए । दशकठ के पुत्र इन्द्रजीत आज निकुभिल वन में यज्ञ के अनुष्ठान में लगा हुआ है । लक्ष्मण आज अपने प्रचड बाणो से उसे वध कर डालेंगे । यज्ञ का अनुष्ठान पूरा होने के पहले ही यदि उसको हम दण्ड नही देंगे, तो यज्ञ की समाप्ति पर वह ब्रह्मा से ब्रह्मशिर नामक शर, धनुष, कवच, खड्ग, दो तूणीर, कई मत्र-पूत अस्त्र और देवताश्वो से तथा सुदर ध्वजा से युक्त, वायु-वेग से चलनेवाला रथ, उस होम-कुड से निकलेंगे । यदि इन्द्रजीत उस रथ पर आरूढ होकर अपने हाथ में वह धनुष सँभाले, तो देवासुर भी उसके समक्ष खडे नही रह सकेंगे । इसके पहले, ब्रह्मा ने उसे वर-प्रदान करते समय उससे कहा था कि यदि तुम निकुभिल-यज्ञ करोगे तो सब प्रकार से अजेय हो जाओगे । यदि यज्ञ के बीच में विघ्न उपस्थित हो और यज्ञ अधूरा रह जाय, तो तुम युद्ध में शत्रुओ के द्वारा मारे जाओगे । इसलिए हे राजन्, आप युद्ध का आवश्यक प्रयत्न कीजिए और इन्द्रजीत का वध कराइए । यदि यह मायावी मारा जाय, तो निश्चय समझिए कि देवताओ का शत्रु दशकठ भी मर गया ।

१०४. लक्ष्मण का युद्ध के लिए प्रस्थान

तब रघुराम ने अपने अनुज से कहा—'हे अनघ, वीर इन्द्रजीत बादलो में तिरोहित होनेवाले सूर्य की भाँति अपनी माया से अपनी गति को प्रकट किये बिना विचरण करने के लिए यज्ञ कर रहा है। उस वीर को इन्द्रादि देवता भी युद्ध में जीत नही सकते। अपने मन्त्रियो के साथ विभीषण उस यज्ञ को तुम्हें दिखायगा। हे सौमित्र, तुम जाओ और यज्ञ पूरा होने के पहले ही उस राक्षस का वध कर डालो। शक्तिशाली भालुओ की सेना के साथ पराक्रमी जाबवान् तथा विजय और विक्रम में धुरधर हनुमान् भी तुम्हारे साथ जायेंगे।' इतना कहकर रघुराम ने अपने अनुज को समुद्र के दिये हुए वज्र-कवच, श्रेष्ठ खड्ग, दो तूणीर, धनुष तथा श्रेष्ठ आभूषण आदि देकर उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा—'हरि, तुम्हें सतत विजय प्रदान करें, शकर तुम्हें सब प्रकार के शुभ दें, ब्रह्मा तुम्हें दीर्घायु दें, समस्त देवता सभी दिशाओ में तुम्हारी रक्षा करें, अनल तथा अनिल आगे और पीछे तुम्हारी रक्षा करते रहें।'

तब लक्ष्मण ने अत्यत उत्साह से धनुष सँभाला, कवच धारण किया, तूणीर कसे, खड्ग लिया और विविध आभूषणो से विलसित हो, राम को भक्ति के साथ प्रणाम किया और बडे साहस के साथ कहने लगे—'हे देव, कमल-सरोवर में हसो के प्रवेश होने की भाँति, श्वेत पखवाले मेरे बाण आज इन्द्रजीत को पार करके लका में गिरेंगे। रूई के ढेर की भाँति मैं अपनी बाणाग्नि से उसे भस्म करूँगा।'

इस प्रकार कहते हुए उन्होने रामचद्र की आज्ञा लेकर, गरुड पर आरूढ विष्णु की भाँति हनुमान् पर आरूढ हो, वानर-सेना तथा जाबवान् आदि वीरो के साथ युद्ध के लिए प्रस्थान किया। निदान, वे वहाँ से तीस योजन दूर स्थित निकुंभिल के पास पहुँचे।

१०५. निकुंभिल-होम में विघ्न

यज्ञ-भूमि, मत्त गज, उत्तम अश्व, श्रेष्ठ रथ, तथा पदचर सेना से घिरी हुई भयकर एव अभेद्य प्रतीत होती थी। सारी सेनाएँ बिना कल-कल ध्वनि के, तरग-हीन समुद्र की भाँति दिखाई दे रही थी। ऐसी राक्षस-सेना को देखकर महान् शस्त्रास्त्रो से सपन्न सौमित्र से विभीषण ने कहा—'हे अनघ, इस महान् सेना को जबतक आप अपने बाण-समूह से काट नही डालेंगे, इन्द्रजीत हमें दिखाई नही देगा, इसलिए आप अपने श्रेष्ठ बाणो से पहले इस सेना का सहार कीजिए। उसके पश्चात् हालाहल के सदृश भयकर अपनी बाणाग्नि से इस दुरात्मा का सहार कर डालिए, जिससे इसका प्रारंभ किया हुआ यज्ञ पूरा न हो।'

विभीषण की सलाह के अनुसार सौमित्र ने अपनी आँखो से अग्नि-कणो की वर्षा-सी करते हुए राक्षस-सेना पर विविध बाण चलाये। तुरत ही अतीव बलशाली वानर राक्षसो पर पर्वतो तथा वृक्षो की वर्षा करने लगे। राक्षसो ने अत्यधिक क्रुद्ध होकर, परिघ चलाते हुए, गदाओ से प्रहार करते हुए, करवालो से मारते हुए तथा भिन्न-भिन्न महान् शस्त्रो से आघात करते हुए विविध रीतियो से वानरो पर आक्रमण किया। ऐसी भयकर गति से भिडे हुए वानर तथा राक्षस-सेनाओ के भीषण गर्जनो से लका डोल उठी। राक्षस-सेना नष्ट होने

लगी । तब वानर-सेना भी क्रुद्ध होकर राक्षसो पर ऐसे प्रहार करने लगी कि राक्षस-सेना अपना दर्प खोकर इद्रजीत की आड में शरण लेने लगी ।

तबतक इन्द्रजीत यज्ञ की सफल समाप्ति के लिए आवश्यक दो सौ दस आहुतियो में से, एक-एक करके एक सौ नौ आहुतियाँ महावह्नि की ज्वालाओ में दे चुका था । उसी समय वानर-सेना अपने भयकर गर्जनो से पृथ्वी को कँपाती हुई वहाँ आ पहुँची । यह देखकर क्रोधोन्मत्त हो इन्द्रजीत ने अपने हाथ की आहुति नीचे फेंक दी, अपनी आँखो से चिनगारियाँ बिखेरते हुए वह युद्ध के लिए सन्नद्ध हुआ । अपने रथ पर आरूढ हो, हाथ में अपना भयकर धनुष लिये हुए, वह वानर-सेना पर टूट पडा और उन्हें अपने तीव्र शरो के आघात से भागने के लिए विवश कर दिया । इसी बीच सौमित्र को साथ लिये हुए विभीषण ने निकुभिल-वन में प्रवेश किया और घने नील मेघ की भाँति दीखनेवाले वटवृक्ष के नीचे स्थित इद्रजीत का हवन-कुड दिखाकर कहने लगा—'हे सौमित्र, देखा आपने ? युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए इस राक्षस ने यहाँ यह हवन प्रारभ किया है और भूतो की बलि देकर अग्नि से अद्वितीय शक्ति को प्राप्त कर शत्रुओ को जीतने का सकल्प किया है । इसके पहले भी इसने इसी प्रकार हवन करके दुर्वार शक्ति प्राप्त की थी और इन्द्र को जीत लिया था । वहाँ देखिए, हवनकुड से अरुण नेत्र, अरुण केश, अरुण वस्त्र तथा अरुणवर्ण माला धारण किये हुए काले रग का सारथी तथा अरुण अश्वो से युक्त रथ उभर-उभरकर निकलनेवाले हैं । इद्रजीत शीघ्र ही लौट आयगा और हवन से प्राप्त शक्ति से इस रथ पर आरूढ होगा । उसके पश्चात् उसे कोई भी जीत नही सकेगा । अत, हे सौमित्र, आप अपने भयकर बाणो के प्रहार से इन्द्रजीत का सहार कीजिए ।' तुरत लक्ष्मण धनुष का भयकर टकार करने लगे ।

१०६. लक्ष्मण तथा इन्द्रजीत का परस्पर तिरस्कार के वचन कहना

तब करवाल हाथ में लिये हुए, कवच धारण किये, अग्निवर्ण रथ पर सवार हो इन्द्रजीत लक्ष्मण के समक्ष उपस्थित हुआ । उसे देखकर सौमित्र ने क्रोध से कहा—'हे मायावी राक्षस, अब तुम्हारी माया से कोई प्रयोजन नही है । यदि तुम वीर हो, तो मेरा सामना करो और अपनी सच्ची वीरता को प्रकट करते हुए मेरे साथ युद्ध करो । मैं अवश्य तुम्हें यमपुरी को भेजूँगा । तुम भले ही कपट-रूप धारण करो या अपने निज रूप में रहो, मैं शीघ्र तुम्हें समाप्त कर दूँगा ।'

यह सुनकर इन्द्रजीत ने रोषपूर्ण आँखो से लक्ष्मण को देखकर कहा—'हे लक्ष्मण, बालक होकर तुम ऐसा हठ क्यो करते हो ? किंचित् काल ठहरो, मैं अपने बाणो से विजय-लक्ष्मी से तुम्हें दूर करके, तुम्हारे शौर्य का नाश करूँगा और तुम्हारे प्राण लेकर पृथ्वी पर गिरा दूँगा और तुम्हारे शरीर को काटकर उस मास से कौओ तथा गीधो को तृप्त करूँगा । क्या, इतने शीघ्र तुम भूल गये कि मैंने तुम्हें नाग-पाशो से बाँधा था ।'

इसके पश्चात् उसने विभीषण को देखकर क्रोध से कहा—'हे धर्म-घातक, तुम मेरे चाचा हो, और मैं तुम्हारा प्रिय पुत्र हूँ । क्या, तुम्हें यह उचित है कि तुम मेरा अहित करो । दुर्मति होकर कुल-द्रोह करनेवाले तुम, भला औचित्य का विचार ही कैसे करोगे ?

क्या, कोई ऐसा नीच होगा, जो विपत्ति में पडे हुए बधुओ को छोडकर शत्रुओ की शरण ले ? औचित्य की वात रहने दो। अपने लोगो को छोडकर शत्रुओ की सेवा में जीवन वितानेवाले व्यक्ति का जीवन भी कोई जीवन है ? राक्षसेश्वर महा तेजस्वी है। ऐसे व्यक्ति तुम्हारे निष्ठुर वचनो को हित-वचन कैसे मान लेंगे ? भाई के क्रोध करने से यदि तुम घर के किसी कोने में पडे रहते, तो क्या होता ? वहाँ से भागकर भी तुमने कौन-सा महान् कार्य सिद्ध कर लिया ? क्या, तुम्हारे प्रताप की सहायता से ही दशकठ ने समस्त देवताओ को जीत था ? हमारे अपने होते हुए तुम अपना रहस्य अपने शत्रु को बताकर उसके हाथो में स्वय भी नष्ट हो जाओ।'

तब विभीषण ने कहा—'हे मेघनाद, तुम मेरे आचरण से भली भाँति परिचित हो। फिर भी, ऐसा प्रलाप क्यो करते हो ? तुम उस अविनीत पिता के अविनीत पुत्र ही तो हो। भला, तुम्हें धर्म और नीति का विचार ही क्यो होगा ? क्रूर बधु का उसी प्रकार त्याग करना चाहिए, जैसे पाले हुए सर्प का त्याग करते है। यदि वह पापी दशकठ मेरी बात उस दिन मानता, तो इतना अनर्थ ही क्यो होता ? परधन तथा परस्त्रियो के लोभ में पड़नेवाले पापियो को औचित्य, शुभ, धर्म, लोक-सग्रह आदि से सवध ही क्या हो सकता है ? तुम्हारे मन का गर्व तथा अहकार तुम्हें अग्नि में जलाये विना नष्ट भी कैसे होगे ? तुम लोग मदाध होकर सतत अधर्म के आचरण में प्रवृत्त रहते हो। तुम देवताओ को पीडित करते हो और सुव्रती परम मुनीन्द्रो का वध करते हो। अत, उस दशकठ के साथ-साथ तुम, सारी लका, तुम्हारे सभी वधु-वाधव, झूठी प्रशसा करनेवाले तुम्हारे मत्री तथा सेना, सव राम के द्वारा नष्ट होगे, यह सत्य है। तुम मति-भ्रष्ट हो गये हो, आसन्न मृत्यु के पाश में बँधे हुए हो। अत, तुम जैसे चाहो, बको। अब तुम्हारी कोई माया काम नही देगी। हवन करने के निमित्त तुम अब वटवृक्ष के नीचे नही जा सकते। न लक्ष्मण ही लका की ओर जा सकते है। तुम शीघ्र यम-पुर को जा सकते हो।'

इतने में उदयाद्रि पर उदित होनेवाले सूर्य की भाँति, हनुमान् के विशाल कधो पर आरूढ लक्ष्मण को, विभीषण को, तथा युद्ध के लिए उन्मुख वानरो को दुर्वार क्रोध से देखकर कहा—'आज तुम लोग युद्ध-भूमि में वीर होकर मेरी वाण-वृष्टि का सहन करो। मेरे धनुष से अविराम निकलनेवाले वाणो की अग्नि तुम्हें आहुति के रूप में ग्रहण करेगी। मैं आज करवाल, भाला आदि शस्त्रो से तुम्हारा सहार करूँगा।

१०७. इन्द्रजीत तथा लक्ष्मण का युद्ध

इस प्रकार कहकर पृथ्वी तथा आकाश को प्रतिध्वनित करते हुए उसने सिहनाद किया और विविध वाण अत्यत वेग से चलाते हुए कहने लगा—'देखता हूँ कि कौन भुज-बल से सपन्न व्यक्ति मेरे समक्ष आज खडा रह सकता है। यह सुनकर लक्ष्मण ने उस दैत्य से कहा—'हे अधम दनुज, व्यर्थ का गर्व क्यो करते हो ? समक्ष भिडना छोडकर, छिपकर धोखे से चोट करना कैसा न्याय है ? यह भी कोई शौर्य है ? अपनी सब प्रकार की मायाओ को तजकर तुम आज मेरे समक्ष खडे रहो। मैं अपने शरो से तुम्हारे प्राण हरण करूँगा।'

यह सुनकर इन्द्रजीत ने बडे क्रोध से कालसर्प-सदृश बाणो को लक्ष्मण पर चलाया, जो लक्ष्मण के शरीर को पार करके पृथ्वी में धँस गये। फिर, उसने लक्ष्मण के शरीर पर कई शर चलाये, जो उनके शरीर को छेदकर दूसरी ओर निकल गये। लक्ष्मण के शरीर से, रौद्र रस की बाढ की तरह रक्त की धारा फूट निकली। यह देखकर राक्षस हर्ष का भीषण निनाद करने लगे। तब इन्द्रजीत ने अट्टहास करते हुए लक्ष्मण के निकट पहुँचकर कहा---'हे राजकुमार, बडे शूर की भाँति तुमने मुझसे युद्ध ठाना है। पहले मैं तुम्हारा कवच खड-खड कर दूँगा और उसके पश्चात् अपने दारुण अस्त्रो से तुम्हारा सिर काट लूँगा। आज राम अवश्य ही अपने भाई को युद्ध-भूमि में पडे हुए देखेगा।'

तब लक्ष्मण ने उस निशाचर को देखकर कहा---'हे राक्षस, व्यर्थ ही गर्व क्यो करते हो? युद्ध-भूमि में प्रलाप करने से क्या प्रयोजन? यहाँ से विना हटे, मेरे साथ युद्ध करो। जिस प्रकार अग्नि विना कुछ कहे, जला डालती है, वैसे ही मैं विना बातें किये ही अभी तुम्हारा वध कर डालता हूँ। व्यर्थ डीग मारने से क्या लाभ?' इस प्रकार कहकर लक्ष्मण क्रोध से आँखें लाल किये हुए, अपने धनुष की प्रत्यचा पर ऐसे दारुण अस्त्रो का सधान किया, जिनका प्रकाश दिशाओ में व्याप्त हो रहा था और जिनसे अग्नि-ज्वालाएँ तथा स्फुलिग निकल रहे थे। लक्ष्मण ने ऐसे अस्त्रो को उस क्रूर राक्षस के वक्षःस्थल को लक्ष्य करके चलाया। उन बाणो के लगते ही वह राक्षस रक्त-वमन करते हुए मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पडा। किन्तु, तुरत सँभलकर उसने सिंहनाद करके तीन पैने बाण रामानुज के वक्ष पर चलाये। वे दोनो रौद्र रूप धारण किये हुए, आँखो से अगारो की वर्षा करते हुए, एक साथ सिंह-गर्जन करते, धनुष का टकार करते तथा बाणो का सचालन करते थे, मानो यम का ही अट्टहास हो। अपनी शक्ति तथा विक्रम से दीप्त होते हुए वे सतत दीप्तिमान् चद्र-सूर्य की भाँति, चार दाँतोवाले गजो के समान, सिंह-शावको के समान, कुमार-तारको के समान, वृत्रासुर तथा इद्र के समान तथा काल-रुद्रो की भाँति शोभायमान होते हुए जय की उत्कट अभिलाषा से प्रेरित हो युद्ध कर रहे थे। अत्यधिक क्रोध से लक्ष्मण धनुष के टकार से युक्त धनुष, रथ, ध्वजा आदि के साथ इन्द्रजीत को अपने शरो की वृष्टि से ढक-से देते थे। जब वह प्रतिबाण चलाता था, तब लक्ष्मण उसके बाणो को बीच में ही काटकर उस राक्षस को अपनी बाण-वर्षा से आवृत कर देते थे। तब मेघनाद शक्तिहीन हो, उनके अस्त्रो के प्रति-अस्त्र चलाने में असमर्थ हो, दीर्घश्वास लेते हुए खडा रहा। यह देखकर विभीषण ने लक्ष्मण से कहा---'हे राजकुमार, वह देखिए, आपके बाणो का सामना करने की क्षमता नही रखने के कारण रावण का पुत्र निर्वेद से अभिभूत हो चुपचाप खडा है। अभी आप विजय प्राप्त कीजिए।' तुरत लक्ष्मण ने उस राक्षस के शरीर पर भयकर बाण चलाकर उसे घायल कर दिया। इद्रजीत एक मुहूर्त्त काल तक मूर्च्छित पडा रहा, और उसके पश्चात् सचेत हो सोचने लगा---'हाय, मैंने पहले देव तथा असुरेन्द्र को जीत लिया था। आज दैव मेरे प्रतिकूल है, इसलिए मुझे एक मानव से पराजित होना पड रहा है। इन सूर्यवशियो के द्वारा सभी राक्षस युद्ध में मारे जा चुके। अब मेरा जीवित रहना व्यर्थ है।'

इस प्रकार सोचकर मेघनाद ने लक्ष्मण को देखकर कहा—'हे राजकुमार, अब तुम वीर की तरह खडे होकर मेरे पराक्रम को देखो।' यो कहते हुए उसने सात बाण लक्ष्मण पर, दस बाण हनुमान् पर तथा एक सौ बाण विभीषण पर चलाकर उन्हें व्याकुल कर दिया। उन बाणो की उपेक्षा करते हुए लक्ष्मण ने इन्द्रजीत को देखकर हँसते हुए कहा—'हे राक्षस, शूर बडी-बडी बातें कहे बिना ही युद्ध जीत लेते है और अधम डीग हाँकते हुए भी हार जाते है। सच्चा वीर युद्ध में कभी छिपता नही। युद्ध में धोखा देना भी क्या कोई वीरता है? हे क्रूरात्मा, तुम कुटिल युद्ध करनेवाले हो? तुम्हारे इह-लोक और पर-लोक दोनो नष्ट हो जायेंगे।'

इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मण ने सूर्य-किरणो की भाँति प्रकाशमान होनेवाले, स्वर्ण की अनी से युक्त बाणो को उस राक्षस पर चलाया, तो वे उसके कवच को भी छेदकर उसके शरीर के पार निकल गये। तब उसका कवच भयकर सर्प की केंचुली की भाँति पृथ्वी पर गिर पडा। तब इद्रजीत दूसरा वज्र-कवच पहनकर लक्ष्मण पर पैने बाण चलाने लगा। परस्पर के शराघातो के कारण शरीरो से निकलनेवाले शोणित के प्रवाह से युक्त होकर, वे दोनो गेरुए रग के निर्झरो से युक्त पर्वतो की भाँति दीखने लगे। वे अपनी-अपनी धनुर्विद्या का कौशल दिखाते हुए तीव्र गति से युद्ध करने लगे। अस्त्र के आघातो से युक्त हो युद्ध करते समय, वे ऐसे दिखाई पड रहे थे, मानो पतझड के उपरान्त पुष्पित किंशुक वृक्ष हो। अमर, गधर्व आदि आश्चर्य के साथ इस युद्ध को देखने लगे।

उसी समय कलभो से घिरे हुए मत्त गज के सदृश, मन्त्रियो से घिरे विभीषण ने भयकर रीति से अपने धनुष का टकार किया और क्रोधोन्मत्त हो राक्षस-सेना पर ज्वालाओ को उगलनेवाले तीक्ष्ण बाण चलाये। उन बाणो के लगते ही राक्षस-सेना इस प्रकार पृथ्वी पर गिरने लगी, जैसे वज्रपात से विशाल वृक्ष गिरते है। अनल आदि उसके मंत्री शूल, बरछे, खड्ग आदि शस्त्रो से राक्षसो पर आक्रमण करके उन्हें धराशायी करने लगे। तब विभीषण वानर-सेना को देखकर कहने लगा —'अब तुम सब लोग एक साथ मिलकर इस इन्द्रजीत का वध करो। लकेश्वर की सारी शक्ति यही है। यदि यह मारा गया, तो समझो कि दशकठ अपनी सेना के साथ परास्त हो गया। इसके पहले तुम लोगो ने अपने असमान विक्रम से, प्रहस्त, वज्रमुष्टि, प्रजघ, सुप्तघ्न, भयकर प्रतापी कुभ-निकुभ, कुभकर्ण, अतिकाय, महापार्श्व, धूम्राक्ष, मकराक्ष, क्रोधन, शोणिताक्ष, उपाक्ष, त्रिशिर महोदर, अग्निकोप, देवातक, नरातक, जबुमाली, अकपन आदि महान् पराक्रमी योद्धाओ को मारकर युद्ध-सागर को सहज ही पार किया था और अपने बाहुबल को प्रदर्शित किया था। अब तुम्हारे तथा लक्ष्मण के लिए यह इन्द्रजीत एक गोपद के समान है। मुझे अपने पुत्र का वध नही करना चाहिए। इसके नष्ट होने का उपाय मैं तुम्हें बताऊँगा। सुनो, स्वय हिंसा करना या दूसरो को भेजकर हिंसा कराना, दोनो समान है। किंतु यह राम का कार्य है, इसमें लोकहित निहित है। इसलिए यह पाप नहीं है। अब मैं सौमित्र के हाथों इसका वध कराऊँगा। आगे इसकी एक भी माया नही चलेगी।'

इसके पश्चात् जाम्बवान् ने अपनी रीछो की सेना लिये हुए आकाश को विदीर्ण

करनेवाला गर्जन करके राक्षसो पर टूट पडा और पर्वत-शृगो, वृक्षो तथा नखो और दाँतो से शत्रुओ के ऊपर आघात करते हुए उन्हें व्याकुल कर दिया। तव राक्षस भयकर परशु, मुद्‌गर, शूल, परिघ तथा धनुष लिये हुए भयकर गति से उनसे भिड गये। वानर तथा निशाचरो का वह सग्राम ऐसा दीख पडा, मानो सुरासुरो का सग्राम हो। तब हनुमान् ने क्रुद्ध होकर लक्ष्मण को नीचे उतार दिया और यम के समान एक-एक प्रहार से अनेक राक्षसो को पृथ्वी पर गिरा दिया। उसने शैल-शृगो तथा शाल-वृक्षो का प्रचुर प्रयोग किया और असख्य राक्षसो का सहार करके भयकर सिंहनाद किया। तब विभीषण ने क्रोध से अपने धनुष का टकार और अपने मत्रियो के साथ राक्षस-सेना पर टूटकर अनेक राक्षसो का सहार किया। फिर, उसने स्वर्ण अनी से युक्त तीव्र शर इद्रजीत के शरीर पर चलाया। तब उसने भी क्रुद्ध होकर अद्वितीय शर यो चलाये कि वे विभीषण के वक्ष को पार करके पृथ्वी में ऐसे गड गये कि पृथ्वी भी डोल गई।

इस प्रकार, विभीषण से भयकर युद्ध करनेवाले इद्रजीत को देखकर लक्ष्मण क्रुद्ध हुए और हनुमान् के कधे पर बैठकर असख्य तीव्र शर उस राक्षस पर चलाये। इद्रजीत ने भी भयकर बाण-समूह चलाकर लक्ष्मण के बाणो को काट दिया। इस प्रकार, जब वे दोनो एक दूसरे पर क्रूर बाण चलाने लगे, तब उन अस्त्रो से ढके हुए शरीर से युक्त वे, वर्षा की धारा से युक्त बादलो के समान और बादलो से युक्त सूर्य-चद्र के समान दिखाई पडने लगे। उनके बाणो की तीव्र गति का वर्णन कैसे किया जाय ? ऐसा लगता था, मानो धनुष की प्रत्यचा पर चढाये हुए बाण जैसे-के-तैसे रहते हो और वे उन्हें छोडते ही न हो। दोनो ओर के बाण समस्त आकाश में ऐसे व्याप्त हो गये कि अधकार छा गया। वीर रस के आवेश से अभिभूत वे दोनो उस युद्ध-क्षेत्र में अपने-आपको भूल-से गये। आश्चर्य था कि उस समय उस युद्ध-भूमि में वायु का संचलन भी नही होता था और अग्नि दीप्त नही होती थी। यह देखकर दिक्पाल, देवता, गधर्व, यक्ष, किन्नर आदि चकित-से होकर लक्ष्मण की प्रशसा करते हुए उनकी शरण में आये। उन्होंने लक्ष्मण की विजय की कामना करते हुए उन्हें कई आशीर्वाद दिये और कहने लगे—'हे सौमित्र, इस लोक-कटक राक्षस का आप अवश्य वध कीजिए।'

१०८. इन्द्रजीत का वध

देवताओ के इस प्रकार कहते ही भानु-वशज लक्ष्मण ने भयकर सिंहनाद करके अपने धनुष का टकार करते हुए इद्रजीत पर आक्रमण किया और असख्य बाण उस पर चलाये। उस राक्षस ने भी उन बाणो को काटकर फिर कई भीषण शर लक्ष्मण पर चलाये। तब, लक्ष्मण ने क्रुद्ध होकर एक अर्द्धचद्र बाण से उसका धनुष काट डाला, सात बाणो से उसकी ध्वजा को गिरा दिया, एक बाण से सारथी का सिर काट डाला, दस बाणो से उसका वक्ष विदीर्ण करके चार बाणो से रथ के अश्वो को मार गिराया। तब रावण का पुत्र स्वय सारथी तथा रथिक बनकर सौमित्र पर भयकर शरवर्षा करके अट्टहास करने लगा। तब सौमित्र ने स्वय रथ चलाते हुए युद्ध करनेवाले इद्रजीत को लक्ष्य करके तीक्ष्ण बाण चलाये जिनके लगने से रावण का पुत्र मूर्च्छित हो गया।

कुछ ही समय के पश्चात् इन्द्रजीत की चेतना लौट आई। वह चिंतित होकर सोचने लगा—'यह कैसी विचित्र बात है कि एक मानव ने मुझे इतना व्याकुल कर दिया। इसके पहले के युद्धो में मैंने कभी ऐसी व्याकुलता का अनुभव नही किया था। समय की गति प्रबल है, कोई उसके प्रतिकूल जा नही सकता।' इस प्रकार चिंता से पीडित हो वह दीर्घ नि.श्वास छोडते हुए धनुष पर बाण का सधान करने की इच्छा नही रहने के कारण चुपचाप शत्रु को देखता रहा। तब सभी देवता रामानुज की प्रशसा करने लगे।

इन्द्रजीत के कांतिहीन तथा विवर्ण मुख को देखकर वानर हर्ष-ध्वनि करने लगे। तब वीराग्रणी प्रमाथी, मेरु-सदृश विशालकाय एव मेघनि.स्वन शरभ तथा ऋषभ ने पर्वत-शृगो को, इन्द्रजीत के रथ पर फेंककर अश्वो के साथ रथ को भी नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इस पर विपुल क्रोध से इन्द्रजीत ने सिंहनाद करके विभीषण के ललाट को तथा लक्ष्मण के वक्ष को लक्ष्य करके तीन-तीन पैने बाण चलाये और धनुष का टकार करते हुए सिंह-गर्जन किया। तब विभीषण ने क्रोधोन्मत्त हो, आँखो से अग्नि-कणो की वर्षा करते हुए पाँच बाण ऐसे चलाये कि वे उस राक्षस के वक्ष को पार कर निकल गये। तब इन्द्रजीत ने क्रोध से अपने पिता (विभीषण) पर आग्नेय बाण चलाया। उसको आते देखकर लक्ष्मण ने वारुणास्त्र का प्रयोग किया। दोनो शर आपस में टकराकर पृथ्वी पर गिर पडे। उसके पश्चात् उस राक्षस-कुमार ने उरगास्त्र चलाया, तो लक्ष्मण ने गरुडास्त्र के प्रयोग से उसको विफल कर दिया। फिर, उसने कुबेरास्त्र चलाया, तो लक्ष्मण ने ऐन्द्रास्त्र से उसे खडित कर डाला। तब दानव ने गधर्वास्त्र चलाया, तो लक्ष्मण ने उसे रौद्रास्त्र से काट डाला। उन दोनो का युद्ध प्रलय-काल में पृथ्वी की दशा का स्मरण दिला रहा था। उस समय सौमित्र की रण-क्लान्ति को मिटाने के लिए मानो, मद-मद पवन चलने लगा।

तब लक्ष्मण ने यम की भाँति क्रूर हो इन्द्रजीत को देखकर अपने धनुष की ऐसी ध्वनि की कि दिशाएँ विदीर्ण-सी हो गईं। और, उसके पश्चात् उन्होने भयकर सिंहनाद करके, देवेन्द्र से प्राप्त ऐन्द्रास्त्र को अपने धनुष पर चढाया और कहा—'यदि रामचन्द्र धर्मात्मा हैं, यदि देवी सीता पतिव्रता हैं, यदि देवताओ की कृपा मुझ पर है, यदि इन्द्र आदि देवताओ का हित (इन्द्रजीत के अत मे) होनेवाला है, तो यह महान् शर इन्द्रजीत का सिर काट देगा।' इस प्रकार कहते हुए उन्होने लक्ष्य साधकर इन्द्रजीत पर वह बाण चलाया। रत्न की नोक से सुशोभित वह बाण, समस्त आकाश में व्याप्त हो, घोर वज्र के समान भीषण रूप धारण किये हुए, क्रूर गति से चल पडा। उस शर ने विहगेन्द्र के सदृश वेग के साथ, सर्प के मुख से निकलनेवाले अग्नि-कणो की चचलता लिये हुए, सूर्य-बिंब की-सी भयकर दीप्ति से प्रज्वलित होते हुए, अपनी कांति से पृथ्वी तथा आकाश को भरते हुए उग्र दड देने के उद्देश्य से भयकर बनकर उस राक्षसेन्द्र के पुत्र पर आक्रमण किया। उस महान् उद्दण्ड अस्त्र ने अनुपम मणिकुडलो तथा ललित अरुण अलकों से अलकृत इन्द्रजीत के सिर को मुकुट के साथ पृथ्वी पर गिरा दिया, मानो (लक्ष्मण ने) लका की निधि सिद्ध करने की इच्छा से प्रेरित हो, उसके पहले बलि देने के लिए, एक जगली भैंसे का सिर काट लिया हो। युद्ध-क्षेत्र में गिरे हुए इन्द्रजीत को देखकर, लक्ष्मण विजय-लक्ष्मी से

संपन्न हो, अत्यत हर्ष से दिशाओ को कँपाते हुए शख बजाया, धनुष का भीषण टंकार और सिंहनाद किया। उस समय अप्सराएँ नृत्य करने लगी और गधर्वो ने अपने मधुर संगीत से लोगों को आनंद पहुँचाया।

तब विभीषण ने अत्यधिक हर्ष से लक्ष्मण को हृदय से लगा लिया और सभी वानर हर्ष मानने लगे। हतशेष निशाचर त्रस्त हो, वानरो के आक्रमण के समक्ष खडे रहने का साहस न कर सके और अपने चरणो के आघातो से पृथ्वी को कँपाते हुए, अपने आयुधो को जहाँ-तहाँ फेंककर, प्राण लेकर भागने लगे। कुछ राक्षस लका की ओर भागे, कुछ पर्वत-शृगो पर चढ गये; कुछ समुद्र में कूद गये और कुछ गुफाओ में जाकर छिप गये। तब अग्निदेव अपनी स्वाभाविक दीप्ति से जलने लगे, सूर्य प्रखर तेज से भासमान होने लगा, सातो समुद्र अत्यत स्वच्छ हो गये; दिशाओ में आच्छादित कुहरा हट गया, गगन प्रसन्न दीखने लगा, और पृथ्वी निष्कप दिखाई पडने लगी। तब हनुमान्, शतबली नल, पनस, शरभ, ऋषभ, अतुल पराक्रमी अगद, अतिबली सुग्रीव दधिमुख, गज, गवय, गधमादन, द्विविद, मैन्द आदि वानर-नेताओ ने आकर लक्ष्मण को प्रणाम किया और बडे हर्ष से उनकी प्रशसा करने लगे। समस्त देवताओ ने भी लक्ष्मण की प्रशसा करते हुए पुष्प-वृष्टि की। वानरो ने विजय-गर्व से सिंहनाद किया। परिमल से युक्त मद पवन धीरे-धीरे चलने लगा। चूँकि, लक्ष्मण विष्णु के अश से संभूत थे, उनके हाथो युद्ध में मरे कपटी राक्षस, शरीर तजकर, पश्चिम सागर में डूबनेवाले सूर्य की भाँति विष्णु-सायुज्य को प्राप्त हो गये। सूर्यवश की कीर्ति को सब दिशाओ में व्याप्त करते हुए लक्ष्मण ने वहाँ एक विजय-स्तभ प्रतिष्ठित किया और वानरो, विभीषण तथा हनुमान् के साथ शीघ्र रामचन्द्र की सेवा में पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर उन्होने राम के चरण-कमलो में झुककर प्रणाम किया। तब, राम ने उन्हें अपने हृदय से लगा लिया और आनंदाश्रुओ से अभिषिक्त करते हुए, उन्हें अपनी गोद में बिठा लिया। लक्ष्मण के शरीर पर वीर-पुलक के सदृश लगे हुए बाणो को देखकर उमडनेवाले अपार दुःख तथा मेघनाद की मृत्यु के अत्यधिक हर्ष से राम मूर्च्छित-से हो गये। किन्तु, वे शीघ्र ही सँभल गये और सूर्य-पुत्र को तथा विभीषण को अपने भाई लक्ष्मण को दिखाकर यो कहने लगे—'युद्ध में अजेय होकर आज इसने कैसी अद्भुत वीरता का प्रदर्शन किया है। असख्य दिव्य शस्त्रास्त्रो से सपन्न इन्द्रजीत का इसने वध किया है। अत, अब यह निश्चित ही है कि महान् शक्ति-संपन्न रावण मेरे हाथो मरेगा। उसका वैभव और उसका बल, आज उसके पुत्र की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गये। असख्य शस्त्रो से संपन्न तथा समस्त राक्षसो का आधार अपने पुत्र की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से रावण मेरे साथ युद्ध करने के लिए समस्त आयुधो से सुसज्जित होकर, दुर्वार गति से आवे, तो भी मैं अपने पैने बाणो से, चतुरंगिणी सेना के साथ दशकठ का खंड-खंड करके भूतो को बलि चढा दूँगा।'

इसके पश्चात् राम ने सुषेण को देखकर कहा—'हे वानरोत्तम, तुम औषधी-शैल से श्रेष्ठ प्रभा-विलसित विशल्यकरणी ले आओ और लक्ष्मण, विभीषण तथा अन्य वानरो के शरीर पर लगे बाणो के घावो की पीडा को दूर कर दो। सुषेण ने राम के आदेश का पालन किया और वे सब स्वस्थ-गात्र हो गये। सूर्य-पुत्र की आज्ञा से, सभी वानरो ने

चद्र तथा सूर्य-सम विलसित राम-लक्ष्मण को अलकृत किया । राम-लक्ष्मण, रवि-पुत्र, राक्षस-राज विभीषण, हनुमान्, सुषेण, शतमन्यु का पोता जाववान्, नील आदि वानरनायक, पौलस्त्य-वशजो का एकमात्र आधार उस वीरवर इद्रजीत की मृत्यु पर हर्ष मनाने लगे ।

१०९ इन्द्रजीत की मृत्यु पर रावण का शोक

युद्ध-भूमि से भागे हुए हतशेष राक्षस लका में पहुँचे और लोक-कटक रावण को देख, शोकार्त्त हो यो कहने लगे—'हे देव, इद्र के वैरी आपके पुत्र ने अपने अनुपम भुज-वल से असख्य वानरो का सहार किया । उन्होने देवताओ को आश्चर्य-चकित करते हुए अपने दिव्य अस्त्रो के प्रयोग से लक्ष्मण को भी व्याकुल कर दिया और युद्ध करते हुए निदान लक्ष्मण के हाथो से मृत्यु को प्राप्त हुए ।' यह समाचार सुनते ही रावण अत्यधिक शोक से व्याकुल होकर वहुत समय तक मूच्छित होकर पडा रहा । फिर, वह सचेत होकर शोक-सागर में डूबे हुए कहने लगा—"हाय, वशवर्द्धन, हे महावीर, हाय दानशील, हे शूर-वीर, शतमन्यु को सहज ही जीतनेवाला तुम्हारा शौर्य आज किसने दवा दिया ? इंद्र आदि दिक्पाल और गगनचारी जीव तुम्हारा नाम लेते ही भयभीत होकर भागते थे । ऐसी तुम्हारी भयकर शक्ति के समक्ष खडे होकर एक साधारण मानव ने तुम्हारा दर्प-दलन किया ! प्रचड क्रोध से तुम अपने भयकर कोदड को सँभाले हुए युद्ध-क्षेत्र में खडे हो जाते, तो यम भी तुमसे परास्त हो जाता था । ऐसी तुम्हारी वह शक्ति कहाँ नष्ट हो गई ? क्या दैव-गति वाम हो गई है ? अन्यथा, हे इन्द्रजीत, आज यम तुमसे भी अधिक प्रवल कैसे हो गया ? तुम्हारे पैने शर आश्चर्यजनक ढग से मदराचल को खड-खड कर देने में समर्थ थे । तुमने युद्ध-भूमि में कई वार सहज ही राम-लक्ष्मण को परास्त किया था । हे पुत्र, आज उस शक्ति को खोकर तुम सौमित्र के हाथो मारे गये । हे देवशत्रु, तुम्हारी मृत्यु से देवता तथा मुनि अत्यत हर्षित होगे । प्रलय-काल के घन-गर्जन-सदृश तुम्हारे सिंहनाद करते ही समस्त लोक भयभीत हो जायेंगे । तुम सभी देवताओ के लिए अजेय थे । ऐसे तुम एक क्षुद्र जीव की भाँति मारे गये । हाय, ब्रह्मा का लेख मिटाने में तुम असमर्थ ही रहे । आज समस्त चराचर जगत् विक्रम तथा वीरो से शून्य दीख रहा है । हाय पुत्र, मैं तुम्हारी शक्ति का भरोसा किये हुए था, आज तुमने मुझसे अलग होकर मुझे देवताओ के उपहास का पात्र वना दिया । क्या, तुम्हारे लिए यह उचित था ? आज राक्षस-स्त्रियो का विलाप मुझे अपने कानो से सुनना पड रहा है । तुम अपना युवराजत्व, अपनी लका, अपने इष्ट वधुओ, अपनी माता, स्त्रियो तथा पुत्रो को त्याग कर कैसे चले गये ? हाय पुत्र, तुम कहाँ चले गये ? उस दिन तुमने यम को जीत लिया था, ऐसे वलशाली तुम आज उसी के नगर को कैसे गये ? पुत्र वडी भक्ति से अपने पिता के क्रिया-कर्म करता है । आज वह कर्म नही रहा; आज मुझे ही तुम्हारा क्रिया-कर्म करना पड रहा है । अव मैं क्या कहूँ और क्या करूँ ? राम-लक्ष्मण, रवि-पुत्र, राक्षस-पालक विभीषण तथा भयकर पराक्रमी वानर, शूलो के समान मेरे हृदय में गडे हुए हैं । हे पुत्र, उन हृदय-शूलो को निकाले विना ही तुम कहाँ चले गये ? तुम मेरी विजय थे, मेरे तेज थे, मेरे पुण्य-फल थे, मेरे भाग्य थे, मेरे शौर्य थे, मेरी गति थे, मेरी कीर्त्ति थे और मेरा सर्वस्व तुम ही थे, तुम्हारे जैसे पुत्र की

मृत्यु मैंने देखी । अब मेरा जन्म किस प्रयोजन का ? इस विपत्ति-रूपी समुद्र को पार करने का साधन ही क्या है ? मैं अबतक यही विश्वास किये रहा कि तुम्हारी सहायता से मैं राम को जीत लूँगा । वह विश्वास अब नष्ट हो गया है । मेरी सभी आशाएँ समाप्त हो गईं । अब मैं इस शोक-दावानल में जल नहीं सकता ।" इस प्रकार, आर्त्तनाद करते तथा बार-बार शोक करते हुए, अस्थिरमति हो, रावण कितनी ही बार मूच्छित होता रहा । दशकठ के विवेकी मत्री उसे सात्वना देने तथा समझाने लगे । रावण बार-बार सँभलकर रोष तथा शोक से, भौंहें तानता, और चारो दिशाओ में क्रमश अपनी क्रुद्ध दृष्टि केन्द्रित करता । जिस दिशा में उसकी क्रुद्ध दृष्टि पड जाती, उस दिशा में स्थित राक्षस भय से सिकुड जाते। निदान, राक्षसेश्वर ने अपने उग्र दाँतो को पीसते हुए, अपने दसो मुखो के नेत्रो से अग्नि-कणो की वर्षा करते हुए अपने मत्रियो को देखकर कहा—'मैंने अविरत तप से ब्रह्मा को सतुष्ट किया और असख्य शस्त्रास्त्रो को प्राप्त किया । मैंने युद्ध में न कभी अपजय प्राप्त की, न कभी अपने मन में शोक का ही अनुभव किया । शिवजी को सतुष्ट करके नील मेघ के सदृश जो कवच मैंने प्राप्त किया है, उसे धारण करके यदि मैं अपने रथ पर युद्ध के लिए जाऊँ, तो क्या, स्वर्ग के अधिपति भी मुझे जीत सकते है ? उस दिन मैं ब्रह्मा से जो धनुष-बाण प्राप्त किये थे, उन्हें शीघ्र ले आओ । आज मैं अपने पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए शीघ्र शत्रुओ पर आक्रमण करूँगा और राम और लक्ष्मण तथा वानरो को जीतूँगा ।' इतना कहकर वह मन-ही-मन प्रलय-काल की अग्नि की भाँति जलते हुए ताल ठोककर सभी दिशाओ को प्रतिध्वनित करते हुए विविध वाद्यो के निनाद के बीच युद्ध के लिए चल पडा । अत्यत क्रोध से वह गरजकर कहने लगा—'राम ने सीता को प्राप्त करने के लिए मेरे भाइयो, पुत्रो, बधुओ तथा सैनिको का नाश किया है । इद्रजीत ने माया सीता का भी वध किया । मेरे सभी उपाय निरर्थक हो गये । मैं अभी जाऊँगा और असली सीता का ही वध करके अपना प्रतिशोध लूँगा ।'

११० रावण का सीता का वध करने के लिए जाना

इस प्रकार कहने के पश्चात् वह चद्रहास को अपने हाथ में लेकर अपने पदाघात से पृथ्वी को कँपाते हुए अशोक-वन की ओर चल पडा । तब वृद्ध राक्षस-मत्री आपस में परामर्श करने लगे—'क्या दशकठ उन दाशरथियो को अपने पैने बाणो से जीत नही सकता । इसने लोक-पालको की परवाह न करके युद्ध में उन्हें जीत लिया था, मरुतो को भयकर युद्ध में परास्त किया, नौ ब्रह्माओ को जीत लिया, आठ वसुओ का दर्प चूर कर दिया; अपने प्रताप से नवग्रहो को दबा दिया, बारह आदित्यो को झुका दिया, ग्यारह रुद्रो को जीत लिया, गधर्व, यक्ष, राक्षस, उरग, गरुड तथा भयकर दानवो को भयभीत करके अपने वश में कर लिया । ऐसी दशा में इसके सामने मनुष्यो की शक्ति ही कितनी है ? क्रोध में आकर पतिव्रता स्त्री को मारना उचित नही है ।'

उसी समय रावण यम की भाँति लोक-भयकर रूप धारण किये हुए जानकी का वध करने के उद्देश्य से अशोक-वन में पहुँच गया । उस पापात्मा की क्रुद्ध दृष्टि को देखते ही वह साध्वी भय से सिकुड-सी गई । भयकर ग्रह के समक्ष भयाक्रात हो पडी हुई रोहिणी

की भाँति वह सीता रावण को देख सोचने लगी—'हाय भगवन्, इस दुरात्मा के हाथो से मुझे इस प्रकार मरना पड रहा है । कदाचित् इद्रजीत की मृत्यु का समाचार जानकर मुझे मारने के लिए यह आ रहा है अथवा उन राम-लक्ष्मण को जीतकर मुझे मारने के उद्देश्य से यहाँ आ रहा है, मुझे जान नही पडता । क्या इसी के हाथ मरना विधि ने मेरे भाग्य में लिखा है ? हाय, अब मैं क्या करूँ ? हाय भगवन्, तुमने अत्यत पुण्यात्मा राम-लक्ष्मण को अनेक सकटो में डाल दिया है ।' इस प्रकार, वह कमललोचनी विलाप करती हुई, अपने मन में रघुराम की मूर्त्ति प्रतिष्ठित करके दुख-विवश होकर मूर्च्छित हो गई। पृथ्वी पर पडी हुई सीता को देख दशकठ उनकी तरफ आगे बढा । तब सभी राक्षस हाहाकार करते हुए चिल्लाने लगे—'यह भयकर कृत्य अनुचित है ?' उसी समय महान् मतिमान् तथा नीतिवान् सुपार्श्व नामक राक्षस रावण के निकट पहुँचकर निर्भय हो रावण को उपदेश देने लगा कि हे दानवेंद्र, तुम्हारे पितामह पुलस्त्य है, तुम्हारे पिता धर्मात्मा, नीतिज्ञ तथा यशस्वी विश्रवसु है, तुम स्वय वेद तथा आगमो के ज्ञाता हो, अपने महत्त्व का विचार किये बिना तुम ऐसे दुष्कर्म करने पर क्यो उतारू हुए हो ? उत्तम स्त्रियो का स्पर्श करके उनका वध करना महापाप है। इसलिए, तुम यह विचार छोड दो। तुम अपना सारा क्रोध कल युद्ध में राम-लक्ष्मण पर दिखाना । इस प्रकार कहकर सुपार्श्व ने रावण के हाथ से चद्रहास छीन लिया और रावण को अपने साथ वहाँ से ले आया । वहाँ से लौटकर दशकठ मन-ही-मन शोक से पीडित होते हुए अपने मत्रियो तथा बधुमित्रो को सभा-मडप में बुलाया और अपने पुत्र के गुणो की बार-बार प्रशसा करते हुए शोक प्रकट करने लगा ।

१११ इन्द्रजीत की स्त्री सुलोचना का शोक

अत पुर की स्त्रियाँ इद्रजीत की मृत्यु का समाचार सुनकर शोक प्रकट करने लगी तो उसे सुनकर आदिशेष की पुत्री सुलोचना को अपने प्राणनाथ की मृत्यु का समाचार ज्ञात हो गया । वह तुरत शोक से अभिभूत होकर, मूर्च्छित गिर पडी । बडी देर तक सहेलियो की परिचर्या के उपरान्त, वह किंचित् सचेत हुई और अपने प्राणेश्वर का स्मरण करती हुई विविध रीतियो से यो प्रलाप करने लगी—"हाय प्राणेश्वर, हे प्राणनाथ, क्या, एक साधारण मनुष्य ने तुम्हें परास्त किया है ? हाय, वह पापी ब्रह्मा हमारे प्रेम को नही देख सका । इसीलिए उसने हम दोनो को अलग कर दिया है । जब कभी तुम बाहर जाते थे, तब मुझसे कहकर जाते थे । इस बार भी तुम मुझसे कहकर जाते, तो शत्रु के हाथो तुम्हारी ऐसी मृत्यु नही होती । मेरे पिता ने जब तुम्हारे साथ बडी प्रीति से मेरा विवाह किया था, तब उन्होने तुमसे कहा था, 'यदि तुम विजय की आकाक्षा करते हो, तो जाने से पहले सभी कार्यो की सूचना अपनी स्त्री को देकर जाना । तब तुम ब्रह्मा तथा शिव के लिए भी अजेय बनोगे । नरो की तो बात ही क्या ?' उसके पश्चात् उन्होने मुझे एक शिरोरत्न देकर कहा था, 'हे पुत्री, जब तुम्हारे पति शत्रुओ पर आक्रमण करने जायें, तब तुम इस मणि से उनकी आरती उतारकर उन्हें भेजना । ऐसा करो, तो वे शत्रुओ पर विजय प्राप्त करके अवश्य लौट आयेंगे ।' उनके इन प्रिय वचनो को भूलकर

पति के साथ इस पृथ्वी पर जन्म लेकर अगणित सपत्ति के साथ चिर काल तक सुख-भोग करोगी और उसके पश्चात् तुम दोनो वैकुण्ठ में अपना इच्छित सुख प्राप्त करोगे ।'

राम के वचन सुनकर वह स्त्री हर्षित हुई और विनयपूर्वक उस दयामय राम की स्तुति यो करने लगी—'हे दया-समुद्र, हे अमल-गुण-धीर, हे साधुजन-आश्रित, हे सेतु-बधक, आप कृपा करके मेरे पति का शव मँगा दीजिए । मुझे अब शीघ्र नगर को लौट जाना चाहिए ।' तब सुग्रीव ने उस स्त्री से कहा—'हे कमलनयनी, यदि तुम पतिव्रता हो, तो बिना विलब जाकर अपने प्रिय पति से अपना सारा वृत्तात कहो ।' यह सुनकर वह साध्वी शीघ्र युद्ध-क्षेत्र में पहुँच गई । वहाँ उस चचलाक्षी ने अपने पति के कटे हुए सिर को देखकर कई प्रकार से रुदन करने लगी । फिर, अपने पति के शरीर के पास पहुँचते ही उमडते हुए दुःख से वह मूर्च्छित होकर गिर पडी । कुछ समय के उपरान्त वह सचेत हुई और अपने प्राणेश्वर के शरीर पर गिरकर ऊँचे स्वर में हाहाकार करती हुई विलाप करने लगी । फिर वह धैर्य धारण किये हुए स्थिर हो खडी हुई और सत्य की प्रभा से दीप्त होती हुई यो बोली—'यदि मैंने मन-वचन-कर्म से पति की भक्ति की हो, यदि मैंने धर्माचरण में पति को ही दैव मानकर पातिव्रत्य धर्म का पालन किया हो, तो मेरे पति पुनर्जीवित होकर मुझसे सभाषण करें ।'

सुलोचना ने आत्मविश्वास के साथ जब ऐसे वचन कहे, तो दशकठ के पुत्र ने आँखें खोलकर कहा—'हे रमणी, मेरा वध करानेवाले तुम्हारे पिता ही तो हैं ? मुझे जीतने की शक्ति दूसरो में कहाँ है ? तुम को दुःखी होने की कोई आवश्यकता नही है। अपने ऋणानुबध के अनुसार ही पति अपने पत्नी के साथ रहता है । सयोग तथा वियोग, दोनो, जीवो के लिए ब्रह्मा के द्वारा विधान किये जाते हैं । समय की गति प्रबल है, इसलिए मेरी मृत्यु हुई है । अब तुम जाओ ।' इतना कहकर उसने अपनी आँखें बद कर ली। सुलोचना मन-ही-मन अत्यत दुःखी हो, वहाँ से चलकर राम के पास आई और उन्हें हाथ जोडकर प्रणाम किया और बडी प्रसन्नता से उनकी प्रशसा करने लगी । तब रघुराम ने अगद को बुलाकर कहा—'इस रमणी को उसके पति का शरीर दिला दो ।'

अगद ने राम की आज्ञा मानकर सुलोचना को उसके पति का शरीर दिला दिया । सुलोचना उस शव को लिये हुए बडी भक्ति से राम की आज्ञा प्राप्त कर वहाँ से शीघ्र लका-नगर को रवाना हुई । वह सीधे अपने अतपुर में नही गई, किन्तु अपने पति के शरीर को एक योग्य स्थान में रखकर, उसकी रक्षा के लिए सैनिको को नियुक्त करके, उसके पश्चात् अतपुर में गई । वह बहुत समय तक अत्यधिक चिंता में निमग्न रही और उसके पश्चात् अपने प्रिय पुत्रो को पास बुलाकर आँखो से अश्रुधारा बहाती हुई, उनके शिरो को सूँघा, गालो का बडे स्नेह से स्पर्श किया और फिर उन्हें हृदय से लगाकर कहा—'हे पुत्रो, तुम्हारे मुँह देखते रहने का सौभाग्य मुझे भगवान् ने नही दिया है । अब इस पृथ्वी पर जीना मेरा धर्म नही है, इसलिए अवश्य मैं सहगमन करूँगी । अब तुम्हारा यहाँ रहना भी

उचित नही है। इसलिए तुम पाताल-लोक में चले जाओ। अपने नाना आदिशेष के घर में तुम विना सकोच के स्थिरबुद्धि से युक्त हो रहो।' यो कहकर सुलोचना ने उन्हें शीघ्र वहाँ से भेज दिया।

उसके पश्चात् वह थर-थर कॉपती हुई दशकठ के सम्मुख गई और मुरझाये हुए अपना मुख झुकाये आँसू बहाती हुई, गद्‌गद कठ से, हाथ जोडकर भक्ति से प्रणाम किया और अपने राम के पास जाने तथा शव लाने का वृत्तात उसे सुनाया और अत में कहा---'राम की दयालुता, लक्ष्मण का अतिशय स्नेह, विभीषण की सद्‌हृदयता तथा वानर-वीरो का पराक्रम आदि अद्‌भुत है।' यह सुनते ही रावण का मुख कातिहीन हो गया। उस रमणी के साहस, विवेक, न्याय, विचक्षण महिमा, पति-भक्ति तथा (शव के लाने में) उसकी कुशलता आदि के सबध में सोचकर उससे कुछ कहते नही बना। प्रत्युत्तर देने में हिचकनेवाले अपने श्वशुर को देखकर सुलोचना ने कहा---'हे असुराधीश, विधि-विधान को लेकर अब मन-ही-मन चिंतित क्यो होते है? मै अब एकनिष्ठ होकर सती हो जाऊँगी। आप मुझे जाने की अनुमति दीजिए।'

तव व्याकुल चित्त से रावण ने अपनी पुत्र-वधू को देखा, और ऐसी साहसवती तथा बुद्धिमती नारी को सहगमन करने से रोकना असभव समझकर कहने लगा---'हे कमलाक्षी, अब मैं तुम से क्या कह सकता हूँ? तुम्हारे मन की इच्छा क्या है, कौन जाने? अपने प्रिय ज्येष्ठ पुत्र का वध कराकर, मै भय तथा शोक के समुद्र में डूबा हुआ हूँ। मुझे कुछ सूझता नही है। अत, तुम जैसा चाहती हो, वैसा करो।"

११३. सुलोचना का सहगमन

तव उस चचलाक्षी ने 'अहोभाग्य' कहकर मन-ही-मन हर्षित होती हुई रावण को प्रणाम किया और वहाँ से अपने अत पुर में पहुँच गई। स्नान से निवृत्त होकर उसने पीतावर तथा रत्नाभरण धारण किये, ललाट पर चदन का लेप किया और पुष्प-मालाएँ पहनी। उसके पश्चात् सहेलियो तथा दशकठ की आज्ञा से आये हुए वधुमित्रो के साथ वह सुदरी अत पुर से वाहर चली। उस समय मृदग, निसान, पटह, भेरी, शख, काहल आदि वाद्यो की ध्वनि से दसो दिशाएँ प्रतिध्वनित होने लगी। वहाँ से वह शीघ्र इन्द्रजीत के शरीर के पास पहुँची और सुदर वस्त्र तथा आभूषणो से उस मृत शरीर का अलकरण किया। तत्पश्चात् उसने उस देह को अरथी पर रखवाया। तुरही आदि श्रेष्ठ वाद्यो की ध्वनि के बीच त्रेताग्नियो को लिये हुए स्वय अरथी के आगे-आगे चली। उसके पीछे-पीछे दैत्य-समूह चला। इस प्रकार, नगर की उत्तर दिशा में पहुँचकर वहाँ उसने चिता सजाई। फिर, अपने साथ आई हुई सौभाग्यवती स्त्रियो को स्वर्णाभरण, वस्त्र आदि विविध दान दिये और निश्चल भक्ति के साथ चिता में प्रवेश करके अपने प्राणेश्वर का शरीर अपने हृदय से लगाकर वैठ गई। जव अग्नि प्रज्वलित हुई, तव उसने अपना शरीर अपने पति को समर्पित किया। देवता उसकी पति-भक्ति की प्रशसा करने लगे। उस समय सव के समक्ष वह अपने पति के साथ देवताओं के विमान पर वैठकर, देव-मडली के बीच देदीप्यमान होती हुई पुण्य-लोक में पहुँची और वहाँ अपने पति के सग रहने लगी।

११४. रावण का अपनी प्रधान सेना को युद्ध के लिए भेजना

रावण अत्यधिक क्रोध तथा शोक से जलते हुए, वार-बार उमडनेवाले पुत्र-शोक में घुलते हुए अपने सभा-मडप में पहुँचा। क्रोधोद्दीप्त सिंह की भाँति उष्ण नि श्वासो को छोडते हुए, बल, साहस तथा युद्ध-कुशलता से सपन्न अपने सैनिको को देखकर उसने आदेश दिया कि तुम शीघ्र जाकर वानरो तथा राम-लक्ष्मण को जीतकर आओ।

रावण का आदेश शिरोधार्य करके राक्षस-सैनिको ने बडे उत्साह के साथ, रथ, गज, तुरग, पदाति आदि चतुरगिणी सेना के साथ युद्ध के लिए आवश्यक शस्त्रास्त्रो का सगठन किया। फिर, वे वज्र-कवच तथा वज्र-सम आयुधो से सज्जित हो भीषण गति से चल पडे। उस समय उनके गज-समूह के चिंघाडो तथा घटिकाओ एव अश्वो की हिनहिनाहटो का भीषण रव, दुदुभि, शख, पटह, डमरू, पणव आदि वाद्यो का तुमुल नाद, सेना का कलकल, ध्वजाओ की फडफडाहट, रथ के पहियो की घडघडाहट तथा धनुष का टकार आदि विविध ध्वनियो से मथित समुद्र की भाँति दिशाएँ गूँजने लगी। सेना के चलने से अत्यधिक धूलि ऐसे उडने लगी, मानो वह समुद्र से युद्ध करने जा रही हो। सभी राक्षस ऐसे गर्जन करने लगे कि उनके गर्जनो की ध्वनि आकाश का स्पर्श करने लगी और सारी पृथ्वी काँपने लगी। वे अपनी गर्वोक्तियो, धमकियो, हुकारो तथा चिल्लाहटो की ध्वनियो के साथ, अपने मणिमय कुडलो, हारो, ककणो तथा किरीटो की दीप्ति को विकीर्ण करते हुए लका से बाहर निकले, मानो महान् शक्ति-सपन्न कपि-समुद्र को देखकर, बडे उत्साह से लका-समुद्र से निकलनेवाला वडवाग्नि का समूह हो।

तब कपि-वीरो ने बडे उत्साह से गर्जन करते हुए, अपने पदाघातो से दिग्गजो को बैठ जाने के लिए विवश करते हुए, आकाश की ओर उछलते हुए तथा ताल ठोककर ब्रह्माण्ड को भी विदीर्ण करते हुए, काजल के पर्वतो के समान दीखनेवाले राक्षसो को देखकर करोडो वृक्षो, पर्वतो तथा बडी-बडी शिलाओ को लिये हुए, उन पर आक्रमण किया। इतने में उदयाद्रि पर सूर्य भगवान् चढ आये, मानो वे रघुराम की धनुर्विद्या की निपुणता देखने की उत्कट अभिलाषा लिये हुए आये हो। राक्षस तथा वानर-सेनाएँ ऐसी भयकर रीति से परस्पर भिड गई, मानो एक समुद्र दूसरे समुद्र से भिड गया हो। कपियो की विशाल सेना को देखकर राक्षस अपने रथ, गज तथा अश्वो को उनकी ओर बढाते हुए वानरो पर टूट पडे और उन्हें अनेक रीतियो से दु ख पहुँचाने लगे। किन्तु, वानरो ने अत्यत साहस के साथ पर्वतो को उठाकर उन पर फेंका। उनके प्रहार से कई राक्षस-सैनिक गिर पडे। राक्षस, करवालो से वानरो की पूँछो को काट डालते थे, तो वानर अपने बाहु-दण्डो से राक्षसो के गदा-दण्डो को तोड देते थे। राक्षस, वानरो पर परशुओ, परिघो तथा खड्गो को फेंकते थे, तो वानर पर्वतो, वृक्षो तथा पर्वत-शृगो को फेंककर उन्हें नष्ट कर देते थे। युद्ध-भूमि में रक्त की धाराएँ बहने लगी। वानर अपनी पूँछो से पर्वतो को उठाकर फेंकते थे, तो राक्षस उनके नीचे चूर-चूर हो जाते थे और फिर चक्रो तथा गदाओ से वानरो पर प्रहार करते थे। इस प्रकार, वे समान पराक्रम दिखाते हुए परस्पर युद्ध करते थे। राक्षस जब गजो, अश्वो तथा रथो को कपियो पर चलाकर उन्हें

व्याकुल करने लगे, तब सुग्रीव, अगद, पवनपुत्र तथा नील आदि वानर-वीर अत्यंत क्रोध से उनपर पर्वतो तथा वृक्षों की वर्षा करने लगे। इससे असंख्य रथ खड-खड होकर गिर गये; हाथी झुड-के-झुड गिरकर मर गये और अश्व तथा पदचर सेना पृथ्वी पर लोटने लगी। जब रथारूढ कुछ राक्षस क्रुद्ध हो पृथ्वी को कँपाते हुए, अपने मनोरथों की भाँति, अपने रथो को बडे वेग से वानरो पर चलाया, तब वानरो ने उन रथो के जुए पकडकर सहज ही उन्हें पृथ्वी पर पटक दिया। जब अश्वारोही राक्षसो ने कपियो पर अपने अश्व चलाये, तब कपि उनके सम्मुख धैर्य के साथ खडे होकर एक अश्व को उठाकर उससे दूसरे अश्व पर प्रहार करने लगे। जब गजारोही सैनिक वानरो पर गजो को चलाते, तब वानर गजो पर आक्रमण करके एक गज से दूसरे गज को टकरा देते। फिर, वे गज-सेना पर टूट पडते और गजो पर आरूढ राक्षसो को नीचे खीच लेते या उन पर पदाघात करके गिरा देते या उन्हें नीचे गिराकर अपने पैरो से कुचल देते या उन्हें ऊपर उठाकर पृथ्वी पर पटक देते और विविध रीतियो से उन्हें छिन्न-भिन्न कर देते थे। इस समय अश्वो के खुरो से उठी हुई धूलि के आकाश में व्याप्त होने से युद्ध-भूमि में अधकार-सा छा गया। उस अधकार में करवालो की दीप्ति उन्हें मार्ग दिखाने लगी, तो उस दीप्ति की सहायता से वानर तथा राक्षस परस्पर घोर युद्ध करने लगे। इस युद्ध के कारण बहनेवाले रक्त की धारा-रूपी किरणें, धूलि-रूपी अधकार को दूर करने लगी। घोर युद्ध में हाथी तथा रथ-रूपी तटो के बीच अश्व-रूपी मगर, ध्वजाओ, पेडो तथा सैनिको-रूपी तटवर्त्ती वृक्षो, खड्ग-रूपी मछलियो, हाथी की सूँड-रूपी सर्पो, ढाल-रूपी कच्छपो, चूर-चूर बने हुए असख्य रत्नाभूषणो के कण-रूपी रेत, केशजाल-रूपी शैवाल तथा चामर-रूपी फेन से युक्त रक्त की नदियाँ बहने लगी। उन नदियो को शीघ्र पार करते हुए वानर तथा राक्षस परस्पर भिड जाते। इतने में वानर राक्षसो पर उद्धत गति से टूट पडते, उनकी रीढो को तोड देते, अपनी मुष्टियो तथा कुहनियो से प्रहार करके, उन्हें नीचे गिरा देते, सिरो को कुचल देते, उनके पेट चीर देते, और इनसे भी सतुष्ट न होकर उन्हें दाँतो से काटते, अगो को तोडते, एँडी पकडकर उन्हें घुमाकर पृथ्वी पर पटक देते, उनके केश पकडकर क्रूर गति से खीचते, दोनो हाथो से दो राक्षसो को पकडकर उन्हें एक दूसरे से टकराकर चूर-चूर कर देते, उन्हें गिराकर उनके वक्षो पर ऐसा प्रहार करते कि उनकी छातियाँ फट जाती उनसे रक्त बह निकलता और अपने नाखूनो तथा दाँतो से उनकी नाक, कान, मुख, ललाट आदि चीर डालते। कभी एक सौ वानर एक ही दानव पर टूट पडते और कभी एक ही वानर एक सौ दानवो का नाश कर देता। इस प्रकार, वानरो ने बडी तत्परता से लडते हुए दानवो को तितर-बितर कर दिया।

तब राक्षस-सैनिक बड़े रोष के साथ, अपने दहाड़, भेरी, मृदग आदि युद्ध-वाद्यो के निनाद से पृथ्वी को कँपाते तथा दिशाओ को विदीर्ण करते हुए, वानर-सेना पर टूट पडे। यह देखकर इन्द्र आदि दिक्पाल भयभीत हो उठे। विकृत सिर विकृत-प्रकोष्ठ, विकृत ओष्ठ, विकृत नख, विकृत मुख, विकृत गात्र, विकृत नेत्र, विकृत हास, विकृत नाक, विकृत वक्ष, विकृत वर्ण, विकृत कर, विकृत पाद तथा विकृत नादवाले राक्षस-वीर, उमड-घुमडकर अलग-अलग आनेवाले

प्रलय-काल के बादलो की पंक्ति के समान परिघ, गदा, चक्र, परशु, तोमर, त्रिशूल, खड्ग, मुद्गर, करवाल, ढाल, नागमुख, शिलीमुख, धनुष, मूसल आदि समस्त आयुधो से सज्जित हो वानर-सेना पर भयकर गति से टूट पडे और उन्हें काटते, पीटते, मारते, उछालते तथा विविध रीतियो से उनपर प्रहार करते हुए उनका सहार करने लगे। इन क्रूर प्रहारो से भीत होकर वानर अपने हाथ के पर्वतों तथा वृक्षो को नीचे गिराकर विवश हो सोचने लगे, भला, हमें युद्ध करने की आवश्यकता ही क्या है ? हमें राक्षसो से शत्रुता ही क्या है ? हमें न सूर्यवश राम ही चाहिए, न सूर्यपुत्र सुग्रीव। जगलो में कच्चे फल और पीले पत्तो को खाते हुए सुख से जीवन-यापन करना छोडकर, यहाँ इन राक्षसो के हाथो में व्यर्थ ही हम क्यो मरें ? चलो, हम यहाँ से भाग चलें। यो सोचकर वानर-वीर धैर्य खोकर सेतु की दिशा में भागने लगे। राक्षस-सेना उनका पीछा करके उन्हें खदेड़ने लगी।

११५. वानर-सेना को हनुमान् आदि का प्रोत्साहन देना

हनुमान्, नील तथा अगद ने वानरो को इस प्रकार भागते हुए देखा, तो वे शीघ्र सेतु के उस पार गये और वानरो को सेतु के पार जाने से रोककर उन्हें लौटाया। तब सभी वानर भय से पीडित हो राम के पीछे जाकर शरण लेने लगे। राम ने वानरो की यह दीनता देखी, तो क्रोध से धनुष हाथ में लेकर उसका टकार करते हुए ऐसा सिहनाद किया कि राक्षसो के हृदय भय से काँप उठे। तदनतर क्रोधोन्मत्त हो अपना हस्त-कौशल दिखाते हुए, निशाचरों पर तीव्र बाणो की ऐसी वर्षा करने लगे कि उन बाणो की अधिकता के कारण स्वय राम भी युद्ध-भूमि में दीखते नही थे। राम के चलाये हुए असख्य शरो के प्रहार से राक्षसो की कमरें टूट गईं, जाँघें कट गईं, शरीर के खड-खड हो गये, वक्ष-स्थल विदीर्ण हो गये, मुख विकृत हो गये, पैर कट गये, हाथ टूट गये, कठ कट गये और सिर फट गये। कवचों को पार करके बाणो के शरीर में चुभ जाने से रक्त की नदियाँ बहने लगी। राम के बाणो के प्रहार से कुछ राक्षस मरते थे, कुछ भयभीत होते थे, कुछ मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पडते थे, कुछ व्याकुल हो जाते थे तथा कुछ भय से मुँह बाये खडे रह जाते थे। गज, अश्व तथा रथ पर आरूढ राक्षस सभ्रमित रह जाते थे। त्रस्त राक्षस चिल्लाने लगे—'वह देखो, राघव बाण चला रहे हैं। लो, वे हमारे निकट पहुँच ही गये।' ऐसा आर्त्तनाद करते हुए वे बडे वेग से युद्ध-क्षेत्र से भागने लगे। इतने में राघव ने अत्यधिक रोष से उन पर सम्मोहन-अस्त्र चलाया। उस अस्त्र के लगने से राक्षस अपने-आपको भूल-से गये और यह न जानकर कि कौन राक्षस है, और कौन वानर, एक राक्षस दूसरे राक्षस पर ही आक्रमण करने लगा। उस गाधर्व शर का ऐसा प्रभाव था कि किसी-किसी राक्षस को एक ही राम दीखता था, किसी को एक राम के स्थान में दस राम दीखते थे, किसी को सौ राम दीखते थे, किसी को सहस्र राम दीखते थे, किसी को एक लाख राम दीखते थे, किसी को करोड़ राम दीखते थे, किसी को सौ करोड़ राम दीखते थे; इस प्रकार उनको सारा युद्ध-क्षेत्र ही राममय दीखने लगा। अविराम बाण चलाते रहने से राम का स्वर्ण-धनुष वृत्ताकार में दीखने लगा। उसे देखकर राक्षस

मन-ही-मन सोचने लगे कि यह कदाचित् वही चक्र है, जिसे विष्णु ने भयंकर युद्ध करते हुए 'नमुचि' पर चलाया था, अथवा किरण-समूह से घिरा हुआ सूर्यबिम्ब है। यों सोचते हुए, राम के शर-समूह के प्रहार का सहन न कर सकने के कारण वे प्राण लेकर भागने लगे। उस समय राक्षस-सेना में क्षण-भर की रक्त-वर्षा में भीगे हुए, चौदह सहस्र अश्व, अठारह सहस्र हाथी, एक लाख रथ, दो लाख वीर राक्षस नष्ट हुए। शर-रूपी अर, धनुष-रूपी नेमि (पहियें का घेरा), टंकार-रूपी रव, किरण-रूपी स्फुलिंगो से युक्त राम का धनुष-रूपी चक्र काल-चक्र की भाँति विलसित होते देखकर हतशेष दैत्य अत्यत त्रस्त हो उस घोर युद्ध-भूमि को छोडकर भागे और लका में जा पहुँचे। यह देखकर वानर उत्साह से सिंह-नाद करने लगे। प्रलय-काल के यम की भयकर नाश-लीला की भाँति उस समय का युद्ध-क्षेत्र दीखने लगा। जब रघुवीर रावण की प्रधान सेना के दस सहस्र हाथी, बीस सहस्र अश्व, एक सौ रथ तथा एक पद्म सेना का सहार कर देते थे, तब एक धड़ उठकर नाचने लगता था, ऐसे करोड़ धड़ जब नाचते थे, तब एक कटा हुआ सिर आकाश की ओर उछलकर एक भयकर चीत्कार करता था, ऐसे एक करोड सिर जब उछलते थे, तब राम के धनुष की एक घटी बजती थी। इस भयकर युद्ध में राम के धनुष में लगी हुई ऐसी चौदह घटियाँ अविराम बजती रही। रघुवीर की ऐसी धनुर्विद्या का कल्पनातीत कौशल लगातार सत्रह घडियो तक चलते देखकर किन्नर, गधर्व, खेचर, यक्ष, उरग तथा अमर उनकी स्तुति करने लगे।

उसके उपरान्त, रामचद्र ने शूर-पुगव सुग्रीव को देखकर कहा—'यह सम्मोहनास्त्र जगद्भयंकर है। इसका प्रयोग करने तथा इसका उपसहार करने की शक्ति या तो मुझ में है, या ईश्वर में; अन्यो में ऐसी क्षमता नही है। कौशिक ने जिस महान् शस्त्र को मुझे प्रदान किया था, उसकी महिमा से स्वय कौशिक भी अनभिज्ञ थे।' तब विभीषण ने राम को देखकर विनय तथा सभ्रम से कहा—'हे देव, रावण की यह सेना देवेन्द्र आदि देवताओ के लिए भी अजेय थी। यही रावण की मूल-सेना थी, आज यह भी मिट्टी में मिल गई। अब रावण का अत निश्चित है। आप तो स्वयं अपने महत्त्व का ज्ञान नही रखते। सच तो यह है कि कोई भी आपकी समानता नही कर सकता।' विभीषण के वचन सुनकर रामचद्र प्रसन्न हुए।

११६. राक्षस-स्त्रियों का रावण की निन्दा करना

लका में दानव-स्त्रियो ने झुडो में एकत्र होकर उमड़ते हुए शोक से पीड़ित होती हुई कहने लगी—"हाय, कैसा दुर्भाग्य है कि निंदनीय चरित्र, भाग्यहीन मुखड़ा, पलित केशों से युक्त सिर, विशाल उदर, विकृत वेश, विकृत यौवन, उग्र केश तथा उग्र दष्ट्र-वाली शूर्पणखा सकल गुणोज्वल, सत्त्व-संपन्न, सुकुमार, तेजस्वी, सुमुख तथा कामदेव के समान सुदर रामचंद्र पर आसक्त हुई। कहाँ राजा भोज, और कहाँ गंगू तेली। इस लका के सभी राक्षसो पर मृत्यु की छाया पड़ी हुई थी, इसी कारण से उस राक्षसी ने दशकंठ तथा उस सूर्यवंशज में शत्रुता उत्पन्न कर दी। उस शूर्पणखा की बातें सुनकर उचित तथा अनुचित का विचार किये बिना, शत्रुत्व ठानकर, दशकठ अपना ही नाश कराने के लिए नहीं,

अपितु राक्षस-वश का भी सर्वनाश करने के लिए उस राम की पत्नी को ले आया। इतना करने पर भी क्या, सीता उसे मिल गई ? ऐसा दुस्साहस उसने किया ही क्यो ? राम ने तो एक ही बाण से मारीच का वध कर डाला तथा दण्डक-वन में विराध पर क्रुद्ध होकर उसका सहार किया। इन बातो को जानकर भी मदाध हो रावण ने उनको नही पहचाना। जनस्थान में राम ने अपने अनल के समान शरो से चौदह सहस्र राक्षसो का सहार किया और अपने भयकर बाणो से, त्रिशिर, दूषण तथा खर को सहज ही मार डाला। दशकठ ने उसका भी विचार नही किया। क्रौंचवन में दाशरथियो ने अपने अनुपम शौर्य से रुधिराशन को, क्रूर विक्रम को तथा योजनबाहु कवध को मार डाला। ऐसे विक्रमी राक्षसो के (वध का) वृत्तात जानकर भी रावण ने राम पर विजय प्राप्त करने की ठानी। क्या, यह उसके लिए सभव है ? क्या हमारे रावण में इतना साहस है, कि वह जगदीश्वर राम से युद्ध कर सके ? राम ने तो एक ही बाण से सहज ही वालि का वध करके सूर्य-पुत्र को किष्किंधा का राजा बना दिया। सहस्रो हाथी, लाखो अश्व, करोडो रथ और असख्य पदचर सेना को राम ने एक क्षण-मात्र में ही युद्ध में मार डाला। उन्होने अकेले महान् पराक्रमी कुभकर्ण का सहार किया। ऐसी वीरता देखकर भी रावण राम की शक्ति पहचान नही सका। महाशूर अतिकाय तथा इन्द्रजीत को अकेले लक्ष्मण ने युद्ध में समाप्त कर दिया। इतना सब होने के उपरान्त भी रावण राम की शरण में नही जाना चाहता। आज लका के घर-घर में विलाप सुनाई पड रहा है। सभी लोग 'युद्ध में हमारे बधु मरे, हमारे पुत्र मरे, हमारे पति मरे, हमारे सहोदर मरे', इस प्रकार का आर्त्तनाद करते हुए शोक-समुद्र में डूब रहे हैं। जिस दिन से दुर्मति तथा नीति-बाह्य हो रावण अपनी माया से सीता को इस नगर में ले आया, उसी दिन से दुःशकुन दिखाई पड रहे हैं। अब शीघ्र ही दशरथ के पुत्र के हाथो में दशकठ का अत होना निश्चित ही है। हाय, नीतिज्ञ विभीषण ने विविध रीतियो से इसको धर्म-मार्ग समझाया था। यदि यह उनके हित वचनो का आदर करता, तो क्या लका की ऐसी दुर्दशा होती ? या तो कुल-पर्वतो के पखो को अपने वज्राघात से काटनेवाले पुरदर ने या मधु-कैटभ आदि राक्षसो का सहार करनेवाले विष्णु ने या क्रूर यम ने या प्रलय-काल के रुद्र ने इस पृथ्वी पर राम के रूप में जन्म लिया है और राक्षसो का वध करने लगा है। जिस समय दशरथ-पुत्र राम, अपने शौर्य का प्रदर्शन करते हुए, युद्ध में दशकठ का वध करने लगेंगे, उस समय, क्या, महान् देवता या गंधर्व या मुनि या रावण को वर प्रदान करनेवाले ब्रह्मा या शिव या राक्षस उन्हें राम के हाथो से बचा सकेंगे ? वर देते समय ब्रह्मा ने यह वर नही दिया था कि यह नर के हाथो से नही मरेगा। इसलिए यह स्पष्ट हो रहा है कि दशकधर अपने बधुओ के साथ राम के हाथो से मरेगा। यह सत्य है, क्योकि जब इस रावण ने इन्द्र आदि देवताओ को बडी क्रूरता से दुःख पहुँचाया, तब समस्त देवताओ ने ब्रह्मा से अभय-दान की प्रार्थना की। तब चतुर्मुख ने उन्हें देखकर कहा था—'भविष्य में तुम्हें किसी प्रकार का दुःख नही होगा। अब तुम निश्चित रहो।' इसके पश्चात् ब्रह्मा देवताओ को साथ लेकर महादेव के पास गये और उनसे प्रार्थना की। तब प्रसन्न होकर शिव ने ब्रह्मा को

करुणापूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—'देवो की रक्षा करने तथा समस्त राक्षसो का वध करने के लिए पृथ्वी पर इदिरा का जन्म होगा। उस सती के पति बनकर विपत्तियो से प्रजा की सतत रक्षा करने तथा दुर्जन राक्षसो का सहार करने के लिए विष्णु स्वय पृथ्वी पर अवतार लेंगे। राम ही वह विष्णु है और भूमि-सुता ही वह इदिरा है।' शिव का वचन कभी नही टलेगा। अत, समझ लो कि हमें अब अघट दुख प्राप्त होनेवाला है। अब हमारा रक्षक कौन है ? हमारा रावण अब बचेगा नही। अब हमारे सतप्त होने से कोई प्रयोजन नही है। हमारे एकमात्र त्राता विभीषण भी रामचद्र की शरण में गये हुए है।"

११७-रावण का द्वितीय युद्ध

इस प्रकार, विविध रीतियो से असुर-स्त्रियो के दीन विलाप सुनकर रावण थोड़ी देर तक चिता की अग्नि में परितप्त होते हुए मौन हो रहा। फिर, प्रचण्ड काल-नाग के फुफकार की भाँति दीर्घ निःश्वास छोडकर ओठ चबाते तथा आँखो से अग्नि-कणो की वर्षा करते हुए अत्यत क्रोध से युद्धोन्मत्त तथा विरूपाक्ष नामक राक्षसो को देखकर बोला—'तुम शीघ्र तुरहियो की भयकर ध्वनि करते हुए सिंह-गर्जनो के साथ युद्ध के लिए निकल पडो।' उसकी बातें सुनकर भी भयाक्रान्त निशाचरो को मौन देखकर, उसने फिर कहा—'शीघ्र ही युद्ध की तैयारी करो।' इस प्रकार हतोत्साह हो क्यो वैठे हो ?' तब उन्होंने जाकर पुण्याह कर्म आदि करने के पश्चात् युद्ध की तैयारी की और राक्षसेन्द्र के समक्ष आकर उस बात की सूचना दी। तब रावण ने उनको देखकर कहा—'दिन-दिन मेरी सेना घटती जा रही है। मेरे सभी अनुचर मारे जा चुके। अमरेन्द्र के समान पराक्रमी खर, अमित बलशाली इन्द्रजीत, कुभकर्ण, प्रहस्त, कुभ-निकुभ, भयकर पराक्रमी अति-काय, महाकाय, महोदर, असुरातक, नरातक, यशस्वी अकपन, कपन आदि महान् योद्धा, जो युद्ध में इद्र का भी सामना कर सकते थे, मेरे निमित्त प्राण खो बैठे। मेरा दर्प चूर-चूर हो गया। इसलिए, मैं अपने सभी शत्रुओ का नाश करूँगा और अपने पराक्रम का प्रदर्शन करके उनसे प्रतिशोध लूँगा। मेरे शर समस्त आकाश तथा समुद्र को ढक लेंगे। मैं आज सभी वानरो का सहार करूँगा। मेरे चलाये बाण मृणालयुक्त कमलो की भाँति वानरो के कठ-नाल-युक्त मुख-कमलो को काटेंगे और मैं उनसे युद्ध-भूमि का अलकार करूँगा। आज लका नगर की स्त्रियाँ यह सोचकर कि हमारे पति, पुत्र और सहोदर युद्ध में कटकर मरे पडे है, अब हमारी रक्षा कौन करेगा। वे शोक-सागर में डूबी हुई है। मैं शत्रुओ का वध करके उनका शोक दूर करूँगा। मैं शत्रु-पक्ष की सेनाओं को अपने पैने बाणो से काटकर उनके रक्त-मास से, सियारो, गीधो उकाबो, पिशाचो, प्रेतो एव भूतो को तृप्त करूँगा।'

इसके पश्चात् उसने युद्धोन्मत्त, मदमत्त एव अक्षीण बलवान् विरूपाक्ष को देखकर कहा—'तुरत तुम सभी राक्षसो को युद्ध-भूमि में ले आओ। मेरे लिए रथ सजाकर भेजो। आज मेरे तीक्ष्ण बाण, प्रतापी राम-लक्ष्मण के प्राण लेकर उनके रक्त का पान करना चाहते है। मैं वानर-सेना पर बाण ऐसे चलाऊँगा कि एक-एक बाण से सैकडो वानर मारे जायेंगे। तुम बलवान् राक्षसो को चुन-चुनकर सेना का सगठन करके शीघ्र लाओ।'

तब विरूपाक्ष आदि राक्षसो ने सेना को एकत्र होने की घोषणा की। तुरत सभी राक्षस अपने गर्जनो से आकाश को कँपाते हुए, करवाल, चक्र, खड्ग, परशु, शूल, गदा, मूसल, मुद्गर, शक्ति आदि विविध एवं विचित्र आयुधो से युक्त हो अत्यधिक उत्साह से आ गये। राक्षस रावण के लिए विविध अस्त्रो से सज्जित, सूर्य-प्रभा से विलसित रथ ले आये। तब रमणीय रत्नों की काति से प्रकाशमान कर्ण-भूषण धारण किये हुए, दसो कठो में रत्न-पदक पहने हुए, दसों मुखो से नाना प्रण करते हुए, केयूर, मणिककण आदि भूषणो से बाहुओ को अलकृत किये हुए; धनुष, शर, खड्ग, चक्र, करवाल, परशु आदि विविध आयुधो को धारण किये हुए दशकठ रथ पर आरूढ हुआ। उसके दसो मुकुट ऐसे प्रतीत होते थे, मानो बारह आदित्यो में एक को तो रावण ने बदी बनाया, दूसरा आकाश में दीख रहा है, अतः बचे हुए दसो आदित्य यहाँ विराज रहे है। रावण के रथ के पीछे रथ, गज, तुरग, पदाति चतुरगिणी सेना भी चलने लगी। उस समय सेना के निसान, तुरही आदि की ध्वनि तथा सैनिको के सिंहनाद आदि से गूँजनेवाली लका प्रलय के समय भयंकर गर्जन करनेवाले समुद्र के समान दीख रही थी। बदीजनो की स्तुतियो के साथ रावण उत्तर द्वार से लका से बाहर निकला और युद्धोन्मत्त विरूपाक्ष को देखकर ऐसा सिंहनाद किया कि पृथ्वी विदीर्ण-सी हो गई। उस समय सूर्य-बिंब की दीप्ति भी क्षीण हो गई; दिशाएँ अधकार से व्याप्त हो गईं, पृथ्वी डोल गई, रथ चूर-चूर हो गये, अश्व गिर पडे और रक्त की वर्षा होने लगी। ऐसे दु:शकुनो को देखकर भी दशकठ किंचित्-मात्र विचलित नहीं हुआ।

लकेश की विशाल सेना को देखकर ब्रह्माण्ड को विदीर्ण करते हुए वानरो ने सिंहनाद किया और उद्धत गति से भयंकर राक्षसो पर टूट पडे। इससे क्रुद्ध होकर राक्षस-वीरो ने अपने पराक्रम को प्रकट करते हुए, वानरो के हृदयो को छेदकर पार निकल जानेवाले पैने बाण चलाये; मूसल, तोमर, शक्ति, मुद्गर, चक्र आदि फेंके, अकुश, कुत तथा शूल चुभोये; भयकर गदाओ से प्रहार किया और तलवारो को चमकाकर उनसे वानरो के अगो को खडित किया। तब कपि-वीरों ने भी क्रोधोन्मत्त हो, विशाल पर्वतो तथा वृक्षो को उन राक्षसो पर फेंका, अपने चरण, हाथ, दाँत, नख तथा पूँछों की सहायता से उनके सिरों तथा शिराओ को, हाथो तथा मुखो को, वक्षों तथा बाहुओ को, ओठो तथा कठो को काटते, चीरते तथा कुचलते हुए, उन्हें कई प्रकार से पीड़ित किया। यह देखकर दनुजेश्वर ने वत्सदत, अश्वकर्ण, नाराच, भल्ल आदि नाना अस्त्रों को वानरो पर चलाकर रक्त की धाराएँ बहा दी। वह एक-एक बाण से पाँच-पाँच, सात-सात, नौ-नौ कपियों को एक साथ जहाँ-के-तहाँ गिरा देता था। इसके पश्चात् उसने पाँच बाणो से गधमादन को, अठारह बाणो से पनस को, दस बाणो से नील को, पचास बाणो से नल को, छह बाणो से द्विविद को, सात बाणो से विनत को, सत्तर बाणो से पवनपुत्र को, पच्चीस बाणो से कुमुद को, पाँच बाणो से गोमुख को, सात बाणो से ऋषभ को, सत्रह बाणो से गज को, सात बाणो से शरभ को, सात बाणो से गवय को, तीन-तीन बाणो से तार तथा क्रथन को, अस्सी बाणो से अंगद को तथा कई बाणों से अन्य वानरो को पृथ्वी पर शीघ्र

गिराकर गर्व से इतराने लगा । असुरेश्वर के वाणों से आहत कुछ कपि कमर के टूटने से गिर पड़ते थे; कुछ चकराकर लुढ़क जाते थे; कुछ लोगों के वक्ष-स्थलो के विदीर्ण होने से गिर पड़ते थे; चरणो के कट जाने के कुछ वानर गिर जाते थे; कुछ लोगो के हाथ कट जाते थे; कुछ वानरो के सिर फट जाने से वे भूमि पर लोट जाते थे; कुछ कपियों के कंठ कट गये और कुछ की जाँघें कट गईं, इसलिए वे कराहते हुए पृथ्वी पर लोट गये । युद्ध-भूमि में कई ऐसे भी कपि थे, जिनके अग ऐसे कुचल गये थे कि उनके अंगो को पहचानना कठिन हो गया था । वाणो के लगते ही कुछ वानर भागने लगते, किन्तु बीच में ही प्राणो के निकल जाने से वही पृथ्वी पर गिर जाते थे । इस प्रकार, दनुजेन्द्र के वाणो के आघात को सह नही सकने के कारण वे सभी वानर प्राण लेकर भागने लगे । रावण ने उनका पीछा किया । तव सुग्रीव वानर-सेना को देखकर कहने लगा—'भागते क्यो हो, रुक जाओ, ठहर जाओ ।' फिर भी, वानर-सेना भागती ही रही। तव उनको रोकने के लिए सुषेण को भेजकर, सुग्रीव ने स्वयं एक वृक्ष को लिये हुए राक्षस-सेना का सामना किया । उसके पीछे-पीछे पर्वतो को लिये हुए वानर-वीर भी चलने लगे । तव सिंहनाद करके वह प्रलय-काल के रुद्र की भाँति वृक्ष से प्रहार करते हुए शीघ्र गति से राक्षसो का संहार करने लगा । अन्य वानर-वीर भी उसीके साथ राक्षस-सेना पर वृक्षो तथा पर्वतो की घोर वृष्टि करने लगे । इससे राक्षसो के सिर फूट गये और कई राक्षस कुलिश से आहत भग्न-शिखर कुल-पर्वतों की भाँति गिर पड़े ।

११८. सुग्रीव के द्वारा विरूपाक्ष आदि राक्षसों का वध

तव रविपुत्र क्रोध से अपने नेत्र लाल किये हुए एक पर्वत को हाथ में लिये हुए आगे वढा । तव विरूपाक्ष ने अत्यधिक रोष से रथ को आगे वढाते हुए धनुष का टंकार करके सुग्रीव पर वज्र-सम पैने वाण चलाये । किन्तु, रविपुत्र उनकी उपेक्षा करके उसके रथ पर कूद पड़ा और रथ, सारथी तथा घोडो को एक पर्वत के प्रवल प्रहार से पृथ्वी पर गिरा दिया । रथ से वंचित किये जाने पर भी वह राक्षस-वीर पृथ्वी पर उतरकर सुग्रीव पर विविध शरों को चलाने लगा । इतने में राक्षसेन्द्र की आज्ञा से, सभी आयुधों से सज्जित करके, महावत एक मत्त गज को ले आया, तो विरूपाक्ष तुरंत उस पर चढ़ गया और कपियो पर भयंकर प्रहार करके उनका संहार करने लगा और साथ-ही-साथ सूर्य-पुत्र पर भी भयंकर वाण चलाये । इससे सतुष्ट न होकर विरूपाक्ष कई शस्त्र और विविध वाण कपियो पर चलाने लगा । इनको न सह सकने के कारण जव वानर युद्ध-क्षेत्र से भागने लगे, तव सुग्रीव ने उन्हें रोककर, किसी भी तरह विरूपाक्ष को जीतने का सकल्प कर लिया । इतने में क्रथन नामक एक वीर वानर ने विपुल पराक्रम से एक वृक्ष को उखाडकर क्रोध से उस वृक्ष से हाथी के कुंभ-स्थल पर प्रहार किया । तव प्रचुर रक्त-धारा बहाते हुए वह गज उतनी दूर पीछे हट गया, जितनी दूर धनुष से निकलकर वाण जा सकता है और वहाँ जाकर वह झुक गया । तुरत वह राक्षस पृथ्वी पर कूद पड़ा और खड्ग तथा ढाल लिये हुए उसने सुग्रीव पर आक्रमण किया । तव सुग्रीव ने उस पर एक विशाल शैल से प्रहार किया, पर उस राक्षस ने उसे काट डाला । तव रविपुत्र ने

उस पर अपनी मुष्टि से प्रहार किया, तो विरूपाक्ष ने अपने करवाल लेकर उससे सुग्रीव पर प्रहार किया। मुष्टि के प्रहार से विरूपाक्ष तथा करवाल के प्रहार से सुग्रीव दोनों मूच्छित हो गये। किन्तु, शीघ्र ही वे दोनो सँभलकर एक दूसरे से भिड गये। सुग्रीव ने अपनी हथेली से विरूपाक्ष पर प्रहार किया, तो उसने उसे बचाकर अपने करवाल से सुग्रीव पर वार किया। करवाल का वार बचाने के लिए सुग्रीव दौडा और तुरत उस राक्षस पर ऐसा आघात किया कि विरूपाक्ष के हाथ का आयुध गिर पडा। फिर, दोनो वीर, दो सूर्यो की भाँति प्रकाशमान होते हुए, प्रलय-काल की अग्नियो के समान प्रज्वलित होते हुए, इन्द्रो की भाँति अपने भुजबल के गर्व से फूलते हुए, विजय की आकाक्षा से मल्ल-युद्ध करने लगे। तब विरूपाक्ष ने आश्चर्यजनक शक्ति से सुग्रीव पर अपनी हथेली से ऐसा क्रूर प्रहार किया कि सुग्रीव मूच्छित होकर गिर पडा। तुरन्त वह तलवार हाथ में लिये हुए वानरो पर टूट पडा। इतने में सुग्रीव की चेतना लौट आई और उसने कुलिश के समान कठोर अपनी हथेली से विरूपाक्ष के वक्ष पर ऐसा प्रहार किया कि वह भयकर राक्षस रक्त उगलते हुए पृथ्वी पर लोट गया। यह देखकर वानर हर्ष से फूल गये और दानव अत्यत दीन हो भागने लगे।

तब रावण ने विरूपाक्ष की मृत्यु से किंचित् भी विचलित हुए बिना उसके अनुज युद्धोन्मत्त को देखकर कहा—'देखा तुमने सुग्रीव का पराक्रम ? युद्ध-क्षेत्र में अपने भाई विरूपाक्ष की दशा देखी ? इस युद्ध में अनेक राक्षस-सैनिक मारे गये, कितने ही हाथी नष्ट हुए, अश्व दब गये, रथ टूट गये और सेना छिन्न-भिन्न हो गई। वह देखो, वानर हर्षोन्मत्त होकर आगे बढ रहे हैं। तुम्हारे लिए युद्ध करने का यही उचित अवसर है। अब तुम युद्ध-भूमि में शत्रुओ का सहार करो।' तब विरूपाक्ष का अनुज श्रीराम को व्याकुल करने का सकल्प करके वानर-सेना के निकट पहुँचा और बाण, गदा, खड्ग आदि सभी आयुधो से कपियो पर प्रहार करते हुए उन्हें दुख देने लगा। यह देखकर सुग्रीव ने एक विशाल पर्वत को उठाकर उस पर फेंका, किंतु उस राक्षस ने उसे बीच में ही काट डाला। तब सूर्यपुत्र ने और एक पहाड उठाकर फेंका, तो उस राक्षस ने तीन बाण चलाकर उसके तीन खड कर दिये। उसके पश्चात् भी उस राक्षस को शर-वृष्टि करते हुए देखकर सुग्रीव उसके रथ पर कूद पडा और उसके परिघ से ही उसके धनुष तथा केतु को तोड डाला, सारथी को मार गिराया और रथ के अश्वो को पृथ्वी पर गिरा दिया। तब वह राक्षस बडे वेग से पृथ्वी पर कूदकर एक विशाल गदा लिये हुए सुग्रीव पर टूट पडा। तब दोनों परिघ एव गदा से युक्त अपनी बाहुओ को चमकाते हुए सिंहो के समान गरजते हुए एक दूसरे के कठ, मुख, हाथ, स्कध, चरण, नख, जानु, जघा, छाती, पीठ, उँगलियाँ, नितंब, कमर, शिर, कान, नाक तथा ओठो पर क्रमश प्रहार करते हुए आश्चर्यजनक रीति से अत्यन्त साहस के साथ युद्ध करने लगे। कभी वे दोनों परिघ एव गदाओं से आहत होकर गिर पड़ते, फिर इतने में एक दूसरे से पहले सचेत होकर पृथ्वी को कँपाते हुए गर्जन करते। इस प्रकार, युद्ध करते समय उस राक्षस ने अपनी गदा को दोनों पक्षों की सेनाओं को आश्चर्यचकित करते हुए घुमाकर सूर्यपुत्र पर ऐसा फेंका कि सुग्रीव पृथ्वी पर गिर पडा,

किंतु शीघ्र ही उठकर सुग्रीव ने अपना परिघ घुमाकर उस राक्षस पर ऐसा फेंका कि वह उसके अगो से लगकर चूर-चूर हो गया । तव क्रोध से जलते हुए उस राक्षस ने अपने करवाल को सुग्रीव पर फेंका, तो सुग्रीव ने उस कृपाण को लेकर उसे चमकाते हुए उस राक्षस के मकर-कुण्डलो से दीप्त मस्तक पर ऐसा प्रहार किया कि वह पृथ्वी पर लोट गया । यह देखकर राक्षस लंका की ओर भागने लगे ।

तव सुपार्श्व ने अपने वल के गर्व से फूलते हुए अगद की सेना पर आक्रमण किया और तीक्ष्ण शरो के प्रहार से कुछ वानरो के सिर काट डाले, कुछ लोगो के हाथ काटे और कुछ लोगो का सहार किया । तव वानर भयभीत होकर भागने लगे । यह देख अगद उस राक्षस के रथ पर कूदा और उसी का परिघ छीनकर उससे उस राक्षस पर ऐसा प्रहार किया कि वह व्याकुल होकर पृथ्वी पर लुढक गया। इतने में जाववान् ने एक विशाल चट्टान उठाकर उस पर ऐसा फेंका कि उसका रथ टूट गया और अश्व तथा सारथी मर गये । इतने में सुपार्श्व सचेत हुआ और क्रोध से जलते हुए, अगद के कधे पर दस वाण चलाये, जाववान् पर तीन वाण चलाये और गवाक्ष पर पाँच वाण चलाये । अगद वडे रोष से परिघ घुमाकर उस राक्षस पर फेंका, तो वह पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा । इसी समय अंगद उस राक्षस का धनुष तोडने लगा, तो वह राक्षस सँभलकर उठ बैठा और परशु उठाकर उससे अगद पर ऐसा आघात किया कि अगद मूर्च्छित होकर गिर पडा। फिर, शीघ्र ही सँभलकर अगद ने अपनी वज्र-सम मुष्टि से उस राक्षस को ऐसा मारा कि वह कुलिश के आघात से गिरनेवाले कुलपर्वत की भाँति युद्ध-भूमि में गिर पड़ा । यह देखकर देवता हर्ष से निनाद करने लगे और राक्षस-सेना के पैर उखड़ गये । तव दशानन कहने लगा—'महा पराक्रमी सुपार्श्व नष्ट हुआ, वाहुवली युद्धोन्मत्त की मृत्यु हो गई, विरूपाक्ष का वध हुआ और श्रेष्ठ राक्षस-वीर युद्ध में काम आये । अव वल-समन्वित इन राजकुमारो को मैं स्वयं जीतूँगा' और अपने वधुओ की मृत्यु की शोकाग्नि से जलनेवाली लका के रहनेवालो के दुख को दूर करूँगा । अविरल क्षात्र धर्म-रूपी जड, नव-विजय से उन्नत लक्ष्मण-रूपी प्रकाड (तना), सूर्यपुत्र तथा अन्य वानर-वीर-रूप शाखाएँ, राम की अखड कीर्त्ति-रूपी मजरी, सीता-रूपी फल से युक्त हो, देवताओ के लिए आश्रय-रूपी छाया प्रदान करनेवाले राम-रूपी वृक्ष को मैं उखाड दूँगा और उसे अपने मन के दुख को दूर करनेवाली ओषधि वनाकर, इस संसार में जीवन-यापन करूँगा ।'

११९. रावण का राघवों पर आक्रमण करना

इस प्रकार कहते हुए असुरेश्वर ने क्रोधोद्दीप्त मन से अपने सारथी से कहा—'तुम अपनी चतुरता का प्रदर्शन करते हुए रथ को राघवो पर चलाओ; मैं आज उनका सहार करूँगा । यदि वे युद्ध में मरेंगे, तो सभी वानर तितर-वितर होकर भाग जायेंगे ।' रावण के आदेशानुसार सारथी ने रथ की नेमियो का भयावह रव करते हुए उसे राघवो के निकट चलाया । वंदी, मागध तथा सूत रावण की विपुल कीर्त्ति का गान करने लगे, राक्षस-सेना भीषण गर्जन करने लगी और निसान घोर रव करते हुए वजने लगे । तव दशकठ धनुष का भयकर टकार करते हुए वानर-सेना पर दारुण अस्त्र चलाने लगा। ब्रह्मा से

निर्मित उन बाणो के लगते ही समस्त वानर, अपना भुजबल खोकर पृथ्वी पर गिरने लगे। इतने में रघुराम ने अपने अनुज के साथ क्रोध से धनुष धारण किये हुए रावण का सामना किया। राम के धनुष का निनाद सुनते ही आकाश विदीर्ण-सा हो गया, समुद्र आलोडित हो गये, दिग्गजो के कान के परदे फट गये और राक्षसो के चित्त डोल उठे। क्रुद्ध दशकठ के धनुष से निकलनेवाले भयकर बाणो की ध्वनि सुनकर ही कितने वानर भयाक्रान्त हो पृथ्वी पर गिरने लगे। तब राम-लक्ष्मण सूर्य-चन्द्र की भाँति भासमान होते हुए युद्ध के लिए आगे बढे, तो देवताओ का शत्रु रावण राहु की भाँति शोभायमान होते हुए उनसे जूझ गया। जब लक्ष्मण ने दशकठ पर अत्यत तीव्र शर चलाये, तब दशकठ ने उन्हें कठोर बाणो से बीच में ही काट डाला और उनपर उग्र बाण चलाये। लक्ष्मण ने भी उसके एक-एक बाण को खडित करके उस पर तीन बाण एक साथ चलाये। तब रावण ने अपने तीन बाणो से उनके बाण खडित कर दिये। इसी प्रकार, जब लक्ष्मण दस बाण एक साथ चलाते, तब वह उन्हें अपने दस बाणो से छिन्न-भिन्न कर देता, सौ बाण चलाते तो वह अपने सौ बाणो से उन्हें चूर-चूर कर देता। इस प्रकार, सौमित्र को युद्ध-भूमि में तग करके उसके उपरात दनुजेश्वर राम से युद्ध करने चला। उसे देखकर सभी वानर इस प्रकार भागने लगे, मानो वे यम को देखकर भाग रहे हो। तब राम ने क्रोध से आँखें लाल किये हुए धनुष सँभालकर रावण का सामना किया। तब सभी देवता राम की प्रशंसा करने लगे और पृथ्वी हिल उठी। तब रावण भी क्रोध से तेवर बदलकर राम से भिड़ गया। राम तथा रावण भयकर अट्टहास करते हुए धनुष की टकार-ध्वनि से दसो दिशाओ को प्रतिध्वनित करते हुए, परस्पर ऐसे बाण चलाने लगे कि उनके चलाये बाण सारे आकाश में व्याप्त हो गये। उन बाणो के आपस में टकराने से भयकर ध्वनि के साथ निकलनेवाली अग्नि-ज्वालाओ से नभोमडल व्याप्त हो गया। वे एक दूसरे के धनुर्विद्या-कौशल की मन-ही-मन प्रशसा करते हुए, एक दूसरे की रण-कुशलता पर आश्चर्य करते हुए युद्ध करने लगे। इसी समय रावण ने भयकर तमिस्र-बाण चलाया, जिसके प्रभाव से सभी वानर अधकार से आच्छादित हो निश्चेष्ट हो गये। तब राम ने रोष-पूरित अरुण नेत्रो से एक सौ भयकर बाण चलाये, तो दशानन ने शक्तिशाली भालो से उन्हें काट दिया और राम पर पैने बाण चलाये। तब राम ने उसके बाणो को एक अर्द्धचन्द्र बाण का प्रयोग करके काट डाला और अनेक बाण ऐसी अनुपम गति से चलाये कि वे रावण के अगो को छेदकर दूसरी ओर निकल गये। तब रावण ने रौद्र बाण चलाया, तो राम ने भी रौद्र बाण छोड़ा। वे दोनो बाण अन्योन्य सघर्षण के पश्चात् पृथ्वी पर गिर पडे। तब दोनो ने क्रोध से परस्पर अनेक पैने बाण चलाये, जिनके आकाश में व्याप्त होने से अधकार-सा छा गया। टकार-रूपी गर्जनो से युक्त दोनो के धनुष-रूपी समुद्रो से निकलनेवाले शर-रूपी लहरें परस्पर टकराकर एक दूसरी को दबा देती थी। जब राक्षस ने भयंकर क्रोध से राम के वक्ष पर बाण-समूह चलाया, तब वे बाण नीलोत्पलो की पक्ति के समान राम के शरीर पर भासमान होने लगे। तब राम ने प्रचड बाणो का सधान करके उन्हें रावण पर ऐसे चलाया कि वे उसके कवच को पार करके वक्ष में चुभ गये।

रावण इससे अत्यंत व्याकुल हुआ और राम पर सर्प-बाण चलाये, तो राम ने उन्हें बीच में ही काट डाला। तब रावण ने शार्दूलमुख, उष्ट्रमुख, सूकरमुख, सर्पमुख, गजमुख, गृध्रमुख तथा सिंहमुखवाले कितने ही भयकर बाण राम पर चलाये, पर राम ने उनके टुकड़े कर दिये। उसके पश्चात् राम ने आग्नेयास्त्र चलाया, तो उसमें से उल्कामुख, विद्युन्मुख, ग्रहमुख, सूर्यमुख तथा अग्निमुख से युक्त बाण निकलकर रावण पर आघात करने के लिए पहुँचे। तब रावण ने आश्चर्य-चकित रीति से उन सबको काट डाला और मय से प्राप्त माया-शर का सधान करके उसे राम पर चलाया। उससे असंख्य भाले, तोमर, गदा, परिघ आदि शस्त्र निकल पड़े। यह देखकर राघव ने अपने महान् धनुष पर गांधर्व शर का सधान करके चलाया, तो उसमें से अनेक सूर्यबिंब-सदृश चक्र तथा दिव्य बाण ससार को त्रस्त करते हुए निकले और उन्होंने रावण के माया-शर से निकले हुए परिघ आदि शस्त्रों को चूर-चूर कर दिया। तब दशकठ ने क्रोध करके राम पर अनेक प्रखर बाण चलाये, तो राम ने भी शीघ्र गति से उस राक्षस पर असंख्य प्रतिशर चलाये। राम-रावण के शर-जाल से सारा आकाश ढक गया। तब लक्ष्मण ने सात बाणों से रावण की पताका को काट डाला, एक बाण से धनुष को तोड़ दिया एक और बाण से सारथी का वध किया और फिर रावण के वक्ष पर पाँच बाणों से प्रहार किया। इसी समय विभीषण ने इन्द्रनील पर्वत की भाँति दीखनेवाले रावण के अश्वों को मार गिराया। रथ से वंचित होने से रावण पृथ्वी पर कूद पड़ा और अपने दसों मुखों की भौंहों को तानकर क्रुद्ध दृष्टि से विभीषण पर भयकर शक्ति-बाण चलाया। किन्तु, रामानुज ने तीन बाणों से उसे बीच में ही गिरा दिया। उससे स्फुलिंग तथा ज्वालाएँ निकलकर आकाश तक व्याप्त हो गईं। तब दशकंठ अत्यत क्रोध करके, मय से प्राप्त शक्ति-बाण को विभीषण पर चलाने का यत्न कर ही रहा था कि लक्ष्मण ने कहा—'शरणागत की रक्षा करनेवाले धर्मात्मा क्या कभी शरणागत की मृत्यु सह सकते हैं? यों कहते हुए उन्होंने रावण के अनुज को अपने पीछे कर लिया और स्वय रावण पर क्रूर बाण चलाने लगे।

१२०. रावण की शक्ति से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना

तब रावण ने कहा—'हे लक्ष्मण, बड़े शूर की भाँति तुमने विभीषण को अपने पीछे छिपा लिया है। तब तुम स्वय ही इस शक्ति के प्रहार का सहन करो।' इस प्रकार कहते हुए उसने प्रलय-काल के आदित्य के परिवेश के सदृश, उस शक्ति को घोर वलय के रूप में घुमाकर, उसे लक्ष्मण पर चलाया। तब वह शक्ति अपनी किंकिणी तथा घटिकाओं का निनाद करते हुए, समुद्रों को आलोडित करते हुए, कुल-पर्वतों को हिलाते हुए, दिशाओं को कँपाते हुए, सूर्यबिंब को विचलित करते हुए, वज्रों को गिराते हुए, पृथ्वी को कपित करते हुए, आकाश को झकझोरते हुए, नक्षत्रों को तितर-बितर करते हुए, अग्नि-कणों को विकीर्ण करते हुए, ज्वालाओं को व्याप्त करते हुए, आदिशेष की जिह्वा का आकार धारण किये हुए, लक्ष्मण के द्वारा चलाये जानेवाले बाण-समूह को चूर-चूर करते हुए, लक्ष्मण के वक्ष पर भयकर गति से गड़ गई। राम कहने लगे कि इस भयकर अस्त्र से लक्ष्मण के प्राणों पर कोई विपत्ति नहीं आये। समस्त देवता यह देखकर आकाश में हाहाकार

करने लगे। शक्ति-बाण के लगते ही लक्ष्मण चकराकर पृथ्वी पर ऐसे गिर पड़े, जैसे प्रलय-काल में महामेरु पर्वत ढह जाता है।

धरती पर पड़े हुए अपने अनुज को देखकर, राम का हृदय शोकाग्नि से जलने लगा और आँखो से अश्रुपात होने लगा। लक्ष्मण के विशाल वक्ष में अच्छी तरह गड़े हुए उस शक्ति-बाण को निकालने के लिए सभी वानर-वीर यत्न करने लगे, किन्तु उनसे वह निकल नही सका। तब राम ने रावण के द्वारा चलाये जानेवाले बाण-समूह की उपेक्षा करते हुए, उस शक्ति बाण को लक्ष्मण के वक्ष से निकालकर फेंक दिया। उसके पश्चात् उन्होंने सभी वानर-वीरो को देखकर कहा—"हे वीरो, अपना शौर्य प्रदर्शित करने का यही समय है, शोक में पड़कर युद्ध से विमुख होने का समय नही है। अब तुम लोग लक्ष्मण की रक्षा करते रहो और मेरी यह प्रतिज्ञा सुन लो। मैं आज इस दुष्कर्मी दशकठ का सहार करके, उन सभी दु:खो को दूर करूँगा, जिन्हें मैने, राज्य छोड़ने, बधुजनो से अलग होने, वनो में भटकने, धनुष-बाण लिये हुए भी, अपनी प्राण-प्रिय धर्म-पत्नी को खोने तथा मायावी राक्षसो से युद्ध करने से प्राप्त किया था। समर-भूमि में इसका वध करने के लिए मैंने असमान विक्रमी वालि का सहार किया और कपिराज के रूप में सुग्रीव का अभिषेक किया। प्रचड ग्राह-सकुल तथा आकाश का स्पर्श करनेवाली तरगो से युक्त अनत सागर पर सेतु बाँधकर मैं कपि-सेना के साथ समुद्र को पार करके आया और लका को घेर लिया। यहाँ अब मैं अपने सौमित्र को खो बैठा हूँ। यदि युद्ध में रावण मेरे दृष्टि-पथ में आये, तो अपनी दृष्टि के विष से ही उसका अत कर दूँगा, जैसे क्रूर सर्प दुष्ट जतुओ को मार डालता है। अब मै दशकंठ को जीवित लौटने नही दूँगा, उसे मैं अपने बाण-समूह का लक्ष्य बना दूँगा। आज सभी वानर पर्वतो पर चढकर हमारे युद्ध का कौशल देखते रहें। आज सभी दिक्पाल तथा समस्त लोक मेरे धनुर्विद्या-कौशल को भली भाँति देख लें और युद्ध में मेरे पराक्रम को देखकर, मुझ रघुराम के विक्रम को जान लें। आज रावण भले ही देवलोक में छिप जाय, समुद्र के गर्भ में डूब जाय, पृथ्वी में समा जाय, और रसातल में प्रवेश कर जाय, तब भी मैं उसका सहार किये बिना नही छोड़ूँगा। यदि निश्चय ही मैंने रवि-कुल में जन्म लिया है, यदि मै रवि-समान तेजस्वी दशरथ का पुत्र हूँ, यदि मैं राम हूँ, यदि रावण युद्ध-क्षेत्र में डटा रहा, तो मैं किसी भी प्रकार उसका वध करूँगा। इस युद्ध-क्षेत्र में या तो रावण रहेगा या राम रहेगा। राम तथा रावण दोनो का यहाँ रहना अब असभव है।"

ऐसी प्रतिज्ञा करके राम ने दशकठ पर भीषण बाण चलाने लगे। दशकठ ने भी उनके बाणो के प्रतिबाण चलाये, तो उन बाणो के परस्पर टकराने से निकलनेवाली अग्नि-ज्वालाएँ आकाश तक व्याप्त हो गई और घोर ध्वनि होने लगी। इस ध्वनि के साथ धनुषो के टंकारो की ध्वनि मिलकर समस्त लोको को भयभीत करने लगी।

१२१. रावण का चिंतित होना

राम के बाणो के प्रहार से रावण जर्जर हो गया और उनके बाणो के वेग का सहन न कर सकने के कारण राक्षसेन्द्र, सिंह को देखकर भागनेवाले गजराज की भाँति,

युद्ध-भूमि को छोड़कर भागने लगा। तब उसके केश खुल गये, सुंदर रत्न-खचित आभूषण बिखरने लगे, समस्त भूत तालियाँ बजाकर अट्टहास करने लगे, और वानर हर्ष के निनाद प्रकट करने लगे। भागते समय उसके चरण-घात से पृथ्वी भी काँपने लगी।

इस प्रकार, लका में प्रविष्ट होकर वह अपने सभा-मंडप में आसीन हुआ। फिर, वह विभीषण के हितवचनो, राम के प्रहारो का तथा कुंभकर्ण, अतिकाय, महान् इंद्रजीत आदि वीरो की मृत्यु का स्मरण करके मन-ही-मन शोक-सतप्त हो निश्चेष्ट बैठा रहा। कुछ समय के उपरान्त वह सँभलकर अत पुर में पहुँचा और उद्विग्न हो, अपनी पत्नी को बुलाकर सिर झुकाये हुए कहने लगा—'हे प्रिये, राम के अद्वितीय विक्रम का वृत्तात सुनो। मैं कैसे कहूँ? वह देखो, मेरे समक्ष सहस्रो राम दीख रहे है। मै इस लका में जहाँ भी देखता हूँ, वहाँ राम-ही-राम मुझे दिखाई पडता है। अब विजय की कोई आशा नही है। अब शकर के चरण ही मेरे लिए शरण है। जिस देव के दिव्य तथा भयकर बाण के आघात से त्रिपुर भस्मीभूत हुए, जिनके मुकुट पर चन्द्रकला रमणीय गति से सुशोभित हो रही है, जिनके हाथो में पिनाक, खड्ग, त्रिशूल आदि विलसित है, जो अखिल लोक के ईश है, जिन्होने दक्ष-यज्ञ का विध्वस किया था, क्रुद्ध होकर जिन्होने अंधकासुर का सहार किया था, वेद जिस देव की स्तुति करते है, तथा जो देवादिदेव है, उस शिवजी की अब मै उपासना करूँगा।'

इस प्रकार निश्चय करके वह स्नान आदि से निवृत्त हुआ, ब्राह्मणो को विविध दान देकर उन्हें तृप्त किया तथा मद, दर्प आदि (राजस भावो का) त्याग कर सात्विक भाव ग्रहण किया। उसके पश्चात् उसने, रक्तावर, रक्त माल्य, रक्त उपवीत, रक्त चंदन तथा रक्तवर्ण की जपमाला आदि धारण की और फिर बडी भक्ति के साथ मत्र का जप करते हुए, शिव के मदिर में पहुँचा। वहाँ एकनिष्ठ हो उसने एक वेदी बनाई, दर्भांकुर आदि एकत्र किये। फिर सभी, दिशाओ में यज्ञ के रक्षणार्थ भयकर राक्षसो को नियुक्त किया और यज्ञ करने के लिए उद्यत हुआ। इसकी सूचना मिलते ही मदोदरी वहाँ आ पहुँची और दशकठ को देखकर कहने लगी—'हे दानवेन्द्र, क्या, आपको उचित है कि इस प्रकार दीन होकर अपना शौर्य खो बैठें। आपके क्रोध करने से सभी समुद्र गर्जन करने से डरते है, पवन चलने से डरता है, अग्निदेव तीव्र ज्वालाओ के साथ जलने से डरता है और आकाश में सूर्य प्रचड तेज से दीप्त होने से डरता है। आपके नाम से सारे जग विचलित होते है। ऐसे आप, अपना साहस खोकर ऐसी दशा को क्यो प्राप्त हुए? यदि आपमें इतना साहस नही था, तो उस दिन राम की पत्नी को क्यो ले आये? उस दिन मारीच ने जो हित-वचन आपसे कहे थे, उन्हें आपने बुरा मान लिया और नीति-विरुद्ध वचन कहे थे। नीति का विचार करके तथा आपके अहित की सभावना देखकर धर्मात्मा विभीषण ने बार-बार आपसे कहा था कि हे राक्षसेन्द्र, आप अनुचित मार्ग पर क्यो जा रहे है? सीता को छोड देने में ही आपका हित है। किंतु आपने उनके वचनो पर ध्यान नही दिया। मातामह माल्यवान् ने आपको नीति सुझाई, तो क्या आपने उसको स्वीकार किया? आपकी माता ने स्वय उचित कर्त्तव्य का आदेश दिया, तो क्या आपने उस पर

ध्यान दिया ? कुंभकर्ण ने जब कहा था कि राम से आप क्यों विरोध ठानते है, तो क्या आप क्रुद्ध नही हुए ? इस कार्य से विमुख होने का उपदेश जिन लोगो ने दिया था, उनके ही वचन आज सिद्ध हुए है न ? अपने भुजबल तथा पराक्रम को छोडकर आज आपने मुनि-वृत्ति क्यो स्वीकार की है ? इन्द्र से युद्ध करके भी आप परास्त नही हुए, अब आप रामचद्र को परास्त नही करेंगे, तो क्या लोग आपका उपहास नही करेंगे ? हे असुरेश्वर, आप युद्ध करके शत्रु पर विजय पाइए । दीन होकर आप यह सब क्या कर रहे है ?"

इस प्रकार जब मदोदरी ने रावण को उत्तेजित किया, तब रावण ने लज्जा से एक दीर्घ नि श्वास छोडा और कहा—'हे सुदरी, तुम्हारी बातें सत्य है । अब मै रामचन्द्र से नही डरूँगा । अब तुम जाओ ।' तब प्राणेश्वर को प्रणाम करके आँखो से अश्रु-वर्षा करती हुई वह चली गई । उसके कहे हुए दु खपूर्ण वचनो का स्मरण करके रावण ने हवन करना छोड दिया और युद्ध की तैयारी करने के लिए चला गया ।

१२२. लक्ष्मण की मूर्च्छा पर राम का शोक

युद्ध-भूमि में रक्त में भीगे, निश्चेष्ट पडे हुए शेषनाग के सदृश दीखनेवाले अपने प्रिय अनुज को देखकर रामचद्र अधीर होकर शोक करने लगे । वे कहने लगे—"सौमित्र को इस प्रकार पृथ्वी पर गिरे हुए देखकर मैं किस प्रकार अपने प्राणो को रोक सकता हूँ ? युद्ध करने की शक्ति मुझमें कैसे आयगी ? अपनी मुष्टि में धनुष कैसे धारण कर सकूँगा ? आँखो में आँसू उमड-उमडकर आते समय, बढ-बढकर आनेवाले शत्रुओ को मै कैसे देख सकूँगा ? मेरी आँखो के सामने मेरा सहोदर, मेरा प्रिय बधु, मेरा प्रिय सखा मेरे लिए प्राणो की बलि देकर मुझे छोडकर चला गया है । धिक्कार है, मेरे शौर्य को । मुझे अब इस युद्ध की आवश्यकता ही क्या है ? मुझे विजय ही किसलिए चाहिए ? मुझे अब राज्य की क्या आवश्यकता है ? मुझे अब सीता ही क्यो चाहिए ? मेरा यह शौर्य किस काम का ? मै अब जीवित ही क्यो रहूँ ? हे लक्ष्मण, तुम्हारे साथ मै भी स्वर्ग चलूँगा । हे बधु, विजयी होकर तुमने पहले शरभ-शार्दूलो से भरे हुए भयकर वनो में मेरी रक्षा करते रहे, अब यहाँ तुच्छ दैत्यो के वन के बीच मुझे पराया समझकर छोड दिया है । हे तात, अपनी उन्नत शक्ति से मेरी रक्षा करने के निमित्त वन में तुम एक क्षण भी नही सोये ? आज इस प्रकार दीर्घ निद्रा में सो जाना क्या तुम्हें उचित है ? मै बार-बार दु ख के आवेश से ऊँचे स्वर में तुम्हें पुकारता हूँ, फिर भी तुम बोलते क्यो नही हो ? अब मेरे लिए कौन है ? मै कहाँ जाऊँ । मै अत में शोकाग्नि के हाथो में पड गया हूँ । शुभलक्षण-सपन्न, सुन्दराकार, अद्वितीय बलवान्, परम भक्त तथा प्रिय सहोदर, गभीरचेता, युद्धविजयी मेरा प्राण-सखा लक्ष्मण मेरे साथ वनवास के लिए आया । अब मै इसी के साथ स्वर्ग जाऊँगा । कितने ही बधु हैं और कितनी ही पत्नियाँ है, किन्तु ऐसा सहोदर पृथ्वी में कहाँ मिलेगा ? यत्न करूँ, तो सीता की समता करनेवाली पत्नी को मै कहीं-न-कहीं प्राप्त कर सकता हूँ, पर ऐसे सद्गुणशील, दयालु तथा महाबली अनुज को मै कहाँ पाऊँगा । क्या, यह केवल मेरा अनुज था ? यह महाबली सतत मेरी सेवा करने-वाला भक्त भी था । यही मेरा पौरुष था, यही मेरी शांति था, यही मेरी कीर्ति था,

यही मेरी प्रेरणा था, यही मेरा शौर्य था, यही मेरा धैर्य तथा विनय था और यही मेरी विजय था। इतना ही क्यो, मेरे लिए भाग्य-देवता तथा मेरा पावन राज्य-पद भी यही था।"

इस प्रकार, जब राम शोक से अभिभूत हो प्रलाप कर रहे थे, तब सुषेण ने राम को देखकर कहा—'हे देव, आप इस प्रकार शोक क्यो करते हैं ? आप धैर्य धरकर इनकी ओर देखिए। यदि इनके शरीर में प्राण नही रहते, तो क्या, उनके मुख पर ऐसी आभा दिखाई देती ? या उनकी आँखें कमलो की सुदरता लिये रहती ? या उनकी सुदर हथेलियाँ लाल कमल की भाँति सुशोभित रहती ?'

इस प्रकार राम को आश्वासन देकर उसने उन्हें शात किया और हनुमान् को देखकर कहा—'इसके पहले जाबवान् के कहने से तुम ओषधियो का पता जानते ही हो। महाद्रोण पर्वत के, दक्षिण शिखर पर विशल्यकरणी, सौवर्णकरणी, सधानकरणी तथा सजीवकरणी ओषधियाँ अपनी काति से प्रकाशित रहती हैं। तुम शीघ्र इन चारो ओषधियो को ले आओ। उनकी सहायता से लक्ष्मण के प्राण लौट आयेंगे। पूर्वकाल में देवासुरो ने क्षीर-सागर का मथन करके जो अमृत प्राप्त किया था, उसे वही छिपा रखा है। उसी अमृत से इन ओषधी-लताओ ने जन्म लिया है। लवण-समुद्र को पार करके जाने के बाद कुशद्वीप मिलेगा, उसे पार करके आगे बढो, तो क्षीर-सागर मिलेगा। उसे भी पार कर जाओ, तो चद्र तथा द्रोण पर्वतो को देखोगे। वहाँ देवेन्द्र की आज्ञा से मदराचल की भाँति विशालकाय गधर्व उन ओषधियो की रक्षा करते रहते हैं। गधर्वो से तुम्हारा युद्ध होगा। वही राक्षस भी घूमते रहते हैं। वे बडे मायावी हैं, उनसे सावधान रहना। द्रोणाद्रि से उन ओषधियो को लाकर, लक्ष्मण के प्राणो को लौटाओ, जिससे रघुपति प्रसन्न हो। यहाँ से वह पर्वत तेईस लाख, बीस हजार दो सौ दस योजन दूर है। तुम वायु-वेग से जाकर सूर्योदय के पहले ही यहाँ लौट आओ। सूर्योदय हुआ, तो वे ओषधियाँ अपनी काति खोकर शक्तिहीन हो जायेंगी। उसके पश्चात् लक्ष्मण को मूर्च्छा से जगाना असभव होगा। इसलिए हे वानरोत्तम, तुम शीघ्र जाकर वापस आओ। उन ओषधियो के लक्षण भी तुम्हें जान लेना चाहिए। उनके फल हरे होगे, फूल लाल होगे और पत्ते सफेद होगे। तुम शीघ्र विभीषण, जाबवान्, सुग्रीव तथा अगद की अनुमति लेकर जाओ।'

सुषेण के इन वचनों को सुनकर हनुमान् ने कहा—'ऐसा ही हो।' तब पवनपुत्र को देखकर राम ने कहा—'मूर्च्छित पड़े हुए लक्ष्मण को प्राण-दान करके तुम त्रिभुवनो में अचल कीर्त्ति प्राप्त करो। मेरे तीन भाई हैं। हे अनिलकुमार, आज से तुम्हारे साथ मेरे चार भाई होगे।'

१२३. सजीवनी लाने के लिए हनुमान् का द्रोणाद्रि को जाना

राम की बातें सुनकर हनुमान् ने कहा—'हे सूर्यकुलतिलक, सेवक हनुमान् के रहते हुए आप चिता क्यो करते हैं ? हे राजन्, आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके शीघ्र ही सप्त द्वीपो के उस पार रहने पर भी ओषधियो के उस पर्वत को सूर्य के उदयाचल पर आने के पहले ही ले आऊँगा।' इस प्रकार कहते हुए उसने राम के चरणो पर गिरकर प्रणाम किया। तब राम ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया और कहा—'हे अजनि-

पुत्र, इन्द्र तुम्हारे सिर की, सूर्य तुम्हारे मुख की, चन्द्र तुम्हारे मन की, आदिशक्ति तुम्हारे नितंब की, पवन तुम्हारी पीठ की, शिव तुम्हारी पूँछ की, अग्नि तुम्हारे चरणो की, ब्रह्मा तुम्हारी बुद्धि की, वरुण तुम्हारी शक्ति की, सरस्वती तुम्हारी वाणी की, विष्णु तुम्हारे बाहुद्वय की तथा गणेश तुम्हारे उदर की रक्षा करते रहेंगे । तुम शीघ्र जाकर आओ ।' उसके पश्चात् क्रमश: सुग्रीव, विभीषण, जाबवान् तथा अगद आदि वानर-वीरो ने उसे विदा दी । तब हनुमान् आकाश की ओर ऐसे उछला कि जिस पर्वत पर चढकर वह उछला था, वह धँस गया और पृथ्वी विदीर्ण हो गई, पवन, समुद्र तथा आकाश-गगा व्याकुल-सी हो गई और लका नगर की ऊँची अट्टालिकाएँ गिर गईं । उसके पश्चात् वह विद्युत्-प्रकाश के समान उज्ज्वल काति से युक्त अपनी पूँछ को तथा अपने दोनो विशाल हाथो को ऊपर उठाये, सूर्य-मडल की भाँति प्रकाशमान होनेवाले अपने मुख से प्रचड दीप्ति विकीर्ण करते हुए, चरणो तथा कर्णो को कुचित करके उडने लगा । देखते-देखते वह अनेक पर्वतो, कई देशो, कई नद-नदियो, कई वनो, नगरो तथा समुद्रो को देखते हुए हिमाचल के पार निकल गया । दिशाओ तथा आकाश को कँपाते हुए वह एकाकी शूर आगे बढने लगा।

१२४. कालनेमि का वृत्तांत

गुप्तचरो के द्वारा रावण ने यह समाचार सुना, तो वह हनुमान् के मार्ग में विघ्न डालने का सकल्प करके स्वय अर्द्धरात्रि के समय कालनेमि के घर पहुँचा । कालनेमि ने अत्यत श्रद्धा से रावण को अर्घ्य, पाद्य आदि देकर उसका सत्कार किया और पूछा—'हे राजन्, अर्द्धरात्रि के समय आपके यहाँ पधारने का क्या कारण है, कृपया बताइए ।' तब रावण ने कहा—'आज मेरे शक्ति-बाण से आहत लक्ष्मण को पुनर्जीवित करने के उद्देश्य से राम की आज्ञा से हनुमान् संजीवकरणी लाने के लिए जा रहा है । तुम शीघ्र जाकर उस हनुमान् का वध कर डालो, या उसके मार्ग में कोई ऐसा विघ्न उपस्थित करो कि वह सूर्योदय के पूर्व यहाँ पहुँच नही सके । द्रोण पर्वत के पास ही देवासुरो से निर्मित एक सरोवर है । उसमें एक महान् मकरी बडे आनद से रहती है। वह देवताओ को भी निगल जाने की क्षमता रखती है, तब इस वानर की गिनती ही क्या है ? तुम कोई ऐसी माया रचो कि हनुमान् उस सरोवर में पहुँच जाय । तुम शीघ्र जाओ ।'

रावण की बातें सुनकर, मन-ही-मन नीति-मार्ग का विचार करके, उसने कहा—'हे दनुजेश, माया-मृग का रूप लेकर मारीच गया था और उसकी मृत्यु हुई । आप इस अनुचित मार्ग को त्याग दीजिए । घोर युद्ध में कुभकर्ण आदि दानव-वीर नष्ट हो चुके हैं । अब तो आप बात मानिए । राम के पास सीता को पहुँचा दीजिए और अपनी लंका विभीषण को देकर आप शिवजी के निवास कैलास पर्वत पर तपस्वी बनकर जीवन व्यतीत कीजिए या योद्धा के समान, युद्ध-भूमि में राम से युद्ध कीजिए और उनके हाथो से प्राण त्यागकर विष्णु-सायुज्य प्राप्त कीजिए ।"

कालनेमि के इस प्रकार कहते ही रावण की आँखें क्रोध से लाल हो गई और वह अपने चद्रहास को निकालकर उसका वध कर डालने के लिए उद्यत हुआ । यह देखकर, कालनेमि ने कहा—'हे देव, आपकी आज्ञा का पालन करने मैं अभी जाता हूँ ।'

सके बाद वह मनोवेग से द्रोण गिरि के निकट पहुँच गया और वहाँ अपनी माया से एक आश्रम का निर्माण किया । उस आश्रम में आम, पुन्नाग, चपक, पूगीफल, कटहल, चदन, जामुन, पाटली, बकुल, कदली, खर्जूर, कर्पूर आदि के सुदर वृक्ष थे । जहाँ-तहाँ ब्रह्मचारियो का वेद-पाठ हो रहा था और महनीय मणिदीप-मालिकाएँ जल रही थी । फल-फूल तथा लताएँ, होम-धूम से धूमिल हो रही थी । कलकठ शुक, नीलकठ शारिका तथा कलहसो के मधुर कूजन सर्वत्र सुनाई पड़ रहे थे । स्थान-स्थान पर हवन तथा स्वरयुक्त मत्रो का पठन हो रहा था । ऐसे माया-आश्रम में कालनेमि एक मुनि के समान कपट वेश धारण किये मन्द प्रकाश में आँखें बन्द करके जप-माला फिराते हुए बैठा था । आकाश-मार्ग से जाते हुए हनुमान् ने इस आश्रम को देखा और सोचने लगा कि मुनि का यह आश्रम कितना भव्य दीख रहा है ! उस दिन (जब मै यहाँ आया था) यह यहाँ नही था, आज यह कहाँ से आया ? कहाँ वह क्षीर-सागर, कहाँ वह मेरु पर्वत और कहाँ मुनियो का यह आश्रम ? कदाचित् मै मार्ग खो गया हूँ । मै इस मुनि से मार्ग जान लूँगा । यो सोचकर वह आकाश से पृथ्वी पर उतर आया । वन के पके हुए फल देखकर उसके मुँह में पानी भर आया, किन्तु मुनि-शाप के भय से विना उनको छुए ही मुनि के समक्ष पहुँच गया और हाथ जोड़कर बोला—'हे मुनिनाथ, महाराज राम के आदेश से मै क्षीर-सागर के पास जा रहा हूँ । मेरा नाम हनुमान् है । मुझे अत्यधिक प्यास लग रही है, क्या यहाँ कही जल मिल सकता है ?' तब उस कपटमुनि ने मदहास करते हुए कहा—'हमारे कमडलु का जल पीकर तुम अपनी प्यास बुझा लो । ये फल लो, इन्हें खाकर इस रात को यही आराम करो । हे वानरोत्तम, मै अपने मन में भूत तथा भविष्य की सभी बातें जानता हूँ । राम को धोखा देकर रावण उनकी पत्नी सीता को ले गया है । राम ने सहज ही वालि का वध करके लवण-समुद्र में सेतु को बाँधा और वानर-सेना के साथ लका को घेरे हुए है । उन्होने कुभकर्ण आदि राक्षसों तथा इन्द्रजीत का सहार किया है । पुत्र-शोक से क्रुद्ध रावण ने भय से प्राप्त शक्ति-वाण सुमित्रा के पुत्र पर चलाया, तो लक्ष्मण मूर्च्छित हो गिर पडे । उस लक्ष्मण को जीवित करने के निमित्त ओषधियाँ ले जाने को तुम आये हो । अबतक तुम वायु-वेग से एक सहस्र योजन का मार्ग तय करके आये हो । कोई अधर्मी मुझे देख नही सकता । तुम मुझे देख पाये, इससे मुझे निश्चय हो गया है कि तुम उत्तम व्यक्ति हो । जगत् के कल्याण के लिए राम ने जन्म लिया है, इसलिए हमें भी राम का कार्य सपन्न करना चाहिए । मै तुम्हें ऐसे दिव्य मत्र दूँगा, जिनसे तुम्हें दिव्य ओषधि दिखाई पडे । प्रातःकाल के सूर्य का दर्शन करते ही शक्ति से सपन्न होनेवाली संजीवनी आदि कितनी ही ओषधियाँ हमारे इस वन में है । उनमें से जो ओषधि चाहिए, उसे तुम लका ले जाओ । मेरे मत्रो की शक्ति से तुम पलक मारने की देर में (लका) पहुँच जाओगे ।'

तब उस कपटमुनि को देखकर हनुमान् ने कहा—'हे तपस्वी । जब लक्ष्मण बुरी दशा में वहाँ पडे हुए हैं, तब क्या मुझे उचित है कि मै यहाँ सुख से सो जाऊँ ? हे स्वामिन्, अपने प्रभु की कार्य-सिद्धि के रूप में लक्ष्मण को प्राप्त करने के पहले मैं इन फलो

का ग्रहण कैसे कर सकता हूँ ? मेरी प्यास थोडे-से जल से नही बुझेगी । क्या यहाँ कोई सरोवर नही है ?' तब उस कपट-मुनि ने कहा—'यहाँ से समीप में ही एक दिव्य सरोवर है। यदि तुम उस सरोवर में आँखें बन्द करके उसके अमृत-सम निर्मल जल का पान करोगे, तो तुम्हारा शरीर दिव्य हो जायगा और दिव्य ओषधि तुम्हें तुरन्त दिखाई पडेगी।' इतना कहकर हनुमान् को मार्ग बताने के लिए उस कपटमुनि ने शिष्यो को भेजा ।

हनुमान् कपटमुनि के शिष्यो की सहायता से उस सरोवर के पास पहुँचा । उस सरोवर के तट पर आम, मदार, माधवी, बकुल, सागवान, कुटज, चन्दन, साल, नीम, अर्जुन, अशोक, निंबु, कदम्ब, तमाल आदि के वृक्ष सुशोभित थे । सरोवर में सुन्दर तथा कोमल कमल, कल्हार तथा विमल कैरव विलसित थे । कही कलहस कल-कूजन करते हुए विलासपूर्ण गति से परस्पर कौतुक करते हुए विहार कर रहे थे, कही हस की चोचो का स्पर्श करनेवाले बक, क्रौंच तथा कारण्डव पक्षियो का समूह विचरण कर रहा था। किसी स्थान पर कैरव-मुकुलो के अग्र-भाग पर भ्रमर झुड-के-झुड अचल बैठे हुए मधुपान कर रहे थे और किसी स्थान पर भ्रमर-समूह मकरन्द-पान करने के निमित्त आया हुआ था, किन्तु कमलिनियो के विकसित न होने के कारण गायको की तरह उसके चारो ओर मँडराते हुए फिर रहे थे । तोते की चोचो से चीरे जाने से फलो का रस, पत्तो से होकर लाल कमलिनियो पर ऐसे झर रहा था, मानो सरोवर के तट पर स्थित आम के वृक्ष शिव से (वसन्त के मित्र) कामदेव को फिर प्राप्त करने के उद्देश्य से अग्नियो में घी की आहुति दे रहे हो । दूसरे स्थान में लाल कमलिनियो में झरनेवाला फलो का रस पान करके मधुप आकाश की ओर ऐसे उड रहे थे, मानो होमकुड से धुआँ उड रहा हो । वह सरोवर ऐसा दीख रहा था कि मानो कमलपत्र-रूपी थालियो में हिम-शीकर-रूपी अक्षत रखे हुए, उत्फुल्ल कुवलयो के लोचनो से, हनुमान् के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा हो। उस सरोवर को देखकर हनुमान् अत्यधिक हर्षित हुआ और आँखें बन्द करके उस सरोवर में उतर गया और अत्यधिक प्यास के कारण जल का पान करने लगा ।

१२५. मकरी का हनुमान् को निगल जाना

संसार-रूपी सागर में विषय-रस को बडे चाव से पीनेवाले तृषित व्यक्ति को संसार की माया जसे निगल जाती है, वैसे ही उस सरोवर से उस समय एक विशालकाय मकरी निकली और उसने हनुमान् के चरणो को कसकर पकड लिया। हनुमान् ने अपने चरणो को खींच लेने का उद्धत शक्ति से प्रयत्न किया, किन्तु छुडा न सका । तब वह बडे धैर्य के साथ खड़े होकर देखने लगा कि वह क्या है ? ध्यान से देखने पर उसे मालूम हुआ कि वह एक विशालकाय मकरी है । तब उसका क्रोध दुगुना हो गया और उसने भयंकर रूप धारण करके रघुराम की विजय का आधारभूत अपनी पूँछ उठाकर दुर्वार गति से उस मकरी के दाँतो पर प्रहार करके उन्हें गिरा दिया, मानो रावण की भोग-लालसा से सचित पापो को ही झटका देकर गिरा दिया हो, किन्तु वह मकरी हनुमान् को निगल जाने का उपक्रम करने लगी, मानो वह ससत् मुनि के शाप-रूप रोग से मुक्त होने के लिए (हनुमान्-रूपी) ओषधि को खाना चाहती हो । तब वायुपुत्र सोचने लगा—'हाय, राम के कार्य में

विघ्न पड गया । कदाचित् मैं यहाँ इस प्रकार मर जाऊँगा । हाय, अब क्या उपाय है ?' फिर, हनुमान् ने यह निश्चय करके कि इसके पेट में पहुँचकर मैं इसका वध कर डालूँगा, मकरी को अपना शरीर निगलने दिया । निदान वह भुजबली अंधकूप के सदृश दीखनेवाले उस मकरी के उदर में पहुँच गया । वह मकरी बडी प्रसन्नता से जल के मध्य-भाग में चली गई । तब हनुमान् भयकर क्रोध से उस मकरी की आँतो तथा नसो को ऐंठने और तोड़ने लगा और विषग्रास की भाँति उस महा मकरी के उदर में अविराम गति से जहाँ-तहाँ घूमते हुए अग्नि की भाँति उसका उदर जलाने लगा । तब वह मकरी धैर्य खोकर प्यास की तीव्रता का सहन नही कर सकने के कारण अपने सूखे हुए मुख-गह्वर को खोलकर पड रही । तब क्रूर नक्र, ग्राह आदि से युक्त जल-प्रवाह हनुमान् पर गिरने लगा ।* तब वायुपुत्र काटी हुई आँतो का पिंड बनाकर बाहर ले आया और शीघ्र उसका गला घोट दिया । मकरी ने भी यह सोचकर कि यह आहार पचाने-योग्य नही है, अवश हो पडी रही । तब हनुमान् ने उसे तट पर घसीटकर उसको चीर डाला । उस समय उस मकरी के रक्त से युक्त वह सरोवर प्रलय-काल में भयकर वडवानल की ज्वालाओ से युक्त समुद्र के समान लाल दीखने लगा ।

तब वह मकरी देव-स्त्री का रूप धरकर अपनी चचलता छोडकर, स्थिरता के साथ बादलो में प्रकाशित होनेवाली बिजली की भाँति विमान में बैठी आकाश-मार्ग में दिखाई पडी । पवन-पुत्र के पुण्य प्रताप से शापमुक्त हो वह अत्यन्त हर्षित हुई और वह देव-स्त्री हनुमान् को देख कर बोली—'हे कपिकुजर, हे वानरेन्द्र, मैं तुम्हारे कारण आज शापमुक्त हुई । मैं अभी इन्द्रलोक में जा रही हूँ । जाने से पहले मैं तुम्हें एक बात बतलाना चाहती हूँ ।' इतना कहकर हनुमान् को सरोवर के निकट भेजनेवाले उस कपट-तपस्वी को दिखाकर बोली—'हे कपिश्रेष्ठ, यह कोई मुनि नही है । इस पर विश्वास मत करो । यह एक राक्षस है और दानवेन्द्र के आदेश से तुम्हें मारने के लिए यहाँ आया है । मेरे इस सरोवर में रहने की बात जानकर मुझसे तुम्हें मरवाने के लिए ही यहाँ भेजा । यह वध्य है । इस पर विश्वास मत करो । वह यहाँ रहने योग्य नही है । अत., तुम शीघ्र इसका सहार करके ओषधियो को प्राप्त करने के लिए जाओ । द्रोणाद्रि पहुँचने का मार्ग यही है ।'

१२६. धान्यमालिनी का वृत्तांत

देव-रमणी की बातें सुनकर हनुमान् को आश्चर्य हुआ । उसने उस रमणी को देखकर कहा—'हे सुन्दरी, पहले तुम मकरी कैसे हुई और फिर अब देव-कांता कैसे बनी ?' तब वह कहने लगी—"हे वीरवर, हे पावनचरित, हे कनकाद्रिसम धीर, मैं धान्यमालिनी नामक गंधर्व-कन्या हूँ । मैं अपना पूर्व-वृत्तात सुनाता हूँ, सुनो । अखिल लोक के आराध्य सदाशिव जब रजताद्रि पर गोष्ठी में बैठे थे, तब मैंने अपनी नृत्य तथा संगीत-कला का प्रदर्शन करके उनको प्रसन्न किया और उनसे एक अनुपम विमान प्राप्त किया । उस विमान में बैठकर मैं प्रतिदिन इस सरोवर में जलक्रीडा करने आने लगी । एक दिन की बात है कि शाण्डिल्य

*विशाल मकरी के मुँह खोलने से उसके मुख से होकर मीन, ग्राह आदि के साथ सरोवर का जल उसके शरीर के अन्दर बहने लगा ।—ले०

नामक मुनि यहाँ आये और बडी आसक्ति से मुझे देखते हुए मन-ही-मन महान् आनन्द का अनुभव करने लगे। फिर भोग की लालसा से प्रेरित तथा काम-पीड़ा से अभिभत हो, इसका भी विचार किये विना कि कहाँ मेरे जैसा तपोधन तथा पुण्यात्मा मुनि और कहाँ यह सुन्दरी, मुझ पर अनुरक्त हो गये और निर्लज्ज हो, लोलुप दृष्टि से मुझे देखने लगे। यह देखकर मैंने उनसे कहा—'हे मुनीन्द्र, कहाँ आप, कहाँ मैं और कहाँ आपकी यह लोलुप दृष्टि ? आप तपस्वी तथा पुण्यात्मा है, आपका यह कार्य आपके तप में विघ्न डालनेवाला है।' तव मुनि कामातुर हो, तपस्या का पवित्र सकल्प त्याग कर कहने लगे—'हे सुन्दरी, यही मेरी तपस्या और पुण्य का फल है, यही मेरे लिए स्वर्ग का सोपान है, यही मेरे लिए मोक्ष का साधन है!' तव मैंने उनसे कहा—'हे मुनि, मैं अभी रजस्वला हूँ, अत. आपको मेरा स्पर्श नही करना चाहिए। इन दिनो मैं आपके ही घर में रहूँगी। स्नान तथा शुद्धि के पश्चात् आप मुझे प्राप्त कर सकते है।' इस प्रकार, मुनि को समझा-कर मैं उस मुनि के साथ गधमादन को गई और मुनि के घर में ही निष्ठा से रहने लगी। उस दिन रात को रावण सभी दिशाओ पर विजय प्राप्त करके अपनी सेना के साथ उस पर्वत पर ठहरा। जव मैं पर्वत-शिखर पर गाने लगी, तव मेरा गाना सुनकर रावण मेरे पास आया और अपना प्रताप, अपना सौन्दर्य, अपनी महत्ता तथा अपना नाम वताकर मुझे प्रलोभन देने लगा कि 'हे सुन्दरी, तुम अपने रूप-यौवन तथा विलास के साथ मेरा आलिंगन करो।' मैंने कहा—'मैं विवश हूँ, अत तुमको मेरा स्पर्श नही करना चाहिए।' तव उस राक्षस ने कहा—'हे सुन्दरी, मेरे लिए रजस्वला स्त्रियाँ तथा परस्त्रियाँ अधिक प्रिय हैं, अत. तुम मुझे मत ठुकराओ।' इस प्रकार मुझे अपने प्रिय वचनों से प्रसन्न करके उसने मेरे साथ रति-क्रीडा की। इससे अतिकाय का जन्म हुआ। मैंने उस पुत्र को दानवेन्द्र को सौंप दिया। तीन दिन के पश्चात् शुद्धि-स्नान आदि से निवृत्त होकर मैं मुनीश्वर के समक्ष जाकर खड़ी हो गई। तव उस मुनि ने मुझे देखकर कहा—'मेरे घर में रहती हुई, तुम मुझे धोखा देकर किसके साथ प्रीति से रति क्रीडा में प्रवृत्त हुई थी ? हे तन्वी, तुम्हारे यौवन का उपभोग किसने किया ? तुमने विना सोचे-समझे ऐसा क्यो किया ? यदि विवेक के साथ विचार किया जाय, तो तुम्हारी यह करतूत स्त्री-सुलभ ही प्रतीत होती है। परहित कहाँ और युवतियाँ कहाँ ? शीलाचरण कहाँ और सुदरियाँ कहाँ ? कमललोचनियाँ कहाँ और सत्य कहाँ ? कामिनियाँ कहाँ और करुणा कहाँ ? (काश,—दोनो वातें एक साथ ही देखी जाती ?) इस प्रकार कहते हुए उस मुनि ने अत्यधिक क्रोध से निर्दय हो मुझे घोर शाप दिया—'तुम अपने विलास को खोकर इस सरोवर में मकरी वनकर रहो। जिसने तुम्हारे साथ रति-क्रीडा की, वह तुम्हारे इस पाप से अपने पुत्र, मित्र तथा सेना के साथ भस्म हो जायगा।'

"मुनि का यह घोर शाप सुनकर मैं विचलित हो उठी और उस पुण्यात्मा के समक्ष हाथ जोडकर कहने लगी—'हे मुनिश्रेष्ठ, मैं इस शाप-रूपी समुद्र को किस नौका की सहायता से पार कर सकूँगी ? इस शाप-रूपी दावानल को मैं किस जल से वुझा सकूँगी ? हे दयालु, मुझ पर दया दिखाइए।' भयाक्रान्त हो, इस प्रकार आर्त्तनाद करनेवाली मुझे देखकर

ज्ञान-दृष्टि से अनुमान करके, उस कृपानिधान ने कहा—'हे सुन्दरी कुछ समय के पश्चात् हनुमान् राम के कार्यार्थ यहाँ आनेवाला है। उसके द्वारा तुम्हारे शाप की मुक्ति होगी।' इतना कहकर वह मुनि गगा नदी के तट पर चले गये। आज मैं शाप-मुक्त हो गई हूँ। अत मैं जा रही हूँ।" यो कहती हुई वह कमलाक्षी हनुमान् को आशीर्वाद देकर वहाँ से स्वर्ग चली गई।

१२७. कालनेमि का वध

हनुमान् वहाँ से सीधे कालनेमि के सामने उपस्थित हुआ। उस समय वह पापी, अचल समाधि में निमग्न रहनेवाले (मुनि) की भाँति कुभक-क्रिया के द्वारा अपने वक्षस्थल को फुलाकर मुख को किंचित् भुकाकर, ध्यान-मग्न रहनेवाले की भाँति आँखें बद किये हुए जप-माला को फेरते हुए जप करनेवाले की भाँति ओठ हिलाते हुए वैठा था। हनुमान् के आते ही उसने आँखें खोलकर, हनुमान् से कहा—'सरोवर निकट ही तो है ? तुमने इतना विलब क्यो किया ? देखो कितनी रात वीत गई है। यदि तुम मत्रोपदेश ग्रहण करने की इच्छा रखते हो, तो क्या गुरु-पूजा की व्यवस्था कुछ करोगे ?'

तव पवनपुत्र ने कहा—'लो, अब तुम्हारे लिए यही गुरु-पूजा है।' यो कहकर उसने अपनी कठोर मुष्टि से उस राक्षस के बाहुमध्य में प्रहार किया। तुरन्त उस दैत्य ने अपना वह रूप छोड़कर एक पक्षी का रूप ले लिया और हनुमान् पर आक्रमण किया। उसके आक्रमण करते ही हनुमान् ने उसे कसकर पकड लिया और उसके दोनो पखो को तोड़कर फेंक दिया। तुरन्त उस राक्षस ने वह रूप भी त्याग दिया और अपनी माया से एक गभीर सिंह का रूप धारण किया और आकाश की ओर भयकर दृष्टि को दिखाते हुए गर्जन करके हनुमान् को धमकाने लगा। किन्तु, हनुमान् निर्भीक हो अपनी मुष्टि से उस कालनेमि के सिर पर ऐसा प्रहार किया कि उसका सिर फट गया। तुरन्त वह राक्षस सिंह का रूप भी छोड़कर सुग्रीव के रूप में आया और कहने लगा—'हे पवनपुत्र, यहाँ क्या कर रहे हो ? चलो, लक्ष्मण के प्राण लौट आये हैं। अब तुम्हें द्रोणाचल जाने की आवश्यकता नही है। अब हमें ओषधि नही चाहिए।' पहले हनुमान् को भ्रम हुआ कि वह सुग्रीव ही है, किन्तु ध्यानपूर्वक देखने के पश्चात् निश्चय कर लिया कि वह सुग्रीव नही है। तव अत्यन्त क्रोध से उसके वक्ष पर ऐसा प्रहार किया कि वह राक्षस मूर्च्छित होकर गिर पडा, किन्तु शीघ्र ही वह दानव सँभल गया और शतशृगी होकर धनुष से पैने शर चलाकर हनुमान् को कष्ट पहुँचाने लगा। तव हनुमान् ने भी अपनी मुष्टियो तथा चरणो के आघात से उसकी सारी शक्ति शिथिल कर दी और उसे आकाश से पृथ्वी की ओर खीच लिया। उसके पश्चात् उसने राक्षस का सिर ऐंठकर उसे धड़ से अलग करके पृथ्वी पर ऐसा फेंक दिया, जैसे मत्त गज मृणाल को तोडकर फेंक देता है। उसके वाद विजय-गर्व से सिंहनाद करते हुए हनुमान् तुरन्त द्रोणाचल पर पहुँच गया।

द्रोणाचल पर पहुँचकर हनुमान् अनेक दिव्य लताओ की आभा से तथा निर्मल मणिसमूह की कातिवाले दीप-वृक्षो की दीप्ति से भासमान उस पर्वत पर घूम-घूमकर दिव्य ओषधियो का अन्वेषण करने लगा। वह किसी लता को देखकर 'यही वह सुगधि है, यही

वह लता है,' ऐसा विचार करके उसके पास पहुँचता, तो वह लता छिप जाती । यह देखकर हनुमान् मन-ही-मन दुखी हो कहने लगा—'हे पर्वतेश्वर, हे पर्वतराज, हे पुण्यात्मा, अनघ रघुराम की आज्ञा से दिव्य ओषधि ले जाने के निमित्त मैं आया हूँ। हे नगराज, जो कार्य समस्त लोको के हित में है, उसको सपन्न करने के लिए आये हुए मुझे आप क्यो इस प्रकार धोखा दे रहे है ? आप शीघ्र अपने पास रहनेवाली ओषधि-लताओ को प्रकट कीजिए। मुझे शीघ्र जाना है । हे ओषधि-लताओ, यह कार्य लोक-हितार्थ है। अत, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप अपनी सुन्दर आकृति दिखाइए।' इस प्रकार प्रार्थना करने पर भी वे लताएँ अपने रूप छिपाये रही । तब हनुमान् ने फिर कहा—'हे नगकुलतिलक, मेरे आगमन को देखकर आपने मेरा उचित सत्कार नही किया, यह उचित नही है ।'

कई वार विनम्र प्रार्थना करने पर भी जब उस पर्वत ने दिव्य ओषधि-लताओ को नही दिखाया, तब हनुमान् अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और कहने लगा—'हे नगकुलाधम, मेरे इतनी प्रार्थना करने भी तुम्हारा मन मेरी ओर द्रवीभूत नही हुआ । भला, गुणहीन तथा कठोर पत्थर में दया कैसे उत्पन्न होगी ?'

इतना कहते-कहते हनुमान् की क्रोधाग्नि की ज्वालाएँ उनके रोम-रोम में व्याप्त हो गईं । तुरन्त उसने दस योजन विशाल तथा दस योजन ऊँचा रहनेवाले उस भयकर पर्वत को सहज ही उखाड लिया, मानो यह बता रहा हो कि मै राम का सामना करनेवाले रावण-रूपी पर्वत को भी इसी प्रकार उखाड डालूँगा । उस समय सारी पृथ्वी हिल उठी और आकाश काँपने लगा ।

इन्द्र के आदेश से उस पर्वत की रक्षा करनेवाले अग्नि-सम तेजस्वी चित्रसेन आदि तेरह करोड गधर्व अपने बल तथा शौर्य का प्रदर्शन करते हुए हनुमान् से कहने लगे—'यह देवगण का निवास है । यह मेरु-तुल्य पर्वत है और यह जगत् का जीवन है । इसे तुम मत ले जाओ । तुम इसे नही ले जा सकोगे । इसलिए इसे यही छोड जाओ । यदि नही मानोगे, तो तुम्हारे प्राण नही बचेंगे ।' तब युद्ध में यम की भाँति भयकर दीखनेवाले हनुमान् ने क्रुद्ध होकर उनकी ओर देखा और उन्हें अपनी पूँछ-रूपी पाश से बाँधकर, तेजी से घुमाया और कुछ लोगो को समुद्र में फेंक दिया, कुछ लोगो को मार डाला और कुछ लोगो को पृथ्वी पर पटककर नष्ट कर दिया । उस महावीर की उद्धत शक्ति देखकर गधर्वों ने सोचा कि उसको पराजित करना असभव है । अत', दीन होकर उन्होने हनुमान् के समक्ष बडी भक्ति के साथ हाथ जोडकर कहा—'हे कपिकुजर, हे वानरेन्द्र, आप इस पर्वत को ले जाइए।' इस प्रकार कहते हुए गधर्व-वीर आशीर्वाद देकर चले गये, तब पवनपुत्र उस पर्वत को उठाकर आकाश की ओर उडा और अपने भयकर वेग से भूचर तथा खेचर को आश्चर्य-चकित करते हुए जाने लगा ।

१२८. भरत का स्वप्न

उसी दिन अर्द्धरात्रि के समय भरत ने स्वप्न में देखा कि राम तथा लक्ष्मण रण-भूमि में सिर पर तैल लगाये हुए, क्लान्त शरीर तथा वलहीन हो, पक के मध्य में पड़े छटपटाते हुए रुदन कर रहे है । यह देखकर भरत चौककर जाग पड़े और अपने

दु:स्वप्न के कारण व्याकुल होते हुए घर से बाहर निकल आये । वे बार-बार स्वप्न में देखी हुई राम-लक्ष्मण की दशा की कल्पना करके व्याकुल होते रहे । साथ-ही-साथ, उसी समय उन्होने कई और दु शकुन देखे, तो वे और भी भयभीत हो सोचने लगे, यह कैसा पाप है ? कैसा अपशकुन है ? न जाने भविष्य में क्या होनेवाला है ? न जाने वन में राम तथा लक्ष्मण को क्या हो गया है ? न जाने, जानकी की क्या दशा हुई ? चौदह वर्ष पूरे होने को है, किन्तु उनका कोई समाचार नही मिल रहा है । सत्यनिष्ठ, उदार, सदाचारी, कृतार्थ, उन लोगो के लिए मैं अपना सारा पुण्य अर्पण करता हूँ, जिससे उनपर कोई विपत्ति न आये ।

इस प्रकार सोचकर भरत ने तुरन्त वेदनिष्ठ ब्राह्मणो को बुलाया और वेदविधि से सब प्रकार के दान-धर्म आदि करके, हवन आदि के द्वारा शान्ति-कर्म कराया ।

उसी समय हनुमान् आकाश-मार्ग से चचल बाल-सूर्य की भाँति, नदीग्राम के ऊपर होकर जाते हुए, जटाभार एव वल्कल धारण किये हुए, राम के समान दिखाई पड़नेवाले, घनश्याम वर्णवाले सूर्यवशज भरत को देखकर अत्यन्त आश्चर्य-चकित हो सोचने लगे—'क्या सौमित्र की मृत्यु हो जाने से सीता को भी तजकर रामचन्द्र अकेले यहाँ आ गये है?, क्या मैं इनसे पूछकर जान लूँ ?' फिर, वह कपिकुलोत्तम हनुमान् (भरत से) न पूछने का निश्चय करके मन-ही-मन सोचने लगा—'रघुराम शरणागतरक्षक, सद्धर्मनिरत तथा श्रेष्ठ बलशाली है । क्या, वे अपने सत्य तथा यश की उपेक्षा करके अपनी धर्मपत्नी तथा अनुज को त्याग कर सुग्रीव आदि वानर-वीरो को युद्ध-क्षेत्र में ही छोड रावण को सजीव छोडकर अकेले यहाँ आयेंगे ? ऐसा कभी नही हो सकता । एक साधारण मनुष्य की भाँति सोचकर मैंने राम के प्रति अपराध किया है । कदाचित् राम से मिलता-जुलता कोई और तपस्वी यहाँ रहता होगा ।' इस प्रकार सोचते हुए हनुमान् शीघ्रगति से लंका के मार्ग में जाने लगे ।

उसी समय भरत आकाश-मार्ग से जानेवाले हनुमान् को देखकर सोचने लगे—'न जाने क्यो यह दुष्ट-ग्रह यहाँ दिखाई पड रहा है। इसे अपने भयकर बाणो से नीचा गिराना चाहिए ।' ऐसा निश्चय करके शक्तिशाली धनुष-बाण हाथ में लेकर वे बाण चलाने का उपक्रम करने लगे । उसी समय आकाशवाणी हुई—'हे अनघ, तुम इसके प्रति मित्र-भाव रखो, यह तुम्हारा हित है, इस पर तुम क्रोध मत करो ।' इस आकाशवाणी को सुन-कर भरत ने धनुष-बाण नीचे डाल दिया ।

१२९. हनुमान् का माल्यवान् से युद्ध करना

निदान हनुमान् समुद्र के निकट पहुँच गया। इतने में रावण की आज्ञा से माल्यवान् ने अपने दस करोड़ महाबली तथा पराक्रमी राक्षस-सैनिको के साथ आकर हनुमान् का मार्ग रोका । हनुमान् ने द्रोण पर्वत को सावधानी से थामे हुए, उन राक्षसो का सामना किया । राक्षस-वीर भी बड़ी भयकर गति से हनुमान् से भिड गये और परशु, तोमर, चक्र, शूल, करवाल एव मुद्गर आदि अस्त्र चलाते हुए हनुमान् को मारने लगे । किन्तु, अनुपम विक्रमी पवनकुमार ने उनके प्रहारो की परवाह किये बिना, अपनी भयंकर पूँछ से राक्षस-

वीरो को बाँधकर समुद्र में फेंक दिया, उसने कुछ राक्षसो को पद-प्रहार से मार डाला, कुछ वीरो को अपने भयकर गर्जन से मार डाला, कुछ राक्षसो का अपनी पूँछ से संहार किया और अपनी दृष्टि-मात्र से कुछ राक्षसो का वध कर दिया। कुछ राक्षसो को उसने नीचे गिरा दिया, कुछ राक्षसो को दबा दिया और कुछ को चीर डाला।

तब माल्यवान् क्रोधोन्मत्त होकर यम के समान भयकर रूप धारण किये हुए हनुमान् पर शर-वृष्टि करने लगा। किन्तु, हनुमान् ने उन बाणो को अपनी पूँछ से ही तोड डाला और क्रोध से उसके धनुष को खड-खड कर दिया। फिर, उसने अपनी पूँछ से माल्यवान के पैरो को बाँधकर ऊपर उठाया और पृथ्वी पर पटक दिया। तब माल्यवान् ने हनुमान् पर अपना शूल चलाया। उसकी भी उपेक्षा करके खडे हुए हनुमान् को देखकर उस राक्षस ने अपनी शक्ति से उसके वक्ष पर भयकर प्रहार किया। इस आघात से हनुमान् के वक्ष से रक्त की धारा बहने लगी। हनुमान् थोडी देर तक मौन खड़ा रहा, और फिर अत्यधिक रोष से उस राक्षस के सिर पर भयकर पद-प्रहार करके आकाश में जाकर उड गया। इससे राक्षस का सिर फूट गया और उससे रक्त की धारा बहने लगी। माल्यवान् इस भयकर प्रहार से थोडी देर तक मूर्च्छित पडा रहा, किन्तु शीघ्र ही सचेत होकर उसने हनुमान् पर अपनी गदा फेंकते हुए कहा—'युद्ध में यही गदा तुम्हारा अन्त कर देगी।' उस गदा के लगने से भयकर ज्वालाएँ निकल पडी। यह देखकर माल्यवान् ने कहा—'हे वानर, इस पर्वत को समुद्र में फेंककर जाओ, तो मै तुम्हारा वध नही करूँगा। पूर्वकाल में समुद्र के मध्य में गरुड पर आरूढ हो विष्णु स्वय मुझसे युद्ध करने आया था और मुझे अजेय जानकर लौट गया था। मेरा प्रताप सारा ससार जानता है, तुम मुझसे युद्ध नही कर सकते।'

तब हनुमान् ने माल्यवान् को देखकर क्रोध से कहा—'हे वृद्ध राक्षस, मेरे प्रताप से भीत हुए बिना तुम मुझसे युद्ध करने चले हो? तुम्हारी शक्ति ही कितनी है?' हनुमान् के इन दर्प-पूर्ण वचनो को सुनकर माल्यवान् का क्रोध और भी बढ़ गया। उसने अपने भयकर खड्ग चन्द्रहास को निकालकर उद्धत शक्ति से उसे हनुमान् पर चलाया। हनुमान् के वज्रसम शरीर पर लगते ही वह चन्द्रहास चूर-चूर हो गया। उस खड्ग के प्रहार से हनुमान् ने थोडी देर तक पीडा का अनुभव किया, किन्तु शीघ्र ही सँभलकर अपनी भयकर पूँछ को उस राक्षस के कण्ठ में लपेटकर आकाश में बडे वेग से घुमाकर फिर समुद्र में फेंक दिया। माल्यवान् समुद्र में गिरकर उसी मार्ग से पाताल में पहुँच गया। हतशेष राक्षस धैर्य खोकर भाग गये। पर्वत जैसी विशाल विजय को तथा पर्वत को लिये हुए हनुमान् आगे बढा, तो सभी देवता उसकी प्रशसा करने लगे।

१३०. लक्ष्मण के लिए राघव का शोक

द्रोण पर्वत की दीप्ति को दूर से देखकर सूर्यवशज राम को भ्रम हुआ कि प्रभात होनेवाला है। तब अत्यन्त भय-विह्वल हो, समरलक्ष्मी-रतिश्रात लक्ष्मण को रण-शय्या पर सोते देखकर राम कहने लगे—'हे लक्ष्मण, तुम्हारे जैसे अनुज के रहने से ही मै वन-गमन की तपस्या का भार वहन कर सका। वह देखो, ससार के समस्त जीवों के लिए दिन निकल रहा है, किन्तु मेरे लिए दिन डूब रहा है। मै वन में पत्नी को खो बैठा

और युद्ध में तुमको खो दिया । हे सौमित्र, अव मुझे संप्राप्त अपयश-रूपी पक को कौन धो सकेगा ? यदि माता सुमित्रा मुझे देखकर कहें कि हे तात, बडी तपस्या के उपरान्त प्राप्त, उन्नत, पुण्यशील, महनीय चरित्रवान्, मानधन अपने पुत्र को मैने तुम्हारा विश्वास करके तुम्हें सौपा था । ऐसे पुत्र को वन में ले जाकर तुमने उसका अन्त कर दिया, अब मै क्या करूँ ? तब मै उनसे क्या कहूँगा ? मुझसे मिलने के लिए जब भरत तथा शत्रुघ्न आयेंगे और पूछेंगे कि लक्ष्मण कहाँ है, तो मै क्या उत्तर दूँगा ? दीन होकर मै वहाँ जाऊँगा भी कैसे ? मै इसके कारण चिन्तित तथा दुखी नही हूँ । मेरी चिन्ता का कारण दूसरा है । पापी रावण के दुष्कर्मो को देखकर मन-ही-मन दुखी हो, अपने भाई का त्याग कर मेरा मित्र तथा सेवक बनकर विभीषण ने मेरी शरण ली । ऐसे शरणार्थी विभीषण को आश्वासन देते हुए मैने कहा था—'मै तुम्हें राक्षसो का राज्य देता हूँ ।' मैंने उसका राज्यतिलक भी कर दिया । किन्तु, उस प्रण को पूरा करने की क्षमता मुझमें नही रही । लो, सूर्योदय भी होने लगा है, अव लक्ष्मण के बचने की आशा नही है । मुझे भी अब जीवित नही रहना चाहिए । पापरहित लक्ष्मण के जीवन के साथ ही मेरा जीवन है। अब यह शोक मेरे लिए असह्य हो गया है । किन्तु, शरणार्थी को त्यागना नही चाहिए, इस पृथ्वी पर यह क्षत्रियो का धर्म नही है । राजाओ को चाहिए कि स्वय दुख भोगते हुए भी, अपने आश्रितो की रक्षा करे । इसलिए हे सुग्रीव, तुम इस विभीषण को साथ लेकर अयोध्या जाओ और पुण्यात्मा भरत को यहाँ का सारा समाचार समझाकर कहो और उन्हें मेरा यह आदेश सुनाओ कि वह इस विभीषण को लका के बदले अयोध्या का राज्य देकर पुण्य-लग्न में इसका राजतिलक कर दे । उसके पश्चात् तुम तथा वालिपुत्र दोनो अपनी सेनाओ को लेकर किष्किन्धा को लौट जाना ।"

राम को ऐसे दीन वचन कहते सुनकर सुग्रीव अत्यत सभ्रमित हुआ । वह सान्त्वना देते हुए कहने लगा—'हे देव ! ध्यानपूर्वक देखने से पता चलता है कि अभी प्रभात नही होगा । अभी तो रात का चौथा पहर प्रारभ हुआ है । वायुपुत्र शीघ्र आ जायगा । आप सताप त्यागिए ।' फिर भी, राम अत्यधिक शोकाग्नि में जलते हुए पृथ्वी पर लोट-लोटकर कहने लगे—'हे तात, मै जब पिता की आज्ञा से अकेले वन के लिए चला, तो तुम विना पिता के आदेश लिये ही अपने-आप मेरे साथ चले आये और असख्य दुख भोगते रहे । इसे देखकर मैं बहुत दुखी होता था । आज तुम शत्रु के हाथो में अपनी शक्ति खोकर इस प्रकार पृथ्वी पर पडे हुए हो । अब मै कैसे जीवित रह सकूँगा ? कैसे यह दु.ख सह सकूँगा ? कौन-सा मुँह लेकर अयोध्या को लौटूँगा ? अब मुझे सीता किसलिए चाहिए ? अब मेरा जीवन ही किस काम का है ? मुझे अब राज्य किसलिए चाहिए ? जिस दिन पिता ने मुझे यहाँ भेजा, उसी दिन से तुम मुझे पितृवत् मानते आ रहे हो । मेरे भाग्य ने आज रुष्ट होकर रावण के द्वारा तुम्हारी ऐसी गति करा दी । भिन्न-भिन्न देशो में खोजने के पश्चात् योग्य पत्नियो को प्राप्त किया जा सकता है, देश-देशान्तरो में भ्रमण करके बधु-जनो को भी प्राप्त कर सकते है, किन्तु अनुज को प्राप्त करना असम्भव है ।' इस प्रकार, विलाप करते हुए राम अनुज के चेतना-हीन शरीर पर

गिर पडे । फिर अधीर होकर कहने लगे—"हे लक्ष्मण, तुम मुझे भाई कहकर कब पुकारोगे ? तुम सीता को सुमित्रा की भाँति, मुझे महाराज दशरथ की भाँति और इस घनघोर कानन को अयोध्या के समान मानते थे । पुष्प-शय्या पर लिटाने योग्य अपने शरीर को आज तुम पत्थरो पर कैसे लिटा सके ? हे राजकुमार, साधना की समाप्ति पर ही निद्रा उचित है। ऐसा सोचकर तुमने चौदह वर्षो तक निद्रा का त्याग कर दिया और वन में मेरी रक्षा करते रहे । आज युद्ध में शत्रुओ का सहार किये बिना ही तुम सो रहे हो, क्या, यह तुम्हारे लिए उचित है ? यदि तुम इस प्रकार पडे रहो, तो तुम्हारा अग्रज भी दीर्घ-निद्रा (मृत्यु) को प्राप्त होगा । तुम सतत अपने अग्रज की बडी भक्ति करते रहे, आज क्यो नही कर रहे हो ? तुम सतत मेरे वचनो का आदर करते रहे, आज मेरी परीक्षा क्यो ले रहे हो ? 'हे पुण्यमूर्त्ति, युद्ध में रावण का सहार करके सीता को आपकी सेवा में उपस्थित करूँगा' ऐसे श्रुति-मधुर वचन कहनेवाले तुम आज किस कारण से मौन साधे हुए हो ? तुम उठो और 'हे देव, ऐसे अनुचित वचन कहना आपको शोभा नही देता ।' ऐसे वचनो से मुझे सात्वना दो और आँखें खोलकर मुझे देखो ।" ऐसे विलाप करते हुए राम ने लक्ष्मण के अरुण हस्त को अपनी कनपटी से लगाया और 'हे लक्ष्मण मेरा उद्धार करो' यो कहते हुए ही मूच्छित हो पृथ्वी पर गिर पडे। तब वानर-वीरो ने उपचार करके राम की मूर्च्छा दूर की और उन्हें सात्वना देने लगे ।

१३१. हनुमान् का द्रोण-पर्वत ले आना

इसी समय प्रभा-मडल से दीप्त होते हुए हनुमान् आता हुआ दिखाई पडा । तेजोमय सूर्य-सम उसकी दीप्ति के आधिक्य के कारण उसपर दृष्टि ठहरती नही थी । उसे देखकर सभी वानर अत्यधिक भयभीत हो गये और सभ्रम-चित्त हो व्याकुल हो उठे । रामचन्द्र ने भी उसे सूर्य ही समझ लिया और प्रलय-काल के यम के समान क्रोध से जलते हुए सभी वानरो को देखकर कहने लगे—'हे वानरो, तुम लोगो ने आकाश में निकलनेवाले सूर्य को देखा ? पुण्य तथा शील से समन्वित हमारे वश का आरम्भकर्त्ता, अन्धकार का शत्रु तथा कमल-बधु यह सूर्य आज शत्रु से मिल गया है और लक्ष्मण के ऐसे पडे रहते हुए निकल रहा है। अब मैं इस सूर्य-मडल को पृथ्वी पर गिरा दूँगा ।' इस प्रकार कहते हुए दुर्वार साहसी राम ने धनुष को अपने हाथ में ऐसे सँभाला, जैसे प्रलय के समय शिवजी ने ब्रह्माण्डो का भजन करने के निमित्त ब्रह्मा आदि देवताओ को भयभीत करते हुए अपने हाथ में पिनाक धारण किया था । उस समय अपने पूर्ण बाहुबल से युक्त राम स्वय शिवजी के समान दीप्त होने लगे । अत्यन्त क्रोधोन्मत्त हो शीघ्र उन्होने ही अपने धनुष पर रौद्र-अस्त्र का सधान किया। राम की अद्वितीय शक्ति से परिचित जाम्बवान् ने भय से व्याकुल होते हुए क्रोधोद्दीप्त राम को देखकर कहा—'हे देव, क्रोधावेश से अपनी दुर्वार शक्ति का प्रदर्शन करते हुए आपके इस प्रकार शर-सधान से देव तथा गधर्व धैर्य खोकर चारो ओर भाग रहे है । हे राघव, यह कैसा आश्चर्य है कि आप (आकाश की ओर) सावधानी से देखकर भी सचाई समझ नही पाये। यह जो प्रकाश दीख रहा है, वह सूर्य का नही है, किन्तु अनेक दीप्त वृक्षो की कांति से परिपूर्ण उज्ज्वल द्रोणाचल है,

जिसे गुरुसत्त्व-सपन्न (महान् शक्तिशाली) पवनकुमार लिये आ रहा है। सूर्य-सम तेजस्वी पवनपुत्र की अगवानी करने के लिए आप वानर-वीरो को भेजिए।' तव रघुराम की आज्ञा से हनुमान् के स्वागतार्थ वानर गये।

हनुमान् आकाश से नीचे उतर आया और उस पर्वत को पृथ्वी पर रख दिया। फिर, उसने रामचन्द्र के समक्ष उपस्थित होकर उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा—'हे देव, मैंने द्रोणाचल पर जाकर ओपधियो के लिए बहुत ढूंढा, किन्तु उनको प्राप्त नही कर सका, इसलिए मैं उस पर्वत को ही उठा लाया हूँ। आपकी आज्ञा प्राप्त करके यहाँ से द्रोणाद्रि जाते समय तथा वहाँ से लौटते समय मेरे मार्ग में कई विघ्न उपस्थित हुए, अत विलव हो गया। इसे आप मन में नही लाइए।' तव राम हनुमान् को देखकर बड़ी प्रसन्नता से कहने लगे—'हे पवनपुत्र, भला तुम में कोई दोष हो सकता है? तुम्हारे कारण ही तो काकुत्स्थ-वशजो के यश तथा गौरव आज स्थिर रह पाये। अपनी अनुपम शक्ति से तुमने आज देवताओ के लिए भी असाध्य कार्य सपन्न किया है।'

१३२. संजीवकरणी से लक्ष्मण की मूर्च्छा का दूर होना

तव सुग्रीव ने सुषेण को देखकर कहा—'तुम दूसरे वानरो के साथ इस पर्वत पर चढ जाओ और आवश्यक महौषधियो को लाकर लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर करो।' तव सुषेण अन्य वानरो के साथ शीघ्र उस पहाड पर चढ गया। वह अपने साथियो को पर्वत पर भिन्न-भिन्न स्थलो को दिखाकर कहता था—'यहाँ पर इन्द्र ने अमरो के साथ अमृत-पान किया था। यहाँ पर विष्णु ने जगत् के कल्याणार्थ अपने चक्र से राहु का सिर काटा था।' फिर, वह उस पर्वत से आवश्यक ओषधियो का सचय करके ले आया और लक्ष्मण पर उनका प्रयोग किया। उन ओषधियो के प्रभाव से लक्ष्मण के शरीर में गडे हुए वाण निकल आये और लक्ष्मण की चेतना लौट आई। सभी वानर आनन्द के अतिरेक से भरे रामचन्द्र के समक्ष आ पहुँचे।

तव राम ने सौमित्र को हृदय से लगा लिया और आँखो से हर्ष के अश्रु वहाते हुए समीरकुमार को देखकर कहने लगे—'हे पुण्यात्मा, आज तुमने मुझे सौमित्र का दान दिया। तुम्हारे कारण आज मैं काकुत्स्थ-वशज कमनीय गात्रवाले लक्ष्मण को प्राप्त कर सका। गिरे हुए मेरे भाई को पुनर्जीवित करके तुमने मेरे प्राण वचाये। मेरा यह भाई मेरे प्राणो के समान है। तुम मेरे प्राण-वंधु हो तथा परम मित्र हो। तुम्हारे द्वारा ही यह कार्य सपन्न हो सकता था। अन्यो के द्वारा इसकी पूर्त्ति असम्भव थी। हे वानर-वीर, उपकार का प्रत्युपकार करना उत्तम है। किन्तु मैं तुम्हारा कोई प्रत्युपकार नही कर सकता; क्योकि समस्त लोको में तुम्हारे लिए कोई विपत्ति ही नही है।' इसके पश्चात् राम ने सुषेण की भी प्रशसा की और उसे हृदय से लगा लिया। सुषेण आनन्द से समुद्र के समान फूल उठा। उसने राम की अनुमति से रण में गिरे हुए वानरो को पुनर्जीवित किया। सभी वानरो ने मन-ही-मन अत्यन्त हर्षित होते हुए राम की अनुमति पाकर उस पर्वत के समस्त रत्नो से युक्त उज्ज्वल सानुओ तथा शृंगो पर विचरण किया, विविध स्थलो को देखा, परिपक्व फलो को छककर खाया, मधु का जी भरकर पान किया, अमृतोपम जल

पिया, और उसके पश्चात् पर्वत से नीचे उतर आये । तब राघव ने पवनकुमार को देखकर कहा—'इस पर्वताधीश को उसके स्थान पर फिर प्रतिष्ठित कर आओ ।'

राम की आज्ञा प्राप्त करके हनुमान् अपनी अपार शक्ति से उस पर्वत को उठाकर आकाश-मार्ग से जाने लगा । समुद्र के मध्य में राक्षसो ने यह देख लिया और तुरन्त रावण को इसकी सूचना दी । तब लकेश्वर ने विजयधन, शकुकर्ण, स्थूलजघ, महानाद, महावक्त्र, चतुर्वक्त्र, मेघजीत, हस्तिकर्ण, महावीर, जैत्र, उल्कामुख आदि राक्षसो को बुलाकर कहा—'तुम लोग अपने अनुपम पराक्रम से हनुमान् का मार्ग रोककर उसे पकडकर ले आओ, या वह जिस पर्वत को ले जा रहा है, उसे उसके हाथ से छीनकर समुद्र में गिरा दो । इन दोनो में किसी एक कार्य को पूरा कर सकोगे, तो मै अपना आधा राज्य अभी तुमको दूँगा ।'

यह सुनकर वे अपनी महाशक्तिशाली सहस्रो विपुल सेनाओ के साथ दानव तथा अमरो का वेष धारण किये हुए, खड्ग, तोमर, शूल, धनुष, परशु, भाले आदि शस्त्रो को धारण किये हुए चल पडे । उन्होने वडे दर्प से गर्जन एव हुकार करते हुए, प्रलय-काल के मेघ जैसे सूर्य को घेर लेते है, वैसे ही, हनुमान् को घेर लिया और उसका मार्ग रोककर गर्जन करते हुए, वे दुर्मति कहने लगे—'हम देवासुरो को देखने के निमित्त (पर्वत सौपने के निमित्त) ही तो तुम जा रहे हो । अब इस पर्वत को लिये कहाँ जा रहे हो ?' तब हनुमान् उनको देखकर आँखो से प्रलय-काल के अग्नि-स्फुलिगो को विकीर्ण करते हुए काल-चक्र के आकारवाली वज्र-सम कठोर अपनी पूँछ को भयकर गति से घुमाते हुए उससे उन राक्षसो पर प्रहार करने लगा । तब राक्षसो ने भी (अपने शस्त्रो से) हनुमान् को अच्छी तरह मारा । तब हनुमान् ने कुछ राक्षसो को पद-प्रहार से मार डाला, कुछ राक्षसो को अपनी पूँछ के आघातो से मार गिराया, अपनी भयकर मुष्टि के आघातो से कुछ राक्षसो का सहार किया, अपने नाखूनो से कुछ राक्षसो को चीर डाला, अपने भयकर गर्जन-मात्र से कुछ राक्षसो को गिरा दिया और अपनी परुष तथा उग्र दृष्टि-मात्र से कुछ राक्षसो के प्राण हर लिये । महाशक्ति-सपन्न हनुमान् ने ऐसा भयकर युद्ध करके, अपने अनुपम पराक्रम से उन राक्षसो की सेना को इस प्रकार तितर-बितर कर दिया, जैसे सूर्य हिमशिखरो को शीघ्र नष्ट कर देता है । इसके पश्चात् हनुमान् आकाश-मार्ग से जाने लगा, तो देवता तथा गधर्व उसके बाहुवल की प्रशसा करते हुए उसपर पुष्प-वृष्टि करने लगे । हनुमान् अत्यधिक वेग से जाकर उस पर्वत को यथास्थान प्रतिष्ठित करके शीघ्र रघुराम के पास लौट आया और पर्वत को लाने तथा उसको पुन प्रतिष्ठित करने के सबध में उनपर बीती हुई विपत्तियो को कह सुनाया । तब राम ने बडे हर्ष से वायु-पुत्र का आलिगन कर लिया ।

तदनतर सभी कपियो ने एकत्र होकर ऐसा सिंहनाद किया कि सारी लका व्याकुल हो उठी । आकाश में टिमटिमानेवाले तारे एक-एक करके ऐसे लुप्त होने लगे, मानो दशकठ के पुण्य के चिह्न एक-एक करके लुप्त होते जा रहे हो। निदान, सूर्योदय हुआ और दैत्यो के दारुण रोष एव गर्वविकार के साथ-साथ अन्धकार भी दूर हुआ । वानरो के

मुख-कमलो के साथ ही सरोज भी विकसित हुए । शक्तिहीन दनुजो के मुख-कैरवो के साथ-ही-साथ पृथ्वी पर कैरव भी मुरझा गये । सूर्यवंशाधीश राम के प्रताप-सूर्य के साथ-ही-साथ सूर्यबिम्ब भी प्राची दिशा में दिखाई पड़ने लगा।

तब राम ने सौमित्र को देखकर अत्यन्त आनन्द से भरे हृदय से कहा—'हे सद्-गुणशील, सौमित्र, तुम बच गये, सचमुच यह मेरा सौभाग्य है।' राम के इन प्रशसापूर्ण वाक्यो को सुनकर लक्ष्मण राम को प्रणाम करके बोले—'हे देव, क्या आप प्राकृतजन हैं ? क्या आप दीन है, क्या आप निर्धन या क्षुद्र हैं ? आप अपने महत्त्व को भूलकर ऐसे दीन वचन क्यो कहते हैं ? हे लोकेश, दण्डकवन में आपने मुनियो को जो वचन दिये थे, उनका स्मरण कीजिए । आपका विश्वास करके आये हुए इस विभीषण से आपने जो प्रतिज्ञा की है, उसका विचार कीजिए और आज सूर्य के अस्त होने से पहले रावण का संहार कीजिए । इन बातो को सुनकर राम ने कहा—'ऐसा ही होगा' और रण-विक्रम-दीप्ति से भासित होने लगे ।

१३३. रावण का शुक्राचार्य से परामर्श करना

इस वृत्तान्त को सुनकर रावण मन-ही-मन चिन्ता से व्याकुल हो उठा और अपने समस्त पराक्रम को तजकर दीन हो शुक्राचार्य के पास पहुँचा । उनको बडी भक्ति से प्रणाम करके रावण ने कहा—'हे गुरुदेव, रघुराम की निशित (तीक्ष्ण) बाणाग्नि ने मेरे सगे-सबधियो, पुत्रो तथा भाइयो को जलाकर भस्म कर दिया है और प्रलय-काल की अग्नि के समान अमोघ दिखाई पड रही है । वह दुर्वार दीखती है और युद्ध में सबका सहार कर रही है । मै अब कैसे बच सकूँगा । कृपया बताइए।' तब शुक्राचार्य ने कहा—'हे रावण, तुम व्याकुल क्यो होते हो ? ऐसे कितने ही उपाय है, जिनके द्वारा महान् युद्धो में भी नरो को जीता जा सकता है । केवल इस बात की आवश्यकता है कि तुम बिना विघ्न के हवन पूरा करो । हवन करने से हवन-कुड से भयंकर सग्राम के योग्य श्रेष्ठ रथ, अश्व, भयकर खड्ग, शर, चाप तथा कवच तुम्हें मिल जायेंगे । उनकी सहायता से तुम नरो को जीत सकते हो । वे अस्त्र-शस्त्र तुम्हें अवश्य विजय प्रदान करेंगे।' इतना कहकर शुक्राचार्य उसे हवन के लिए आवश्यक मत्रो का उपदेश किया और हवन-विधि आदि बता-कर विदा किया ।

शुक्राचार्य की आज्ञा लेकर रावण अन्तपुर को लौट आया और नगर की रक्षा करनेवाले महान् शक्ति-सपन्न राक्षस-वीरो को सावधान किया । उसके पश्चात् उसने सिंह-द्वारो को बद कराया और उनकी रक्षा के लिए अपनी चतुरगिणी सेना को नियुक्त किया। फिर, उसने यम-सदृश आकारवाले तथा उद्धत शूर विद्युज्जिह्व नामक एक वीर राक्षस को बुलाकर कहा—'तुम अपनी सेना के साथ बडी तत्परता से नगर की रक्षा करते रहो। असावधान मत रहो और अपने स्थान से किसी भी दशा में मत हटो ।'

१३४. पाताल-होम

उसके पश्चात् रावण ने हवन का अनुष्ठान करने के निमित्त पाताल-गुफा में ऐसे प्रवेश किया, मानो मृत्यु के मुँह में ही प्रवेश कर रहा हो । वहाँ पर बडी निश्चलता के

साथ हवन-कर्म के लिए अनुरूप रक्त वस्त्र, रक्त माल्य तथा रक्त चदन धारण किया, दक्षिण दिशा में सिद्ध की हुई होम-वेदी की चदन-पुष्पो से अर्चना की, अग्नि को प्रतिष्ठित किया, विधिवत् होम-मत्रो का उच्चारण करते हुए, पैने अस्त्रो को परिधि के रूप में सजाया, पीपल और भिलावा आदि समिधाओ को बार-बार जलाया, सरसो, दूर्वा, खील, गुग्गुल, अगरु, घी, मधु, ताडी, खून, दही, परमान्न, दर्भ, प्रवाल, भेड, मछली, गीध, वराह आदि की बलि क्रमश देते हुए उस महावेदी के समक्ष निश्चल ध्यान में मग्न रहा ।

उस समय उस गुफा से भयकर धुएँ का समूह, पवन के सघात से बिजलियो को गिराते हुए समस्त आकाश में ऐसा व्याप्त होने लगा, मानो रावण के सभी पाप एकत्र होकर आकाश की ओर उठ रहे हो । यह देखकर देवता त्रस्त हुए, मुनि भयभीत हुए, दिक्पाल सभ्रमित हुए और वानर भय-विह्वल हुए । उस धुएँ को देखकर विभीषण ने राम से कहा---'हे देव, रण में आपका सामना करके, आपके समक्ष खडे रहने में अपने को असमर्थ पाकर रावण कपट-कर्म के द्वारा आप पर विजय प्राप्त करने के निमित्त हवन कर रहा है । वह देखिए, हवन-कुड से निकलनेवाला धुआँ समस्त आकाश में व्याप्त हो रहा है। यदि इसकी इच्छा के अनुसार हवन निर्विघ्न समाप्त हुआ, तो लोक-भयकर रावण को जीतना देवासुरो के लिए भी असभव हो जायगा । अत, इस हवन में विघ्न डालना ही चाहिए । इसके लिए आप शीघ्र वानर-वीरो को भेजिए ।

उसकी मत्रणा स्वीकार करके राम ने वानर-वीरो को (हवन में विघ्न डालने के लिए) भेजा । तब असमान बलवान् गवाक्ष, तार, शरभ, ऋथन, शतबली, नल, गवय, मैन्द, गधमादन, हनुमान्, पनस, अगद, कुमुद, ज्योतिर्मुख, गोमुख आदि दस करोड उद्भट रण-विक्रमी तथा प्रतापी वानर अत्यधिक क्रोध से आकाश-मार्ग से लका में पहुँच गये । अपने हुकारो तथा पदाघातो से पृथ्वी को विदीर्ण करते हुए, दिग्गजो को कुचलते हुए, आकाश को कपित करते हुए, उन साहसी तथा उत्साही वीरो ने प्रचड गति से राक्षसो पर आक्रमण किया और नगर की रक्षा करनेवाले कई बलवान् राक्षसो को छिन्न-भिन्न कर दिया और द्वारपालो को क्रूरता से मार डाला, अपनी विशाल शक्ति से द्वारो को चूर-चूर कर दिया और अत्यत शीघ्रता से नगर में प्रवेश किया । कुछ पर्वताकार वानर तुरत दशानन का अन्वेषण करने लगे, कुछ रथशालाओ में प्रवेश करके रथो को चूर-चूर करने लगे, कुछ गजशालाओ में जाकर अपने मुष्टि-घातों से गजो के सिर फोडने लगे, कुछ अश्वशालाओ में पहुँचकर अपने भयकर नखो से घोडे के शरीर चीरने लगे, कुछ वानर घोडो (शूलको) को नष्ट-भ्रष्ट करने लगे, कुछ शस्त्रागारो में पहुँचकर शस्त्रास्त्रो को खडित करने लगे, कुछ भाडार-घरो में पहुँचकर वहाँ की चीजो को बाहर फेंकने लगे । दूसरी ओर कुछ वानर अपनी प्रचड शक्ति से झूलते हुए तोरणो को तोडते थे, स्वर्ण-कलशों तथा स्वर्ण-हर्म्यों को पृथ्वी पर गिरा देते थे, कुछ वानर राक्षसो को यत्रणा देते हुए कहते थे---'उस जगत्-द्रोही (रावण) को बाँधकर लाओ, कुछ वानर घरो में घुसकर, राक्षसो को उनकी पत्नियो तथा सुतो के हाहाकार के बीच बाहर खीचकर लाते थे और

उनके सिर काट डालते थे। वानरो के ऐसे पीड़ित करने से सारा राक्षस-नगर भयभीत हो, दीन तथा व्याकुल दीखने लगा । वानरो से प्रपीडित घोडो की हिनहिनाहटो, गजो के भयकर चिंघाडो, वृद्धा तथा बालाओ के दीन विलापो तथा कपियो के सिंहनादो के व्याप्त होने से सारी लका प्रलय-काल में दीप्त होनेवाली वडवाग्नि की ज्वालाओ से भयभीत हो गर्जन करनेवाले समुद्र की भाँति, हाहाकार करने लगी ।

इसी समय सूर्योदय हुआ । वानरो ने सब स्थानो में रावण को ढूंढा, किंतु वे कही भी उसको देख नही सकने के कारण संभ्रमित हो गये । तब विभीषण की चतुर पत्नी सरमा ने, अपने पति के हित का विचार करके बड़ी उद्विग्नता से, हाथ के सकेत से अगद को रावण के रहने का स्थान बताया । तुरत उस वीर ने क्रुद्ध होकर उस गुफा के मुँह पर स्थित शिला को अपने पदाघात से चूर-चूर कर दिया और अपने महान पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए, अपने बाहुबल से राक्षसो को भयभीत करते हुए अदर प्रवेश किया और हवन-कर्म में निश्चल निष्ठा से लगे हुए तथा विविध मन्त्र-तत्रो में लगे रावण को देखकर चिल्ला उठा—'मैने रावण को देख लिया । शीघ्र चले आओ ।' यह सुनकर अनिलकुमार आदि राक्षस बडे वेग से गुफा की रक्षा करनेवाले राक्षसो को मारकर अदर चले आये । तब उन्होने अकेले हवन करनेवाले रावण को देखा और बडे क्रोध से कहने लगे—'बिना किसी को साथ लिये यह अकेले फँस गया है । हम इसका हवन कर देंगे ।' यह कहकर वानरो ने हवनकुड के चारो ओर रहनेवाले कलश-समिधाएँ, हाथी, मुर्गा, जबूक, अश्व, ऊँट, कुत्ता आदि जानवरो के मस्तक, घी तथा मधु के पात्र आदि होमकुड में फेंककर सिंहनाद किया । यह देखकर राक्षस भयभीत हुए। फिर, वानर उस पापी रावण के अगो पर होमकुड के अगारो की वर्षा करने लगे और जलते हुए मशाल उठाकर राक्षसो पर फेंकने लगे । एक वानर ने रावण के हाथ के स्रुक्-स्रुवा को बलात् खीचकर उन्ही से रावण पर प्रहार किया । कपियो के इस प्रकार के आक्रमण के कारण रावण की निष्ठा डोल गई । फिर भी बिना विचलित हुए या बिना क्रुद्ध हुए वह निष्ठा में ऐसे निमग्न रहा, मानो वह सोया हुआ पर्वत हो ।

१३५. अंगद का मंदोदरी को रावण के पास घसीटकर लाना

तब युद्ध-कला-कुशल, दुर्जय तथा अगदो से अलकृत बाहुओ से विलसित अंगद, शीघ्र रावण के अत पुर में पहुँचा और रानियो के निवास में प्रवेश किया । वहाँ उसने उमडते हुए दुख से सतप्त होनेवाली मदोदरी को देखा । उसका सूजा हुआ लाल मुख-चद्र, उसके कर-पल्लव पर ऐसा टिका हुआ था, जैसे रोहिणी से अलग हुए चद्र को तरुण पल्लव-शय्या पर पहुँचा दिया गया हो । वह अपने वधुओ के साथ यह सोचकर व्याकुल हो रही थी कि घोर युद्ध में कुभकर्ण आदि मरे, महावीर तथा घोर विक्रमी पुत्र सब नष्ट हुए, केवल मेरे पति बच गये है, भला वे क्या रघुराम को जीत सकते हैं ? वह मन-ही-मन इन्द्रजीत की मृत्यु का स्मरण करके रो रही थी । रमणीय मणि-मदिर में बैठकर शोक करनेवाली रमणी मदोदरी की सुदर वेणी को बलात् पकड़कर अगद उसे खीचने लगा । तब उस मृगनयनी के मुख-चद्र की काति ऐसे मलिन पड गई, जैसे ग्रहण के समय राहु से

घिरे हुए चंद्र-मंडल की काति मलिन पड जाती है । उसके बालो में सजे हुए सुरभित मल्लिका-कुसुम पृथ्वी पर ऐसे गिरने लगे, मानो रावण के कीर्त्ति-कुसुम ही गध-हीन हो पृथ्वी पर गिर रहे हो । उसकी माँग में पिरोये हुए मोती भय एव क्रोध से ऐसे गिरने लगे, मानो रावण की राज्य-लक्ष्मी ही सीमत-वीथी से च्युत हो रही हो । उसके लाल मुख-कमल के नील अलक, ऐसे बिखर गये, मानो राक्षसो की लक्ष्मी के मुख-कमल के आश्रित भ्रमर बिखरकर उड़ रहे हो । उसके दोनो कर्ण-कुडल टूटकर पृथ्वी पर ऐसे गिर पडे, मानो मगलप्रद श्रेष्ठ आभूषण रावण की लक्ष्मी के कानो में रहने की इच्छा न रखने से गिर रहे हो। उसकी आँखो से काजल से युक्त अश्रु ऐसे गिरने लगे, मानो वे दनुजेश्वर के अपयश की धाराएँ हो । उसके मणिमय आभूषण ऐसे टूटकर गिरने लगे, मानो राक्षस-राज के लिए अपशकुन सूचित करनेवाली महान् उल्काएँ गिर रही हो । उस रमणी के घर्म का निर्मल आवरण-रूपी कचुक के शिथिल होने से उसके उन्नत स्तन-कलश ऐसे विचलित हो उठे, मानो रावण की इस लोक की तथा परलोक की उन्नति ही विचलित हो गई हो । उसकी तनु-लता ऐसी कुचल गई, मानो देव-शत्रु रावण की गुण-लता ही कुचल गई हो । उसकी मेखलावली का बधन ऐसे खुल गया, मानो पवित्रात्मा राम के द्वारा राक्षसराज के कर्म-बधन ऐसे ही कट जायँगे । उसके चरण-नूपुर निनाद करते हुए एक-एक करके ऐसे छूटकर गिरने लगे, मानो प्रमद राक्षसराज-पद की सन्धियाँ चटक गई हो और उसकी विमल कीर्त्ति खड-खड होकर गिर रही हो। इस प्रकार, जब अगद क्रुद्ध होकर मदोदरी को राक्षसेश्वर के समक्ष घसीटकर लाने लगा, तब राक्षस-वधुएँ आर्त्तनाद करने लगी और कारागार में पडी हुई देव-स्त्रियाँ हर्षित होने लगी ।

तब मदोदरी शोक-सतप्त हृदय से दानवेंद्र को देखकर कहने लगी—'हे देव, इद्र को परास्त करनेवाली आपकी शक्ति कहाँ लुप्त हो गई ? क्या, आज चद्रहास की धार कुठित हो गई ? प्रमथ-गणो से युक्त शिव के साथ कैलाश पर्वत को उठाने का आपका दर्प कहाँ चला गया ? तीनो लोको को आपने जीत लिया था, ऐसी शक्ति को आप क्यो त्याग रहे हैं ? यदि मुझे त्याग कर इद्रजीत इद्रलोक में नही गया होता, तो क्या, वह मुझे इस दशा में देखते हुए चुप रहता ? यदि मेरा पुत्र जीवित रहता, तो क्या, मैं ऐसी नीच दुर्दशा को प्राप्त होती ? शत्रु इस प्रकार मेरा अपमान तथा उपहास कर रहे है और आप देख तथा सुन रहे हैं । क्या, आप निर्लज्ज वधिर हो गये है ? आपका यह हवन किस काम का ? आपकी यह निष्ठा किसलिए ? इन आहुतियो ने स्वय आपकी पूर्णाहुति कर दी । बुद्धिमान् होकर भी आप राम की बाणाग्नि से दग्ध हो जायँगे । कुटिल क्रियाओ से जब कोई प्रयोजन नही है । अब उन्हें त्याग दीजिए ।' इन बातो को सुनकर दशकठ क्रोध से भभक उठा । उसने अपने हाथ की आहुति पृथ्वी पर फेंक दी । निष्ठुर क्रोध से उसकी भौहें तन गईं । वह यमराज के समान भयकर रूप धारण करके उठ खडा हुआ । अपने भीषण खड्ग को खीचकर उसने अनुपम रत्नो के अगदो से विलसित अगद पर प्रहार किया और अपनी पत्नी को उसके हाथो से छुडा लिया । तब खुली हुई वेणी तथा उतरे हुए मुँह से दुःख प्रकट करती हुई वह दैत्य-रमणी अतःपुर को चली गई।

उसके पश्चात् हनुमान् अपनी भयकर मुष्टि से दशकठ के सिर पर कठोर प्रहार किया । इतने में वालिपुत्र सँभल गया और रावण पर कठोर प्रहार करके फिर गिर पडा । इस प्रहार से रावण लाल रक्त से भीगे हुए एक लाल पर्वत की भाँति दीख रहा था । फिर भी, उसने भयकर क्रोध के आवेश में आकर अगद पर गदा का प्रहार किया, हनुमान् पर अपने तेज खड्ग को चलाया, नल पर शर-प्रहार करके उसको ऐसे दवा दिया, जैसे अकुश के प्रहार से गज को झुका दिया हो, मूसल का प्रहार करके नील को दड दिया, शक्ति के प्रयोग से शतवली का दर्प चूर कर दिया, वज्र-सम मुद्गर तथा बाणो को चलाकर द्विविद तथा मैन्द को गिरा दिया । तब वानर-वीर आश्चर्यजनक वेग से अपनी सेना में जा पहुँचे ।

अनिलकुमार ने राघवेश्वर के समक्ष पहुँचकर हाथ जोडकर प्रणाम किया और कहा—'हे देव, हम दानवेंद्र का हवन भ्रष्ट करके लौट आये है ।' यह सुनकर रघुराम मन-ही-मन वहुत हर्षित हुए ।

वहाँ दैत्येंद्र शीघ्र अत पुर में गया और अपार शोकाग्नि में जलनेवाली मदोदरी को देखकर कहने लगा,—'हे प्रिये, विधि-विधान के सवध में मन-ही-मन ऐसे शोक करने की क्या आवश्यकता है । आज मै युद्ध में राम का वध करूँगा । यदि इसके विपरीत वह मेरा सहार कर डाले, तो तुम भी जानकी को मारकर शीघ्र अग्नि में प्रवेश कर जाना ।'

१३६ रावण को मन्दोदरी का राघव की महिमा बताना

तव वह रमणी अपने पति को देखकर कहने लगी—"हे राक्षसेंद्र, आप रघुराम को युद्ध में जीत नही सकते । आप ही क्यो, देवासुर भी मिलकर उन्हें जीत नही सकते । आप उन्हें एक साधारण राजा मत मानिए । वे पुराण-पुरुष है । उन्होने पूर्वकाल में मत्स्यावतार लेकर सोमक का सहार किया और श्रुतियो का उद्धार किया था । उन्होने कमठ का रूप लेकर मदराचल को अपनी पीठ पर धारण किया था। वराह का अवतार लेकर उन्होने हिरण्याक्ष का सहार करके पृथ्वी का उद्धार किया था । उन्होने नृसिह का रूप धरकर क्रुद्ध हो नीच राक्षस का वध किया और प्रह्लाद की रक्षा की थी । वामन का अवतार लेकर उन्होने वलि से याचना करके उसे बाँधा था । जमदग्नि के यहाँ जन्म लेकर उन्होने महाशूर कार्त्तवीर्य का सहार किया और समस्त ससार को कश्यप ब्रह्मा को दान में दे दिया । अपनी समस्त शक्ति को एकत्र करके, अब तुम्हारा सहार करने के निमित्त, अपना तेज चारो ओर व्याप्त करते हुए उन्होने दशरथ का पुत्र होकर जन्म लिया है । उनकी महिमा तथा उनके कार्यो का वर्णन मैं कैसे करूँ ? इसी राम ने अपने वाल्य-काल में अपने महान् विक्रम तथा विशाल शक्ति का परिचय देते हुए कौशिक के यज्ञ की रक्षा ऐसे की कि कौशिक तथा अन्य प्रमुख दिक्पाल भी उनकी प्रशसा करने लगे । फिर, उस मुनि से उन्होने शत-सहस्रादि सख्या में दिव्यास्त्र प्राप्त किये । उन्होने जनक को सतुष्ट करते हुए अपनी अनुपम शक्ति का परिचय देकर शिव-धनुप का भग किया और दैव-नियोग से वैदेही को अपनी धर्म-पत्नी के रूप में स्वीकार किया । उसी राम ने भार्गव राम

का गर्व-भग करके अपने वाहुवल का परिचय दिया। अपने पिता की आज्ञा से वे मुनि-वृत्ति स्वीकार करके वनवास करने आये है। उन्होने अपनी प्रशसनीय शक्ति से विराध का वध किया, शूर्पणखा को दड दिया और अपने चरण-स्पर्श से दण्डक वन की भूमि को पुण्यभूमि बना दिया। उन्होने खर, दूषण आदि वीर राक्षसो को उनके चौदह सहस्र सैनिको के साथ मार डाला, मारीच का सहार किया और भयकर आकारवाले कवध का वध किया। जिस वालि ने आपके पौरुष को कुठित करके, अपनी पूँछ से आपको बाँधकर चारो समुद्रो में डुवोकर अपनी अनुपम शक्ति का परिचय दिया था, उसे एक ही वाण से गिराकर, सुग्रीव का राजतिलक कर दिया। अपने वाणो की अग्नि-ज्वालाओ से समुद्र को सुखा दिया। युद्धभूमि में कुभकर्ण का सहार किया। इतना ही नही, लक्ष्मण ने युद्ध में अतिकाय तथा इद्रजीत का वध किया। राम भूपाल कदाचित् ही कभी क्रोध करते है। यदि वे क्रुद्ध हो जायँ, तो इद्रादि देवता भी उनके समक्ष खडे नही रह सकते। हे दैत्यनाथ, ऐसे वसुधेश्वर की पत्नी को धोखे से ले आना क्या, आपको उचित था ? क्या आप राम के नित्यसत्त्व को नही जानते ? क्या, आप उनकी महिमा से परिचित नही है ? न जाने किस पाप का फल है कि राम की शक्ति की श्रेष्ठता आपको सूझती नही है। हे देव, अब भी आप जानकी के साथ-साथ अपने समस्त राज्य को राम को समर्पित कीजिए और उनके निष्ठुर वाणो की अग्नि-ज्वालाओ से अपने को बचा लीजिए। अवतक हमने राज-भोग का अनुभव किया, यही पर्याप्त है। अव हम तपोवृत्ति स्वीकार करके वनो में विचरण करेंगे। यदि आपका अत हो जायगा तो मैं आपके साथ अग्निमुख में गिरकर जल भी नही सकती, क्योकि मेरे पिता ने मुझे यह वर दिया है कि जरा-मृत्यु मेरा स्पर्श नही करेंगी। अव मैं राज-सुख भोगना नही चाहती। आप इस मार्ग का त्याग कीजिए। मेरे पिता का वर दुस्तर है। अव मुझे या तो सरमा की या जानकी की सेवा करनी पड़ेगी।"

तव दशकठ उस पिकवैनी को देखकर उत्कट क्रोध से कहने लगा—"हे सुदरी, तुम इतना दु:खी क्यो होती हो ? क्या, मेरी दशा इतनी दीन हो गई है ? पुत्र बधु, मित्र, सेवकों का वध कराने के पश्चात्, देव-दानवो को भी भयभीत करनेवाले अपने प्रताप को तजकर, मैं केवल अपने प्राणो की रक्षा क्यो करूँ ? इन्द्रजीत जैसे पुत्र का वध कराने के पश्चात्, मैं जीवित क्यो रहूँ ? मैने गरुड, उरग, अमर तथा गधर्वो को जीत लिया है, पुण्यात्माओ का विनाश किया है और तपस्वियो का वध किया है। अब यदि मैं स्वय तपस्वी बनने जाऊँ, तो क्या सभी तपस्वी मेरा उपहास नही करेंगे ? इसलिए हे कमलाक्षी, तुम्हारे ये वचन आचरण करने योग्य नही है। अब मैं किसी भी प्रकार से हो, राघवो का वध कर ही डालूँगा। अनुपम बल से समन्वित, मैं किसी भी दशा में सीता को नही दूँगा। यदि मैं राम के वाणो से मारा जाऊँगा, तो मैं जिस वैकुठ की इच्छा करता हूँ, वह स्वय मेरे समक्ष आ जायगा। हे सुदरी, तब मुझे न तुम्हारी आवश्यकता रहेगी, न इस लका की। मैं अपनी इच्छित मुक्ति-पथ को प्राप्त करूँगा। मेरी मृत्यु के पश्चात्, तुम शुभलक्षण श्री से रहित हो सूर्य-विहीन कमलिनी की भाँति, शशिहीन कुमुदिनी की

भाँति रहना ।" यह सुनकर मदोदरी लज्जा से अभिभूत हो प्रत्युत्तर देने से भयभीत होती हुई चुप हो गई ।

१३७. रावण का तृतीय युद्ध के लिए प्रस्थान

उसके पश्चात् रावण अत्यधिक उत्साह एव हर्ष से युद्ध की तैयारियाँ करने लगा । उसने आदित्य को त्रस्त करते हुए तथा ब्रह्माण्ड को विदीर्ण करते हुए रण-भेरी का निनाद कराया और सेना को एकत्र करने के लिए भटो को भेजा । फिर, उसने अपनी विशाल भुजाओ को रत्न, केयूर तथा ककणो से अलकृत किया, इद्र आदि देवताओ को जीतने के उपलक्ष्य में स्मारक-स्वरूप एक वीर-ककण पहना, अपने सभी करो में भयकर चद्रहास, धनुष, वाण, गदा तथा चक्रो को धारण किया और अपने नेत्रो से क्रोधाग्नि की काति को चारो ओर व्याप्त करते हुए वाहर निकला। फिर, वह अच्छी तरह निर्मित सोलह चक्रवाले दो करोड क्षुद्र घटिकाओ के निनाद से भयोत्पादक तथा एक सहस्र घोडे जुते हुए रथ पर इस प्रकार आरूढ हुआ, मानो राम के शरो से मृत होकर वैंकुठ के रथ पर आरूढ हो रहा हो । महान् वलशाली तथा रथ-कला-निपुण कालकेतु उस रथ को चलाने लगा । रावण के ऊपर अनेक चद्रिका-सम उज्ज्वल छत्र तने हुए थे । रावण के श्रेष्ठ साहस का परिचय देनेवाले, राहु के मस्तक से अकित तीन ध्वजाएँ, आकाश का स्पर्श करती हुई ऐसे फडफडा रही थी, मानो सूर्य-मडल एव चद्र-मडल को निगलने के लिए उद्यत राहुत्रय हो । (सेना की) भेरी, मृदग आदि के गभीर निनादो से समुद्र उमडने लगे और उनके उमड़ने के प्रयत्न के फलस्वरूप पृथ्वी काँप उठी । रावण के साथ ही साथ, गज, अश्व, रथ एवं वल-शाली तथा उद्भट भटों का समूह भी निकला और सभी दिशाओ में व्याप्त हो गया । उस सेना के साथ ही प्रलय-काल के आदित्यो की भाँति अद्भुत शौर्य के साथ खड्गरोम, वृश्चिकरोम, सर्परोम तथा अग्निवर्ण नामक राक्षस भी युद्ध के लिए निकल पडे । तव सारे समुद्र क्षुव्ध हुए, समस्त लोक भयभीत हुआ, दिग्गज धँस गये और सभी कुलपर्वत काँप उठे ।

इस प्रकार की युद्ध-सज्जा के साथ जव रावण निकला, तब आकाश में देवता उसे देखकर आपस में कहने लगे—"रावण जिस समय इद्र के ऊपर आक्रमण करने के लिए क्रोध से निकल पडा था, उस दिन भी उसकी युद्ध-सज्जा तथा क्रोव आज के समान नही थे। आज अवश्य वह अपनी सारी शक्ति के साथ लक्ष्मण से युक्त राघव पर आक्रमण करेगा । ऐसा सोचते हुए रत्नमय विमानो में आरूढ हो सभी देवता एकटक हो रण की गति देखने लगे । वानर-सेना-रूपी अरण्य को जलाने के लिए आनेवाले दावानल की भाँति अत्यधिक वेग से आक्रमण करनेवाली राक्षसो की सहस्रो सेनाओ को देखकर वानर-वीरो ने अगद के साथ अट्टहास करते हुए वडे उत्साह से सिंह-गर्जन किया । फिर, विशाल वृक्षो, भारी पर्वतो तथा गिरि-शृगो को उठाये हुए पर्वताकार वानर-सैनिको ने राक्षस-सेना पर इस प्रकार आक्रमण किया, जैसे दक्षिण समुद्र तथा उत्तर समुद्र एक दूसरे से टकरा गये हो। तव दानवो ने क्रोव से जलते हुए दहाडो, धमकियो तथा हुकारो के निनादो से आकाश को भरते हुए अपने मदमत्त गजो के समूह को उनके ऊपर चलाते हुए वहुत वेग से जाने-

वाले अश्वो को, उनपर दौडाते हुए रथो को अधाधुध चलाते हुए, पैदल सेना से उन पर भयकर आक्रमण कराते हुए, उनका सामना किया । फिर, उन्होने करवाल, मूसल, मुद्गर, परशु, तोमर, शर तथा चक्रो से वानरो पर प्रहार किया और उन्हें काटा, चुभोया, रौंदा तथा पृथ्वी पर गिराकर नाना विधि से उनका सहार किया । इस भयकर आक्रमण से क्रुद्ध होकर वानर-वीरो ने उद्धत रण-कौशल प्रदर्शित करते हुए निकट ही रहनेवाले पर्वतो, असख्य गिरि-शृगो, वृक्षो तथा शिलाओ को उठाकर राक्षसो पर फेंका । फिर, घोडो पर कूदकर घुडसवारो को पदाघातो से नीचे गिराते, भयकर रूप धरकर गज-समूहो पर पिल पडते और पहाडो से उन पर प्रहार करके महावतो को मारते, और हाथियो के कुभ-स्थल पर ऐसा प्रहार करते कि हाथी पृथ्वी पर गिर पडते । फिर वे अश्वो, सारथियो तथा रथिको के साथ रथो को एकदम ऊपर उठा लेते और उसे रण-मध्य में फेंककर उसको चूर-चूर कर देते। सारी पृथ्वी उस समय काँप उठती। इतना ही नही, वे पदचर सेना पर पर्वतो तथा वृक्ष-समूहो से भयकर प्रहार करते, उन्हें दाँतो से काटते, हथेलियो से मारते, पैरो से कुचलते, नखो से नोचते, पूँछो से अच्छी तरह पीटते और अपने हाथ के मुक्को से उनपर प्रहार करते।

पनस, नील, अगद आदि प्रमुख वानर इससे सतुष्ट न होकर दुर्वार गति से आकाश की ओर उडकर और वहाँ से राक्षस-सेना पर पहाडो की ऐसी वर्षा करते, जैसे प्रलय के समय बिजलियो की वर्षा होती है । इस प्रकार की शैल तथा पाषाणो की वर्षा से राक्षस-सेना में हाथी गिरे, महावत जहाँ के तहाँ मरे, अश्व पृथ्वी पर लोटने लगे और उनपर अश्वारोही गिरने लगे, रथ पिस गये, सारथी समाप्त हो गये, शव रौंदे गये, मास-खड बिखर गये, मुकुट पृथ्वी पर लोटने लगे, मस्तक फूटने लगे, रक्त की धारा बहने लगी, शरीर छिन्न-भिन्न होने लगे, अँतडियाँ छितराने लगी और खड्ग टूटने लगे । उस समय वह रण, विविध भोग-विलसित पर्जन्य* (मेघ--इन्द्र) की सपत्ति की भाँति महान् अभ्र-मातग* (ऐरावत--श्वेत गज) के मद से सिंचित था, अति रौद्र रुद्र-विहार (कैलास पर्वत--श्मशान) की भाँति आहत गज एव असुरो से युक्त हो पिशाचो के लिए आनद-दायक था । अक्षीण राम-कटाक्ष के समान प्रेक्षण-हृष्ट-विभीषण * (देखने में भयकर, देखकर सतुष्ट विभीषण) था, कलियुगात के भयकर काल के समान बल-रहित एव विध्वस्तधर्मा* (धर्म-भ्रष्ट, नीति-भ्रष्ट) था, रात्रि के उपरात विकसित कमलिनी * (सरोवर--कमलिनी) की भाँति शिलीमुखो* (बाण--भ्रमर) से आश्रित पुण्डरीक * (कमल--श्वेतच्छत्र) समूह के समान था, उदार व्यक्ति के सुदर एव शुभप्रद सदन की भाँति आरक्त * (अनुरक्त, रक्त से सींचे), मार्गणो * (बाण--याचक) से परिपूर्ण था, शाश्वत-पुण्यमूल नदी के पति (समुद्र) की भाँति हरि-शक्ति-निर्मथित * (साँप से मथित, वानरो से मथित) हो भयकर दीखता था और निर्मल वेद-विहित यज्ञ की भाँति देव-लोक के चित्त को प्रसन्न करनेवाला था। ऐसे भयकर रण में रक्त-सिक्त हो, अँतडियाँ-रूपी प्रवालसमूह, रथ-रूपी नावें, टूटकर गिरे हुए रथ-चक्र-रूपी कच्छप-समूह, शव-रूपी मगर, कटकर गिरी हुई भुजाएँ-रूपी साँप, आयुधो का चूर्ण-रूपी रेत, गज-समूह-रूपी विशाल पर्वत, दष्ट्र-रूपी तिमि-तिमिंगल,

*चिह्नित शब्द श्लिष्ट हैं ।--ले०

बृहत्काय अश्व-समूह-रूपी चल एवं उत्तुंग तरंगें, विविध अश्वों की लार-रूपी उज्ज्वल फेन, धवल आतपत्र-रूपी हंस, असंख्य मुकुटों की प्रभा-रूपी वाडवाग्नि-शिखाएँ, बिखरे हुए मांस-खंड-रूपी मणियाँ, संतुष्ट निशाचर, प्रेत एवं बैतालों का अट्टहास-रूपी भयंकर घोष रघुराम-चंद्र-रूपी चंद्र, उनकी हास्य-द्युति-रूपी चंद्रिका से युक्त हो रक्तसमुद्र-रूपी समुद्र उमड़ रहा था।

१३८. वानरों के द्वारा खड्गरोम आदि राक्षसों का वध

तब हनुमान् को असुरेंद्र पर आक्रमण करने के लिए उद्यत होते देखकर पर्वताकार-वाला अनुपम साहसी, रुचिर खड्ग से संपन्न, खड्गरोम क्रुद्ध हुआ और कहने लगा—'हे पवनकुमार, उधर कहाँ जा रहे हो ? उधर जाने की क्या आवश्यकता है ? मैं तो यहाँ हूँ ही, इधर आओ।' यह सुनकर पवनपुत्र उसपर कूद पड़ा और उसके शरीर के रोमों के पैने खड्ग धाराओं में डूब-सा गया। किंतु किसी तरह वह उसमें बाहर निकला और भयंकर रूप धारण करके अपनी उन्नत शक्ति को प्रकट करते हुए, कुलपर्वत की समता करनेवाले एक विशाल पर्वत को उठाकर भयंकर गर्जन करके उसे उस राक्षस पर ऐसा फेंका कि पृथ्वी काँप उठी। किंतु उसने अपने रोम-खड्ग की धाराओं से उसको खंडित कर दिया और वानर-सेना को काटते हुए हनुमान् पर आक्रमण किया। तब हनुमान् ने एक विशाल पर्वत को उठाकर उस राक्षस-वीर पर ऐसा प्रहार किया कि वह वज्र के आघात से आहत शैल की भाँति गिर पड़ा।

तब सर्परोम ने भयंकर सर्प की भाँति क्रुद्ध हो, बड़े दर्प से अंगद पर आक्रमण किया और अपने रोम-सर्प के समूह से उसे पीड़ित किया। तब अंगद ने प्रलय-काल के यम की भाँति जलते हुए उस राक्षस पर अपनी हथेली से ऐसा प्रहार किया कि उसका सिर फूट गया और रक्त की धाराएँ बहने लगीं। फिर भी, रोषाग्नि उगलते हुए उस राक्षस ने भयंकर रूप धारण करके अंगद के अंगों पर अपने रोम-सर्पों से आघात किया। तब अंगद ने अत्यधिक क्रोध से उस राक्षस के सिर पर अपनी भयंकर मुष्टि से प्रहार किया और उसे नीचे गिराकर पैरों से रौंदते हुए उसका सिर तोड़कर फेंक दिया।

तब वृश्चिकरोम ने भीषण रण-कुशल नील पर आक्रमण किया और विष-ज्वालाओं को उगलनेवाले अपने रोम-वृश्चिकों के प्रयोग से नील को अत्यधिक पीड़ा पहुँचाई। इसको सहने में असमर्थ होकर नील ने उस दानव की परवाह किये बिना एक विशाल शाल-वृक्ष को उसपर फेंका। तब उस राक्षस ने अपने विष-भरे रोम-कंटकों से उस वृक्ष को तोड़ डाला। यह देखकर नील ने क्रोधातुर हो, अपने भयंकर बाहुबल का प्रदर्शन करते हुए असंख्य शाखाओं से युक्त एक विशाल वृक्ष को उखाड़ा और उससे उस राक्षस के वक्षस्थल पर ऐसा प्रहार किया कि उसके प्राण जाते रहे। सभी देवता हर्ष से फूल उठे।

उसके पश्चात् शत्रुभंजक एवं अकुंठित पराक्रमी अग्निवर्ण ने प्रचंड क्रोध से विशाल वनों को दुर्वार गति से जलानेवाली दावाग्नि के समान अपने अंगों में अगणित अग्नि-शिखाओं को दीप्त करके वानर-सैनिकों को जलाकर भस्म करते हुए आगे बढ़ा। राम ने उसे क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखा, वानर-वीरों का पराभव होते भी देखा, करुणार्द्रचित्त

होने के कारण वे उसके अत्याचारो को सहन न कर सके, किंतु उसकी भयकरता को देखकर सिर कँपाते हुए विभीषण से कहने लगे—'हे विभीषण, मै अनुमान नही कर पा रहा हूँ कि यह कौन आ रहा है । पता नही कि रावण की आज्ञा से स्वय अग्निदेव युद्ध करने के लिए आ रहे है या कोई राक्षस-वीर ही आ रहा है । यह कौन है ? इसका परिचय मुझे दो ।'

तब विभीषण ने कहा—'हे देव, यह अग्निवर्ण है । यह अपने शरीर से अग्नि-ज्वालाओ को प्रज्वलित करके पर्वतो को भी भस्म कर सकता है, यह अखड वीर एव महान् घमडी है ।' यह सुनकर राम आश्चर्यचकित हुए । फिर भी, उसके भयकर औद्धत्य को देखकर उन्होने उस पर वारुणास्त्र चलाया । तब उस अस्त्र ने समस्त आकाश को घने बादलो से आच्छादित कर दिया और अविराम गति से वर्षा करके उस राक्षस के द्वारा प्रज्वलित अग्नि-ज्वालाओ को बुझाकर भयकर ध्वनि के साथ उस राक्षस का वध कर डाला ।

युद्ध में अग्निवर्ण को इस प्रकार गिरते हुए देखकर, रावण ने आँखो से अग्निवर्षा करते हुए, प्रलय-काल के सूर्य की भाँति जलती हुई दृष्टियो से राम को देखकर कहा—'हे राम, क्या तुम मुझे नही पहचानते ? अपने निष्ठुर वज्र की दुर्वार धारा से कुलपर्वतो को खंडित करनेवाले इद्र भी यदि बडी उद्धतता से अपने देवताओ के साथ युद्ध में मेरा सामना करे, तो मै उसे भी परास्त कर दूँगा । तब, मै तुम्हारी क्या परवाह करूँगा ? क्या, तुम्हारे जैसे क्षुद्र प्राणियो का प्रयत्न मुझे परास्त कर सकेगा ? अब तुम अपनी शूरता प्रकट करो और अत तक मेरा सामना करते रहो। मै अपने शस्त्रास्त्रो से तुम्हें गिरा दूँगा और तुम्हें अपनी शक्ति का परिचय दूँगा।'

रघुराम उस दुरात्मा का प्रलाप सुनकर हँस पडे और मत्त सिंधुर (हाथी) के चिंघाड सुननेवाले सिंधुरातक मत्त सिंह की भाँति चुप ही रहे । तब रामानुज ने क्रुद्ध होकर रावण पर आक्रमण किया और उस पर भयकर बाण चलाने लगे। तब रावण ने उन शरो को सहज ही खडित कर दिया और उनकी परवाह किये बिना भानु पर आक्रमण करने के लिए आनेवाले स्वर्भानु (राहु) के समान भानुवशाधीश (राम) पर आक्रमण करके दारुण वज्रधर की समता करनेवाले बाणो से उन्हें ढक दिया। तब राम ने क्रोधोन्मत्त हो, अगारो को उगलनेवाले निष्ठुर अस्त्रो को उस राक्षस पर चलाया। तब रावण उन बाणो का सामना करने के लिए युद्ध-भूमि के मध्य आया।

१३९. इंद्र का मातलि के द्वारा राम को रथ भेजना

तब इद्र ने राम को देखकर मातलि से कहा—'देवताओ के हित के लिए ही राघव राक्षसो से घोर युद्ध कर रहे है । किंतु वे पदाति हो पृथ्वी पर खडे हैं और राक्षस रथ पर आरूढ है । ये लोकोन्नत (राम) दुःखो से पीडित हो उस कुमार्गी के सामने नीचे खडे है । वेद-पल्लवो पर विहरण करनेवाले, सुखी तथा सपन्न व्यक्ति आज कठोर रणभूमि पर खडे है । कमला के मन-रूपी रथ पर अत्युन्नत सुख-राशि में डोलनेवाले आज पृथ्वी पर खडे है । अत, हे मातलि, तुम शीघ्र उनके लिए दिव्य रथ पृथ्वी पर ले जाओ ।

तब वायु तथा मन के वेग से जानेवाले अश्वों से युक्त कनक-दंडो में बँधी हुई धताकाओ से विलसित, महनीय कातियुक्त मणि-समूहो से जटित, वालसूर्य के समान दीप्त होनेवाले रथ को लिये हुए मातलि पृथ्वी पर उतर आया और राम के समक्ष खडे होकर हाथ जोडे हुए राम से निवेदन किया—'हे देव, हे राघव-भूपाल, हे समस्त देवताओ के आराध्य, हे भक्त-जन-साध्य, इद्र ने आपके लिए शर, चाप, कवच आदि से युक्त दिव्य रथ भेजा है । अब आप कौशिक की आज्ञा के अनुसार इस वज्र-कवच को धारण कीजिए और इस दिव्य रथ पर आरूढ होकर इन आयुधो से उस दुर्मदाध राक्षस का सामना करके उसपर विजय प्राप्त कीजिए। पूर्वकाल में मेरे सारथी के रूप में रहते हुए इद्र ने समस्त दानवो को जीत लिया था ।' तब राम ने विभीषण से परामर्श करने के पश्चात् उस रथ की परिक्रमा की और अपने शरीर की उज्ज्वल काति को चौदहो भुवनो में आकाश तक व्याप्त हुए वानरो के जय-निनादो के बीच, उस रथ पर ऐसे आरूढ हुए, जैसे कमल-बधु (सूर्य) उदयाद्रि पर आरूढ होता है । उस समय समस्त आकाश हिलने लगा और शरत्-कालीन मेघ एव सध्या के मेघो की समता करनेवाले गरुड, उरग तथा देवताओ के विमानो से सारा आकाश भर गया । इस दृश्य को देखने के लिए एकत्र सुर, खेचर तथा किन्नर अत्यत हर्ष तथा भय से अभिभूत हो कहने लगे—'राम-रावण का यह द्वद्व दो पर्वतो का द्वद्व है । ये समुद्रयुगल है, पावकद्वय है, आकाशद्वय है । आज ये दोनो आपस में भिड रहे है । यह समान जोडी है । न जाने क्या होगा ।' विजय की आकाक्षा एव विजय की उत्कट अभिलाषा से राम तथा रावण एक दूसरे से भिड गये । तब समस्त जग कपित हुआ, पहाड प्रकपित हुए, दोनो ओर की सेनाएँ आकपित हुई, उनकी दृष्टि-रूपी वज्रपात से बिजलियाँ पिसकर आकाश में विखर गई; दोनो पक्षो की सेनाओ के सिंहनाद से स्वर्ग आदि लोक क्षुब्ध हो उठे । वे दोनो प्रवीण धनुर्धर, अन्योन्य विजय की इच्छा रखते हुए अपने रथो को विविध रीतियो से चलाते हुए, सूर्य तथा अग्नि-सम प्रचड, वज्र के समान तीक्ष्ण शरो को करो, कठो, पार्श्वो, स्कधो, वक्षो, ललाटो, जाँघो तथा पसलियो पर चलाकर एक दूसरे को पीडित करने लगे । वे दोनो आपस में भिडते, एक दूसरे पर रोब जमाते, वाणो से युद्ध करते । उस समय उनकी चाल-ढाल, पराक्रम एव साहस देखकर आश्चर्य होता था । वे दोनो सफल पराक्रमी वीर जब एक ही समय में वाण चलाने लगते, तब यह जानना असभव हो जाता कि कब वे तरकस में रखे तीरो को निकालने के लिए अपने हाथ फैलाते, कब शरो को धनुष पर चढाते, कब धनुष की प्रत्यचा खीचते, कब लक्ष्य साधते और वाण छोडते । उन दोनो के द्वारा वेग से चलाये जानेवाले भयकर वाणो को गिनना तो असभव ही हो गया, किंतु यह कहना भी असत्य नही है कि उनके वाण प्रचड कोदण्ड-रूपी रवि-मडल से निकलनेवाले चचल किरणो के समान एक के पीछे एक चलते थे । धनुर्विद्या में पारगत तथा अक्षय तूणीरो से सपन्न वे दोनो वीर एक शर के पीछे दस शर, दस के वदले सौ शर, सौ के वदले सहस्र शर, सहस्र के वदले दस सहस्र शर, दस सहस्र के वदले एक लाख शर, एक लाख के वदले एक करोड प्रतिशर चलाते थे और सभी शर एक ही समय में राम-रावण पर लग जाते थे ।

१४०. राम का रावण के बाणों का प्रतिबाण चलाना

तब देवताओ के शत्रु रावण ने अपने धनुष की डोरी को खीचकर शीघ्र गति से देव तथा गधर्वों के बाण चलाये। उनके आने का ढग देखकर समस्त अस्त्रो के ज्ञाता राम ने विना विलब किये, देव तथा गधर्व-बाणो को चलाकर उन्हें टुकडे-टुकडे कर दिया। तब क्रोधोन्मत्त हो रावण ने राम पर राक्षस-बाण चलाया। वह बाण उभरी हुई आँखें, दीर्घ दष्ट्र, खुरदरे, छोटे तथा घुँघराले केश तथा विशालकाय दानवो का रूप धरकर आगे बढा। यह देखकर रघुकुलाधीश ने रोष से वैष्णवास्त्र का प्रयोग किया और जिस प्रकार सूर्य की काति अधकार को नष्ट करती है, वैसे ही उसने राक्षस-बाण के प्रताप को नष्ट कर दिया। तब रावण ने नागास्त्र का सधान करके चलाया। उसको चलाते ही, उस महा बाण से दस, बीस, बारह, दो, तेरह, तीन, पद्रह तथा पाँच शिरोवाले भयंकर सर्प अपने शिरो पर उज्ज्वल कातियुक्त मणियो को धारण किये हुए निकल पडे। उद्धत गति से आनेवाले वे सर्प ऐसे दीख रहे थे, मानो कि सर्प-सेना राम पर इस विचार से आक्रमण करने के लिए निकली हो कि राम गरुडवाहन है। अपनी अत्युज्ज्वल ज्वालाओ को समस्त आकाश में व्याप्त करते हुए आनेवाले उन सर्पो को देखकर राम ने गारुडास्त्र चलाया। तब उससे गरुड के आकारवाले असख्य बाण निकले और अपने पखो की फडफडाहट से उत्पन्न वायु से पर्वतो को भी हिलाते हुए वे आगे बढे और बीच में ही उन नाग-बाणो को तोड डाला। यह देखकर देवता आकाश से हर्ष-निनाद करने लगे।

उसके पश्चात् राघव ने क्रुद्ध होकर दैत्यराज पर अग्नि-बाण चलाया। वह बाण, धूम एव स्फुलिंगो से दिशाओ को जलाते हुए, अपनी ज्वालाओ को चारो ओर व्याप्त करते हुए रावण पर आक्रमण करने चला, तो रावण ने भयकर वारुणास्त्र चलाया। तब उस अस्त्र ने समस्त आकाश में घनघोर बादल व्याप्त कर दिया और घोर जल-वृष्टि करके अग्नि-बाण के प्रताप को नष्ट करके भयकर गर्जन किया। तब राम ने उस शर पर वायव्यास्त्र चलाकर उसकी शक्ति को नष्ट कर दिया। तब उस राक्षस ने गजमुखास्त्र का प्रयोग किया। उस अस्त्र के प्रयोग से असख्य गज-समूह अपने गड-स्थलो से मद-जल की धाराएँ बहाते हुए, राम पर आक्रमण करने चले। तब राम ने नृसिंहास्त्र चलाया। उस बाण से असख्य सिंह बादलो के समूह के समान अपने घोर गर्जनो से दिग्गजो को विचलित करते हुए, अपने कुलिश-सम नखो से हाथियो के कुभस्थलो को चीरते हुए उन्हें मार डाला। तब देवताओ ने राघव की प्रशसा की।

१४१ रावण का राम पर शूल चलाना

तब रावण ने क्रुद्ध होकर प्रलय-काल की अग्नि-ज्वालाओ को उगलनेवाला, समस्त-लोक-भयकर शूल उठाया और अपने सिंहनाद से पृथ्वी को कँपाते हुए, समुद्रो को क्षुब्ध करते हुए, समस्त दिशाओ को गुजायमान करते हुए, सभी भूतो को भयभीत करते हुए कहने लगा—'हे राम, इस शूल की अग्नि से मैं तुम्हें और तुम्हारे भाई को भस्म कर दूँगा और जिन वीरो ने युद्ध में तुम्हारा सामना करके स्वर्ग को प्राप्त किया है, उनकी पत्नियो की अश्रुधारा को रोक दूँगा।' इस प्रकार, कहते हुए राम पर उसने वह

शूल चलाया। तब राम ने प्रलय-काल की अग्नि पर वर्षा करनेवाले इद्र की भाँति अद्भुत तथा पैने बाणो की वर्षा की, किंतु उन बाणो से रावण का शूल नष्ट नही हुआ। वह शूल उन सभी बाणो को खडित करते हुए राम की ओर बढने लगा। तब राम ने देवेंद्र की भेजी हुई शक्ति लेकर उस पर चलाया। तब उस शक्ति ने घटिकाओ का रव करते हुए, अग्नि-ज्वालाओ को उगलते हुए, यक्ष, देवता तथा खेचरो को आनंद देते हुए, राक्षस-लोक को भयभीत करते हुए, मन तथा वायु के वेग से आनेवाले रावण के शूल को भस्म कर दिया। तब रावण ने क्रुद्ध होकर अपने दोनो हाथो में दस धनुष धारण करके भयंकर गर्जन करते हुए राम को शर-वर्षा में डुबो दिया। किंतु राम ने अपने एक ही कोदड से उसके सभी शरो को काट डाला। तब रावण ने मद, मात्सर्य, अभिमान एव हठ के साथ आँखो से अग्नि की वर्षा करते हुए, रघुराम पर घोर शर-वृष्टि की। उससे सतुष्ट न होकर उसने दस बाणो से मातलि को तथा दस और बाणो से अश्वो को सज्ञाहीन कर दिया और एक विषम अस्त्र को चलाकर रथ की ध्वजा को काट डाला। वानर तथा देवता विपुल चिंता के भार से विवश-से हो गये। समस्त भुवन भीत हो गया, बुध (ग्रह) रोहिणी में पहुँचकर पीडा पहुँचाने लगा। अपने महान् तेज से भय उत्पन्न करते हुए मगल ग्रह विशाखा में पहुँच गया। चचल एवं भयकर गति से समुद्र उमडने लगे, उत्तुग लहरें आकाश को छूने लगी। वाडवाग्नि की लपटें धुएँ के समान ऊपर उठने लगी। सूर्यबिम्ब से टकराती हुई उल्काएँ भयकर दीप्ति के साथ गिरने लगी। सूर्य भी तेजोहीन होकर क्षीण प्रकाश से चमकने लगा।

१४२. अगस्त्य के द्वारा राम को आदित्यहृदय का उपदेश

मैनाक की भाँति अविचल होकर दशकठ जब बडे वेग से बाणो को चलाने लगा, तब राघव सभ्रमित हो देखने लगे। तब अगस्त्य मुनि वहाँ आये और राम को देखकर कहने लगे—"हे राम, हे महाबाहुबली, युद्ध में अवश्य विजय दिलानेवाली, गोपनीय 'आदित्यहृदय' नामक मत्र का आप भक्ति-भाव से अनुष्ठान कीजिए। उस महामत्र के जप से आप अवश्य शत्रुओ को जीत सकेंगे। इतना ही नही, वह आयु को बढाता है, दु.ख का दमन करता है और समस्त कल्याण का कारण बनता है। हे समस्त सुरासुरो के वद्य, कमल-बंधु सूर्य की पूजा आपको करनी चाहिए। यही इस ससार के नेत्र-समान है और अपनी किरणों के द्वारा समस्त ससार में विचरण करता है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने ब्रह्म-कल्प के प्रारभ में सूर्य का रूप धारण किया था, इसलिए आपको उचित है कि सूर्य को समस्त देवताओ का प्राण मानें। जो व्यक्ति इस कमल-बधु की स्तुति करता है, उसे युद्ध में अवश्य विजय मिलती है।"

इतना कहकर अगस्त्य मुनि अपने आश्रम को लौट गये। राम ने बडी भक्ति के साथ सूर्य-मत्र का जप किया और महोन्नत शक्ति से विलसित होते हुए, रावण का औद्धत्य देखकर क्रोध में अपनी आँखो से अग्नि उगलने लगे। उनकी भौहें तन गईं और उन्होने रावण के रथ में जुते हुए भयकर अश्वो पर श्रेष्ठ बाणो से प्रहार किया और तीन शरो से रावण के ललाट पर प्रहार करके उसे रक्त-सिक्त कर दिया। रक्त-सिक्त अगों से

युक्त लंकेश्वर तब ऐसा दीखने लगा, मानो रामचद्र के शर-रूपी वसत के आगमन के प्रभाव से विकसित तरुण, अरुण अशोक वृक्ष हो। तब राक्षसपति ने रोष से राम के विशाल वक्ष पर एक सहस्र बाण चलाये। वे बाण काकुत्स्थ-वंशज के शरीर में प्रवेश करके आश्चर्यजनक रीति से उनके शरीर के पार निकल गये और पृथ्वी में धँसकर पाताल में प्रवेश कर गये, मानो वे बता रहे हो कि अधम राक्षस के द्वारा प्रयुक्त हो, देवताओ के दुर्भाग्य से विचलित न होकर अपनी विषम शक्ति को प्रकट करते हुए, निर्मल गुणो से रहित हो, धर्म-मार्ग को तजकर, अपने औद्धत्य से राघव को दु:ख देनेवाले बाण अधोगति के सिवा सद्गति कैसे प्राप्त कर सकते हैं? क्षतो से बहनेवाले रक्त से राघव लथपथ हो गये और प्रलय-काल की भीषण अग्नि-ज्वालाओ की भाँति जलते हुए, आँखो से निकलनेवाले अग्नि-कणो को आकाश-भर में व्याप्त करते हुए प्रलय के समय जहाँ-तहाँ विचरनेवाले यम के समान भयकर तेज से युक्त हो, प्रचड मार्त्तण्ड-मण्डल की किरणो के समान तेजस्वी शर-समूह को चलाकर रावण के गर्व, मद तथा शक्ति का नाश करते हुए उसका सारा शरीर ऐसा जर्जर कर दिया कि वह निश्चेष्ट-सा रह गया। रघुराम के बाणो के वेग को देखकर रावण निर्वेद से अभिभूत होकर खड़ा रह गया।

१४३. राम-रावण का परस्पर दोषारोपण

तब प्रताप-भास्कर राघव ने दशकठ को देखकर कहा—"क्यो रे रावण, निर्वेद से चेष्टाहीन होकर तू ऐसे क्यो खड़ा है? तू तो कहता था कि मैं कभी हारूँगा नही। वे दर्प-पूर्ण वचन अब कहाँ गये? रे दशकंठ! अपने भाई कुबेर का अपमान करके, एक पराये व्यक्ति की तरह उसका पुष्पक विमान ले आना और वन में हमें धोखा देकर सीता को चुराकर ले आना, क्या ये सब वीरोचित कार्य हैं? क्या, इन्ही कार्यो पर तू गर्व करता था? अपने पूर्व जन्म के पापो के कारण तू मेरे दृष्टिपथ में पड़ गया है। अब मैं तेरा सहार किये बिना कैसे छोड़ दूँ? मैं न तुझे छोड़ूँगा और न तेरी लका को छोड़ूँगा, चाहे हरिहर और ब्रह्मा ही तेरी सहायता करने के लिए क्यो न आवें, फिर भी मैं युद्ध में तेरा वध अवश्य करूँगा, तुझे कदापि छोड़ूँगा नही। रे रावण, आज मैं तेरा रक्त-मास समस्त भूतों को खिलाऊँगा। तू क्रूर है, अति कामातुर है; दुष्ट-बुद्धि है, और देवताओं का द्रोही है, इसलिए तू युद्ध-भूमि से भाग भी जायगा, तो भी तेरा पीछा करके तेरा सहार करना मेरे लिए महान् पुण्य का कार्य होगा। तेरी मृत्यु अब तेरे निकट आ पहुँची है, इसलिए तुझे ऐसी बातें कहने से कोई प्रयोजन नही है। आज मैं तेरे पराक्रम, बाहुबल तथा वैभव को समाप्त करूँगा। क्या, तू नही जानता कि मैंने तेरे भाई भुवन-भयकर खर नामक दैत्य का संहार किया है। और एक बात मैं तुझसे कहूँ, तू यदि आज भी जानकी को मुझे लौटाकर मेरी शरण माँगो, तो मैं तेरी रक्षा करूँगा। इसमें सदेह मत कर। यदि युद्ध करेगा, तो तेरी विजय असभव है और पराजय निश्चित है। (ब्रह्मा के) वर के प्रताप से तूने दीर्घ आयु पाई है, कई प्रकार की मायाओ को जानता है। भयकर युद्ध के शस्त्रास्त्र रखता है और इंद्रादि समस्त दिक्पालो तथा तीनो भुवनो को तूने जीत लिया है। ऐसे वीर का वध आज मैं अवश्य करूँगा।"

रघुराम की ये बातें रावण को अग्नि-ज्वालाओ के समान जलाने लगी। तब दश-कठ क्रोधोन्मत्त हो रघुराम से कहने लगा—'कदाचित् तुम इस बात के कारण फूल रहे हो कि तुमने कुछ क्षुद्र राक्षसो का सहार किया है। तुम मुझे नही जानते। मेरी शक्ति का परिचय तुम्हें नही है। मै ने स्वर्ग के निवासी यक्ष, गधर्व, देवता तथा दिक्पालो का अपमान करके उन्हें परास्त किया है और वडी निरकुशता के साथ राज्य करता रहा। ऐसे वल-पराक्रम से सपन्न मै तुम्हारी परवाह करूँगा? जवतक मैं तुम्हें और तुम्हारे भाई का युद्ध में सहार करके उस दृश्य को जी भरकर नही देखूँगा, तबतक मै लका' में प्रवेश नही करूँगा।' ऐसा कहकर रावण ने प्रलय-काल की अग्नि के समान जलनेवाले असख्य दिव्य अस्त्र-शस्त्र राम पर चलाये। तव राम ने क्रुद्ध होकर एक प्रतिवाण छोडा। उसके पश्चात् उन्होने वडे हर्ष से उन दिव्यास्त्रो का स्मरण किया, जिन्हें विश्वामित्र ने ताडका के वध के दिन दिया था। स्मरण करते ही वे सभी दिव्यास्त्र स्फुलिंगो को विकीर्ण करते हुए उनके समक्ष साकार होकर उपस्थित हो गये। तव राम ने उन दिव्यास्त्रो का समुचित रीति से सधान किया और दायें-बायें इस प्रकार चलाया, जैसे पर्वत पर बिजलियो की वर्षा होती है। इससे भी तृप्त न होकर राम ने अपनी उद्धत शक्ति का प्रदर्शन करते हुए ऐसी वाण-वृष्टि की कि दशकठ दृष्टि से भी ओझल हो गया।

१४४. रावण की मूर्च्छा

राम के शरो के आघात से आहत हो रावण रथ परही मूर्च्छित होकर गिर पडा। यह देखकर कालकेतु भयाकुल हो उस रथ को युद्ध-भूमि के वाहर ले गया। इससे देखकर देवता हर्ष-निनाद करने लगे और वानर-समूह उत्साह से सिंह-गर्जन करने लगा। थोडी देर के पश्चात् राक्षसराज की मूर्च्छा दूर हुई। वह रण-विक्रम का प्रदर्शन करते हुए रथ पर खडे हुए अपने सारथी से कहा—'क्यो रे, तुमने ऐसा अपराध क्यो किया? युद्ध-भूमि से तुम रथ को इतनी दूर क्यो ले आये? मेरी कीर्त्ति को कलकित करते हुए तुमने राम को हँसने का अवसर क्यो दिया?' तव सारथी ने कहा—'हे देव, परास्त होने पर या शत्रु से मिलने पर मुझे रथ को युद्ध-भूमि से वाहर नही लाना चाहिए। रथी को सकट में देखकर ही रथ को युद्ध-भूमि से लौटा ले जाना सारथी का रण-धर्म है। इसलिए मैं, आपको यहाँ ले आया हूँ।' तव रावण ने उसके विवेक की प्रशसा करते हुए बडे हर्ष के साथ उसे उचित भेंट दी और उसको देखकर कहा—'वह देखो, राम अव भी रण के मध्य खडा है। उसके रथ के निकट हमारा रथ ले चलो।' तव कालकेतु ने बडे वेग से रथ चलाकर उसे राम के रथ के आगे प्रतिष्ठित किया। दशकठ के रथ को उद्धत वेग से आते हुए देखकर राम ने मातलि से कहा—'रावण का रथ आ रहा है। तुम मेरा रथ शीघ्र उसके निकट ले चलो। दृष्टि को चचल किये विना, तीव्र वाणो के भय से विचलित हुए विना, वागडोर को अच्छी तरह सँभाले हुए अश्वो को हाँको। हे मातलि, घोडो का मन तुम जानते हो। ऐसा सारथ्य करो कि रथ का वेग विचित्र दिखाई पडे। कोई ऐसी वात नही, जो तुम नही जानते। मैं और तुम्हें क्या कहूँ?' तव मातलि ने अपना रथ विपरीत मार्ग से रावण के रथ के पास ले गया। तव लोककटक तथा तीनो लोको को

भयभीत करनेवाले रावण ने पृथ्वी को कँपाते हुए अद्भुत अस्त्र चलाकर रथ को ढक-सा दिया, सारथी को व्याकुल कर दिया, अश्वो को शक्तिहीन कर दिया और एक प्रचड बाण चलाकर राघव का धनुष तोड़ दिया और कई बाणो से राघव को भी पीड़ित किया। तब क्रुद्ध होकर राम ने भयकर रूप धारण करके देवेंद्र के द्वारा भेजे हुए धनुष को सँभाला और उसकी प्रत्यचा के टकार से ब्रह्माड को विदीर्ण करते हुए दानवो के गर्वांधकार का नाश करने के निमित्त सूर्य-सम भास्वर सैकडो, सहस्रो, लाखो, करोड़ो तथा अरबो की सख्या में शर रावण पर चलाये। वे बाण कदाचित् यह सोचकर उसके शरीर को पार कर जाते थे कि यह महान् पापी है, क्रूर है, चचल है, मायावी है, धर्मबद्ध रहनेवाले हमें इसके शरीर में नही रहना चाहिए। कुछ बाण कदाचित् यह सोचकर आकाश की ओर, पृथ्वी की ओर और लंका की ओर जाने लगे, मानो वे यह समाचार पृथ्वी को देवताओ तथा सीता को सुनाने जा रहे हैं कि अब अधिक विलब नही है, रावण अब मरनेवाला ही है, तुम अब व्याकुल मत होओ। अग्नि की प्रभा के समान दीप्त होनेवाले राम के बाण मूसलाधार वर्षा की भाँति रावण पर गिरने लगे, फिर भी रावण अविचल रहते हुए प्रचड शरो से राम के बाणो को काटने लगा। इस प्रकार, विशाल बाहुबल तथा रण-कौशल से युक्त वे दोनों पराक्रमी समान सत्त्व, समान वेग, समान बाण-सपत्ति, समान रण-कौशल से युक्त हो, भिड़ गये, और बधन से मुक्त क्रोध से भरे सिंहो की भाँति, सात दिन तथा सात रात तक अविराम युद्ध करते रहे। उस समय रावण के रथ पर मेघ रक्त की वर्षा करने लगे; रथ के अश्वो की पूँछो से अग्नि-कण निकलने लगे, सूर्य की किरणें भिन्न-भिन्न कांतियो में दीप्त होने लगी। रावण को देखकर समस्त भूत कहने लगे—'अब तुम बच नही सकोगे, आज अवश्य मरोगे।' आकाशवाणी हुई—'हे राघव, आप विजयी होगे।'

अपनी पराजय को सूचित करनेवाले दुःशकुनो को देखकर रावण ने विजय की आशा छोड दी। फिर भी, बडे साहस के साथ राघव पर निशित बाण, करवाल, गदाएँ, शूल, परिघ, शक्ति आदि चलाकर उन्हें कष्ट पहुँचाने लगा। किंतु राम ने वज्र-सम तथा प्रचड प्रलयाग्नि की समता करनेवाले अर्द्ध-चद्रास्त्र चलाकर उन्हें बीच में ही खंडित कर दिया। रावण ने अत्यंत भयकर रूप से भीषण बाणो की वर्षा की, तो राघव ने अर्द्ध-चंद्र बाणो से उन्हें काट डाला।

इस प्रकार, विजय की आकाक्षा करके दोनो वीर बड़ी धीरता के साथ परस्पर युद्ध करते रहे। तब वानर एव राक्षस-सैनिक अपने-अपने अस्त्र सँभाले हुए रण-विचक्षण राम-रावण का युद्ध-कौशल देखते हुए चित्रलिखित की भाँति युद्ध भूलकर खडे रहे। अपनी पराजय को निश्चत जानते हुए भी रावण और अपनी विजय निश्चित जानते हुए राम, दोनो बड़ी तत्परता के साथ क्षण-क्षण आगे बढते हुए, उत्साह के साथ युद्ध करने लगे। उसी समय क्रोध से अपनी आँखो से अग्नि-कणो की वर्षा करते हुए राम ने एक पैने अर्द्ध-चद्र बाण से रावण के रथ की ध्वजा को काट डाला। तब रावण ने भी अत्यधिक रोष से घोर बाणो का सधान करके, राम के रथ के अश्वो तथा मातलि पर चलाया। किंतु वे उन बाणो से आहत होकर भी कमल-नालो से आहत व्यक्तियो के

समान विना हिले-डुले निश्चल खडे रहे । तब वानर अट्टहास करते हुए रावण पर पिल पडे । रावण ने अपनी माया से उस वानर-सेना पर महान् शस्त्रो की वृष्टि की । उस वाण-वृष्टि से वानर-वीर भयभीत हो उठे। तब राम ने रावण पर, उसके सारथी, रथ तथा रथ के अश्वो पर असख्य बाण चलाकर उसे व्याकुल कर दिया । दशकठ ने भी दाशरथि पर वाणो की वृष्टि की । तब राम ने अद्वितीय ढग से भयकर बाणो का सधान किया और उनसे समस्त आकाश तथा पृथ्वी को ढक दिया । महेंद्र पर्वत तथा मदराचल के समान धैर्य रखनेवाले वे दोनो वीर, युद्धभूमि में स्थिर होकर इस प्रकार युद्ध करने लगे, जैसे नभ के साथ नभ, समुद्र के साथ समुद्र युद्ध करते हो और 'रामरावणयोर्युद्ध रामरावणयो-रिव' वाली उक्ति को चरितार्थ करने लगे । तब मेघ-गर्जन के समान धनुष की ध्वनि, प्रचड शरो के परस्पर टकराने की ध्वनि, युद्ध के समय सुनाई पडनेवाले भयंकर गर्जन, रथो के चलने से उत्पन्न होनेवाली विपुल ध्वनि तथा घोडो की हिनहिनाहट आदि की सम्मिलित ध्वनि से समुद्र आलोडित हुए, उल्काएँ गिरने लगी, दिशाएँ कपित हो उठी, पृथ्वी हिल उठी, समस्त लोक चकरा गये, पर्वत काँप उठे, दिग्गज चकराने लगे, देवता आनदित हो उठे, समस्त भूत त्रस्त हो उठे और आदिशेष विचलित हो उठा। इस प्रकार, अत्यधिक वीरता के साथ लडते-लडते उन दोनों की बाहुओ का दर्प कुछ शिथिल हुआ, उनकी प्रचडता कुछ कम हुई, और थोडी देर तक अपने-अपने धनुष का सधान करना छोडकर वे एक दूसरे को देखने लगे । चचल फूत्कार, श्रमजल का प्रवाह, चीत्कार आदि के पश्चात् उनकी थकावट आधी घडी में ही दूर हो गई ।

१४५. राम का रावण के कर-चरणों को खंडित करना

तुरत वे फिर रणोत्साह से दीप्त हो उठे और प्रलय-काल के यम की भाँति भयकर रूप धारण करके महान् साहस के साथ रावण से भिड गये। राम ने तब प्रलय-काल के रुद्र के समान भयकर दीखते हुए घोर तथा पैनी कर्त्तरी, आरा तथा भाला को चलाकर उस दशकठ के दसो सिर और बीसो बाहुओ को एक साथ ही काट डाला। सब लोग आश्चर्य-चकित होकर देखने लगे । किंतु दूसरे ही क्षण करवाल, मूसल, मुद्‌गर, शर, चाप तथा केयूरो से युक्त बीस बाहुएँ तथा महान् मुकुटो से अलंकृत दसो सिर ऐसे उग आये कि राम भी इसे देख चकित होकर कहने लगे—'मेरा काटना ही झूठ था ।' इस पर क्रुद्ध होकर दाशरथि ने पुन. उसके सिर और हाथ काट डाले । किंतु जितने वेग से राम उसके सिर काट देते, उतने ही वेग के साथ उसके सिर उग आते थे । सिर के मुकुटो पर वाणो के लगने की ध्वनि कानों में पड़ने के पहले ही नये उगे हुए सिरों से निकलनेवाला भयकर अट्टहास कानो में सुनाई पडता था । रावण के कटे हुए सिरो के स्थान पर तुरत नये सिर उग आते थे और कटे हुए सिरो में राम के बाण गडे हुए रह जाते थे, तो ऐसा लगता था कि मानो रावण ने ब्रह्मा से, केवल कठ पर सिरों के उग आने का ही वर नही प्राप्त किया था, बल्कि शरो में भी सिरो के उग आने का वर प्राप्त किया था । उसके सिरो का कटना, कटे हुए सिरो का बाण के साथ ऊपर उठना, फिर नये उग आये हुए सिरो को बाणो से काटना, ये सभी व्यापार एक के बाद एक इतनी शीघ्र गति से चलते थे

कि दर्शक चकित रह जाते थे और ऐसा लगता था, मानो सौरभ-युक्त राम-बाण-रूपी उत्पलो के साथ रावण के सिर-रूपी कमल-समूह को मिलाकर, रक्त-धारा-रूपी सूत्र में माला गूँथकर, स्वर्ग का माली बार-बार देवताओ को मालाएँ समर्पित कर रहा हो।

रघुराम क्रोध से व्यग्र हो, अपना रण-कौशल दिखाते हुए, अच्छी तरह लक्ष्य साधकर, अपनी दृढ मुष्टि के चमत्कार से, रावण के सिर तथा भुजाएँ काटते जाते थे और शीघ्र ही वे उग आते थे। जितनी ही शीघ्रता से राम उन्हें काटते थे, उतनी ही शीघ्रता से वे उग आते थे। राम के शर-समूह से रावण के सिर तथा करो का कट जाना और फिर उनका निकल आना इस वेग से होता था कि राक्षसो तथा वानरो को इसका पता भी नही लगता था। रघुराम के शरो से कटकर गिरे हुए रावण के सिर न जँभाई लेते थे, न दर्द का अनुभव करते थे, न मद पडते थे, न शक्तिहीन होते थे, न अपने उल्लास से रहित होते थे, न काति-हीन होते थे, न परितप्त होते थे, न पलक मारते थे, न उत्साह खोते थे, और न अपनी क्रुद्ध दृष्टि ही तजते थे। पूर्व की भाँति वही क्रुद्ध दृष्टि, वे ही तनी हुई भौहें, वही अट्टहास, वही गर्जन, वही वाणी, वही अनुग्रह, वही युद्ध की क्लाति, वही धृति, और वही हुकार ? इनसे रहित एक भी सिर उस रण-भूमि में कटकर गिरे हुए रावण के सिरो में नही दीखता था। जो अट्टहास, जो दर्प और जो रोष-पूर्ण दृष्टि, गिरते हुए सिरो में दीखते थे, उसी प्रकार के अट्टहास, दर्प एव रोषपूर्ण दृष्टि उगते हुए सिरो में भी दिखाई पड़ते थे। दानवेंद्र के सिरो तथा बाहुओ से पृथ्वी तथा आकाश के बीच का भाग भरने लगा। यह देखकर राम का क्रोध और भी अधिक बढ गया, वे लगातार बाणो को चलाने लगे। तब रावण अपने कटे हुए सिरो तथा बाहुओ को, नये उगे हुए करो से उठा-उठाकर क्रोधपूर्ण दृष्टि के साथ बडे वेग से राम पर फेंकने लगा। उसके फेंके हुए सिर और भुजाएँ राम पर इस तरह आक्रमण करते हुए जान पडते थे, जैसे कमनीय वानर-ग्रह के मध्य विलसित कुमुद-बधु, षोडश कला-पूर्ण, जगदानददायक रघुराम-रूपी चद्र को देखकर, चद्र के भ्रम में, कमल-समूह (रावण के सिर) राहु-कोटि (रावण की भुजाएँ) से युक्त हो, परस्पर सहायता करते हुए, एक साथ आकर उन (राम-रूपी चद्र) पर आक्रमण करते हो।* सिरो तथा करो का एक साथ आना ऐसा लगता था, मानो राम तथा विजय-लक्ष्मी के विवाह के समय देवताओ ने पल्लव-रत्न-दर्पण तोरण सुदर ढग से सजाये हो। कटते हुए सिर एव विशाल बाहुएँ, बरसनेवाले शर तथा उलूक, काक आदि खग, पृथ्वी को कपित करते हुए गगन-मडल में ऐसे व्याप्त हो गये, मानो यमराज की सभा का भयकर वितान हो। इस कारण देवताओ को भी यह मालूम नही होता था कि यह दिन है या रात है या सध्या। प्रख्यात धनुषो एव शरो की दीप्ति के कारण भूमि में दिन की भाँति प्रकाश व्याप्त था।

अपनी शक्ति-भर प्रयत्न के पश्चात् भी उस दैत्य को जीतने की किंचित् भी आशा न देखने के कारण राम शर-सधान का कार्य स्थगित करके बार-बार मन-ही-मन सोचने

---

*कमल और राहु दोनों चंद्र के शत्रु माने जाते है, इसलिए दोनो मिलकर राम-रूपी चद्रमा पर आक्रमण कर रहे थे।—ले०

लगे कि अविराम गति से इस राक्षस का सिर काटते-काटते तग आ गया हूँ, बाहुओ को काटते-काटते ऊब गया हूँ, वक्षस्थल पर बाण चलाते-चलाते थक गया हूँ, बिना रुके शर-प्रहार करते-करते क्लात हो गया हूँ, फिर भी यह दुष्ट मरता नही है। अब इस दुरात्मा को कैसे मारूँ? ऐसे उत्साह-शिथिल होनेवाले राम को देखकर विभीषण ने कहा—'हे सूर्य-कुलाधीश, ब्रह्मा के वर से, इसकी नाभि में कुडलाकार में अमृत रहता है। उस अमृत का प्रभाव उसे मरने नही देता। आप भले ही असख्य बार उसके सिर तथा बाहुओ को काटें, वे पुनः-पुन उगते ही रहेंगे। उनका उन्मूलन नही होगा। यही कारण है कि दानवेंद्र विचलित नही होता। आप इस प्रकार लगातार उसके सिरो एवं बाहुओ को कबतक काटते जायेंगे? इसका अत ही नही होगा, अतः आप आग्नेय शर चलाइए। इससे उसके नाभि-विवर में स्थित अमृत सूख जायगा। तब राक्षसराज स्वय परास्त हो जायगा। आपके द्वारा चलाये जानेवाले बाणो से रावण के हाथ और सिर युद्ध में एक सौ नौ बार उग आयेंगे और उसके बाद उसकी मृत्यु होगी।

१४६. आग्नेय अस्त्र के प्रयोग से राम का रावण को शक्तिहीन कर देना

तब राम ने विभीषण की विनय, नीति, ज्ञान, स्वामिभक्ति, श्रद्धा तथा पवित्र भावो को देखकर उसकी प्रशसा की। उसके पश्चात् उन्होने अपने धनुष की प्रत्यचा की ऐसी ध्वनि की कि देवता हर्षित हुए, रावण विचलित हुआ और गगा आदि नदियाँ क्षुब्ध हुईं। फिर, उन्होने प्रज्वलित वज्रो की वर्षा करनेवाले आग्नेय अस्त्र का सधान करके चलाया। रावण की नाभि में स्थित अमृत को उस शर की अग्नि में आहुति दी और एक सौ नौ बार रावण के सिरो तथा बाहुओ को काट डाला। उसके पश्चात् राम ने एक सौ दसवी बार एक अनुपम बाण चलाकर उसके एक सिर तथा दो बाहुओ को छोड शेष शिरो तथा बाहुओ को काट डाला। यह देखकर देवता हर्षोन्मत्त हो उठे और वानर हर्ष-निनाद करने लगे। सिरो के कटने पर, रक्त-धाराओ के पृथ्वी पर गिरते समय, रावण ऐसा दीख रहा था, मानो प्रलयाग्नि, सभी लोको को जलाकर अपनी लाल लपटो से युक्त हो जल रही हो। सारे शरीर से रक्त की धाराएँ छूट रही थीं। उस समय रावण के शरीर पर स्थित एक सिर ऐसा दीखता था, मानो अस्ताचल पर स्थित हो सूर्य-बिंब अरुण आतप की कातियो को विकीर्ण कर रहा है।

तब विभीषण को देखकर रावण ने अत्यत क्रोधावेश से कहा—'इसीने राम को मेरा वह रहस्य बता दिया, जिसे अबतक कोई नही जानता था। इसलिए अब मैं पहले इसीका वध करूँगा।' इस प्रकार कहते हुए रावण ने भयकर शक्ति को विभीषण पर चलाया, तब वह शक्ति आकाश-मार्ग से अग्नि-ज्वालाएँ उगलती हुई आनेवाली प्रलयानल की भाँति विभीषण की ओर आने लगी। तुरत राम ने अविचल भाव से घोर बाण चलाकर बीच में ही उसे काट डाला। रघुराम की अविराम शर-वृष्टि से राक्षस की क्रोधाग्नि जैसे नष्ट हो जाती है, वैसे ही उसके शरीरस्थ तेज भी अद्भुत गति से तिरोहित हो गया। एक सिर तथा दो बाहुओ को छोड़कर रावण के शेष सिर एव भुजाएँ कट गई थी। वीर रस के महान् प्रवाह की भाँति स्रवित होनेवाली रक्त-धाराओ से वह सना हुआ था। फिर भी,

उसने बडे दर्प से रण-भूमि में रक्त से भीगकर पडे हुए अपने सिरो तथा बाहुदडो को निहारा, उनपर चोच मारनेवाले पक्षी-समूह को देखा, फिर राम की ओर दृष्टि दौडाई। तब उसने केश नोचने से क्रुद्ध हो बधनो को तोडकर मुक्त होनेवाले सिंह के समान गर्जन किया, दाँतो को उखाडने से क्रुद्ध होकर आक्रमण करनेवाले उग्र-साँप की भाँति, मूँछो को खीचने से खीजकर दड देने के लिए उद्यत यम की भाँति तथा सारे संसार को एक साथ निगल जानेवाले के समान क्रोध से उन्मत्त हो, रावण ने भयकर रूप धारण किया। फिर, अपनी पहले की सभी बाहुओ की शक्ति अपनी बची हुई दोनो बाहुओ में सचित करके भयकर अट्टहास किया, और अविराम गति से बरछा, तोमर, शूल, परशु, खड्ग, शर, भाला, शक्ति, गदा आदि चलाते हुए राम को विविध प्रकार से कष्ट दिया, और ऐसे आश्चर्यजनक साहस के साथ भयकर युद्ध करने लगा कि देवता भी भयातुर हो उठे। शक्ति, गर्व एव यत्न के साथ युद्ध करनेवाले रावण को देखकर मातलि ने भयाकुल हो, राम से कहा—'हे देव, अब विलम्ब क्यो? इसके सिर और भुजाएँ कही फिर उग न आयें। उसके पहले ही आप ब्रह्मास्त्र चलाकर इस नीच का सहार कीजिए और अपनी शक्ति का परिचय दीजिए।"

१४७. ब्रह्मास्त्र से रावण का वध

मातलि की बातें सुनकर श्रेष्ठ बलशाली, प्रशसनीय पराक्रमी, बाहुबल-सपन्न राम ने सोचा कि ब्रह्मास्त्र को चलाने का यही समय है। फिर, उन्होने पृथ्वी, देवता, तपोधन, वेद, वैदिककर्म आदि का स्मरण किया, और अपने प्रताप एव दर्प को प्रदर्शित करके पृथ्वी को कँपाते हुए धनुष का टकार किया और उस अक्षय ब्रह्मास्त्र का स्मरण किया, जिसे विश्वामित्र ने अपने यज्ञ के समय राम को प्रदान किया था। फिर, उन्होने अक्षत वेद-मत्रो का उच्चारण करके, उस ब्रह्मास्त्र को प्रत्यचा पर चढाया और प्रत्यचा को तानकर वाम चरण को आगे रखा और रावण के वक्षस्थल को लक्ष्य करके बाण चलाया। यह देखकर देवेन्द्र आदि देवता फूल उठे। तब वह बाण प्रचण्ड गति से तथा भयकर ज्वालाओ से युक्त हो वसुओ को पार्श्व-भाग में, आदित्यो को अपने अग्रभाग में, इन्द्र आदि देवताओ को पृष्ठभाग में तथा पृथुल पवन को आगे किये हुए चल पडा। अपने पखो से उज्ज्वल तथा दिव्य आभा को व्याप्त करते हुए अपनी अमोघ महिमा से दीप्त होते हुए, समस्त वानरो के अभीष्ट को सफल बनाने के निमित्त वह शर विना रुके आगे बढा और प्रलय-काल के मेघो तथा वज्रो का-सा घोष चारो ओर व्याप्त करके राक्षस-नेताओ को भयभीत करते हुए जय-ध्वनियो से आकाश को कपित करते हुए रावण के वक्षःस्थल में गड गया, उस अस्त्र ने इन्द्र, यम तथा वरुणो के लिए भी अभेद्य उसके (रावण के) मर्मस्थल को भेद डाला और उसके प्राण लेकर उसके हृदय को पार करके निकल गया और पृथ्वी में इस प्रकार गड गया, मानो पृथ्वी से कह रहा हो कि जिस पापी ने तुम्हारी पुत्री को बन्दी बनाकर बडी नीचता के साथ उन्हें अपनाने का विचार किया था, उसके प्राण मैंने हर लिये है। फिर, लौटकर उस बाण ने राघव के महिमामय तूणीर में प्रवेश किया, मानों ब्रह्मा के (पुलस्त्य) पोते का वध करने के पाप से मुक्त होने के लिए कही भी शरण न पाकर उसने राघव की शरण ली हो।

तब राघव के अस्त्र के आघात से रावण के शरीर से रक्त की धाराएँ बहने लगी और वज्राघात से पृथ्वी पर गिरनेवाले कुलपर्वतो की भाँति रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस दैत्य के विशाल शरीर के गिरने से पृथ्वी आश्चर्यजनक ढग से धँस गई। पर्वत भी धँस गये, दिग्गज दब गये, आदिशेष तथा कूर्म भी खिसक गये। सप्त पातालो के अधिपति व्याकुल हो गये। हतशेष दैत्य-वीर भयभीत हुए। वानरो ने सिंहनाद किया; अमर, किन्नर, खेचर आदि राम की स्तुति करने लगे। अप्सराओ ने रघराम पर पुष्पवृष्टि की, सारे स्वर्ग में दिव्य दुदुभियाँ, दिव्य काहल एव दिव्य शख बजने लगे। शीतल-मद-सुगंध पवन चलने लगा और दिशाएँ निर्मल हो गई। इस प्रकार, सुर, मुनि एवं खेचरो के शोक का निवारण करके, समस्त भूमि का भार उतारकर, अपनी इच्छित विजय को प्राप्त करने के पश्चात् प्रभु राम ने अपने हाथ के धनुष की प्रत्यंचा को शिथिल किया और प्रसन्नचित्त हो उसे लक्ष्मण को सौंपा। समस्त वानर, सभी खेचर, सभी दिक्पाल, सारे भूपति, समस्त भूत, सभी देवता, सभी गन्धर्व, सभी सन्मुनि, सभी पन्नग, सकल सिद्ध एवं सभी लोक तब राम की प्रशसा करने लगे। उस समय युद्ध में अन्धकासुर का वध करके शोभायमान होनेवाले धूर्जटि (शिवजी) के समान राम, लोकाभिराम, विजयधाम एवं नवसुधा-धाम की भाँति सुशोभित हुए।

१४८. विभीषण का शोक

तब विभीषण अत्यधिक शोक से संतप्त होते हुए युद्ध में गिरे हुए अपने अग्रज को देखकर बार-बार ऊँचे स्वर में विलाप करने लगा—"हाय, सुरासुरो के लिए भयप्रद, युद्ध-भयकर, तुम्हारी ये भुजाएँ आज पक्षियो के वशीभूत हो गई; अत्यन्त कोमल शय्या पर लेटनेवाला यह शरीर आज कठोर युद्धभूमि पर गिरा हुआ है। शत्रु-रूपी अन्धकार के लिए बाल-सूर्य की भाँति ये मणिमय किरीट आज मिट्टी में मिल गये! हे बन्धु! विक्रम, विनय, नय तथा कीर्त्ति में तुम्हारी समता कोई नही कर सकता था। ऐसे तुम, घोर पापो में प्रवृत्त होने के कारण क्रूर, पापी एव उद्धत कहलाने लगे। नीति-च्युत होना बुरा है, यह तुमने कभी सोचा ही नही। मेरी बातो पर तुमने ध्यान नही दिया; प्रशस्त नीति-मार्ग को तुम पहचान नही सके। जानकी को राम के सुपुर्द करने के लिए मैंने परामर्श दिया, किन्तु तुम ऐसा नही कर सके। मैंने तुम्हें समझाया था कि तुम राम को साधारण मानव मत समझो, किन्तु तुमने मेरी बातो की अवहेलना कर दी। तुम्हारे अभिमान तथा गर्व ने ही आज तुम्हारी ऐसी दशा कर दी। अब मैं तुम्हारे लिए कैसे शोक करूँ? क्या मैंने तुमसे नही कहा था कि राम के साथ वैर करना उचित नही है, उसे (वैर) छोड दो। हे अनुपम नीति-सम्पन्न! क्या, तुम्हारे जैसे सुकृति के लिए परस्त्री को माता के सदृश नही मानना चाहिए? तुमने उचित-अनुचित का विचार ही नही किया। अन्त में मेरे वचन ही सत्य सिद्ध हुए!" इस प्रकार, वह अपने अग्रज के अपराधो का स्मरण करके बार-बार शोक करने लगा।

१४९. मृत रावण के निकट मंदोदरी का आना

तब मदोदरी आदि दनुज-वधुएँ उमडती हुई शोकाग्नि में जलती हुई, अपने मुखो तथा छातियो को पीटती हुई तथा उच्च स्वर में रुदन एव विलाप करती हुई लंका मे

युद्ध-भूमि की ओर मन्द गति से चल पडी । उनके चलते समय, उनके चरणो की असंर्ण कान्ति पृथ्वी पर पड़ रही थी, लड़खडाकर चलने से उनकी मेखलाएँ शिथिल हो रही थी, उनकी क्षीण कटियाँ अवश हो झुकी जा रही थी, हृदय के शोक-भार से उनकी तनु-लताएँ काँप रही थी, उनके कठ-हार टूट रहे थे, आँखो से आँसू का प्रवाह झर रहा था, उनके आँचल खिसक रहे थे; वेणियाँ खुलकर पीठ पर डोल रही थी और उनके मुख कान्तिहीन हो गये थे । अपनी रुदन-ध्वनि से समस्त आकाश को गुँजाती हुई वे युद्ध-भूमि में पहुँची । उस समय वह रण-भूमि टूटे हुए रथ, छिन्न-भिन्न होकर पडे हाथी के कुभ-स्थल, कटे हुए सिर, पैर एव शरीर, चूर-चूर बने हुए हाथी के दाँत, कुचले हुए सिर, टूटी हुई गदाएँ, चूर्ण बने हुए कवच, कटे हुए वक्ष, उखडे हुए मस्तक, फटे हुए कठ, भग्न हुए शस्त्र, आँतो की राशियाँ, माँस-खड, मृत पडे हुए गज, खण्डित अश्व, पर्वत-शृग, एक दूसरे पर पडे हुए धड़, अजस्र बहनेवाली रक्त की नदियो में बहनेवाली हाथी के शुड, पर्वतो के नीचे गिरकर दब जाने से निकली हुई आँखोवाले सैनिक तथा कठोर ध्वनि करते हुए शवो पर मँडरानेवाले अनेक काक, घूक, कक, गीध आदि से भरी हुई थी ।

इतना ही नही, उस युद्ध-भूमि में अनेक भूतो का सचार होने लगा था । कुछ भूत राम के बाणो के आघात से बहनेवाले रक्त-प्रवाह का पान करते हुए उसे सोमपान समझकर झूमते थे । कुछ भूत राम को धोखा देकर सीता को ले आनेवाले राक्षसेन्द्र की प्रशसा करते थे; कुछ रावण के दस सिरो एव बीस हाथो को उसके धड में यथा-स्थान जोड़कर मृत रावण के शरीर को देखकर कह रहे थे कि हे दैत्येन्द्र, तुम्हारे लिए यह अनुचित है, तुम सीता को राम के सुपुर्द कर दो । कुछ भूत वानरो के शरीर में प्रविष्ट होकर, वानर बनकर हाथी के धड़ो को ले आते और रक्त-समुद्र में डालकर बडे यत्न से सेतु बाँधने में तत्पर दिखाई देते थे । कोई भूत कहता—'मैं नारायण हूँ । तुम देवता हो, तुम राक्षस हो ।' फिर, वे हाथी के धड पर आँतो को वासुकि के समान लपेटते और उस धड़ को रक्त-समुद्र में डालकर मथने लगते (मानो वे समुद्र-मथन की पुनरा-वृत्ति कर रहे हो) । कुछ भूत इन्द्र की ओर देखकर हँसते हुए कहते—'हमारे राम के बाणो से अच्छी तरह मथे हुए मास को लेकर उसके बदले हमें स्वर्ग क्यो नही देते ? क्यो बकरी के थोड़े मास-खण्डो के बदले स्वर्ग देते हो ?' * कुछ भूत यह कहते हुए नाच रहे थे कि शक्ति-सपन्न कुमार एव तारकासुर की युद्ध-भूमि भी हमने देखी थी, भीषण गति से युद्ध करनेवाले शिवजी तथा अन्धकासुर की रण-भूमि भी हमने देखी थी; इन्द्र तथा वृत्रासुर का रण-क्षेत्र भी हमने देखा था, किन्तु इतने मांस-खण्ड, इतने धड, ऐसा रक्त-प्रवाह ऐसी विविध स्वादिष्ठ वस्तुएँ हमने अबतक कभी नही देखी । कुछ भूत रवि-कुला-धिप राम के विक्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे, कुछ भूत कहते थे कि 'राम का विक्रम भी क्या, हमारी प्रशसा के योग्य है ?' इसने तो युद्ध में उस दशकंठ का वध कर डाला, जो भयंकर युद्ध करके, श्रेष्ठ रक्त-मास आदि से हमें तुष्ट किया करता था;

*यज्ञ के समय इन्द्र को बकरी के मांस की जो बलि दी जाती है, उसी की ओर संकेत है ।

अब हमें वह भाग्य कहाँ मिलेगा ? कुछ भूत ऊँचे ध्वज-दण्डों को खड़ा करके, उनमें आँतों के झूले डालकर बड़े मोद से अपनी स्त्रियों के साथ उनपर झूलते हुए सरस आनन्द का अनुभव करते; कुछ भूत हड्डियों तथा शरों को एक ओर हटाकर एक विशाल स्थान बना लेते और अपने प्रिय जनों तथा प्रेमिकाओं के साथ आराम से बैठकर रक्तपान करते हुए आनंदित होते थे और संतुष्ट हो आशीर्वाद देते थे कि सीता के साथ राम सुखी रहें। ऐसे भूत-समूह से भरे, भयंकर दिखाई देनेवाले उस युद्ध-क्षेत्र में राक्षस-वधुएँ रोती-कलपती तथा बार-बार पति को पुकारती हुई पहुँच गईं। वहाँ उन्होंने अनुपम रीति से व्याप्त राम की शर-चन्द्रिकाओं से व्याकुल होकर वीर-लक्ष्मी के विरह की अग्नि से दग्ध होकर पृथ्वी पर गिरे हुए दशकंठ को देखा। कटी हुई तथा रक्त से भीगी हुई उसकी विशाल भुजाएँ ही उसके लिए शीतलोपचार के योग्य किसलय-शय्या के समान थीं। उसके मुकुट की अकलंक मणियों की अरुण कान्ति उसके सारे शरीर पर व्याप्त हो धातु के वस्त्रों के समान दीप्त हो रही थी। उसके सिर की मज्जा सारे शरीर में व्याप्त होकर चन्दन-लेप की भाँति दीख रही थी। (राम के) घोर प्रहारों के फलस्वरूप उसके शरीर-भर में व्याप्त अस्थियों का चूर्ण, अनुपम पुष्प-रज के समान दीखता था। टूटकर झुके हुए रथ के ताल-सम ऊँची ध्वजाएँ तथा रावण के कोमल एवं विमल दुकूल-खण्ड, (पवन में हिलते हुए) झलनेवाले पंखों के समान दीखते थे। चारों ओर पृथ्वी पर विकीर्ण हो पड़े हुए, गज-मुक्ताफल उपचार के निमित्त उपयोग में लाने के पश्चात् बिखरी हुई मल्लिका की कलियों के समान दीखते थे। इस प्रकार मृत पड़े हुए रावण को देखकर शोक-सागर की तरंगों में डूबी हुई दानव-वधुएँ दनुजेश्वर के शरीर पर गिर पड़ीं।

१५०. मन्दोदरी का विलाप

तब मन्दोदरी पति के मृत शरीर पर गिर पड़ी और उमड़ते हुए शोक-सागर को पार करने में असमर्थ होकर आँखों से अविराम अश्रु-धारा बहाती हुई बार-बार ऊँचे स्वर में यों विलाप करने लगी—"हे राक्षसेश्वर, हे वीरवर, हे रणालंकार, हे नाथ," फिर उसने अपने शोक एवं क्लान्ति को प्रकट करते हुए बार-बार विलाप किया और उसके पश्चात् यों कहने लगी—"हे लंकेश! आज सूर्य-रश्मियाँ निश्शंक होकर आपकी लंका में पहुँच गई हैं। इन्द्रादि देवता यह सोचकर आनन्दित हो रहे हैं कि अब अच्छा अवसर मिल गया है। आपने इन्द्र को जीता, अग्नि को जीता, यम को जीता, नैऋत को जीता, वरुण को परास्त किया, पवन को हराया, कुबेर को जीता और ईशान को भी परास्त किया और समस्त लोकों पर अपनी प्रभुता जमाई। आप कहीं भी दुर्वार थे, आपकी यह दुर्दशा कैसे हुई ? क्या आपसे भी अधिक बलवान् कोई उत्पन्न हुआ ? मैंने आपसे कहा था कि आप राम को सीता लौटा दीजिए; आपका यह कार्य उचित नहीं है; राघव स्वयं नारायण हैं; वे नर नहीं हैं। किन्तु मेरी बातें आपने नहीं सुनीं। भला, आपका दुर्भाग्य आपको मेरी बातें सुनने क्यों देता ? हे दशकंठ, पहले तपस्या करते समय आपने अत्यधिक निष्ठा से अपनी इन्द्रियों का दमन किया था। कदाचित् उन्हीं इन्द्रियों ने सीता को ले आने के लिए आपको प्रेरित किया और युद्ध में सूर्यवंशज (राम) ने आपका वध

कराया । देवताओ के लिए दुर्भेद्य इस लका में हनुमान् ने अकेले प्रवेश किया । बिना प्रयास के समुद्र पर सेतु बाँधना क्या वानरो के लिए सभव था ? मैंने उसी समय कहा था कि ये देवता हैं (वानर नही)। जनस्थान में राम ने अकेले अपने बाहुबल से खर-दूषण आदि अनेक राक्षसो का सहार किया था । उस दिन से आपको देखकर और राम का स्मरण करके मैं भयभीत होती रहती थी । वह मेरा भय आज पूर्णतया सत्य सिद्ध हुआ । सारा ससार उसी दिन जान गया कि धर्मपरायणा अरुधती से, निर्मल-मति-सपन्न रोहिणी से, अत्यधिक उज्ज्वलगुणवती भूदेवी से भी अधिक सहनशील एव पुण्य-साध्वी जानकी को जिस दिन आप ले आये, उसी दिन आप उस देवी की क्रोधाग्नि से झुलस गये। जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है, वह अवश्य ही वैसा फल पाता है । अत्यन्त नीति-सम्पन्न विभीषण पुण्यात्मा है, इसीलिए वह अतुल सुख को प्राप्त कर सका । समस्त लोको को पीडित करनेवाले आप पापात्मा की ऐसी दुर्दशा हुई । सीता देवी से भी अधिक सौभाग्य-सपन्न कितनी ही सुन्दर कामिनियाँ है ? किन्तु काम-रूप अन्धकार ने आपके नयनों को ढक लिया था, इसलिए आप उन्हें पहचान नही पाये थे । कुल, रूप, दाक्षिण्य, गुण एव कला में वैदेही किसी भी प्रकार मेरी समता नही कर सकती । मैं नही कह सकती थी कि वह आपकी दृष्टि में मुझसे श्रेष्ठ दीख पडी या मेरे समान दीख पडी । यह सत्य है कि जीवो की मृत्यु किसी-न-किसी निमित्त से होती है । दूर की मृत्यु को समीप लाने के समान आप वैदेही को ले आये । भाग्यवती सीता ने पति से मिलकर योग्य सुख को प्राप्त किया। हे नाथ, मुझ अभागिन की ओर निहारिए, मैं दुःख-समुद्र में डूब रही हूँ । आपके साथ पुष्पक विमान पर आरूढ हो मैंने मदराचल, धवलगिरि, कनकाद्रि, विशाल नन्दनवन आदि स्थानो में बडे उल्लास से लीला-विहार किया था । हाय ! वे सभी विनोद मुझे सालने के मिस मेरे प्राण ले रहे हैं । हे नाथ, मैं गर्व करती थी कि मेरे पिता मय हैं, मेरे पति रावण हैं, और मेरा पुत्र, युद्ध-प्रेमी इन्द्रजीत है । किन्तु मैं जानती नही थी कि युद्ध में राम-भूपाल के हाथो से आपका वध हो जायगा । वज्र-पात से गिरकर नष्ट होनेवाले पर्वत की भाँति आप चूर-चूर होकर पृथ्वी पर गिर पड़े हैं । आप मृत्यु के लिए मृत्यु-समान थे, पर आज पृथ्वी पर गिरकर मृत्यु के वश में हो गये । आप शत्रु-स्त्रियो को वैधव्य देते थे, आज आपकी पत्नियो को उसका फल मिल गया ।"

इस प्रकार, रोती, विलाप करती हुई मदोदरी, कभी असुरेन्द्र का मुख देखकर उसका वर्णन करती, कभी आँसू गिराती, कभी अपनी गोद में रावण का सिर रख लेती, कभी अपने अश्रु-जल से रावण के मुख की धूलि धोती, कभी खिन्न होती, कभी रावण का हाथ अपने अरुण हाथो में ले लेती । वह इस तरह फूट-फूटकर रोने लगती कि शोकतप्त हृदय फट जाय । वह अपने प्राणेश्वर का सिर बायें हाथ में उठाकर थाम लेती । उसे देखकर अपना सिर कँपाती । दाहिना हाथ पृथ्वी पर फटकारकर कहती—'हाय तुम चल बसे।' कभी कहती—'राम-भूपाल क्या ऐसा भी करते है । अब मैं क्या करूँ ?' कभी छटपटाकर पृथ्वी पर लोटती और अपनी दीन दशा का विचार करके अत्यन्त दुखी होती ।

अपनी भाभी को अनन्त शोकाग्नि में इस प्रकार दग्ध होते देखकर विभीषण उसके

चरणो पर गिरा और उमड़ते हुए शोक से कहने लगा—'हे साध्वी, अत्यधिक वेग से उमडनेवाला रावण-रूपी समुद्र रघुराम की बाणाग्नि में सूख गया है। राघव-रूपी प्रलय-मारुत ने रावण-रूपी सरस पारिजात को गिरा दिया है। राघव-रूपी भयकर दावानल ने दशानन-रूपी कानन को भस्म कर दिया है। राघव-रूपी पश्चिम समुद्र में रावण-रूपी दिवाकर अस्त हो गया है। राघव-रूपी अमोघ नील मेघ की शर-वृष्टि ने रावण-रूपी अग्नि को बुझा दिया है।'

१५१. राम का विभीषण के द्वारा रावण की अंत्येष्टि कराना

इस प्रकार, विविध रीतियो से शोक-सन्तप्त होनेवाले विभीषण को देखकर काकुत्स्थ ने कहा—'हे विभीषण, अब इन स्त्रियो का दुःख दूर करो और तुम भी अब शोक करना छोड़ दो। युद्ध में शूर, शत्रुओ पर आक्रमण करके उनके हाथो से मरते है और शत्रुओ को मारते है। समर में दोनो पक्षो की विजय तो होती नही, न जय-पराजय ही स्थिर वस्तु है। रावण ने समस्त देवताओ को जीत लिया था, सभी दिक्पालो पर विजय प्राप्त की थी। यह एकाकी वीर है, महान् साहसी है, अद्वितीय विजयी है और त्रिलोक-भयंकर है। मैंने तो देखा ही है कि तुम्हारे अग्रज ने रण में कैसी शक्ति दिखाई थी। कौन ऐसा है, जो इस प्रकार अविचल युद्ध कर सकता है? कौन ऐसा है, जो अन्त में ऐसी मृत्यु को प्राप्त करेगा। ऐसी शक्ति तथा ऐसी मृत्यु दूसरो के लिए असम्भव है। हे अनघ, तुम्हारा अग्रज कृतार्थ हुआ। अब शोक करने की आवश्यकता नही है। इसलिए अब धैर्य धारण किये हुए इस दनुजेश्वर की अत्येष्टि-क्रिया का प्रबन्ध करो।'

तब भयभीत हो विभीषण ने अत्यन्त भक्ति के साथ हाथ जोड़कर कहा—'हे देव, अब इसके लिए क्रिया-कर्म की क्या आवश्यकता है? यह मेरा अग्रज ही कहाँ है? यह तो मेरा शत्रु है। आपकी पत्नी को यह क्रूर, नीच एव दुष्ट यहाँ हर लाया था, अब इसके लिए क्रिया-कर्म कैसा? पर-वधुओ का स्पर्श-मात्र करनेवाले पुरुष अधोगति को प्राप्त होते है। ऐसे लोगो का स्पर्श करना भी उचित नही है। उनको देखना भी नही चाहिए। इस पापी को मैं छू भी नही सकता। यह वैदिक कर्म के लिए योग्य नही है।'

विभीषण की इन बातो पर मन-ही-मन विचार करने के पश्चात् राघव ने विभीषण को देखकर कहा—'हे अनघ, तुम्हारी बातें सच है, किन्तु अब दनुजेश्वर की निन्दा नही करनी चाहिए। उसने युद्ध-रूपी गंगा-प्रवाह में अपने सभी पापो को धो दिया है। मेरे सभी कार्य सम्पन्न हो गये। मृत्यु के पश्चात् वैर रखना उचित नही है। अत, तुम निष्ठा के साथ रावण की अन्त्येष्टि-क्रिया करो।' तब विभीषण ने उनका आदेश स्वीकार करके वेद-विधियो का अनुसरण करते हुए अग्नि-त्रय को मँगाया और एकनिष्ठ हो अपने अग्रज का अग्नि-संस्कार किया। उसके पश्चात् बडी श्रद्धा से उसकी अत्येष्टि-क्रिया पूरी की। क्रिया-कर्म से निवृत्त होने के पश्चात् उसने आकर रामचन्द्र के चरणो में प्रणाम किया। तब उस विमलात्मा को देखकर राम ने मिष्ट भाषण से उसका आदर किया और दयार्द्र हो उसे सांत्वना दी।

१५२. विभीषण का राजतिलक

तत्पश्चात् राम ने अपने अनुज को देखकर अनुपम करुणार्द्र चित्त से कहा—'हे लक्ष्मण, तुम लका में प्रवेश करके इस पुण्यात्मा विभीषण का राजतिलक सपन्न करके आओ।' रामानुज बडी प्रीति के साथ लका में गये; वानर-श्रेष्ठो को भेजकर समुद्र-जल मँगाया। राक्षस-पुरोहितो तथा सज्जन मन्त्रियो को बुलवा भेजा और मगल-वाद्यो के विपुल नाद के बीच, विभीषण को अभिषिक्त किया और मगलोपचार के साथ उसे सिंहासन पर आसीन किया। इस प्रकार, बडे हर्ष के साथ उसे लका का राजा बनाकर लक्ष्मण ने आशीर्वाद दिया कि 'जबतक रवि-चन्द्र, पृथ्वी, कुलपर्वत, आकाश-समुद्र और सभी दिशाएँ रहेंगी, जबतक राघव का कीर्त्ति-गान इस पृथ्वी पर होता रहेगा, तबतक तुम इस राज्य पर शासन करते रहो। राक्षस-राज्य का वहन करना और उसका सचालन करना दुर्लभ कार्य है। अत., तुम सावधान होकर इसका सचालन करो और शाश्वत धर्म का पालन करो।' तब विभीषण विशाल राज्य-प्राप्ति के आनन्द में इतराते हुए मगल-द्रव्य, आभूषण, वस्त्र एवं अमूल्य मणिसमूह साथ लिये हुए लक्ष्मण के साथ राम की सेवा में उपस्थित हुआ और उन वस्तुओं को राम के चरणो में समर्पित करके बडी भक्ति के साथ प्रणाम किया। रघुराम ने वे वस्तुएँ मातलि को भेंट के रूप में दी और बड़ी प्रीति से उसे विदा दिया। मातलि ने रथ पर आरूढ हो वेग के साथ स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया। उसके पश्चात् राम ने मन में विचार करके मारुति को देखकर कहा—'तुम शीघ्र लका में प्रवेश करके जानकी को हमारी विजय तथा कुशल का वृत्तात सुनाओ।'

१५३. हनुमान् का सीता को राम की विजय का समाचार देना

राम का आदेश पाकर हनुमान् अत्यन्त हर्षित हुआ और बड़े वेग से लका में प्रवेश किया। राम की विजय की मन-ही-मन कामना करती हुई, अशोक-वन में बैठी राम की पत्नी को देखकर हनुमान् ने उनको प्रणाम किया और अत्यन्त विनय से कहा—'हे कल्याणी, मैं आ गया हूँ और आपके लिए हर्ष का समाचार लाया हूँ। जो आप चाहती थी, वही हुआ। हे देवी, आपके पति राम देव ने लोक-भयकर रावण का सहार किया और अनेक दुष्ट राक्षसों का नाश करते हुए अद्भुत रीति से युद्ध किया। वे अब अपने अनुज सौमित्र के साथ सकुशल है।' इसके पश्चात् उसने उस साध्वी की चिन्ता को दूर करते हुए, इसके पहले कहे गये वचनों का स्मरण दिलाते हुए कहा—'हे कल्याणी, मैंने आप से पहले ही निवेदन किया था कि आप के पति समुद्र पर सेतु बाँधेंगे, लका पर आक्रमण करेंगे, और रावण का संहार करके आपको अपनायेंगे। वे वचन आज सत्य हो गये हैं। अब मैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ। मेरे योग्य सेवा का आदेश दीजिए।'

तब पवन-पुत्र को देखकर तथा रावण का मरण और रघुराम की विजय को सोचकर हर्ष के साथ वे बोली—'हे अनघ, तुम्हारे प्रताप की सहायता से ही राम भूपाल ने यह कार्य संपन्न किया है। दैत्यो के गर्वान्विकार से आवृत इस लका में प्रवेश करके इसे साधना, दूसरो के लिए कहाँ सभव था? तुम्हारे धैर्य, गभीरता, महान् शौर्य, माधुर्य एव सद्गुणो की महिमा की प्रशसा कैसे करूँ? तुम्हारे शील एव पराक्रम की सराहना मैं कैसे करूँ?

असंख्य, नवाभरण, श्रेष्ठ वस्त्र, स्वर्ग और रत्नों से युक्त राज्य तुम्हें भेंट दूँ, तो भी वह तुम्हारे वीरतापूर्ण कार्यों के लिए अल्प ही होंगे। हे पवनपुत्र, तुम्हारे कार्य से मैं अपने मन में बहुत सतुष्ट हूँ।'

सीता की बातें सुनकर हनुमान् अत्यंत हर्ष से कहने लगा—'हे माता ! आप मुझपर इतनी करुणा-पूर्ण दृष्टि रखती हैं और मेरा इतना आदर करती है, यही मेरे लिए पर्याप्त है। सच तो यह है कि (आपका आदर प्राप्त करना) इन्द्र-पद या किसी दूसरी वस्तु से भी महान् है। तब भूमिसुता ने हनुमान् को देखकर कहा—'हे अनघ ! तुम्हें बल, शौर्य, पराक्रम, अपार तेज, क्षमा, ज्ञान, उदारता, स्थैर्य, सतत निश्चल स्वामिभक्ति, विनय आदि विश्रुत गुण प्राप्त हो।' इसके पश्चात् हनुमान् ने उस देवी के निकट रहनेवाली भयकर आकारवाली राक्षसियो को देखकर कहा—'उस पापात्मा की आज्ञा का पालन करती हुई ये पापी स्त्रियाँ कदाचित् आपको हानि पहुँचायेंगी। मैं अभी इन्हें अपनी कठोर मुष्टि-प्रहार स मार डालता हूँ।' तब जानकी ने हनुमान् को देखकर कहा—'बाण चलानेवाले के रहते हुए भला बाण को दोषी ठहराना क्या उचित है ? दासियो का वध करना कदापि उचित नही। मैंने अपने पापो के फलस्वरूप यह सब विपत्ति पाई। इसके लिए ये कैसे दोषी हो सकती हैं ? हे पुण्यचरित, महान् व्यक्ति पापियो पर भी दया दिखाते हैं। अत. हे वानरोत्तम, इन राक्षसियो का मारना तुम्हारे लिए उचित नही है।' तब हनुमान् ने कहा—'हे देवी ! आप निर्मल गुण-रत्नो की निधि हैं। आप राम की धर्म-पत्नी बनने के योग्य हैं। अब मुझे राम की सेवा में जाने की आज्ञा दीजिए।' तब उस देवी ने कहा—'हे वानरोत्तम, अबतक उन्ही को मैं अपनी आत्मा मानकर अपने प्राण रोके हुई हूँ। अब मैं उन्हें देखे बिना एक क्षण भी नही जी सकती। यह बात मेरे प्रभु को बतलाना। अब तुम जाओ।' इस प्रकार कहने के पश्चात् उन्होंने हनुमान् को आशीर्वाद दिया। हनुमान् ने बड़ी भक्ति से उन्हें प्रणाम किया और राम भूपाल के निकट पहुँचकर अत्यंत विनय से निवेदन किया कि हे देव, मैंने आपकी विजय तथा कुशल का वृत्तांत देवी सीता से निवेदन किया, तो वे बहुत हर्षित हुई। उन्होंने मुझसे कहा कि तुम मेरी ओर से प्रभु से निवेदन करना कि मैं उनके दर्शनो की अभिलाषिणी हूँ।

१५४. राम के आदेश से विभीषण का सीता को लिवा लाना

तब राम ने थोडी देर तक मन-ही-मन सोचा और विभीषण को बुलाकर कहा—'हे विभीषण ! तुम शीघ्र जानकी के मंगल-स्नान का प्रबन्ध करो और दिव्य वस्त्राभरण एवं पुष्प-मालाओ से अलकृत कराके उन्हें यहाँ लिवा लाओ।' तब उसने बड़े हर्ष से जाकर सरमा आदि अपने अन्त.पुर की स्त्रियो से सारी बातें समझाकर जानकी को लिवा लाने का आदेश दिया। वे भी बडी प्रीति से सीता के पास गईं और उन्हें बड़ी भक्ति के साथ प्रणाम करके कहा—'हे देवी, आपके पति राम देव ने विभीषण को, आपको लिवा लाने की आज्ञा दी है। इस हेतु उन्होंने हमें आपकी सेवा में भेजा है। आप प्रसन्न होकर अभीष्ट मंगलदाता राम के समक्ष पधारें। हे सुन्दरी, आप यह वेश तज दीजिए। आप तो शुभ-प्रदायिनी हैं।' इस प्रकार कहने के पश्चात् उन्होंने उनका मंगल-स्नान कराया,

उनकी तनुलता को पोछकर दिव्य वस्त्रो से उन्हें सजाया, दिव्य मालाएँ और दिव्य आभूषणों से उन्हें अलकृत किया और उसके पश्चात् स्वर्ण-पालकी में विठाकर उन्हें ले चली। तव राक्षसेश्वर विभीषण बड़ी भक्ति के साथ राजचिह्न तथा वेत्र धारण करके अपने-आपको धन्य मानते हुए, एक सेवक के समान प्रमुख राक्षसो के साथ पालकी के आगे-आगे चलने लगा। राम के निवास से थोडी दूर पर पालकी को रोककर विभीषण राम की सेवा में उपस्थित हुआ और हाथ जोड़कर नम्रता से बोला—'देव, लिवा लाया हूँ, देवी को! देवी यहाँ पधारी हुई है।'

तब राम ने अत्यन्त हर्ष, रोष एव दैन्य से अभिभूत हो, मन में विचार कर विभीषण से कहा—'लिवा लाओ।' तव परम पावन तथा ज्ञानी विभीषण पावन-चरिता सीता को बड़ी श्रद्धा से लिवा ले चला। उस समय राक्षसो एव वानरो की भीड (सीता के दर्शनो की तीव्र उत्कठा से) उमड़-उमडकर मार्ग को रोकने लगी। तब विभीषण निर्दय होकर अपने हाथ की बेंत से उनपर कसकर प्रहार करने लगा। इस कारण से भीड में उठनेवाले आर्त्त-नाद को सुनकर राम ने विभीषण से कहा—'हे विभीषण! ऐसा भयकर कार्य क्या तुम्हारे लिए उचित है? अब इनमें से हमारे लिए पराया कौन है? अपनो को इस प्रकार दुख क्यो पहुँचाते हो? उन्हें रोको मत। सभी लोग आकर देखें। इसमें बरा क्या है? (स्त्री के लिए) कालान्तर एव देशान्तर में नष्ट न होनेवाला एक शील ही गोपन की वस्तु है। ये विशाल दुर्ग, भवन, पर्दे आदि कभी स्त्रियो के लिए उचित आवरण नही हो सकते। व्यसनो में, विवाहो में, युद्धो में, मित्रो में और उत्सवो में स्त्रियो के लिए आवरण अनावश्यक है। मैं यहाँ हूँ और यह रण-भूमि है। अत, इसमें कोई दोष नही है, उन्हें आने दो।'

तब राम के आदेशानुसार विभीषण सीता को लिवा लाया। उस समय कल्याणी सीता का शरीर स्वेद-बिन्दुओ से ऐसे आप्लावित हो रहा था, मानों उनके हृदय में उमडता हुआ आनन्द (हृदय से) छलककर सारे शरीर में व्याप्त हो गया हो। उन्होंने राका-शशि रामचन्द्र के दर्शनामृत का पान करके चिरविरहाग्नि को शान्त किया और परम-अनुराग से भरी हुई अपने मन की उत्कठ इच्छा से प्रेरित हो राघव को देखने लगी। राघव को देखते ही उनके धवल-लोचन-उत्पलो से अश्रु-प्रवाह उमड आया। वे भय, प्रीति एव व्रीडा से अभिभूत होकर सिर झुकाये खडी रही।

तब रघुराम का मन क्रोधावेश से भर गया। उन्होंने उस रमणी को देखकर कहा—'हे नारी, पुण्यशीला स्त्रियो के लिए लज्जा ही प्राण है। हे लज्जावती, प्रतिष्ठा की रक्षा का विचार करके मैंने तुम्हें मुक्त किया है। इसके सिवा मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति कोई आसक्ति शेष नही है। काकुत्स्थ-वशज धैर्य के धनी होते है, लोक-रक्षण-तत्पर होते हैं, तथा लोक-प्रशसा के योग्य होते है। उनके वश में जन्म लेकर (यदि मैं तुम्हें ग्रहण करूँ, तो) लोग कहेंगे कि मैंने अपने औचित्य को त्याग दिया। शत्रु के घर में रही हुई तुम्हारा स्पर्श करके तुम्हें अपनाना धर्म-सगत नही हो सकता। इस भय से कि लोग यह न कह बैठें कि यह अपनी पत्नी को खो बैठा और उसे छुडाकर नही ला सका, मैंने तुम्हें छुडाया है। इसके सिवा तुम्हें लाने का मेरा कोई दूसरा उद्देश्य नही है। मैं तुम्हें स्वीकार नही कर सकता। तुम जहाँ चाहो, जा सकती हो।'

राम के इन निष्ठुर वचन-बाणो के लगने से सीता तिलमिला उठी। वह कमलाक्षी सद्य प्राप्त आनन्द को भूल गई और अवाक् एव स्तभित-सी रह गई। क्षोभ, दुःख एवं क्रोध से अभिभूत हो, वे रामचन्द्र को देखकर गद्गद कठ मे कहने लगी—'हे देव, क्या आप मेरा हृदय नही जानते ? क्या, आप सर्वज्ञ एव मनीषी नही है ? बाल्यावस्था में आप मुझे ले आये और तब से मेरा पालन-पोषण तथा रक्षण करते रहे। आप ऐसे कठोर वचनो से मुझे क्यो दुःखी बना रहे है ? मैं कहाँ, आप कहाँ और आपके ये वचन कैसे ? मैंने भू-माता के गर्भ से जन्म लिया, उसके पश्चात् महाराज जनक ने मुझे पाल-पोसकर बडा किया, फिर आप-जैसे नृप-शिरोमणि की पत्नी हुई। क्या, चचल चित्तवाली स्त्रियो का-सा व्यवहार मेरे लिए कभी सह्य हो सकता है ? पुरुष, अविश्वसनीय स्त्रियों के प्रति जैसे वचन कहते है, वैसे वचन आप मेरे प्रति कह रहे है। क्या, यह आपके लिए उचित है ? यदि आपको मुझपर विश्वास नही था, तो जिस दिन मेरा पता जानने के लिए हनुमान् को भेजा था, उसी दिन कहला भेजते, तो उसी दिन मैं अपनी सभी आशाओ को तजकर प्राण त्याग देती।'

इसके पश्चात् सीता ने लक्ष्मण को देखकर कहा—'हे अनघ, तुम्हारे अग्रज मुझपर सदेह करके मेरे प्रति परुष वचन कह रहे है। क्या मेरे प्रति ऐसा व्यवहार उचित है ? क्या, ऐसी बातें वे मुझे कह सकते है ? क्या, तुम्हें उनसे यह कहना नही चाहिए कि ऐसे वचन कहना उचित नहीं है ? मेरा आचरण देखते हुए, क्या, तुम मुझमें किसी पाप का अनुमान कर सकते हो ?'

१५६. सीता का अग्नि-प्रवेश

वे आगे कहने लगी—'अब शंका मत करो। तुम भली भाँति विचार करो और यदि तुम लोगो का यही निश्चय है, तो यहाँ चिता सजाओ। मै सबके समक्ष, बिना विचलित हुए अग्नि में प्रवेश करूँगी। अग्नि के द्वारा मै अपनी पवित्रता का प्रमाण दूँगी और ब्रह्मादि देवताओ की प्रशसा प्राप्त करते हुए भूमि में प्रवेश कर जाऊँगी।'

तब लक्ष्मण ने बडी व्याकुलता से अपने अग्रज की ओर देखा और उनके मन के भावो को समझकर सीता के लिए चिता का प्रबन्ध किया। तब सीता ने बड़ी भक्ति से चिता की परिक्रमा की और उसकी स्तुति करके, उसे प्रणाम किया। फिर, अग्निदेव के समक्ष खडे होकर हाथ जोड़े हुए वे कहने लगी—'हे धर्मादि देवताओ, हे धर्मो, हे निर्मलात्माओ, हे नियतात्माओ, हे जगत् के अधिष्ठाताओ, हे सूर्य-चन्द्र, हे वेदसाधको, हे वेदो, हे महात्माओ, हे सर्वज्ञो, हे पचभूतो, हे परहितात्माओ, हे श्रेष्ठ नरो, हे श्रेष्ठ किन्नरो, हे सुरवरो, हे भूसुरवरो, हे कृपालुओ, हे दिक्पालो, हे सन्मतियो, हे पापनहारको, मैंने मन-वचन-कर्म से राजा राम के सिवा और किसी का स्मरण नही किया है। यदि मैंने ऐसा किया हो, तो मैं इस अग्नि का सहन नही कर सकूँगी और सब के समक्ष इसी अग्नि में भस्म हो जाऊँगी।' यो कहती हुई सीता ने आकाश तक व्याप्त होनेवाली अनुपम आकार की भयकर ज्वालाओ से युक्त प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश किया। अग्नि-कुड मे अविचल खडी रहनेवाली सीता किंचित् भी नही जली। कर-चरण-आनन-रूपी कमल, चम-

वाक-रूपी कुच-द्वय, बाहुलताएँ-रूपी मृणाल, विमल त्रिवली-रूपी तरगें, विशाल एवं चंचल नेत्र-रूपी मत्स्य, सहज नील चिकुर-रूपी शैवाल से युक्त सरोवर की भाँति सुशोभित उस कमलाक्षी को देखकर वानर एव राक्षस शोक करने लगे । सुर, सिद्ध एव साध्य स्तुति करने लगे । पवन-पुत्र, सूर्य-पुत्र, सौमित्र, विभीषण, अगद, वानर-सेना, दानव-वीर, साथ ही सरमा आदि राक्षस-वधुएँ अत्यधिक शोक से सतप्त हो उठी । राम निर्वेद से अभिभूत हो स्थिर रहे ।

तब शिव, ब्रह्मा, अखिल दिक्पाल, गरुड-गधर्व एव खेचर-श्रेष्ठ विमान पर आरूढ हो वहाँ आ पहुँचे । राम उन्हें देखकर उनके स्वागतार्थ खडे हुए । राम को देखकर उन्होंने कहा—"हे देव ! आप वेदान्त के द्वारा ज्ञेय हैं, (अखिल ससार के) साक्षी हैं, कर्त्ता हैं, ज्ञान-स्वरूप हैं, मुक्त है, नित्यपूर्ण हैं, सर्वज्ञ हैं, जगदेकनिधि हैं, अक्षीण पुण्यात्मा हैं, अव्यक्त हैं, अक्षर त्रिमूर्त्ति हैं और आद्यत-पति हैं । भुवन, समुद्र, भूत, नदियाँ, यज्ञ, पर्वत, जन्तु-समूह, वृक्ष, मार्ग, तन्त्र, विधियाँ, सुर, नक्षत्र, वेद, शास्त्र आदि सहस्रो, लाखो, करोडो तथा अरबो की सख्या में एक-एक ब्रह्माण्ड में पाये जाते हैं, उनकी गणना कोई भी नही कर सकता । ऐसे असख्य ब्रह्माण्ड आपके उदर में रहते है । उनकी गणना ही नही हो सकती । आपके स्वरूप का पार पाना किसके लिए सभव है ? आपकी माया का प्रभाव जानना आपके सिवा दूसरो के लिए कहाँ सभव है ? 'आपने अमुक का सहार किया, आपने अमुक को जीता, अमुक ने आपको जीता, अमुक आपके अधीन है, अमुक आपसे श्रेष्ठ है'—ऐसी निन्दा एव स्तुति आपका स्पर्श भी नही कर सकती । दास-भाव को छोडकर अन्य किसी भी मार्ग से आपके ज्ञान-रूप का दर्शन दुर्लभ है । हे राजन्, आप आदिनारायण है और जानकी आदिलक्ष्मी हैं । लोक-रक्षणार्थ आप काकुत्स्थ के रूप में विख्यात हुए है । आप स्वय अपने को क्यो भूल गये हैं ? निष्ठुर वह्नि में स्थित जानकी को देखते हुए चुप रहना आपके लिए उचित नही है । आप उन्हें अपनाइए, प्रीति से आदर कीजिए । उस वनजाक्षी की उपेक्षा मत कीजिए ।"

१५७. सीता-परिग्रहण

देवताओ ने जब रामचन्द्र को कई रीतियो से समझाया, तब दैत्य तथा कपि परस्पर कहने लगे—'इस साध्वी के शरीर से न श्रम-बिन्दु निकल रहे हैं, न इनका मुख कुम्हला रहा है, न इनकी तनुलता सूख रही है, न ये व्याकुल हो रही हैं, न इनकी धारण की हुई पुष्प-मालाएँ मुरझाई हैं और न इनका अगराग ही छूटा है ।' वे सीता को देखकर शोक-सतप्त होते हुए गद्गद कठ से कहने लगे—'रामचन्द्र को ऐसी पवित्र पत्नी के प्रति ऐसे निष्ठुर वचन नही कहना चाहिए । ऐसा साहस उचित नही है । उनके इस प्रकार कहते समय अग्निदेव कोमलागी सीता को अपनी गोद में उठाकर बाहर निकले और उन्हें बडी प्रीति से राम के सामने खडा करके कहा—'यह कल्याणी मुग्धा है । तुम्ही इसके देवता हो, तुम्ही इसके प्राण हो, तुम्ही इसके बन्धु हो और तुम्ही इसके सर्वस्व हो । तुम्हारे सिवा और किसी को इसके हृदय में स्थान नही है । रावण की आज्ञा से कई राक्षस-स्त्रियो ने कई प्रकार से इसे पीडित किया, भयकर कृत्यो से इसे डराया, धमकाया और छल किया ।

इस पर भी यह साध्वी तुम्हारा विस्मरण नही करती थी, विचलित नही होती थी,' अपना मन तुम पर ही केन्द्रित करके अपना सर्वस्व तुम्हारे विश्वास पर त्यागकर अपना दिन बिताती रही। अब प्रीति के साथ इस कमलाक्षी को स्वीकार करो। स्वीकार न करना अधर्म होगा।'

जब अग्निदेव ने इस प्रकार कहा, तब राम ने अपने मन-ही-मन कुछ देर तक विचार किया और फिर शिव, ब्रह्मा, आदि देवताओ की मडली को देखकर इस प्रकार कहने लगे—'मैं जानता हूँ कि इस रमणी में कोई पाप नही है। यह उन्नत विचारवाली रमणी मेरे प्रति अकलक निष्ठा रखती आई है, इस सुन्दरी में भय, भक्ति, शील, ज्ञान आदि गुण है। मैं यह भी जानता हूँ कि राक्षस इसे अपने वश में कर नही सका। किन्तु, मुझे जानकी को ऐसा आदेश इसलिए देना पडा कि पीछे लोग यह न कहें कि महान् पापी तथा अत्यधिक बलवान् रावण ने अपने उद्यान में जानकी को रखा था, किन्तु रघुराम उसे चुप-चाप ले आये। ऐसा कामुक व्यक्ति इस ससार में और कौन हो सकता है, जो अपने अपयश का किंचित् भी विचार नही करता। अब सभी शकाओ का निर्मूलन हो गया। आपके आदेशो का पालन करके मैं सीता को स्वीकार करता हूँ।' इस प्रकार कहते हुए उन्होने सीता को अपने निकट बुला लिया। उस समय रघुराम सीता के साथ ऐसे शोभित हुए, जैसे आकाश में रोहिणी से युक्त प्रभा-सपन्न चन्द्र हो।

तब महादेव ने आश्रित-कल्पतरु रामचन्द्र को देखकर बडी प्रीति से कहा—'हे अनघ, ऐसे महत्तर कार्य को साधने के लिए आपके सिवा और कौन उद्यत होगा? ऐसे लोक-कल्याण का कार्य और कौन सपन्न करेगा? रावण तो लोक-कटक, त्रिलोक-भयकर, देवो की वदना को प्राप्त करनेवाला तथा महा बलशाली था। ऐसे रावण का नाश करना किसी के लिए भी सभव नही था। ऐसे व्यक्ति से आपने शत्रुत्व ठाना, उस पर आक्रमण किया, उसका सहार किया और उसका दहन-सस्कार करके अपने अनुपम बल तथा विक्रम की प्रौढता दिखाई, आपकी समता करनेवाला इस ससार में कौन हो सकता है? आपने रावण का सहार किया और आपके कारण चौदहो भुवनो की रक्षा हुई। इस शोभा को देखने के लिए आपके पिता महाराज दशरथ स्वर्ग से आये है। वह देखिए, वे देवताओ के आधिपत्य से दीप्त हो विमान पर आरूढ है। आप उस सत्यनिधि एव पुण्यात्मा की पूजा तथा सत्कार कीजिए।'

१५८. दशरथ के दर्शन

तब सुशील रघुराम ने अनुज-युक्त हो, बडे प्रेम, श्रद्धा एव निष्ठा के साथ महाराज को साष्टाग प्रणाम किया। तब महाराज ने बाँहें फैलाकर बडे मोद से उन्हें हृदय मे लगा लिया और राम को देखकर कहा—'हे वत्स, कैकेयी की बातें सुनकर तुम जैसे लोक-रक्षण-कला-निरत को मैंने वन में भेज दिया। मैंने औचित्य का विचार नही किया और न शुभ कार्य को पहचान सका। तुम्हारा राजतिलक करके तुमको राज्य करते हुए जी भरकर देखने का तथा समस्त ससार को सुखी होते देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नही हुआ। पुत्र-शोक मे मैंने मृत्यु को प्राप्त किया। ऐसे मुझे इन्द्र-लोक में प्रवेश करने का अधिकार कहाँ?

वह दु ख सतत प्रज्वलित अग्नि के समान मेरे हृदय में जलता रहता है । अमर लोक में भी जो अग्नि शमित नही हुई, वही आज तुम्हारे समक्ष उपशमित (शान्त) हो गई । हे कमलाप्त-सम-तेजस्वी, हे कमलाभिराम, हे कमलाप्तवशज, तुम अयोध्या को लौट जाओ और निखिल धर्मों का पालन करते हुए साम्राज्य को ग्रहण करके अक्षय कीर्त्ति के साथ चिर काल तक इस पृथ्वी का ऐसा पालन करो कि प्रजा कहे कि राम लोकाभिराम है।

उसके पश्चात् उन्होने लक्ष्मण को देखकर कहा—'हे सौमित्र, तुमने राम के साथ अरण्य में घूमते हुए अनेक उत्तम एव साहसपूर्ण कार्य करके पुण्य प्राप्त किया है । भविष्य में भी सावधानी के साथ, अपने अग्रज के मन को दु खी वनाये विना आचरण करते रहना।' तदनतर उन्होंने अपना सिर झुकाकर प्रणाम करके खडी हुई सीता को देखकर कहा—'हे पुत्री, परम पवित्र पातिव्रत्य धर्म में तुम्हारी समता कोई स्त्री नही कर सकती। तुम उत्तम साध्वी हो । राम ने तुम्हें जो निष्ठुर वचन कहे, उनके लिए तुम रुष्ट और दु'खी मत होना । तुम राघव के समान महान् कीर्त्तिवान् पुत्रो को प्राप्त करो, पुण्य प्राप्त करते हुए जीवन व्यतीत करो ।' इस प्रकार, तीनो को आशीर्वाद देकर महाराज दशरथ मन-ही-मन सतुष्ट हुए ।

१५९. देवताओं का अभिनन्दन

तव चन्द्र-सम शीतल प्रभु राम को देखकर इन्द्र आदि देवताओ ने कहा—'हे पुण्यात्मा, आपने हमारे निमित्त मनुष्य के रूप में जन्म लिया, राक्षसो का सहार किया, अनेक प्रकार के दु.खो का सहन किया और भूमि का भार उतारकर हमारी रक्षा की, हमें जीवन-दान दिया और हमें शान्ति प्रदान करके भेज रहे हैं । हम आपको वर देंगे। आप अपना अभीष्ट कहें ।'

तव राम ने देवताओ को देखकर मदहास करते हुए कहा—'आपकी कृपा से इस ससार में मेरे सभी कार्य सम्पन्न हो गये । कितने ही वानर, अपना-अपना देश, घर-वार, वन्धुजन, पुत्र तथा मित्रो को छोडकर, वडे साहस के साथ, अपने प्राणो की भी परवाह किये विना मेरे लिए शत्रुओ के साथ युद्ध करके प्राण खो वैठे हैं । ये कपि-वीर उन्नतात्मा हैं । उन्हें जीवन प्रदान कीजिए।' तव देवताओ ने कहा—'ऐसा ही हो। ये वानर प्राण प्राप्त करेंगे।' इतना कहकर महादेव, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता तथा दिक्पाल, मुनि, सुर सभी राम की प्रशसा करते हुए स्वर्गलोक को चले गये । उसके पश्चात् दशरथ भी स्वर्ग को चले गये ।

देवताओ के वर के प्रताप से युद्धभूमि में कटकर गिरे हुए सभी वानर जीवन प्राप्त करके ऐसे उठे, मानो वे नीद से जाग रहे हो । फिर, राम को देखकर वडे हर्ष से उन्होंने प्रणाम किया । तव राम वडी दया से उन सव को निहारकर वहुत प्रसन्न हुए ।

तव विभीषण ने राम को देखकर वडी भक्ति के साथ कहा—'हे देव, हे राघव-राज, आपके लका में पधारकर अभिषेक स्वीकार करने का यही उचित समय है ।' तव राघव ने कहा—'जटाओ का भार धारण किये हुए तथा वल्कल पहने भरत के (अयोध्या में) तप में निरत रहते समय, उसको विना देखे हमारा यहाँ सुख-भोग में तत्पर रहना अनुचित है ।'

तब विचारवान् विभीषण ने बडी भक्ति से पुण्यात्मा स्त्रियो तथा पुरुषो को, पुण्य वाद्यो के साथ भेजकर चन्दन एव अक्षत-भरे स्वर्णपात्र, रत्नाभरण एव कनकाबर मँगाये और अत्यन्त विनय के साथ उन्हें राम-लक्ष्मण तथा सीता को धारण करने के निमित्त दिया। तब आकाश से देव-दु दुभियाँ बज उठी, देवता स्तुति करने लगे और अप्सराएँ पुष्प-वृष्टि करने लगी। तब राम ने निश्चल आनन्द में भरे हुए प्रीति के साथ कहा—'हे विभीषण हमें और भी कितने ही महान् कार्य करना शेष है। हम अब यहाँ विलम्ब नही कर सकते। हमें शीघ्र अयोध्या पहुँचना चाहिए।'

१६०. पुष्पक-आरोहण

तब विभीषण ने राम को देखकर भक्ति से कहा—'हे देव, पूर्वकाल में रावण ने क्रुद्ध होकर कुबेर के साथ भयकर युद्ध किया था और युद्ध में उसे पराजित करके उसका विमान छीन लिया था, वह विमान तैयार है। इन्द्रलोक के पुष्पक विमान की भाँति यह भी अद्भुत वेग से जा सकता है. अत आप उस पुष्पक में आरूढ हो, हर्ष के साथ अयोध्या लौटें। यही अच्छा होगा।'

इस पर राम ने (उसे लाने की) अनुमति दी। तब राक्षसराज अत्यधिक सभ्रम एव प्रीति से समस्त वैभवो से विलसित उस पुष्पक को ले आया। वह पुष्पक अचल नवरत्न-दीपो तथा मन्द पवन से युक्त था। वे दीप ऐसे दीखते थे, मानो समस्त लोको को जला देने की शक्ति रखनेवाले रावण की शक्ति की कल्पना करके अनिल दीपो को हिलाने से डरता हो और दीप भी हिलने से डरते हो। उसके विमल द्वारो पर हरित-नील मणियाँ ऐसी भासमान हो रही थी, मानो विमान के भीतर सजे हुए पुष्पो का रसपान करने के लिए आये हुए भ्रमर भय के कारण भीतर प्रवेश नही कर रहे हो। उन नील-मणियो के निकट ही जडी हुई मुक्ता-मणियाँ ऐसी दीख रही थी, मानो पुष्प-वाटिका में मुग्धावस्था में रहनेवाली मल्लिका की कलियो को मुग्ध करके उन्हें छोडकर भ्रमर यहाँ चले आये हैं और उनके विरह से मल्लिका की कलियाँ यहाँ आकर भ्रमरो के साथ रहने लगी हो। हसो तथा कमलो के चित्र काढे हुए दुकूलो से रचित उसका वितान ऐसा दीख रहा था, मानो त्रिभुवन में भ्रमण करने के पश्चात् यहाँ आकर गगा अलसाई हुई लेटी हो। उसके उज्ज्वल स्तभो में खचित मणिमय मूर्त्तियाँ ऐसी दीखती थी, मानो देव-कन्याएँ, यह विचार करती हुई कि राम यहाँ कब (इस पुष्पक विमान में) पधारेंगे, हम उन्हें कब देखेंगे, स्तभो पर अपनी तनु-लताओ को टेके हुए प्रतीक्षा कर रही हो। वह विमान ऐसा सुन्दर दीख रहा था, मानो समस्त सृष्टि के रक्षणार्थ जब विष्णु राम के रूप में पृथ्वी पर आये, तब वैकुठ ही पुष्पक के रूप में यहाँ आ गया हो। ऐसे पुष्पक विमान को देखकर काकुत्स्थ-वशज बडे प्रेम से विभीषण को देखकर और वानरो को लक्ष्य करके कहने लगे—'हे विभीषण, ये (वानर) ही रावण-रूपी भयंकर अग्नि को बुझानेवाले महान् मेघ-पुज है। अत इनका आदर-सत्कार करो तथा विपुल धन-सपत्ति से इन्हें पुरस्कृत करो।' तब विभीषण ने बडी प्रीति से धन, वस्त्र, योग्य आभूषण तथा स्वर्ण आदि मँगाकर राम के समक्ष ही उन वानरो को क्रमश भेंट किये। उसके पश्चात् राम ने अपनी पत्नी तथा अनुज के

तुम शिवलिंग को लेकर वापस आओ । कही भी विलम्ब किये विना शीघ्र आना । पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिरे हुए मेरे भाई के लिए तुम तेईस लाख बीस सहस्र और दस योजन की दूरी पवन-वेग से पार करके ओषधी-शैल ले आये थे और फिर उसे यथास्थान पहुँचा दिया था । यह सारा कार्य तुमने एक अर्द्ध प्रहर में सपन्न किया था । यह कार्य तुम्हारे लिए कोई वडा नही है ।'

यह सुनकर हनुमान् ने हर्ष से फूलते हुए रामचन्द्र को प्रणाम किया और उनकी आज्ञा लेकर चल पडा । वह तुरन्त महेन्द्राचल पर चढकर अपनी सारी शक्ति के साथ आकाश की ओर उछलकर आकाश-मार्ग से काशी नगरी में पहुँच गया । उसने वहाँ पुण्य-तरगिणी गगा में स्नान किया, काशी में विलसित परम दयालु भक्तजन-पालक विश्वनाथजी के दर्शन करके उनकी स्तुति की । वहाँ से एक शिवलिंग को लेकर हनुमान् तुरन्त अत्यधिक वेग से लौटने लगा ।

हनुमान् के आगमन की प्रतीक्षा में वैठे हुए वधु-जन-वदित राम मन-ही-मन सोचने लगे—'शुभ लग्न आसन्न हो रहा है । पता नही कि हनुमान् अभी तक क्यो नही आया है। कदाचित् किसी राक्षस से छेडे जाने पर उससे युद्ध कर रहा होगा। न जाने क्या वात हुई ?' फिर, उन्होंने निश्चय किया—'शुभ मुहूर्त्त के वीतने के पहले ही मै एक सैकत लिग वनाकर उसकी प्रतिष्ठा कर दूँगा ।' 'ऐसा निश्चय करके राम ने एक योग्य स्थल को चुनकर वहाँ अपने हाथो से एक सैकत लिंग वनाया। कमलाक्षी सीता ने पार्वती-नाथ के लिंग के ठीक सामने रेत से एक नन्दी वनाई । उसके पश्चात् राम उस लिंग की पूजा करने लगे ।

उसी समय वायुपुत्र वायु वेग से वहाँ पहुँचकर रामचन्द्र के चरणो में प्रणाम किया । फिर, वह रामचन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित शिवलिंग को देखकर खिन्न हुआ । उसका सारा शरीर दु:ख के आवेश से काँपने लगा और गद्गद कठ से वह राम को देखकर वोला—'हे सूर्य-वशतिलक, आपकी आज्ञा के अनुसार मै काशी गया और ब्रह्मा आदि देवताओ के समक्ष ही मैं वहाँ से एक शिवलिंग ले आया हूँ । मुझे भेजकर, मेरे लौटने के पहले ही आपने शिवजी का प्रतिष्ठापन सपूर्ण कर दिया। क्या, यह आपके लिए उचित था ? हे देव, कदाचित् मै आपके विश्वास के अयोग्य हो गया हूँ, आपके मन में मेरे प्रति प्रेम नही है ।' तव राम ने मद-मद मुस्कुराते हुए हनुमान् के देखकर कहा—'हे पवन-पुत्र, तुम भी मेरे भाइयो में एक हो । मेरा तुम पर अपार स्नेह है । शुभ मुहूर्त्त न वीत जाय, यही विचार करके मैंने रेत से शिवजी का प्रतिष्ठापन किया । इतने में तुम आ गये । मुझे वडी प्रसन्नता हुई। अव वुरा ही क्या है ? तुम इस शिवलिंग को हटाकर अपने लाये हुए शिवलिंग का प्रतिष्ठापन करो ।' तव वायुपुत्र ने वडे हर्ष से अपनी पूँछ से उस शिवलिंग को लपेटा और वार-वार उसे हिलाने का प्रयत्न किया, किन्तु वह शिवलिंग किंचित् भी नही हिला। हनुमान् मन-ही-मन आशकित होने लगा। फिर भी, उसने अनेक वार प्रयत्न किया, किन्तु उसे हिलाने में अपने को असमर्थ पाकर मन-ही-मन चिंताकुल हो सोचने लगा—'हाय, मैं पूर्व में सहज ही द्रोणाचल को उखाडकर लाया था । शिव तथा भूतगण से युक्त कैलास

पर्वत को उठानेवाले रावण भी जब सौमित्र को उठाने में अपने आपको असमर्थ पाया, तब मैंने सौमित्र को उठाकर इन्द्र आदि देवताओं की प्रशंसा प्राप्त की । मेरु तथा मन्दर पर्वतों को मैंने अपने पैर के अँगूठे से उछालने की शक्ति रखता हूँ । क्या आश्चर्य है कि यह शिवलिंग मेरे लिए बहुत भारी हो रहा है । कदाचित् मेरी शक्ति ही घट गई है, अथवा सूर्यवंशज को क्रोध से अपशब्द कहने का पाप मुझे लग गया है या काशी का शिवलिंग यहाँ तक ले आने के कारण ही ऐसा हो रहा है । अन्यथा यह कैसे हो सकता है कि यह शिवलिंग मेरे लिए भारी पड़ जाय ।'

इस प्रकार सोचकर हनुमान् ने अपनी सारी शक्ति का संचय किया और उस शिवलिंग को उखाड़ने का शक्ति-भर प्रयत्न किया, किन्तु वह असफल हुआ । उसकी सारी शक्ति जाती रही और वह रक्त उगलते हुए मूर्च्छित हो नीचे गिर पड़ा। तब राम ने अपने दीप्तिमान् एवं कोमल कर-कमल फैलाकर हनुमान् को उठाया । तब उसकी चेतना लौट आई और उसने राम को साष्टांग प्रणाम करके कहा—'हे सीता के हृदय-कमल-षट्चरण, आपकी जय हो । हे घोर कुटिल-राक्षस-समूह-संहारक, आपकी जय हो । हे शिव के उद्दण्ड-कोदण्ड-भंजक, आपकी जय हो। हे बाणाग्नि से समुद्र को सोखनेवाले वीर, आपकी जय हो। हे रावण-रूपी उन्नत शैल के लिए अमरेन्द्र-स्वरूप, आपकी जय हो। हे भक्तवत्सल ! आपकी जय हो। हे निर्मलात्मा, सज्जन-कल्पतरु, शतकोटि सूर्य-सम तेजस्वी, आपकी जय हो। आपकी महिमा महेश्वर, इन्द्र, नागेन्द्र तथा वागीश, इनमें कोई भी जान नहीं सकते । तब भला मेरी शक्ति ही क्या है कि मैं आपकी महिमा जानूँ ? आपके द्वारा प्रतिष्ठित शिवलिंग को अबोध की भाँति उखाड़ने का प्रयत्न करके मैंने जो अपराध किया है, उसे आप क्षमा कीजिए और आपकी आज्ञा के अनुसार मेरे द्वारा लाये गये इस शिवलिंग की यथोचित व्यवस्था कीजिए ।"

इस प्रकार अत्यन्त भक्ति से स्तुति करनेवाले हनुमान् को देखकर राघव ने कहा—'हे पवनपुत्र, तुम मन-ही-मन ऐसे क्यों दुखी होते हो ? तुम अपने लाये हुए लिंग को यहीं पर प्रतिष्ठित करो । इस पृथ्वी के लोग पहले ,उसी शिव की पूजा करेंगे, उसके पश्चात्, मेरे द्वारा प्रतिष्ठित ईश्वर की अर्चना करेंगे । जो भक्त जाह्नवी का पुण्य-सलिल ले आकर उससे तुम्हारे लाये हुए शिवलिंग का अभिषेक करेंगे, उनके किये हुए ब्रह्म-हत्या आदि पाप नष्ट हो जायेंगे, उनकी कीर्ति शाश्वत होगी, अनुपम पुत्र-पौत्रों की वृद्धि उन्हें प्राप्त होगी और वे अनुपम संपत्ति प्राप्त करेंगे।' यह सुनकर हनुमान् अत्यन्त हर्षित एवं संतुष्ट हुआ।

उसके पश्चात् राम ने काशी-लिंग को वहाँ प्रतिष्ठित किया और पहले उसी लिंग की षोडशोपचार पूजा बड़ी भक्ति के साथ की और उसके पश्चात् अत्यन्त हर्ष से अपने द्वारा प्रतिष्ठित शिव की पूजा की । तब देवताओं ने राम पर पुष्प-वृष्टि की और सभी वानर आनन्द से प्रफुल्लित हो उठे । तब विभीषण ने राम से कहा—'हे जगदीश, आप ऐसी कोई व्यवस्था कीजिए कि इस सेतु-मार्ग से कोई लंका में न आ सके ।'

१६३. श्रीराम का सेतु की महिमा बताना

श्रीराम ने तब बड़े हर्ष से उस विभीषण को देखकर कहा—'ऐसा ही होगा ।'

फिर, वे सेतु पर कुछ कदम आगे चले और उस पर खडे होकर अपने अनुज के हाथ का धनुष अपने हाथ में लिया और उसकी नोक से उस सेतु पर एक रेखा खीचकर उसे इस प्रकार काट दिया कि कपियो के द्वारा निर्मित उस सेतु के सभी जोड टूट गये। उसके पश्चात् वे बोले—'जो व्यक्ति इस स्थान पर स्नान करेगा, उसके परस्त्रीगमन, ब्रह्महत्या, गुरु-द्रोह, गो-वध, सुरापान, वेद-दूषण, पर-वित्तापहरण, सहोदरी रति, स्त्री-हत्या, चोरो की मित्रता, गृह-दाह, मास-भक्षण आदि कार्यो के द्वारा उत्पन्न समस्त पाप नष्ट हो जायेंगे, पुण्य की प्राप्ति होगी, और उसे चिरायु, आरोग्य, पर-हितबुद्धि, सौभाग्य एवं शाश्वत कीर्त्ति प्राप्त होगी।'

इसके पश्चात् राघव बडे हर्ष से पुष्पक पर आरूढ हुए। यह पुष्पक देवताओ के आशीर्वाद तथा वानरो की प्रशसा प्राप्त करते हुए पूर्ववत् आकाश-मार्ग में बडे वेग से जाने लगा। तब मनुकुलेश्वर भूमि सुता को देखकर बोले—'हे विधुवदनी, इसी स्थान पर विभीषण हम से मिला था। यही पर मैंने कुश-शय्या पर शयन किया था। यही पर मैंने एकान्त-सेवा की और ब्रह्मास्त्र को चढाकर समुद्र पर चलाने का उपक्रम किया, तो नदियो के साथ समुद्र ने आकर इसी स्थान पर मुझे प्रणाम किया था। हे कमलमुखी, यहाँ पर मैंने अनुपम विक्रम एव शान्ति से बाण का सधान करके वालि का वध किया था। वहाँ देखो, प्रचुर वनो और फलो से युक्त किष्किन्धापुरी है, जो सुग्रीव की राजधानी है।

तब चंचल नेत्रवाली जानकी ने रामचन्द्र से कहा—'हे नाथ, मेरी इच्छा है कि सुग्रीव की पत्नियो को भी अपने साथ अयोध्या ले चलूँ।' तब राम ने पुष्पक को वहाँ रोक दिया। राम की आज्ञा से सुग्रीव आकाश-मार्ग से जाकर तारा आदि अपनी पत्नियो को ले आया। वे बड़ी भक्ति के साथ सीता को प्रणाम करके पुष्पक विमान में बैठ गई। फिर, पुष्पक पूर्ववत् चलने लगा। ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँचते ही रघुराम ने जानकी को देखकर कहा—'यही ऋष्यमूक पर्वत मेरे वानर-मित्रो का निवास है। इसी पर्वत पर मैंने सभी रहस्यो को जानकर सुग्रीव से मित्रता की थी। यही वह पपा सरोवर है, जो सदा रवि-किरणो से विकसित कमलो से दीप्तिमान् रहता है। हे सीते, तुम्हारे वियोग से तप्त मै इस पुण्य सरोवर के मृदुल तटो पर जब अपार दुःख का अनुभव कर रहा था, तब पुण्यात्मा पवनकुमार हमसे मिला और मेरे हृदय-कमल को शान्ति पहुँचाकर सुग्रीव से हमारी भेंट कराई। वहाँ देखो, उस वन के मध्य शबरी का आश्रम सुशोभित हो रहा है। यही पर मैंने क्रुद्ध होकर घोर युद्ध-कौशल दिखाया था और महा बलशाली कबंध का वध किया था। इसी स्थान पर उन्नतात्मा जटायु का स्वर्गवास हुआ। तुम्हें ले जानेवाले नीच रावण को उसने रोका था और उसके साथ युद्ध करके यही पर आहत होकर गिरा था। वहाँ झाडियो एव वनो से आकीर्ण प्रदेश ही 'जनस्थान' कहलाता है। वहाँ देखो, उसी स्थान पर सौमित्र ने शूर्पणखा के नाक-कान काटे थे। यहाँ देखो, इस स्थान पर मद-मत्त हो हम पर आक्रमण करने आये हुए खर-दूषण आदि राक्षसो का सहार हुआ था। यहाँ पर मायामृग के रूप में मारीच ने मुझे तग किया था और यहाँ पर उसकी मृत्यु हुई। यही पचवटी है। लो, यहीं वह पर्णशाला है, जहाँ से रावण मायारूप धरकर तुम्हें चुरा ले गया था। वहाँ देखो, वही सुतीक्ष्ण मुनि का आश्रम है और उससे थोडी दूर पर

दीखने वाला आश्रम अगस्त्य का है। वहाँ शरभंग मुनि का आश्रम है और वह देखो महामुनि अत्रि का आश्रम दीख रहा है। वही पर सती अनसूया ने तुम्हें प्रेम से अंगराग प्रदान किया था। वही चित्रकूट पर्वत है, जहाँ भरत ने मुझसे (घर लौटने की) प्रार्थना की थी। वहाँ देखो, अनतिदूर विमल काननों के मध्य यमुना सुशोभित हो रही है। वहाँ देखो, अनेक दिव्य मुनि जिसकी सेवा करते हैं, ऐसी विमल तरंगावली से युक्त गंगा नदी प्रवाहित हो रही है। उसके किनारे अनेक उद्यानो से परिपूर्ण शृंगवेरपुर विलसित हो रहा है। वही वह सुन्दर स्थान है, जहाँ गुह बडी भक्ति के साथ हमसे मिला था। वह देखो, वही सरयू नदी है, जिसके तट पर अनेक यूप-काष्ठ विलसित है। हे कमलाक्षी, विशाल पुण्य-राशि अयोध्या वहाँ दीख रही है, उसे प्रणाम करो।' इस प्रकार, जब राम ने सीता को संकेत से अयोध्या दिखाई, तब बड़े कुतूहल से वानर एवं राक्षस उचक-उचककर उस सुन्दर नगर को देखने लगे, जो असंख्य रत्नो, स्वर्ण-सौधो, असंख्य तोरणो, ध्वजाओ तथा बहुत-से गज, अश्व, रथ, पदाति-सेना से युक्त हो अपार वैभव से विलसित होते हुए अमरावती के समान दीख रहा था।

१६४. भरद्वाज मुनि का आतिथ्य

चौदह वर्ष की समाप्ति के पश्चात् शुक्ल पंचमी (पंचम) के शुभ दिन में राम अविरत तेजस्वी भरद्वाज मुनि के आश्रम के निकट उतरे। वे पुष्पक को आकाश में ठहरा-कर आप आश्रम में गये और उस मुनि के चरण-कमलो में अपना मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और बडे हर्ष से मुनि के आशीर्वाद प्राप्त किये। उसके पश्चात् उन्होने अत्यन्त विनय के साथ कहा—'हे अनघ, बहुत समय से मुझे आपका कुशल-समाचार ज्ञात नही हुआ था। वनवास में रहते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया है। आप को, कंद, मूल, फल, जल आदि उपलब्ध होने में कोई कष्ट तो नही होता? आप की तपस्या बिना विघ्न-बाधा के सतत चल रही है न?'

राम के विनयपूर्ण वचनो को सुनकर मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे बोले—'हे निखिल लोकाराध्य, जब तुम स्वय यहाँ जन्म लेकर बडी निष्ठा से समस्त लोको का पालन करते हो, तब भला, कही किसी को कष्ट या कोई दुख हो सकता है? पुण्य-कर्म करने-वालो को कही कोई विघ्न-बाधा हो सकती है? हे सत्यनिष्ठ, तुम्हारे प्रसाद से हम अत्यत सुखी हो सभी धर्म-कार्य संपन्न करते, वेद-विहितअनुष्ठान का आचरण करते हुए तपस्या करते हैं। वनवास के लिए जाते समय तुम यहाँ आये थे। यहाँ से जाने के दिन से फिर आज लौटकर आने तक तुम्हारा सारा वृत्तांत मैंने अपनी दिव्य दृष्टि से जान लिया है। तुम्हारे किये हुए अद्भुत कार्य देवताओं के लिए भी असंभव हैं। तुम्हारे वन जाने के दिन से ही समस्त सुख-भोगो का त्याग कर घन जटा-भार एवं वल्कल धारण किये हुए, भरत अत्यन्त भक्ति से तुम्हारी पादुकाओ पर समस्त राज्य-भार डालकर राज्य चला रहा है। आश्चर्यजनक श्रद्धा से वह तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहा होगा। अपने अनुज की श्रद्धा का विचार करके तुम्हें वहाँ शीघ्र पहुँच जाना चाहिए। किन्तु हे अनघ, तुम वनवास से थके हुए आये हो, अतः आज तुम हमारे आश्रम में विश्राम करो। कल प्रातःकाल ही हम से विदा लेकर यहाँ से जाना। मैं प्रीतिभोज की व्यवस्था करता हूँ।

इतना कहकर मुनि ने अपने श्रेष्ठ तप की महिमा से राम को चकित करते हुए कामधेनु का स्मरण किया। तुरन्त उस कामधेनु ने स्वच्छ कान्ति से चमकता हुआ, भात, फल, घृत, दाल, विविध मिष्टान्न, मधुर शाक, शक्कर, दधि, परमान्न, औंटाया हुआ दूध, मधु, शिखरन, शरबत, चटनी, पेवस, वरी, सुगंधित जल और स्वादिष्ट अँचार आदि का प्रबन्ध कर दिया। तब राम ने वानर तथा दैत्य-नायकों के साथ बड़ी भक्ति एवं प्रीति से भोजन किया। तदनंतर भरद्वाज ने राम से कहा—'हे सुगुणाभिराम, हे कल्याणगुणधाम, मैं तुम्हें कोई वर देना चाहता हूँ। तुम अपनी इच्छा से माँग लो।' तब राम ने हाथ जोड़कर कहा—'हे मुनीश्वर, आप कृपा करके ऐसा वर प्रदान कीजिए कि साकेत नगरी के चारों ओर तीन योजन तक की भूमि वर्ष भर शस्य-श्यामल बनी रहे और वहाँ के वृक्ष सदा फूलते-फलते रहें। इसके सिवा मैं और कोई वर नहीं चाहता।' मुनि ने ऐसा ही वर देने की कृपा की। वानर-वीर मुनि के दर्शन करके हर्ष से प्रफुल्लित होकर अपने को कृतार्थ मानने लगे।

तब रघुपति अनिलकुमार को देखकर बोले—'हे मारुति, तुम अपनी अनुपम शक्ति से शीघ्र शृंगवेरपुर जाकर पुण्यात्मा गुह से मिलो और हमारे आगमन की सूचना उसे दो। उस पुण्यात्मा से मार्ग जानकर नदीग्राम पहुँचकर हमारे अनुज शुभव्रती, दयालु तथा उन्नतात्मा भरत को हमारे आगमन का समाचार देकर शीघ्र लौट आओ।'

तब हनुमान् ने मानव-रूप धारण कर बड़े वेग से गंगा नदी को पार किया, और शृंगवेरपुर में पहुँचा। वहाँ परहितात्मा परमेश्वर के आगमन का समाचार न जानने के कारण गुह मन-ही-मन सोचने लगा—'मैं अपने प्रभु राजाराम के चरण-कमलों की सेवा करते हुए उनके साथ वन में नहीं जा सका। पता नहीं, वे वहाँ कैसे रहते हैं और कहाँ हैं? कदाचित् वे सिंह, भेरुण्ड, राक्षस, अग्नि, भुजग, विष आदि से पीड़ित हो कहीं नष्ट तो नहीं हो गये। अन्यथा, (चौदह वर्ष की) अवधि समाप्त होने के पश्चात् भी रघुराम लौटकर क्यों नहीं आये। राम अपने वचन तोड़नेवाले नहीं हैं। मुझसे भूल हो गई। मैं अभी अग्नि में प्रवेश करके राम को प्राप्त करूँगा।' ऐसा निश्चय करने के पश्चात् उसने चिता सजाई और उसमें अग्नि को प्रज्वलित किया। फिर बड़ी भक्ति से वह अपने अनुज, पुत्र एवं स्त्री को साथ लिये हुए अपने मन में राम को धारण किये हुए उस अग्नि में प्रवेश करने का उपक्रम करने लगा।

उसी समय हनुमान् ने उसका मार्ग रोककर कहा—'अपने व्रत का पालन करके प्रभु राम लौटकर आ रहे हैं। वे कल ही यहाँ पहुँचेंगे। यह असत्य नहीं है। तुम अग्नि-प्रवेश करो, तो राम के चरणों की सौगन्ध है।' राम के आगमन का समाचार सुनकर अपने अनुचरों के साथ गुह अत्यन्त हर्षित हुआ और पवन-पुत्र को प्रणाम किया। फिर, गुह से आदर-सत्कार प्राप्त करके हनुमान् सरयू नदी को पार करके आगे बढ़ा। नदीग्राम में पवित्रचरित्र भरत अपने मन में सोच रहे थे—'पता नहीं, राम-लक्ष्मण तथा सीता कैसी अवस्था में हैं और कहाँ हैं? चौदह वर्ष पूरे हो गये, फिर भी राम लौटे नहीं। मैं धोखे में पड़ गया। जिस प्रकार सुमित्रानंदन, मुनि-वृत्ति स्वीकार करके राम के चरण-

कमलो की सेवा करते हुए गया, वैसे मै भी उस दिन जा नही सका । राम से अलग हो, मैं कैसे इस पृथ्वी पर जीवित रह सकता हूँ ? मैंने उसी दिन प्रतिज्ञा की थी कि यदि चौदह वर्ष समाप्त होने के पश्चात् भी रघुपति लौटने की कृपा नही करेंगे, तो मै चिता में जलकर अपने प्राण त्याग दूँगा । क्या, मै उस प्रतिज्ञा को झूठी होने दूँ ।' ऐसा निश्चय करके उन्होने अपने मन्त्रियो को बुलाकर कहा—'मै राम से मिलने के लिए अग्नि-प्रवेश करके अपने प्राण त्यागूँगा । तुम शत्रुओ का मद हरण करनेवाले, शौर्य-सम्पन्न शत्रुघ्न का राजतिलक कर दो ।' तब शत्रुघ्न ने भरत को देखकर कहा—'हे राजन्, आपके न रहने पर मुझे यह राज्य किसलिए चाहिए ? यह शरीर किसलिए ? मैं भी आपके चरणो की सेवा करते हुए आपके साथ ही चलूँगा ।' ऐसा दृढ निश्चय किये हुए उनको देखकर सभी लोग भयभीत हो गये ।

१६५. हनुमान् का भरत को राघवों का कुशल-समाचार सुनाना

इसी समय अनिलकुमार अत्यन्त वेग के साथ वहाँ पहुँच गया और भरत को बहुत विनय से प्रणाम करके खडा रहा । तब भरत ने पूछा—'तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारे यहाँ आने का क्या कारण है ? तुम किस कुल के हो ? तुम कहाँ से आ रहे हो और कहाँ जा रहे हो ?' तब अनिलपुत्र ने भरत से कहा—'हे देव, मै वानर हूँ और रघुराम का प्रिय दूत हूँ । सूर्य-कुल-कमल-भानु, उत्तमचरित्र राम ने अपने वनवास की अवधि समाप्त करके सौमित्र तथा जानकी के साथ वन में ठहरे हुए है । उन्होने आपका कुशल-समाचार जानकर यहाँ आने के लिए मुझे भेजा है, इसीलिए मै आया हूँ ।'

तब भरत अत्यधिक हर्ष से पुलकित हो उठे और बोले—'हे पुण्यवत्सल, हे वानर-श्रेष्ठ, हे पवन कुमार, मै तुम्हारा स्वागत करता हूँ ।' इसके पश्चात् उन्होने उस वानर-श्रेष्ठ को हृदय से लगा लिया और उन्हें गज-मुक्ताओ तथा मणियो की मालाएँ, कनकाबर, श्रेष्ठ आभूषण, असख्य धन तथा नगर भेंट किये और कहा—'हमारे प्रभु राम के वनवास गये हुए बहुत समय व्यतीत हो गया है । वे कहाँ रहे ? कहाँ-कहाँ विचरे ? अब वे कहाँ है ? तुम राघव के प्रिय दूत हो, इसलिए हे अनघ, तुम सभी बातें विस्तार से कहो । मै तुम्हारी बातो का विश्वास नही कर पा रहा हूँ । हे वानरश्रेष्ठ, क्या उनका आना सत्य है ?'

तब उस विमलात्मा ने हँसकर बडी भक्ति से कहा—"आपके पिता महाराज ने राम को राज्याधिकार से वचित करके उनके वनवास की आज्ञा दी, तो वे बडी भक्ति से जटाएँ तथा वल्कल धारण किये हुए जानकी तथा लक्ष्मण के साथ पैदल ही वनवास के लिए रवाना हुए और बडे हर्ष से श्रेष्ठ मुनियो की सगति में चित्रकूट पर्वत में रहने लगे । तब आपने राज्य-ग्रहण को अस्वीकार कर अपने अग्रज को लौटा लाने का प्रयत्न किया । उनके अस्वीकार करने पर आप बड़ी भक्ति के साथ उनकी पादुकाओ को ले आये और उनपर राज्य-भार डालकर राज-भोग त्याग कर तपस्वी के समान यहाँ रहने लगे । वहाँ से राघव कुटिल दानवो से पूर्ण दण्डक-वन में पहुँचे । पहले वे शरभग मुनि के आश्रम में ठहरे और वहाँ मुनियो के प्रति होनेवाले राक्षसो के अत्याचारो को दूर करके, सांत्वना देने के पश्चात्

आगे बढ़े और जनस्थान में राक्षसराज की बहन शूर्पणखा की नाक और कान काटे। उसके बाद उन्होंने खर, दूषण आदि चौदह सहस्र राक्षसों का संहार किया और वहाँ (पंचवटी में) पर्णशाला बनाकर रहने लगे। वहाँ रहते समय राक्षसराज रावण की प्रेरणा से मारीच नामक मायावी राक्षस सुन्दर स्वर्ण-मृग का रूप धारण किये हुए वहाँ दिखाई पड़ा। तब मृगनेत्री सीता ने उस मृग को देखकर राम से कहा—'हे नाथ, मुझे यह मृग बहुत प्रिय लग रहा है। आप इसे अवश्य ला दीजिए।' राघवेश्वर ने चाप लेकर पीछा किया और निदान उसपर तीक्ष्ण बाण चलाया, तो वह कुटिल राक्षस—'हाय लक्ष्मण ! हाय लक्ष्मण !' कहकर आर्त्तनाद करते हुए गिर पड़ा। यह आर्त्तस्वर सुनकर साध्वी सीता ने भय से व्याकुल होकर लक्ष्मण को भेज दिया। तब मुनि-वेष धरकर रावण वहाँ आया और सीता को बलात् उठाकर ले जाने लगा। तब जटायु ने इसे देखा। उसने रावण को रोका, तो रावण ने उसके साथ युद्ध करके उसे परास्त करके मार डाला। उसने समुद्र पार किया और लंका के अपने उद्यान में सीता देवी को बंदिनी बनाकर रखा। जब रामचन्द्र मायामृग का वध करके क्लान्त हो लौटने लगे, तब उन्होंने मार्ग में लक्ष्मण को देखा। तुरन्त उन्होंने व्याकुल हो लक्ष्मण से पूछा कि सीता को अकेली छोड़कर यहाँ क्यों आये ? दोनों भाई शीघ्र पर्णशाला में लौट आये। किन्तु वहाँ सीता को न देखकर वे अत्यन्त शोकाभिभूत हो गये। फिर, सीता की खोज करते हुए वे दोनों वनों में से होकर जाने लगे। मार्ग में उन्होंने रावण के बाहुबल से कटकर पृथ्वी पर गिरे हुए जटायु को देखा। जटायु से उन्हें विदित हुआ कि दशकंठ उसकी ऐसी दशा करके सीता को ले गया है। फिर, उस विहगेश की दाह-क्रिया करके वे जंगलों में भटकते हुए जाने लगे। ऋष्यमूक पर पहुँचकर उन्होंने सुग्रीव से मित्रता की। राम ने सुग्रीव के लिए वालि का संहार किया और तारा के साथ वानर-राज्य सुग्रीव को प्रदान किया। सुग्रीव बड़े हर्ष से सीता के अन्वेषणार्थ दो लाख असमान बलशाली तथा यशस्वी वानरों को प्रत्येक दिशा में भेजा। वानर दत्तचित्त हो सीता का अन्वेषण करने लगे, तो संपाति ने उन्हें बतलाया कि सीता लंका में है। तुम चिन्ता मत करो। मैं जैसा कहता हूँ वैसा करो। मैं ने संपाति के परामर्श से सौ योजन समुद्र को पार करके अशोक-वन में शोक-संतप्त हो रहनेवाली वैदेही के दर्शन किये। उन्हें रामचन्द्र की मुद्रिका दी। उस देवी से चूड़ामणि प्राप्त की और उसे लाकर रामचन्द्र को दिया। तब राम अत्यन्त प्रसन्न हुए और फिर समस्त वानर-सेना के साथ वे लंका पर आक्रमण करने के लिए चले, समुद्र पर सेतु को बाँधा, लंका पर आक्रमण किया और अपने प्रशंसनीय पराक्रम से लंकेश्वर का संहार किया और संसार का दुःख दूर किया। फिर, उन्होंने पुण्यात्मा विभीषण को लंका का राजा बनाया और पवित्रात्मा ब्रह्मादि देवताओं से अनेक वर प्राप्त किये। तदनन्तर देवताओं के साथ आये हुए आपके पिता के चरणों में प्रणाम करके, अग्नि-मुख से पवित्र घोषित की हुई सीता को स्वीकार किया। फिर, उन्होंने वानरों, राक्षसों, सुग्रीव, विभीषण, अंगद आदि के साथ पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो लंका से प्रस्थान किया और सफल, विक्रम तथा यश से सुशोभित होते हुए भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचकर वहाँ ठहरे हुए हैं। वे अवश्य ही कल यहाँ पधारेंगे।"

भरत ने हनुमान् की बातो से अत्यन्त हर्षित होकर, शत्रुघ्न से कहा—'हे शत्रुघ्न, तुम तुरन्त अयोध्या में जाकर सर्वत्र मगलोत्सव की घोषणा करा दो। राज-सभा-भवन में राम के सेतु-बन्धन आदि के चित्र बनवाओ। देव-गृहो, भूदेव-गृहो (ब्राह्मण-गृह) का अलकरण, तुम स्वय अपने समक्ष कराओ, नगर-मार्ग को श्रेष्ठ तोरणो तथा ध्वजाओ से सजाओ। युवतियो के द्वारा मोतियो से (घरो के आगे) चौक पुरवाओ, सभी घरो में सुन्दर वस्तुएँ वितरित कराओ। और, सभी नगर-वासियो को सुन्दर वस्त्राभूषणो से सुसज्जित रहने का आदेश दो। श्रीराम के आगमन का शुभ समाचार निकटवर्त्ती देशो के राजाओ के पास भेजो और गज-तुरगो की विपुल ध्वनि किये विना चतुरगिणी सेना तथा मंत्रियो को साथ लेकर माताओ की सेवा में तुम शीघ्र यहाँ लौट आओ।'

भरत का आदेश प्राप्त करके अनघ शत्रुघ्न अत्यन्त वेग से अयोध्या में गये और बड़े उल्लास के साथ राघव के आगमन का शुभ समाचार अपने सभी बधु-जनो को सुनाया, कौशल्या से कहा, कैकेयी से कहा और फिर सुमित्रा को कह सुनाया। फिर, उन्होने भरत के आदेशानुसार नगर को सजवाया और अकलक रीति से अन्तःपुरो का अलकरण कराया, चन्दन एव कर्पूर से सुगन्धित जल आँगनो में छिड़कवाया और नगर-वीथियो में नव-रत्न-तोरण बँधवाये। तब महात्मा वसिष्ठ आदि मुनि, पुरोहित, मुनि-पत्नियाँ, माताएँ, बन्धु-जन, मत्री, मित्र, स्त्रियाँ, नगर-निवासी तथा वृद्ध-जन, कुछ रथो में, कुछ पालकियो में, कुछ अश्वो पर, कुछ गजो पर आरूढ हो चल पडे। शत्रुघ्न पञ्च महावाद्यो के रव के साथ सभी को साथ लेकर भरत की सेवा में पहुँच गये।

१६६. भरत-मिलाप

भरत अपनी माताओं, अनुज तथा सेना के साथ राम की अगवानी करने के लिए, अत्यधिक उल्लास से चले। तब हनुमान् ने भरत से कहा—'हे अनघ, वह देखिए। राघव भरद्वाज मुनि के आश्रम से आ रहे है। वही पुष्पक है। वहाँ देखिए, वे ही राम है। वही कपि-सेना है। वह सुनिए, वानरो के सरयू नदी को पार करने की ध्वनि सुनाई पड रही है।' भरत विमान को देखकर फूले नही समाये और जहाँ उस पुष्पक को देखा, उसी स्थान पर वह बडी भक्ति से भाई को साष्टाग प्रणाम किया। फिर, उदयाद्रि पर प्रकाशमान होनेवाले उदयोन्मुख सूर्य की भाँति अपनी प्रभा को दसो दिशाओ में विकीर्ण करते हुए पुष्पक पर आरूढ, पुण्यात्मा रघुराम के निकट पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया।

तब राम ने पुष्पक को पृथ्वी पर उतारा और लक्ष्मण के साथ बडे हर्ष से एक-एक करके अपनी माताओ को प्रणाम किया। माताओ ने आशीर्वाद देकर उन्हें हृदय से लगाया। उसके पश्चात् भरत एव शत्रुघ्न ने बडी भक्ति से राम-सीता तथा लक्ष्मण को प्रणाम किया। राम ने उन्हें हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया। फिर, सीता ने बड़ी प्रीति एव श्रद्धा से अपनी सासो को प्रणाम किया, तो उन्होने अलग-अलग उन्हें हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिये। राम-लक्ष्मण ने बडी भक्ति से मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ को प्रणाम किया, तो उस मुनि ने उन राजपुत्रो को आशीर्वाद देकर बडे स्नेह से उनका आलिंगन किया। भरत तथा शत्रुघ्न ने सतुष्ट हृदयो से अपनी माताओ को प्रणाम किया और राम के पीछे भक्ति-युक्त हो रहनेवाले

विमलात्मा विभीषण, सुग्रीव, अगद तथा प्रमुख वानर-वीरो से प्रेमालाप करके उन्हें हृदय से लगाकर कहा—'आपके सदृश अनघ भृत्यो के रहने से राघव ने अनुपम कीर्त्ति एव विजय प्राप्त की। आपकी शुभ सेवा, नीति एव औन्नत्य के फलस्वरूप राम ने विजय प्राप्त की। ऐसे हितू, भृत्य एव आप्त-बधु हमारे और कौन हो सकते है ?' इस प्रकार कहते हुए वे अत्यधिक आनन्दित हुए। तब राजशिरोमणि राम ने अपनी प्रसन्नचित्त माताओ, वधुओ, अनुजो, वानरो तथा सेना को साथ लिये हुए तथा अपने तेज को विकीर्ण करते हुए नदीग्राम में प्रवेश किया।

तदनतर राम ने पुष्पक विमान की पूजा-अर्चना करके कहा—'अब तुम धनद (कुबेर) के पास अलकापुरी में जाकर रहो और (फिर कभी) मेरे स्मरण करते ही चले आना।' इन वचनो के साथ उन्होने उसे विदा किया। तब भरत राम की सेवा में पहुँचे और हाथ जोड़कर बडी भक्ति से कहा—'हे देव! मै अबतक राज्य-भार आपकी पादुकाओ पर रखकर, निर्लिप्त भाव से सावधान हो राज-काज का सचालन करता रहा।' यो कहकर उन्होने राम की पादुकाएँ उनके चरणो के पास रख दी और फिर अत्यन्त विनम्र होकर कहा—'अब आपको अयोध्या में पधारना चाहिए। उसके लिए यह मुनिवेष ठीक नही है। आप कृपया, राजा के योग्य वस्त्राभूषण धारण करें और वल्कल एव जटा-भार यही तज दें।'

तब राम ने मन-ही-मन इस कथन के औचित्य पर विचार करने के पश्चात् कहा—'जैसी तुम्हारी इच्छा।' तब प्रवीण सेवको ने आकर बडे यत्न से उनकी जटिल जटाओ को सुलझाया। राम ने अपने अनुजो के साथ अभ्यग-स्नान किया। फिर, दिव्य वस्त्र, आभरण तथा मालाओ को धारण किया। दशरथ की पत्नियो ने बडी प्रीति से भूमि-सुता सीता का अलकार किया। तारा आदि सुग्रीव की पत्नियो ने भी सीता का शृगार किया।

इतने में हनुमान् सादर गुह को लिवा लाया। वल्कल एव जटाएँ धारण किये हुए गुह अपने सहस्रो धनुर्धर भीलो के साथ, गधबिलाव, चमरी मृग की पूँछें, मत्त गज के सुन्दर दाँत एव मोती, वराह के दाँत, बाँस के मोती, साँपो के शिरो पर रहनेवाली मणियाँ, शार्दूल के नख, भेरुण्ड के नख, तथा सिंह-नख, कृष्णाजिन (काला मृग-चर्म), गोरोचन, कस्तूरी, मुरलियाँ, मधु तथा विविध फल, काँवरियो में लिये हुए आया और इन सब उपहारो को राम के समक्ष रखकर उन्हें साष्टाग प्रणाम किया और हाथ जोड खडा रहा।

तब कृपानिधि राम ने उसपर अत्यन्त स्नेह-वर्षा करते हुए, अमृतोपम वचनो से उसका आदर करते हुए कहा—'हे तेजस्वी भीलराज, तुम्हारी भक्ति, महत्ता एव साहस मैंने पवन-पुत्र के द्वारा सुना है। तुम भी हमारे अपने लोगो में से ही एक हो। अतः, तुम भी इन जटाओ तथा वल्कलो का त्याग करो और पूर्ववत् राजा के योग्य वस्त्र आदि धारण करो।' राम की आज्ञा के अनुसार भीलराज ने वल्कल एव जटा-भार त्यागकर स्वच्छ जल में स्नान आदि से पवित्र हो राम की सेवा में पहुँचा। तब राम ने उसे दिव्य वस्त्राभूषण प्रदान किये। उसने बडी भक्ति से उन्हें धारण किया और राम की सेवा में सलग्न हुआ।

१६७. अयोध्या में प्रवेश

तब शत्रुघ्न के आदेश से प्रभु-भक्त सुमंत ने बहु-रत्नो की निर्मल प्रभा से विलसित सूर्यबिंब के समान उज्ज्वल रथ को ले आकर राघव के सामने उपस्थित किया। जब राम ने अपनी सभी माताओ को प्रणाम किया, तब माताओ ने ऊँचे स्वर में आशीर्वाद दिया। शुभ लग्न में राम अपने गुरु वसिष्ठ को आगे किये हुए रथ पर ऐसे आरूढ हुए, मानो अपनी विशाल कीर्त्ति को व्याप्त करते हुए जनता के मनोरथ पर आरूढ हो रहे हों। निरुपम भक्ति-तत्पर भरत, धवल आतपत्र सँभाले हुए थे और सुमित्रा-पुत्र विशाल व्यजन डुला रहे थे। पच महावाद्यो की ध्वनि के साथ देव-दुदुभियो का रव भी होने लगा, आकाश से देवता पुष्प-वृष्टि करने लगे और सारी प्रजा जयघोष करने लगी। राम के रथ के पीछे एक विशाल रथ पर आरूढ हो विभीषण जा रहा था। पार्श्व-भागो में सुग्रीव आदि वानर अनेक गजो पर बैठे हुए जा रहे थे। चतुरगिणी सेना भी साथ चल रही थी। सभी बधु-वर्ग रथ के साथ-साथ चल रहे थे। बदी-मागध राम के सेतुबधन आदि महान् कार्यो का उल्लेख करते हुए उनका कीर्त्ति-गान कर रहे थे। राजमाताएँ, तारा आदि स्त्रियाँ तथा जानकी रथो में आरूढ हो जा रही थी। इस प्रकार, सभी लोग रामचन्द्र के साथ ही बडे उल्लास से अयोध्या की ओर चल पड़े। पुरोहित जहाँ-तहाँ आशीर्वाद देने लगे। हाथियो के चिंघाड, रथो की घड़घड़ाहट, अश्वो की हिनहिनाहट तथा भेरी-मृदग आदि की ध्वनि चारो ओर व्याप्त होने लगी। ऐसी राजसी ठाट से अक्षीण कल्याण-स्वरूप, राम-भूपाल, नक्षत्रो से परिवृत चन्द्र की भाँति, दीप्तिमान् होते हुए अयोध्या में पहुँचे।

तब पल्लव-हस्त, पल्लव-अधर, पल्लवारुण चरण-पल्लवो से सुशोभित, सिंह-कटि-सम क्षीणकटि, चन्द्रमुखी, गजगामिनी, कमललोचनी, अलिनीलकुंतला, कमलगंधी, लतागी सुदरियो ने उमडते हुए आनन्द के साथ प्रासादो से, राम के पुण्य दर्शन करके, उनपर पुण्य पुष्पाक्षतो की वर्षा की। (राम के दर्शनार्थ) सौधो पर खडी हुई मीनलोचनी तरुणियाँ अपनी सहेलियो से कहने लगी—'हे सखी, इस पुण्यवन (राम) ने बाल्यावस्था में जो कार्य किये, उन्हें सोचकर आश्चर्य होता है। अपने ऊपर आक्रमण करनेवाली ताड़का का वध किया, अनघ कौशिक की रक्षा की, शिव का धनुष तोडा और दर्पोद्धत परशुराम का गर्व-भंग किया। दुष्ट-दलन करनेवाले राम सहज शूर हैं, इसीलिए उन्होने ऐसे महान् कार्य किये। बहुत ही छोटी अवस्था में वनवास की आज्ञा मिलते ही वनवास के लिए चल पडे। वहाँ उनके सदृश और कौन जगत्-कल्याण के कार्य कर सकता था? सेतु को बाँधकर, रावण के साथ युद्ध करके उसका सहार किया और असख्य राक्षसो का वध कर डाला। पिता की आज्ञा से वनवास के लिए जाते समय उनके प्रिय मुख की कान्ति कितनी भव्य थी। आज इतने महान् कार्यो की सिद्धि के पश्चात् लौटनेवाले इनके मुख की उज्ज्वल प्रभा, कितने ही प्रकार से दीप्त हो रही है। हे चचलनेत्री, उस लक्ष्मण को देखो, जिस इन्द्रजीत ने इन्द्र को सहज ही जीतकर सुरो को भयभीत करके अपने बाहुबल का प्रदर्शन किया था, उसे इन्होने युद्ध में मारा। वहाँ उस विभीषण को देखो, अपने दुष्ट अग्रज को छोड-कर, यही आज लकाधीश बना हुआ है। हे सखी, यह वालि का भाई सुग्रीव है, और यह

वालि-पुत्र अगद है। (उस पवन-पुत्र को देखो) उस पुण्यात्मा ने समुद्र को पार करके सीता का पता लगाया, सहज ही सेतु को बँधवाकर राम को लका में ले गया और युद्ध में गिरे हुए लक्ष्मण के लिए ओषधियो को लाकर उन्हें प्राण-प्रदान किया।'

पुरजनो के ऐसे वार्त्तालापो के बीच सूर्यवशज रामचन्द्र ने अन्त पुर में प्रवेश किया। फिर, उन्होने भरत-शत्रुघ्न को बुलाकर उन्हें दैत्यराज तथा वानर-नायको के ठहरने के लिए आवश्यक प्रबन्ध करने का आदेश दिया और उन्हें विविध स्वादिष्ट भोजन आदि भिजवाये। इसके पश्चात् भरत ने सुग्रीव से कहा—'हे अनघ, हमने कल सूर्यवश-मणि रामचन्द्र के राजतिलक करने का प्रबन्ध किया है। इसके लिए हमें चारो समुद्र का जल तथा गगा आदि तीर्थों के जल चाहिए। उनको मँगवाने का प्रबन्ध करो। सूर्य-पुत्र ने परम हर्ष से गज, सुषेण, जाववान् और शीघ्रगामी वेगदर्शी को बुलाकर उन्हें सुन्दर रत्न-कलश देकर तीर्थों का जल लाने के लिए भेजा। फिर नल, गवाक्ष, वायुपुत्र तथा ऋषभ को समुद्र का जल लाने के लिए भेजा। तब वानर-वीर अत्यन्त वेग से गये और दूसरे ही दिन प्रात.काल तक आवश्यक तीर्थों के जल आदि ले आये। यह देखकर सब लोग आश्चर्यचकित रह गये।

१६५. राजतिलक

भरत ने निर्मलचेता एव सदाचार-सम्पन्न वसिष्ठ, गौतम, जाबालि, कश्यप, कण्व, वामदेव आदि मुनीश्वरो को तथा चतुर्वेद-पारगत विबुधो को बुलाकर विनय एव भक्ति के साथ उनसे कहा—'आप कृपया विधिवत् श्रीराम का राजतिलक कीजिए।' तब वे मगल-वाद्यो की ध्वनि के साथ जानकी तथा राम को बुला लाये और रमणीय रत्न-पीठ पर उन दोनो को आसीन किया और वेदमत्र-पूर्वक पुण्य-सलिल से उनका अभिषेक किया। राम के सिर पर से गिरनेवाली पूर्ण जल की धारा देखने में बहुत ही रमणीय प्रतीत होती थी। देवताओ की स्तुतियो को प्राप्त करते हुए, पार्वती के साथ विलसित होनेवाले परमशिव की जटा से झरने-वाली गगानदी की भाँति वह जल-धारा अत्यन्त कमनीय दीख रही थी। वह जल-धारा क्रमश उनके चरणो से होकर पृथ्वी पर ऐसे गिरने लगी, मानो विष्णु के चरणो से जन्म लेकर पवित्र गंगा पृथ्वी पर उतर रही हो। इस प्रकार, उस समय रामचन्द्र स्वय विष्णु तथा शिव की भाँति शोभायमान हुए। राज्याभिषिक्त राम उस समय अपने ललाट पर बँधे राजपट्ट के साथ, देखनेवालो को शिव की भाँति दीख रहे थे और ललाट पर बँधा हुआ पट्ट, ऐसा दीखता था मानो शिव की जटाओ में स्थित हो, अपनी सरस कान्ति से जटाओ को आलोकित करनेवाली शशिरेखा ही गगा की लहरो के धक्के से फिसलकर ललाट पर आ गई हो। उस समय गरुड, खेचर, गधर्व, सुर, सिद्ध तथा साध्य, आकाश से अत्यन्त उत्साह से जय-निनाद करने लगे। अप्सराएँ नृत्य करने लगी। उस शुभ घडी में इन्द्र ने अनिल के द्वारा बडे प्रेम से राम के पास पारिजात पुष्पो की माला तथा मोती के हार भेजे। राघव ने बड़े आदर के साथ उन्हें धारण किया। उस महान् उत्सव के समय, पृथ्वी शस्यश्यामला हो गई, वृक्ष पुष्पो एव फलो से लद गये, पुष्पो में अद्वितीय सुगध आ गई और दिशाएँ निर्मल हो गई।

तब रघुराम ने भूसुरो तथा महात्माओ को अनुपम भक्ति-युक्त हृदय से तीस करोड मुद्राएँ, एक लाख अश्व, एक लाख गज तथा एक लाख गायें दान दी; सुग्रीव को प्रिय वचनो से

अपने निकट बुलाकर उसे ललित दिव्यांवर आभूषण तथा स्वर्ण-कुसुमों की माला दी; अंगद को अमूल्य रत्न-जटित स्वर्ण-अंगद (केयूर) दिये; पुण्यात्मा विभीषण को अमूल्य केयूर एवं मुकुट दिये। नील को लोल कान्तियों से विलसित नील मणियों का और नल को नव-रत्नों का सुन्दर हार दिया। उसके पश्चात् प्रसन्नचित्त हो राम भूपाल ने सभी वानरों को देख-देख-कर, एक को भी छोड़े बिना, सबको दिव्य वस्त्र तथा आभूषण दिये। फिर, उन्होंने सीता को शरच्चन्द्र से भी उज्ज्वल कान्तियुक्त मणिमय हार दिया। किन्तु सीता ने उसे पहना नहीं, किन्तु वह उस उपहार को हाथ में लिये साभिप्राय दृष्टि से रामचन्द्र के मुख की ओर देखने लगी। उनकी दृष्टि का अभिप्राय समझकर चतुर राम ने अनुमति दी, तो उन्होंने अपने कृपा-रस से सींचते हुए उस हार को हनुमान् के कंठ में पहना दिया। उस पवित्र हार को धारण कर वह पुण्यात्मा पवन-पुत्र, शरत्काल के बादलों से घिरे हुए मेरु पर्वत की भाँति सुशोभित होने लगा।

उसके पश्चात् वसिष्ठ की आज्ञा से राम अन्तःपुर में गये और क्रमशः अपनी सभी माताओं को प्रणाम किया। सभी माताओं ने बड़े स्नेह से उन्हें आशीर्वाद दिये। सीता ने भी अपनी सासों को बड़ी भक्ति से प्रणाम किया। तब उन्होंने सीता को हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया—'तुम लक्ष्मी के सदृश, सरस्वती की भाँति, पार्वती के समान पति-भक्ति, सुमति, सौभाग्य, तेज एवं अतुल कीर्त्ति से सम्पन्न होती हुई, सूर्य-चन्द्र के समान तेजस्वी पुत्रों की माता बनो।'

१६९. मित्रों को प्रीतिभोज देना

उसके पश्चात् रघुकुलाधिप बड़े उल्लास से भोजनालय में गये। उन्होंने मित्रों, बंधुओं, अनुजों तथा रवि-पुत्र आदि वानरों, विभीषण आदि दैत्य-वीरों एवं पवित्रात्मा गुह आदि लोगों को बड़े स्नेह से बुलवा भेजा और उन्हें उचित आसनों पर बिठाया। बड़े स्नेह से सच्चरित्र हनुमान् को अपने साथ बैठकर भोजन करने के लिए कहा। (जब सब लोग उचित आसनों पर उपस्थित हुए), सुन्दरियों ने प्रत्येक के आगे सोने के थाले लगाये और पायस, भात, दाल, मिष्टान्न, बढ़िया सूखा शाक, विविध स्वादिष्ट शाक, कई प्रकार की चटनियाँ शिखरन, अँचार, ताजा घी और मीठे फल आदि परोसे। तब सूर्यवंशाधीश ने दुगुनी प्रीति से हनुमान् से कहा—'हे अनिलकुमार, भोजन प्रारंभ करो।' इतना कहकर उन्होंने स्वयं एक कौर ग्रहण किया। तब हनुमान् ने अत्यन्त भक्ति से उस थाल को, जिसमें रामचन्द्र ने भोजन प्रारंभ किया था, उठाकर अपने सिर पर रख लिया और आनंदातिरेक से नृत्य करते हुए कहने लगा—'हे वानरो, आओ। राम के थाल का प्रसाद प्रचुर मात्रा में हम सब को मिल गया है।' यों कहते हुए उसने सामने के अगस्त्य वृक्ष पर चढ़कर उसके पत्ते तोड़ लिये और उन पत्तों में उस प्रसाद को रखकर बड़ी भक्ति से सभी वानर-वीरों को बाँटा। वे भी उस प्रसाद को ग्रहण करके अत्यन्त संतुष्ट हुए। यही कारण है कि उस दिन से अगस्त्य वृक्ष के पर्ण एकादशी (पारण) के लिए बहुत ही मुख्य माने जाते हैं।

रघुराम ने, अंजना-सुत (हनुमान्) की भक्ति से अत्यन्त संतुष्ट हो, दूसरा थाल मँगवा-कर भोजन तथा जल ग्रहण किया। तदनंतर उन्होंने सुगंध-पुष्पों की मालाओं से सब लोगों का

अलकार किया और कर्पूर, ताबूल, चन्दन आदि सब को बाँट दिये। फिर, अत्यन्त प्रसन्नता एव प्रीति से सकल भृत्य एव अमात्यो के साथ राजसभा में बैठे।

उसी समय निद्रा देवी सौमित्र को अपने वश कर लेने का उपक्रम करने लगी। सभा में राम के समक्ष बैठे हुए लक्ष्मण यह देखकर जोर से हँसने लगे। तब राम, सीता, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, अगद, नल, नील, शरभ, सन्नाद, तार आदि वानर तथा शत्रुघ्न, भरत आदि ने अपने-अपने कलक की बात सोचकर अपने सिर झुका लिये। तब राम ने सब की यह दशा देखकर अपने अनुज से कहा—'हे लक्ष्मण, तुम अकारण ही क्यो हँसे? इसका क्या अभिप्राय है बताओ।'

तब लक्ष्मण ने भयभीत हो हाथ जोडकर कहा—'हे देव, जब मैं आपकी सेवा करते हुए वन में आपके साथ रहने लगा, तब निद्रा मुझ पर अपना प्रभाव डालने लगी। तब मैंने उससे कहा कि तुम चौदह वर्ष तक मेरे पास मत आओ। मेरी बात मानकर वह चली गई। चौदह वर्ष समाप्त होते ही वह फिर लौटकर मेरे पास आई। हे देव, यही सोचकर मैं हँसा और यही मेरे हँसने का मूल कारण है। हे दयासमुद्र, मैं आपके चरणो की सौगध खाकर कहता हूँ, इसके सिवा मेरे हँसने का और कोई कारण नही है।' तब सब लोगो के मन की शंकाएँ दूर हुई और सभी प्रसन्न हुए।

करुणामूर्ति राम ने सब वानरो को देखकर कहा—'सभी कार्यों में सदा किसी भी धर्म की अपेक्षा किये विना, उनका आचरण करते रहो।' इतना कहकर उन्होंने उन्हें बडे आदर से कई प्रकार के उपदेश देकर प्रिय वचनो से जाने की अनुमति दी। उसके पश्चात् उन्होंने अनिलकुमार, सुग्रीव आदि प्रमुख वानरो को तथा विभीषण को विदा किया। सुग्रीव आदि वानर प्रसन्नचित्त हो किष्किधा लौट गये। विभीषण भी राक्षसो के साथ बडे उत्साह से लका लौट गया।

राम ने मनस्वी सौमित्र एव भरत को युवराज बनाया और विशाल राज-वैभव का अनुभव करते हुए, सीता के साथ समस्त सुखो को भोगते हुए राज्य करने लगे। वे अपने पूर्वजो की अपेक्षा अधिक वेद-विहित धर्मों का आचरण करते हुए, कई प्रकार के अनुष्ठान आदि करते थे। उन्होने अश्वमेध तथा वाजपेय आदि कई श्रेष्ठ यज्ञ करते हुए, देवता और भूसुरो की रक्षा करते हुए परिपूर्ण रूप से धर्मनिष्ठ हो, ग्यारह सहस्र वर्ष तक पृथ्वी का पालन किया। उनके राज्य में प्रजा को कोई दुःख नही था, अकाल और पाप कही नही था, सत्य तथा धर्म नष्ट नही होते थे और सभी जन परहित-रत थे।

इस प्रकार, आन्ध्र-भाषा का सम्राट्, काव्य, आगम आदि के प्रशसनीय ज्ञाता, आचारवान्, अपार धैर्य-सपन्न, भूलोक-निधि, गोनबुद्ध भूपाल ने सुन्दर गुणो से सम्पन्न, धैर्यवान्, शत्रुओ के लिए भयकर, महात्मा, महान् दयालु तथा ललित सद्गुणालकार अपने पिता विट्ठल-नरेश के नाम पर, अनुपम तथा ललित शब्द एव अर्थ से सम्पन्न, रामायण के इस युद्धकाड की, श्रेष्ठ अलकार एव सुन्दर भावो से परिपूर्ण बनाकर, इस प्रकार रचना की, कि वह इस ससार में आचन्द्रार्क अत्यन्त पूजनीय हो, शोभायमान होता रहे।

रसिकजनो के लिए आनन्ददायक, इस प्रसिद्ध तथा आर्ष आदि-काव्य का पठन जो कोई करेगा, या जो इसका श्रवण करेगा, उसे सामवेद आदि विविध वेदो का आधार राम-नाम-रूपी चिन्तामणि के

द्वारा नव्य भोग, परोपकार-बुद्धि, उदात्त विचार, परिपूर्ण शक्ति, राज्य-सुख, निर्मल कीर्त्ति, नित्य सुख; धर्मनिष्ठा, दान-पुण्य में अनुरक्ति, चिरायु, स्वास्थ्य तथा अपार ऐश्वर्य प्राप्त होगे। उनके पापो का क्षय होगा, उन्हें श्रेष्ठ पुत्र लाभ होगा, उनके शत्रु नष्ट होगे और उन्हें धन-धान्य की समृद्धि सुलभ होगी। उनका जीवन निर्विघ्न रहेगा, घर में लावण्यवती स्त्रियो का अनुराग प्राप्त होगा। भाइयो की वृद्धि होगी तथा उनके साथ सुखमय सहजीवन का भाग्य मिलेगा। उनके घरो में सतत देव-पूजन तथा पितरो की तृप्ति होती रहेगी। यह रामायण मोक्ष-साधक, पाप-हारक, भव्य, दिव्य तथा शुभप्रद है। विधिवत् इस रामायण की पूजा करने से पुण्य प्राप्त होगे। इसके रचयिताओ की श्रेष्ठ एव शुभ उन्नति होगी तथा इन्द्र-लोक का निवास प्राप्त होगा। जबतक कुलपर्वत, समुद्र, सूर्य-चन्द्र, वेद, दिशाएँ, पृथ्वी तथा सभी भुवन सुशोभित रहेंगे, तबतक यह कथा अक्षय आनन्द-समूह का आगार बनी रहेगी।

ओं तत्सत्!

परिषद् के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१. हिन्दी-साहित्य का आदिकाल—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी। ३ २५।

२. यूरोपीय दर्शन—स्व० महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा। ३.२५।

३. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल। ६ ५०।

४. विश्वधर्म-दर्शन—श्रीसाँवलियाविहारीलाल वर्मा। १३ ५०।

५. सार्थवाह—डॉ० मोतीचन्द्र। १०० ऐतिहासिक चित्र। ११.००।

६. वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा—डॉ० सत्यप्रकाश ८.००।

७. सन्तकवि दरिया : एक अनुशीलन—डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री। १४ ००।

८. काव्यमीमांसा (राजशेखर-कृत)—अनुवादक स्व० प० केदारनाथ शर्मा। ६.५०।

९. श्रीरामावतार शर्मा-निबन्धावली—स्व० महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा। ८ ७५।

१०. प्राङ्मौर्य विहार—डॉ० देवसहाय त्रिवेद। ७ २५।

११. गुप्तकालीन मुद्राएँ—स्व० डॉ० अनन्त सदाशिव अलतेकर। ६ ५०।

१२. भोजपुरी भाषा और साहित्य—डॉ० उदयनारायण तिवारी १३.५०।

१३. राजकीय व्यय-प्रबन्ध के सिद्धांत—श्रीगोरखनाथ सिंह। १.५०।

१४. रबर—श्रीफूलदेवसहाय वर्मा, एम्० एस्-सी०। चित्र ६१। ७ ५०।

१५. ग्रह-नक्षत्र—श्रीत्रिवेणीप्रसाद सिंह, आइ० सी० एस्०। ४ २५।

१६. नीहारिकाएँ—डॉ० गोरखप्रसाद (प्रयाग-विश्वविद्यालय)। ४ २५।

१७. हिन्दू धार्मिक कथाओं के भौतिक अर्थ—श्रीत्रिवेणीप्रसाद सिंह। ३ ००।

१८. ईख और चीनी—श्रीफूलदेवसहाय वर्मा। चित्र १०४। १३.५०।

१९. शैवमत—मूल लेखक और अनुवादक डॉ० यदुवंशी। ८ ००।

२०. मध्यदेश : ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सिंहावलोकन—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा। कई रंगीन मानचित्र, ऐतिहासिक महत्त्व के कलापूर्ण चित्र। ७ ००।

२१-२२. प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण—(पहला और दूसरा खंड)। स० डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री। प्रत्येक का मूल्य २.५०।

२३—२६. शिवपूजन-रचनावली—आचार्य शिवपूजन सहाय (४ भाग)। मूल्य क्रमश. ८ ७५, ६ ००, १०.००, ८.५०।

२७. राजनीति और दर्शन—डॉ० विश्वनाथप्रसाद वर्मा। १४.००।

२८. बौद्धधर्म-दर्शन—स्व० आचार्य नरेन्द्रदेव। पृष्ठ ८५०। १७.००।

२९-३०. मध्य एसिया का इतिहास—(दो खंडों में) महापंडित राहुल सांकृत्यायन। प्रथम खण्ड १२ २५। द्वितीय खण्ड ८.५०।

३१. दोहाकोश—मूल कवि : बौद्धसिद्ध सरहपाद। छायानुवादक—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन। पृष्ठ ५५८। १३.२५।

३२. हिन्दी को मराठी संतों की देन—आचार्य विनयमोहन शर्मा। ११ २५।
३३. रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना—डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'। १० २५।
३४. अध्यात्मयोग और चित्तविकलन—स्वर्गीय वेङ्कटेश्वर शर्मा। ७ ५०।
३५. प्राचीन भारत की सांग्रामिकता—पण्डित रामदीन पाण्डेय। ६ ५०।
३६. बाँसरी बज रही—श्रीजगदीश त्रिगुणायत। ८ ००।
३७. चतुर्दशभाषा-निबन्धावली—पृष्ठ १८४। ४ २५।
३८. भारतीय कला को बिहार की देन—डॉ० विन्ध्येश्वरीप्रसाद सिंह। पृष्ठ २१९। ७ ५०।
३९. भोजपुरी के कवि और काव्य—श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह। स० डॉ० विश्वनाथ प्रसाद। पृष्ठ ३९९। ५ ७५।
४०. पेट्रोलियम—श्रीफूलदेवसहाय वर्मा। चित्र ४०। ५ ५०।
४१. नील-पंछी—(मूल-लेखक मारिस मेटरलिंक)। अनु० डॉ० कामिल बुल्के। २ ५०।
४२. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ् मानभूम एण्ड सिंहभूम। ४.५०।
४३. षड्दर्शन-रहस्य—प० रंगनाथ पाठक। ५ ०८।
४४. जातक-कालीन भारतीय संस्कृति—श्रीमोहनलाल महतो 'वियोगी'। ६.५०।
४५. प्राकृत भाषाओं का व्याकरण—मूल-ले० श्रीरिचर्ड पिशल। अनु० डॉ० हेमचन्द्र जोशी। पृष्ठ १००४। २० ००।
४६. दक्खिनी हिन्दी-काव्यधारा—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन। ६ ००।
४७. भारतीय प्रतीक-विद्या—डॉ० जनार्दन मिश्र। पृष्ठ ६१२। ११.००।
४८. संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय—डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री। ५ ५०।
४९. कृषिकोश (प्रथम खण्ड)—प० डॉ० विश्वनाथ प्रसाद। ३ ००।
५०. कुँवरसिंह-अमरसिंह—अनु० प० छविनाथ पाण्डेय। ५ ००।
५१. मुद्रण-कला—प० छविनाथ पाण्डेय। ७ २५।
५२. लोक-साहित्य : आकर-साहित्य-सूची—आचार्य नलिनविलोचन शर्मा। ५० न० पै०।
५३. लोककथा-कोश—आचार्य नलिनविलोचन शर्मा। ३२ न० पै०।
५४. लोकगाथा-परिचय—आचार्य नलिनविलोचन शर्मा। २५ न० पै०।
५५. बौद्धधर्म और बिहार—प० हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय'। ७७ दुर्लभ चित्र। ८ ००।
५६. साहित्य का इतिहास-दर्शन—आचार्य नलिनविलोचन शर्मा। ५ ००।
५७. मुहावरा-मीमांसा—डॉ० ओम्प्रकाश गुप्त। ६ ५०।
५८. वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति—म० म० प० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी। ५.००।
५९. पंचदश लोकभाषा-निबन्धावली। ४ ५०।
६०.६१. प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण (३-४ खण्ड)—स० आचार्य नलिनविलोचन शर्मा। १ २५। १ ००।
६२. हिन्दी-साहित्य और बिहार (बिहार का साहित्यिक इतिहास; सातवीं शती से अठारहवीं शती तक)—स० आचार्य शिवपूजन सहाय। ५ ५०।
६३. कथा-सरित्सागर—मूल-लेखक महाकवि सोमदेवभट्ट। अनु० स्व० प० केदारनाथ शर्मा सारस्वत। (प्रथम खण्ड; षष्ठ लम्बक तक) पृष्ठ ८४६। १० ००।

*उपर्युक्त प्रत्येक सजिल्द पुस्तक पर तिरंगा नयनाभिराम आवरण है।